चतुरसेन गुप्त
प्रबन्धक
महाभारत कार्यालय
दिल्ली



मुद्रकः—
पं० काशीप्रसाद वाजपेई
प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स चावड़ी बाज़ार
दिल्ली।

निवेदन

यूरोपीय महासमर की ज्वालाएँ अब प्रतिदिन तीव्र होती जा रही हैं। साम्राज्यलोलुप दो सिंहों की युद्ध घोषणा से सारा संसार क्षुब्ध हो उठा है। यदि सन्धि न हुई-तो यह युद्धाग्नि और भी तीव्र रूप धारण करेगी और न जाने उसमें कौन २ राष्ट्र नष्ट होकर भस्मावेशेप हो जावेंगे।

जितने भी राष्ट्र इस युद्ध में सम्मिलित हो चुके या हो जाने का अवसर देख रहे हैं, उन सबकी गृद्ध-दृष्टि अपने २ स्वार्थ पर है, क्या जर्मन, क्या ब्रिटिश, क्या रूस, क्या जापान, क्या अमेरिका, और क्या इटली-ये सब कुछ न कुछ हड़प जाने की फिक्र में हैं, परन्तु इस हिन्दुस्तान को इस युद्ध में क्या प्राप्त होगा-इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

हिन्दुस्तान परतन्त्र है, वह अपने सन्धि-विग्रह का स्वयं कर्ता-धर्ता नहीं है। यह कुछ भी चाहता हो, परन्तु आज तो उसे पंख बंधे हुए पक्षी की तरह अंग्रेजों के झटके पर ही नांचना पड़ेगा।

चलो छोड़ो? हमें इस राजनैतिक चर्चा से क्या लाभ? जब हमारे पास न तो शस्त्र है और न कोई युद्ध की योग्यता है, तो फिर व्यर्थ के मन्सूबे बांध कर अपने चित्त को विचलित करने से हमें मिल ही क्या सकता है।

युद्ध की भीषण आग भारत में क्या २ कौतुक दिखावे-इसे कौन जान सकता है, परन्तु दुर्भाग्य से कहीं परस्पर के वैमनस्य की आग भड़क उठी-तो उस समय फिर वही अपनी संस्कृति की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो जावेगा।

पूर्वकाल में क्षत्रिय वीर थे। हमने भी अपनी तलवार के जौहर दिखाए थे, परन्तु आज तो हम तलवार का नाम भी नहीं ले सकते। सच्चे क्षत्रियों के दर्शन बहुत ही कम होते हैं। होनहार की बात है, कि हिन्दुओं में अभी तक फूट भी पूर्व की भाँति घर किए हुए है-ऐसी दशा में हिन्दुओं का मार्ग प्रदर्शक कौन हो सकता है।

हमें यहाँ अधिक कहानी नहीं बढ़ाना है। प्रत्येक हिन्दू अपनी सभ्यता की रक्षा के लिए अभी से तय्यार हो जावे, परन्तु सबसे अधिक तो ब्राह्मणों से निवेदन है, कि उन्हें द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा को उदाहरण बना कर अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए अच्छी तरह सन्नद्ध हो जाना चाहिए। उनका तो यह ध्येय बन जाना चाहिए कि—

अग्रतश्चतुरोवेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

अर्थात्-ब्राह्मण के आगे चारों वेद और पीछे शरसहित शरासन होना चाहिए। वह संसार को दिखा दे, कि ऐसा ब्रह्मतेज होता है और यह क्षात्रतेज है। बस ! इसी में हिन्दू जाति की रक्षा का बीज सुगुप्त है। अश्वत्थामा कहते हैं—

मित्रब्रह्मगुरुद्रोही, जाल्मकः सुविगर्हितः।
पाञ्चालापसदश्चाद्य न मे जीवन् विमोक्ष्यते ॥

महा० द्रोण० अ० १६५-४५

हे वीरो ! मित्रद्रोही, वेदब्राह्मण विरोधी, गुरु (पूज्य) द्रोही, जालिम, निन्दा के योग्य-धृष्टद्युम्न को मैं आज जीवित नहीं छोड़ूंगा बस? यही प्रतिज्ञा प्रत्येक ब्राह्मण क्या ? हिन्दूमात्र की अपनी रक्षा के निमित्त होनी चाहिए।

युद्ध के कारण कागज की महँगी और हलचल बढ़ती जा रही है। दैवी विघ्नों के कारण महाभारत के निकालने में देर भी बहुत हो गई। हमने बड़े श्लोकों को मला २ कर उवाचों को भी श्लोकों के साथ छाप कर जैसे तैसे अनेक प्रकार से महाभारत की कम जिल्दें करनी चाही, परन्तु ये द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ती ही गई। पिछली वार महँगी के कारण फर्में कम कर दिए-इससे भी और बढ़ने लगी। परन्तु अब हमने इस बारहवीं जिल्द में फर्में बहुत बढ़ा दिए हैं और तेरहवीं में तो बहुत ही कर दिए हैं। बारहवीं और तेरहवीं जिल्द साथ २ आप के पास पहुंच रही हैं। इस तरह जिल्दों के मैटर बढ़ाने के कारण हमने तस्वीरें देना बन्द कर दिया। आशा है, कि समझदार पाठक हमें क्षमा करेंगे।

गङ्गाप्रसाद शास्त्री
मालीवाड़ा
देहली।

महाभारत बारहवें भाग

697

की

विषयानुक्रमणिका

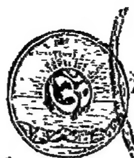
अध्याय १३२ से २०२ तक

जयद्रथवधपर्व

घटोत्कचवधपर्व

द्रोणवधपर्व





महाभारत

बारहवां भाग

द्रोणपर्व

एक सौ बत्तीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच— स्वयं शिष्यो महेशस्य भृगूत्तमधनुर्धरः ।
शिष्यत्वं प्राप्तवान्कर्णस्तस्य तुल्योऽस्त्रविद्यया ॥१॥
तद्विशिष्टोऽपि वा कर्णः शिष्यः शिष्यगुणैर्युतः ।
कुन्तीपुत्रेण भीमेन निर्जितः स तु लीलया ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! भृगुवंशश्रेष्ठ परशुराम बड़े ही उत्तम धनुर्धर और स्वयं भगवान् शङ्कर के शिष्य हैं। कर्ण, उनके ही शिष्य हैं, जो अस्त्र विद्या में उनके ही तुल्य हैं। कर्ण, शिष्य के गुणों से सम्पन्न अपने गुरु परशुराम से भी बहुत सी बातों में अधिक हो रहा है, परन्तु यह अचम्भे की बात है, कि भीम ने उसे कैसे साधारण रीति से ही जीत लिया ॥१-२॥

यस्मिञ्जयाशा महती पुत्राणां मम सञ्जय।
तं भीमाद्विमुखं दृष्ट्वा किन्नु दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥३॥

हे सञ्जय! मेरे पुत्रों को तो कर्ण के विजयी होने की बड़ी आशा थी। उस कर्ण को ही जब उन्होंने युद्ध में विमुख देखा-तो राजा दुर्योधन ने क्या कहा ॥३॥

कथं च युयुधे भीमो वीर्यश्लाघी महाबलः।
कर्णो वा समरे तात किमकार्षीत्ततः परम्।
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥४॥

हे तात! अपने पराक्रम से शोभित महाबली भीम ने किस तरह युद्ध किया? इसके पीछे रण में कर्ण ने प्रज्वलित अग्नि के तुल्य भीमसेन को देखकर क्या किया? ॥४॥

सञ्जय उवाच— रथमन्यं समास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः।
अभ्ययात्पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः ॥५॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! इसके अनन्तर विधिपूर्वक रण सामग्री से सुसज्जित दूसरे रथ में बैठ कर कर्ण, वायु से उछले हुए समुद्र की भाँति भीमसेन पर झपटा ॥५॥

क्रुद्धमाधिरथिं दृष्ट्वा पुत्रास्तव विशाम्पते।
भीमसेनममन्यन्त वैश्वानरमुखे हुतम् ॥६॥

हे विशाम्पते! अधिरथपुत्र कर्ण को इस प्रकार क्रोधावि[ष्ट] देखकर तुम्हारे पुत्रों ने भीमसेन को अग्नि के मुख में गया हुआ ही समझा ॥६॥

चापशब्दं ततः कृत्वा तलशब्दं च भैरवम् ।
अभ्यद्रवत राधेयो भीमसेनरथं प्रति ॥७॥

अब कर्ण ने अपने धनुष की टंकार और उसके साथ ही करतल-ध्वनि करके बड़े वेग से भीमसेन के रथ पर आक्रमण किया ॥७॥

पुनरेव तयो राजन्घोर आसीत्समागमः ।
वैकर्तनस्य शूरस्य भीमस्य च महात्मनः ॥८॥
संरब्धौ हि महाबाहू परस्परवधैषिणौ ।
अन्योन्यमीक्षाञ्चक्राते दहन्ताविव लोचनैः ॥९॥

हे राजन्! इसके अनन्तर इन दोनों वीर, सूर्य-पुत्र कर्ण और महावीर भीमसेन में घमसान युद्ध होने लगा। ये दोनों वीर बड़े आवेश में भरे हुए एक दूसरे के वध की आकांक्षा कर रहे थे। इन्होंने अपनी २ जलती हुई आंखों से एक दूसरे को जलाते हुए परस्पर देखा ॥८-९॥

क्रोधरक्तेक्षणौ तीव्रौ निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
शूरावन्योन्यमासाद्य ततक्षतुररिन्दमौ ॥१०॥

इन दोनों की आंखें क्रोध से अत्यन्त लाल हो रहीं थीं। ये दोनों ही वीर, क्रुद्ध सर्प की भांति श्वास ले रहे थे। इन दोनों अरिमर्दन वीरों ने एक दूसरे को छेदना आरम्भ किया ॥१०॥

व्याघ्राविव सुसंरब्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ ।
शरभाविव संक्रुद्धौ युयुधाते परस्परम् ॥११॥

ये वीर, व्याघ्र की तरह आवेश में और शरभ की तरह क्रोध में भरे हुए थे। इन दोनों वीरों ने श्येन (बाज) पक्षी की भांति बड़े वेग से एक दूसरे पर आक्रमण किया ॥११॥

ततो भीमः स्मरन्क्लेशानक्षद्यूते वनेऽपि च ।
विराटनगरे चैव दुःखं प्राप्तमरिन्दमः ॥१२॥
राष्ट्राणां स्फीतरत्नानां हरणं च तवाऽऽत्मजैः ।
सततं च परिक्लेशान्सपुत्रेण त्वया कृतान् ॥१३॥

अब अरिमर्दन, भीम ने द्यूत और वन के क्लेश तथा विराट नगर के दुःखों का स्मरण किया एवं उत्तम २ रत्नों से युक्त राष्ट्रों का तुम्हारे पुत्रों द्वारा अपहरण कर लेना तथा पुत्र सहित तुम्हारे सदा दिये हुए क्लेशों का भी उसने स्मरण किया ॥१२-१३॥

दग्धुमैच्छश्च यः कुन्तीं सपुत्रां त्वमनागसम् ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं सभामध्ये दुरात्मभिः ॥१४॥
केशपक्षग्रहं चैव दुःशासनकृतं तथा ।
परुषाणि च वाक्यानि कर्णेनोक्तानि भारत ॥१५॥
पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तव ।
पतिता नरके पार्थाः सर्वे षण्ढतिलोपमाः ॥१६॥

तुमने निरपराध कुन्ती को लाक्षागृह में जला ही देना चाहा था। दुरात्मा तुम्हारे पुत्रों ने क्या सभा के मध्य में द्रौपदी को अत्यन्त क्लेशित नहीं किया? दुःशासन ने तो उसके बालों को ही पकड़ लिया था। हे भारत! कर्ण ने कितने कठोर वाक्य, उस समय

कहे थे, कि हे द्रौपदी ! तुम अन्य पति वर लो-ये अब तुम्हारे पति नहीं रहे हैं। ये तो सारे कुन्ती-पुत्र, पाण्डव, दुःख में निमग्न होकर नपुंसक जैसे-हो रहे हैं ॥१४-१६॥

समक्षं तव कौरव्य यदूचुः कौरवास्तदा ।
दासीभावेन कृष्णां च भोक्तुकामाः सुतास्तव ॥१७॥

हे कौरव्य ! कौरवों ने कुछ कहा था, वह सब तुम्हारे सन्मुख ही तो कहा था, वे तो द्रौपदी को दासी बनाकर भोगना चाहते थे।

यच्चापि तान्प्रव्रजतः कृष्णाजिननिवासिनः ।
परुषाण्युक्तवान्कर्णः सभायां सन्निधौ तव ॥१८॥

जब पाण्डव, कृष्णमृगचर्म धारण करके वन को चले, उस समय सभा में तुम्हारे समक्ष ही कर्ण ने क्या कुछ कम कहा था ॥१८॥

तृणीकृत्य यथा पार्थांस्तव पुत्रो ववल्ग ह ।
विषमस्थान्समस्थो हि संरब्धो गतचेतनः ॥१९॥

तुम्हारे पुत्र, दुर्योधन ने भी पाण्डवों को तृण के समान समझ कर बहुत कुछ बकवाद की थी। उस समय तुम्हारे पुत्र सुख में और पाण्डव विपत्ति में डूबे हुए थे । दुर्योधन को तो इतना आवेश था, कि वह तो क्रोध में अचेत सा हो रहा था ॥१९॥

बाल्यात्प्रभृति चाऽरिघ्नः स्वानि दुःखानि चिन्तयन्
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन वृकोदरः ॥२०॥

भीमसेन तो बचपन से ही अपने शत्रुओं का नाश करने वाला है। अब इसने अपने पूर्व के दुःखों का स्मरण किया। उन

दुःखों के कारण तो धर्मात्मा भीम को अपने जीवन में भी विरक्ति हो गई है ॥२०॥

ततो विस्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम् ।
चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात् ॥२१॥

अब भरतवंशश्रेष्ठ भीम ने सुवर्ण की पृष्ठवाले दुरासद महाधनुष को चढ़ाया और अपने प्राणों की परवाह न करके कर्ण पर आक्रमण किया ॥२१॥

स सायकमयैर्जालैर्भीमः कर्णरथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत्प्रभाम् ॥२२॥

भीमसेन ने कर्ण के रथ की ओर अपने बाणमय जाल को छोड़ा यह बाणों का समूह शिला-पर तीक्ष्ण किया हुआ इतना चमक रहा था, कि जिससे सूर्य की चमक भी फीकी दिखाई पड़ती थी।

ततः प्रहस्याऽधिरथिस्तूर्णमस्य शिलाशितैः ।
व्यधमद्भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः ॥२३॥

अब अधिरथ-पुत्र कर्ण ने हंसकर बड़ी शीघ्रता से शिला पर तीक्ष्ण किये गए बाणों से भीमसेन के बाणमय जाल को काट गिराया ॥२३॥

महारथो महाबाहुर्महाबाणैर्महाबलः ।
विव्याधाऽऽधिरथिर्भीमं नवभिर्निशितैस्तदा ॥२४॥

महारथी, महाबाहु, महाबली अधिरथ-पुत्र कर्ण ने नौ तीखे बाणों से भीमसेन को बींध डाला ॥२४॥

स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः।
अभ्यधावदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥२५॥

कर्ण के इन बाणों से तोत्र शस्त्र से हाथी की भांति आहत हुआ भीमसेन, बिना किसी घबराहट के सूत-पुत्र कर्ण पर झपटा।

तमापन्ततं वेगेन रभसं पाण्डवर्षभम्।
कर्णः प्रत्युद्ययौ युद्धे मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥२६॥

बड़े वेग से शीघ्रता के साथ पाण्डवश्रेष्ठ, भीमसेन को अपने ऊपर झपटता देखकर मदोन्मत्त हाथी पर दूसरे मदोन्मत्त हाथी की भांति रण में कर्ण बड़े वेग से संन्मुख आया ॥२६॥

ततः प्रध्माय जलजं भेरीशतसमस्वनम्।
अक्षुभ्यत बलं हर्षादुद्धूत इव सागरः ॥२७॥

अब कर्ण ने सैंकड़ों भेरी के समान शब्द करने वाले शङ्ख को बजाया, जिससे सारी सेना इस तरह खलबला उठी, जैसे-हर्ष से समुद्र उछलने लगता है ॥२७॥

तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा नागाश्वरथपत्तिमत्।
भीमः कर्णं समासाद्य च्छादयामास सायकैः ॥२८॥

हाथी, अश्व, रथ और पैदलों सहित उछलते हुए सेनासमूह को देखकर भीमसेन ने भी अपने बाणों से कर्ण को आच्छादित करना आरम्भ किया ॥२८॥

अश्वानृक्षसवर्णांश्च हंसवर्णैर्हयोत्तमैः।
व्यामिश्रयद्रणे कर्णः पाण्डवं छादयञ्छरैः ॥२९॥

रीछ के वर्ण के सदृश काले अश्वों को अपने हंसवर्ण के तुल्य श्वेत अश्वों से मिलाकर कर्ण ने रण में पाण्डु-पुत्र भीम को अपने बाणों से पाट दिया ॥२६॥

ऋक्षवर्णान्हयान्कर्कैर्मिश्रान्मारुतरंहसः ।
निरीक्ष्य तव पुत्राणां हाहाकृतमभूद्बलम् ॥३०॥

हे राजन् ! रीछ के सदृश वर्ण वाले, वायु के समान वेगशाली अश्वों से श्वेत अश्वों को टकराते देखकर तुम्हारे पुत्रों की सेना में हाहाकार मच गया ॥३०॥

ते हया बह्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
सितासिता महाराज यथा व्योम्नि बलाहकाः ॥३१॥

हे महाराज ! वायु के तुल्य वेग वाले काले और श्वेत अश्व मिलकर ऐसे सुशोभित होने लगे जैसें आकाश में काले और श्वेत मेघ मिल रहे हों ॥३१॥

संरब्धौ क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ ।
सन्त्रस्ताः समकम्पन्त त्वदीयानां महारथाः ॥३२॥

आवेश में भरे हुए, क्रोध से लाल २ आंखों वाले, कर्ण और भीमसेन को देखकर तुम्हारे पक्ष के महारथी संत्रासित होकर कांपने लगे ॥३२॥

यमराष्ट्रोपमं घोरमासीदायोधनं तयोः ।
दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ प्रेतराजपुरं यथा ॥३३॥

हे भरतश्रेष्ठ! अब इन दोनों वीर कर्ण और भीम का यमराष्ट्र के समान भयानक युद्ध होने लगा। वह यमराज के पुर के सदृश देखने में भी त्रास उत्पन्न करने वाला था ॥३३॥

समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा महारथाः।
नाऽलक्षयञ्जयं व्यक्तमेकस्यैव महारणे ॥३४॥

इस युद्ध को वीर महारथी अद्भुत नाटक की भांति देखने लगे। इस महारण में कोई किसी एक की विजय का प्रथम ही अनुमान नहीं लगा सकता था ॥३४॥

तयोः प्रैक्षन्त संमर्दं सन्निकृष्टं महास्त्रयोः।
तवदुर्मन्त्रिते राजन्सपुत्रस्य विशाम्पते ॥३५॥

हे विशाम्पते! इन महाअस्त्रधारी, वीर भीम और कर्ण के सामने होते हुए युद्ध को वीर लोग देखने लगे, जो पुत्र सहित तुम्हारी दुर्मन्त्रणा का फल था ॥३५॥

छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यं सायकैः शितैः।
शरजालावृतं व्योम चक्रातेऽद्भुतविक्रमौ ॥३६॥

ये शत्रु-नाशक वीर, अपने तीक्ष्ण बाणों से एक दूसरे को आच्छादित कर रहे थे। इन अद्भुत पराक्रमी वीरों ने सारे आकाश को बाणसमूह से ढक सा दिया ॥३६॥

तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ॥३७॥

ये दोनों महारथी अपने २ तीक्ष्ण बाणों से एक दूसरे को मार रहे थे। जो देखने में इतने सुन्दर प्रतीत होते थे, जैसे वर्षा करने वाले मेघ सुन्दर दिखाई देते हैं ॥३७॥

सुवर्णविकृतान्बाणान्विमुञ्चन्तावरिन्दमौ ।
भास्वरं व्योम चक्राते महोल्काभिरिव प्रभो ॥३८॥

हे प्रभो ! ये दोनों अरिमर्दन वीर, छोड़े हुए सुवर्ण चित्रित बाणों से आकाश को बड़ी २ उल्काओं से चमकता हुआ सा बना रहे थे ॥३८॥

ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन्गार्ध्रपत्राश्चकाशिरे ।
श्रेण्यः शरदि मत्तानां सारसानामिवाऽम्बरे ॥३९॥

हे राजन् ! गृद्ध पक्षी के पंखों से सुशोभित उनके छोड़े हुए बाण, आकाश में मस्त सारसों की पंक्ति सी दिखाई देती थी ॥३९॥

संसक्तं सूतपुत्रेण दृष्ट्वा भीममरिन्दमम् ।
अतिभारममन्येतां भीमे कृष्णधनञ्जयौ ॥४०॥

अरिन्दम भीमसेन को सूत-पुत्र के साथ युद्ध करता देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन भीमसेन पर अधिक भार आया हुआ समझ रहे थे ॥४०॥

तत्राऽऽधिरथिभीमाभ्यां शरैर्मुक्तैर्दृढं हताः ।
इषुपातमतिक्रम्य पेतुरश्वनरद्विपाः ॥४१॥

अब कर्ण और भीम के द्वारा छोड़े हुए बाणों से आहत, अश्व नर और हाथी, बाण के लगते ही पृथ्वी में लोटने लगते थे ॥४१॥

पतद्भिः पतितैश्चाऽन्यैर्गतासुभिरनेकशः ।

कृतो राजन्महाराज पुत्राणां ते जनक्षयः ॥४२॥

हे राजराजेश्वर ! इस समय गिरे हुए या गिरते हुए और अनेक मरे हुए सैनिकों का तुम्हारे पुत्रों के कारण बड़ा भारी संहार हुआ ॥४२॥

मनुष्याश्वगजानां च शरीरैर्गतजीवितैः ।

क्षणेन भूमिः सञ्जज्ञे संवृता भरतर्षभ ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

हे भरतर्षभ ! इस समय मनुष्य, अश्व और गजों के प्राण-हीन शरीरों से क्षण भर में रणभूमि व्याप्त हो गई ॥४३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भीम और कर्ण
के युद्ध का एक सौ बत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ



एक सौ तेतीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

अत्यद्भुतमहं मन्ये भीमसेनस्य विक्रमम् ।
यत्कर्णं योधयामास समरे लघुविक्रमम् ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे तात ! मैं भीमसेन के पराक्रम को अत्यन्त अद्भुत समझता हूं; जो बड़े फुर्तीले, महापराक्रमी कर्ण से युद्ध करने में समर्थ हो सका ॥१॥

त्रिदशानपि वा युक्तान्सर्वशस्त्रधरान्युधि ।
वारयेद्यो रणे कर्णः सयक्षासुरमानुषान् ॥२॥
स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया ।
नातरत्संयुगे पार्थं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥३॥

हे सञ्जय ! कर्ण रण में यक्ष, असुर और मनुष्यों के सहित सारे शस्त्रधारी देवों को भी जीत सकता है । वही कर्ण, युद्ध-लक्ष्मी से देदीप्यमान पाण्डु-पुत्र भीम को रण में कैसे नहीं जीत सका-यह मुझे बताओ ॥२-३॥

कथं च युद्धं सम्भूतं तयोः प्राणदुरोदरे ।
अत्र मन्ये समायत्तो जयो वाऽजय एव च ॥४॥

इन दोनों का इस युद्ध में प्राणों का दांव लग रहा था । इस समय इनका कैसा युद्ध हुआ । मेरे विचार में तो जय या पराजय का निर्णय इन दोनों के युद्ध से ही हो जाना चाहिए ॥४॥

कर्णं प्राप्य रणे सूत मम पुत्रः सुयोधनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान्सगोविन्दान्ससात्वतान् ॥५॥

हे सूत ! इसी कर्ण के आश्रय से तो मेरा पुत्र दुर्योधन, श्रीकृष्ण और सात्यकि के सहित सारे पाण्डवों को जीत लेना चाहता है ॥५॥

श्रुत्वा तु निर्जितं कर्णमसकृद्भीमकर्मणा ।
भीमसेनेन समरे मोह आविशतीव माम् ॥६॥

भीम कर्म कर दिखाने वाले भीम द्वारा बार २ रण में कर्ण का जीत लेना सुनकर तो मेरे चित्त में मोह (बेहोशी) सा बढ़ता जाता है ॥६॥

विनष्टान्कौरवान्मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः ।
नहि कर्णो महेष्वासान्पार्थाञ्जेष्यति सञ्जय ॥७॥

हे सञ्जय ! मेरे पुत्रों की दुर्नीति से मैं तो अब कौरवों को नष्ट ही समझता हूँ । अब मुझे तो निश्चय हो गया, कि महाधनुर्धर कर्ण, पाण्डवों को जीत नहीं सकेगा ॥७॥

कृतवान्यानि युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैः सह ।
सर्वत्र पाण्डवाः कर्णमजयन्त रणाजिरे ॥८॥

जहां २ कर्ण ने पाण्डवों के साथ युद्ध किए, सब जगह रणस्थल में पाण्डवों ने ही कर्ण को जीत लिया है ॥८॥

अजेयाः पाण्डवास्तात देवैरपि स वासवैः ।
न च तद् बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥९॥

हे तात ! पाण्डव तो रण में इन्द्र सहित देवों से भी नहीं जीते जा सकते हैं। इस बात को मेरा यह मूर्ख पुत्र दुर्योधन नहीं समझ पाता है ॥९॥

धनं धनेश्वरस्येव हृत्वा पार्थस्य मे सुतः ।
मधुप्रेप्सुरिवाऽबुद्धिः प्रपातं नाऽवबुध्यते ॥१०॥

कुन्ती-पुत्र धर्मराज के धन को धनेश्वर कुबेर के धन की भांति अपहरण करके मधु के लालची मूर्ख पुरुष की तरह मेरा पुत्र भी अपने पतन को नहीं जान रहा है ॥१०॥

निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनाम् ।
जितमित्येव मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥११॥

महावीर पाण्डवों के राज्य को छल में कुशल दुर्योधन, छल से छीन कर जीता हुआ मानता है और इसी घमण्ड पर पाण्डवों का अपमान करता रहता है ॥११॥

पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाऽप्यकृतात्मना ।
धर्मे स्थिता महात्मानो निकृताः पाण्डुनन्दनाः ॥

पुत्र के स्नेह से कातर मुझ मूर्ख ने भी धर्म में स्थित, महात्मा पाण्डु-पुत्रों का यथासमय तिरस्कार ही किया है ॥१२॥

शमकामः ससोदर्यो दीर्घप्रेची युधिष्ठिरः ।
अशक्त इति मत्वा तु मम पुत्रैर्निराकृतः ॥१३॥

अपने सारे भाइयों के साथ राजा युधिष्ठिर तो सन्धि करना चाहता था, क्योंकि वह दीर्घदर्शी है, परन्तु मेरे पुत्रों ने तो उसे अशक्त समझ कर सर्वदा उसका निरादर ही किया है ॥१३॥

तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च सर्वशः ।
हृदि कृत्वा महाबाहुर्भीमोऽयुध्यत सूतजम् ॥१४॥

उन सारे दुःख और सब ओर से किए गए तिरस्कारों का ध्यान करते ही महाबाहु, भीमसेन सूतपुत्र कर्ण से लड़ने में समर्थ हो सकते हैं ॥१४॥

तस्मान्मे सञ्जय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे ।
अयुध्येतां युधि श्रेष्ठौ परस्परवधैषिणौ ॥१५॥

हे सञ्जय ! अब तुम मुझे परस्पर एक दूसरे के मार देने के अभिलाषी कर्ण और भीमसेन का युद्ध सुनाओ। ये दोनों ही वीर बड़े योद्धा हैं । उन्होंने जैसे संग्राम में हाथ दिखाये उनका वर्णन करो ॥१५॥

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्यथा वृत्तं संग्रामं कर्णभीमयोः ।
परस्परवधप्रेप्स्वोर्वनकुञ्जरयोरिव ॥१६॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! वन के दो मदोन्मत्त हाथियों की तरह एक दूसरे के वध के इच्छुक, कर्ण और भीमसेन का जो संग्राम हुआ, तुम उसको सुनो ॥१६॥

राजन्वैकर्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिन्दमम् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिंशता शरैः ॥१७॥

हे राजन् ! क्रोधातुर हुए, सूर्यपुत्र, कर्ण ने क्रोधाविष्ट, अरि-मर्दन, महापराक्रमी, भीम को तीस बाण मार कर क्षत-विक्षत कर दिया ॥१७॥

महावेगैः प्रसन्नाग्रैः शातकुम्भपरिष्कृतैः ।
अहनद्भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्तनः शरैः ॥१८॥

हे भरतश्रेष्ठ ! महावेगशाली, चमकदारनोक वाले, सुवर्ण से सुशोभित्त बाणों से सूर्य-पुत्र कर्ण ने भीम को आहत कर दिया ॥१८॥

तस्याऽस्यतो धनुर्भीमश्चकर्त निशितैस्त्रिभिः ।
रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनाऽपातयत्क्षितौ ॥१९॥

जब कर्ण लगातार बाण फेंक रहे थे, तो भीम ने भी एक बाण मार कर कर्ण के धनुष को काट दिया और फिर दूसरा तीक्ष्ण बाण मार कर सारथि को रथ की बैठक से भूमि में गिरा दिया ॥१९॥

स काङ्क्षन्भीमसेनस्य वधं वैकर्तनो भृशम् ।
शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां परामृशत् ॥२०॥

सूर्य-पुत्र कर्ण, बड़ी शीघ्रता से भीमसेन का वध कर देना चाहता था । अब उसने सुवर्ण और नीलमणि से विचित्र दण्ड वाली शक्ति को उठाया ॥२०॥

प्रगृह्य च महाशक्तिं कालशक्तिमिवाऽपराम् ।
समुत्क्षिप्य च राधेयः सन्धाय च महाबलः ॥२१॥
चिक्षेप भीमसेनाय जीवितान्तकरीमिव ।

दूसरी कालशक्ति के समान भीषण, महाशक्ति को ग्रहण करके और ऊपर उठाकर महाबली कर्ण ने उसे सीधी तान लिया तथा शत्रु के जीवन को अन्त कर देने वाली, इस शक्ति को उसने भीमसेन पर छोड़ा ॥२१॥

शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरन्दर इवाऽशनिम् ॥२२॥
ननाद सुमहानादं बलवान्सूतनन्दनः ।
तं च नादं ततः श्रुत्वा पुत्रास्ते हर्षिताऽभवन् ॥२३॥

राधा-पुत्र, सूतनन्दन, बलवान् कर्ण ने वज्र को इन्द्र की तरह इस शक्ति को फैंककर बड़े जोर से गर्जना की। कर्ण के इस सिंहनाद को सुनकर तुम्हारे पुत्र बड़े ही प्रसन्न हुए॥२२-२३॥

तां कर्णभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम् ।
शक्तिं वियति चिच्छेद भीमः सप्तभिराशुगैः ॥२४॥

कर्ण की भुजाओं से फैंकी गई, सूर्य और अग्नि के समान प्रदीप्त, उस शक्ति को भीमसेन ने सात बाण छोड़कर आकाश में ही काट डाला ॥२४॥

छित्त्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसन्निभाम् ।
मार्गमाण इव प्राणान्सूतपुत्रस्य मारिष ॥२५॥

प्राहिणोत्कृतसंरम्भः शरान्बर्हिणवाससः ।
स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाधौतान्यमदण्डोपमान्मृधे ॥२६॥

हे आर्य ! कांचुली से रहित सर्प के समान भीषण, शक्ति का छेदन करके सूत-पुत्र कर्ण के प्राणों को खोजता हुआ सा भीमसेन आवेश में भरकर मोर पंख से सुशोभित बाणों को रण में कर्ण पर छोड़ने लगा। ये बाण, स्वर्णजटित मूल से सुशोभित, शिला पर तेज किये गए, यमदण्ड के समान भयङ्कर थे ॥२५-२६॥

कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
विकृष्य तन्महच्चापं व्यसृजत्सायकांस्तदा ॥२७॥

हे महाराज ! कर्ण ने भी सुवर्ण की पीठवाले दुरासद दूसरे धनुष को उठाया और वह उस महाधनुष को खैंचकर बाणवर्षा करने लगा ॥२७॥

तान्पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः ।
वसुषेणेन निर्मुक्तान्नव राजन्महाशरान् ॥२८॥
छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवाऽनदत् ।

हे राजन् ! पाण्डु-पुत्र भीम ने अपने नतपर्ववाले नौ बाणों से वसुषेण (कर्ण) के द्वारा छोड़े गये। बड़े २ बाणों को काटकर सिंह के सदृश गर्जना की ॥ २८॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ॥२६॥
शार्दूलाविव चाऽन्योन्यमामिषार्थेऽभ्यगर्जताम् ।

ये दोनों बलवान् वीर इस तरह गर्जना कर रहे थे जैसे गर्भ धारण के निमित्त आई हुई गौ के कारण दो वृषभ गर्जते हैं तथा माँस के लिये एक दूसरे की ओर सिंह की तरह घुर्रा रहे थे ॥२९॥

अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्याऽन्तरैषिणौ ॥३०॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ ।

ये दोनों वीर, एक दूसरे पर प्रहार करना चाहते थे और एक दूसरे की भूल का मौका ताक रहे थे। गोष्ठ में लड़ने के लिये देखते हुए दो सांडों की तरह ये भी एक दूसरे को देख रहे थे ॥३०॥

महागजाविवाऽऽसाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ॥३१॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।

हे राजन्! दो बड़े २ हाथी, एक दूसरे के सन्मुख पहुंच कर जैसे परस्पर एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे हों, इसी तरह बड़ी लम्बी तौर से धनुष को खैंचकर वे वीर, बाणों से एक दूसरे को मारने लगे ॥३१॥

निर्दहन्तौ महाराज शस्त्रवृष्ट्या परस्परम् ॥३२॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ कोपाद्विवृतलोचनौ ।

हे महाराज! ये दोनों महारथी इस ढंग से शस्त्रवर्षा कर रहे थे, जैसे एक दूसरे को जला देना चाहते हों। ये दोनों महावीर क्रोध से आंखें चढ़ाकर एक दूसरे को देखने लगे ॥३२॥

प्रहसन्तौ तथाऽन्योन्यं भर्त्सयन्तौ मुहुर्मुहुः ॥३३॥
शङ्खशब्दं च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम्।

ये एक दूसरे की हंसी कर रहे थे और बार २ एक दूसरे को फटकार रहे थे। समय २ पर शंख बजाकर फिर ये लोग, युद्ध में जुट जाते थे ॥३३॥

तस्य भीमः पुनश्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ॥३४॥
शङ्खवर्णांश्च तानश्वान्बाणैर्निन्ये यमक्षयम्।
सारथिं च तथाऽप्यस्य रथनीडादपातयत् ॥३५॥
ततो वैकर्तनः कर्णश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम्।

हे आर्यगुणसम्पन्न! अब भीमसेन ने कर्ण के धनुष को मुष्टि के पास से काट डाला और शंख के तुल्य वर्णवाले कर्ण के अश्वों को बाणों से यम के घर पहुंचा दिया तथा इसके सारथि को भी मारकर रथ की बैठक से नीचे गिरा दिया। इस घटना से सूर्य-पुत्र कर्ण को बड़ी गम्भीर चिन्ता उत्पन्न हो गई ॥३४-३५॥

स च्छाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥३६॥
मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाऽभ्यपद्यत।

जब कर्ण के अश्व और सारथि मारे गये और स्वयं भी रण में बाणों से व्याप्त हो गया, तो बाणजाल से मोहित हुए उस कर्ण को आगे कुछ भी कर्तव्य नहीं सूझ पड़ा ॥३६॥

तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः ॥३७॥
वेपमान इव क्रोधाद्व्यादिदेशाऽथ दुर्जयम्।

गच्छ दुर्जय राधेयं पुरो ग्रसति पाण्डवः ॥३८॥
जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् ।

राजा दुर्योधन ने जब कर्ण को कठिनाई में उलझा हुआ देखा, तो क्रोध से कांपते हुए उसने भ्राता दुर्जय से कहा- हे दुर्जय ! तुम राधा-पुत्र कर्ण की रक्षा के लिये पहुंचो-नहीं तो पाण्डु-पुत्र भीमसेन उसे अभी मार देता है। अब तुम नवयुवक (छोटी २ मूछ वाले) भीम का शीघ्र वध करके कर्ण के बल को बढ़ाओ ॥३८॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रं तवाऽऽत्मजः ॥३९॥
अभ्यद्रवद्भीमसेनं व्यासक्तं विकिरञ्छरैः ।

जब तुम्हारे बड़े पुत्र दुर्योधन ने दुर्जय से इतना कहा, तो वह उसकी आज्ञा को मान कर बाणवर्षा करता हुआ युद्ध में लगे हुए भीमसेन पर आक्रमण करने लगा ॥३९॥

स भीमं नवभिर्बाणैरश्वानष्टभिरार्पयत् ॥४०॥
षड्भिः सूतं त्रिभिः केतुं पुनस्तं चापि सप्तभिः ।

दुर्जय ने नौ बाण छोड़कर भीम को और आठ बाणों से अश्वों को आहत किया तथा छः बाण मारकर सारथि, तीन बाणों से ध्वजा और सात बाणों से फिर भीम को क्षत-विक्षत कर दिया ॥४०॥

भीमसेनोऽपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ॥४१॥
दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद्यमसादनम् ।

हे राजन् ! भीमसेन भी क्रोध में भर गया। उसने आशुगामी बाण छोड़कर अश्व और सारथि को मारकर तथा दुर्जय के मर्म स्थानों में प्रहार करके उसको यमराज के घर भेजा ॥४१॥

स्वलंकृतं क्षितौ क्षुण्णं चेष्टमानं यथोरगम् ॥४२॥
रुदन्नार्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् ।

आभूषणों से विभूषित, सर्प की तरह पृथ्वी में बल खाते हुए देख कर रोते हुए दुःखी कर्ण ने उसकी प्रदक्षिणा की ॥४२॥

स तु तं विरथं कृत्वा स्मयन्नत्यन्तवैरिणम् ॥४३॥
समाचिनोद्बाणगणैः शतघ्नीभिश्च शंकुभिः ।

हे महाराज ! भीमसेन ने अपने अत्यन्त वैरी कर्ण को रथ-हीन करके शतघ्नी, शंकु और बाणसमूह से पाट दिया ॥४३॥

तथाऽप्यतिरथः कर्णो भिद्यमानोऽस्य सायकैः ॥४४॥
न जहौ समरे भीमं क्रुद्धरूपं परन्तपः ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णभीमयुद्धे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

यद्यपि भीमसेन के बाणों से कर्ण का सारा शरीर छिद गया था, तो भी शत्रुतापी कर्ण ने रण में क्रोध में भरे हुए भीम का सामना नहीं छोड़ा ॥४४-४५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में कर्ण और भीम के युद्ध का एक सौ तेतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

—:o:—

एक सौ चौतीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सर्वथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः ।
रथमन्यं समास्थाय पुनर्विव्याध पाण्डवम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! इस प्रकार रथ से हीन हुए कर्ण को भीमसेन ने जीत लिया, परन्तु वह फिर दूसरे रथ पर बैठकर पाण्डु-पुत्र भीमसेन को बाणों से विद्ध करने लगा ॥१॥

महागजाविवाऽऽसाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥२॥

इस समय ये दोनों वीर, मदोन्मत्त हाथियों की तरह अपने दांतों से टक्कर मारते हुए एक दूसरे से भिड़ रहे थे। ये अत्यन्त तीव्र खैंचे हुए धनुषों से छोड़े हुए बाणों द्वारा एक दूसरे को आहत करने लगे ॥२॥

अथ कर्णः शरव्रातैर्भीमसेनं समार्पयत् ।
ननाद च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि ॥३॥

अब कर्ण ने अपने शरसमूह से भीमसेन को आच्छादित कर दिया और बड़ी घोर गर्जना करते हुए भीमसेन की छाती में फिर बाण मारा ॥३॥

तं भीमो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥४॥

भीमसेन ने भी सीधे गमन करने वाले अपने दश बाणों से कर्ण को आहत किया और फिर एकदम नतपर्व वाले सत्तर बाण छोड़ कर भीमसेन को वींध दिया ॥४॥

कर्णं तु नवभिर्भीमो भित्त्वा राजंस्तनान्तरे ।
ध्वजमेकेन विव्याध सायकेन शितेन ह ॥५॥

हे राजन् ! भीमसेन ने कर्ण के वक्षस्थल में नौ बाण मारे और तीक्ष्ण बाण मारकर उसने कर्ण की ध्वजा को भी काट गिराया ॥५॥

सायकानां ततः पार्थस्त्रिषष्ट्या प्रत्यविध्यत ।
तोत्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ॥६॥

इसके अनन्तर भीमसेन ने तरेसठ बाण कर्ण पर इस भीषण ढंग से छोड़े जैसे हाथी पर तोमर और अश्वों पर कशा (हण्टर) का आघात कर दिया हो ॥६॥

सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सृक्किणी संलिहन्वीरः क्रोधरक्तान्तलोचनः ॥७॥

हे महाराज ! यशस्वी पाण्डु-पुत्र भीमसेन-द्वारा अत्यन्त आहत हुआ वीरप्रवर कर्ण भी क्रोध से अपने होठ काटने लगा और इसकी आंखें लाल हो गईं ॥७॥

ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय बलायेन्द्र इवाऽशनिम् ॥८॥

हे महाराज ! अब कर्ण ने सारे शरीर को भेद कर निकल जाने वाला बाण उठाया और उसे इस तरह भीमसेन पर छोड़ा जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर पर वज्र फैंका हो ॥८॥

स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः ।
अगच्छद्दारयन्भूमिं चित्रपुङ्खः शिलीमुखः ॥९॥

सूतपुत्र कर्ण के धनुष से निकला हुआ विचित्र मूलधारी बाण, रण में कुन्ती-पुत्र भीम को वींध कर पृथ्वी को चीरता हुआ भीतर घुस गया ॥९॥

ततो भीमो महाबाहुः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
वज्रकल्पां चतुष्किष्कुं गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम् ॥१०॥
प्राहिणोत्सूतपुत्राय षडस्रामविचारयन् ।

अब महाबाहु भीमसेन की क्रोध से आंखें लाल हो उठीं। उसने चार किष्कु (चार हाथ) लम्बी वज्र-तुल्य सुवर्ण से अलंकृत शिरोभाग पर छः कली धारण करने वाली भारी गदा को सूत-पुत्र कर्ण पर फैंका ॥१०॥

तया जघानाऽऽधिरथेः सदश्वान्साधुवाहिनः ॥११॥
गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवाऽसुरान् ।

इस समय भरतवंशोद्भव भीमसेन बहुत ही कुपित हो रहे थे। उन्होंने उस गदा से अधिरथ-पुत्र कर्ण के रथ में सुचारु रीति से चलने वाले अश्वों को इस तरह मार गिराया, जैसे इन्द्र वज्र द्वारा असुरों को मार गिराता है ॥११॥

ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ ॥१२॥
ध्वजमाधिरथेश्छित्वा सूतमभ्यहनच्छरैः ।

हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर महाभुजधारी भीमसेन ने छुरे के सदृश दो तीक्ष्ण बाणों से अधिरथ-पुत्र कर्ण की ध्वजा को काट गिराया और फिर अनेक बाण छोड़कर सारथि को भी आहत कर दिया ॥१२॥

हताश्वसूतमुत्सृज्य स रथं पतितध्वजम् ॥१३॥
विस्फारयन्धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः ।

हे भारत ! जब अश्व और सारथि मर गए-ध्वजा कटकर नीचे गिर गई, तो कर्ण ने अपने उस रथ को छोड़ दिया । अब वह अपने धनुष को खैंचता हुआ रणभूमि में खड़ा हो गया, परन्तु इसका मन बहुत ही उदास हो रहा था ॥१३॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ॥१४॥
विरथो रथिनां श्रेष्ठो वारयामास यद्रिपुम ।

हे राजन् ! इस समय राधा-पुत्र कर्ण का अलौकिक पराक्रम देखा गया, जो रथिप्रवर रथहीन होकर भी अपने बलवान् शत्रु भीमसेन को रोके रहा ॥१४॥

विरथं तं नरश्रेष्ठं दृष्ट्वाऽऽधिरथिमाहवे ॥१५॥
दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम् ।

हे राजन् ! इस समय रण में रथहीन, रथिप्रवर अधिरथ-पुत्र कर्ण को देखकर राजा दुर्योधन अपने भाई दुर्मुख से बोला ॥१५॥

एष दुर्मुख राधेयो भीमेन विरथीकृतः ॥१६॥

तं रथेन नरश्रेष्ठं सम्पादय महारथम् ।

हे दुर्मुख ! राधापुत्र कर्ण को भीमसेन ने रथहीन कर दिया है। हे महावीर ! तुम जाओ और इस नर-श्रेष्ठ महारथी कर्ण को रथ से संयुक्त कर दो ॥१६॥

ततो दुर्योधनवचः श्रुत्वा भारत दुर्मुखः ॥१७॥

त्वरमाणोऽभ्ययात्कर्णं भीमं चाऽवारयच्छरैः ।

हे भारत ! राजा दुर्योधन के इतने वचन सुनकर तुम्हारा पुत्र दुर्मुख, बड़ी शीघ्रता से कर्ण की ओर दौड़ा और उसने अपनी बाणवर्षा से भीमसेन को आच्छादित कर दिया ॥१७॥

दुर्मुखं प्रेक्ष्य संग्रामे सूतपुत्रपदानुगम् ॥१८॥

वायुपुत्रः प्रहृष्टोऽभूत्सृक्किणी परिसंलिहन् ।

अब सूत-पुत्र कर्ण की सहायता में आये हुए दुर्मुख को रणाङ्गण में देखकर वायु-पुत्र भीमसेन बड़ा प्रसन्न हुआ और वह क्रोध से अपने होठों के प्रान्त चाटने लगा ॥१८॥

ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः ॥१९॥

दुर्मुखाय रथं तूर्णं प्रेषयामास पाण्डवः ।

हे महाराज ! अब पाण्डु-पुत्र भीमसेन, अपने बाणों से कर्ण को रोकता हुआ बड़ी शीघ्रता से दुर्मुख की ओर अपने रथ के द्वारा झपटा ॥१९॥

तांस्मन्क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ॥२०॥

सुमुखैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।

हे राजन् ! इसी समय झुके पर्ववाले, तीक्ष्ण नोकधारी नौ बाण भीमसेन ने छोड़े, जिनसे उसने दुर्मुख को यमराज के घर पहुंचा दिया ॥२०॥

ततस्तमेवाऽऽधिरथिः स्यन्दनं दुर्मुखे हते ॥२१॥

आस्थितः प्रबभौ राजन्दीप्यमान इवांऽशुमान् ।

हे राजेन्द्र ! जब दुर्मुख मारा गया, तो कर्ण उसके ही रथ में चढ़ गया। वह इस समय ऐसा प्रतीत होने लगा—जैसे उदय होता हुआ सूर्य चमकता है ॥२१॥

शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम् ॥२२॥

दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाऽभ्यवर्तत ।

हे नृप ! रक्त में भीगे हुये मर्म स्थानों में छिन्नभिन्न दुर्मुख को रणभूमि में पड़े देखकर कर्ण की आंखों में आंसू भर आये और वह थोड़ी देर तक कुछ भी नहीं कर सका ॥२२॥

तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम् ॥२३॥

दीर्घमुष्णं श्वसन्वीरो न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ।

अब कर्ण ने उसकी परिक्रमा की, परन्तु वह वीर उस मृतक दुर्मुख को उलांघ कर आगे कुछ भी करने में समर्थ न हो सका। वह तो इस समय केवल उष्ण और लम्बे २ श्वाँस छोड़ रहा था।

तस्मिंस्तु विवरे राजन्नाराचान्गार्ध्रवाससः ॥२४॥
प्राहिणोत्सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश ।

हे राजन् ! इसी अवसर को पाकर भीमसेन ने गृध्र पक्षी की पंखों से सुशोभित चौदह बाण सूत-पुत्र कर्ण पर छोड़े ॥२४॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा स्वर्णचित्रं महौजसः ॥२५॥
हेमपुङ्खा महाराज व्यशोभन्त दिशो दश ।

हे महाराज ! इन सुवर्ण पङ्खधारी बाणों ने महा ओजस्वी कर्ण के सुवर्ण से चिचित्र कवच को बींध डाला और दशों दिशाओं को सुशोभित कर दिया ॥२५॥

अपिबन्सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः ॥२६॥
क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजङ्गाः कालचोदिताः ।

हे मनुजाधिप ! ये काल से प्रेरित क्रुद्ध सर्पों के तुल्य भीषण बाण, सूत-पुत्र कर्ण के रक्त को चाट गए ॥२६॥

प्रसर्पमाणा मेदिन्यां ते व्यरोचन्त मार्गणाः ॥२७॥
अर्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः ।

ये बाण, कर्ण के शरीर में आधे घुस गए, जो ऐसे दिखाई पड़े, जैसे बड़े २ सर्प, बिल में आधे घुसे हुए क्रोध से बल खा रहे हों ॥२७॥

तं प्रत्यविध्यद्राधेयो जाम्बूनदविभूषितैः ॥२८॥
चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरविचारयन् ।

अब कर्ण भी झल्ला उठा-उसने न कुछ सोचा न विचारा और सुवर्ण से विभूषित, अत्यन्त उग्र चौदह बाण भीमसेन पर छोड़े ॥२८॥

ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥२९॥
प्राविशन्मेदिनीं भीमाः क्रौञ्चं पत्ररथा इव ।

ये भीषण बाण, भीमसेन की दांयी भुजा को चीर कर पृथ्वी में ऐसे प्रविष्ट होगए, जैसे-हंस, क्रौंच पर्वत में घुस जाते हैं ॥२९॥

ते व्यरोचन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुन्धराम् ॥३०॥
गच्छत्यस्तं दिनकरे दीप्यमाना इवांऽशवः ।

ये पृथिवी में घुसे हुए बाण, इस तरह सुशोभित होते थे, जैसे-अस्त होते हुए सूर्य की किरणें चमकती हों ॥३०॥

स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥३१॥
सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतः सलिलं यथा ।

हे राजन्! कर्ण के मर्म भेदी बाणों से विंधे हुए भीमसेन के शरीर से रुधिर की धारा पर्वत से जलधारा के सदृश बह निकली ॥३१॥

स भीमस्त्रिभिरायत्तः सूतपुत्रं पतत्रिभिः ॥३२॥
सुपर्णवेगैर्विव्याध सारथिं चाऽस्य सप्तभिः ।

अब भीमसेन ने सावधान होकर सूत-पुत्र कर्ण पर तीन बाण छोड़े और गरुड़ के तुल्य वेग वाले अन्य सात बाण छोड़कर कर्ण के सारथि को बींध दिया ॥३२॥

स विह्वलो महाराज कर्णो भीमशराहतः ॥३३॥

प्राद्रवज्जवनैरश्वै रणं हित्वा महाभयात् ।

हे महाराज ! भीमसेन के बाणों से आहत हुए महारथी कर्ण व्याकुल हो उठे और वे भयातुर होकर अपने वेगशाली अश्वों से रण छोड़कर बाहर निकल गए ॥३३॥

भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमपरिष्कृतम् ॥३४॥

आहवेऽतिरथोऽतिप्रज्ज्वलन्निव हुताशनः ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां

द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णापयाने

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३४॥

अब महारथी भीमसेन, अपना सुवर्ण भूषित धनुष खैंचकर खड़ा हो गया, जो रणाजिर में प्रज्वलित अग्नि की तरह दिखाई देने लगा ॥३४-३५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में कर्ण पराजय का एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

—:*:—

एक सौ पैंतीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ।

यत्राऽऽधिरथिरायत्तो नाऽतरत्पाण्डवं रणे ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय ! मैं तो आज दैव को ही बलवान् मानने लग गया, क्योंकि मुझे पुरुषार्थ निरर्थक प्रतीत होता है । ऐसे पुरुषार्थ को धिक्कार है। तुम देखते नहीं हो, कि जिसके कारण महा बलवान कर्ण भी भीमसेन को रण में नहीं जीत सका ॥१॥

कर्णः पार्थान्सगोविन्दाञ्जेतुमुत्सहते रणे ।

न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि कञ्चन ॥२॥

इति दुर्योधनस्याऽहमश्रौषं जल्पतो मुहुः ।

कर्ण तो श्रीकृष्ण सहित सारे पाण्डवों को रण में जीतने में समर्थ है। मैं कर्ण के तुल्य किसी भी वीर को संसार में नहीं देखता हूं—इस प्रकार दुर्योधन को कहते हुए मैंने बार २ सुना है।

कर्णो हि बलवाञ्छूरो दृढधन्वा जितक्लमः ॥३॥

इति मामब्रवीत्सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ।

हे सूत ! कर्ण बड़ा बलवान, शूरवीर, दृढ़ धनुषधारी और युद्ध में श्रम नहीं मानने वाला है। इस तरह की बातें दुर्योधन ने मुझे कई बार कही हैं ॥३॥

असुपेणसहायं मां नाऽलं देवाऽपि संयुगे ॥४॥
किं नु पाण्डुसुता राजन्गतसत्त्वा विचेतसः ।

हे राजन् ! कर्ण के सहायक होने पर मुझे देवता भी रण में जीतने में समर्थ नहीं हैं, फिर बलहीन, उदासीन पाण्डव, मुझे कैसे जीत सकते हैं ॥४॥

तत्र तं निर्जितं दृष्ट्वा भुजङ्गमिव निर्विषम् ॥५॥
युद्धात्कर्णमपक्रान्तं किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

हे सूत ! इस प्रकार कर्ण के विष हीन सर्प की भांति होकर पराजित हो जाने और रण से भाग जाने पर राजा दुर्योधन ने क्या कहा ? ॥५॥

अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशारदम् ॥६॥
प्रावेशयद् धुतवहं पतङ्गमिव मोहितः ।

बड़े दुःख की बात है, कि युद्धविद्या के दावपेचों को अच्छी तरह नहीं जानने वाले, अकेले दुर्मुख को दुर्योधन ने घबरा कर अग्नि में पतङ्ग की तरह झोंक दिया ॥६॥

अश्वत्थामा मद्रराजः कृपः कर्णश्च सङ्गताः ॥७॥
न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं नूनं भीमस्य सञ्जय ।
तेऽपि चाऽस्य महाघोरं बलं नागायुतोपमम् ॥८॥
जानन्तो व्यवसायं च क्रूरं मारुततेजसः ।

हे सञ्जय ! इस भीमसेन के सन्मुख तो अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, कृप और कर्ण इकट्ठे होकर भी नहीं ठहर सकते-

यह निश्चय बात है। ये लोग, दश सहस्र हाथियों के बल से सम्पन्न, इस महापराक्रमी, वायु के तुल्य वेगशाली भीमसेन के भयानक पराक्रम को जानते हैं ॥७-८॥

किमर्थं क्रूरकर्माणं यमकालान्तकोपमम् ।९॥
बलसंरम्भवीर्यज्ञाः कोपयिष्यन्ति संयुगे ।

ये भीमसेन के बल, क्रोध को जानते हैं, फिर कैसे यम, काल और अन्तक के तुल्य क्रूर कर्म करने वाले भीमसेन को कुपित कर सकते हैं ॥९॥

कर्णस्त्वेको महाबाहुः स्वबाहुबलदर्पितम् ॥१०॥
भीमसेनमनादृत्य रणेऽयुध्यत सूतजः ।

अपने बाहु बल से उद्धत भीमसेन की परवाह न करके महाबाहु अकेला सूत-पुत्र कर्ण ही भीमसेन से युद्ध करने आगे बढ़ा ॥१०॥

योऽजयत्समरे कर्णं पुरन्दर इवाऽसुरम् ॥११॥
न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यः केनचिदाहवे ।

जिस पाण्डु-पुत्र भीम ने रण में कर्ण को असुरों को इन्द्र की तरह जीत लिया। उस भीमसेन को युद्ध में कौन जीतने में समर्थ हो सकता है ॥११॥

द्रोणं यः सम्प्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम वाहिनीम् ॥१२॥
भीमो धनञ्जयान्वेषी कस्तमार्च्छेज्जिजीविषुः ।

जो अकेला भीमसेन, अर्जुन के पास पहुंचने को द्रोणाचार्य को भी आलोडित करके मेरी सेना में घुस गया-उस भीमसेन से कौन जीवन का अभिलाषी लड़ सकता है ॥१२॥

को हि सञ्जय भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥१३॥
उद्यताशनिहस्तस्य महेन्द्रस्येव दानवः ।

हे सञ्जय ! कौन वीर है, जो भीमसेन के आगे स्थित होने में समर्थ है ? वज्र उठाये हुए इन्द्र के सन्मुख कौन दानव आने का साहस कर सकता है ॥१३॥

प्रेतराजपुरं प्राप्य निवर्तेताऽपि मानवः ॥१४॥
न भीमसेनं सम्प्राप्य निवर्तेत कदाचन ।

कोई मनुष्य, यमराज की पुरी में जाकर भी लौट सकता है, परन्तु भीमसेन के चंगुल में फंसा हुआ कभी नहीं लौट सकता है।

पतङ्गा इव वह्निं ते प्राविशन्नल्पचेतसः ॥१५॥
ये भीमसेनं संक्रुद्धमन्वधावन्विमोहिताः ।

मेरी सम्मति में तो वे अल्पज्ञ वीर हैं, जो भीमसेन के पीछे अज्ञान से मोहित होकर दौड़े और अग्नि में पतङ्ग की तरह जा गिरे।

यत्तत्सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ॥१६॥
उक्तं संरम्भिणोऽग्रेण कुरूणां शृण्वतां तदा ।
तन्नूनमभिसञ्चिन्त्य दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ॥१७॥
दुःशासनः सह भ्रात्रा भयाद्भीमादुपारमत् ॥

जिस समय कौरवों की सभा लगी थी और मेरे पुत्रों के वध के निमित्त भीमसेन ने क्रोध में भर कर वचन कहे, जिनको सारे कौरवों ने सुना- उन वचनों का स्मरण करके और कर्ण को पराजित देखकर अपने भाई दुर्योधन के साथ दुःशासन आज अवश्य युद्ध से निवृत्त हो गया होगा ॥१६-१७॥

यश्च सञ्जय दुर्बुद्धिरब्रवीत्समितौ मुहुः ॥१८॥
कर्णो दुःशासनोऽहं च जेष्यामो युधि पाण्डवान् ।
स नूनं विरथं दृष्ट्वा कर्णं भीमेन निर्जितम् ॥१९॥
प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य भृशं तप्यति पुत्रकः ।

हे सञ्जय ! मूर्खबुद्धि, कर्ण और दुःशासन ने वार २ सभा में कहा है, कि हम दोनों युद्ध में पाण्डवों को जीत लेंगे। आज वे मेरे पुत्र, रथहीन कर्ण को भीम से पराजित देखकर श्रीकृष्ण से सन्धि के निषेध के समय का पश्चात्ताप करते होंगे ॥१८-१९॥

दृष्ट्वा भ्रातॄन्हतान्संख्ये भीमसेनेन दंशितान् ॥२०॥
आत्मापराधे सुमहन्नूनं तप्यति पुत्रकः ।

सब तरह से युद्ध के लिए तय्यार, अपने भाइयों को रण में मारे हुए देखकर अपने अपराध के विषय में निश्चय मेरा पुत्र दुर्योधन कुछ तो सोचता होगा ॥२०॥

को हि जीवितमन्विच्छन्प्रतीपं पाण्डवं व्रजेत् ॥२१॥
भीमं भीमायुधं क्रुद्धं साक्षात्कालमिव स्थितम् ।

हे सूत! भीषण शस्त्रधारी क्रोधातुर साक्षात् काल की तरह उपस्थित पाण्डु-पुत्र भीमसेन को सन्मुख युद्ध में देखकर कौन जीवन का अभिलाषी उसके मुकाबिले पर जा सकता है?॥२१॥

वडवामुखमध्यस्थो मुच्येताऽपि हि मानवः ॥२२॥
न भीममुखसम्प्राप्तो मुच्येदिति मतिर्मम ।

कोई मनुष्य समुद्र के वडवानल के मुख में पड़ा हुआ भी बचकर निकल सकता है, परन्तु भीमसेन के मुख में पड़ा हुआ नहीं छुट सकता है-ऐसा मेरा खयाल है ॥२२॥

न पार्था न च पञ्चाला न च केशवसात्यकी ॥२३॥
जानते युधि संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम् ।
अहो मम सुतानां हि विपन्नं सूत जीवितम् ॥२४॥

युधिष्ठिर आदि पाण्डव, धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल, श्रीकृष्ण, सात्यकि, जब युद्ध में कुपित हो उठते हैं, तब वे प्राणों के बचाने की कुछ भी परवाह नहीं करते हैं। हे सूत! आज तो मेरे पुत्रों का जीवन बहुत ही विपत्ति (खतरे) में पड़ गया है ॥२३-२४॥

सञ्जय उवाच—

यस्त्वं शोचसि कौरव्य वर्तमाने महाभये ।
त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न संशयः ॥२५॥

सञ्जय ने कहा—हे कुरुवंशश्रेष्ठ! अब तुम महा भयङ्कर समय के उपस्थित होने पर चिन्ता करने लगे हो-परन्तु तुम ही इस सारे संसार के विनाश के मूल हो-इसमें संशय नहीं है ॥२५॥

स्वयं वैरं महत्कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः ।
उच्यमानो न गृह्णीषे मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ॥२६।

प्रथम तो तुमने बड़ा भारी वैर खड़ा कर दिया और फिर अपने पुत्रों के वचनानुसार चलते रहे। तुम्हें बहुत बार समझाया गया, परन्तु तुमने पथ्य औषध को मरने वाले मनुष्य की तरह स्वीकार ही नहीं किया ॥२६॥

स्वयं पीत्वा महाराज कालकूटं सुदुर्जरम् ।
तस्येदानीं फलं कृत्स्नमवाप्नुहि नरोत्तम ॥२७॥

हे महाराज ! तुमने तो स्वयं ही अत्यन्त दुर्जर कालकूट विष का पान किया है। हे नरोत्तम ! अब तुम उसके समग्र फल को प्राप्त करो ॥२७॥

यत्तु कुत्सयसे योधान्युध्यमानान्महाबलान् ।
तत्र ते वर्तयिष्यामि यथा युद्धमवर्तत ॥२८॥

अपनी शक्ति के अनुसार युद्ध करने वाले अपने योद्धाओं की आज तुम निन्दा कर रहे हो-परन्तु उन्होंने जिस प्रकार युद्ध किया-वह मैं तुमको सुनाता हूं ॥२८॥

दृष्ट्वा कर्णं तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम् ।
नाऽमृष्यन्त महेष्वासाः सोदर्याः पञ्च भारत ॥२६॥

हे भारत ! तुम्हारे पुत्र, पांचों सहोदर भाइयों ने जब कर्ण को भीमसेन से पराजित देखा-तो वे धनुर्धर, क्रोध में भर गए और उनसे सहन नहीं हो सका ॥२६॥

दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः ।
पाण्डवं चित्रसन्नाहास्तं प्रतीपमुपाद्रवन् ॥३०॥

दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर और जय-ये तुम्हारे पांचों महारथी पुत्र, विचित्र कवच पहिने हुए, पाण्डु-पुत्र, भीमसेन के मुकाबिले पर दौड़े ॥३०॥

ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम् ।
दिशः शरैः समावृण्वन्शलभानामिव व्रजैः ॥३१॥

हे राजन् ! इन पांचों वीरों ने महाबाहु भीमसेन को सब ओर से घेर लिया और शलभ पक्षियों के समूह की भांति बाणों से दशों दिशाओं को भर दिया ॥३१॥

आगच्छतस्तान्सहसा कुमारान्देवरूपिणः ।
प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव ॥३२॥

देवों के समान सुन्दर, उन कौरव राजकुमारों को एकदम आते देखकर हंसता २ भीमसेन रण में इनके सन्मुख डट गया ।

तव दृष्ट्वा तु तनयान्भीमसेनपुरोगमान् ।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनं महाबलम् ॥३३॥

जब तुम्हारे पुत्रों को भीमसेन के सन्मुख पहुंचे हुए देखा, तो महाबली भीमसेन को रोकने के लिए फिर राधा-पुत्र कर्ण लौट पड़ा ॥३३॥

विसृजन्विशिखांस्तीक्ष्णान्स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
तं तु भीमोऽभ्ययात्तूर्णं वार्यमाणः सुतैस्तव ॥३४॥

अब भीमसेन शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, सुवर्ण मूलधारी, तीक्ष्ण बाणों को छोड़ता हुआ कर्ण पर झपटा; परन्तु तुम्हारे पुत्रों ने उसे रोकना चाहा ॥३४॥

कुरवस्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः ।
अवाकिरन्भीमसेनं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३५॥

अब इन पांचों तुम्हारे पुत्रों ने कर्ण को घेर कर नतपर्व वाले बाणों से भीमसेन को आहत करना आरम्भ किया ॥३५॥

तान्बाणैः पञ्चविंशत्या साश्वान्राजन्नरर्षभान् ।
ससूतान्भीमधनुषो भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥३६॥

हे राजन्! अब भीमसेन ने पचीस बाण छोड़कर सारथि सहित उन महारथी तुम्हारे पांचों पुत्रों को भीमधनुषधारी, भीम ने यमराज के घर पहुंचा दिया ॥३६॥

प्रापतन्स्यन्दनेभ्यस्ते सार्धं सूतैर्गतासवः ।
चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः ॥३७॥

अब इन पांचों पुत्रों के प्राण पखेरु उड़ गए और ये सारथियों के साथ रथ से नीचे गिर गए। ये ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे-आंधी से विचित्र पुष्पधारी बड़े २ वृक्ष गिरा दिए गए हों ॥३७॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
संवार्याऽऽधिरथिं बाणैर्यज्जघान तवाऽऽत्मजान् ॥

इस समय भीमसेन का भी अद्भुत पराक्रम माना गया, जो उसने कर्ण को भी रोक कर तुम्हारे पांचों पुत्रों को मार गिराया।

स वार्यमाणो भीमेन शितैर्बाणैः समन्ततः ।
सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥३९॥

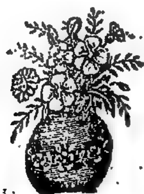
हे महाराज ! इस प्रकार सब ओर से तीक्ष्ण बाणों द्वारा भीमसेन से रोका जाकर अधिरथ-पुत्र कर्ण, भीमसेन की ओर देखने लगा ॥३९॥

तं भीमसेनः संरम्भात्क्रोधसंरक्तलोचनः ।
विस्फार्य सुमहच्चापं मुहुः कर्णमवैक्षत ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेन पराक्रमे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३५॥

अब भीमसेन के भी क्रोध से नेत्र लाल हो गए-वह भी अपने विशाल धनुष को उठा कर बार २ कर्ण की ओर देखने लग ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भीमसेन के पराक्रम और धृतराष्ट्र के पांच पुत्रों के वध का एक सौ पैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



एक सौ छत्तीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तवाऽऽत्मजांस्तु पतितान्दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निर्विण्णोऽभूत्स जीवितात् ॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! महाप्रतापी कर्ण, तुम्हारे पुत्रों को रण में पड़े हुए देखकर अत्यन्त ही क्रोधाविष्ट हुआ, परन्तु कर क्या सकता था ? इस समय तो वह अपने जीवन में भी निराश हो रहा था ॥१॥

आगस्कृतमिवाऽऽत्मानं मेने चाऽऽधिरथिस्तदा ।
यत्प्रत्यक्षं तव सुता भीमेन निहता रणे ॥२॥

रण में भीम ने कर्ण के देखते २ तुम्हारे पुत्रों को मार गिराया-इस बात से अधिरथ-पुत्र कर्ण अपने आपको अपराधी समझ रहा था ॥२॥

भीमसेनस्ततः क्रुद्धः कर्णस्य निशिताञ्शरान् ।
निचखान ससम्भ्रान्तः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥३॥

इसके अनन्तर भीमसेन ने फिर तीक्ष्ण बाण निकाले और अपने पूर्व वैर का स्मरण करके बड़ी शीघ्रता के साथ कर्ण के शरीर में मार दिए ॥३॥

स भीमं पञ्चभिर्विध्वा राधेयः प्रहसन्निव ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥

राधा-पुत्र कर्ण ने भी कुछ मुस्करा कर भीम के पांच बाण मारे और फिर शाण पर तीक्ष्ण किये हुए स्वर्णमूलधारी सत्तर बाण मार कर भीमसेन को क्षत-विक्षत कर दिया ॥४॥

अविचिन्त्याऽथ तान्बाणान्कर्णेनाऽस्तान्वृकोदरः ।
रणे विव्याध राधेयं शतेनाऽऽनतपर्वणाम् ॥५॥

कर्ण के फैंके हुए इन बाणों की कुछ परवाह न करके भीमसेन ने नतपर्व वाले सैंकड़ों बाण रण में कर्ण पर छोड़े ॥५॥

पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विद्ध्वा मर्मसु पञ्चभिः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सूतपुत्रस्य मारिष ॥६॥

हे आर्य ! भीमसेन ने फिर पांच तीक्ष्ण बाण छोड़े, जिनसे कर्ण के मर्म स्थान विंध गए और एक बाण से इसने सूत-पुत्र कर्ण के धनुष को भी काट गिराया ॥६॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः ।
इषुभिश्छादयामास भीमसेनं परन्तपः ॥७॥

हे भारत ! अब परन्तप कर्ण ने दूसरा धनुष उठाया, परन्तु वह बहुत उदास हो रहा था। इसने अपने बाणों से भीमसेन को आच्छादित कर दिया ॥७॥

तस्य भीमो हयान्हत्वा विनिहत्य च सारथिम् ।
प्रजहास महाहासं कृते प्रतिकृते पुनः ॥८॥

अब भीमसेन ने भी कर्ण के अश्व और सारथि को मार गिराया तथा जैसे को तैसा उत्तर देकर प्रसन्न हुआ भीमसेन बड़े उच्च स्वर से हँसने लगा ॥८॥

इषुभिः कार्मुकं चाऽस्य चकर्त पुरुषर्षभः ।
तत्पपात महाराज स्वर्णपृष्ठं महास्वनम् ॥९॥

हे महाराज ! पुरुषप्रवीर, भीमसेन ने अपने बाणों से महारथी कर्ण का धनुष भी काट गिराया। वह बड़े भारी शब्द का करने वाला, सुवर्ण से विभूषित पीठ धारी कर्ण का धनुष कट कर भूमि में गिर गया ॥९॥

अवारोहद्रथात्तस्मादथ कर्णो महारथः ।
गदां गृहीत्वा समरे भीमाय प्राहिणोद्रुषा ॥१०॥

जब रथ के अश्व और सारथि मर चुके-तो महारथी कर्ण उस रथ से उतर पड़ा और गदा उठा कर बड़े क्रोध के साथ रण में उसे भीमसेन पर फैंका ॥१०॥

तामापतन्तीमालक्ष्य भीमसेनो महागदाम् ।
शरैरवारयद्राजन्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥११॥

हे राजन् ! भीमसेन ने भी उस महागदा को अपने ऊपर गिरती देखकर अपने बाणों से वहीं रोक दिया, जिसे खड़ी २ सारी सेना देखती रही ॥११॥

ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डवः ।
सूतपुत्रवधाकांक्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥१२॥

अब पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने भी सहस्रों बाण छोड़े। इस महा- ..., शीघ्रता से बाण फैंकने वाले भीम की तो कर्ण को ... ही कर देने की इच्छा थी ॥१२॥

तानिपूनिपुभिः कर्णो वारयित्वा महामृधे ।
कवचं भीमसेनस्य पाटयामास सायकैः ॥१३॥

इस महासंग्राम में कर्ण ने भी इतने बाण छोड़े, कि जिनसे भीमसेन के बाण कट २ कर गिर गए और भीमसेन का कवच भी कर्ण के बाणों से बहुत ही फट गया ॥१३॥

अथैनं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥१४॥

इसके अनन्तर कर्ण ने फिर पचीस बाण भीम पर छोड़े, इस घटना को खड़ी हुई सारी सेनाएँ देख रहीं थीं, जो कर्ण का बड़ा ही पराक्रम समझा गया ॥१४॥

ततो भीमो महाबाहुर्नवभिर्नतपर्वभि ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सूतपुत्रस्य मारिष ॥१५॥
ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुं च दक्षिणम् ।
अभ्ययुर्धरणीं तीक्ष्णा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥१६॥

हे सर्वगुणसम्पन्न ! अब महाबाहु भीमसेन भी क्रोध में भर गया । उसने नतपर्व धारी नौ बाण सूत-पुत्र कर्ण पर छोड़े । ये तीक्ष्ण बाण, कर्ण का कवच और दांयी भुजा को बींध कर अपने बिल (बल्मीक) में सर्प की तरह भूमि में घुस गए ॥१५-१६॥

स च्छाद्यमानो बाणौघैर्भीमसेनधनुश्च्युतैः ।
पुनरेवाऽभवत्कर्णो भीमसेनात्पराङ्मुखः ॥१७॥

भीमसेन के धनुप से छोड़े, इस वाणसमूह से आच्छादित हुआ, कर्ण, फिर भीमसेन के सामने से हट गया ॥१७॥

तं पराङ्मुखमालोक्य पदातिं सूतनन्दनम् ।
कौन्तेयशरसंछन्नं राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥१८॥
त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य रथं प्रति ।

हे राजन्! कुन्ती-पुत्र भीमसेन के वाणों से आच्छादित सूत-नन्दन कर्ण को पैदल ही भीमसेन के सामने से हटता देखकर राजा दुर्योधन कहने लगा, कि तुम लोग बड़ी सावधानी से शीघ्रता के साथ कर्ण के रथ की सहायता को पहुंचो ॥१८॥

ततस्तव सुता राजञ्श्रुत्वा भ्रातुर्वचो द्रुतम् ॥१९॥
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तः शिलीमुखान् ।

हे राजन्! तुम्हारे पुत्रों ने जब यह अपने भाई राजा दुर्योधन का वचन सुना, तो वे पाण्डु-पुत्र भीमसेन पर वाणवर्षा करते हुए रण में दौड़े ॥१९॥

चित्रोपचित्रश्चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥२०॥
चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः ।
तानापतत एवाऽऽशु भीमसेनो महारथः ॥२१॥
एकैकेन शरेणाऽऽजौ पातयामास ते सुतान् ।
ते हता न्यपतन्भूमौ वातरुग्णा इव द्रुमाः ॥२२॥

युद्ध में विचित्र प्रकार से लड़ने में समर्थ चित्रोपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा आगे आये। उनको

आते देखकर महारथी भीमसेन ने एक २ बाण छोड़ कर तुम्हारे प्रत्येक पुत्रों को रण में गिरा लिया। वे भीमसेन द्वारा मारे हुए इस प्रकार गिर गए-जैसे-वायु द्वारा उखाड़ा हुआ वृक्ष गिर जाता है ॥२०-२२॥

दृष्ट्वा विनिहतान्पुत्रांस्तत्र राजन्महारथान्।
अश्रुपूर्णमुखः कर्णः क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥२३॥

हे राजन्! तुम्हारे महारथी पुत्रों को इस प्रकार मर कर गिरते देखकर कर्ण की आंखों में आंसू भर आये और वह विदुर के वचनों का स्मरण करने लगा ॥२३॥

रथं चाऽन्यं समास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः।
अभ्ययात्पाण्डवं युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥२४॥

अब महापराक्रमी कर्ण ने अनेक अस्त्र शस्त्रों से विधि-पूर्वक सुसज्जित करके अन्य रथ मंगवाया और उस पर चढ़ कर बड़ी शीघ्रता से रण में पाण्डु-पुत्र भीम पर आक्रमण किया॥२४॥

तावन्योन्यं शरैर्भित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
व्यभ्राजेतां यथा मेघौ संस्यूतौ सूर्यरश्मिभिः ॥२५॥

अब भीमसेन और कर्ण दोनों अपने २ शिला पर तीक्ष्ण किये हुए स्वर्णपुङ्ख धारी बाणों से एक दूसरे को बींधने लगे। इस समय ये दोनों उन बाणों से सूर्य की किरणों से व्याप्त मेघों के सदृश प्रतीत होते थे ॥२५॥

षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः।
व्यधमत्कवचं क्रुद्धः सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥२६॥

पाण्डु-पुत्र भीमसेन क्रोधातुर हो रहे थे। उन्होंने तीखे, छत्तीस वाण छोड़कर सूत-पुत्र कर्ण के कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥२६॥

सूतपुत्रोऽपि कौन्तेयं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पञ्चाशता महाबाहुर्विव्याध भरतर्षभम् ॥२७॥

महाबाहु सूत-पुत्र कर्ण ने भी नतपर्व धारी, पांच सौ वाणों से कुन्ती-पुत्र भरतवंशश्रेष्ठ भीमसेन को बींध दिया ॥२७॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहाव्रणौ ।
शोणिताक्तौ व्यराजेतां चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥२८॥

इन दोनों वीर कर्ण और भीमसेन ने लाल चन्दन लगा रखा था और वाणों से दोनों के शरीरों में बड़े २ घाव हो रहे थे। ये रुधिर से भीगे हुये उदय होते हुए सूर्य के सदृश प्रतीत होते थे।

तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
कर्णभीमौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥२९॥

इन दोनो के शरीर रक्त से भीगे हुए थे और दोनों के ही वाणों से कवच कट चुके थे। कर्ण और भीम इस समय कांचुली से रहित दो सर्पों के तुल्य प्रतीत होते थे ॥२९॥

व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम् ।
शरधारासृजौ वीरौ मेघाविव ववर्षतुः ॥३०॥

ये दोनों नरवीर, दो सिंहों की तरह एक दूसरे के अपनी २ दंष्ट्राओं द्वारा टक्कर मार रहे थे। ये तो वाण परम्परा छोड़ते हुए वर्षा करते हुए दो मेघ से प्रतीत होते थे ॥३०॥

वारणाविव चाऽन्योन्यं विषाणाभ्यामरिन्दमौ ।
निर्भिन्दन्तौ स्वगात्राणि सायकैश्चारु रेजतुः ॥३१॥

ये दोनों अरिमर्दन वीर मदोन्मत्त हाथियों की तरह भिड़ रहे थे और अपने २ दांतों की टक्कर से एक दूसरे को मार रहे थे। इस प्रकार बाणों से एक दूसरे के शरीर को बींधते हुए ये सुशोभित हो रहे थे ॥३१॥

नादयन्तौ प्रहर्षन्तौ विक्रीडन्तौ परस्परम् ।
मण्डलानि विकुर्वाणौ रथाभ्यां रथिषूत्तमौ ॥३२॥
वृषाविवाऽथ नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ।
सिंहाविव पराक्रान्तौ नरसिंहौ महाबलौ ॥३३॥

रथियों में श्रेष्ठ ये दोनों कभी गर्जना करते, कभी हर्षोन्मत्त होते और कभी परस्पर क्रीड़ा करते थे। ये दोनों अपने २ रथ से अद्भुत प्रकार के मण्डल बांध रहे थे। ये दोनों महाबली, गर्भ धारण के लिए आई हुई गाय के निमित्त लड़ने वाले दो सांडों की तरह भिड़ रहे थे। ये महापराक्रमी नरसिंह, सिंह के सदृश पराक्रम दिखाते हुए पीछे नहीं हटते थे ॥३३॥

परस्परं वीक्षमाणौ क्रोधसंरक्तलोचनौ ।
युयुधाते महावीर्यौ शक्रवैरोचनी यथा ॥३४॥

इन दोनों की आंखें क्रोध से लाल होकर जल रही थी और ये एक दूसरों को उन जलती हुई आंखों से देख रहे थे। ये महावीर्य-शाली दोनों वीर, इन्द्र और विरोचन-पुत्र बलिदैत्य की भांति युद्ध कर रहे थे ॥३४॥

ततो भीमो महाबाहुर्बाहुभ्यां विक्षिपन्धनुः ।
व्यराजत रणे राजन्सविद्युदिव तोयदः ॥३५॥

हे राजन् ! महाबाहु भीमसेन अपनी भुजाओं से धनुष फैंकने लगे। वे इस समय रण में बिजली वाले मेघ के सदृश सुन्दर प्रतीत होते थे ॥३५॥

स नेमिघोषस्तनितश्चापविद्युच्छराम्बुभिः ।
भीमसेनमहामेघः कर्णपर्वतमावृणोत् ॥३६॥

भीमसेन के रथ की ध्वनि तो मेघ की गर्जना सी प्रतीत होती थी और धनुष बिजली के तुल्य था एवं बाण परम्परा जल धारा के सदृश थी। इस प्रकार भीमसेन रूपी महामेघ, कर्णरूपी पर्वत पर बड़े वेग से बाण वर्षा कर रहे थे ॥३६॥

ततः शरसहस्रेण सम्यगस्तेन भारत ।
पाण्डवो व्यकिरत्कर्णं भीमो भीमपराक्रमः ॥३७॥

हे भारत ! महाभयङ्कर पराक्रम कर दिखाने वाले भीमसेन ने बड़े साध २ कर सहस्रों की सङ्ख्या में बाण फैंके, जिनसे उसने कर्ण को अत्यन्त आच्छादित कर दिया ॥३७॥

तत्राऽपश्यंस्तव सुता भीमसेनस्य विक्रमम् ।
सुपुङ्खैः कङ्कवासोभिर्यत्कर्णं छादयञ्शरैः ॥३८॥

कङ्क पक्षी के पङ्खों से सुशोभित, सुन्दर मूलधारी बाणों से भीमसेन ने कर्ण को आच्छादित कर दिया-इस भीम के पराक्रम को तुम्हारे पुत्र खड़े २ देखते रहे ॥३८॥

स नन्दयन्रणे पार्थं केशवं च यशस्विनम् ।
सात्यकिं चक्ररक्षौ च भीमः कर्णमयोधयत् ॥३९॥

भीमसेन, रण में अपने रणकौशल से भगवान् कृष्ण, यशस्वी अर्जुन, सात्यकि और इनके चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा आदि को हर्षित करता हुआ कर्ण से युद्ध करने लगा ॥३९॥

विक्रमं भुजयोर्वीर्यं धैर्यं च विदितात्मनः ।
पुत्रास्तव महाराज दृष्ट्वा विमनसोऽभवन् ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे षट्त्रिंशदधिक शततमोऽध्यायः ॥१३६॥

हे महाराज ! इस समय सब कुछ युद्ध के मार्गों के जानने वाले, भीमसेन के पराक्रम, बल और धैर्य को देखकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनादि बड़े ही उदास हो गए ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भीमसेन और कर्ण के भीषण युद्ध का एक सौ छत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ



एक सौ सैंतीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम् ।
नाऽमृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! राधा-पुत्र कर्ण भीमसेन के धनुष की डोरी की ध्वनि को सह नहीं सका। वह गर्जना करते हुए हाथी के शब्द को सुनकर मदोन्मत्त हाथी की तरह बिगड़ उठा ॥१॥

सोऽपक्रम्य मुहूर्तं तु भीमसेनस्य गोचरात् ।
पुत्रांस्तव ददर्शाऽथ भीमसेनेन पातितान् ॥२॥

वह एकदम थोड़ी देर को भीमसेन की दृष्टि से बच गया और भीमसेन द्वारा गिराये हुए तुम्हारे पुत्रों को देखा ॥२॥

तानवेक्ष्य नरश्रेष्ठ विमना दुःखितस्तदा ।
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च पुनः पाण्डवमभ्ययात् ॥३॥

हे नरश्रेष्ठ ! वह कर्ण, उन तुम्हारे पुत्रों को देखकर बड़ा उदास और दुःखी हुआ। वह लम्बा और उष्ण श्वास मार कर फिर पाण्डु-पुत्र भीमसेन पर झपटा ॥३॥

स ताम्रनयनः क्रोधाच्छ्वसन्निव महोरगः ।
बभौ कर्णः शरानस्यन्रश्मीनिव दिवाकरः ॥४॥

उसकी आंखें क्रोध से लाल हो रही थीं और वह महासर्प की भांति श्वास ले रहा था। अब कर्ण, जिस तरह सूर्य अपनी

किरण फैंकता है, उसी तरह अपने बाण फैंकता हुआ सुशोभित होने लगा ॥४॥

किरणैरिव सूर्यस्य महीध्रो भरतर्षभ ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः ॥५॥

हे भरतर्षभ ! जिस तरह सूर्य की किरणों से पर्वत ढ़क जाता है, उसी तरह कर्ण के धनुप से छोड़े हुए बाणों से वृकोदर भीम आच्छादित हो गया ॥५॥

ते कर्णचापप्रभवाः शरा बर्हिणवाससः ।
विविशुः सर्वतः पार्थं वासायेवाऽण्डजा द्रुमम् ॥६॥

कर्ण के धनुप से निकले हुए, मयूर पिच्छ से सुशोभित बाण, कुन्ती-पुत्र भीमसेन के शरीर में इस तरह घुस गए-जैसे पक्षी, निवास के निमित्त वृक्षों में घुस जाते हैं ॥६॥

कर्णचापच्युता बाणाः सम्पतन्तस्ततस्ततः ।
रुक्मपुङ्खा व्यराजन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥७॥

कर्ण के धनुप से छुटे हुए सुवर्णमूल वाले बाण इधर उधर गिरते हुए ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे पंक्ति बांधे हुए हंस उड़े जा रहे हों ॥७॥

चापध्वजोपस्करेभ्यश्छत्रादीषामुखाद्युगात् ।
प्रभवन्तो व्यदृश्यन्त राजन्नाधिरथेः शराः ॥८॥

हे राजन् ! अधिरथ-पुत्र कर्ण के बाण, धनुष, ध्वजा, रथ में बैठने के समीप के स्थान, रथ की छतरी, सारथि के आसन और जुए से लगातार निकलते दिखाई दे रहे थे ॥८॥

खं पूरयन्महावेगात्खगमान्गृध्रवाससः ।
सुवर्णविकृतांश्चित्रान्मुमोचाऽऽधिरथिः शरान् ॥९॥

अधिरथ-पुत्र कर्ण, बड़े वेग के साथ गृद्ध पक्षी के पंखों से सुशोभित, आकाशगामी, सुवर्ण से चित्रित, अद्भुत बाणों से आकाश को भरता हुआ बाण छोड़ने लगा ॥९॥

तमन्तकमिवाऽऽयस्तमापतन्तं वृकोदरम् ।
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध निशितैः शरैः ॥१०॥

काल के समान कुपित होकर झपटते हुए वृकोदर भीम को देखकर अपने प्राणों का मोह छोड़कर कर्ण, उन्हें अपने बाणों से आच्छादित करने लगा ॥१०॥

तस्य वेगमसह्यं स दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः ।
महतश्च शरौघांस्तान्न्यवारयत वीर्यवान् ॥११॥

पाण्डु-पुत्र महाबली भीमसेन, महारथी कर्ण के असह्य वेग को देखकर उसके बाणसमूह की महती वृष्टि को बड़े प्रयत्न से रोकने लगा ॥११॥

ततो विधम्याऽऽधिरथेः शरजालानि पाण्डवः ।
विव्याध कर्णं विंशत्या पुनरन्यैः शिलाशितैः ॥१२॥

अधिरथ-पुत्र कर्ण के बाणजाल को पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने छिन्न-भिन्न कर दिया और फिर उसने शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बीस बाणों से कर्ण को बींध डाला ॥१२॥

यथैव हि स कर्णेन पार्थः प्रच्छादितः शरैः ।
तथैव स रणे कर्णं छादयामास पाण्डवः ॥१३॥

जिस प्रकार बाणों द्वारा कर्ण ने भीम को आच्छादित किया-इसी प्रकार पाण्डु-पुत्र भीम ने भी कर्ण को अपने बाणों से पाट दिया ।

दृष्ट्वा तु भीमसेनस्य विक्रमं युधि भारत ।
अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च सम्प्रहृष्टाश्च चारणाः ॥१४॥

हे भारत ! युद्ध में भीमसेन के पराक्रम को देखकर तुम्हारे पक्ष के वीर ही उसकी प्रशंसा करने लगे और चारण भाट भी बड़े प्रसन्न हुए ॥१४॥

भूरिश्रवाः कृपो द्रौणिर्मद्रराजो जयद्रथः ।
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिः केशवार्जुनौ ॥१५॥
कुरुपाण्डवप्रवरा दश राजन्महारथाः ।
साधुसाध्विति वेगेन सिंहनादमथाऽनदन् ॥१६॥

हे राजन् ! भूरिश्रवा; कृप, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, राजा जयद्रथ, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन-ये कौरव और पाण्डवों के दश श्रेष्ठ महारथी, धन्य २ की ध्वनि और बड़े उच्चस्वर से सिंहनाद करने लगे ॥१५-१६॥

तस्मिन्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
अभ्यभाषत पुत्रस्ते राजन्दुर्योधनस्त्वरन् ॥१७॥
राज्ञः स राजपुत्रांश्च सोदर्यांश्च विशेषतः ।
कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोदरात् ॥१८॥

पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताः शराः ।
ते यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥१९॥

हे राजन् ! जब इस प्रकार का महान् कोलाहल रण-भूमि में खड़ा हो गया-तो तुम्हारा पुत्र दुर्योधन बड़ी शीघ्रता से बहुत से राजा, राजकुमार और विशेषता से अपने भाइयों से कहने लगा-हे महावीरो ! तुम वृकोदर भीम से युद्ध करने के निमित्त कर्ण की सहायता को दौड़ो । भीमसेन के धनुष से निकले हुए बाण, राधा-पुत्र कर्ण को अत्यन्त क्षत-विक्षत कर रहे हैं । हे महाधनुर्धरो ! तुम सूत-पुत्र कर्ण की रक्षा के निमित्त वेग से आगे बढ़ो ॥१९॥

दुर्योधनसमादिष्टाः सोदर्याः सप्त भारत ।
भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन् ॥२०॥

हे भारत ! राजा दुर्योधन की आज्ञा से युक्त हुए सात सहोदर भ्राता, तुम्हारे पुत्र, बड़े आवेश में भर गए और झपट कर भीमसेन को घेर कर खड़े हो गए ॥२०॥

ते समासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्शरवृष्टिभिः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः ॥२१॥

हे राजन् ! जैसे वर्षा ऋतु में मेघ जलधाराओं से पर्वत को ढक देते हैं, वैसे ही इन तुम्हारे पुत्रों ने बाणवर्षा से कुन्ती-पुत्र भीमसेन को आच्छादित कर दिया ॥२१॥

ते पीडयन्भीमसेनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः ।
प्रजासंहरणे राजन्सोमं सप्त ग्रहा इव ॥२२॥

हे राजन्! ये सातों महारथी पुत्र, क्रोध में भरे हुए, भीमसेन को इस तरह पीड़ित करने लगे—जैसे- प्रलयकाल में चन्द्रमा को सात ग्रह घेर लेते हैं ॥२२॥

ततो वेगेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम् ।
मुष्टिना पाण्डवो राजन्दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥२३॥
मनुष्यसमतां ज्ञात्वा सप्त सन्धाय सायकान् ।
तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान्प्रभुः ॥२४॥

अब कुन्ती-पुत्र भीमसेन ने बड़े वेग से अपनी दृढ़ मुट्ठी में सुवर्ण से उज्ज्वल धनुप को खैंचा और इन सातों महारथियों को साधारण मनुष्य समझ कर सात बाण धनुप पर चढ़ाए । यह शक्तिशाली बड़े वेग से सूर्य की किरणों के समान बाणों को उनके ऊपर छोड़ने लगा ॥२२-२४॥

निरस्यन्निव देहेभ्यस्तनयानामसूंस्तव ।
भीमसेनो महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥२५॥

हे महाराज! भीमसेन अपने पूर्व वैर का स्मरण करता हुआ इस प्रकार बाण निकाल रहा था, मानो तुम्हारे पुत्रों के प्राणों को बाहर खैंच रहा हो ॥२५॥

ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान् ।
विदार्य खं समुत्पेतुः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥२६॥

हे भारत! शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, सुवर्ण के मूल से सुन्दर, भीमसेन द्वारा फैंके हुये वे बाण, भरतवंशोद्भव तुम्हारे पुत्रों के प्राणों को निकाल कर आकाश में उड़ गए ॥२६॥

तेषां विदार्य चेतांसि शरा हेमविभूषिताः ।
व्यराजन्त महाराज सुपर्णा इव खेचराः ॥२७॥

हे महाराज! वे सुवर्ण से सुशोभित बाण, उनके प्राणों को निकाल कर ऐसे आकाश में दिखाई देने लगे—जैसे अनेक गरुड़ आकाश में उड़ रहे हों ॥२७॥

शोणितादिग्धवजाग्राः सप्त हेमपरिष्कृताः ।
पुत्राणां तव राजेन्द्र पीत्वा शोणितमुद्गताः ॥२८॥

हे राजेन्द्र! सुवर्ण से उज्ज्वल, रक्त में सने हुए अग्रभाग वाले, वे सात बाण, तुम्हारे पुत्रों के रक्त को चाट कर ऊपर उड़ गए।

ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन्क्षितौ ।
गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः ॥२९॥

जब इन बाणों से तुम्हारे पुत्रों के मर्म बिंध गए, तो वे रथों के ऊपर से पृथ्वी पर इस तरह गिर गए जैसे—पर्वत की चोटी पर खड़े हुए वृक्ष हाथी के तोड़ देने पर नीचे गिर जाते हैं ॥२९॥

शत्रुञ्जयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः ।
चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः ॥३०॥

शत्रुञ्जय, शत्रसह, चित्र, चित्रायुध, दृढ, चित्रसेन और विकर्ण-ये सातों पुत्र, भीमसेन ने इस समय मार गिराये ॥३०॥

पुत्राणां तव सर्वेषां निहतानां वृकोदरः ।
शोचत्यतिभृशं दुःखाद्विकर्णं पाण्डवः प्रियम् ॥३१॥

हे राजन ! वृकोदर भीम ने जब तुम्हारे पुत्रों को मार गिराया, तो अपने प्रिय विकर्ण का पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने बड़ा ही शोक किया ॥३१॥

प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे।
विकर्ण तेनाऽसि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया ॥३२॥
त्वमागाः समरं वीर क्षात्रधर्ममनुस्मरन्।
ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः ॥३३॥
विशेषतो हि नृपतेस्तथाऽस्माकं हिते रतः।
न्यायतोऽन्यायतो वाऽपि हतः शेते महाद्युतिः ॥३४॥
अगाधबुद्धिर्गाङ्गेयः क्षितौ सुरगुरोः समः।
त्याजितः समरे प्राणांस्तस्माद्युद्धं हि निष्ठुरम् ॥३५॥

हे विकर्ण ! मैंने प्रतिज्ञा की है, कि मैं रण में धृतराष्ट्र के सौओं पुत्रों को मारूंगा, इसीसे मैंने तुम्हें मारा और अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा की है। हे वीर ! तुम भी अपने क्षत्रियधर्म का स्मरण करके मेरे सन्मुख आ गए, इसीलिए तुम भी मारे गए, क्या किया जावे ? क्षत्रिय धर्म बड़ा ही कठोर धर्म है। हे विकर्ण ! तुम तो हमारे और राजा युधिष्ठिर के प्रिय में ही तत्पर थे। अब न्याय से या अन्यायसे जो कुछ हुआ-सो हुआ-तुम महाद्युतिमान् आज मारे जाकर रणभूमि में सो रहे हो। महाबुद्धिमान् गङ्गा-पुत्र भीष्म भी सुरगुरु के समान हमारे पूज्य थे-उनको भी मार कर भूमि में

सुलाना पड़ा—वे भी प्राण त्याग कर रण में सो रहे हैं—इससे यही बात है-कि युद्धधर्म बड़ा ही कठोर है ॥३२-३५॥

सञ्जय उवाच—

तान्निहत्य महाबाहू राधेयस्यैव पश्यतः ।
सिंहनादरवं घोरमसृजत्पाण्डुनन्दनः ॥३६॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! महाबाहु पाण्डु-नन्दन भीमसेन, राधा-पुत्र कर्ण के देखते २ उनको मारकर बड़े जोर से घोर सिंहनाद करने लगा ॥३६॥

स रवस्तस्य शूरस्य धर्मराजस्य भारत ।
आचख्याविव तद्युद्धं विजयं चाऽऽत्मनो महत् ॥३७॥

हे भारत! इस महावीर की गर्जना ने धर्मराज युधिष्ठिर को घमसान युद्ध की सूचना दी। धर्मराज ने इससे यह भी समझ लिया, कि हमारी महान् विजय होती जा रही है ॥३७॥

तं श्रुत्वा तु महानादं भीमसेनस्य धन्विनः ।
बभूव परमा प्रीतिर्धर्मराजस्य धीमतः ॥३८॥

महाधनुर्धर भीमसेन के इस महानाद को सुनकर महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर को बड़ा ही आनन्द हुआ ॥३८॥

ततो हृष्टमना राजन्वादित्राणां महास्वनैः ।
सिंहनादरवं भ्रातुः प्रतिजग्राह पाण्डवः ॥३९॥

हे राजन्! अब प्रसन्न होकर धर्मराज ने भी अपने बाजों की ध्वनि करवाई और इस प्रकार अपने भाई भीमसेन की गर्जना का प्रत्युत्तर दिया ॥३९॥

हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञो वृकोदरे ।
अभ्ययात्समरे द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥४०॥

जब वृकोदर भीम ने इस प्रकार विजय की सूचना दे दी, तो धर्मराज बड़े ही आनन्द में मग्न हो उठे और समस्त धनुर्धरों में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर, अब रण में द्रोण से युद्ध के निमित्त आगे बढ़े ।

एकत्रिंशन्महाराज पुत्रांस्तव निपातितान् ।
हतान्दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥४१॥
तदिदं समनुप्राप्तं क्षत्तुर्निःश्रेयसं वचः ।
इति सञ्चिन्त्य ते पुत्रो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥४२॥

हे महाराज ! तुम्हारे इस समय तक भीमसेन ने इकतीस पुत्र मार लिए थे, जिनको देखकर राजा दुर्योधन को विदुर का वचन स्मरण आया । उसने सोचा, कि आज विदुर का कल्याण युक्त वचन सत्य हो गया । वही दिन आज उपस्थित हो गया है । इस प्रकार सोचते हुए तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को कोई भी उत्तर नहीं आया ॥४१-४२॥

यद् द्यूतकाले दुर्बुद्धिरब्रवीत्तनयस्तव ।
सभामानाय्य पाञ्चालीं कर्णेन सहितोऽल्पधीः ॥४३॥
यच्च कर्णोऽब्रवीत्कृष्णां सभायां परुषं वचः ।
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव विशाम्पते ॥४४॥
शृण्वतस्तव राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ।
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥४५॥

पतिमन्यं वृणीष्वेति तस्येदं फलमागतम् ।
यच्च पण्ढतिलादीनि परुषाणि तवाऽऽत्मजैः ।
श्रावितास्ते महात्मानः पाण्डवाः कोपयिष्णुभिः ॥
तं भीमसेनः क्रोधाग्निं त्रयोदश समाः स्थितम् ।
उद्गिरंस्तत्र पुत्राणामन्तं गच्छति पाण्डवः ॥४७॥

हे राजन् ! तुम्हारे दुर्बुद्धि मूर्ख पुत्र दुर्योधन ने तो द्यूत के समय में कर्ण को साथ लेकर कहा था, कि पाञ्चाली को सभामें लाओ । हे विशाम्पते ! सभा में द्रौपदी के आने पर कर्ण ने पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिरादिके सन्मुख ही द्रौपदी से बड़े कठोर वचन कहे थे । हे राजेन्द्र ! उन सब वचनों को तुम सुन रहे थे और सारी कुरुसभा सुनकर चुप बैठी थी । उस समय तो यही कहा गया– हे द्रौपदी ! आज पाण्डवों का तेज नष्ट हो चुका है और ये सब आपत्तियों में फंस गए हैं । अब तुम अन्य पति का वरण कर लो । हे राजन ! आज यह उसी का फल उपस्थित हुआ है । जो कुछ नपुंसक आदि कठोर शब्द तुम्हारे पुत्रों ने महात्मा पाण्डवों को कुपित करते हुए कहे थे–उसी की उठी हुई क्रोध की आग को भीमसेन ने तेरह वर्ष तक अपने हृदय में रख छोड़ा । आज वह उसे उगल रहा है, जिससे तुम्हारे पुत्रों का नाश हो रहा है ॥४३-४७॥

विलपंश्च बहु क्षत्ता शमं नाऽलभत त्वयि ।
सपुत्रो भरतश्रेष्ठ तस्य भुंक्ष्व फलोदयम् ॥४८॥

हे भरतर्षभ ! तुम से बार २ विलाप करते हुए विदुर ने सब कुछ कहा और बहुत व्याकुल होकर वह शान्त न हो सका-आज तुम अपने पुत्रों के साथ उसी का फल भोगो ॥४८॥

त्वया वृद्धेन धीरेण कार्यतत्त्वार्थदर्शिना ।
न कृतं सुहृदां वाक्यं दैवमत्र परायणम् ॥४९॥

तुम तो वृद्ध, विद्वान् और समझदार थे और अपने कार्य के फल के विचार की बुद्धि रखते थे, परन्तु तुमने भी अपने सुहृदों के वचनों को न माना-इसमें दैव ही प्रधान समझना चाहिए।

तन्मा शुचो नरव्याघ्र तवैवाऽपनयो महान् ।
विनाशहेतुः पुत्राणां भवानेव मतो मम ॥५०॥

हे नरव्याघ्र ! अब तुम शोक न करो-यह तो तुम्हारी दुर्नीति का फल है। मेरी सम्मत्ति में तो अपने पुत्रों के विनाश का तुम ही स्वयं कारण हो ॥५०॥

हतो विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
प्रवराश्चाऽऽत्मजानां ते सुताश्चाऽन्ये महारथाः ॥५१॥

हे राजेन्द्र ! वीर्यवान् विकर्ण और चित्रसेन दोनों मारे गए तथा तुम्हारे पुत्रों में जो अन्य श्रेष्ठ कई महारथी पुत्र थे-वे भी मारे जा चुके ॥५१॥

यानन्यान्ददृशे भीमश्चक्षुर्विषयमागतान् ।
पुत्रांस्तव महाराज त्वरया ताञ्जघान ह ॥५२॥

हे महाराज ! भीमसेन, जिन भी तुम्हारे पुत्र को अपनी आंखों के आगे देखता था, वह बड़ी तेजी से उन पर झपट कर उनको मार गिराता था ॥५२॥

त्वत्कृते ह्यहमद्राक्षं दह्यमानां वरूथिनीम् ।
सहस्रशः शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन वृषेण च ॥५३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे सप्तत्रिंशदधिक शततमोऽध्यायः ॥१३७॥

हे राजन् ! यह सब तुम्हारी कृपा से खड़े किये हुए युद्ध में मैंने पाण्डु-पुत्र भीम और महारथी कर्ण द्वारा छोड़े हुए सहस्रों बाणों से नष्ट होती हुई भारतीयसेना को अपनी आंखों से देखा है ॥५३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भीम के युद्ध और विकर्ण आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों के वध का एक सौ सैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

महानपनयः सूत ममैवाऽत्र विशेषतः ॥१॥
स इदानीमनुप्राप्तो मन्ये सञ्जय शोचतः ।

धृतराष्ट्र बोले—हे सूत ! इसमें सन्देह नहीं है कि यह सब कुछ मेरी ही बुरी नीति का परिणाम है । आज मैंने उसी का यह फल पाया; जो मैं अत्यन्त शोक कर रहा हूं ॥१॥

यद्गतं तद्गतमिति ममाऽऽसीन्मनसि स्थितम् ।
इदानीमत्र किं कार्यं प्रकरिष्यामि सञ्जय ॥२॥

हे सञ्जय ! अब तो मेरे मन में यह आ रहा है, कि जो गया सो गया—अब मुझे क्या करना चाहिये ? यह बताओ ॥२॥

यथा ह्येष क्षयो वृत्तो ममाऽपनयसम्भवः ।
वीराणां तन्ममाऽऽचक्ष्व स्थिरीभूतोऽस्मि सञ्जय ॥३॥

हे सञ्जय ! मेरी दुर्नीति से जो यह भरत वंश का नाश हो रहा है और वीरों को वीरगति प्राप्त हो रही है; उसे सुनाओ मैं इसके सुनने को अत्यन्त स्थिर हो रहा हूं ॥३॥

सञ्जय उवाच—

कर्णभीमौ महाराज पराक्रान्तौ महाबलौ ।
बाणवर्षाण्यसृजतां वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ॥४॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! कर्ण और भीम दोनों महा पराक्रमी और महाबली थे, वे वर्षा करने वाले मेघों की भांति बाण-वर्षा कर रहे थे ॥४॥

भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ।
विविशुः कर्णमासाद्यच्छिन्दन्त इव जीवितम् ॥५॥

हे राजन् ! शिला पर तीक्ष्ण किये गए, सुवर्ण के मूलवाले भीम के नाम से अङ्कित बाण, मानो कर्ण के प्राणों को छेदते हुए उसके शरीर में घुसने लगे ॥५॥

तथैव कर्णनिर्मुक्ताः शरा बर्हिणवाससः ।
छादयाञ्चक्रिरे वीरं शतशोऽथ सहस्रशः ॥६॥

इसी तरह मयूरपिच्छ से सुशोभित कर्ण के द्वारा छोड़े हुए सैकड़ों-हजारों की संख्या में बाण, महावीर भीमसेन को क्षत-विक्षत करने लगे ॥६॥

तयोः शरैर्महाराज सम्पतद्भिः समन्ततः ।
बभूव तत्र सैन्यानां संक्षोभः सागरोपमः ॥७॥

हे महाराज ! इन दोनों महावीर कर्ण और भीमसेन के इधर उधर गिरते हुए बाणों से सेना में इतनी हलचल मच गई, जैसे वायु से समुद्र में हल-चल मच जाती है ॥७॥

भीमचापच्युतैर्बाणैस्तव सैन्यमरिन्दम ।
अवध्यत चमूमध्ये घोरैराशीविषोपमैः ॥८॥

हे अरिमर्दन ! तुम्हारी सेना के मध्य में आशीविष सर्पों के समान विषैले भीमसेन के छोड़े हुए घोर बाणों से तुम्हारे सैनिक मर २ कर गिरने लगे ॥८॥

वारणैः पतितै राजन्वाजिभिश्च नरैः सह ।

अदृश्यत मही कीर्णा वातभग्नैरिव द्रुमैः ॥९॥

हे राजन् ! रणभूमि में अनेक हाथी, अश्व और मनुष्य गिरे हुए थे। उस समय वायु से तोड़े हुए वृक्षों से व्याप्त पृथ्वी के समान रणभूमि दिखाई दे रही थी ॥९॥

ते वध्यमानाः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।

प्राद्रवंस्तावका योधाः किमेतदिति चाऽब्रुवन् ॥१०॥

भीमसेन के धनुष से निकले हुए बाणों से रण में मारे हुए तुम्हारे योद्धा यह क्या हुआ -यह क्या घोर विपत्ति आई--इस तरह कहते हुए भागने लगे ॥१०॥

ततो व्युदस्तं तत्सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम् ।

प्रोत्सारितं महावेगैः कर्णपाण्डवयोः शरैः ॥११॥

अब महावेगशाली कर्ण और पाण्डवों के बाणों से सिन्धु, सौवीर और कौरवों की सेना बिखर गई और इधर उधर भागने लगी ॥११॥

ते शूरा हतभूयिष्ठा हताश्वरथवारणाः ।

उत्सृज्य भीमकर्णौ च सर्वतो व्यद्रवन्दिशः ॥१२॥

इन सेनाओं के शूरवीर अश्व, रथी और हाथी, भीम और कर्ण को छोड़ कर दशों दिशाओं को भाग निकले। इनके बहुत से साथी वीर मारे जा चुके थे ॥१२॥

नूनं पार्थार्थमेवाऽस्मान्मोहयन्ति दिवौकसः।
यत्कर्णभीमप्रभवैर्वध्यते नो बलं शरैः ॥१३॥

इस समय सारे योद्धा, यही कह रहे थे, कि ये देवता अर्जुन की विजय के निमित्त ही हमको मोहित कर रहे हैं, जो कर्ण और भीम के बाणों से हमारी सारी सेना नष्ट होती जा रही है ॥१३॥

एवं ब्रुवाणा योधास्ते तावका भयपीडिताः।
शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृत्तवः ॥१४॥

हे राजन्! तुम्हारे पक्ष के योद्धा, इस प्रकार कहते हुए, भय से पीड़ित हो रहे थे। इन्होंने अब बाण चलाना छोड़ दिया और वे इनके युद्ध का तमाशा देखने लगे ॥१४॥

ततः प्रावर्तत नदी घोररूपा रणाजिरे।
शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धिनी ॥१५॥

इस समय रणाङ्गण में रक्त की घोर नदी बह निकली, जिससे शूरवीरों को हर्ष और कायरों को भय उत्पन्न होता था ॥१५॥

वारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमुद्भवा।
संवृता गतसत्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥१६॥

हाथी, अश्व और मनुष्यों के प्रवाह से उत्पन्न, घोर नदी मरे हुए हाथी, अश्व और मनुष्यों को बहाती हुई बही जा रही थी।

सानुकर्षपताकैश्च द्विपाश्वरथभूषणैः ।
स्यन्दनैरपविद्धैश्च भग्नचक्राक्षकूबरैः ॥१७॥
जातरूपपरिष्कारैर्धनुर्भिः सुमहास्वनैः ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नाराचैश्च सहस्रशः ॥१८॥
कर्णपाण्डवनिर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
प्रासतोमरसङ्घातैः खङ्गैश्च सपरश्वधैः ॥१९॥
सुवर्णविकृतैश्चाऽपि गदामुसलपट्टिशैः ।
ध्वजैश्च विविधाकारैः शक्तिभिः परिघैरपि ॥२०॥
शतघ्नीभिश्च चित्राभिर्बभौ भारत मेदिनी ।

हे भारत ! रथ के नीचे के काष्ठ, पताका हाथी, अश्व और रथियों के आभूषण, टूटे फूटे चक्र, धुरे और कूबरों (जुए का धारक) सहित रथ, महान् ध्वनि करने वाले, सुवर्णोज्ज्वल धनुष, सहस्रों की संख्या में सुवर्ण के पुङ्ख वाले छोटे बड़े कर्ण भीम द्वारा छोड़े हुए कांचुली से रहित सर्प के सदृश बाण, प्रास, तोमरों के समूह, खड्ग, परशु, सुवर्ण के बने हुए गदा, मुसल और पट्टिश नामक शस्त्र, अनेक आकार की ध्वजा, शक्ति, परिघ तथा विचित्र २ शतघ्नियों से रण-भूमि, व्याप्त होकर सुशोभित होने लगी ॥२०॥

कनकाङ्गदहारैश्च कुण्डलैर्मुकुटैस्तथा ॥२१॥
वलयैरपविद्धैश्च तत्रैवांऽगुलिवेष्टकैः ।
चूडामणिभिरुष्णीषैः स्वर्णसूत्रैश्च मारिष । २२॥

तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च भारत ।
वस्त्रैश्छत्रैश्च विध्वस्तैश्चामरव्यजनैरपि ॥२३॥
गजाश्वमनुजैर्भिन्नैः शोणिताक्तैश्च पत्रिभिः ।
तैस्तैश्च विविधैर्भिन्नैस्तत्र तत्र वसुन्धरा ॥२४॥
पतितैरपविद्धैश्च विबभौ द्यौरिव ग्रहैः ।

हे आर्य ! सुवर्ण के अङ्गद (बाजूबन्द) हार, कुण्डल, मुकुट, टूटे फूटे हाथ के आभूषण, अंगूठी, चूड़ामणि, पगड़ी, सुवर्ण के सूत्र, कवच, करतलत्राण, हार, कण्ठसूत्र, कटे फटे वस्त्र, छत्र, चंवर, पंखे, क्षत-विक्षत गज, अश्व, मनुष्य, रक्त में भीगे हुए बाण तथा इसी प्रकार के अन्य बहुत से नष्ट-भ्रष्ट इधर उधर बिखरे हुए युद्ध के सामान से जहां तहां पृथिवी ऐसी सुशोभित प्रतीत होती थी, जैसे बड़े २ ग्रहों से आकाश प्रतीत होता है ॥२१-२४॥

अचिन्त्यमद्भुतं चैव तयोः कर्माऽतिमानुषम् ॥२५॥
दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयः समजायत ।

इन दोनों महावीरों का बड़ा अद्भुत और अविचारणीय कर्म था-जिसे देखकर चारण और सिद्धों को बड़ा ही विस्मय उत्पन्न हुआ ॥२५॥

अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कक्ष इवाऽऽहवे ॥२६॥
आसीद्भीमसहायस्य रौद्रमाधिरथेर्गतम् ।

वायु को देखकर तृणसमूह में जैसे अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी तरह रण में भीमसेन को देखकर अधिरथ-पुत्र की गति तीव्र हो उठी ।२६॥

निपातितध्वजरथं हतवाजिनरद्विपम् ॥२७॥
गजाभ्यां सम्प्रयुक्ताभ्यामासीन्नलवनं यथा ।

ध्वजा और रथ चकनाचूर होकर गिर गए। अश्व, पैदल और हाथी नष्ट हो गए। इस समय रणभूमि की यह दशा थी, जैसी दो हाथियों के युद्ध करने पर नल नामक तृण से व्याप्त वन की दशा हो जाती है ॥२७॥

मेघजालनिभं सैन्यमासीत्तव नराधिप ॥२८॥
विमर्दः कर्णभीमाभ्यामासीच्च परमो रणे ॥२९॥

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीम-
कर्णयुद्ध अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

हे नराधिप ! इस समय रणभूमि में कर्ण और भीमसेन का इतना घोर युद्ध हुआ, कि जिससे सेना वायु से उड़ाए हुए मेघ जाल के समान इधर उधर बिखर गई ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भीम और
कर्ण के युद्ध का एक सौ अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ उनचालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः कर्णो महाराज भीमं विध्वा त्रिभिः शरैः ।
मुमोच शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! इसके अनन्तर महारथी कर्ण ने भीमसेन को तीन बाणों से आहत करके बहुत से विचित्र बाणों की झड़ी सी लगा दी ॥१॥

वध्यमानो महाबाहुः सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाऽचलः ॥२॥

इस प्रकार महाबाहु, पाण्डु-पुत्र भीमसेन, सूत-पुत्र कर्ण द्वारा मारा हुआ भी इस प्रकार विचलित नहीं हुआ-जैसे बिजली गिरने पर पर्वत ज्यों का त्यों बना रहता है ॥२॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च ।
विव्याध सुभृशं संख्ये तैलधौतेन मारिष ॥३॥

हे आर्य ! भीमसेन ने विष में बुझे हुए तीक्ष्ण, तेल से समुज्ज्वल किये हुए, कान तक खैंचे हुए धनुष से छोड़े हुए बाण से कर्ण के कान को अत्यन्त आहत किया ॥३॥

स कुण्डलं महच्चारु कर्णस्याऽपातयद्भुवि ।
तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाऽम्बरात् ॥४॥

हे महाराज ! इस बाण से बड़ा उज्ज्वल सुवर्णरचित कर्ण का कुण्डल कट कर भूमि पर आकाश से गिरती हुई उज्ज्वल ज्योति की तरह गिर गया ॥४॥

अथाऽपरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनान्तरे ।
आजघान भृशं क्रुद्धो हसन्निव वृकोदरः ॥५॥

इसके अनन्तर मुस्कुराते हुए भीमसेन ने दूसरा बाण उठाया और सूत-पुत्र के वक्षस्थल में अत्यन्त कोप के साथ प्रहार किया ॥५॥

पुनरस्य त्वरन्भीमो नाराचान्दश भारत ।
रणे प्रैषीन्महाबाहुर्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥६॥

हे भारत ! फिर महाबाहु भीमसेन ने बड़ी शीघ्रता से दश बाण रण में छोड़े, जो कांचुली रहित सर्प के सदृश भयङ्कर थे ॥६॥

ते ललाटं विनिर्भिद्य सूतपुत्रस्य भारत ।
विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः ॥७॥

हे भारत ! भीम द्वारा छोड़े हुए, वे बाण, सूत-पुत्र कर्ण का ललाट बींध कर वल्मीक में सर्पों की तरह घुस गए ॥७॥

ललाटस्थैस्ततो बाणैः सूतपुत्रो व्यरोचत ।
नीलोत्पलमयीं मालां धारयन्वै यथा पुरा ।८॥

ललाट में गड़े हुए इन बाणों से सूत-पुत्र कर्ण इस तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे पूर्वकाल में बचपन में कभी नीले कमल की माला धारण करते हुए सुशोभित होते थे ॥८॥

सोऽतिविद्धो भृशं कर्णः पाण्डवेन तरस्विना ।
रथकूबरमालम्ब्य न्यमीलयत लोचने ॥९॥

महा वेगशील पाण्डु-पुत्र भीम द्वारा अत्यन्त क्षत-विक्षत हुआ, कर्ण, रथ के कूबर (युगन्धर) को पकड़ और आंख मींच कर खड़ा हो गया ॥९॥

स मुहूर्तात्पुनः संज्ञां लेभे कर्णः परन्तपः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः क्रोधमाहारयत्परम् ॥१०॥

शत्रुतापी, कर्ण को थोड़ी ही देर में फिर चेतनता आई। उसका शरीर रुधिर से भीग रहा था-यह देखकर उसको बड़ा ही क्रोध हो आया ॥१०॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना ।
वेगं चक्रे महावेगो भीमसेनरथं प्रति ॥११॥

दृढधनुषधारी भीमसेन द्वारा पीड़ित किया हुआ कर्ण, रण में कुपित हो उठा। वह महा वेगधारी बड़े वेग से भीमसेन के रथ की ओर झपटा ॥११॥

तस्मै कर्णः शतं राजन्निषूणां गार्ध्रवाससाम् ।
अमर्षी बलवान्क्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥१२॥

हे राजन! गृद्ध पक्षी के पंखों से सुशोभित सैंकड़ों बाण, बलवान, क्रोधाविष्ट. आवेश में भरे हुए कर्ण ने भीमसेन पर छोड़े।

ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डव ।
समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचिन्तयन् ॥१३॥

पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने भी अत्यन्त उग्र बाण वर्षा की। इसने इस रण में कर्ण के पराक्रम की कुछ चिन्ता न की और न स्वयं कर्ण का कोई आदर ही किया ॥१३॥

कर्णस्ततो महाराज पाण्डवं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परन्तपः ॥१४॥

हे महाराज ! अब शत्रुतापी कर्ण ने भी क्रुद्ध होकर पाण्डु-पुत्र भीम के हृदय में नौ बाण मारे। इस समय भीमसेन भी कोप से अत्यन्त प्रज्वलित हो रहा था ॥१४॥

तावुभौ नरशार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ।
जीमूताविव चाऽन्योन्यं प्रववर्षतुराहवे ॥१५॥

वे दोनों नरश्रेष्ठ, दाढ़ों वाले शार्दूलों की भांति युद्ध कर रहे थे और रण में एक दूसरे के ऊपर मेघ की भांति वर्षा करते जाते थे ॥१५॥

तलशब्दरवैश्चैव त्रासयेतां परस्परम्।
शरजालैश्च विविधैस्त्रासयामासतुर्मृधे ॥१६॥

ये दोनों वीर, युद्धस्थल में अपने २ करतल घोष तथा अनेक प्रकार के बाणसमूह से एक दूसरे को भयभीत बना रहे थे ॥१६॥

अन्योन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ।
ततो भीमो महाबाहुः सूतपुत्रस्य भारत ॥१७॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्वा ननाद परवीरहा।

ये दोनों युद्ध में एक दूसरे पर कुपित हो रहे थे और एक दूसरे के प्रहार का वैसा ही प्रत्युत्तर देना चाहते थे। हे भारत अब महाबाहु, शत्रु-नाशक भीमसेन ने सूत-पुत्र कर्ण के धनुष को क्षुर के समान बाण से काट कर बड़ी तीक्ष्ण गर्जना की ॥१७॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महारथः ॥१८॥
अन्यत्कार्मुकमादत्त भारघ्नं वेगवत्तरम्।

तस्याथ निमेषार्धाच्चिच्छेदाऽस्य वृकोदरः ॥१६॥
तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं षष्ठमेव हि ।
सप्तमं चाऽष्टमं चैव नवमं दशमं तथा ॥२०॥
एकादशं द्वादशं च त्रयोदशमथाऽपि च ।
चतुर्दशं पञ्चदशं षोडशं च वृकोदरः ॥ २१ ॥
तथा सप्तदशं वेगादष्टादशमथाऽपि वा ।
बहूनि भीमश्चिच्छेद कर्णस्यैव धनूंष हि ॥२२॥
निमेषार्धात्तत कर्णो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ।

हे राजन ! महारथी सूत-पुत्र कर्ण ने उस कटे हुए धनुष को फैंक कर युद्ध के भार को सहने वाले, अत्यन्त वेगशाली दूसरे धनुष को उठाया। वृकोदर भीम ने आधे मिनट में ही उसे भी काट गिराया। इसी प्रकार कर्ण ने तीसरा, चौथा, पांचवां-छठा, सातवां, आठवां, नौवां, दसवां, ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां, चौदहवां, पन्द्रहवां. सोलहवां, सत्रहवां और अट्ठारहवां धनुष वेग के साथ उठाया और उसी वेग से भीमसेन ने कर्ण के बहुत से धनुष काट गिराए। इस प्रकार भीमसेन धनुप काट रहा था और कर्ण थोड़ी ही देर में धनुपधारी दिखाई देता था ॥१८-२२॥

दृष्ट्वा स कुरुसौवीरसिन्धुवीरबलक्षयम् ॥ २३ ॥
सवर्मध्वजशस्त्रैश्च पतितैः संवृतां महीम् ।
हस्त्यश्वरथदेहांश्च गतासून्प्रेक्ष्य सर्वशः ॥ २४ ॥
सूतपुत्रस्य संरम्भाद्दीप्तं वपुरजायत ।

स विस्फार्य महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ २५ ॥
भीमं प्रैक्षत राधेयो घोरं घोरेण चक्षुषा ।

जब सूत-पुत्र ने कुरु, सौवीर, सिन्धु देश के वीरों का नाश तथा कवच, ध्वजा और शस्त्रों के साथ गिरे हुए सैनिकों से व्याप्त पृथिवी को देखा एवं मरे हुए सब ओर हाथी, अश्व और रथियों के देह दृष्टिगोचर हुए तो इससे कर्ण का शरीर क्रोध से प्रदीप्त हो उठा। राधा-पुत्र कर्ण ने सुवर्ण से विभूषित अपना विशाल धनुष उठाया और अपनी प्रज्वलित दृष्टि से भीम की ओर क्रोध-पूर्वक देखा ॥२३-२५॥

ततः क्रुद्धः शरानस्यन्सूतपुत्रो व्यरोचत ॥२६ ॥
मध्यंदिनगतोऽर्चिष्माञ्शरदीव दिवाकरः ।

इस समय क्रोध में भरे हुए सूत-पुत्र कर्ण बाण फैंकते हुए ऐसे सुन्दर दिखाई देते जैसे-शरद् ऋतु में मध्यान्हगत, किरणधारी सूर्य प्रदीप्त हो उठता है ॥२६॥

मरीचिविकचस्येव राजन्भानुमतो वपुः ॥ २७ ॥
आसीदाधिरथेर्घोरं वपुः शरशताचितम् ।

हे राजन् ! अधिरथ-पुत्र कर्ण का सैंकड़ों बाणों से व्याप्त शरीर ऐसा सुन्दर दिखाई देता था, जैसा किरणों से व्याप्त सूर्य का देदीप्यमान आकार दिखाई देता है ॥२७॥

कराभ्यामाददानस्य सन्दधानस्य चाऽऽशुगान् ॥२८
कर्षतो मुञ्चतो बाणान्नाऽन्तरं ददृशे रणे ।

अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम् ॥ २९ ॥
कर्णस्याऽऽसीन्महीपाल सव्यदक्षिणमस्यतः ।

हे राजन्! कर्ण, हाथों से बाणों का लेना, चढ़ाना, खैंचना, छोड़ना, इतना जल्दी कर रहे थे, कि इसमें देखने वालों को कुछ भी अन्तर दिखाई नहीं देता था। अग्नि के चक्कर की भांति कर्ण के अस्त्रों का चक्र बंध रहा था, जिससे वे दांयी और बांयी दोनों ओर लगातार बाण फैंकते जा रहे थे ॥२८-२९॥

स्वर्णपुङ्खाः सुनिशिताः कर्णचापच्युताः शराः॥३०॥
प्राच्छादयन्महाराज दिशः सूर्यस्य च प्रभाः ।

हे महाराज! सुवर्ण के पुङ्ख वाले अत्यन्त तीक्ष्ण, कर्ण के धनुष से निकले हुए, बाणों ने दिशा और सूर्य की प्रभा को आच्छादित कर दिया ॥३०॥

ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३१॥
धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः ।

इसके अनन्तर सुवर्ण के मूल से सुशोभित, नतपर्वधारी, धनुष से निकले हुए बाणों के आकाश में बहुत से समूह दिखाई देने लगे ॥३१॥

बाणासनादाधिरथेः प्रभवन्ति स्म सायकाः ॥३२ ॥
श्रेणीकृता व्यरोचन्त राजन्क्रौञ्चा इवाऽम्बरे ।

हे राजन्! अधिरथ-पुत्र कर्ण के धनुष से निकले हुए बाण, ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे आकाश में पंक्ति बांधे हुए हंस उड़े जा रहे हों ॥३२॥

गार्ध्रपत्राञ्छिलाधौतान्कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ३३ ॥
महावेगान्प्रदीप्ताग्रान्मुमोचाऽधिरथिः शरान् ।

अधिरथ-पुत्र कर्ण, गृद्ध पक्षी के पंखों से सुशोभित; शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, सुवर्ण से विभूषित, महा वेगशाली चमकते हुए अग्र भाग वाले बाणों को वेग से छोड़ने लगे ॥३३॥

ते तु चापबलोद्भूताः शातकुम्भविभूषिताः ॥ ३४ ॥
अजस्रमपतन्बाणा भीमसेनरथं प्रति ।

धनुष की शक्ति से फैंके हुए, सुवर्ण से विभूषित, ये बाण, लगातार भीमसेन के रथ पर आ २ कर गिरने लगे ॥३४॥

ते व्योम्नि रुक्मविकृता व्यकाशन्त सहस्रशः ॥३५॥
शलभानामिव व्राताः शराः कर्णसमीरिताः ।

सुवर्ण से निर्मित, कर्ण के फैंके हुए सहस्रों बाण, आकाश में इस तरह चमकने लगे, जैसे-शलभ पक्षियों के समूह आकाश में उड़ रहे हों ॥३५॥

चापादाधिरथेर्बाणाः प्रपतन्तश्चकाशिरे ॥ ३६ ॥
एको दीर्घ इवाऽत्यर्थमाकाशे संस्थितः शरः ।

कर्ण के धनुष से निकले हुए बहुत से बाणों का समूह आकाश में इस तरह सुशोभित होने लगा; मानों एक ही लम्बा बाण, आकाश में बहुत दूर तक छोड़ दिया गया हो ॥३६॥

पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ ३७ ॥
कर्णः प्राच्छादयत्क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः ।

मेघ जैसे जल धाराओं से पर्वत को ढक देता है, क्रोधातुर कर्ण ने भी भीमसेन को अपनी बाण-वर्षा से उसी तरह व्याप्त कर दिया ॥३७॥

तत्र भारत भीमस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् ।
व्यवसायं च पुत्रास्ते ददृशुः सहसैनिकाः ॥ ३८ ॥

हे भारत ! इस स्थान में भीम के बल, पराक्रम, शक्ति और प्रयत्न को अपने सैनिकों के साथ तुम्हारे सारे पुत्र खड़े २ देख रहे थे ॥३८॥

तां समुद्रमिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
अचिन्तयित्वा भीमस्तु क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार उछलते हुए समुद्र की भांति उठी हुई कर्ण की बाण-वर्षा की कुछ भी परवाह न करके भीमसेन ने क्रोध-पूर्वक कर्ण पर आक्रमण किया ॥३९॥

रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्याऽऽसीद्विशाम्पते ।
आकर्षान्मण्डलीभूतं शक्रचापमिवाऽपरम् ॥ ४० ॥
तस्माच्छराः प्रादुरासन्पूरयन्त इवाऽम्बरम् ॥ ४१ ॥

हे विशाम्पते ! सुवर्ण की पीठ से सुशोभित भीमसेन का विशाल धनुष था, जब उसने उसको खैंचा-तो उसका मण्डल बन गया और वह दूसरा इन्द्र धनुष सा प्रतीत होने लगा। उससे इतने बाण उत्पन्न हुए, कि जिनसे आकाश भरता चला गया ॥४०-४१॥

सुवर्णपुङ्खैर्भीमेन सायकैर्नतपर्वभिः ।
गगने रचिता माला काञ्चनीव व्यरोचत ॥ ४२ ॥

भीमसेन ने सुवर्ण मूलधारी, नतपर्व वाले बाण इतने छोड़े, कि जिनसे आकाश में सुवर्ण की माला सी बन गई ॥४२॥

ततो व्योम्नि विपक्तानि शरजालानि भागशः ।
आहतानि व्यशीर्यन्त भीमसेनस्य पत्रिभिः ॥ ४३ ॥

हे राजन् ! जो कर्ण द्वारा छोड़े हुए बाण आकाश में उड़ रहे थे, उन प्रत्येक बाण से भीमसेन के बाणों ने टकरा कर उन्हें काट २ कर भूमि में गिरा दिया ॥४३॥

कर्णस्य शरजालौघैर्भीमसेनस्य चोभयोः ।
अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैरञ्जोगतिभिराहवे ॥४४॥

कर्ण और भीमसेन इन दोनों के बाणजालों का समूह, अग्नि की चिनगारी के समान स्पर्श धारण करके रण में वायुके समान वेग से उड़े जा रहे थे ॥४४॥

तैस्तैः कनकपुङ्खानां द्यौरासीत्संवृता व्रजैः ।
न स्म सूर्यस्तदा भाति न स्म वाति समीरणः ॥४५॥
शरजालावृते व्योम्नि न प्राज्ञायत किञ्चन ।

इन सुवर्णमूलधारी बाणों के समूह से आकाश इतना भर गया, कि न तो सूर्य ही दिखाई देता था और न वायु ही चल रहा था। इस समय सर्वत्र बाण-जाल छा रहे थे, जिससे किसी भी बात का कुछ पता न चलता था ॥४५॥

स भीमं छादयन्बाणैः सूतपुत्रः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥
उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः ।

इस प्रकार अपने पृथक् २ बाणजाल से भीम को आच्छादित करते हुए सूत-पुत्र कर्ण, महावीर भीमसेन के बल को दवा कर उसकी ओर बढ़े चले गए ॥४६॥

तयोर्विसृजतोस्तत्र शरजालानि मारिष ॥ ४७ ॥
वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम् ।

हे मारिष ! इन दोनों वीरों के छोड़े हुए बाण समूह एक दूसरे से आसक्त हो रहे थे और वायु की भांति आकाश में उड़ रहे थे।

अन्योन्यशरसंस्पर्शात्तयोर्मनुजसिंहयोः ॥ ४८ ॥
आकाशे भरतश्रेष्ठ पावकः समजायत ।

हे भरतश्रेष्ठ ! इन दोनों वीर मनुष्यों में सिंह, भीम और कर्ण के बाणों के टकराने से आकाश में आग सी लगने लगी ॥४८॥

तथा कर्णः शितान्बाणान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥४९॥
सुवर्णविकृतान्क्रुद्धः प्राहिणोद्वधकांक्षया ।

अब क्रोध में भरे हुए कर्ण ने कारीगर द्वारा साफ किये हुए तीक्ष्ण, सुवर्णजटित बाण भीमसेन के वध की अभिलाषा से छोड़े।

तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ॥५०॥
विशेषयन्सूतपुत्रं भीमस्तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।

अपनी बाण विद्या को विशेषता से प्रकट करते हुए भीमसेन ने भी अपने बाणों से आकाश में ही कर्ण के बाणों के तीन २ टुकड़े कर दिए और उससे कहा-जरा ठहरो ? ठहरो ? ॥५०॥

पुनश्चाऽसृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ॥५१॥
अमर्षी बलवान्क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ।

इसके अनन्तर फिर पाण्डु-पुत्र क्रोधातुर, आवेश में भरे हुए, बलवान् भीमसेन ने बहुत उग्र बाण-वर्षा करना आरम्भ किया। जो बाणवर्षा जगत् को दग्ध करने वाली आग सी प्रतीत होती थी।

ततश्चटचटाशब्दो गोधाघातादभूत्तयोः ॥५२॥
तलशब्दश्च सुमहान्सिंहनादश्च भैरवः ।
रथनेमिनिनादश्च ज्याशब्दश्चैव दारुणः ॥५३॥

अब दोनों ओर करतल में पहिने हुए गोधा जन्तु की त्वचा में धनुप चलाने से महान् चट-चटा शब्द होने और करतलों का शब्द तथा भीपण सिंहनाद फैलने लगा। रथ की नेमि का घोप एवं धनुप की डोरी की ध्वनि भी सर्वत्र फैल गई ॥५२-५३॥

योधा व्युपारमन्युद्धाद्दिदृक्षन्तः पराक्रमम् ।
कर्णपाण्डवयो राजन्परस्परवधैषिणोः ॥५४॥

हे राजन्! एक दूसरे के वध के अभिलाषी कर्ण और भीम के युद्ध में उनके पराक्रम के देखने के अभिलाषी योद्धा, युद्ध छोड़कर इस कौतुक (तमाशा) को देखने लगे ॥५४॥

देवर्षिसिद्धगन्धर्वाः साधुसाध्वित्यपूजयन् ।
मुमुचुः पुष्पवर्षं च विद्याधरगणास्तथा ॥५५॥

इस समय देव, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधरों के गण, सब वीरों की बड़ी प्रशंसा और पुष्पों की वर्षा करने लगे ॥५५॥

ततो भीमो महाबाहुः संरम्भी दृढविक्रमः ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शरैर्विव्याध सूतजम् ॥५६॥

इसके अनन्तर महाबाहु, अत्यन्त पराक्रमी, आवेश में भर जाने वाले भीम ने अपने अस्त्रों से कर्ण के अस्त्रों को रोक कर उसे बाणों से क्षत-विक्षत कर दिया ॥५६॥

कर्णोऽपि भीमसेनस्य निवार्येषून्महाबलः ।
प्राहिणोन्नव नाराचानाशीविषसमान्रणे ॥५७॥

महाबली कर्ण ने भी भीमसेन के बाणों को रोक कर आशी-विष सर्प के तुल्य भीषण नौ बाणों को रण में भीमसेन पर फेंका ।

तावद्भिरथ तान्भीमो व्योम्नि चिच्छेद पत्रिभिः ।
नाराचान्सूतपुत्रस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥५८॥

हे राजन् ! भीमसेन ने भी वे ही नौ अपने बाण छोड़े, जिन से कर्ण के बाणों को आकाश में ही काट गिराया और फिर उससे कहा-जरा ठहरा रह ! ॥५८॥

ततो भीमो महाबाहुः शरं क्रुद्धान्तकोपमम् ।
मुमोचाऽऽधिरथेर्वीरो यमदण्डमिवाऽपरम् ॥५९॥

तमापतन्तं चिच्छेद राधेयः प्रहसन्निव ।
त्रिभिः शरैः शरं राजन्पाण्डवस्य प्रतापवान् ॥६०॥

हे राजन् ! अब महाबाहु, महावीर, भीम ने काल के समान कुपित होकर दूसरे यमदण्ड के सदृश एक बाण अधिरथ-पुत्र कर्ण पर छोड़ा । उस बाण को आता हुआ देखकर महाप्रतापी

राधा-पुत्र कर्ण मुसकुराया और उसने तीन बाण छोड़कर भीमसेन के इस प्रचण्ड बाण को काट डाला ॥५९-६०॥

पुनश्चाऽसृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत् ॥६१॥

पाण्डु-पुत्र भीम ने अब फिर महा उग्र बाणवर्षा करना आरम्भ किया, परन्तु कर्ण ने नितान्त निर्भीक भाव से भीम के सारे अस्त्रों के प्रहारों को सहन किया ॥६१॥

युध्यमानस्य भीमस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ।
तस्येषुधी धनुर्ज्यां च बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥६२॥
रश्मीन्योक्त्राणि चाऽश्वानां क्रुद्धः कर्णोऽच्छिनन्मृधे ।
तस्याऽश्वांश्च पुनर्हत्वा सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥६३॥

जब इस प्रकार युद्ध हो रहा था, तो क्रोधातुर सूत-पुत्र कर्ण ने अपनी अस्त्रविद्या के कौशल से भीमसेन के तूणीर, धनुष, धनुष की डोरी, अश्वों की रास, जोते, नतपर्व वाले बाणों से रण में काट गिराए। भीमसेन ने भी पांच बाण छोड़कर कर्ण के सारथि और अश्वों को मार गिराया ॥६२-६३॥

सोऽपसृत्य द्रुतं सूतो युधामन्यो रथं ययौ ।
विहसन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलद्युतिः ॥६४॥

इस समय कर्ण, क्रोध में दावानल के समान भीषण हो रहा था, वह भीम की ओर हँसता हुआ शीघ्रता से दौड़ कर युधामन्यु के रथ पर जा चढ़ा ॥६४॥

ध्वजं चिच्छेद राधेयः पताकां च व्यपातयत ।
स विधन्वा महाबाहू रथशक्तिं परामृशत् ॥६५॥
तां व्यवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं प्रति ।

अब कर्ण ने भीमसेन की ध्वजा और पताका काट गिराई। इस समय भीमसेन धनुष से रहित था, इसलिए उसने रथशक्ति नामक शस्त्र उठाया और क्रोध में भर कर उसे कर्ण के रथ पर फैंका ॥६५॥

तामाधिरथिरायस्तः शक्तिं काञ्चनभूषणाम् ॥६६॥
आपतन्तीं महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ।
साऽपतद्दशधा छिन्ना कर्णस्य निशितैः शरैः ॥६७॥
अस्यतः सूतपुत्रस्य मित्रार्थे चित्रयोधिनः ।

अधिरथ-पुत्र कर्ण ने भी सुवर्ण विभूषित, महान उल्कापात के समान चमकती और अपने ऊपर गिरती हुई उस शक्ति को बड़ी शीघ्रता से दश बाणों के द्वारा काट गिराया। कर्ण के तीक्ष्ण बाणों से वह शक्ति कट कर दश टुकड़ों में नीचे गिरी। यह सब कुछ विचित्र ढंग से युद्ध करने वाला सूत-पुत्र कर्ण, अपने मित्र राजा दुर्योधन के प्रिय के लिए कर रहा था ॥६६-६७॥

स चर्माऽऽदत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥६८॥
खड्गं चाऽन्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयस्य वा ।

अब कुन्ती-पुत्र भीमसेन ने सुवर्ण से समुज्ज्वल एक ढाल तथा तलवार उठाई। इस समय तो भीमसेन ने मृत्यु या विजय इनमें से एक को ग्रहण कर लेने की ठान ली थी ॥६८॥

तदस्य तरसा क्रुद्धो व्यधमच्चर्म सुप्रभम् ॥६६॥
शरैर्बहुभिरत्युग्रैः प्रहसन्निव भारत ।

हे भारत ! अब कर्ण ने क्रोधातुर होकर बड़े वेग से उस चमकीले चर्म (ढाल) को बहुत से बड़े उग्र बाण छोड़कर हंसते २ काट गिराया ॥६६॥

स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्छितः ॥७०॥
असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन्कर्णरथं प्रति ।

हे महाराज ! भीमसेन की ढाल कट चुकी और वह रथ से तो पहिले से ही रहित हो चुका था-अब उसने ताक कर कर्ण के रथ पर तलवार का वार किया ॥७०॥

स धनुः सूतपुत्रस्य सज्यं छित्वा महानसिः ॥७१॥
पपात भुवि राजेन्द्र क्रुद्धः सर्प इवाऽम्बरात् ।

हे राजेन्द्र ! सूत-पुत्र कर्ण ने धनुष चढ़ा रखा था, वह विशाल तलवार उस धनुष पर पड़ी-जिससे उसने उसके टुकड़े २ उड़ा दिए। इसके अनन्तर वह आकाश से क्रोधातुर सर्प की भांति भूमि पर गिर गई ॥७१॥

ततः प्रहस्याऽऽधिरथिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥७२॥
शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम् ।
व्यायच्छत्स शरान्कर्णः कुन्तीपुत्रजिघांसया ॥७३॥
सहस्रशो महाराज रुक्मपुङ्खान्सुतेजनान् ।

हे महाराज ! अब अधिरथ-पुत्र कर्ण ने हँसते हुए दूसरा धनुष उठाया और वह क्रोध में भर कर शत्रु-नाशक, वेगशाली, दृढ़ धनुर्धर, कुन्ती-पुत्र भीम पर उसके मारने की इच्छा से सुवर्ण मूल से सुन्दर, अत्यन्त तीक्ष्ण सहस्रों बाणों को छोड़ने लगा ॥७२-७३॥

स वध्यमानो बलवान्कर्णचापच्युतैः शरैः ॥७४॥
वैहायसं प्राक्रमद्वै कर्णस्य व्यथयन्मनः ।

कर्ण के धनुष से निकले हुए इन बाणों से महाबलवान् भीमसेन क्षत-विक्षत हो गए और इस समय कर्ण के मन को कातर करते हुए आकाश में जा उड़े ॥७४॥

स तस्य चरितं दृष्ट्वा संग्रामे विजयैषिणः ॥७५॥
लयमास्थाय राधेयो भीमसेनमवञ्चयत् ।

विजयाभिलाषी भीम के इस चरित्र को देखकर राधा-पुत्र कर्ण रथ में छुप गया और उसने इस प्रकार भीमसेन को धोखा देकर अपने को बचा लिया ॥७५॥

तं च दृष्ट्वा रथोपस्थे निलीनं व्यथितेन्द्रियम् ॥७६॥
ध्वजमस्य समासाद्य तस्थौ भीमो महीतले ।

जब भीमसेन ने रथ के मध्य में इन्द्रियों की पीड़ा से आतुर कर्ण को छुपा हुआ देखा, तो भीम पृथिवी पर उतर आया और कर्ण की ध्वजा को पकड़ कर खड़ा हो गया ॥७६॥

तदस्य कुरवः सर्वे चारणाश्चाऽभ्यपूजयन् ॥७७॥
यदियेष रथात्कर्णं हर्तुं तार्क्ष्य इवोरगम् ।

भीमसेन के इस पराक्रम की सारे कौरव और चारण लोग भी प्रशंसा करने लगे, कि जो यह सर्प को गरुड़ की भांति रथ से कर्ण को खैंच लेना चाहता है ॥७७॥

सच्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥७८॥
स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः ।

इस समय भीम का धनुष कटा हुआ है और वह रथ से भी विहीन है, तो भी अपने धर्म का अनुपालन करता हुआ अपने रथ को पीछे करके युद्ध के लिए उपस्थित ही रहा ॥७८॥

तद्विहत्याऽस्य राधेयस्तत एनं समभ्ययात् ॥७६॥
संरम्भात्पाण्डवं संख्ये युद्धाय समुपस्थितम् ।

राधा-पुत्र कर्ण ने भीमसेन के इस आक्रमण को भी निष्फल कर दिया और वह बड़े क्रोध में भर कर युद्ध के लिए सन्नद्ध भीमसेन पर रण में बुरी तरह झपटा ॥७६॥

तौ समेतौ महाराज स्पर्धमानौ महाबलौ ॥८०॥
जीमूताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नरर्षभौ ।

हे महाराज ! वे दोनों इकट्ठे ही महाबली नरप्रवीर कर्ण और भीम, एक दूसरे के जीतने की स्पर्धा में संलग्न हो रहे थे तथा वर्षाकाल में मेघों की भांति गर्जना कर रहे थे ॥८०॥

तयोरासीत्सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥८१॥
अमृष्यमाणयोः संख्ये देवदानवयोरिव ।

इन दोनों नरसिंहों का अब भीषण युद्ध चल पड़ा। जैसे-एक दूसरे को नहीं सहने वाले देव और असुरों में रण मच रहा हो।

क्षीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभिद्रुतः ॥८२॥
दृष्ट्वाऽर्जुनहतान्नागान्पतितान्पर्वतोपमान् ।
रथमार्गविघातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥८३॥

इस समय भीमसेन के सारे शस्त्र क्षीण हो चुके थे और कर्ण ने बुरी तरह उसको दबा रखा था। दूसरी ओर अर्जुन के मारे हुए पर्वत के समान हाथी पड़े थे, जिनसे कर्ण के रथ के चलने को उत्तम मार्ग भी नहीं था-यह सब कुछ देखकर शस्त्रहीन पैदल ही भीमसेन कौरवसेना में आगे घुस गया ॥८२-८३॥

हस्तिनां व्रजमासाद्य रथदुर्गं प्रविश्य च ।
पाण्डवो जीविताकांक्षी राधेयं नाऽभ्यहारयत् ॥८४॥

पाण्डु-पुत्र भीमसेन हाथियों के झुंड और रथ के दुर्ग में प्रविष्ट हो गया, जिससे उसके प्राणों की जैसे-तैसे रक्षा हो गई और फिर उसने कर्ण के ऊपर प्रहार करने की इच्छा भी न की ॥८४॥

व्यवस्थानमथाऽऽकांक्षन्धनञ्जयशरैर्हतम् ।
उद्यम्य कुञ्जरं पार्थस्तस्थौ परपुरञ्जयः ॥८५॥
महौषधिसमायुक्तं हनूमानिव पर्वतम् ।

अब शत्रुपुरविजयी कुन्ती-पुत्र भीमसेन, कर्ण के बाणों के बीच में कोई व्यवधान चाहते थे; इन्होंने अर्जुन के बाण से मरा हुआ एक हाथी इस तरह उठा लिया जैसे-हनूमान् ने महौषधियों के पर्वत को उठा लिया था और वे उसकी ओट में खड़े हो गए।

तमस्य विशिखैः कर्णो व्यधमत्कुञ्जरं पुनः ॥८६॥
हस्त्यङ्गान्यथ कर्णाय प्राहिणोत्पाण्डुनन्दनः ।

जब कर्ण ने अपने बाणों से इसके इस हाथी को भी काट गिराया, तो पाण्डु-नन्दन भीमसेन उस हाथी के अङ्ग प्रत्यङ्गों को कर्ण के ऊपर फैंकने लगे ॥८६॥

चक्राण्यश्वांस्तथा चाऽन्यद्यद्यत्पश्यति भूतले ॥८७॥
यत्तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः ।
तदस्य सर्वं चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः ॥८८॥

इस समय पाण्डु-पुत्र भीमसेन क्रोधातुर हो रहे थे। उन्हें जो रथ का चक्र, मरा हुआ अश्व तथा अन्य जो कुछ भी पृथिवी पर दिखाई देता था-उसको लेकर कर्ण पर फैंक देते थे, परन्तु जो २ ये फैंकते कर्ण भी उन सबको अपने तीक्ष्ण बाणों से काट फैंकता था ॥८७-८८॥

भीमोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वज्रगर्भां सुदारुणाम् ।
हन्तुमैच्छत्सूतपुत्रं संस्मरन्नर्जुनं क्षणात् ॥८९॥
शक्तोऽपि नाऽवधीत्कर्णं समर्थः पाण्डुनन्दनः ।
रक्षमाणः प्रतिज्ञां तां या कृता सव्यसाचिना ॥९०॥

अब भीमसेन ने वज्र के तुल्य भीषण मुट्ठी बांधी और सूत-पुत्र कर्ण को मार देना चाहा, परन्तु उसी क्षण उन्हें अर्जुन की प्रतिज्ञा याद आ गई। पाण्डु-नन्दन भीमसेन कर्ण के वध में सब तरह समर्थ और शक्तिशाली था, तो भी उसने अर्जुन की प्रतिज्ञा के कारण उसे नहीं मारा और अर्जुन के प्रतिज्ञा की रक्षा करना चाहा।

तमेवं व्याकुलं भीमं भूयो भूयः शितैः शिरैः ।
मूर्च्छयाऽभिपरीताङ्गमकरोत्सूतनन्दनः ॥९१॥

अब भीमसेन व्याकुल हो रहा था, तो भी बार २ तीक्ष्ण बाण छोड़ते हुए सूत-पुत्र कर्ण ने भीमसेन को मूर्च्छित कर दिया ॥९१॥

व्यायुधं नाऽवधीच्चैनं कर्णः कुन्त्या वचः स्मरन् ।
धनुषोऽग्रेण तं कर्णः सोऽभिद्रुत्य परामृशत् ॥९२॥
धनुषा स्पृष्टमात्रेण क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
आच्छिद्य स धनुस्तस्य कर्णमूर्धन्यताडयत् ॥९३॥

कर्ण भी इस समय भीमसेन को मार सकता था, परन्तु उसे शस्त्रहीन समझ कर तथा कुन्ती को दिये हुए वचन का स्मरण करके नहीं मारा । इस समय कर्ण पहुंचा और उसने झपट कर अपने धनुष के अग्रभाग से भीमसेन को छू लिया, परन्तु ज्योंही कर्ण ने भीम के धनुष छुवाया-त्योंही वह क्रुद्ध हुए सर्प की भांति फूत्कार मार कर सचेत हो गया । उसने कर्ण का धनुष छीन लिया और उसे ही घुमा कर कर्ण के मस्तक में मारा ॥९३॥

ताडितो भीमसेनेन क्रोधादारक्तलोचनः ।
विहसन्निव राधेयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥९४॥

जब भीमसेन ने इस प्रकार प्रहार किया-तो कर्ण की आंखें क्रोध से लाल हो गईं । अब हँसते २ राधा-पुत्र कर्ण ने यह वाक्य कहा ॥९४॥

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥६५॥
यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयं च पाण्डव ।
तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धेषु कदाचन ॥६६॥
मूलपुष्पफलाहारो व्रतेषु नियमेषु च ।
उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥६७॥

अरे मूंछ दाढ़ी हीन ! पेटार्थी, शस्त्र विद्या के ज्ञान से रहित, संग्राम से भयभीत होने वाले मूर्ख भीम ! अब तू लड़ने की चेष्टा न कर । हे पाण्डु-पुत्र ! दुर्मति भीम ! जहां पर बहुत सा खाना, पीना, भोजन आदि हो-वहीं तेरी आवश्यकता है, तू युद्ध के योग्य नहीं है अथवा कन्द, मूल और फलों का आहार करके व्रत नियम परायण होकर तुम्हें वन में निवास करना चाहिए-तू युद्ध कला को क्या जान सकता है ॥६५-६७॥

क्व युद्धं क्व मुनित्वं च वनं गच्छ वृकोदर ।
न त्वं युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भवान् ॥६८॥

हे वृकोदर (पेटार्थी) ! कहां तो युद्ध और कहां मुनिवृत्ति ? अब तो तू वन को जा । हे तात ! तू युद्ध के योग्य नहीं है, आपको तो वन में रहना ही पसन्द है ॥६८॥

सूदान्भृत्यजनान्दासांस्त्वं गृहे त्वरयन्भृशम् ।
योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद्भोजनार्थं वृकोदर ॥६९॥

हे वृकोदर ! भोजन में देर करने वाले। रसोइए, नौकर चाकर, दासों को शीघ्रता के साथ प्रेरित करता हुआ, तू उनके क्रोध-पूर्वक ताड़न करने के योग्य है ॥६६॥

मुनिर्भूत्वाऽथवा भीम फलान्यादत्स्व दुर्मते ।
वनाय व्रज कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥१००॥

हे मूर्ख भीम ! अब तो तू मुनि बनकर वन में फल इकट्ठे कर। हे कुन्ती-पुत्र ! अब फिर तू वन में निकल जा, क्योंकि तू युद्धविद्या में कुशल नहीं है ॥१००॥

फलमूलाशने शक्तस्त्वं तथाऽतिथिपूजने ।
न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मन्ये वृकोदर ॥१०१॥

हे वृकोदर ! तू तो कन्द, मूल और फलों के भोजन करने और अतिथियों को भोजन कराने में योग्य है। मैं तो तुझे शस्त्र चलाने के कार्य युद्ध में योग्य नहीं मानता हूं ॥१०१

कौमारे यानि वृत्तानि विप्रियाणि विशाम्पते ।
तानि सर्वाणि चाप्येनं रूक्षाण्यश्रावयद्भृशम् ॥१०२॥

हे विशाम्पते ! इस प्रकार बाल्यावस्था में जो २ अनुचित और अप्रिय कर्म भीमसेन ने किए, कर्ण ने वे सब अत्यन्त कटुता-पूर्ण भाषा में भीमसेन को सुनाए ॥१०२॥

अथैनं तत्र संलीनमस्पृशद्धनुषा पुनः ।
प्रहसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वृषस्तदा ॥१०३॥

योद्धव्यं मारिषाऽन्यत्र न योद्धव्यं च मादृशैः ।
मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चाऽन्यच्च विद्यते ॥१०४॥

इसके अनन्तर गात्रों के संकोच में पड़े हुए, भीमसेन को फिर कर्ण ने अपने धनुष से स्पर्श किया और हंसते २ यह वाक्य भीम से कहा—हे आर्य ! भीम ! तुम युद्ध करो और अवश्य करो-परन्तु कभी मुझ जैसे के सन्मुख न पड़ा करो । मुझ जैसों के साथ युद्ध छिड़ जाने पर तो यह आज के समान या इससे भी बुरी दशा होगी ॥१०३-१०४॥

गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ तौ त्वां रक्षिष्यतो रणे ।
गृहं वा गच्छ कौन्तेय किं ते युद्धेन बालक ॥१०५॥

हे कुन्ती-पुत्र ! अब तू जाना चाहे, तो वहां चला जा, जहां कृष्णार्जुन युद्ध कर रहे हैं । वे तेरी रण में अवश्य रक्षा करेंगे । बच्चू ! अपने घर को जाओ-तुझे युद्ध से क्या लेना है ॥१०५॥

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽतिदारुणम् ।
उवाच कर्णं प्रहसन्सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥१०६॥

जब भीमसेन ने कर्ण के ये दारुण वचन सुने-तो सबके सुनते २ हंसते हुए भीम ने कर्ण से ये वचन कहे ॥१०६॥

जितस्त्वमसकृद्दुष्ट कत्थसे किं वृथाऽऽत्मना ।
जयाजयौ महेन्द्रस्य लोके दृष्टौ पुरातनैः ॥१०७॥

अरे दुष्ट ! तुझे बार २ मैंने जीत लिया था, अब तू क्यों वृथा अपनी डींग मार रहा है । वृद्ध पुरुष तो जय पराजय को ईश्वर के अधीन मानते हैं-इसमें अपनी प्रशंसा मारने से क्या गौरव है।

मल्लयुद्धं मया सार्धं कुरुदुष्कुलसम्भव ।
महाबलो महाभोगी कीचको निहतो यथा ॥१०८
तथा त्वां घातयिष्यामि पश्यत्सु सर्वराजसु ।
भीमस्य मतमाज्ञाय कर्णो बुद्धिमतां वरः ॥१०९॥
विरराम रणात्तस्मात्पश्यतां सर्वधन्विनाम् ।

अरे दुष्कुलसम्भव ! यदि शक्ति है, तो आ मेरे साथ मल्ल-युद्ध (कुश्ती) कर ले । तुझे नहीं मालूम है, मैंने महाबली और महा ऐश्वर्य-शाली कीचक को भी मार गिराया था । जिस तरह मैंने कीचक को मारा था, आज उसी तरह तेरा भी विनाश करूंगा और ये सारे राजा खड़े २ देखते रहेंगे । जब भीमसेन की यह दशा देखी, तो कर्ण भी बड़ा बुद्धिमान् था, वह सारे धनुर्धरों के देखते २ भीमसेन के साथ युद्ध करने से पीछे हट गया ॥१०९॥

एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन्व्यकत्थयत् ॥११०॥
प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः ।

हे राजन् ! यह सारी बातें भीमसेन को रथरहित करके कर्ण ने अपनी प्रशंसा में वृष्णिसिंह श्रीकृष्ण और महात्मा अर्जुन के देखते २ की ॥११०॥

ततो राजञ्शिलाधौताञ्शराञ्शाखामृगध्वजः ॥१११॥
प्राहिणोत्सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः ।

हे राजन् ! अब कपिध्वजधारी अर्जुन ने शिला पर तीक्ष्ण किये हुए अनेक बाण श्रीकृष्ण की प्रेरणा से सूत-पुत्र कर्ण पर छोड़े ।

ततः पार्थभुजोत्सृष्टाः शराः कनकभूषणाः ॥११२॥
गाण्डीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाऽऽविशन् ।

अर्जुन की भुजा से निकले हुए, सुवर्णविभूषित, गाण्डीव धनुष द्वारा फेंके हुए बाण, कर्ण के शरीर में इस तरह घुस गए-जैसे हंस, क्रौंच पर्वत के बिल में घुस जाते हैं ॥११२॥

स भुजङ्गैरिवाऽऽविष्टैर्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥११३॥
भीमसेनादपासेधत्सूतपुत्रं धनञ्जयः ।

गाण्डीव से छोड़े हुए, सर्प की भांति घुसने वाले बाणों से धनञ्जय अर्जुन ने सूत-पुत्र कर्ण को भीमसेन के समीप से दूर कर दिया ॥११३॥

स च्छिन्नधन्वा भीमेन धनञ्जयशराहतः ॥११४॥
कर्णो भीमादपायासीद्रथेन महता द्रुतम् ।

भीमसेन ने तो पूर्व से ही कर्ण के धनुष को छिन्न-भिन्न कर रखा था। अब कर्ण, अर्जुन के बाण से आहत होकर अपने वेग-शाली रथ के द्वारा बड़ी शीघ्रता से भीम के समीप से चला गया।

भीमोऽपि सात्यकेर्वाहं समारुह्य नरर्षभः ॥११५॥
अन्वयाद्भ्रातरं संख्ये पाण्डवं सव्यसाचिनम् ।

इसके अनन्तर नर-प्रवीर भीमसेन भी सात्यकि के रथ पर चढ़ गया और सव्यसाची, पाण्डु-पुत्र, अपने भ्राता अर्जुन की सहायता के निमित्त रण में सात्यकि के साथ आगे चल दिया॥११५

ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनञ्जयः ॥११६॥
नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवाऽन्तकः ।

अब शीघ्रता करने वाले क्रोध से लालनेत्रधारी अर्जुन ने कर्ण को लक्ष्य करके इस तरह बाण छोड़ा, जैसे-यमराज अपने दूत मृत्यु को भेजता है ॥११६॥

स गरुत्मानिवाऽऽकाशे प्रार्थयन्भुजगोत्तमम् ॥११७॥
नाराचोऽभ्यपतत्कर्णं तूर्णं गाण्डीवचोदितः ।
तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा ॥११८॥
धनञ्जयभयात्कर्णमुज्जिहीर्षन्महारथः ।

गाण्डीव धनुष से छोड़ा हुआ अर्जुन का बाण, आकाश में सर्पराज को खोजते हुए गरुड़ के तुल्य बड़ी शीघ्रता से कर्ण की ओर लपका, जिसको आकाश में ही द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपने बाण से काट गिराया, क्योंकि महारथी अश्वत्थामा, कर्ण को धनञ्जय अर्जुन के भय से उद्धार करना चाहते थे ॥११७-११८॥

ततो द्रौणिं चतुःषष्ट्या विव्याध कुपितोऽर्जुनः॥११९॥
शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
स तु मत्तगजाकीर्णमनीकं रथसंकुलम् ॥१२०॥
तूर्णमभ्याविशद् द्रौणिर्धनञ्जयशरार्दितः ।

हे महाराज ! अब अर्जुन भी कुपित हो उठे और उन्होंने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा पर चौसठ बाण छोड़कर उसे आहत कर दिया और कहा—तनिक ठहरा रह ? भाग नहीं-परन्तु धनञ्जय के

बाण से व्याकुल हुआ द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, मदोन्मत्त हाथियों से व्याप्त, रथों से भरी हुई सेना में बड़ी शीघ्रता से घुस गया ॥१२०॥

ततः सुवर्णपृष्ठानां चापानां कूजतां रणे ॥१२१॥
शब्दं गाण्डीवघोषेण कौन्तेयोऽभ्यभवद्बली ।

हे राजन् ! सुवर्ण के पृष्ठ भाग से सुशोभित, धनुषों के गूंजने पर रण में गाण्डीव के घोष से महाबली अर्जुन ने सब के शब्दों को तिरस्कृत कर दिया ॥१२१॥

धनञ्जयस्तथा यान्तं पृष्ठतो द्रौणिमभ्यगात् ॥१२२॥
नाऽतिदीर्घमिवाऽध्वानं शरैः सन्त्रासयन्बलम् ।
विदार्य देहान्नाराचैर्नरवारणवाजिनाम् ॥१२३॥
कङ्कबर्हिणवासोभिर्बलं व्यधमदर्जुनः ।

इस प्रकार भागते हुए अश्वत्थामा के पीछे २ अर्जुन भी दौड़ पड़ा । अर्जुन अधिक दूर नहीं दौड़ा, कि उसने अपने बाणों से कौरवसेना को आहत करना आरम्भ किया । उन्होंने नर, हाथी और अश्वों की देहों को कङ्क और मयूरपक्षी के पंखों से सुशोभित बाणों से चीर फाड़ दिया और सेना को बहुत ही तितर बितर कर दिया ॥१२२-१२३॥

तद्बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विपमानवम् ॥१२४॥
पाकशासनिरायत्तः पार्थः स निजघान ह ॥१२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे एकोनत्रिंश-दधिकशततमोऽध्यायः ॥१३९॥

हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार इन्द्र-पुत्र अर्जुन ने कौरवों के अश्व, हाथी और मनुष्यों की सेना को बड़ी सावधानी के साथ छिन्न-भिन्न करके नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥१२४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भीम और कर्ण के युद्ध का एक सौ उनचालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ चालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति सञ्जय ।
हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! अब हमारा प्रति-दिन प्रदीप्त यश गिरता जा रहा है। हमारे बहुत से योद्धा मारे जा चुके, जिसे मैं काल की विपरीतता ही समझता हूं ॥१॥

धनञ्जयः सुसंक्रुद्धः प्रविष्टो मामकं बलम् ।
रक्षितं द्रौणिकर्णाभ्यामप्रवेश्यं सुरैरपि ॥२॥

हे सूत ! जिस सेना की कर्ण और अश्वत्थामा रक्षा करते हैं-उसमें देवों से भी प्रवेश नहीं किया जा सकता है, परन्तु अर्जुन क्रोध करके मेरी सेना में घुसा चला जाता है ॥२॥

ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्यामाप्यायितपराक्रमः ।
सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृषभेण च ॥३॥

अर्जुन का पराक्रम भीमसेन और सात्यकि के कारण और भी बढ़ गया है। इस समय तो वह श्रीकृष्ण, भीम और शिनिवंश-श्रेष्ठ सात्यकि को साथ लेकर बहुत बढ़ चला है ॥३॥

तदा प्रभृति मां शोको दहत्यग्निरिवाऽऽशयम् ।
ग्रस्तानिव प्रपश्यामि भूमिपालान्ससैन्धवान् ॥४॥

इस बात को जब से मैंने सुना है, तभी से यह शोक की आग मेरे हृदय को भस्म किये डालती है। उस समय से मैं तो सिन्धुराज के सहित सारे राजाओं को नष्ट हुए ही देख रहा हूँ ॥४॥

अप्रियं सुमहत्कृत्वा सिन्धुराजः किरीटिनः ।
चक्षुर्विषयमापन्नः कथं जीवितमाप्नुयात् ॥५॥

सिन्धुराज जयद्रथ ने किरीटधारी अर्जुन का बड़ा ही अपराध किया है और अब वह अर्जुन की दृष्टि के नीचे आ गया है-फिर उसके जीवन के बचने की कौनसी आशा हो सकती है।

अनुमानाच्च पश्यामि नास्ति सञ्जय सैन्धवः ।
युद्धं तु तद्यथा वृत्तं तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वतः ॥६॥

हे सञ्जय ! अब तो मैं अनुमान से देख रहा हूं, कि जयद्रथ मारा जा चुका होगा। उन दोनों का जो युद्ध हुआ-तुम ठीक २ उसे मुझे सुनाओ ॥६॥

यच्च विक्षोभ्य महतीं सेनामालोड्य चाऽसकृत्
एकः प्रविष्टः संक्रुद्धो नलिनीमिव कुञ्जरः ॥७॥

अर्जुन, बड़ी भारी सेना में हलचल मचा कर और बार २ उसे आलोडित करके क्रोध के साथ उसमें अकेला इस तरह घुस गया-जैसे कमल वन में हाथी घुस जाता है ॥७॥

तस्य मे वृष्णिवीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम् ।
धनञ्जयार्थे यत्तस्य कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥८॥

हे सञ्जय ! अब तुम उस वृष्णिवीर युद्ध में बड़े सावधान सात्यकि के युद्ध को भी ठीक २ सुनाओ-जो अर्जुन के निमित्त युद्ध कर रहा था। तुम युद्ध के वृत्तान्त के बताने में बड़े ही कुशल हो ॥८॥

सञ्जय उवाच—

तथा तु वैकर्तनपीडितं तं भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम् ।
समीक्ष्य राजन्नरवीरमध्ये शिनिप्रवीरोऽनुययौ रथेन ॥९॥

सञ्जय बोले-हे राजन् ! शिनिवंशश्रेष्ठ सात्यकि, सूर्य-पुत्र द्वारा पीड़ित पुरुषप्रवीर भीमसेन को इस प्रकार जाते देखकर नरवीरों के मध्य में उसकी सहायता के लिए अपने रथ के द्वारा वहां पहुंचा।

नदन्यथा वज्रधरस्तपान्ते ज्वलन्यथा जलदान्ते च सूर्यः ।
निघ्नन्नमित्रान्धनुषा दृढेन स कम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥

ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षा-काल में जैसे मेघ गर्जते हैं और वर्षा के बाद जैसे-सूर्य चमकते हैं-तैसे ही अपने दृढ़ धनुष से शत्रुओं को मारते हुए और तुम्हारे पुत्र की सेना को कँपाते हुए सात्यकि आगे बढ़ा ॥१०॥

तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैरायोधने वीरतरं नदन्तम् ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं त्वदीयाः सर्वे रथा भारत माधवाग्र्यम् ॥

हे भारत ! इस युद्ध में चांदी के समान श्वेत अश्वों से गमन तथा सिंहनाद करते हुए यदुवंशश्रेष्ठ, सात्यकि को तुम्हारे पक्ष के सारे महारथी रोकने में समर्थ न हो सके ॥११॥

अमर्षपूर्णस्त्वनिवृत्तयोधी शरासनी काञ्चनवर्मधारी ।
अलम्बुषः सात्यकिं माधवाग्र्यमवारयद्राजवरोऽभिपत्य ॥

हे राजन्! क्रोध में भरे हुए, युद्ध से नहीं हटने वाले धनुर्धर, सुवर्ण के कवच से युक्त, अलम्बुष राजा ने माधववंशश्रेष्ठ सात्यकि को आगे बढ़ने से रोका ॥१२॥

तयोरभूद्भारत सम्प्रहारो यथाविधो नैव बभूव कश्चित् ।
प्रेक्षन्त एवाऽऽहवशोभिनौ तौ योधास्त्वदीयाश्चपरे च सर्वे ॥

हे भारत! इन दोनों वीरों का महाघोर युद्ध होने लगा, जो अभी तक कभी नहीं हुआ था। युद्ध की शोभा बढ़ाने वाले इन दोनों वीरों को तुम्हारी सेना के वीर और पाण्डववीर खड़े २ देखने लगे ॥१३॥

आविध्यदेनं दशभिः पृषत्कैरलम्बुषो राजवरः प्रसह्य ।
अनागतानेव तु तान्पृषत्कांश्चिच्छेद बाणैः शिनिपुङ्गवोऽपि

हे राजर्षभ! राजाओं में श्रेष्ठ अलम्बुष ने दश बाण मार कर सात्यकि को बल-पूर्वक बींध देना चाहा, परन्तु सात्यकि ने उन बाणों को अपने पास आने से पूर्व ही अपने बाणों द्वारा काट गिराया ॥१४॥

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विदार्य ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥

इसके अनन्तर राजा अलम्बुष ने तीन अन्य अग्नि के तुल्य सुन्दर पुङ्खधारी तीक्ष्ण बाण, कान तक खैंच कर छोड़े। वे बाण, सात्यकि के कवच को चीर कर उसके शरीर में घुस गए ॥१५॥

तैः कायमस्याऽग्न्यनिलप्रभावैर्विदार्य बाणैर्निशितैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान्रजतप्रकाशानश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य ॥

अपने अग्नि और वायु के सदृश प्रभाव वाले तीक्ष्ण देदीप्यमान बाणों से राजा अलम्बुष ने सात्यकि के शरीर को चीर कर फिर चार बाण और छोड़े, जिनसे उसने चांदी के तुल्य श्वेत सात्यकि के चारों अश्वों को बल के साथ आहत कर दिया ॥१६॥

तथा तु तेनाऽभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः ।
अलम्बुषस्योत्तमवेगवद्भिरश्वांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः ॥१७॥

जब राजा अलम्बुष ने श्रीकृष्ण के समान प्रभावशाली, शिनि के नप्ता वेगशील सात्यकि को इस प्रकार आहत किया-तो सात्यकि ने बड़े वेगशाली चार बाण छोड़कर अलम्बुष के चारों अश्वों को मार डाला ॥१७॥

अथाऽस्य सूतस्य शिरो निकृत्य भल्लेन कालानलसन्निभेन ।
स कुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात् ।

इसके अनन्तर सात्यकि ने कालानल के समान भीषण बाण से सारथि के शिर को काट कर पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर, देदीप्यमान, कुण्डलों से सुशोभित अलम्बुप के मस्तक को भी उसकी देह से काट कर नीचे गिरा दिया ॥१८॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं संख्ये यदूनामृषभः प्रमाथी ।
ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरः सैन्यानि राजंस्तव संनिवार्य ॥

हे राजन् ! यदुवंशश्रेष्ठ, शत्रु-नाशक, महावीर सात्यकि इस प्रकार राजपुत्र अलम्बुष का रण में वध करके फिर तुम्हारी सेना का विध्वंस करता हुआ अर्जुन के पीछे ही चल दिया ॥१६॥

अन्वागतं वृष्णिवीरं समीक्ष्य तथाऽरिमध्ये परिवर्तमानम् ।
घ्नन्तं कुरूणामिषुभिर्बलानि पुनः पुनर्वायुमिवाऽभ्रपूगान् ॥

ततोऽवहन्सैन्धवाः साधुदान्ता गोक्षीरकुन्देन्दुहिमप्रकाशाः ।
सुवर्णजालावतताः सदश्वा यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥

शत्रुओं के मध्य में घूमते हुए और अर्जुन के पीछे २ आते हुए तथा मेघसमूह को वायु के तुल्य बाणों से कौरवसेना को इधर उधर फैंकते हुए, वृष्णिवंशप्रवीर सात्यकि को गो दुग्ध, चमेली, चन्द्रमा और हिम के समान गौरवर्णधारी, अच्छे ढंग से चलने वाले, सुवर्ण की मालाओं से व्याप्त, अच्छे २ अश्व, वहीं २ ले गए, जहां २ पर वह नृसिंह सात्यकि जाना चाहता था ॥२०-२१॥

अथाऽऽत्मजास्तेसहिताऽभिपेतुरन्येचयोधास्त्वरितास्त्वदीयाः
कृत्वा मुखं भारत योधमुख्यं दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥

हे भारत ! इसके बाद तुम्हारे सारे इकट्ठे ही पुत्र और तुम्हारे पक्ष के अन्य योद्धा बड़ी शीघ्रता से सात्यकि की ओर झपटे । हे अजमीढ ! इन्होंने योद्धाओं में श्रेष्ठ, तुम्हारे पुत्र दुःशासन को अपना प्रधान बना लिया था ॥२२॥

ते सर्वतः सम्परिवार्य संख्ये शैनेयमाजघ्नुरनीकसाहाः ।
स चापि तान्प्रवरः सात्वतानां न्यवारयद्बाणजालेन वीरः ।

सारी सेना के प्रहार को सहने में समर्थ इन योद्धाओं ने रण में सब ओर से सात्यकि को घेर लिया, परन्तु सात्वतवंशश्रेष्ठ, युद्ध के खिलाड़ी सात्यकि ने भी अपने बाण से इन सबको अपने सामने से हटा दिया ॥२३॥

निवार्य तांस्तूर्णममित्रघाती नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः।
दुःशासनस्याऽभिजघान वाहानुद्यम्य बाणासनमाजमीढ ॥
ततोऽर्जुनो हर्षमवाप संख्ये कृष्णश्च दृष्ट्वा पुरुषप्रवीरम् ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलंबुषवधे चत्वारिंशदधिक शततमोऽध्यायः ॥१४०॥

हे अजमीढ़ राजा के वंशोद्भव ! शत्रु-नाशक, शिनि के नप्ता, सात्यकि ने अग्नि के तुल्य बाणों से उन तुम्हारे योद्धाओं को रोक कर और धनुष उठा कर दुःशासन के अश्वों को मार डाला । श्रीकृष्ण और अर्जुन रण में पुरुष-प्रवीर सात्यकि को इस आकार में देखकर बड़े ही हर्षित हुए ॥२४-२५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में राजा अलम्बुष के वध का एक सौ चालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

—:※:—

एक सौ इकतालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—तमुद्यतं महाबाहुं दुःशासनरथं प्रति ।
त्वरितं त्वरणीयेषु धनञ्जयजयैषिणम् ॥१॥

त्रिगर्तानां महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
सेनासमुद्रमाविष्टमनन्तं पर्यवारयन् ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ ! शीघ्र करने योग्य कार्यों में ...ता दिखाने वाले, अर्जुन की विजय के अभिलाषी, महाभुज, सब तरह से उद्यत और कौरवसेना में घुसे हुए अन्त नहीं वाले सात्यकि को देखकर उज्ज्वल सुवर्ण की ध्वजा बनाये त्रिगर्तों के महाधनुर्धर वीर, उसे घेर कर खड़े हो गये ॥१-२॥

अथैनं रथवंशेन सर्वतः सन्निवार्य ते ।
अवाकिरञ्छरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः ॥३॥

इन महावीरों ने बड़े २ धनुप ले रखे थे और क्रोध में भरे हुए जल रहे थे। इन्होंने अपने रथसमूह को लेकर सब ओर से सात्यकि को घेर लिया और बाणजाल छोड़कर उसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥३॥

अजयद्राजपुत्रांस्तान्भ्राजमानान्महारणे ।
एकः पञ्चाशतं शत्रून्सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥४॥

इस महारण में अपना बड़ा पराक्रम दिखाते हुए इन तेजस्वी पंचाल राजकुमारों को सत्य पराक्रमी अकेले सात्यकि ने पराजित कर दिया ॥४॥

सम्प्राप्य भारतीमध्यं तलघोषसमाकुलम् ।
असिशक्तिगदापूर्णमप्लवं सलिलं यथा ॥५॥

इस समय सात्यकि करतलध्वनि से व्याप्त तथा प्रास, शक्ति, गदा आदि से भरे हुए भारतीय सेना के मध्य भाग में ऐसे घूमने लगा जैसे-बिना नौका के कोई गहरे पानी में तैरता हो ॥४॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं रणे ।
प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यं पश्यामि लाघवात् ॥
उदीचीं दक्षिणां प्राचीं प्रतीचीं विदिशस्तथा ।
नृत्यन्निवाऽऽचरच्छूरो यथा रथशतं तथा ॥७॥

हे राजन्! इस रण में मैंने शिनि-पौत्र का यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि जब मैंने उसे रण में पश्चिम की ओर देखा-तो दृष्टि उठाते ही उसे पूर्व की ओर पाया । कभी वह उत्तर, कभी दक्षिण, कभी पूर्व और कभी पश्चिम तथा कभी फुर्ती से ईशान कोणों में पहुंच जाता था । यह शूरवीर इतना पराक्रम दिखा रहा था, जितना एक सौ महारथी कर सकते हों । इसने तो रणभूमि में नाच सा आरम्भ कर रखा था ॥६-७॥

तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः ।
त्रिगर्ताः संन्यवर्तन्त सन्तप्ताः स्वजनं प्रति ॥८॥

सिंह के सदृश विक्रम-शाली चाल चलने वाले सात्यकि के पराक्रम को देखकर व्याकुल हुए त्रिगर्त वीर, अपने कुटुम्बी वीरों की ओर चले गए ॥८॥

तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये न्यवारयन् ।
नियच्छन्तः शरव्रातैर्मत्तं द्विपमिवाऽङ्कुशैः ॥९।
तैर्व्यवाहरदार्यात्मा मुहूर्त्तादेव सात्यकिः ।

उन जाते हुए त्रिगर्तवीरों को रण में शूरसेन वीरों ने अपने बाणसमूह से इस तरह व्यथित कर दिया, जैसे-मत्त हाथी को अंकुश से दाब दिया जाता है। इनको थोड़ी देर तक महात्मा सात्यकि ने युद्ध के हाथ दिखाए ॥६॥

ततः कलिङ्गैर्युयुधे सोऽचिन्त्यबलविक्रमः ॥१०॥
तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम् ।
अथ पार्थं महाबाहुर्धनञ्जयमुपासदत् ॥११॥
तरन्निव जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान् ।

इसके अनन्तर अविचारणीय बलविक्रमशाली सात्यकि ने कलिङ्ग वीरों के साथ युद्ध किया। कलिङ्गों की इस बलवती सेना को उलांघ कर महाबाहु, सात्यकि, कुन्ती-पुत्र अर्जुन के पास पहुंचा। जल में तैरता २ थका हुआ मनुष्य, जैसे स्थल में आ जाता है, वही दशा इस समय सात्यकि की हुई ॥१०-११॥

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः समाश्वसत् ॥१२॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत् ।
असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः ॥१३॥
एष शिष्यः सखा चैव तव सत्यपराक्रमः ।
सर्वान्योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥१४॥

पुरुषव्याघ्र अर्जुन को देखकर कर सात्यकि को कुछ आश्वासन आया। सात्यकि को आता देखकर श्रीकृष्ण, अर्जुन से कहने लगे—हे पार्थ ! यह शिनि-पौत्र सात्यकि तेरे पीछे २ बढ़ा

चला आता है। यह सत्यपराक्रमी, सात्यकि तुम्हारा शिष्य और सखा है। इस पुरुषप्रवीर ने सारे योद्धाओं को तृण के समान जीत कर पीछे हटा दिया है ॥१३-१४॥

एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपद्रवम् ।
तव प्राणैः प्रियतमः किरीटिन्नेति सात्यकिः ॥१५॥
एष द्रोणं तथा भोजं कृतवर्माणमेव च ।
कदर्थीकृत्य विशिखैः फाल्गुनाऽभ्येति सात्यकिः ॥१६॥

हे अर्जुन ! यह प्राणों से भी प्रिय महावीर सात्यकि, कौरव वीरों में घोर उपद्रव करके तुम्हारे पास आ पहुंचा है। हे फाल्गुन ! यह सात्यकि, द्रोणाचार्य और भोजराज कृतवर्मा को अपने बाण से पराजित करके यहां तक आया हुआ प्रतीत होता है ॥१५-१६॥

धर्मराजप्रियान्वेषी हत्वा योधान्वरान्वरान् ।
शूरश्चैव कृतास्त्रश्च फाल्गुनाऽभ्येति सात्यकिः ॥१७॥

हे अर्जुन ! धर्मराज के प्रिय, तुम अर्जुन की खोज करता और कौरवों के उत्तम २ रथियों को मार २ कर गिराता हुआ शूर वीर और अस्त्रविद्या में कुशल सात्यकि, तुम्हारे समीप चला आ रहा है ॥१७॥

कृत्वा सुदुष्करं कर्म सैन्यमध्ये महाबलः ।
तव दर्शनमन्विच्छन्पाण्डवाऽभ्येति सात्यकिः ॥१८॥

हे पाण्डव ! इस महाबली ने कौरव सेना के मध्य में बड़ा दुष्कर कर्म कर दिखाया है और यह सात्यकि केवल तुम्हारे मिलने के निमित्त इतना परिश्रम करके यहां आया है ॥१८॥

बहूनेकरथेनाऽऽजौ योधयित्वा महारथान् ।
आचार्यप्रमुखान्पार्थ प्रयात्येष स सात्यकिः ॥१९॥

हे पार्थ ! इस सात्यकि ने केवल अपने ही रथ की सहायता लेकर कौरवों के द्रोणाचार्य जैसे महारथियों से युद्ध में टक्कर ली है। वही सात्यकि अब तुम्हारे समीप आ पहुंचा है ॥१९॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्य च वरूथिनीम् ।
प्रेषितो धर्मराजेन पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः ॥२०॥

हे पार्थ ! इसको तुम्हारे समाचार लेने को धर्मराज ने भेजा है। यह अपनी भुजाओं के बल का आश्रय लेकर और कुरुसेना को चीर चार कर यहां तक आ पहुंचा है ॥२०॥

यस्य नास्ति समो योधः कौरवेषु कथञ्चन ।
सोऽयमायाति कौन्तेय सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥२१॥

हे कौन्तेय ! यह वही युद्ध में दुर्मद सात्यकि है, जिसकी जोट का कौरवसेना में कोई वीर नहीं है। देखो ? किस तरह आगे बढ़ा चला आ रहा है ॥२१॥

कुरुसैन्याद्विमुक्तो वै सिंहो मध्याद्गवामिव ।
निहत्य बहुलाः सेनाः पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः ॥२२॥

हे पार्थ ! गौओं के मध्य से निकले हुए सिंह की भांति कौरवों की बहुत सी सेना को मार कर यह वृष्णिसिंह भी कौरव सेना से बाहर आ गया है और अब तुम्हारे पास आ रहा है ॥२२॥

एष राजसहस्राणां वक्त्रैः पङ्कजसन्निभैः ।
आस्तीर्य वसुधां पार्थ क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥२३॥

हे पार्थ ! जिसने सहस्रों राजाओं के कमलसदृश मुखों से रणभूमि को आच्छादित कर दी है। वही सात्यकि बड़े वेग से रण में तुम्हारे पास बढ़ा चला आ रहा है ॥२३॥

एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिः सहितं रणे ।
निहत्य जलसन्धं च क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥२४॥

इसने रण में दुर्योधन के सहित उनके भाइयों को भी जीत लिया है और राजा जलसन्ध को भी नष्ट किया-यह वही सात्यकि बड़े वेग से बढ़ा चला आ रहा है ॥२४॥

रुधिरौघवतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्दमाम् ।
तृणवद्व्यस्य कौरव्यानेष ह्यायाति सात्यकिः ॥२५॥

इसने रुधिर के प्रवाह से युक्त और रक्त की कीचड़ से समन्वित रणभूमि में नदी बहा दी, जिसमें कौरववीरों को इसने तृण के तुल्य फेंक दिया-यह वही सात्यकि आ रहा है ॥२५॥

ततः प्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्यमब्रवीत् ।
न मे प्रियं महाबाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः ॥२६॥
नहि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव ।
सात्वतेन विहीनः स यदि जीवति वा न वा ॥२७॥

अब कुन्ती-पुत्र, अर्जुन बड़ा प्रसन्न हुआ और श्रीकृष्ण से यह वाक्य बोला—हे महाबाहो ! मुझे यह प्रिय प्रतीत नहीं हुआ, जो

मेरी सहायता को सात्यकि आगे बढ़ आया । हे केशव ! मुझे राजा युधिष्ठिर के समाचारों का कुछ भी ज्ञान नहीं है । इस सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि से बिछुड़ कर न जाने वह जीता भी रह सका होगा या नहीं ॥२६-२७॥

एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यः स पार्थिवः ।
तमेष कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः ॥२८॥

हे महाबाहो ! इसे तो राजा युधिष्ठिर की ही रक्षा करनी चाहिये थी । हे कृष्ण ! यह धर्मराज को छोड़कर मेरे पीछे क्यों चला आया ॥२८॥

राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्धवश्चाऽनिपातितः ।
प्रत्युद्याति च शैनेयमेष भूरिश्रवा रणे ॥२९॥

इधर तो धर्मराज, द्रोणाचार्य के चंगुल में फंसा है । दूसरी ओर अभी राजा जयद्रथ भी नहीं मारा गया है । इधर शिनि-पौत्र सात्यकि की ओर रण में राजा भूरिश्रवा बढ़ा चला आता है ॥२९॥

सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्धवार्थे समाहितः ।
ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः ॥३०॥

जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः ।
श्रान्तश्चैष महाबाहुरल्पप्राणश्च साम्प्रतम् ॥३१॥

इस सिन्धुराज जयद्रथ के मारने में तो मेरे ऊपर बड़ा भार आ पड़ा । एक ओर तो मुझे राजा का वृत्तान्त जानना है और दूसरी ओर इस सात्यकि को बचाना है । तीसरी ओर राजा जयद्रथ का

अभी मारना शेष पड़ा है और सूर्य छुपने को जा रहा है। यह महाबाहु, सात्यकि भी सुकुमार है और युद्ध से थक गया है ॥३१॥

परिश्रान्ता हयाश्चाऽस्य हययन्ता च माधव ।
न च भूरिश्रवाः श्रान्तः ससहायश्च केशव ॥३२॥
अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन्समागमे ।
कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥३३॥
गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाः शिनिपुङ्गवः ।

हे माधव ! इस के अश्व भी थक गए और अश्वों के चलाने वाला सारथि भी थक चुका है। हे केशव ! राजा भूरिश्रवा, थका हुआ नहीं है और उसकी सहायता पर भी वीर लगे हैं। क्या अब इस घोर संग्राम में सात्यकि का कल्याण हो सकेगा। सत्य-पराक्रमी शिनि-पौत्र, महाओजस्वी यह सात्यकि समुद्र को पार करके अब इस छोटे से गोष्पद के समान युद्ध में कहीं डूब न जावे ॥३२-३३॥

अपि कौरवमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना ॥३४॥
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान्सात्यकिर्भवेत् ।
व्यतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव ॥३५॥

क्या किसी तरह अस्त्र विद्या में कुशल, कुरुप्रवीर महारथी भूरिश्रवा के साथ लड़कर यह सात्यकि कल्याण युक्त होकर बच सकेगा ? ॥३४॥

आचार्याद्भयमुत्सृज्य यः प्रैषयत सात्यकिम् ।
ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवाऽऽमिषम् ।३६॥
नित्यमाशंसते द्रोणः कच्चित्स्यात्कुशली नृपः ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यक्यर्जुनदर्शने
एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१॥

हे केशव ! मैं तो धर्मराज की इस चेष्टा को उसको विपरीत प्रयत्न समझता हूं, जो उसने आचार्य का भय न मान कर सात्यकि को यहां भेज दिया है। द्रोणाचार्य, धर्मराज को नित्य इस प्रकार पकड़ना चाहते रहते हैं, जैसे-आकाशगामी श्येन (बाज) पक्षी मांस को झपटता रहता है। क्या अब तक राजा युधिष्ठिर कुशल से लड़ रहे होंगे ॥३७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि और अर्जुन के दर्शन का एक सौ इकतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

—:※:—

एक सौ बयालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
क्रोधद्भूरिश्रवा राजन्सहसा समुपाद्रवत् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन ! युद्ध में दुर्मद सात्वतवंश्रेष्ठ सात्यकि को इस प्रकार झपटता देखकर क्रोध-पूर्वक राजा भूरिश्रवा एकदम आगे बढ़ा ॥१॥

तमब्रवीन्महाराज कौरव्यः शिनिपुङ्गवम् ।
अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्विषयमित्युत ॥२॥
चिराभिलषितं काममहं प्राप्स्यामि संयुगे ।
नहि मे मोक्ष्यसे जीवन्यदि नोत्सृजसे रणम् ॥३॥

हे महाराज ! यह कुरुवंशोद्भव भूरिश्रवा, शिनिवंशश्रेष्ठ सात्यकि से बोला—हे सात्यकि ! आज तुम दैववश मेरी दृष्टि के विषय में प्राप्त हो गए हो । आज मैं अपनी चिरकाल की अभिलाषा को पूरी करूंगा । यदि आज तूने जो रणाङ्गण नहीं छोड़ दिया-तो जीता बचकर नहीं निकल सकेगा ॥२-३॥

अद्य त्वां समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम् ।
नन्दयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम् ॥४॥

हे दशार्हवंशोत्पन्न ! तुम सदा अपने को बड़ा शूरवीर मानते आ रहे हो । आज मैं रण में तुम्हारा वध करके कुरुराज सुयोधन को सन्तुष्ट करूंगा ॥४॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धं पतितं धरणीतले ।
द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ ॥५॥

आज मेरे बाण से दग्ध होकर धरणीतल पर पड़े हुए, रण में एक साथ महाबली श्रीकृष्ण और अर्जुन तुम्हें देखेंगे ॥५॥

अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया ।
सव्रीडो भविता सद्यो येनाऽसीह निवेशितः ॥६॥

आज ही धर्मराज युधिष्ठिर भी मेरे द्वारा मारे हुए तुमको सुनकर अत्यन्त लज्जित होंगे, क्योंकि उन्होंने ही तुमको यहां भेजा है ॥६॥

अद्य मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनञ्जयः ।
त्वयि भूमौ विनिहते शयाने रुधिरोक्षिते ॥७॥

जब तुम रुधिर में भीग कर मुझसे मारे हुए भूमि में सो जावोगे; तभी आज धनञ्जय अर्जुन को मेरे पराक्रम का पता लगेगा ॥७॥

चिराभिलषितो ह्येष त्वया सह समागमः ।
पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा ॥८॥

पूर्वकाल में देवासुर संग्राम में जैसे इन्द्र और बलि का संग्राम हुआ-मैं भी तेरे साथ इस घोर संग्राम की बहुत दिन से आशा लगाये हुए हूँ ॥८॥

अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत ।
ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यबलपौरुषम् ॥९॥

हे सात्वत ! आज मैं तेरे साथ घोर युद्ध का परिचय दूंगा-जिससे तुम्हें मेरे बलवीर्य और पराक्रम के तत्व का ज्ञान हो जावेगा ॥९॥

अद्य संयमनीं याता मया त्वं निहतो रणे ।
यथा रामानुजेनाऽऽजौ रावणिर्लक्ष्मणेन ह ॥१०॥

हे सात्यकि ! आज तुम रणाङ्गण में मुझ से मारे जाकर इस प्रकार यमपुरी को जावोगे-जैसे-राम के छोटे भ्राता लक्ष्मण द्वारा मारा हुआ रावण-पुत्र मेघनाद यमलोक गया था ॥१०॥

अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव ।

हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम् ॥११॥

हे माधव ! आज ही श्रीकृष्ण, अर्जुन और धर्मराज तेरे मारे जाने पर निरुत्साह हो जावेंगे और निश्चय ही रण से पराङ्-मुख होकर निवृत्त होंगे ॥११॥

अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैर्माधव सायकैः ।

तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि ये त्वया निहता रणे ॥१२॥

हे माधव ! आज मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से तेरी चिता चिन कर उन वीरों की स्त्रियों को सन्तुष्ट करूंगा, जिनको रण में तूने मार गिराया है ॥१२॥

मच्चक्षुर्विषयं प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे ।

सिंहस्य विषयं प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा ॥१३॥

हे सात्यकि ! आज तुम मेरी दृष्टि के गोचर हुए इस प्रकार बचकर नहीं निकल सकते, जैसे सिंह की दृष्टि में पड़ा हुआ कोई छोटा जन्तु बचकर नहीं जा सकता है ॥१३॥

युयुधानस्तु तं राजन्प्रत्युवाच हसन्निव ।

कौरवेय न सन्त्रासो विद्यते मम संयुगे ॥१४॥

नाऽहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रे तु केवलम् ।
स मां निहन्यात्संग्रामे यो मां कुर्यान्निरायुधम् ॥१५॥

हे राजन ! इतना सुनकर हंसता हुआ सात्यकि भूरिश्रवा से कहने लगा—हे कुरुवंशोत्पन्न ! मुझे रण में किसी का भी भय नहीं होता है। मैं कोरी वाणी की डींगों से भयभीत नहीं हो सकता हूँ। मुझे तो रण में वही मार सकता है, जो मुझे शस्त्र रहित कर देगा ॥१४-१५॥

समास्तु शाश्वतीर्हन्याद्यो मां हन्याद्धि संयुगे ।
किं वृथोक्तेन बहुना कर्मणा तत्समाचर ॥१६॥
शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते ।
श्रुत्वा त्वद्गर्जितं वीर हास्यं हि मम जायते ॥१७॥

जो मुझे युद्ध में मार लेगा-वह सैकड़ों वर्षों तक शत्रु को मारता रहेगा। अब अधिक गाल बजाने में क्या रखा है, तुम काम करके यह सब कुछ दिखाओ। शरद् ऋतु के निःसार मेघों के तुल्य वृथा गर्जना में क्या रखा है। हे वीर ! तेरी इस थोथी गर्जना को सुन कर तो मुझे केवल हंसी आती है ॥१६-१७॥

चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्याऽस्तु कौरव ।
त्वरते मे मतिस्तात तव युद्धाभिकांक्षिणी ॥१८॥
नाऽहत्वाऽहं निवर्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम ।

हे कुरुवंशोद्भव ! मित्र ! जिस युद्ध की तुम बहुत दिन से इच्छा कर रहे थे, उसे होने दो। तुमसे युद्ध करने की अभिलाषा रखने

वाली मेरी बुद्धि भी बहुत शीघ्रता कर रही है । हे पुरुषाधम ! आज मैं तुम्हें मारे बिना यहां से न हटूंगा ॥१८॥

अन्योन्यं तौ तथा वाग्भिस्तक्षन्तौ नरपुङ्गवौ ॥१९॥
जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे ।

हे राजन् ! इस प्रकार ये दोनों नर-श्रेष्ठ अपनी २ वाणी से दोनों को परस्पर उत्तेजित करते हुए, अत्यन्त क्रोध में भरे हुए, एक दूसरे के प्राणों के प्यासे होकर रण में प्रहार करने लगे ।

समेतौ तौ महेष्वासौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥२०॥
द्विरदाविव संक्रुद्धौ वासितार्थे मदोत्कटौ ।

ये दोनों महाधनुर्धर एक दूसरे के सन्मुख हुए । ये समान तेजस्वी और रण में एक दूसरे से स्पर्धा रखते थे । ये दोनों इस तरह भिड़ गए, जैसे—क्रोध में भरे हुए दो मदोत्कट हाथी गर्भ धारण को आई हुई हथिनी के निमित्त लड़ पड़ते हैं ॥२०॥

भूरिश्रवाः सात्यकिश्च ववर्षतुररिन्दमौ ॥२१॥
शरवर्षाणि घोराणि मेघाविव परस्परम् ।

हे राजन् ! इस प्रकार अरिमर्दन सात्यकि और भूरिश्रवा, एक दूसरे पर मेघ की भांति बाण-वर्षा करने लगे ॥२१॥

सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येषुभिराशुगैः ॥२२॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ विव्याध निशितैः शरैः ।

हे भरतश्रेष्ठ ! सोमदत्त-पुत्र, भूरिश्रवा ने शीघ्रगामी बाणों से शिनि-पुत्र सात्यकि को आच्छादित कर दिया । वह तो इस समय

सात्यकि को मार ही देना चाहता था, इससे तीखे बाण मार कर उसे बींधने लगा ॥२२॥

दशभिः सात्यकिं विध्वा सौमदत्तिरथाऽपरान् ॥२३।
मुमोच निशितान्बाणाञ्जिघांसुः शिनिपुङ्गवम् ।

शिनिपुङ्गव सात्यकि के मारने के अभिलाषी सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा ने दश बाण सात्यकि के शरीर में मार कर फिर अनेक तीक्ष्ण बाण उस पर और छोड़े ॥२३॥

तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णानन्तरिक्षे विशाम्पते ॥२४॥
अप्राप्तानस्त्रमायाभिरग्रसत्सात्यकिः प्रभो ।

हे विशाम्पते ! भूरिश्रवा के उन तीक्ष्ण बाणों को जो अभी आकर भी नहीं पहुंचे थे, सात्यकि ने अपनी अस्त्रविद्या की कुशलता से उन्हें आकाश में ही काट गिराया ॥२४॥

तौ पृथक्शस्त्रवर्षाभ्यामवर्षेतां परस्परम् ॥२५॥
उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।

हे राजन् ! उत्तम २ कुल में उत्पन्न, कुरु और वृष्णि वंश के यश के बढ़ाने वाले ये दोनों महारथी सात्यकि और भूरिश्रवा, पृथक् २ शस्त्रों की वर्षा से एक दूसरे पर बरसने लगे ॥२५॥

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥२६॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यऽकृन्तताम् ।

जैसे नखों से शार्दूल (सिंह) और दाँतों से बड़े २ हाथी एक दूसरे को आहत करते हैं, उसी तरह रथ, शक्ति और बाणों से ये दोनों। भी परस्पर एक दूसरे के शरीर को क्षत-विक्षत करनेलगे

निर्भिन्दन्तौ हि गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितम् ॥२७

व्यष्टम्भयेतामन्योन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ ।

ये दोनों एक दूसरे के शरीर को चीर कर रक्त को फैला रहे थे। इन्होंने इस रणद्यूत में अपने २ प्राणों की बाजी लगा दी थी। ये दोनों एक दूसरे को रोक कर युद्ध के लिए डट गए ॥२७॥

एवमुत्तमकर्माणौ कुरुवृष्णियशस्करौ ॥२८॥

परस्परमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ ।

कुरु और वृष्णि वंश की कीर्ति के बढ़ाने में दोनों महारथी सात्यकि और भूरिश्रवा युद्ध कौशल दिखा रहे थे। ये यूथपति हाथियों की भांति परस्पर एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे ॥२८॥

तावदीर्घेण कालेन ब्रह्मलोकपुरस्कृतौ ॥२९॥

यियासन्तौ परं स्थानमन्योन्यं सञ्जगर्जतुः ।

ये तो बहुत ही थोड़े काल में ब्रह्मलोक की प्राप्ति की अभिलाषा कर रहे थे, कि किस प्रकार युद्ध में मृत्यु हो और हमें ब्रह्मलोक प्राप्ति हो। ये सर्वोत्कृष्ट लोक के गमन के अभिलाषी वीर, एक दूसरे की ओर गर्जते हुए आगे बढ़े ॥२९॥

सात्यकिः सौमदत्तिश्च शरवृष्ट्या परस्परम् ॥३०॥

हृष्टवद्धार्तराष्ट्राणां पश्यतामभ्यवर्षताम् ।

सम्प्रैक्षन्त जनास्तौ तु युध्यमानौ युधां पती ॥३१॥

यूथपौ वासिताहेतोः प्रयुद्धाविव कुञ्जरौ ।

अब सात्यकि और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा बड़ी प्रसन्नता से धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधनादि के युद्ध के देखते २ बाण-वर्षा करते हुए एक दूसरे पर टूट पड़े। योधाओं में श्रेष्ठ इन दोनों वीरों को युद्ध करते हुए कौरव वीर देखने लगे। जो गर्भ के निमित्त आई हुई हथिनी के सम्भोग के लिए लड़ते हुए यूथपति हाथियों की तरह लड़ रहे थे ॥३०-३१॥

अन्योन्यस्य हयान्हत्वा धनुषी विनिकृत्य च ॥३२॥
विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे ।

इन दोनों ने एक दूसरे के अश्व मार डाले और धनुष काट कर गिरा दिए। फिर ये दोनों रथहीन हुए, हाथ में खड्ग लेकर इस महायुद्ध में कूद पड़े ॥३२॥

आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे ॥३३॥
विकोशौ चाप्यसी कृत्वा समरे तौ विचेरतुः ।

इन्होंने वृषभ के चर्म की विचित्र, सुन्दर, विशाल ढाल उठा ली और ये नंगी करवाल (तलवार) करके रण में अपने २ हाथ दिखाने लगे ॥३३॥

चरन्तौ विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भागशः ॥३४॥
मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमरिमर्दनौ ।
सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ ॥३५॥

इन्होंने क्रम से युद्ध के अनेक मार्ग (पैंतरे) दिखाए और नियमानुसार मण्डल बांधे। इस प्रकार ये दोनों अरिमर्दन, क्रोध

में भर कर एक दूसरे पर आघात करने लगे। इनके हाथों में खड्ग थे और इन्होंने विचित्र २ कवच धारण कर रखे थे। ये कण्ठसूत्र और सुवर्ण के अङ्गदों से विभूषित हुए परस्पर आघात करते थे ॥३४-३५॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम्।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयन्तौ यशस्विनौ ॥३६॥

ये यशस्वी, भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण नामक खड्गयुद्ध की गतियों को दिखा रहे थे

असिभ्यां सम्प्रजह्राते परस्परमरिन्दमौ।
उभौ छिद्रैषिणौ वीरावुभौ चित्रं ववल्गतुः ॥३७॥

अरिमर्दन सात्यकि और भूरिश्रवा दोनों ही एक दूसरे की त्रुटि देख कर खड्ग का प्रहार करते थे और विचित्र वीरतापूर्ण वचन भी साथ २ बोलते जा रहे थे ॥३७॥

दर्शयन्तावुभौ शिक्षां लाघवं सौष्ठवं तथा।
रणे रणकृतां श्रेष्ठावन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥३८॥

हे राजन्! इस महायुद्ध में दोनों वीर, अपनी २ शिक्षा, लाघव (फुर्ती) और श्रेष्ठता दिखाते हुए एक दूसरे को खैंच ले जाते थे तथा खड्गयुद्ध करने वाले वीरों में ये अत्यन्त श्रेष्ठ थे।

मुहूर्तमिव राजेन्द्र समाहत्य परस्परम्।
पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः ॥३९॥

हे राजेन्द्र ! एक ओर सारी सेना खड़ी २ देख रही है और ये युद्ध में तत्पर हैं। इस प्रकार एक दूसरे पर प्रहार करके कुछ ही क्षण के लिए दोनों वीरों ने आश्वासन (सांस) लिया ॥३९॥

असिभ्यां चर्मणी चित्रे शतचन्द्रे नराधिप।
निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥४०॥

हे नराधिप ! इन दोनों पुरुष-प्रवीरों ने अपनी २ तलवार से सैकड़ों चन्द्रों से विभूषित ढाल को परस्पर काट गिराया और फिर ये बाहु-युद्ध करने लगे ॥४०॥

व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥४१॥

इन की लम्बी चौड़ी छाती और लम्बी २ भुजायें थीं, दोनों ही बाहुयुद्ध में बड़े ही कुशल थे। ये लोहे की बनी अर्गला के तुल्य बाहुओं से परस्पर एक दूसरे के लिपट गए ॥४१॥

तयो राजन्भुजाघातनिग्रहप्रग्रहास्तथा।
शिक्षाबलसमुद्भूताः सर्वयोधप्रहर्षणाः ॥४२॥

हे राजन् ! इन दोनों वीरों की भुजाओं के आघात, निग्रह (लपेट) प्रग्रह (पकड़) आदि इतने युद्ध शिक्षा के अनुसार थे, कि जिसको देख कर सारे योद्धा बड़े ही हर्षित हो रहे थे ॥४२॥

तयोर्नृवरयो राजन्समरे युध्यमानयोः।
भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥४३॥

हे राजन् ! जब ये पुरुष-सिंह रण में युद्ध कर रहे थे-तो उस समय पर्वत गिरते हुए वज्र के तुल्य महान् शब्द होने लगा ॥४३॥

द्विपाविव विषाणाग्रैः शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
भुजयोक्त्रावबन्धैश्च शिरोभ्यां चाऽवघातनैः ॥४४॥

जैसे हाथी अपने २ दांत और सांड सींगों से लड़ते हैं, वैसे ही ये भी भुजाओं के बन्धन और शिर की टक्करों से लड़ रहे थे ।

पादावकर्षसन्धानैस्तोमरांकुशलासनैः ।
पादोदरविबन्धैश्च भूमावुद्भ्रमणैस्तथा ॥४५॥
गतप्रत्यागताक्षेपैः पातनोत्थानसम्प्लुतैः ।
युयुधाते महात्मानौ कुरुसात्वतपुङ्गवौ ॥४६॥

पादों का खैंच ले जाना, उनका एक दूसरे में अड़ा देना, तोमर, अंकुश और लासन नामक दावों को दिखाना, पाद और उदर का कभी बन्धन करते, कभी भूमि में चक्कर सा बांध देते थे। कभी कोई एक दूसरे को अपनी ओर खैंच लेता-तो दूसरा फिर उसे धकेल देता था। कोई गिरता, कोई उठता और कोई उछलता था। इस प्रकार कुरु और सात्वतवीर युद्ध कर रहे थे ॥४५-४६॥

द्वात्रिंशत्करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत ।
तान्यदर्शयतां तत्र युध्यमानौ महाबलौ ॥४७॥

हे भारत ! मल्लयुद्ध के जो बत्तीस प्रधान २ उपकरण (दावपेच) हैं, ये लड़ते हुए दोनों महाबली वीर, उनका प्रदर्शन करते जाते थे ॥४७॥

क्षीणायुधे सात्वते युध्यमाने ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः ।
पश्यस्वैनं विरथं युध्यमानं रणे वरं सर्वधनुर्धराणाम् ॥

क्षीण शस्त्र हो जाने पर भी युद्ध करते हुए सात्वतवीर सात्यकि को देखकर भगवान् कृष्ण, अर्जुन से बोले—हे अर्जुन ! तुम सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, रथ-हीन होकर भी युद्ध करने वाले इस सात्यकि की ओर देखो ॥४८॥

प्रविष्टो भारतीं भित्त्वा तव पाण्डव पृष्ठतः ।
योधितश्च महावीर्यैः सर्वैर्भारत भारतैः ॥४९॥

हे पाण्डव ! यह सात्यकि सारी कौरवसेना को चीर फाड़ कर तुम्हारे पीछे २ लगा हुआ चला आ रहा है । हे भारत ! महाबली सारे कौरव योद्धाओं के साथ इसका युद्ध हो चुका है ॥४९॥

परिश्रान्तं युधां श्रेष्ठं सम्प्राप्तो भूरिदक्षिणः ।
युद्धाकांक्षी समायान्तं नैतत्सममिवाऽर्जुन ॥५०॥

हे अर्जुन ! योद्धाओं में श्रेष्ठ सात्यकि को थका हुआ आता देखकर यज्ञों में बहुत सी दक्षिणा देने वाला यह भूरिश्रवा, युद्ध की अभिलाषा से उसके सन्मुख बढ़ आया है-जो इसके स्वरूप के अनुरूप नहीं है ॥५०॥

ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं युद्धदुर्मदः ।
उद्यम्याऽभ्याहनद्राजन्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥५१॥
रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः ।
केशवार्जुनयो राजन्समरे प्रेक्षमाणयोः ॥५२॥

हे राजन्! इस समय युद्ध में दुर्मद, भूरिश्रवा अत्यन्त कुपित हो रहा था। इसने अपनी भुजाओं पर सात्यकि को उठा कर इस प्रकार दे मारा जैसे-एक मदोन्मत्त हाथी दूसरे हाथी को दे मारता है। हे राजन्! इस युद्ध में रथ में बैठे २ योद्धाओं में श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण और अर्जुन इस घटना को क्रोध-पूर्वक देखते ही रह गए।

अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ।
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशङ्गतम् ॥५३॥
परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तवाऽन्तेवासिनं वीरं पालयाऽर्जुन सात्यकिम् ।।५४॥

अब महाबाहु, श्रीकृष्ण, अर्जुन से बोले—तुमने देखा, वृष्णि और अन्धक वंश के वीर सिंह को सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा ने किस प्रकार वश में कर लिया है। इस समय सात्यकि बहुत थका हुआ है और दुष्कर कर्म करके भूमि में अचेत पड़ा है। हे अर्जुन! यह तुम्हारा शिष्य है, तुम इस वीर सात्यकि की रक्षा करो ॥५४॥

न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेष वरोऽर्जुन ।
त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो ॥५५॥

हे अर्जुन! यह सर्वश्रेष्ठ योद्धा, जिस प्रकार यज्ञ करने वाले भूरिश्रवा के वश में न पड़ जावे, तुम ऐसा ही प्रयत्न करो। यह तो तुम्हारी खोज में ही यहां आया है-इसका तुम्हें बहुत शीघ्र उपाय करना चाहिए ॥५५॥

अथाऽब्रवीद्धृष्टमना वासुदेवं धनञ्जयः ।
पश्य वृष्णिप्रवीरेण क्रीडन्तं कुरुपुङ्गवम् ॥५६॥

महाद्विपेनेव वने मत्तेन हरियूथपम् ।

इसके अनन्तर अत्यन्त प्रसन्न चित्त हुआ अर्जुन, वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण से कहने लगे—हे कृष्ण ! तुम वृष्णिवंशश्रेष्ठ सात्यकि के साथ कुरुपुङ्गव भूरिश्रवा की युद्ध क्रीड़ा देखो, कि जैसे मदोन्मत्त हाथी, हाथियों के यूथपति के साथ युद्ध क्रीड़ा कर रहा हो ॥५६॥

सञ्जय उवाच— इत्येवं भाषमाणे तु पाण्डवे वै धनञ्जये ॥५७॥

हाहाकारो महानासीत्सैन्यानां भरतर्षभ ।

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! इधर पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने इतना कहा—तो दूसरी ओर सेना में महान हाहाकार मच गया ।

तदुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं न्यहनद्भुवि ॥५८॥

स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन्भूरिदक्षिणः ।

व्यरोचत कुरुश्रेष्ठ सात्वतप्रवरं युधि ॥५९॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! महाबाहु भूरिश्रवा ने सात्यकि को उठाकर फिर भूमि में दे मारा । अब यह भूरिश्रवा सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि को इस प्रकार खैंच रहा था, जैसे-सिंह, हाथी को खैंचता हुआ सुशोभित होता है ॥५८-५९॥

अथ कोशाद्विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवा रणे ।

मूर्द्धजेषु निजग्राह पदा चोरस्यताडयत् ॥६०॥

अब रण में भूरिश्रवा ने अपने म्यान से तलवार निकाली और सात्यकि के बाल पकड़ कर एक लात उसकी छाती में मारी ॥६०॥

ततोऽस्य च्छेत्तुमारब्धः शिरः कायात्सकुण्डलम्।
तावत्त्वरणात्सात्वतोऽपि शिरः सम्भ्रमयंस्त्वरन् ॥६१॥

यथा चक्रं तु कौलालो दण्डविद्धं तु भारत।
सहैव भूरिश्रवसो बाहुना केशधारिणा ॥६२॥

भूरिश्रवा, अब सात्यकि के कुण्डल युक्त मस्तक को शरीर से अलग काट कर डाल ही देना चाहते थे, कि उसी समय चेत में आकर सात्यकि ने बड़े वेग से अपने शिर के झटका दिया। हे भारत! इस समय सात्यकि का मस्तक केश पकड़े हुए भूरिश्रवा की भुजा के साथ इस प्रकार चक्कर खा गया, जैसे दण्ड के साथ कुम्हार का चाक घूम गया हो ॥६१-६२॥

तं तथा परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वतमाहवे।
वासुदेवस्ततो राजन्भूयोऽर्जुनमभाषत ॥६३॥
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशङ्गतम्।
तव शिष्यं महाबाहो धनुष्यनवरं त्वया ॥६४॥

हे राजन्! रण में इस प्रकार अपने मस्तक को छुड़ाते सात्यकि को देखकर वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, फिर अर्जुन से कहने लगे—हे महाबाहो! अर्जुन! तुम वृष्णि और अन्धकों में सिंह के तुल्य पराक्रमी, अपने शिष्य सात्यकि को सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा के वश में पड़े हुए देखो। यह धनुर्विद्या में तुमसे न्यून नहीं है।

असत्यो विक्रमः पार्थ यत्र भूरिश्रवा रणे।
विशेषयति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥६५॥

हे पार्थ ! विक्रम तो असत्य दिखाई देता है, जो सत्यपराक्रमी वृष्णिवंशज सात्यकि को आज भूरिश्रवा इस प्रकार घसीट रहा है।

एवमुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः ।

मनसा पूजयामास भूरिश्रवसमाहवे ॥६६॥

हे राजन् ! जब वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण ने इतना कहा, तो महाबाहु पाण्डु-पुत्र, अर्जुन ने मन ही मन अपने पूज्य भूरिश्रवा को रण में प्रणाम किया ॥६६॥

विकर्षन्सात्वतश्रेष्ठं क्रीडमान इवाऽऽहवे ।

संहर्षयति मां भूयः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥६७॥

प्रवर वृष्णिवीराणां यन्न हन्याद्धि सात्यकिम् ।

महाद्विपमिवाऽरण्ये मृगेन्द्र इव कर्षति ॥६८॥

एवं तु मनसा राजन्पार्थः सम्पूज्य कौरवम् ।

वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत ॥६९॥

भूरिश्रवा रण में खेल सा करता हुआ सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि को घसीट रहा था। यह देखकर अर्जुन हर्षित ही हुआ, कि कौरव वंश की कीर्ति बढ़ाने वाले भूरिश्रवा ने वृष्णिवीरों में श्रेष्ठ सात्यकि को इस तरह खैंचा, जैसे-वन में सिंह हाथी को खैंचता है, परन्तु उसे अभी मारा नहीं है। हे राजन् ! यह देखकर महाबाहु अर्जुन ने कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवा का मन ही मन बड़ा आदर किया और फिर वे श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहने लगे ॥६७-६९॥

सैन्धवे सक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधवम् ।
एतत्त्वसुकरं कर्म यादवार्थं करोम्यहम् ॥७०॥
इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन्वासुदेवस्य पाण्डवः ।
ततः क्षुरप्रं निशितं गाण्डीवे समयोजयत् ॥७१॥

हे कृष्ण ! मेरी दृष्टि तो सिन्धुराज के वध की ओर लगी हुई थी, इससे मैं इस सात्यकि को देख नहीं सका। अब मैं इस सात्यकि के निमित्त इस दुष्कर कर्म को भी करता हूं। हे राजन् ! इतना कह कर श्रीकृष्ण के वचन को पूरा करते हुए अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष पर छुरे के सदृश तीक्ष्ण बाण चढ़ाया ॥७१॥

पार्थबाहुविसृष्टः स महोल्केव नभश्च्युता ।
सखड्गं यज्ञशीलस्य साङ्गदं बाहुमच्छिनत् ॥७२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोबाहुच्छेदे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२॥

हे राजन् ! अर्जुन की भुजा से निकला हुआ वह बाण, आकाश से टूट कर पड़ती हुई महती उल्का की भांति दिखाई दिया। इस बाण ने यज्ञकर्ता भूरिश्रवा की खड्गसंहित बाजूबन्द से विभूषित, भुजा को तत्क्षण काट गिराया ॥७२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भूरिश्रवा के बाहुच्छेदन का एक सौ बयालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ तेंतालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—स बाहुर्न्यपतद्भूमौ सखड्गः सशुभाङ्गदः ।

आदधज्जीवलोकस्य दुःखमद्भुतमुत्तमः ॥१॥

प्रहरिष्यन्हृतो बाहुरदृश्येन किरीटिना ।

वेगेन न्यपतद्भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! खड्ग और सुन्दर अङ्गद से विभूषित भूरिश्रवा की उत्तम भुजा कट कर भूमि में गिर गई-तो इसे देख कर अनेक वीरों को बहुत ही दुःख हुआ। इस भुजा को नहीं दिखाई देते हुए अर्जुन ने प्रहार करके काट दिया, जो बड़े वेग से पांच मुख वाले सर्प की भांति भूमि में गिर गई ॥१-२॥

स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः ।

उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद्गर्हयामास पाण्डवम् ॥३॥

जब भूरिश्रवा ने अर्जुन द्वारा अपने आपको व्यर्थ बना दिया हुआ देखा-तो वह सात्यकि को छोड़कर क्रोध-पूर्वक अर्जुन की निन्दा करनें लगा ॥३॥

भूरिश्रवा उवाच—नृशंसं बत कौन्तेय कर्मेदं कृतवानसि ।

अपश्यतो विषक्तस्य यन्मे बाहुमचिच्छिदः ॥४॥

भूरिश्रवा ने कहा—हे कौन्तेय! तुमने यह बहुत नीच कर्म किया है, जो युद्ध में आसक्त मेरी भुजा को छुपे २ काट गिराया है।

किं तु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा रणे ॥५॥

अब तुम जाकर धर्मराज राजा युधिष्ठिर से क्या कहोगे, कि इस प्रकार मैंने रण में भूरिश्रवा को मार गिराया है ॥५॥

इदमिन्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना ।
अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाऽथ कृपेण वा ॥६॥

हे पार्थ ! क्या यही तुम्हें महात्मा इन्द्र ने उपदेश दिया या रुद्र, द्रोणाचार्य या कृपाचार्य ने क्या यही अस्त्रविद्या सिखाई है ॥६॥

ननु नामाऽस्त्रधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः परैः ।
सोऽयुध्यमानस्य कथं रणे प्रहृतवानसि ॥७॥

तुम तो संसार में अस्त्र धर्म के जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ सुने जाते हो । तुमने युद्ध नहीं करते हुए भी कैसे मेरी भुजा को रण में काट गिराया ॥७॥

न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते ।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः ॥८॥

किसी प्रकार के प्रमाद में आसक्त, भयातुर, रथ-हीन, जीवन मांगते हुए तथा किसी आपत्ति में फंसे हुए वीरों पर मनस्वी लोग प्रहार नहीं करते हैं ॥८॥

इदं तु नीचाचरितमसत्पुरुषसेवितम् ।
कथमाचरितं पार्थ पापकर्म सुदुष्करम् ॥९॥

हे पार्थ ! यह जो तूने किया है, वह नीच और असत्पुरुषों का कर्म है। इस नहीं करने योग्य पाप कर्म का भी तूने कैसे व्यवहार किया ॥९॥

आर्येण सुकरं त्वाहुरार्यकर्म धनञ्जय ।

अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतमं भुवि ॥१०॥

हे धनञ्जय ! आर्य लोग तो आर्य कर्म का ही करना सुलभ समझते हैं तथा एक आर्य को अनार्य कर्म करना बड़ा ही दुष्कर होता है ॥१०॥

येषु येषु नरव्याघ्र यत्र यत्र च वर्तते ।

आशु तच्छीलतामेति तदिदं त्वयि दृश्यते ॥११॥

हे नरव्याघ्र ! मनुष्य, जिन २ मार्गों से गुजरता है और जिनकी सङ्गति में जाता है-उन्ही की आदतें सीखता है-यही बात तुझमें समझनी चाहिए अर्थात् तेरे सिखाने वाले भी अनार्य ही होंगे ॥११॥

कथं हि राजवंश्यस्त्वं कौरवेयो विशेषतः ।

क्षत्रधर्मादपक्रान्तः सुवृत्तश्चरितव्रतः ॥१२॥

तुम तो राजा के वंश में उत्पन्न हुए हो और उसमें भी कुरुवंश जैसे उत्तम वंश में जन्म पाया है। तुम तो उत्तम आचरण वाले, सदाचारी कहाते थे, आज कैसे अपने सदाचार से पतित हो गए।

इदं तु यदतिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया ।

वासुदेवमतं नूनं नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥१३॥

हे अर्जुन ! यह सात्यकि की रक्षा करते हुए तुमने बड़ा ही क्षुद्र कर्म किया है। इस बात को तुम्हें वसुदेव-पुत्र ने सिखाया था, परन्तु तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था ॥१३॥

को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युद्ध्यते ।
ईदृशं व्यसनं दद्याद्यो न कृष्णसखा भवेत् ॥१४॥

जो दूसरे के साथ युद्ध में आसक्त होने से दूसरी ओर से प्रमत्त (बे खबर) है, उस पर कौन ऐसा आघात कर सकता है, जैसा तुमने यह किया है-तुम क्यों न ऐसा करते-आखिर ? कृष्ण के तो सखा ही ठहरे ॥१४॥

व्रात्याः संक्लिष्टकर्माणः प्रकृत्यैव च गर्हिताः ।
वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः ॥१५॥
एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत् ।

हे पार्थ ! सारे संस्कारों से रहित, धर्म-हीन कार्य कर लेने वाले, स्वभाव से ही निन्दित, वृष्णि और अन्धकों का आपने कैसे प्रमाण मान लिया। इस प्रकार भूरिश्रवा के कहने पर रण में अर्जुन उससे कहने लगे ॥१५॥

अर्जुन उवाच—व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि बुद्धिं जरयते नरः ॥
अनर्थकमिदं सर्वं यत्त्वया व्याहृतं प्रभो ।

अर्जुन बोले-हे प्रभो ! अब मुझे ज्ञात हुआ, कि मनुष्य ज्योंही वृद्ध होता जाता है, त्योंही उसकी बुद्धि भी क्षीण होती जाती है। तुमने जो यह सब कुछ कहा है, वह बिल्कुल ही अनर्थक प्रलाप किया है ॥१६॥

जानन्नेव हृषीकेशं गर्हसे मां च पाण्डवम् ॥१७॥
संग्रामाणां हि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।

तुम मुझ पाण्डव और हृषीकेश के सारे व्यवहारों को जानते हो तथा स्वयं भी संग्राम के धर्म के जानने वाले हो, क्योंकि सब शास्त्रों के अर्थ के पार पहुंच चुके हो ॥१७॥

न चाऽधर्ममहं कुर्यां जानंश्चैव हि मुह्यसे ॥१८॥
युद्ध्यन्ति क्षत्रियाः शत्रून्स्वैः स्वैः परिवृता नराः ।
भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रैस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः । १९॥
वयस्यैरथ मित्रैश्च ते च बाहुं समाश्रिताः ।
स कथं सात्यकिं शिष्यं सुखसम्बन्धिमेव च ॥२०॥
अस्मदर्थे च युद्ध्यन्तं त्यक्त्वा प्राणान्सुदुस्त्यजान् ।

मैं अधर्म नहीं कर सकता हूं-तुम यह सब कुछ जानते हुए भी बहकी २ बातें बना रहे हो । क्षत्रिय वीर, अपने २ भ्राता, चाचा, ताऊ, पुत्र, वयस्य मित्र तथा अन्य सम्बन्धी बान्धवों को साथ लेकर सदा शत्रुओं से लड़ते रहते हैं और वे भी समय पर प्रधान क्षत्रिय वीर की भुजा का आश्रय लेते रहते हैं । फिर मैं अपने शिष्य और निकट सम्बन्धी सात्यकि की जो हमारे निमित्त ही दुस्त्यज प्राणों की अपेक्षा न करके युद्ध कर रहा है-कैसे उपेक्षा कर सकता था ॥१८-२०॥

मम बाहुं रणे राजन्दक्षिणं युद्धदुर्मदम् ॥२१॥
न चाऽऽत्मा रक्षितव्यो वै राजन्रणगतेन हि ।

हे राजन्! युद्ध-दुर्मद सात्यकि तो युद्ध में मेरी दायीं भुजा था, क्या रण में जाने पर अपने अङ्गों की भी रक्षा नहीं करनी चाहिए।

यो यस्य युज्यतेऽर्थेषु स वै रक्ष्यो नराधिप ॥२२॥

तै रक्ष्यमाणैः स नृपो रक्षितव्यो महामृधे ।

हे नराधिप! जो जिसके स्वार्थ में सम्मिलित हो, उसको उसे रक्षा करनी चाहिए। इन रक्षा किये हुए वीरों से ही महायुद्धों में राजा की रक्षा हो सकती है॥२२॥

यद्यहं सात्यकिं पश्ये वध्यमानं महारणे ॥२३॥

ततस्तस्य वियोगेन पापं मेऽनर्थतो भवेत् ।

यदि मैं मारे जाते हुए सात्यकि का खड़ा २ तमाशा देखता रहूं, तो उसके वियोग से मेरा महान् अनर्थ हो जावे और मुझे अत्यन्त पाप लगे॥२३॥

रक्षितश्च मया यस्मात्तस्मात्क्रुध्यसि किं मयि ॥२४॥

यच्च मे गर्हसे राजन्नन्येन सह सङ्गतम् ।

हे राजन्! इन सब बातों को सोचकर मैंने उसकी रक्षा की है और तुम इसी व्यर्थ की बात से मुझ पर कुपित हो रहे हो, इसी से तो तुम कृष्ण के साथ रहते हो-इत्यादि संगति की बात लेकर मेरी निन्दा करने में लग रहे हो॥२४॥

अहं त्वया विनिकृतस्तत्र मे बुद्धिविभ्रमः ॥२५॥

कवचं धुन्वतस्तुभ्यं रथं चाऽऽरोहतः स्वयम् ।

धनुर्ज्यां कर्षतश्चैव युद्ध्यतः सह शत्रुभिः ॥२६॥

एवं रथगजाकीर्णे हयपत्तिसमाकुले ।
सिंहनादोद्धतरवे गम्भीरे सैन्यसागरे ॥२७॥
स्वैः परैश्च समेतेभ्यः सात्वतेन च सङ्गमे ।
एकस्यैकेन हि कथं संग्रामः संभविष्यति ॥२८॥

एक यह बात भी तुम कह रहे हो, कि मैं अकेला सात्यकि से लड़ रहा था, उस समय तूने प्रहार करके मेरी भुजा काट डाली-यह तेरी बुद्धि का दोष है-यह भी नहीं कहना चाहिए। तुम स्वयं कवच पहिने हुए रथ में चढ़े हुए थे तथा धनुष की डोरी को खैंच २ कर शत्रु के साथ युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार रथ और हाथियों से व्याप्त, अश्व और पैदल सैनिकों से भरे हुए, वीरों के सिंहनाद से शब्दायमान सेनारूपी गम्भीर समुद्र के उछलने एवं अपने और शत्रु के वीरों के भिड़ जाने तथा सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि से तुम्हारे संग्राम के आरम्भ होने पर यह सब कुछ मैंने किया है। क्या युद्ध चलने पर एक वीर का एक से ही युद्ध होता है ॥२५-२८॥

बहुभिः सह सङ्गम्य निर्जित्य च महारथान् ।
श्रान्तश्च श्रान्तवाहश्च विमनाः शस्त्रपीडितः ॥२९॥

सात्यकि, बहुत से योद्धाओं से लड़ कर और उन्हें जीत कर आ रहा था। उसके अश्व थक रहे थे और वह स्वयं भी थका हुआ, उदासीन और शस्त्रों से पीड़ित था ॥२९॥

ईदृशं सात्यकिं संख्ये निर्जित्य च महारथम् ।
अधिकत्वं विजानीषे स्ववीर्यवशमागतम् ॥३०॥

सात्यकि की रण में यह दशा थी और तुम उस महारथी को जीत कर यह समझ रहे हो, कि मैंने उसे पराक्रम से जीता है तथा इसी से तुम अपने आपको बहुत बड़ा समझ रहे हो ॥३०॥

यदिच्छसि शिरश्चाऽस्य असिना हन्तुमाहवे ।
तथा कृच्छ्रगतं चैव सात्यकिं कः क्षमिष्यति ॥३१॥

तुम तो रण में खड्ग से इसके शिर को काट ही देना चाहते थे। इस प्रकार की दुर्दशा में कौन सात्यकि की इस दशा को देख कर चुप रह सकता था ॥३१॥

त्वं वै विगर्हयाऽऽत्मानमात्मानं यो न रक्षसि ।
कथं करिष्यसे वीर यो वा त्वां संश्रयेज्जनः ॥३२॥

तुमको तो अपनी ही निन्दा करनी चाहिए, जो तुम अपनी भी रक्षा नहीं कर सके। जब यह बात है, तो वीर! जो मनुष्य, तुम्हारे आश्रय में रहते हैं, उनकी तुम कैसे रक्षा कर सकते हो।

सञ्जय उवाच—एवमुक्तो महाबाहुर्यूपकेतुर्महायशाः ।
युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥३३॥

सञ्जय ने कहा—जब अर्जुन ने इतना कहा तो महाबाहु, यज्ञ-स्तम्भ के चिन्ह से अङ्कित ध्वजाधारी, महायशस्वी, भूरिश्रवा सात्यकि को छोड़कर रण में व्रत करके बैठ गया ॥३३॥

शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणः ।
पियासुर्ब्रह्मलोकाय प्राणान्प्राणेष्वथाऽऽजुहोत् ॥३४॥

सूर्ये चक्षुः समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः ।
ध्यायन्महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥३५॥

इस पुण्यात्मा ने अपने बांये हाथ से शरों को बिछा कर ब्रह्मलोक के गमन की इच्छा से प्राण वायु में प्राणों का हवन तथा सूर्य में अपने चक्षु और स्वच्छ मन को चन्द्रमा में प्रविष्ट किया। यह महोपनिषद् संज्ञक ब्रह्म का ध्यान करता हुआ, योग युक्त मुनि हो गया ॥३४-३५॥

ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनञ्जयौ ।
गर्हयामास तं चापि शशंस पुरुषर्षभम् । ३६॥

इसके अनन्तर उस सारी सेना में प्रत्येक वीर, श्रीकृष्ण और अर्जुन की निन्दा तथा उस पुरुषश्रेष्ठ भूरिश्रवा की प्रशंसा करने लगा ॥३६॥

निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किञ्चिदप्रियम् ।
तथः प्रशस्यमानश्च नाऽहृष्यद्यूपकेतनः ॥३७॥

यद्यपि सब कोई श्रीकृष्ण और अर्जुन की निन्दा कर रहे थे, परन्तु वे दोनों किसी से कुछ नहीं कहते हैं और वह यज्ञ के चिन्ह की ध्वजा वाला भूरिश्रवा, अपनी प्रशंसा सुनकर कुछ प्रसन्न नहीं होता था ॥३७॥

तांस्तथावादिनो राजन्पुत्रांस्तव धनञ्जयः।
अमृष्यमाणो मनसा तेषां तस्य च भाषितम् ॥३८॥

असंक्रुद्धमना वाचः स्मारयन्निव भारत ।
उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव फाल्गुनः ॥३९॥

हे भारत ! इसी तरह तुम्हारे पुत्र भी निन्दा कर रहे थे, तो अर्जुन से वह निन्दा सहन नहीं हो सकी। उसका मन क्रोध से तिलमिला उठा और उनको उनके अधर्मों का स्मरण कराता हुआ पाण्डु-पुत्र अर्जुन आक्षेप के साथ यह वचन बोला ॥३८-३९॥

मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येव महाव्रतम् ।
न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद्बाणगोचरे॥४०॥
यूपकेतो निरीक्ष्यैतन्न मामर्हसि गर्हितुम् ।
न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं परम् ॥४१॥

हे महाभाग ! मेरे इस महान् व्रत को सब राजा जानते हैं, कि जो हमारे पक्ष का मेरे बाण की रक्षा में होगा-उसे कोई भी नहीं मार सकेगा। हे यूपकेतो ! तुम भी यह बात समझ लो, मेरी निन्दा का परित्याग करो। किसी धर्म का ठीक २ विवेचन किये बिना किसी की निन्दा करना अच्छा नहीं है ॥४०-४१॥

आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः ।
यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः ॥४२॥

तुम जानते हो, कि वृष्णिवीर को मारने की इच्छा वाले भूरिश्रवा की भुजा का जो मैंने छेदन कर दिया, वह धर्म विरुद्ध नहीं है, क्योंकि वह तो शस्त्रधारी था ॥४२॥

न्यस्तशस्त्रस्य बालस्य विरथस्य विवर्मणः ।
अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को नु पूजयेत् ॥४३॥

तुम अपनी ओर को देखो, कि शस्त्रहीन, रथरहित, कवच-विहीन, बालक अभिमन्यु का जो तुम लोगों ने वध किया, उसका कौन धार्मिक समर्थन कर सकता है ॥४३॥

एवमुक्तः स पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशत् ।
पाणिना चैव सव्येन प्राहिणोदस्य दक्षिणम् ॥४४॥
एतत्पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः ।
यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥४५॥

जब अर्जुन ने इतना कहा-तो भूरिश्रवा ने अपने शिर से भूमि का स्पर्श किया और बांयें हाथ से इसकी ओर अपनी दांयी भुजा को फैंका। हे महाराज ! महाद्युति, यूपकेतु भूरिश्रवा, अर्जुन के ये वचन सुनकर और नीचे को मुख कर के चुप हो गया ॥४५॥

अर्जुन उवाच—या प्रीतिर्धर्मराजे मे भीमे च बलिनां वरे ।
नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ॥४६॥

अर्जुन बोले—हे शलाग्रज ! जो मेरी प्रीति धर्मराज, बलवानों में श्रेष्ठ भीम, नकुल और सहदेव में है, वही तुम अपने में समझो।

मया त्वं समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना ।
गच्छ पुण्यकृतांल्लोकाञ्छिबिरौशीनरो यथा ॥४७॥

मैंने और महात्मा कृष्ण ने तुमको आज्ञा दे दी है, अब तुम भी उशीनर-पुत्र शिबि की भांति पुण्यलोकों को गमन करो।

वासुदेव उवाच—

ये लोकाममविमलाःसकृद्विभाताब्रह्माद्यैःसुरवृषभैरपीष्यमाणाः
तान्क्षिप्रंव्रजसततग्निहोत्रयाजिन्मत्तुल्योभवगरुडोत्तमाङ्गयानः

श्रीकृष्ण बोले—हे सर्वदा अग्निहोत्र द्वारा यज्ञ करने वाले! जो मेरे विमल, प्रकाशमान ब्रह्मादि देवों से अभिलषित लोक हैं, तुम उनको शीघ्र जाओ और वहां चतुर्भुज मूर्ति धारण करके गरुड़ पर सवारी करते हुए मेरे स्वरूप को प्राप्त होओ ॥४८॥

सञ्जय उवाच—उत्थितः स तु शैनेयो विमुक्तः सौमदत्तिना ।
खड्गमादाय चिच्छित्सुः शिरस्तस्य महात्मनः ॥४९॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! जब सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा ने सात्यकि को छोड़ दिया, तो शिनि-पुत्र सात्यकि उठा और उसने खड्ग लेकर इस महात्मा का शिर काट लेना चाहा ॥४९॥

निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रसक्तं भूरिदक्षिणम् ।
इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम् ॥५०॥
निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम् ।
क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्द्यमानः सुदुर्मनाः ॥५१॥

यज्ञ में बहुत सी दक्षिणा देने वाले, पाण्डु-पुत्र द्वारा आहत हुए, योग में लीन, पाप रहित, शल के बड़े भ्राता भूरिश्रवा को सात्यकि मार देना चाहता था। भूरिश्रवा का हाथ कट गया था, वह कटी हुई सूँड़ वाले हाथी की भांति चुप बैठा था। उसके मारने

की इच्छा करने वाले, दुर्मति, सात्यकि की सारी सेना के वीर चिल्ला कर निन्दा करने लगे ॥५०-५१॥

वार्यमाणः स कृष्णेन पार्थेन च महात्मना ।
भीमेन चक्ररक्षाभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण च ॥५२॥
कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च ।
विक्रोशतां च सैन्यानामवधीत्तं धृतव्रतम् ।५३॥

श्रीकृष्ण, महात्मा अर्जुन, भीमसेन, चक्ररक्षक उत्तमौजा और युधामन्यु, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन तथा सिन्धुराज रोकते ही रह गए और सेना पुकारती ही रही, कि इस व्रतशील भूरिश्रवा का सात्यकि ने वध कर दिया ॥५२-५३॥

प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेन च्छिन्नबाहवे ।
सात्यकिः कौरवेयाय खड्गेनाऽपाहरच्छिरः ॥५४॥

इस समय रण में भूरिश्रवा उपवास करके बैठे हुए थे और अर्जुन ने उसकी भुजा काट डाली थी। सात्यकि ने इस ढंग से बैठे हुए भी भूरिश्रवा के शिर को अपने खड्ग से काट गिराया ॥५४॥

नाऽभ्यनन्दन्त सैन्यानि सात्यकिं तेन कर्मणा ।
अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम् ॥५५॥

इस दुष्कर्म के कारण किसी ने भी सात्यकि की प्रशंसा नहीं की, जो उसने अर्जुन के द्वारा मारे हुए कुरुप्रवीर भूरिश्रवा का फिर वध कर डाला ॥५५॥

सहस्राक्षसमं चैव सिद्धचारणमानवाः ।
भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम् ॥५६॥
अपूजयन्त तं देवा विस्मितास्तेऽस्य कर्मभिः ।
पक्षवादांश्च सुबहुन्प्रावदंस्तत्र सैनिकाः ॥५७॥

सिद्ध, चारण और मनुष्य, इन्द्र के समान तेजस्वी और युद्ध में उपवास करके बैठे हुए मृत प्राय भूरिश्रवा को देखकर उसकी बड़ी पूजा करने लगे। देवता लोग, उसके इस कर्म से बहुत ही चकित हुए तथा तुम्हारे सैनिक अनेक पक्ष की बातें करने लगे ॥५६-५७॥

न वार्ष्णेयस्याऽपराधो भवितव्य हि तत्तथा ।
तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखतरो नृणाम् ॥५८

इसमें वृष्णिवंशोद्भव सात्यकि का दोष नहीं है-यह तो होनहार ही ऐसी थी। अब तुम लोग क्रोध न करो-क्योंकि क्रोध बहुत ही दुःख देने वाला होता है ॥५८॥

हन्तव्यश्चैव वीरेण नाऽत्र कार्या विचारणा ।
विहितो ह्यस्य धात्रैव मृत्युः सात्यकिराहवे ॥५९॥

एक वीर की दूसरे वीर से मृत्यु होती हैं। रण में भूरिश्रवा की मृत्यु सात्यकि के हाथ से ही लिखी थी ॥५९॥

सात्यकिरुवाच—न हन्तव्यो न हन्तव्य इति यन्मां प्रभाषत ।
धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकंचुकमास्थिताः ॥६०॥

सात्यकि ने कहा—तुम लोगों ने धर्म की दुहाई देकर मुझे कहा था-कि मारो मत ? मारो मत ? परन्तु तुम तो स्वयं अधार्मिक हो और ऊपर से धर्म की कांचुली पहिनना चाहते हो ॥६०॥

यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविनाकृतः ।
युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क्व वो गतः ॥६१॥

जब सुभद्रा के पुत्र, शस्त्ररहित बालक का तुम लोगों ने वध किया, तब तुम्हारा धर्म कहां चला गया था॥६१॥

मया त्वेतत्प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि ।
यो मां निष्पिष्य संग्रामे जीवन्हन्यात्पदा रुषा ॥६२॥
स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनिव्रतः ।

मैंने तो प्रथम ही प्रतिज्ञा कर रखी थी, कि जो कोई मेरा अपमान करेगा या मुझे रणभूमि में घसीट कर जीते हुए को पैर की ठोकर मारेगा-मैं उस शत्रु को मारे विना न छोड़ूंगा-चाहे वह फिर मुनि-व्रत धारण करके भी क्यों न बैठ जावे ॥६२॥

चेष्टमानं प्रतीघाते सभुजं मां सचक्षुषः ॥६३॥
मान्यध्वं मृत इत्येवमेतद्वो बुद्धिलाघवम् ।
युक्तो ह्यस्य प्रतीघातः कृतो मे कुरुपुङ्गवाः ॥६४॥

जब तुम लोगों ने भुजा सहित मुझे भूरिश्रवा के आघातों के बचाने की चेष्टा में देखा था, तो फिर आंख वाले होकर भी तुमने मुझे मरा हुआ समझ लिया, यह तुम्हारी बुद्धि की कमी थी । हे कुरुपुङ्गवो ! मैंने जो भूरिश्रवा का वध किया है, वह बिल्कुल उचित ही किया है ॥६३-६४॥

यत्तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञामभिरक्षता ।
सखड्गोऽस्य हतो बाहुरेतेनैवाऽस्मि वञ्चितः ॥६५॥

इसके अतिरिक्त मेरी ओर देखकर अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करते हुए अर्जुन ने जो खड्गसहित भूरिश्रवा की बाहु काट डाली, इससे भी मेरा ही अपमान हुआ है ॥६५॥

भवितव्यं हि यद्भावि दैवं चेष्टयतीव च ।
सोऽयं हतो विमर्देऽस्मिन्किमत्राऽधर्मचेष्टितम् ॥६६॥

जो होनहार है, वह होकर रहता है। दैव इसमें मानो अपना प्रयत्न करता रहा है। भूरिश्रवा तो इस घोर संग्राम में मारा गया है, इसमें किसका क्या अधर्म है ॥६६॥

अपि चाऽयं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि ।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥६७॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात्कर्तव्यमेव तत् ॥६८॥

वाल्मीकि मुनि ने भूमि पर यह श्लोक प्रथम ही लिख दिया है, कि जब रावण सीता का वध करने लगा और हनुमान ने रोका-तो वह बोला—अरे वानर ! जो तू कह रहा है, कि स्त्री का वध नहीं करना चाहिए-यह ठीक नहीं है। जो मनुष्य अपने विजय की चेष्टा करता है, वह सर्वदा शत्रु के चित्त को पीड़ा पहुंचाने वाले कर्मों को जैसे हो सके-उसी तरह करता रहे ॥६७-६८॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्ते महाराज सर्वे कौरवपुङ्गवाः ।
न स्म किञ्चिदभाषन्त मनसा समपूजयन् ॥६९॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! जब सात्यकि ने इतना कहा-तो सारे कुरुप्रवीर कुछ भी नहीं बोले और मन में भूरिश्रवा की प्रशंसा करने लगे ॥६६॥

मन्त्राभिपूतस्य महाध्वरेषु यशस्विनो भूरिसहस्रदस्य च ।
मुनेरिवाऽरण्यगतस्य तस्य न तत्र कश्चिद्वधमभ्यनन्दत् ॥

बड़े २ यज्ञों में मन्त्रों से पवित्र, बहुत सी दक्षिणा देने वाले यशस्वी, वनवासी मुनि की भांति स्थित, भूरिश्रवा के वध का किसी ने भी अनुमोदन नहीं किया ॥७०॥

सुनीलकेशं वरदस्य तस्य शूरस्य पारावतलोहिताक्षम् ।
अश्वस्य मेध्यस्य शिरो निकृत्तं न्यस्तं हविर्धानमिवाऽन्तरेण

सुन्दर नीले केशों से समन्वित, पारावत के समान लाल नेत्र धारी, वरदायी शूरवीर भूरिश्रवा का शिर ऐसे शोभित हो रहा था, जैसे-बलि देने के निमित्त काटा हुआ पवित्र अश्व का शिर, हविर्धान में रखा हुआ सुशोभित हो रहा हो ॥७१॥

स तेजसा शस्त्रकृतेन पूतो महाहवे देहवरं विसृज्य ।
आक्रामदूर्ध्वं वरदो वराहों व्यावृत्य धर्मेण परेण रोदसी ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोवधे त्रिचत्वारिंश-दधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥

इस महायुद्ध में शस्त्र के तेज से पवित्र होकर वरदाता, वर के योग्य, भूरिश्रवा, अपने देह को छोड़कर अपने उत्कृष्ट धर्म के द्वारा

आकाश और पृथिवी का अतिक्रमण करके ऊर्ध्व लोक में जा पहुंचा ॥७२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भूरिश्रवा के वध का एक सौ तेंतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ चवालीसवा अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः ।
तीर्णः सैन्यार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे ॥१॥
स कथं कौरवेयेण समरेष्वनिवारितः ।
निगृह्य भूरिश्रवसा बलाद्भुवि निपातितः ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सूत ! जो वीर द्रोणाचार्य, कर्ण, विकर्ण और कृतवर्मा से भी नहीं जीता जा सका, जिसने राजा युधिष्ठिर से प्रतिज्ञा करके कौरवसेना रूपी समुद्र को पार किया; युद्ध में निवृत्त नहीं होने वाले उसी सात्यकि को बल-पूर्वक पकड़ कर कुरुवीर भूरिश्रवा ने कैसे भूमि में गिरा दिया ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—शृणु राजन्निहोत्पत्तिं शैनेयस्य यथा पुरा ।
यथा च भूरिश्रवसो यत्र ते संशयो नृप ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इस विषय में जो आपको सन्देह है, उसकी निवृत्ति के लिए आप जिस तरह शिनिवंशश्रेष्ठ सात्यकि की तथा भूरिश्रवा की उत्पत्ति हुई है-उसे प्रथम सुनो ॥३॥

अत्रेः पुत्रोऽभवत्सोमः सोमस्य तु बुधः स्मृतः।
बुधस्यैको महेन्द्राभः पुत्र आसीत्पुरूरवाः ॥४॥
पुरूरवस आयुस्तु आयुषो नहुषः सुतः।
नहुषस्य ययातिस्तु राजा देवर्षिसम्मतः ॥५॥
ययातेर्देवयान्यां तु यदुर्ज्येष्ठोऽभवत्सुतः।
यदोरभूदन्ववाये देवमीढ इति स्मृतः ॥६॥
यादवस्तस्य तु सुतः शूरस्त्रैलोक्यसंमतः।
शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ॥७॥
धनुष्यनवरः शूरः कार्तवीर्यसमो युधि।
तद्वीर्यश्चापि तत्रैव कुले शिनिरभून्नृप ॥८॥

हे भरतर्षभ ! अत्रि ऋषि के पुत्र सोम और सोम के बुध की उत्पत्ति हुई। इस बुध के इन्द्र के तुल्य पराक्रमी पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुरुरवा के आयु और आयु के नहुष, नहुष के देवर्षियों से प्रशंसित ययाति नामक पुत्र हुआ। ययाति द्वारा देवयानी में बड़ा पुत्र यदु हुआ और यदु के वंश में राजा देवमीढ़ उत्पन्न हुआ। इसी देवमीढ़ का यादव नामक पुत्र था, इस यादव के त्रिलोक सम्मानित शूरसेन नामक पुत्र हुआ। इसी शूरसेन का पुत्र महायशस्वी नरश्रेष्ठ वसुदेव हैं। हे नृप ! यह राजा शूरसेन धनुर्विद्या में सर्वश्रेष्ठ और कार्तवीर्य अर्जुन के तुल्य पराक्रमी था। इसी के समान इस कुल में राजा शिनि उत्पन्न हुआ।

एतस्मिन्नेव काले तु देवकस्य महात्मनः।
दुहितुः स्वयंवरे राजन्सर्वक्षत्रसमागमे ॥९॥

तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमाशु वै ।
निर्जित्य पार्थिवान्सर्वान्रथमारोपयच्छिनिः ॥१०॥

हे राजन्! इसी समय में महात्मा देवक की पुत्री का स्वयंवर रचा गया और उसमें अनेक क्षत्रिय वीर उपस्थित हुए। वहां पर सारे राजाओं को जीत कर राजा शिनि ने वसुदेव के निमित्त देवकी को अपने रथ में बैठा लिया ॥९-१०॥

तां दृष्ट्वा देवकीं शूरो रथस्थां पुरुषर्षभ ।
नाऽमृष्यत महातेजाः सोमदत्तः शिनेर्नृप ॥११॥

हे पुरुषर्षभ! उस समय देवकी को रथ में बैठी देखकर महातेजस्वी सोमदत्त, राजा शिनि की इस चेष्टा को नहीं सह सका।

तयोर्युद्धमभूद्राजन्दिनार्धं चित्रमद्भुतम् ।
बाहुयुद्धं सुबलिनोः प्रसक्तं पुरुषर्षभ ॥१२॥
शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसह्य भुवि पातितः ।
असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदा हतः ॥१३॥
मध्ये राजसहस्राणां प्रेक्षकाणां समन्ततः ।
कृपया च पुनस्तेन स जीवेति विसर्जितः ॥१४॥

हे राजन्! इन दोनों बलवान् वीरों का बड़ा अद्भुत बाहु-युद्ध आधे दिन तक बड़े दावपेचों के साथ होता रहा। हे पुरुषर्षभ! अब राजा शिनि ने सोमदत्त को उठाकर बल-पूर्वक भूमि में गिरा दिया और तलवार निकाल कर उसके बाल पकड़ लिए तथा बलपूर्वक उसके पैर की ठोकर मारी। यह घटना सहस्रों राजाओं

के देखते २ कर डाली, परन्तु- अनुग्रह करके उसने जीवनदान देकर सोमदत्त को छोड़ दिया ॥१२-१४॥

तदवस्थः कृतस्तेन स सोमदत्तोऽथ मारिष ।
प्रासादयन्महादेवममर्षवशमास्थितः ॥१५॥

तस्य तुष्टो महादेवो वराणां वरदः प्रभुः ।
वरेण च्छन्दयामास स तु वव्रे वरं नृपः ॥१६॥

हे आर्यगुणसम्पन्न ! महाभाग ! राजा शिनि ने सोमदत्त की ऐसी दशा कर डाली, कि जिससे वह आवेश में भर कर इसके पराजय के निमित्त भगवान् शङ्कर की उपासना करने लगा । वर देने वालों में सर्वश्रेष्ठ, शक्तिशाली भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और राजा सोमदत्त से वर मांगने को कहा-तो उसने-यह वर मांगा।

पुत्रमिच्छामि भगवन्यो निपात्य शिनेः सुतम् ।
मध्ये राजसहस्राणां पदा हन्याच्च संयुगे ॥१७॥

हे भगवन ! मैं ऐसा पुत्र चाहता हूं, जो इस शिनि के पुत्र को रण में गिरा कर सहस्रों राजाओं के मध्य में उसको पैर की ठोकर से मारे ॥१७॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सोमदत्तस्य पार्थिव ।
एवमस्त्विति तत्रोक्त्वा स देवोऽन्तरधीयत ॥१८॥

हे नृपते ! राजा सोमदत्त के ये वचन सुनकर भगवान् शंकर ने कहा-अच्छी बात है, ऐसा ही होगा-इतना कह कर भगवान् अन्तर्हित हो गए ॥१८॥

स तेन वरदानेन लब्धवान्भूरिदक्षिणम् ।
अपातयच्च समरे सौमदत्तिः शिनेः सुतम् ॥१६॥
पश्यतां सर्वसैन्यानां पदा चैनमताडयत् ।

उसी वरदान के कारण सोमदत्त को यज्ञ में बहुत सी दक्षिणा देने वाला यह भूरिश्रवा नामक पुत्र प्राप्त हुआ । इस कारण से ही इस सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा ने रण में शिनि के पुत्र सात्यकि को रण में गिरा कर पैर की ठोकर से सारे राजाओं के देखते २ अपमानित किया ॥१६॥

एतत्ते कथितं राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥२०॥
नहि शक्यो रणे जेतुं सात्वतो मनुजर्षभैः ।

हे राजन् ! जो तुमने प्रश्न किया था, मैंने उसका उत्तर दे दिया-इसी कारण से सात्यकि जीता गया, नहीं तो सात्यकि को जीतने में कोई मनुजवीर समर्थ नहीं है ॥२०॥

लब्धलक्ष्याश्च संग्रामे बहुशश्चित्रयोधिनः ॥२१॥
देवदानवगन्धर्वान्विजेतारो ह्यविस्मिताः ।
स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः ॥२२॥
न तुल्यं वृष्णिभिरिह दृश्यते किञ्चन प्रभो ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भरतर्षभ ॥२३॥
न ज्ञातिमवमन्यन्ते वृद्धानां शासने रताः ।

हे प्रभो ! ये वृष्णिवीर, ठीक लक्ष्य पर बाण मारने वाले और रण में बड़े अद्भुत ढंग से युद्ध करते हैं । ये बिना किसी घबराहट

के देव, दानव और गन्धर्वों को को भी जीत लेते हैं। ये अपने बल-विक्रम के अधीन रहते हैं, किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रखते हैं। हे भरतर्षभ! मुझे तो वृष्णिवीरों के सदृश बल में कोई वीर भूत, वर्तमान और भविष्य में समान दिखाई नहीं देता है। ये लोग कभी अपने बन्धु बान्धवों का अनादर नहीं करते और सदा अपने वृद्धों की आज्ञा में चलते रहते हैं ॥२१ २३॥

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥२४॥
जेतारो वृष्णिवीराणां किं पुनर्मानवा रणे।

देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग और राक्षस भी रण में वृष्णिवंशज वीरों के जीतने में समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्यों की तो क्या चलाई है ॥२४॥

ब्रह्मद्रव्ये गुरुद्रव्ये ज्ञातिस्वे चाप्यहिंसकाः ॥२५॥
एतेषां रक्षितारश्च ये स्युः कस्यांश्चिदापदि।

ये वीर, ब्राह्मण, गुरु और जाति के धन का कभी अपहरण नहीं करते और जब कभी ब्राह्मण संकट में फंस जाते हैं, तो ये उनकी सब प्रकार से रक्षा में तत्पर होते हैं ॥२५॥

अर्थवन्तो न चोत्सिक्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥२६॥
समर्था नावमन्यन्ते दीनानभ्युद्धरन्ति च।
नित्यं देवपरा दान्तास्त्रातारश्चाऽविकत्थनाः ॥२७॥
तेन वृष्णिप्रवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते।

ये ऐश्वर्यशाली होकर भी अहङ्कारी नहीं हैं। सदा ब्रह्मवंश के सेवक और सत्यवादी हैं। ये समर्थ होकर भी कभी किसी

का अपमान नहीं करते, प्रत्युत दीनों का उद्धार करते रहते हैं। ये सर्वदा देव पूजा में निरत, उदार, सबके रक्षक और वृथा प्रशंसा के करने वाले नहीं हैं, इसी से तो वृष्णिवंशजों के संगठन को कोई तोड़ नहीं सकता है ॥२६-२७॥

अपि मेरुं वहेत्कश्चित्तरेद्वा मकरालयम् ॥२८॥
न तु वृष्णीप्रवीराणां समेत्याऽन्तं व्रजेन्नृप ।

हे नृप ! कोई मनुष्य मेरु पर्वत को उठा सकता है और समुद्र को तैर कर पार कर सकता है, परन्तु वृष्णिप्रवीरों की झपेट में आकर कोई बच नहीं सकता है ॥२८॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्र ते संशयः प्रभो ।
कुरुराज नरश्रेष्ठ तव व्यपनयो महान् ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रशंसायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥

हे प्रभो ! जिस विषय में तुमको सन्देह हुआ था, वह मैंने सारा निवृत्त कर दिया। हे नरश्रेष्ठ ! कुरुराज ! यह जो कुछ हो रहा है, वह सब कुछ तुम्हारी कुनीति का ही परिणाम हो रहा है।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सोमदत्त को वरदान प्राप्ति और सात्यकि की प्रशंसा का एक सौ चवालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ



एक सौ पैंतालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—तदवस्थे हते तस्मिन्भूरिश्रवसि कौरवे ।
यथा भूयोऽभवद्युद्धं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! मुनि की अवस्था में स्थित भूरिश्रवा के मार देने के अनन्तर जिस प्रकार युद्ध हुआ-मुझे अब उसको ठीक २ सुनाओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत ।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः समचूचुदत् ॥२॥
चोदयाऽश्वान् भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः ।

हे भारत ! जब राजा भूरिश्रवा परलोक को चले गए-तो महाबाहु अर्जुन ने वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! अब तुम मेरे अश्वों को वहीं ले चलो-जहां पर राजा जयद्रथ है ॥२॥

श्रूयते पुण्डरीकाक्ष त्रिषु धर्मेषु वर्तते ॥३॥
प्रतिज्ञां सफलां चापि कर्तुमर्हसि मेऽनघ ।
अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः ॥४॥

हे पुण्डरीकाक्ष ! जयद्रथ न तो रण से भागेगा ही और न किसी प्रकार इधर उधर ही होगा-वह तो रण में सन्मुख मर जाना ही अच्छा समझता है-मैंने यह सुना है। हे अनघ ! अब आप आगे चलो और मेरी प्रतिज्ञा को सफल बनाओ। हे महाबाहो ! तुम देखते नहीं हो, सूर्य कितनी जल्दी छुपने को बढ़ा जा रहा है।

एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युद्यतं मया ।
कार्यं संरक्ष्यते चैष कुरुसेनामहारथैः ॥५॥

हे पुरुषव्याघ्र ! यह बड़ा भारी कार्य मेरे सन्मुख पड़ा है और दूसरे विरोध में कुरुसेना के मुख्य २ महारथी वीर राजा जयद्रथ की रक्षा कर रहे हैं ॥५॥

यथा नाऽभ्येति सूर्योऽस्तं यथा सत्यं भवेद्वचः ।
चोदयाऽश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्रथम् ॥६॥

हे कृष्ण ! तुम इसी ढंग से शीघ्रता के साथ अपने अश्वों को आगे बढ़ाओ, कि जिससे सूर्य अस्त न हो जावे और मैं राजा जयद्रथ को मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लूं ॥६॥

ततः कृष्णो महाबाहु रजतप्रतिमान्हयान् ।
हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति ॥७॥

हे राजन् ! इतना सुनकर अश्व-विद्या में कुशल महाबाहु श्रीकृष्ण ने चांदी के समान श्वेत वर्ण धारी अर्जुन के रथ के अश्वों को जयद्रथ के रथ की ओर चलते कर दिए ॥७॥

तं प्रयान्तममोघेषुमुत्पतद्भिरिवाऽऽशुगैः ।
त्वरमाणा महाराज सेनामुख्याः समाद्रवन् ॥८॥
दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥९॥

हे महाराज ! सफल वाण छोड़ने वाले अर्जुन को आशुगामी वाण के तुल्य झपटते देखकर बड़ी शीघ्रता के साथ कौरवों की

सेना के मुख्य २ वीर राजा दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और स्वयं सिन्धुराज आगे बढ़े ॥८-६॥

समासाद्य च बीभत्सुः सैन्धवं समुपस्थितम् ।
नेत्राभ्यां क्रोधदीप्ताभ्यां सम्प्रैक्षन्निर्दहन्निव ॥१०॥

जब अर्जुन ने अपने सन्मुख राजा जयद्रथ को देखा, तो क्रोध से प्रदीप्त नेत्रों के द्वारा इस तरह देखा मानो उसे भस्म कर रहे हों।

ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत् ।
अर्जुनं प्रेक्ष्य संयातं जयद्रथवधं प्रति ॥११॥

अब राजा दुर्योधन ने अर्जुन को देखकर राधा-पुत्र कर्ण से बड़ी घबराहट के साथ कहा—तुम देख रहे हो, कि अर्जुन राजा जयद्रथ के वध के लिए आगे बढ़ आया है ॥११॥

अयं स वैकर्तन युद्धकालो विदर्शयस्वाऽऽत्मबलं महात्मन् ।
यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेनजयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व ॥१२॥

हे वैकर्तन ! कर्ण ! अब युद्ध का समय आ गया है। हे महात्मन् ! तुम इस समय अपना पराक्रम दिखाओ। हे कर्ण ! रण में अर्जुन जिस प्रकार राजा जयद्रथ को न मार सके-तुम वही प्रयत्न करो।

अल्पावशेषो दिवसो नृवीर विघातयस्वाऽद्य रिपुं शरौघैः ।
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर ध्रुवो हि नः कर्ण जयो भविष्यति ॥

हे नृवीर ! अब दिन बहुत थोड़ा शेष है। तुम अपने बाण-जाल से शत्रु के छक्के छुटा दो। हे नरप्रवीर ! कर्ण ! यदि राजा

जयद्रथ न मारा गया और सायंकाल हो गया-तो यह आज हमारी विजय मानी जावेगी ॥१३॥

सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्याऽस्तमनं प्रति ।
मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥१४॥

जब सिन्धुराज की रक्षा करते २ सूर्य अस्त हो जावेगा, तो अर्जुन की प्रतिज्ञा मिथ्या होगी और फिर वह अपनी दूसरी प्रतिज्ञा के अनुसार अग्नि में प्रवेश कर जावेगा ॥१४॥

अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद ।
जीवितुं नोत्सहेरन्वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः ॥१५॥

हे मानद ! जब भूमि पर अर्जुन ही न रहेगा-तो यह निश्चय है, कि अन्य सारे भाई पाण्डव भी अपने साथियों के साथ जीवित नहीं रह सकेंगे ॥१५॥

विनष्टैः पाण्डवेयैश्च सशैलवनकाननाम् ।
वसुन्धरामिमां कर्ण भोक्ष्यामो हतकण्टकाम् ॥१६॥

जब पाण्डव ही नष्ट हो जावेंगे-तो हे कर्ण ! हम लोग, शत्रु रहित होकर सारे पर्वत, वन और काननों से युक्त, इस पृथिवी का उपभोग कर सकेंगे ॥१६॥

दैवेनोपहतः पार्थो विपरीतश्च मानद ।
कार्याकार्यमजानानः प्रतिज्ञां कृतवान्रणे ॥१७॥

हे मान देने वाले कर्ण ! अब अर्जुन का दैव विपरीत समझो, जो उसने अपने से होने योग्य वा नहीं होने योग्य कार्य का विचार नहीं किया और रण में प्रतिज्ञा कर डाली ॥१७॥

नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना ।
प्रतिज्ञेयं कृता कर्ण जयद्रथवधं प्रति ॥१८॥

हे कर्ण ! मेरी सम्मति में किरीटधारी अर्जुन ने अपने विनाश के लिए ही यह राजा जयद्रथ के वध करने की भयङ्कर प्रतिज्ञा की है ॥१८॥

कथं जीवति दुर्धर्षे त्वयि राधेय फाल्गुनः ।
अनस्तङ्गत आदित्ये हन्यात्सैन्धवकं नृपम् ॥१९॥

हे राधेय ! जब तक तुम दुर्धर्ष वीर जीवित हो, तब तक अर्जुन, सूर्य के अस्त होने से पूर्व कैसे सिन्धुराज जयद्रथ को मार सकता है ॥१९॥

रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना ।
जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद्धनञ्जयः ॥२०॥

महावीर कृपाचार्य और मद्रराज द्वारा राजा जयद्रथ सुरक्षित है, फिर रणाङ्गण में अर्जुन, कैसे सिन्धुराज को मार सकता है ।

द्रौणिना रक्ष्यमाणं च मया दुःशासनेन च ।
कथं प्राप्स्यति बीभत्सुः सैन्धवं कालचोदितः ॥२१॥

जब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, मैं, स्वयं और दुःशासन, राजा जयद्रथ की रक्षा कर रहे हैं, तो काल के मुख में पड़कर कैसे अर्जुन, राजा जयद्रथ के पास पहुंच सकेगा ॥२१॥

युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते च दिवाकरः ।
शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद ॥२२॥

हे मानद ! अभी बहुत से शूरवीर युद्ध कर रहे हैं और सूर्य तो छुपने ही वाला है। मुझे तो यह पूरा निश्चय है, कि अर्जुन राजा जयद्रथ के पास भी नहीं पहुंच सकेगा ॥२२॥

स त्वं कर्ण मया सार्धं शूरैश्चाऽन्यैर्महारथैः।
द्रौणिना त्वं हि सहितो मद्रेशेन कृपेण च ॥२३॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे।

हे कर्ण ! अब तुम मुझ, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, कृपाचार्य तथा अन्य महारथी शूरवीरों को साथ लेकर बड़े प्रयत्न के साथ रण में अर्जुन से युद्ध करो ॥२३॥

एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष ॥२४॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं प्रत्युवाच कुरूत्तमम्।

हे आर्य ! जब राजा दुर्योधन ने इतना कहा, तो राधा-पुत्र कर्ण कुरुराज राजा दुर्योधन से यह वचन बोला ॥२४॥

दृढलक्ष्येण वीरेण भीमसेनेन धन्विना ॥२५॥
भृशं भिन्नतनुः संख्ये शरजालैरनेकशः।
स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे सम्प्रति मानद ॥२६॥
नाऽङ्गमिङ्गति किञ्चिन्मे सन्तप्तस्य महेषुभिः।
योत्स्यामि तु यथाशक्त्या त्वदर्थं जीवितं मम ॥२७॥
यथा पाण्डवमुख्योऽसौ न हनिष्यति सैन्धवम्।

हे मानद ! लक्ष्य को दृढ़ता से भेदने वाले धनुर्धर वीरवर भीमसेन ने रण में अनेक बार बाणजाल छोड़कर मेरे शरीर को

अत्यन्त जर्जरित कर दिया है। रण में ठहरना चाहिए-मैं इसी ध्यान से ठहरा हुआ हूँ-नहीं तो भीम के बड़े २ बाणों से शिथिल हुआ-मेरा अङ्ग कुछ भी चेष्टा नहीं कर रहा है। मेरा तो जीवन ही तुम्हारे लिए है, इससे जितनी मुझ में शक्ति होगी, मैं युद्ध करूंगा, जिससे पाण्डववीर अर्जुन, सिन्धुराज को मार न सकेगा।

नहि मे युद्ध्यमानस्य सायकानस्यतः शितान् ॥२८॥
सैन्धवं प्राप्स्यते वीरः सव्यसाची धनञ्जयः।

जब मैं युद्ध करता हुआ बाणों को फेंक रहा होऊंगा-तब सव्यसाची धनञ्जय, किसी प्रकार भी सिन्धुराज को प्राप्त नहीं कर सकेगा ॥२८॥

यत्तु भक्तिमता कार्यं सततं हितकांक्षिणा ॥२९॥
तत्करिष्यामि कौरव्य जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

हे कुरुराज! भक्ति करने वाले हितकारी-पुरुष को जो करना चाहिए-मैं वह कर दूंगा, परन्तु जय-पराजय तो दैव के ही अधीन है ॥२९॥

सैन्धवार्थे परं यत्नं करिष्याम्यद्य संयुगे ॥३०॥
त्वत्प्रियार्थं महाराज जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

हे महाराज! आज हम सिन्धुराज की रक्षा के निमित्त रण में महान् प्रयत्न करेंगे, जिससे तुम्हारे अभीष्ट की सिद्धि होना सम्भव है, परन्तु फिर भी विजय तो दैव के ही हाथ में है ॥३०॥

अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वं व्यपाश्रितः ॥३१॥

त्वदर्थे पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

हे पुरुषव्याघ्र ! आज मैं अपने महान् पौरुष का आश्रय लेकर तुम्हारी विजय के निमित्त अर्जुन से घोर संग्राम करूंगा-परन्तु फिर भी विजय तो दैव के ही वश में है ॥३१॥

अद्य युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः ॥३२॥

पश्यन्तु सर्वसैन्यानि दारुणं लोमहर्षणम् ।

हे कुरुश्रेष्ठ ! आज मेरा और अर्जुन का इतना लोमहर्षण-कारी घोर युद्ध होगा, कि यह सारी सेना खड़ी २ उसका तमाशा देखने लगेगी ॥३२॥

कर्णकौरवयोरेवं रणे सम्भाषमाणयोः ॥३३॥

अर्जुनो निशितैर्बाणैर्जघान तव वाहिनीम् ।

हे राजन् ! जब कर्ण और कुरुराज दुर्योधन इस प्रकार रणाङ्गण में वार्तालाप कर रहे थे, तो अर्जुन उस समय अपने तीखे बाणों से तुम्हारी सेना को मारने लगा ॥३३॥

चिच्छेद निशितैर्बाणैः शूराणामनिवर्तिनाम् ॥३४॥

भुजान्परिघसङ्काशान्हस्तिहस्तोपमान्रणे ।

जो शूरवीर युद्ध से नहीं भागते थे, उनमें किसी की अर्गला के समान और किसी की हाथी की सूंड के तुल्य भुजा को रण में अपने तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन काट २ कर गिराने लगा ॥३४॥

शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥३५॥
हस्तिहस्तान्हयग्रीवान्रथाक्षांश्च समन्ततः ।

महाबाहु अर्जुन ने अनेक वीरों के शिर, हाथियों की सूंड, अश्वों की ग्रीवा और रथों के अक्ष (धुरे) अपने देदीप्यमान बाणों से काट गिराए ॥३५॥

शोणिताक्तान्हयारोहान्गृहीतप्रासतोमरान् ॥३६॥
क्षुरैश्चिच्छेद बीभत्सुर्द्विधैकैकं त्रिधैव च ।

रण में भयङ्कर अर्जुन ने प्रास तोमर आदि शस्त्रों को लिए हुए, रक्त में लिप्त, अश्वारोहियों के शरीर के छुरे के सदृश बाणों से कहीं दो और कहीं तीन टुकड़े कर डाले ॥३६॥

हयान्वारणमुख्यांश्च प्रापतन्त समन्ततः ॥३७॥
ध्वजाश्छत्राणि चापानि चामराणि शिरांसि च ।

इस समय रण में चारों ओर बड़े २ उत्तम और मुख्य २ हाथी और घोड़े मर २ कर गिरने लगे । ध्वजा, धनुष, छत्र, चंवर और वीरों के शरीर, रणभूमि में बिखरे पड़े थे ॥३७॥

कक्षमग्निरिवोद्धूतः प्रदहंस्तव वाहिनीम् ॥३८॥
अचिरेण महीं पार्थश्चकार रुधिरोत्तराम् ।

जिस प्रकार तृणसमूह की ढेरी में आग लग जाती है, उसी तरह अर्जुन तुम्हारी सेना को दग्ध करने लगा। थोड़ी ही देर में अर्जुन ने पृथ्वी को रक्त की धारा से भर दिया ॥३८॥

हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ॥३९॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।

सत्यपराक्रमी, महाबली, दुराधर्ष अर्जुन, तुम्हारी सेना के अधिकांश योद्धाओं को मार कर सिन्धुराज जयद्रथ के पास पहुंच गया ॥३९॥

बीभत्सुर्भीमसेनेन सात्वतेन च रक्षितः ॥४०॥
प्रबभौ भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः ।

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! अब अर्जुन की रक्षा पर भीमसेन और सात्यकि थे । इस समय अर्जुन जाज्वल्यमान अग्नि के सदृश प्रदीप्त दिखाई देते थे ॥४०॥

तं तथाऽवस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीर्यसम्पदा ॥४१॥
नाऽमृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवं पुरुषर्षभाः ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ॥४२॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ।
सन्नद्धाः सैन्धवस्याऽर्थे समावृण्वन्किरीटिनम् ॥४३॥

इस प्रचण्ड रूप में अपने बलविक्रम को दिखाते हुए अर्जुन को आगे बढ़ता देखकर पुरुषप्रवीर महाधनुर्धर तुम्हारे महारथी राजा दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य इसे नहीं सह सके । ये सिन्धुराज जयद्रथ की रक्षा को तत्पर हो गए । इन्होंने सब ओर से किरीटधारी अर्जुन के पास जाकर इसे घेर लिया ॥४१-४३॥

नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनिःस्वनैः ।
संग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः ।४४॥
अभीताः पर्यवर्तन्त व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽच्युतार्जुनौ ॥४५॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे ।

अर्जुन रथ के मार्ग दिखाता हुआ नांच सा रहा था । यह धनुष, प्रत्यञ्चा, तलत्राण आदि की ध्वनि को दिखाता हुआ रण-कुशलता का परिचय देने लगा । जब काल के समान मुख खोले हुए अर्जुन को आता देखा, तो युद्ध विशारद, सारे कौरव महारथी, निर्भीक भाव से खड़े हो गए । इन्होंने राजा जयद्रथ को अपने पीछे कर लिया और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन का विनाश करने के निमित्त उन पर प्रहार करने लगे । ये चाहते थे, कि किसी प्रकार सूर्य छुप जावे, क्योंकि सूर्य छुपने के समीप पहुंच कर लाल हो चुका था ॥४४-४५॥

ते भुजैर्भोगिभोगाभैर्धनूंष्यानम्य सायकान् ॥४६॥
मुमुचुः सूर्यरश्म्याभाञ्छतशः फाल्गुनं प्रति ।

इन कौरव महारथियों ने सर्प के फण के सदृश भुजाओं से धनुषों को खैंच कर सूर्य की किरणों के सदृश तीक्ष्ण सैंकड़ों बाणों को अर्जुन पर छोड़ा ॥४६॥

ततस्तानस्यमानांश्च किरीटी युद्धदुर्मदः ॥४७॥
द्विधा त्रिधाऽष्टधैकैकं छित्वा विव्याध तान्रथान् ।

हे राजन् ! जब ये महारथी, इस प्रकार बाण छोड़ रहे थे-तो युद्धदुर्मद् अर्जुन ने किसी बाण के दो, किसी के तीन और किसी २ के तो आठ २ टुकड़े कर डाले, तथा अन्य बाण छोड़कर उन महारथियों को भी वींध दिया ॥४७॥

सिंहलांगूलकेतुस्तु दर्शयन्वीर्यमात्मनः ॥४८॥
शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत् ।

हे राजन् ! सिंह की पुच्छ के चिन्ह वाला ध्वजा का धारण करने वाला, शारद्वती-पुत्र अश्वत्थामा, अपने पराक्रम को दिखाता हुआ अर्जुन को रोकने लगा ॥४८॥

स विध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवं च सप्तभिः ॥४९॥
अतिष्ठद्रथमार्गेषु सैन्धवं प्रतिपालयन् ।

यह दश बाण अर्जुन और सात बाण श्रीकृष्ण के मार कर सिन्धुराज की रक्षा में तत्पर हुआ, रथों के मार्ग के मध्य में खड़ा हो गया ॥४९॥

अथैनं कौरवश्रेष्ठाः सर्व एव महारथाः ॥५०॥
महता रथवंशेन सर्वतः प्रत्यवारयन् ।

इसके अनन्तर अन्य सारे कौरव महारथी, एक बड़ा भारी रथ समूह लेकर इसकी रक्षा के लिए पहुंच गए, जिसने सब ओर से अश्वत्थामा को घेर लिया ॥५०॥

विस्फारयन्तश्चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥५१॥
सैन्धवं पर्यरक्षन्त शासनात्तनयस्य ते ।

हे राजन्! तुम्हारे पुत्र की आज्ञा के वशीभूत, ये कौरवश्रेष्ठ, अपने २ धनुषों को चढ़ाते और उनसे बाण-वर्षा करते हुए सिन्धुराज जयद्रथ की रक्षा करने लगे ॥५१॥

ततः पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ॥५२॥
इषूणामक्षयत्वं च धनुषो गाण्डिवस्य च ।

इस समय शूरवीर कुन्ती-पुत्र अर्जुन की भुजाओं का बल और गाण्डीव धनुष का लगातार अक्षय बाण परम्परा का छोड़ना सबको प्रकट हो गया ॥५२॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ॥५३॥
एकैकं दशभिर्बाणैः सर्वानेव समार्पयत् ।

अर्जुन ने अपने अस्त्रों से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य के अस्त्रों को रोक कर फिर इन सारे वीरोंको दश २ बाणों से आहत कर दिया ॥५३॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः ॥५४॥
दुर्योधनस्तु विंशत्या कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः ।
त एनमभिगर्जन्तो विध्यन्तश्च पुनः पुनः ॥५५॥
विधुन्वन्तश्च चापानि सर्वतः प्रत्यवारयन् ।

अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने पच्चीस और वृषसेन ने सात, दुर्योधन ने बीस, कर्ण और शल्य ने तीन २ बाण अर्जुन पर छोड़े। ये सारे महारथी, गर्जना करते हुए और बार २ अर्जुन को

बींधते हुए तथा अपने धनुषों को चढ़ाते हुए सब ओर से अर्जुन को घेर कर खड़े हो गए ॥५४-५५॥

श्लिष्टं च सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशु ते ॥५६॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तस्त्वरमाणा महारथाः ।

ये कौरव महारथी, सूर्य का अस्त चाह रहे थे, इसलिए शीघ्रता के साथ युद्ध करते हुए इन कौरववीरों ने अपने २ रथों का मण्डल एक दूसरे से भिड़ा दिया ॥५६॥

त एनमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूंषि च ॥५७॥
सिषिचुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेघा इवाऽम्बुभिः ।

ये महावीर. बड़े उच्चस्वर से सिंहनाद करते थे और धनुषों को कँपाते जा रहे थे । इन्होंने जलधारा से पर्वत को मेघों की भांति अपने तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को पाट दिया ॥५७॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र राजन्व्यदर्शयन् ॥५८॥
धनञ्जयस्य गात्रे तु शूराः परिघबाहवः ।

परिघ के समान भुजाओं के धारक, इन कौरव शूरवीरों ने अपने २ दिव्य अस्त्रों को अर्जुन के शरीर में गड़े हुए दिखाया अर्थात् सबने अपने २ अस्त्रों का अर्जुन पर प्रहार किया ॥५८॥

हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ॥५९॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।

हे राजन् ! इस प्रकार महाबली अर्जुन ने तुम्हारी सेना के प्रायः सब योद्धाओं को मार २ कर सेना को थोथी कर डाला । इसके अनन्तर सत्यपराक्रमी दुराधर्ष अर्जुन, सिन्धुराज के समीप पहुंचा ।

तं कर्णः संयुगे राजन्प्रत्यवारयदाशुगैः ॥६०॥

मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत ।

हे राजन् ! अब अर्जुन को आगे देखकर रण में अपने आशुगामी बाणों से कर्ण ने रोकना आरम्भ किया हे भारत ! इस घटना को भीमसेन और सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि देख रहे थे ।

तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद्रणाजिरे ॥६१॥

सूतपुत्रं महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

महाबाहु, अर्जुन ने सारी सेना के देखते २ रणाङ्गण में दश बाण छोड़कर सूत-पुत्र कर्ण को आहत कर दिया ॥६१॥

सात्वतश्च त्रिभिर्बाणैः कर्णं विव्याध मारिष ॥६२॥

भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः ।

हे आर्य ! सात्वतश्रेष्ठ, सात्यकि ने भी कर्ण पर तीन, भीम ने तीन और अर्जुन ने सात बाण छोड़कर उसे क्षत-विक्षत कर दिया ।

तान्कर्णः प्रतिविव्याध षष्ट्या षष्ट्या महारथः ॥६३॥

तद्युद्धमभवद्राजन्कर्णस्य बहुभिः सह ।

हे राजन् ! महारथी कर्ण ने भी साठ २ बाण छोड़कर उनको घायल कर दिया । कर्ण का यह युद्ध अनेक पाण्डववीरों के साथ होने लगा ॥६३॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य मारिष ॥६४॥

यदेकः समरे क्रुद्धस्त्रीन्रथान्पर्यवारयत् ।

हे आर्य ! सूत-पुत्र का यह अद्भुत पराक्रम देखा गया-जो रण में क्रोध में भरे हुए तीन पाण्डव महारथियों का इस अकेले ने मुकाबिला किया ॥६४॥

फाल्गुनस्तु महाबाहुः कर्णं वैकर्तनं रणे ॥६५॥
सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत् ।

महाबाहु, अर्जुन ने सूर्य-पुत्र कर्ण के सारे मर्मस्थानों में सैंकड़ों बाण मार कर रण में उसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥६५॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥६६॥
शरैः पञ्चाशता वीरः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत ।

महाप्रतापी सूत-पुत्र का सारा शरीर रुधिर में भीग गया, तो भी इस वीर ने पचास बाण मार कर अर्जुन को बींध डाला ॥६६॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नाऽमृष्यत रणेऽर्जुनः ॥६७॥
ततः पार्थो धनुश्छित्वा विव्याधैनं स्तनान्तरे ।
सायकैर्नवभिर्वीरस्त्वरमाणो धनञ्जयः ॥६८॥

कर्ण के इस लाघव को देखकर कुन्ती-पुत्र अर्जुन रण में झल्ला उठा। इसने कर्ण का धनुष काट कर उसकी छाती में बड़ी शीघ्रता से नौ बाण मार कर उसे बींध डाला ॥६७-६८॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
सायकैरष्टसाहस्रैश्छादयामास पाण्डवान् ॥६९॥

अब प्रतापशाली कर्ण ने भी दूसरा धनुष उठाया और आठ हजार बाण छोड़कर पाण्डु-पुत्र अर्जुन को आच्छादित कर दिया।

तां बाणवृष्टिमतुलां कर्णचापसमुत्थिताम् ।
व्यधमत्सायकैः पार्थः शलभानिव मारुतः ॥७०॥

हे राजन् ! कर्ण के धनुष से निकली हुई इस अतुल बाण-वर्षा को देखकर अर्जुन शलभ पक्षियों को वायु की भांति अपने बाणों से इसे उड़ाने लगा ॥७०॥

छादयामास च तदा सायकैरर्जुनो रणे ।
पश्यतां सर्वयोधानां दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥७१॥

अर्जुन रणभूमि में अपने हस्तलाघव को दिखाता हुआ सारे योद्धाओं के देखते २ कौरववीरों को अपने बाणों से रण में आच्छादित करने लगा ॥७१॥

वधार्थं चाऽस्य समरे सायकं सूर्यवर्चसम् ।
चिक्षेप त्वरया युक्तस्त्वराकाले धनञ्जयः ॥७२॥
तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम् ।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स च्छिन्नः प्रापतद्भुवि ॥७३॥

अब धनञ्जय अर्जुन ने इस शीघ्रता के समय में बड़ी शीघ्रता के साथ सूर्य के तुल्य चमकते हुए बाण को रण में कर्ण के वध के निमित्त फैंका, परन्तु उसको वेग से आता देखकर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपने अर्धचन्द्र बाण से बीच में ही काट डाला । वह बाण कट कर भूमि में गिर गया ॥७२-७३॥

कर्णोऽपि द्विषतां हन्ता छादयामास फाल्गुनम् ।
सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतप्रतिकृतेप्सया ॥७४॥

शत्रुओं के नाशक कर्ण ने भी "करने वाले के साथ वैसा ही करना चाहिए" इस नीति के अनुसार कई हजार बाण छोड़कर अर्जुन को आच्छादित कर दिया ॥७४॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ ।
सायकैस्तु प्रतिच्छन्नं चक्रतुः खमजिह्मगैः ॥७५॥

ये दोनों महारथी नरश्रेष्ठ, वृषभों की तरह गर्जना कर रहे थे। इन्होंने अपने सीधे जाने वाले बाणों से आकाश को व्याप्त कर दिया ॥७५॥

अदृश्यौ च शरौघैस्तौ निघ्नन्तावितरेतरम् ।
कर्ण पार्थोऽस्मि तिष्ठ त्वं कर्णोऽहं तिष्ठ फाल्गुन ॥

ये दोनों वीर एक दूसरे के बाणों से अदृश्य हो रहे थे और फिर भी प्रहार करते जाते थे। अर्जुन कहता था-कर्ण ! मैं अर्जुन हूं, तू ठहरा रह और इसी तरह कर्ण भी कहता था, कि अर्जुन ! मैं कर्ण हूं-तू जरा ठहर ॥७६॥

इत्येवं तर्जयन्तौ तौ वाक्शल्यैस्तुदतां तदा ।
युध्यतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥७७॥

इस प्रकार ये परस्पर एक दूसरे को ललकारते जाते थे और वाणी के बाणों से भी बींध रहे थे। ये वीर, रण में बड़े अद्भुत शीघ्रताकारी उत्तम प्रकार से युद्ध में तत्पर हो रहे थे ॥७७॥

प्रेक्षणीयौ चाऽभवतां सर्वयोधसमागमे ।
प्रशस्यमानौ समरे सिद्धचारणपन्नगैः ॥७८॥

सारे योद्धाओं के इस घोर युद्ध में अनेक सिद्ध, चारण और सर्प देवता इनकी प्रशंसा कर रहे थे और रण में खड़े २ इनके अद्भुत युद्ध कौशल को देख रहे थे ॥७८॥

अयुध्येतां महाराज परस्परवधैषिणौ ।
ततो दुर्योधनो राजंस्तावकानभ्यभाषत ॥७९॥
यत्नाद्रक्षत राधेयं नाऽहत्वा समरेऽर्जुनम् ।
निवर्तिष्यति राधेय इति मामुक्तवान्नृपः ॥८०॥

हे महाराज ! ये दोनों एक दूसरे के वध की इच्छा से परस्पर युद्ध करने लगे। हे राजन् ! अब राजा दुर्योधन ने अपने महारथियों से कहा-हे महारथियो ! तुम बल-पूर्वक राधा-पुत्र कर्ण की रक्षा करो। आज कर्ण रण में अर्जुन को बिना मारे पीछे नहीं हटेगा-यह उसने मुझे कह भी दिया है ॥७९-८०॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन्दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान् ॥८१॥
अनयत्प्रेतलोकाय चतुर्भिः श्वेतवाहनः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥८२॥
छादयामास स शरैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ।

हे राजन् ! इसी बीच में कर्ण के पराक्रम को देखकर श्वेत अश्वों के वाहन वाले अर्जुन ने कान तक खैंचकर चार बाण छोड़े, जिनसे उसने कर्ण के चारों अश्वों को प्रेतलोक भेज दिया तथा एक इतना तीक्ष्ण बाण मारा, कि जिससे कर्ण के सारथि को रथ

के आसन से नीचे गिरा दिया तथा तुम्हारे पुत्र दुर्योधन के देखते २ उसने अपने बाणों से सबको आच्छादित कर दिया ॥८२॥

संछाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥८३॥
मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाऽभ्यपद्यत ।

इस प्रकार रण में बाणों से आच्छादित होकर और अश्व तथा सारथि से रहित हुआ कर्ण अर्जुन के बाण जाल से मोहित हो गया और उसे इस समय कुछ भी कर्तव्य दिखाई नहीं दिया ।

तं तथा विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य तं तदा ॥८४॥
अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत् ।

हे महाराज ! इस प्रकार कर्ण को रथहीन देख कर अश्वत्थामा ने कर्ण को अपने रथ पर चढ़ाया और वह फिर अर्जुन से युद्ध करने लगा ॥८४॥

मद्रराजश्च कौन्तेयमविध्यत्त्रिंशता शरैः ॥८५॥
शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समार्पयत् ।
धनञ्जयं द्वादशभिराजघान शिलीमुखैः ॥८६॥

अब मद्रराज शल्य ने कुन्ती-पुत्र अर्जुन के तीस बाण मार कर और शरद्वान-पुत्र कृपाचार्य ने श्रीकृष्ण के शरीर में बीस बाण मार कर उन्हें आहत कर दिया । इसके बाद कृपाचार्य ने भी अर्जुन पर बारह बाण छोड़े ॥८५-८६॥

चतुर्भिः सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च सप्तभिः ।
पृथक्पृथङ् महाराज विव्यधुः कृष्णपाण्डवौ ॥८७॥

हे महाराज ! अब सिन्धुराज जयद्रथ ने चार, वृषसेन ने सात पृथक् २ बाण छोड़कर श्रीकृष्ण और अर्जुन को क्षत-विक्षत कर दिया ॥८७॥

तथैव तान्प्रत्यविध्यत्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या मद्रराजं शतेन च ॥८८॥
सैन्धवं दशभिर्बाणैर्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
शारद्वतं च विंशत्या विध्वा पार्थो ननाद ह ॥८९॥

इसी प्रकार कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने भी उन सबको आहत किया। द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा पर चौसठ, मद्रराज शल्य पर सौ, सिन्धुराज पर दश, वृषसेन पर तीन, शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य पर बीस बाण छोड़कर अर्जुन ने इन्हें आहत कर दिया और बड़े उच्चस्वर में गर्जना की ॥८८-८९॥

ते प्रतिज्ञाप्रतीघातमिच्छन्तः सव्यसाचिनः ।
सहितास्तावकास्तूर्णमभिपेतुर्धनञ्जयम् ॥९०॥

ये तुम्हारे महारथी, अर्जुन की प्रतिज्ञा मिथ्या करवा देना चाहते थे, इससे इकट्ठे ही बड़ी शीघ्रता के साथ अर्जुन से लड़ रहे थे ॥९०॥

अथाऽर्जुनः सर्वतो वारुणास्त्रं प्रादुश्चक्रे त्रासयन्धार्तराष्ट्रान् ।
तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुपुत्रं रथैर्महार्हैः शरवर्षाण्यवर्षन् ॥

अब अर्जुन ने सारे कौरवों को भयभीत करते हुए वारुणास्त्र छोड़ा। इधर कौरववीर भी अपने बहुमूल्य रथों पर सवार

होकर पाण्डु-पुत्र अर्जुन को घेर कर खड़े हो गए और उन पर बाण-वर्षा करने लगे ॥६१॥

ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते सुदारुणे भारत मोहनीये।
नोऽमुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः किरीटमाली व्यसृजच्छरौघान्

हे भारत! सब के मोहन कर देने वाले इस अत्यन्त दारुण घोर संग्राम के प्रवृत्त होने पर भी किरीटधारी राज-पुत्र अर्जुन मोहित नहीं हुआ और वह बाण-समूह और भी शीघ्रता से छोड़ने लगा ॥६२॥

राज्यप्रेप्सुः सव्यसाची कुरूणां स्मरन्क्लेशान्द्वादशवर्षवृत्तान्
गाण्डीवमुक्तैरिषुभिर्महात्मा सर्वा दिशो व्यावृणोदप्रमेयः ॥

अब सव्यसाची अर्जुन, कौरवों का राज्य छीन लेना चाहता था। इसको बारह वर्ष तक वन में रहने के सारे क्लेश याद आ रहे थे। इस अपरिमित बलशाली महात्मा अर्जुन ने गाण्डीव धनुष से छोड़े हुए बाणों से सारी दिशा आच्छादित कर दी ॥६३॥

प्रदीप्तोल्कमभवच्चान्तरिक्षं मृतेषु देहेष्वपतन्वयांसि।
यत्पिङ्गलज्येन किरीटमाली क्रुद्धो रिपूनाजगवेन हन्ति ॥

इस समय आकाश में उल्कापात से होने और मरे हुए वीरों के शरीरों पर गीध आदि पक्षी आ २ कर गिरने लगे, जब कि किरीटधारी अर्जुन, पिङ्गल प्रत्यञ्चा वाले, शिव के धनुष के समान भीषण गाण्डीव धनुष से क्रोध-पूर्वक बाण छोड़ रहे थे ॥६४॥

ततःकिरीटीमहतामहायशाःशरासनेनाऽस्यशराननीकजित्
हयप्रवेकोत्तमनागधूर्गितान्कुरुप्रवीरानिषुभिर्न्यपातयत् ॥

अथ शत्रुसेना के विजेता, महायशस्वी, किरीटधारी अर्जुन ने अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों के द्वारा अश्व और हाथियों के सुचतुर कौरवों के सवारों को मार २ कर बिछा दिया ॥६५॥

गदाश्चगुर्वीः परिघानयस्मयानसींश्चशक्तीश्च रणे नराधिपाः
महान्ति शस्त्राणि च भीमदर्शनाःप्रगृह्यपार्थंसहसाऽभिदुद्रुवुः

इस समय बड़े २ भयङ्कर आकार बनाये हुए राजा लोग, भारी २ गदा, लोह के परिघ, (घन) तलवार, शक्ति तथा अन्य बड़े २ शस्त्र लेकर एकदम रण में अर्जुन पर टूट पड़े ॥६६॥

ततोयुगान्ताभ्रसमस्वनंमहन्महेन्द्रचापप्रतिमं च गाण्डिवम्
चकर्ष दोर्भ्यां विहसन्भृशं ययौ दहंस्त्वदीयान्यमराष्ट्रवर्धनः

हे राजन् ! प्रलयकाल के मेघों के समान ध्वनि करने वाले, इन्द्र धनुप के सदृश विशाल गाण्डीव धनुष को अपनी भुजाओं से खैंचते हुए और कुछ २ मुसकुराते हुए यमराष्ट्र के बढ़ाने वाले अर्जुन, तुम्हारी सेना को दग्ध करते हुए आगे बढ़े ॥६७॥

स तानुदीर्णान्सरथान्सवारणान्पदातिसङ्घांश्च महाधनुर्धरः
विपन्नसर्वायुधजीवितान्रणे चकार वीरो यमराष्ट्रवर्धनान्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

हे भारत ! महाधनुर्धर वीर अर्जुन ने रथ और हाथियों के सहित, उनके चलाने वाले तथा पैदल सैनिकों के अस्त्र शस्त्र छिन्न-भिन्न करके उनके प्राणों का भी अपहरण कर दिया। इस प्रकार यह यमराष्ट्र को बढ़ाता हुआ युद्ध करने लगा ॥६८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में अर्जुन के घोर युद्ध का एक सौ पैंतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

—:॰:—

एक सौ छियालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

श्रुत्वा निनादं धनुषश्च तस्य विस्पष्टमुत्क्रुष्टमिवाऽन्तकस्य ।
शक्राशनिस्फोटसमं सुघोरं विकृष्यमाणस्य धनञ्जयेन ॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! अर्जुन द्वारा खैंचे हुए अन्तक के भीषण चीत्कार की तरह तथा इन्द्र के वज्र के तुल्य ध्वनि करने वाले गाण्डीव धनुष की घोर गर्जना को सुनकर तुम्हारी सेना भय से व्याकुल और कातर हो उठी ॥१॥

त्रासोद्विग्नं तथोद्भ्रान्तं त्वदीयं तद्बलं नृप ।
युगान्तवातसंक्षुब्धं चलद्वीचितरङ्गितम् ॥२॥
प्रलीनमीनमकरं सागराम्भ इवाऽभवत् ।

हे राजन् ! प्रलयकालीन वायु से उछाले हुए छोटी बड़ी तरङ्गों से व्याप्त, मीन मकर आदि जल-जन्तुओं से भरे हुए समुद्र के जल की तरह तुम्हारी सेना की दशा हो गई ॥३॥

स रणे व्यचरत्पार्थः प्रेक्षमाणो धनञ्जयः ॥३॥
युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वाण्यस्त्राणि दर्शयन् ।

इस समय अर्जुन रण में इस तरह घूम रहा था, कि जिस दिशा में देखो-उसी दिशा में अपना अस्त्रकौशल दिखाता हुआ अर्जुन ही दृष्टिगोचर आता था ॥३॥

आददानं महाराज सन्दधानं च पाण्डवम् ॥४॥
उत्कर्षन्तं सृजन्तं च न स्म पश्याम लाघवात् ।

हे महाराज ! पाण्डु-पुत्र अर्जुन कब बाण लेता, कब धनुष पर चढ़ाता, कब धनुष खैंचता और कब बाण को छोड़ देता था-यह हम लोग देख ही नहीं पाते थे, क्योंकि वह बहुत ही लाघव (फुर्ती) कर रहा था ॥४॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुरैन्द्रमस्त्रं दुरासदम् ॥५॥
प्रादुश्चक्रे महाराज त्रासयन्सर्वभारतान् ।

हे महाराज ! अब महाबाहु, अर्जुन बहुत ही कुपित हो रहे थे, इसलिए सारी कौरवसेना को व्याकुल करते हुए उन्होंने दुरासद इन्द्रास्त्र का प्रादुर्भाव किया ॥५॥

ततः शराः प्रादुरासन्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रिताः ॥६॥
प्रदीप्ताश्च शिखिमुखाः शतशोऽथ सहस्रशः ।

हे राजन् ! अब दिव्य अस्त्र द्वारा फैंके हुए सहस्रों की संख्या में बाण निकलने लगे, जिनके मुख अग्नि की भांति प्रदीप्त हो रहे थे ॥६॥

आकर्णपूर्णनिर्मुक्तैरग्न्यर्कांशुनिभैः शरैः ॥७॥
नभोऽभवत्तद् दुष्प्रेक्ष्यमुल्काभिरिव संवृतम् ।

सूर्य और अग्नि की ज्वाला के समान चमकते हुए और कान तक खैंचकर धनुष से छोड़े हुए बाणों से आकाश इतना दुष्प्रेक्ष्य हो गया, कि जैसे उल्कापातों से भर गया हो ॥७॥

ततः शस्त्रान्धकारं तत्कौरवैः समुदीरितम् ॥८॥
अशक्यं मनसाऽप्यन्यैः पाण्डवः सम्भ्रमन्निव ।
नाशयामास विक्रम्य शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ॥९॥
नैशं तमोंऽशुभिः क्षिप्रं दिनादाविव भास्करः ।

हे भारत ! शस्त्रों द्वारा जो अन्धकार कौरवों ने खड़ा कर दिया था, जिसको अन्य वीर मन से भी नहीं हटा सकते थे, पाण्डु-पुत्र अर्जुन बड़ी शीघ्रता के साथ दिव्य अस्त्रों द्वारा बाण छोड़कर अपने पराक्रम से ऐसे हटाने लगा-जैसे दिन के आरम्भ में सूर्य अपनी किरणों से रात के अन्धकार को दूर कर देता है ।

ततस्तु तावकं सैन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ॥१०॥
आक्षिपत्पल्वलाम्बूनि निदाघार्क इव प्रभुः ।

अब शक्तिशाली अर्जुन ने सन्दीप्त अपने बाणों की किरणों से तुम्हारी सेना को इस तरह सुखा दिया, जैसे ग्रीष्म ऋतु का सूर्य, छोटी मोटी तलाई के जल को सुखा देता है ॥१०॥

ततो दिव्यास्त्रविदुषा प्रहिताः सायकांशवः ॥११॥
समाप्लवन्द्विषत्सैन्यं लोकं भानोरिवांऽशवः ।

अब दिव्य अस्त्र के ज्ञाता अर्जुन द्वारा छोड़े हुए चमकीले बाण, कौरव सेना को इस तरह व्याप्त करने लगे, जैसे सूर्य की किरणें सारे संसार को व्याप्त कर लेती हैं ॥११॥

अथाऽपरे समुत्सृष्टा विशिखास्तिग्मतेजसः ॥१२॥
हृदयान्याशु वीराणां विविशुः प्रियबन्धुवत् ।

इस अत्यन्त तेजस्वी अर्जुन द्वारा छोड़े हुए बाण, वीरों के हृदय में इस तरह चिपट गए, जैसे कोई अपना प्रिय बन्धु आकर हृदय से लिपट जाता है ॥१२॥

य एनमीयुः समरे त्वद्योधाः शूरमानिनः ॥१३॥
शलभा इव ते दीप्तमग्निं प्राप्य ययुः क्षयम् ।

जो तुम्हारी सेना के वीर अपने को शूरवीर मानकर अर्जुन के सन्मुख पहुंच गए, वे प्रदीप्त अग्नि में पतङ्ग की भांति गिर कर क्षण भर में क्षीण हो गए ॥१३॥

एवं स मृद्नञ्शत्रूणां जीवितानि यशांसि च ॥१४॥
पार्थश्चचार संग्रामे मृत्युर्विग्रहवानिव ।

इस प्रकार अर्जुन, शत्रुओं के प्राण और यशों का अपहरण करता हुआ शरीर धारी मृत्यु की भांति रण में घूमने लगा ॥१४॥

सकिरीटानि वक्त्राणि साङ्गदान्विपुलान्भुजान् ॥१५॥
सकुण्डलयुगान्कर्णान्केषाञ्चिदहरच्छरैः ।

अर्जुन ने बहुत से वीरों के किरीट सहित मस्तक, आभूषण सहित बड़ी २ भुजा और दोनों कुण्डलों सहित कान अपने बाणों से काट २ कर रणभूमि में बिछा दिए ॥१५॥

सतोमरान्गजस्थानां सप्रासान्हयसादिनाम् ॥१६॥
सचर्मणः पदातीनां रथिनां च सधन्वनः ।
सप्रतोदान्नियन्तृणां बाहूंश्चिच्छेद पाण्डवः ॥१७॥

हाथियों के सवारों के तोमर सहित और अश्वारोहियों के प्रास सहित, पैदलों के ढाल सहित तथा रथियों के धनुष सहित, सारथियों के चाबुक सहित भुजाओं को अर्जुन ने काट २ कर रण में गिरा दिया ॥१६-१७॥

प्रदीप्तोग्रशरार्चिष्मान्बभौ तत्र धनञ्जयः ।
स विस्फुलिङ्गाग्रशिखो ज्वलन्निव हुताशनः ॥१८॥

धनञ्जय अर्जुन अपने प्रदीप्त बाणों की शिखाओं से इस तरह चमक रहे थे जैसे-प्रज्वलित अग्नि अपनी उछटती हुई चिनगारियों से सुशोभित हो उठता है ॥१८॥

तं देवराजप्रतिमं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
युगपद्दिक्षु सर्वासु रथस्थं पुरुषर्षभम् ॥१९॥
निक्षिपन्तं महास्त्राणि प्रेक्षणीयं धनञ्जयम् ।
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनादिनम् ॥२०॥
निरीक्षितुं न शेकुस्ते यत्नवन्तोऽपि पार्थिवाः ।
मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाऽम्बरे ॥२१॥

देवराज इन्द्र के समान तेजस्वी, सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, एकदम सारी दिशाओं में बाण फेंकते हुए, रथ में स्थित, रथ के मार्गों (पैंतरों) में नाचते हुए धनुष की डोरी और तलत्राण से शब्दायमान

देखने योग्य महावीर अर्जुन को यत्न करके भी विरोधी राजा न देख सके। यह तो इस समय मध्यान्ह काल के ललाटन्तप सूर्य की भांति प्रदीप्त हो रहा था ॥१६-२१॥

दीप्तोग्रसम्भृतशरः किरीटी विरराज ह।
वर्षास्विवोदीर्णजलः सेन्द्रधन्वाऽम्बुदो महान् ॥२२॥

हे राजन्! वर्षा-काल में जल धारा बरसाते हुए, इन्द्र धनुष से सुशोभित मेघ के तुल्य अर्जुन, अपने प्रदीप्त बाणों की वर्षा से सुशोभित हो रहा था ॥२२॥

महास्त्रसम्प्लवे तस्मिञ्जिष्णुना सम्प्रवर्तिते।
सुदुस्तरे महाघोरे ममज्जुर्योधपुङ्गवाः ॥२३॥

अर्जुन द्वारा प्रवृत्त किये हुए महास्त्रों के महाघोर, अत्यन्त दुस्तर जलप्रवाह में कौरवों के मुख्य २ योद्धा डूबने लगे ॥२३॥

उत्कृत्तवदनैर्देहैः शरीरैः कृत्तबाहुभिः।
भुजैश्च पाणिनिर्मुक्तैः पाणिभिर्व्यङ्गुलीकृतैः ॥२४॥
कृत्ताग्रहस्तैः करिभिः कृत्तदन्तैर्मदोत्कटैः।
हयैश्च विधुरग्रीवै रथैश्च शकलीकृतैः ॥२५॥
निकृत्तान्त्रैः कृत्तपादैस्तथाऽन्यैः कृत्तसन्धिभिः।
निश्चेष्टैर्विस्फुरद्भिश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥२६॥
मृत्योराघातललितं तत्पार्थायोधनं महत्।
अपश्याम महीपाल भीरूणां भयवर्धनम् ॥२७॥

हे महीपाल ! बहुत से वीरों की देह से मस्तक कट चुके थे, बहुतों के शरीर भुजाओं से हीन हो गए थे, बहुतों की भुजाओं के अगले भाग कट गए, बहुतों के हाथ की अंगुलि कट कर गिर गई। अनेक मदोत्कट हाथियों की सूँड कट गई और दांत टूट गए। अश्वों की गर्दन छिन्नभिन्न हो गई और रथ नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गए। बहुत से वीरों की आंतें निकल आई, किसी के पैर और किसी के अन्य मर्म स्थान कट गए। इस प्रकार अचेत अवस्था में लाखों की संख्या में पड़े हुए वीर तड़फड़ा रहे थे। इस समय अर्जुन के रणाङ्गण को हम लोग मृत्यु के आघात का मुख्य केन्द्र बना हुआ देख रहे थे, जिसको देखकर कायरों को बड़ा ही भय उत्पन्न होता था ॥२४-२७॥

आक्रीडमिव रुद्रस्य पुराऽभ्यर्दयतः पशून् ।
गजानां क्षुरनिर्मुक्तैः करैः सभुजगेव भूः ॥२८॥
क्वचिद्बभौ स्रग्विणीव वक्त्रपद्मैः समाचिता ।
विचित्रोष्णीषमुकुटैः केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥२९॥
स्वर्णचित्रतनुत्रैश्च भाण्डैश्च गजवाजिनाम् ।
किरीटशतसङ्कीर्णा तत्र तत्र समाचिता ॥३०॥
विरराज भृशं चित्रा मही नववधूरिव ।

हे राजन् ! संसार के प्राणियों का संहार करते हुए रुद्र के क्रीड़ास्थल की भांति यह रणस्थल प्रतीत होता था। क्षुरे के सदृश तीक्ष्ण बाणों से काटी हुई हाथियों की सूंड से पृथिवी अजगर सर्पों

से व्याप्त सी दिखाई दे रही थी। कहीं २ पर भूमि, वीरों के मुख कमलों से माला धारण किए हुई सी दिखाई देती। बहुत से वीरों की विचित्र पगड़ी के साथ मुकुट, केयूर, अङ्गद, कुण्डल, सुवर्ण से विचित्र कवच, हाथियों के आभूषण और सैंकड़ों पृथक् पड़े हुए किरीटों से रणभूमि व्याप्त हो रही थी। इस समय तो रणभूमि नव वधू के समान अत्यन्त सुन्दर दिखाई देती थी ॥२८-३०॥

मज्जामेदःकर्दमिनीं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥३१॥
मर्मास्थिभिरगाधां च केशशैवलशाद्वलाम्।
शिरोबाहूपलतटां रुग्णक्रोडास्थिसङ्कटाम् ॥३२॥
चित्रध्वजपताकाढ्यां छत्रचापोर्मिमालिनीम्।
विगतासुमहाकायां गजदेहाभिसंकुलाम् ॥३३॥
रथोडुपशताकीर्णां हयसङ्घातरोधसम्।
रथचक्रयुगेषाक्षकूबरैरतिदुर्गमाम् ॥३४॥
प्रासासिशक्तिपरशुविशिखाहिदुरासदाम्।
बलकङ्कमहानक्रां गोमायुमकरोत्कटाम् ॥३५॥
गृध्रोदग्रमहाग्राहां शिवाविरुतभैरवाम्।
नृत्यत्प्रेतपिशाचाद्यैर्भूताकीर्णां सहस्रशः ॥३६॥
गतासुयोधनिश्चेष्टशरीरशतवाहिनीम्।
महाप्रतिभयां रौद्रां घोरां वैतरणीमिव ॥३७॥
नदीं प्रवर्तयामास भीरूणां भयवर्धिनीम्।

हे राजन्! महापराक्रमी अर्जुन ने घोर वैतरणी नदी के सदृश रणभूमि में नदी बहा दी। जिसमें वीरों के मज्जा और मेद की कीचड़ थी। रक्त के समूह की तरङ्गें उठ रही थी। यह वीरों के मर्मस्थान और अस्थियों से दुरवगाह, केशों से शिवाल और दूर्वा से सम्पन्न सी दिखाई देती थी। वीरों के शिर और बाहु, तट पर पड़े पत्थर से प्रतीत होते थे। यह टूटी हुई रीड की हड्डी तथा विचित्र पताका और ध्वजाओं से भरी हुई, छत्र, धनुष की लहरों से सुसम्पन्न, प्राण विहीन प्राणियों से महाकायधारिणी, हाथियों की देह से भरी हुई, रथरूपी अनेक नौकाओं से परिपूर्ण हो रही थी। अश्वों के समूह से इसका तट बना था। यह रथ के चक्र, जुये, ईषा, धुरे और कूबरों से अत्यन्त दुर्गम हो रही थी। प्रास, खड्ग, शक्ति, परशु और बाण आदि के जलसर्पों से यह दुरासद प्रतीत होती थी। बक और कङ्क नामक पक्षी बड़े २ नक्र और गीदड़, मकर तथा गीध बड़े भारी ग्राह से प्रतीत होते थे। यह गीदड़ियों के शब्द से भयानक शब्द कर रही थी तथा नाचते हुए प्रेत, पिशाच रूपी सहस्रों मनुष्यों से भरी थी एवं मरे हुए योद्धाओं के निश्चेष्ट सैंकड़ों शरीरों को बहाए ले जा रही थी। यह बड़े भय को उत्पन्न करती हुई रौद्र और घोर रूप में बह रही थी। जिसको देखकर कायर मनुष्यों को भय उत्पन्न हो जाता था।

तं दृष्ट्वा तस्य विक्रान्तमन्तकस्येव रूपिणः ॥३८॥
अभूतपूर्वं कुरुषु भयमागाद्रणाजिरे।

हे भारत ! जो भय, कुपित हुए काल के तुल्य अर्जुन के पराक्रमी आकार को देखकर कभी कौरववीरों को स्पर्श नहीं कर गया था—वह आज रणभूमि में पूरी तरह उन पर छा गया।

तत आदाय वीराणामस्त्रैरस्त्राणि पाण्डवः ॥३६॥
आत्मानं रौद्रमाचष्ट रौद्रकर्मण्यधिष्ठितः ।

अर्जुन, रौद्रकर्म में प्रवृत्त हुआ अपने आकार को भी भयङ्कर दिखाने लगा। इसने वीरों के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से टकराकर वहीं नष्ट कर दिया ॥३६॥

ततो रथवरान्राजन्नत्यतिक्रामदर्जुनः ॥४०।
मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाऽम्बरे ।
न शेकुः सर्वभूतानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम् ॥४१॥

हे राजन् ! आकाश में तपते हुए मध्याह्नकाल के सूर्य के तुल्य चमकते हुए अर्जुन ने कौरवों के उत्तम २ रथियों को पराजित कर दिया। कोई भी प्राणी इस समय अर्जुन के रूप को देखने में समर्थ नहीं हो सकता था ॥४०-४१॥

प्रसृतांस्तस्य गाण्डीवाच्छरव्रातान्महात्मनः ।
संग्रामे सम्प्रपश्यामो हंसपंक्तिमिवाऽम्बरे ॥४२॥

उस महावीर के गाण्डीव धनुष से निकली हुई बाणपंक्ति को रण में हम लोग आकाश में उड़ती हुई हंस पंक्ति सी देखते थे।

विनिवार्य स वीराणामस्त्रैरस्त्राणि सर्वतः ।
दर्शयन्रौद्रमात्मानमुग्रे कर्मणि धिष्ठितः ॥४३॥

अब अर्जुन अपने अस्त्रों से सारे विरोधी वीरों के अस्त्रों को काटकर अपने स्वरूप को भयङ्कर बनाने लगा। इस समय तो इसने बड़े उग्र यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कर रखी थी ॥४३॥

स तान्रथवरान्राजन्नत्याक्रामत्तदाऽर्जुनः ।
मोहयन्निव नाराचैर्जयद्रथवधेप्सया ॥
विसृजन्दिक्षु सर्वासु शरानसितसारथिः ॥४४॥
सरथो व्यचरत्तूर्णं प्रेक्षणीयो धनञ्जयः ।

हे राजन्! राजा जयद्रथ के वध के इच्छुक अर्जुन ने अपने बाणों से सारे कौरव महारथियों को चकित करके उन सबको अतिक्रमण कर लिया। कृष्ण को सारथि बनाये हुए अर्जुन ने सारी दिशाएँ बाणों से व्याप्त कर दीं। अर्जुन अपने रथ से रणाङ्गण में इस सुन्दरता से घूम रहा था, कि जिसको सब देखते रह जाते थे ॥४४॥

भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः ॥४५॥
अदृश्यन्ताऽन्तरिक्षस्थाः शतशोऽथ सहस्रशः ।

इस प्रकार घूमते हुए महारथी अर्जुन के सैकड़ों और हजारों की संख्या में बाणों के समूह के समूह आकाश में दिखाई देने लगे ॥४५॥

आददानं महेष्वासं सन्दधानं च सायकम् ॥४६॥
विसृजन्तं च कौन्तेयं नाऽनुपश्याम वै तदा ।

अर्जुन इस शीघ्रता से धनुष उठाता था, कि कोई देख भी नहीं सकता और न जाने कब उस पर बाण चढ़ाता और कब छोड़ देता था ॥४६॥

तथा सर्वा दिशो राजन्सर्वांश्च रथिनो रणे ॥४७॥
कदम्बीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ।
निर्व्याध च चतुःषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥४८॥

हे राजन ! अब अर्जुन सारी दिशाओं को बाणों से व्याप्त कर और सारे योधाओं को पराजित करके राजा जयद्रथ पर झपटा एवं उसने नतपर्व वाले चौसठ बाण छोड़कर उसे आहत कर डाला ।

सैन्धवाभिमुखं यान्तं योधाः सम्प्रेक्ष्य पाण्डवम् ।
न्यवर्तन्त रणाद्वीरा निराशास्तस्य जीविते ॥४९॥

जब योधाओं ने अर्जुन को राजा जयद्रथ के सन्मुख पहुंचते देखा-तो उनको राजा जयद्रथ के जीवन में बिल्कुल निराशा हो गई और वे हताश होकर रण से लौटने लगे ॥४९॥

यो योऽभ्यधावदाक्रन्दे तावकः पाण्डवं रणे ।
तस्य तस्याऽन्तगा बाणाः शरीरे न्यपतन्प्रभो ॥५०॥

हे प्रभो ! इस घमसान युद्ध में जो २ तुम्हारे पक्ष का वीर अर्जुन की ओर दौड़ा-उसी २ के शरीर में उसका अन्त कर देने वाला बाण फौरन वेग से घुस गया ॥५०॥

कबन्धसंकुलं चक्रे तव सैन्यं महारथः ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः शरैरग्न्यंशुसंनिभैः ॥५१॥

हे राजन् ! विजयी महारथी अर्जुन ने सूर्य और अग्नि के तुल्य देदीप्यमान बाणों से तुम्हारी सेना को मस्तकहीन कवचों से व्याप्त कर दिया ॥५१॥

एवं तत्तत्र राजेन्द्र चतुरङ्गबलं तदा ।
व्याकुलीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ॥५२॥

हे राजेन्द्र ! इस प्रकार तुम्हारी चतुरङ्गिणी सेना को व्याकुल करके कुन्ती-पुत्र अर्जुन राजा जयद्रथ के पास दौड़ा ॥५२॥

द्रौणिं पञ्चाशताऽविध्यद्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
कृपायमाणः कौन्तेयः कृपं नवभिरार्दयत् ॥५३॥

कुन्तीपुत्र अर्जुन ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को पचास, वृषसेन को तीन और कृपा-पूर्वक कृपाचार्य को नौ बाणों से आहत किया ।

शल्यं षोडशभिर्बाणैः कर्णं द्वात्रिंशता शरैः ।
सैन्धवं तु चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवाऽनदत् ॥

हे राजन ! राजा शल्य को सोलह, कर्ण को बत्तीस और राजा जयद्रथ को चौसठ बाणों से आहत करके अर्जुन, सिंह के तुल्य गर्जना करने लगे ॥५४॥

सैन्धवस्तु तथा विद्धः शरैर्गाण्डीवधन्वना ।
न चक्षमे सुसंक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥५५॥

गाण्डीवधनुषधारी अर्जुन द्वारा आविद्ध हुआ राजा जयद्रथ तोत्र नामक शस्त्र से आहत हाथी की भांति क्रुद्ध हो उठा और उससे चुप न रहा गया ॥५५॥

स वराहध्वजस्तूर्णं गार्ध्रपत्रानजिह्मगान् ।
क्रुद्धाशीविषसङ्काशान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥५६॥
आकर्णपूर्णान्चिक्षेप फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
त्रिभिस्तु विध्वा गोविन्दं नाराचैः षड्भिरर्जुनम् ॥
अष्टभिर्वाजिनोऽविध्यद् ध्वजं चैकेन पत्रिणा ।

अब वराह के चिन्ह की ध्वजा वाला सिन्धुराज बड़ी शीघ्रता से गृद्ध पक्षी के पंखों से सुशोभित, सीधे जाने वाले, क्रोध में भरे हुए सर्प के सदृश, कारीगर द्वारा तीक्ष्ण किए हुए, बाणों को कान तक खेंचे हुए धनुष से अर्जुन के रथ पर छोड़ने लगा। इसने तीन बाणों से भगवान् कृष्ण और छः बाणों से अर्जुन को आहत किया तथा आठ बाण अश्वों पर और एक ध्वजा पर चलाया ॥५६-५७॥

स विक्षिप्याऽर्जुनस्तूर्णं सैन्धवप्रहिताञ्शरान् ॥५८॥
युगपत्तस्य चिच्छेद शराभ्यां सैन्धवस्य ह ।
सारथेश्च शिरः कायाद् ध्वजं च समलंकृतम् ॥५९॥

अर्जुन ने बड़ी शीघ्रता से राजा जयद्रथ के बाणों को काट गिराया और फिर एकदम दो बाण छोड़े, जिनसे इसने सारथि का शिर देह से और अलंकृत ध्वजा रथ से काटकर नीचे गिरादी

स च्छिन्नयष्टिः सुमहान्धनञ्जयशराहतः ।
वराहः सिन्धुराजस्य पपाताऽग्निशिखोपमः ॥६०॥

अर्जुन के बाण से आहत सिन्धुराज की ध्वजा का वराहाकार अपनी कटी हुई लकड़ी से अलग होकर अग्नि की ज्वाला के समान नीचे गिर पड़ा ॥६०॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे ।
अब्रवीत्पाण्डवं राजंस्त्वरमाणो जनार्दनः ॥६१॥

हे राजन् ! इस समय सूर्य बड़ी शीघ्रता से छुप रहा था। अब शीघ्रता करते हुए श्रीकृष्ण ने पाण्डु-पुत्र अर्जुन से कहा ॥६१॥

एष मध्ये कृतः षड्भिः पार्थ वीरैर्महारथैः ।
जीवितेप्सुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः ॥६२॥

हे महाबाहो ! अर्जुन ! इन छः महारथी वीरों द्वारा मध्य में लिया हुआ राजा जयद्रथ अपने प्राण बचाने को उनके पीछे डरा हुआ खड़ा है ॥६२॥

एताननिर्जित्य रणे षड्रथान्पुरुषर्षभ ।
न शक्यः सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन ॥६३॥
योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्याऽऽवरणं प्रति ।
अस्तङ्गत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराट् ॥६४॥

हे पुरुषर्षभ ! अर्जुन ! तुम इन छः महारथियों को बिना जीते सिन्धुराज को नहीं मार सकते हो। अब बिना चाल चले सिन्धुराज मारा नहीं जा सकता है। मैं सूर्य के छुपने का एक ढंग बनाता हूँ, जिससे अकेला सिन्धुराज यह देख सकेगा, कि सूर्य अस्त हो गया है ॥६३-६४॥

हर्षेण जीविताकांक्षी विनाशार्थं तव प्रभो ।
न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथञ्चन ॥६५॥

हे प्रभो ! फिर यह हर्षित होकर अपने विनाश के निमित्त तेरे सामने आ जावेगा और अपने को उन महारथियों की रक्षा से बाहर निकाल कर अरक्षित कर लेगा ॥६५॥

तत्र च्छिद्रे प्रहर्तव्यं त्वयाऽस्य कुरुसत्तम ।
व्यपेक्षा नैव कर्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः ॥६६॥
एवमस्त्विति बीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत ।
ततोऽसृजत्तमः कृष्णः सूर्यस्याऽऽवरणं प्रति ॥६७॥
योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः ।

हे कुरुसत्तम ! तुम इसके उसी प्रमाद में चटपट प्रहार कर देना। सूर्य छुप गया-यह समझ कर तुम समययापन न कर देना। अर्जुन ने श्रीकृष्ण की यह बात स्वीकार कर ली। अब श्रीकृष्ण ने सूर्य के ढकने को अन्धकार उत्पन्न किया, क्योंकि श्रीकृष्ण तो योगी ही नहीं-योगियों के भी ईश्वर साक्षात् हरि हैं ॥६६-६७॥

सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः ॥६८॥
त्वदीया जहृषुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप ।

हे नराधिप ! जब श्रीकृष्ण ने अन्धकार की रचना कर दी और सूर्य अस्त सा प्रतीत होने लगा, तो अर्जुन के नाश की भावना से तुम्हारे पक्ष के वीर बड़े हर्षित हुए ॥६८॥

ते प्रहृष्टा रणे राजन्नाऽपश्यन्सैनिका रविम् ॥६९॥
उन्नाम्य वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः ।
वीक्षमाणे ततस्तस्मिन्सिन्धुराजे दिवाकरम् ॥७०॥

पुनरेवाऽब्रवीत्कृष्णो धनञ्जयमिदं वचः ।
पश्य सिन्धुपतिं वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम् ॥७१॥
भयं हि विप्रमुच्यैतत्वत्तो भरतसत्तम ।
अयं कालो महाबाहो वधायाऽस्य दुरात्मनः ॥७२॥
छिन्धि मूर्धानमस्याऽऽशु कुरु साफल्यमात्मनः ।

हे राजन् ! वे इतने उल्लास में भर गए कि ध्यान-पूर्वक सूर्य को देख भी नहीं सके। अब राजा जयद्रथ ने भी मुंह निकाल कर सूर्य का अस्त देखा। इस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यह वचन कहा—हे अर्जुन ! यह देखो-वीरवर सिन्धुराज, सूर्य के अस्त को देख रहा है। हे भरतसत्तम ! अब इसको तुमसे भय नहीं दिखाई देता है। हे महाबाहो ! यही समय इस दुरात्मा के मार देने का है। अब तुम शीघ्र इसके मस्तक को काट गिराओ और अपनी प्रतिज्ञा को सफल करो ॥६९-७२॥

इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ॥७३॥
न्यवधीत्तावकं सैन्यं शरैरर्काग्निसन्निभैः ।
कृपं विव्याध विंशत्या कर्णं पञ्चाशता शरैः ॥७४॥
शल्यं दुर्योधनं चैव षड्भिः षड्भिरताडयत् ।
वृषसेनं तथाऽष्टाभिः षष्ट्या सैन्धवमेव च ॥७५॥

हे राजन् ! जब इस प्रकार श्रीकृष्ण ने कहा, तो महाप्रतापी पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने सूर्य और अग्नि के तुल्य वाणों से तुम्हारी सेना का विध्वंस उड़ा दिया। इसने कृपाचार्य के बीस, कर्ण के

पचास, मद्रराज शल्य और राजा दुर्योधन के छः२ बाण मारे। इसी तरह महारथी वृषसेन के आठ और सिन्धुराज जयद्रथ पर साठ बाण छोड़े ॥७३-७५॥

तथैव च महाबाहुस्त्वदीयान्पाण्डुनन्दनः ।
गाढं विध्वा शरै राजञ्जयद्रथमुपाद्रवत् ॥७६॥

हे राजन्! इस प्रकार तुम्हारे पक्ष के वीरों को महाबाहु पाण्डुनन्दन अर्जुन, गाढ़ी तरह से आहत करके राजा जयद्रथ की ओर झपटा ॥७६॥

तं समीपस्थितं दृष्ट्वा लेलिहानमिवाऽनलम् ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥७७॥

अब वन को चाटते हुए अग्नि की तरह प्रदीप्त अर्जुन को सिन्धुराज के समीप देखकर राजा जयद्रथ के रक्षक महारथी बड़े संशय में झूलने लगे ॥७७॥

ततः सर्वे महाराज तव योधा जयैषिणः ।
सिषिचुः शरधाराभिः पाकशासनिमाहवे ॥७८॥

हे महाराज! अब तुम्हारे योधा भी विजय की अभिलाषा में चूर हुए अपनी बाण धारा से इन्द्र-पुत्र अर्जुन को क्षत-विक्षत करने लगे ॥७८॥

संछाद्यमानः कौन्तेयः शरजालैरनेकशः ।
अक्रुध्यत्स महाबाहुरजितः कुरुनन्दनः ॥७९॥

इन महारथियों के बहुत से बाणों से आच्छादित हुए महाबाहु, कुरुनन्दन, अपराजित अर्जुन बड़े ही कुपित हो गए ॥७९॥

ततः शरमयं जालं तुमुलं पाकशासनिः ।
व्यसृजत्पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यजिघांसया ॥८०॥

हे राजन्! तुम्हारी सेना के नाश की अभिलाषा से इन्द्र-पुत्र पुरुषप्रवीर अर्जुन ने बड़ी घोर बाणवर्षा का आरम्भ किया ॥८०॥

ते हन्यमाना वीरेण योधा राजन्रणे तव ।
प्रजहुः सैन्धवं भीता द्वौ समं नाऽभ्यधावताम् ॥८१॥

हे राजन्! रण में महारथी अर्जुन द्वारा आहत हुए तुम्हारे योद्धा भयभीत हो गए और रणभूमि से इस शीघ्रता से भागे, कि दो एक साथ भी नहीं भाग सके ॥८१॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य विक्रमम् ।
तादृङ् न भावी भूतो वा यच्चकार महायशाः ॥८२॥

हे राजन्! हमने महायशस्वी कुन्ती-पुत्र अर्जुन का वह अद्भुत पराक्रम देखा, कि वैसा न तो कभी किसी भूतकाल में देखा और न आगे देखने की कोई आशा है ॥८२॥

द्विपान्द्विपगतांश्चैव हयान्हयगतानपि ।
तथा स रथिनश्चैव न्यहन्रुद्रः पशूनिव ॥८३॥

इस समय अर्जुन प्राणियों के संहार कर्ता रुद्र की भांति हाथियों पर स्थित हाथियों के सवार, अश्वों पर स्थित अश्वारोही तथा रथों पर रथियों को मार २ कर बिछाने लगा ॥८३॥

न तत्र समरे कश्चिन्मया दृष्टो नराधिप ।
गजो वाजी नरो वाऽपि यो न पार्थशराहतः ॥८४॥

हे नराधिप ! मैंने उस रण में कोई हाथी, अश्व और मनुष्य ऐसा नहीं देखा, जो अर्जुन के बाण से क्षतविक्षत न हुआ हो ॥८४॥

रजसा तमसा चैव योधाः संछन्नचक्षुषः ।
कश्मलं प्राविशन्घोरं नाऽन्वजानन्परस्परम् ॥८५॥

इस समय इतनी धूलि और अन्धेरा छा रहा था, कि योद्धाओं की आंखें ढक गई थीं। इनको बहुत ही कश्मल व्याप्त हो गया और ये परस्पर एक दूसरे के पहिचानने में असमर्थ हो गए ॥८५॥

ते शरैर्भिन्नमर्माणः सैनिकाः पार्थचोदितैः ।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुः सेदुर्मम्लुश्च भारत ॥८६॥

हे भारत ! अर्जुन के बाणों से भिन्नमर्मा होकर सैनिक कहीं तो चक्कर लगा रहे थे, कोई गिरना चाह रहे थे, कोई गिर चुके थे, कोई पीड़ित थे और कोई उदास हो रहे थे ॥८६॥

तस्मिन्महाभीषणके प्रजानामिव संक्षये ।
रणे महति दुष्पारे वर्तमाने सुदारुणे ॥८७॥
शोणितस्य प्रसेकेन शीघ्रत्वादनिलस्य च ।
अशाम्यत्तद्रजो भौममसृक्सिक्ते धरातले ॥८८॥
आनाभि निरमज्जंश्च रथचक्राणि शोणिते ।
मत्ता वेगवतो राजंस्तावकानां रणाङ्गणे ॥८९॥
हस्तिनश्च हतारोहा दारिताङ्गाः सहस्रशः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्त आर्तनादाः प्रदुद्रुवुः ॥९०॥

प्रजा के संहारकारी प्रलय के तुल्य इस भीषण समय में महा दारुण, भयानक, महासंग्राम होने लगा। अब रुधिर की धारा बह निकली और शीघ्र वायु चलने लगा। जब रक्त से भूमि भीग गई, तो भूमि की मिट्टी भी शान्त हो गई। इस समय रक्त की कीचड़ में रथों के चक्र नाभि (धुरी) तक डूब गए। हे राजन्! इस रण में तुम्हारे पक्ष के वेगशाली मदोन्मत्त हाथी और हाथियों के सवारों के अङ्ग सहस्रों स्थानों से छिन्न भिन्न हो गए थे। वे अपनी ही सेना को कुचलते हुए आर्तनाद छोड़ते हुए दौड़ पड़े ॥८७-९०॥

हयाश्च पतितारोहाः पत्तयश्च नराधिप ।
प्रदुद्रुवुर्भयाद्राजन्धनञ्जयशराहताः ॥९१॥

हे नराधिप! अर्जुन के बाणों से आहत हुए अश्व अपने सवारों को फैंककर तथा पैदल सैनिक भय से रण छोड़कर भाग निकले ॥९१॥

मुक्तकेशा विकवचाः स्रवन्तः क्षतजं क्षतैः ।
प्रापलायन्त सन्त्रस्तास्त्यक्त्वा रणशिरो जनाः ॥९२॥

हे राजन्! इनके बाल खुल रहे थे और कवच जीर्ण हो गए थे। ये अपने घावों से रक्त बहाते हुए रण का मुख छोड़कर बड़े भय के साथ भागे चले गए ॥९२॥

ऊरुग्राहगृहीताश्च केचित्तत्राऽभवन्भुवि ।
हतानां चाऽपरे मध्ये द्विरदानां निलिल्यिरे ॥९३॥

हे महाराज! कोई वीर वहीं रणभूमि में अपने गोड़े पकड़े खड़ा था और कोई मरे हुए हाथियों के मध्य में अपने आपको छुपा रहा था ॥९३॥

एवं तव बलं राजन्द्रावयित्वा धनञ्जयः।

न्यवधीत्सायकैर्घोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः ॥६४॥

हे राजन्! अर्जुन इस प्रकार तुम्हारी सेना को भगाकर घोर बाणों से सिन्धुराज के रक्षकों को आहत करने लगा ॥६४॥

द्रौणिं कृपं कर्णशल्यौ वृषसेनं सुयोधनम्।

छादयामास तीव्रेण शरजालेन पाण्डवः ॥६५॥

पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, वृषसेन और राजा दुर्योधन को अपने तीव्र बाणजाल से आच्छादित कर दिया ॥६५॥

न गृह्णन्न क्षिपन्राजन्मुञ्चन्नापि च सन्दधत्।

अदृश्यताऽर्जुनः संख्ये शीघ्रास्त्रत्वात्कथञ्चन ॥६६॥

हे राजन्! अर्जुन, रण में अपनी शीघ्रता के कारण बाण लेता, फैंकता, छोड़ता, चढ़ाता, कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥६६॥

धनुर्मण्डलमेवाऽस्य दृश्यते स्माऽस्यतः सदा।

सायकाश्च व्यदृश्यन्त निश्चरन्तः समन्ततः ॥६७॥

जब यह बाण फैंक रहा था, तो उस समय केवल इसके धनुष का मण्डल ही दिखाई देता था और सब ओर केवल बाण ही छाये हुए दृष्टि में आते थे ॥६७॥

कर्णस्य तु धनुश्छित्त्वा वृषसेनस्य चैव ह।

शल्यस्य सूतं भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥६८॥

अर्जुन ने कर्ण और वृषसेन के धनुष को काटकर राजा शल्य के सारथि को आसन से नीचे गिरा दिया ॥६८॥

गाढविद्धावुभौ कृत्वा शरैः स्वस्रीयमातुलौ ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो द्रौणिशारद्वतौ रणे ॥६६॥

हे राजन् ! इन दोनों मामा और भानजे ने एक दूसरे को बड़ी बुरी तरह आहत कर दिया। विजेताओं में सर्वश्रेष्ठ, अर्जुन ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और कृपाचार्य को भी रण में व्याकुल कर दिया ॥६६॥

एवं तान्व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महारथान् ।
उज्जहार शरं घोरं पाण्डवोऽनलसन्निभम् ॥१००॥
इन्द्राशनिसमप्रख्यं दिव्यमस्त्राभिमन्त्रितम् ।
सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्चितं महत् ॥१०१॥
वज्रेणाऽस्त्रेण संयोज्य विधिवत्कुरुनन्दनः ।
समादधन्महाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः ॥१०२॥

हे राजन् ! इस प्रकार तुम्हारे पक्ष के महारथियों को क्षत-विक्षत करके अर्जुन ने अग्नि के तुल्य एक घोर बाण निकाला। यह बाण इन्द्र के वज्र के तुल्य भीषण, दिव्य शस्त्रों से अभिमंत्रित तथा सारे भारों के सहने में समर्थ और गन्ध मालाओं से पूजित था। कुरुनन्दन महाबाहु अर्जुन ने वज्र नामक अस्त्र से युक्त करके इसको विधिपूर्वक शीघ्रता के साथ गाण्डीव धनुष पर चढ़ाया ॥१००-१०२॥

तस्मिन्सन्धीयमाने तु शरे ज्वलनतेजसि ।
अन्तरिक्षे महानादो भूतानामभवन्नृप ॥१०३॥

हे नृप ! अग्नि के तुल्य देदीप्यमान इस बाण के धनुष पर चढ़ाते ही आकाश में दिव्य भूतों का महान् कोलाहल होने लगा ।

अब्रवीच्च पुनस्तत्र त्वरमाणो जनार्दनः ।
धनञ्जय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः ॥१०४॥
अस्तं महीधरश्रेष्ठं यियासति दिवाकरः ।

अब शीघ्रता करते हुए श्रीकृष्ण, अर्जुन से बोले—हे धनञ्जय ! तुम शीघ्रता करो और अभी इस दुरात्मा राजा जयद्रथ का मस्तक काट गिराओ, क्योंकि अस्ताचल पर्वत पर सूर्य अस्त होने को पहुंच चुका है ॥१०४॥

शृणुष्वैतच्च वाक्यं मे जयद्रथवधं प्रति ॥१०५॥
वृद्धक्षत्रः सैन्धवस्य पिता जगति विश्रुतः ।
स कालेनेह महता सैन्धवं प्राप्तवान्सुतम् ॥१०६॥
जयद्रथममित्रघ्नं वागुवाचाऽशरीरिणी ।
नृपमन्तर्हिता वाणी मेघदुन्दुभिनिःस्वना ॥१०७॥
तवाऽऽत्मजो मनुष्येन्द्र कुलशीलदमादिभिः ।
गुणैर्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ॥१०८॥
क्षत्रियप्रवरो लोके नित्यं शूराभिसत्कृतः ।
किं त्वस्य युध्यमानस्य संग्रामे क्षत्रियर्षभः ॥१०९॥

शिरश्छेत्स्यति संक्रुद्धः शत्रुश्चाऽलक्षितो भुवि ॥

हे महाबाहो ! राजा जयद्रथ के वध के विषय में तुम मेरे एक वाक्य को और सुन लो । जगत् में राजा जयद्रथ का पिता वृद्धक्षत्र प्रसिद्ध है । उसने बहुत काल व्यतीत हो जाने पर इस पुत्र को पाया था । जिस समय शत्रुनाशक यह पुत्र उत्पन्न हुआ, तो उसे आकाशवाणी हुई, जो मेघ के समान दुन्दुभियों में छुपी हुई थी, कि हे मनुष्येन्द्र ! तुम्हारा यह पुत्र, कुल, शील, दम आदि में अपने पितृकुल और मातृकुल के उत्तम २ गुणोंको धारण करेगा । यह बड़ा उत्तम क्षत्रिय और नित्य शूरवीरों में आदर पाता रहेगा, परन्तु इसके मस्तक को क्रोध में भरा हुआ कोई शत्रु अलक्षित होकर पृथिवी में काट गिरावेगा ॥१०५-१०९॥

एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरमरिन्दमः ॥ ११० ॥
ज्ञातीन्सर्वानुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिचोदितः ।
संग्रामे युध्यमानस्य वहतो महतीं धुरम् ॥१११॥
धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः ।
तस्याऽपि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥११२॥

हे राजन् ! अरिमर्दन सिन्धुराज वृद्धक्षत्र, इतना सुनकर बहुत देर तक सोचता रहा और पुत्र के स्नेह में निमग्न होकर अपने बान्धवों से बोला, कि बड़े भारी युद्ध के धुर को धारण करने वाले और संग्राम में लड़ते हुए मेरे पुत्र के शिर को जो पृथिवी में गिरावेगा; उसका भी शिर सौ टुकड़ों में फट जावेगा-इसमें सन्देह नहीं है ॥११०-११२॥

एवमुक्त्वा ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रो वनं यातस्तपश्चोग्रं समास्थितः ॥११३॥

हे राजन् ! इतना कहकर और अपने राज्य पर अपने पुत्र जयद्रथ को बैठाकर राजा वृद्धक्षत्र वन में तप करने चला गया।

सोऽयं तप्यति तेजस्वी तपो घोरं दुरासदम् ।
समन्तपञ्चकादस्माद्बहिर्वानरकेतन ॥११४॥

हे वानर-केतन ! वह तपस्वी बना हुआ राजा वृद्धक्षत्र, इस समन्त-पञ्चक क्षेत्र से बाहर कुछ दूरी पर घोर तप कर रहा है।

तस्माज्जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्त्वा महामृधे ।
दिव्येनाऽस्त्रेण रिपुहन्घोरेणाऽद्भुतकर्मणा ॥११५॥
सकुण्डलं सिन्धुपतेः प्रभञ्जनसुतानुज ।
उत्सङ्गे पातयस्वाऽस्य वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥११६॥
अथ त्वमस्य मूर्धानं पातयिष्यसि भूतले ।
तवापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥११७॥

हे शत्रुघ्न ! भीमानुज ! भारत ! तुम इस घोर संग्राम में राजा जयद्रथ के मस्तक को अद्भुत कर्म करने वाले घोर दिव्य अस्त्र से काट कर सिन्धुपति वृद्धक्षत्र की गोदी में गिरा दो। यदि तुमने पृथ्वी पर इसका मस्तक गिरा दिया तो तुम्हारा भी मस्तक कट कर उसी समय सौ टुकड़ों में पृथ्वी पर गिर जावेगा ॥११५-११७॥

यथा चेदं न जानीयात्स राजा तपसि स्थितः ।
तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ दिव्यमस्त्रमुपाश्रितः ॥११८॥

नह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते तव किञ्चन ।
समस्तेष्वपि लोकेषु त्रिषु वासवनन्दन ॥११६॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! अब तुम दिव्यास्त्र का प्रयोग करके तप करते हुए वृद्धक्षत्र की गोदी में इस मस्तक को इस प्रकार गिराओ, कि वह प्रथम अपने पुत्र का मस्तक न समझ सके। हे इन्द्र-पुत्र ! तुम्हें त्रिलोकी में कुछ भी असाध्य कार्य नहीं है ॥११८-११६॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सृक्किणी परिसंलिहन् ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं दिव्यमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥१२०॥
सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्चितं शरम् ।
विससर्जाऽर्जुनस्तूर्णं सैन्धवस्य वधे धृतम् ॥१२१॥

हे राजन् ! श्रीकृष्ण के ये वचन सुन कर अपने होठ चबाते हुए अर्जुन ने इन्द्र के वज्र के तुल्य भीषण, दिव्य मन्त्रों से युक्त, सारे युद्ध के भार को सहने में समर्थ, गन्ध माला आदि से पूजित, बाण को सिन्धुराज जयद्रथ के वध के निमित्त बड़ी तेजी से उस पर छोड़ा ॥१२०-१२१॥

स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाऽऽशुगः ।
छित्त्वा शिरः सिन्धुपतेरुत्पपात विहायसम् ॥१२२॥

हे भारत ! गाण्डीव धनुष से निकला हुआ वह आशुगामी अर्जुन का बाण, बाज की तरह झपट कर राजा जयद्रथ के मस्तक को काट कर आकाश में उड़ गया ॥१२२॥

तच्छिरः सिन्धुराजस्य शरैरूर्ध्वमवाहयत् ।
दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां हर्षणाय च ॥१२३॥

हे राजन् ! अब शत्रुओं के दुःख और मित्रों के हर्ष के निमित्त अर्जुन ने उस मस्तक को अपने बाणों पर ऊंचा उठा लिया ॥१२३॥

शरैः कदम्बकीकृत्य काले तस्मिंश्च पाण्डवः ।
योधयामास तांश्चैव पाण्डवः षण्महारथान् ॥१२४॥

पाण्डु-पुत्र अर्जुन उस समय उस मस्तक को अपने बाण से ऊंचा उड़ा कर उन कर्ण आदि छः महारथियों के साथ युद्ध करने लगा ॥१२४॥

ततः सुमहदाश्चर्यं तत्राऽपश्याम भारत ।
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं शिरो यदभ्यहरत्ततः ॥१२५॥

हे भारत ! मैंने उस समय यह आश्चर्य की बात देखी, कि वे बाण, राजा जयद्रथ के मस्तक को समन्त-पञ्चक क्षेत्र से बाहर ले उड़े ।

एतस्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः ।
सन्ध्यामुपास्ते तेजस्वी सम्बन्धी तव मारिष ॥१२६॥
उपासीनस्य तस्याऽथ कृष्णकेशं सकुण्डलम् ।
सिन्धुराजस्य मूर्धानमुत्सङ्गे समपातयत् ॥१२७॥

हे आर्य ! तुम्हारा सम्बन्धी महातेजस्वी राजा वृद्धक्षत्र इस समय सन्ध्या कर रहा था । ज्योंही वह उपस्थान के अनन्तर बैठा, कि कृष्ण-केशों से युक्त, कुण्डलधारी, राजा जयद्रथ का मस्तक उसकी गोदी में गिरा ॥१२६-१२७॥

तस्योत्सङ्गे निपतितं शिरस्तच्चारुकुण्डलम् ।
वृद्धक्षत्रस्य नृपतेरलक्षितमरिन्दम ॥१२८॥
कृतजप्यस्य तस्याऽथ वृद्धक्षत्रस्य भारत ।
प्रोत्तिष्ठतस्तत्सहसा शिरोऽगच्छद्धरातलम् ॥१२९॥

हे अरिन्दम ! सुन्दर कुण्डलों से सुशोभित, राजा जयद्रथ का मस्तक राजा वृद्धक्षत्र की गोदी में अचानक अलक्षित रूप से गिरा। हे भारत ! जब राजा वृद्धक्षत्र जप कर चुका और ज्योंही वह उठने लगा-त्योंही उसकी गोदी से वह मस्तक गिर पड़ा ॥१२९॥

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य पुत्रमूर्धनि भूतले ।
गते तस्याऽपि शतधा मूर्धाऽगच्छदरिन्दम ॥१३०॥

हे अरिमर्दन ! जब राजा वृद्धक्षत्र की गोदी से राजा जयद्रथ का मस्तक भूतल पर गिरा-तो राजा वृद्धक्षत्र का भी उसी वरदान के कारण शिर सौ भागों में कट कर नीचे गिर गया ॥१३०॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ।
वासुदेवं च बीभत्सुं प्रशशंसुर्महारथम् ॥१३१॥

हे महाराज ! अब सारी सेनाओं को इसका बड़ा अचम्भा हुआ और वे श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा करने लगे ॥१३१॥

ततो विनिहते राजन्सिन्धुराजे किरीटिना ।
तमस्तद्वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ ॥१३२॥

हे भरतर्षभ ! इस प्रकार राजा जयद्रथ के अर्जुन द्वारा मारे जाने पर श्रीकृष्ण ने उस अन्धकार को समेट लिया ॥१३२॥

पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रः सहानुगैः।
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम ॥१३३॥

हे नृपसत्तम ! तुम्हारे पुत्र और तुम्हारी सेना को तो यह पीछे ज्ञात हुआ, कि यह सारी माया श्रीकृष्ण की खड़ी की हुई थी।

एवं स निहतो राजन्पार्थेनाऽमिततेजसा।
अक्षौहिणीरष्ट हत्वा जामाता तव सैन्धवः ॥१३४॥

हे राजन् ! अत्यन्त तेजस्वी अर्जुन ने इस प्रकार आठ अक्षौहिणी सेना मार कर पीछे तुम्हारे जामाता राजा जयद्रथ को भी मार गिराया ॥१३४॥

हतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप।
दुःखादश्रूणि मुमुचुर्निराशाश्चाऽभवञ्जये ॥१३५॥

हे नराधिप ! जब तुम्हारे पुत्रों ने राजा जयद्रथ को मरा हुआ देखा-तो वे शोक से आंसू छोड़ने लगे और अपने विजय में अत्यन्त निराश हो गए ॥१३५॥

ततो जयद्रथे राजन्हते पार्थेन केशवः।
दध्मौ शङ्खं महाबाहुरर्जुनश्च परन्तपः ॥१३६॥

हे राजन् ! जब अर्जुन द्वारा राजा जयद्रथ मार लिया गया, तो श्रीकृष्ण और महाबाहु शत्रुतापी अर्जुन ने अपने २ शङ्ख बजाये।

भीमश्च वृष्णिसिंहश्च युधामन्युश्च भारत।
उत्तमौजाश्च विक्रान्तः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ।१३७।

हे भारत ! भीमसेन, वृष्णिसिंह सात्यकि, युधामन्यु और महापराक्रमी, उत्तमौजा ने भी पृथक् २ शंख बजाये ॥१३७॥

श्रुत्वा महान्तं तं शब्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
सैन्धवं निहतं मेने फाल्गुनेन महात्मना ॥१३८॥

जब धर्मराज युधिष्ठिर ने इस महान शङ्ख-ध्वनि को सुना-तो उसने भी समझ लिया, कि महावीर अर्जुन ने सिन्धुराज जयद्रथ को मार लिया है ॥१३८॥

ततो वादित्रघोषेण स्वान्योधान्पर्यहर्षयत् ।
अभ्यवर्तत संग्रामे भारद्वाजं युयुत्सया ॥१३९॥

अब राजा युधिष्ठिर भी बाजे बजाता हुआ, भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य से युद्ध की अभिलाषा करके अपने वीरों को हर्षित करता हुआ आगे बढ़ा ॥१३९॥

ततः प्रववृते राजन्नस्तं गच्छति भास्करे ।
द्रोणस्य सोमकैः सार्धं संग्रामो लोमहर्षणः ॥१४०॥

ते तु सर्वे प्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः ।
सैन्धवे निहते राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥१४१॥

हे राजन् ! अब सूर्य अस्त हो रहा था, इस समय इधर भी द्रोणाचार्य का सोमक वीरों के साथ महा घोर संग्राम छिड़ गया। हे राजन् ! ये सारे महारथी सोमक वीर भी सिन्धुराज के मारे जाने के उत्साह में भर कर द्रोणाचार्य के मार लेने को सारे प्रयत्न करते हुए युद्ध करने लगे ॥१४०-१४१॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सैन्धवं विनिहत्य च ।
अयोधयंस्तु ते द्रोणं जयोन्मत्तास्ततस्ततः ॥१४२॥

हे राजन् ! सिन्धुराज जयद्रथ के मार लेने पर अपनी विजय समझ कर पाण्डव वीर जयोन्मत्त हुए द्रोणाचार्य से वीरता के साथ लड़ने लगे ॥१४२॥

अर्जुनोऽपि ततो योधांस्तावकान्रथसत्तमान् ।
अयाधयन्महाबाहुर्हत्वा सैन्धवकं नृपम् ॥१४३॥

हे राजन् ! महाबाहु, अर्जुन भी सिन्धुराज जयद्रथ को मार कर तुम्हारे उत्तम २ योद्धाओं के साथ युद्ध करने लगा ॥१४३॥

स देवशत्रूनिव देवराजः किरीटमाली व्यधमत्समन्तात् ।
यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः पूर्वप्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि जयद्रथवधे षट्चत्वारिंशद्धिकशततमोऽध्यायः ॥१४६ ।

हे भारत ! किरीटधारी अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके देवशत्रु दैत्यों को देवराज इन्द्र की भांति तथा अन्धकार को सूर्य की भांति अपने चारों ओर शत्रु वीरों को मार २ कर लिटाने लगा ॥१४४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में राजा जयद्रथ के वध का एक सौ छियालीसवां अध्याय समाप्त हुआ



एक सौ सैंतालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तस्मिन्विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना ।
मामका यदकुर्वन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! अर्जुन द्वारा वीर-श्रेष्ठ राजा जयद्रथ के मार लेने पर मेरे पुत्रों ने क्या किया-अब मुझे यह सुनाओ ।१॥

सञ्जय उवाच—

सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन भारत ।
अमर्षवशमापन्नः कृपः शारद्वतस्ततः ॥२॥
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ।
द्रौणिश्चाऽभ्यद्रवद्राजन्रथमास्थाय फाल्गुनम् ॥३॥

सञ्जय कहने लगा—हे भारत ! सिन्धुराज जयद्रथ को मरा हुआ देखकर शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य क्रोध में भर कर बड़ी भारी बाण-वर्षा से पाण्डु-पुत्र अर्जुन को आहत करने लगा । हे राजन् ! दूसरी ओर से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा भी उत्तम रथ पर बैठकर अर्जुन पर झपटा ॥२-३॥

तावेतौ रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैर्विशिखैरभ्यवर्षताम् ॥४॥

हे राजन् ! कृपाचार्य और अश्वत्थामा दोनों ही रथियों में श्रेष्ठ थे और दोनों के पास ही उत्तम २ रथ थे । ये दोनों, दोनों ओर से अर्जुन पर बाण-वर्षा करने लगे ॥४॥

स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहद्भ्यां महाभुजः ।
पीड्यमानः परामार्तिमगमद्रथिनां वरः ॥५॥

हे भारत ! इन दोनों वीरों की इस महान् बाण-वर्षा से महाभुज धारी, रथियों में श्रेष्ठ, अर्जुन बड़ा पीड़ित हुआ और व्याकुल हो उठा ॥५॥

सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च ।
चकाराऽऽचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥६॥

कुन्ती-पुत्र अर्जुन, अपने गुरु कृपाचार्य और गुरु द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा को रण में मारना नहीं चाहते थे, तो भी अपना रण-कौशल दिखाने के निमित्त बाण-वर्षा करने लगे ॥६॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्यामजिघांसुरवासृजत् ॥७॥

अर्जुन ने अपने अस्त्रों से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य के अस्त्रों को रोक दिया और मन्दवेगधारी बाणों से उन दोनों पर प्रहार किया ॥७॥

ते चापि भृशमभ्यघ्नन्विशिखाः पार्थचोदिताः ।
बहुत्वात्तु परामार्तिं शराणां तावगच्छताम् ॥८॥

इन अर्जुन के छोड़े हुए शिथिल बाणों के भी बहुत होने से वे दोनों अत्यन्त आहत हो गए और उनसे बहुत ही व्याकुल हो उठे।

अथ शारद्वतो राजन्कौन्तेयशरपीडितः ।
अवासीदद्रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥९॥

हे राजन् ! अब कुन्ती-पुत्र अर्जुन के बाणों से पीड़ित शरद्वान-पुत्र कृपाचार्य रथ के मध्य में बैठ गया और उसे कुछ मूर्च्छा सी आ गई ॥९॥

विह्वलं तमभिज्ञाय भर्तारं शरपीडितम् ।
हतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथिस्तमपावहत् ॥१०॥

सारथि ने जब अपने स्वामी कृपाचार्य को बाण से पीड़ित और विह्वल देखा-तो यह समझा, कि यह भी चल बसा और यह समझ कर वह उसे रण से बाहर ले गया ॥१०॥

तस्मिन्भग्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि ।
अश्वत्थामाऽप्यपायासीत्पाण्डवेयाद्रथान्तरम् ॥११॥

हे महाराज ! शरद्वान-पुत्र कृपाचार्य के जाते ही रण में अश्वत्थामा भी पाण्डु-पुत्र अर्जुन के सामने से हट कर अन्य किसी महारथी से लड़ने को चला गया ॥११॥

दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्च्छितं शरपीडितम् ।
रथ एव महेष्वासः सकृपं पर्यदेवयत् ॥१२॥
अश्रुपूर्णमुखो दीनो वचनं चेदमब्रवीत् ।
पश्यन्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान् ॥१३॥
कुलान्तकरणे पापे जातमात्रे सुयोधने ।
नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ॥१४॥
अस्माद्धि कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम् ।

तदिदं समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥१४॥
तत्कृते ह्यद्य पश्यामि शरतल्पगतं गुरुम् ।

अब महाधनुर्धर अर्जुन ने शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य को अपने बाण से पीड़ित होकर मूर्च्छित होते देखा-तो वे अपने रथ में ही दयार्द्र होकर रोने लगे। अर्जुन का सारा मुख आंसुओं से भर गया। वह दीनता के साथ यह वचन बोला, कि इस परिणाम को देखकर ही महाबुद्धिमान विदुर ने राजा धृतराष्ट्र को समझाया था-कि यह तुम्हारा पुत्र कुल का नाश करने वाला उत्पन्न हुआ है। इसको तो उत्पन्न होते ही परलोक भेज दो-नहीं तो यह कुल के नाश का कारण बनेगा। इस पुत्र से कुरुवंश के वीरों को बड़ा भय उपस्थित हो जावेगा। आज उस सत्यवादी विदुर का वचन ज्यों का त्यों सत्य हो रहा है, जिसके कारण मैं अपने गुरु कृपाचार्य को शर-शय्या पर पड़ा देखता हूं ॥१२-१४॥

धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम् ॥१६॥
को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुह्येत मादृशः ।

इस क्षत्रियधर्म और बल पौरुष को धिक्कार है, जो इस प्रकार मुझ जैसा पुरुष भी ब्राह्मण और विशेष कर आचार्य को बाणों से पीड़ित कर रहा हूं ॥१६॥

ऋषिपुत्रो ममाऽऽचार्यो द्रोणस्य परमः सखा ॥१७।
एष शेते रथोपस्थे कृपो मद्बाणपीडितः ।

यह ऋषि-पुत्र, मेरा आचार्य और द्रोणाचार्य का परम सखा है। यही कृपाचार्य आज मेरे बाण से आहत होकर रथ के मध्य में पड़ा है ॥१७॥

अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम् ॥१८॥

अवसीदन्रथोपस्थे प्राणान्पीडयतीव मे ।

मैंने तो इसके इतने तीक्ष्ण बाण मारने भी नहीं चाहे थे, तो भी यह मेरे अज्ञान में ही बहुत पीड़ित हो गया। अब यह रथ के मध्य में छटपटाता हुआ मेरे प्राण को भी दुःखी कर रहा है।

पुत्रशोकाभितप्तेन शरैरभ्यर्दिते न च ॥१९॥

अभ्यस्तो बहुभिर्बाणैर्दशधर्मगतेन वै ।

शोचयत्येष नियतं भूयः पुत्रवधाद्धि माम् ॥२०॥

कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य कृष्ण यथागतम् ।

मैं अपने पुत्र शोक से सन्तप्त और इन लोगों के बाणों के आघातों से अत्यन्त कुपित हो उठा हूं, जिससे मैंने इन्हें बार २ आहत किया। अब यह इस दुरवस्था को प्राप्त होकर मुझे पुत्र अभिमन्यु के शोक से भी अधिक शोकातुर कर रहा है। हे कृष्ण तुम देखो-तो सही ? किस दीन दशा में यह रथ के मध्य में लेटा पड़ा है ॥१९-२०॥

उपाकृत्य तु वै विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः ॥२१॥

प्रयच्छन्तीह ये कामान्देवत्वमुपयान्ति ते ।

हे महाभाग ! जो उत्तम मनुष्य अपने आचार्यों से विद्या प्राप्त करके उनकी कामनाओं को पूर्ण करते हैं, वे देवत्व पद को प्राप्त करते हैं ॥२१॥

ये च विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ॥२२॥
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तास्ते वै निरयगामिनः ।

जो नीच पुरुष, गुरुओं से विद्या प्राप्त करके उनको ही मारते या उनका ही विरोध करते हैं, वे दुराचारी अवश्य नरक जाते हैं।

तदिदं नरकायाऽद्य कृतं कर्म मया ध्रुवम् ॥२३॥
आचार्यं शरवर्षेण रथे सादयता कृपम् ।

आज मैंने भी अपने बाणजाल से अपने आचार्य कृपाचार्य को जर्जरित करके उसी नरक गमन के उपयोगी कर्म का सम्पादन किया है ॥२३॥

यत्तत्पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत्कृपः ॥२४॥
न कथञ्चन कौरव्य प्रहर्तव्यं गुराविति ।

हे कृष्ण ! मुझे पूर्वकाल में अस्त्रविद्या सिखाते हुए कृपाचार्य ने यह उपदेश दिया था, कि अर्जुन ! तुम इन शस्त्रों का प्रयोग अपने पूज्यों पर मत कर बैठना ॥२४॥

तदिदं वचनं साधोराचार्यस्य महात्मनः॥२५॥
नाऽनुष्ठितं तमेवाऽऽजौ विशिखैरभिवर्षता ।

आज मैंने अपने महात्मा सदाचारी आचार्य के उन वचनों का आदर नहीं किया, जो उनको रण में अपने तीखे बाणों से आहत कर डाला है ॥२५॥

नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायाऽपलायिने ॥२६॥
धिगस्तु मम वार्ष्णेय यदस्मै प्रहराम्यहम् ।

हे वार्ष्णेय! गौतमगोत्रोत्पन्न पूज्य महात्मा कृपाचार्य को नमस्कार है, जिन्होंने रण से पीठ नहीं दिखाई और मुझ जैसे नीच को धिक्कार है, जिसने ऐसे वृद्ध महात्मा पर भी शस्त्र का प्रहार कर दिया ॥२६॥

तथा विलपमाने तु सव्यसाचिनि तं प्रति ॥२७॥
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा राधेयः समुपाद्रवत् ।

हे राजन्! इस प्रकार कृपाचार्य को लक्ष्य करके अर्जुन तो विलाप कर रहे थे, कि इसी समय राधा-पुत्र क ने राजा जयद्रथ को मरा हुआ देखकर अर्जुन पर आक्रमण कर दिया।

तमापतन्तं राधेयमर्जुनस्य रथं प्रति ॥२८॥
पाञ्चाल्यौ सात्यकिश्चैव सहसा समुपाद्रवन् ।

जब महारथी कर्ण को अर्जुन के रथ की ओर झपटते देखा, तो दोनों पाञ्चालवीर युधामन्यु और उत्तमौजा तथा सात्यकि, उसके रोकने को आगे बढ़े ॥२८॥

उपायान्तं तु राधेयं दृष्ट्वा पार्थो महारथः ॥२९॥
प्रहसन्देवकीपुत्रमिदं वचनमब्रवीत् ।

महारथी कुन्ती-पुत्र अर्जुन, महापराक्रमी कर्ण को आगे बढ़ता देखकर मुस्कुराते हुए यह वचन भगवान् कृष्ण से बोले।

एष प्रयात्याधिरथिः सात्यकेः स्यन्दनं प्रति ॥३०॥
न मृष्यति हतं नूनं भूरिश्रवसमाहवे ।

हे कृष्ण ! यह अधिरथ-पुत्र कर्ण, सात्यकि के रथ की ओर बढ़ रहा है। यह रण में नष्ट हुए भूरिश्रवा की मृत्यु को क्षमा नहीं करेगा ॥३०॥

यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाऽश्वाज्जनार्दन ॥३१॥

न सौमदत्तिपदवीं गमयेत्सात्यकिं वृषः।

हे जनार्दन ! जिधर यह जा रहा है- तुम भी अपने अश्वों को उधर ही ले चलो, कहीं यह कर्ण, सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा की भांति सात्यकि को परलोक न भेज दे ॥३१॥

एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ॥३२॥

प्रत्युवाच महातेजाः कालयुक्तमिदं वचः।

जब सव्यसाची अर्जुन ने इतना कहा-तो महातेजस्वी, महाबाहु श्रीकृष्ण समयानुसार यह वचन बोले ॥३२॥

अलमेष महाबाहुः कर्णायैकोऽपि पाण्डव ॥३३॥

किं पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितः सात्वतर्षभः।

हे अर्जुन ! यह महाबाहु सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि अकेला ही कर्ण से युद्ध करने को पर्याप्त है। इसके सिवा जब इसके साथ युधामन्यु और उत्तमौजा दो द्रुपद के वीर हैं-तो फिर इससे कौन युद्ध कर सकता है ॥३३॥

न च तावत्क्षमः पार्थ तव कर्णेन सङ्गरः ॥३४॥

प्रज्वलन्ती महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी।

हे पार्थ ! अब तुमको कर्ण के साथ युद्ध नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसके पास महोल्का की भांति चमकती हुई, इन्द्र की दी हुई एक शक्ति है ॥२४॥

त्वदर्थं पूज्यमानैषा रक्ष्यते परवीरहन् ॥२५॥

अतः कर्णः प्रयात्वत्र सात्वतस्य यथा तथा ।

हे शत्रुवीरनाशक ! इसने उस शक्ति को बड़े आदर से तुझ पर छोड़ने को सुरक्षित रख छोड़ी है। इससे यदि कर्ण सात्वत-वीर सात्यकि पर आक्रमण कर रहा है-तो करने दो ॥२५॥

अहं ज्ञास्यामि कौन्तेय कालमस्य दुरात्मनः ।
यत्रैनं विशिखैस्तीक्ष्णैः पातयिष्यसि भूतले ॥२६॥

हे कौन्तेय ! जब इस दुरात्मा का अन्तिम समय आवेगा, तब मैं तुमको सूचित कर दूंगा। उस समय तुम इसको अपने तीक्ष्ण बाणों से भूतलशायी कर देना ॥२६॥

धृतराष्ट्र उवाच—

योऽसौ कर्णेन वीरस्य वार्ष्णेयस्य समागमः ।
हते तु भूरिश्रवसि सैन्धवे च निपातिते ॥२७॥

सात्यकिश्चापि विरथः कं समारूढवान्रथम् ।
चक्ररक्षौ च पाञ्चाल्यौ तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥२८॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! महारथी भूरिश्रवा और राजा जयद्रथ के मार देने पर जो वीरश्रेष्ठ सात्यकि का कर्ण के साथ युद्ध हुआ उसे मुझे सुनाओ और यह भी बताओ, कि सात्यकि तो

रथहीन हो चुका था, वह किसके रथ में चढ़ गया और चक्ररक्षक पञ्चालवीर उत्तमौजा और युधामन्यु ने क्या २ किया ॥३७-३८॥

सञ्जय उवाच—

हन्त ते वर्तयिष्यामि यथा वृत्तं महारणे ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा दुराचरितमात्मनः ॥३९॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ ! अब मैं तुमको वह सब कुछ सुनाता हूं जो इस महायुद्ध में हो चुका है । तुम स्थिर होकर अपनी दुर्नीति का परिणाम सुनो ॥३९॥

पूर्वमेव हि कृष्णस्य मनोगतमिदं प्रभो ।
विजेतव्यो यथा वीरः सात्यकिः सौमदत्तिना ॥४०॥

हे प्रभो ! श्रीकृष्ण, प्रथम से ही उनके मन में यह बात घर किये हुए थी, कि सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा किस तरह सात्यकि को जीत लेगा ॥४०॥

अतीतानागते राजन्स हि वेत्ति जनार्दनः ।
ततः सूतं समाहूय दारुकं सन्दिदेश ह ॥४१॥
रथो मे युज्यतां कल्यमिति राजन्महाबलः ।

हे राजन् ! भगवान् कृष्ण, भूत और भविष्य सब कुछ जानते हैं, इसी से महाबलवान् श्रीकृष्ण ने अपने सारथि दारुक को बुला कर यह आज्ञा दी, कि तुम बहुत सवेरे मेरे रथ को सुसज्जित करके ले जाना ॥४१॥

नहि देवा न गन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥४२॥
मानवा वाऽपि जेतारः कृष्णयोः सन्ति केचन ।

हे भारत ! देव, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस तथा मनुष्यों में कोई ऐसा नहीं है, जो कृष्ण या अर्जुन को जीत लेवे ॥४२॥

पितामहपुरोगाश्च देवाः सिद्धाश्च तं विदुः ॥४२॥
तयोः प्रभावमतुलं शृणु युद्धं तु तत्तथा ।

हे महाराज ! इन दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन का प्रभाव बहुत अधिक है, जिसे ब्रह्मादि देवता और सिद्ध गण जानते हैं ॥४३॥

सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाऽभ्युद्यतं रणे ॥४४॥
दध्मौ शङ्खं महानादमार्षभेणाऽथ माधवः ।

जब श्रीकृष्ण ने सात्यकि को रथहीन और कर्ण को उससे लड़ने को रणभूमि में उद्यत देखा, तो उन्होंने ऋषभ स्वर में अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया, जिसकी बहुत ही ऊंची ध्वनि सर्वत्र फैल गई ॥४४॥

दारुकोऽवेत्य सन्देशं श्रुत्वा शङ्खस्य च स्वनम् ॥४५॥
रथमन्वानयत्तस्मै सुपर्णोच्छ्रितकेतनम् ।

दारुक सारथि इस शङ्खध्वनि के संकेत की ही प्रतीक्षा कर रहा था। वह पाञ्चजन्य शङ्ख की ध्वनि सुनकर गरुड़ की ध्वजा से विभूषित रथ को लेकर वहां उपस्थित हो गया ॥४५॥

स केशवस्याऽनुमते रथं दारुकसंयुतम् ॥४६॥
आरुरोह शिनेः पौत्रो ज्वलनादित्यसन्निभम् ।

सूर्य के सदृश चमकते हुए दारुक सारथि से सम्पन्न इसी रथ में श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार शिनि का पौत्र सात्यकि चढ़ गया ।

कामगैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥४७॥
हयोदग्रैर्महावेगैर्हेमभाण्डविभूषितैः ।
युक्तं समारुह्य च तं विमानप्रतिमं रथम् ॥४८॥
अभ्यद्रवत राधेयं प्रवपन्सायकान्बहून् ।

इस रथ में कामना के अनुसार चलने वाले, शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम के चार अश्व जुड़े थे, जो बड़े भारी वेगशाली और सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित थे । इन अश्वों से युक्त इस विमान के समान उत्तम रथ में चढ़कर सात्यकि बहुत से बाण छोड़ता हुआ कर्ण पर बुरी तरह झपटा ॥४७-४८॥

चक्ररक्षावपि तदा युधामन्यूत्तमौजसौ ॥४९॥
धनञ्जयरथं हित्वा राधेयं प्रत्युदीयतुः ।

इसी समय चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा ने भी अर्जुन के रथ को छोड़कर राधा-पुत्र कर्ण के रथ पर आक्रमण किया ।

राधेयोऽपि महाराज शरवर्षं समुत्सृजन् ॥५०॥
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धो रणे शैनेयमच्युतम् ।

हे महाराज ! राधा-पुत्र कर्ण भी बाण-वर्षा करता हुआ, रण से नहीं डिगने वाले सात्यकि पर क्रोध के साथ बड़े वेग से झपटा ।

नैव दैवं न गान्धर्वं नाऽऽसुरं न च राक्षसम् ॥५१॥
तादृशं भुवि नो युद्धं दिवि वा श्रुतमित्युत ।
उपारमत तत्सैन्यं सरथाश्वनरद्विपम् ॥५२॥

हे राजन ! अब जो इन दोनों का युद्ध ठना है, तो देव, गन्धर्व, असुर और राक्षस किसी का भी ऐसा युद्ध भूमि या आकाश में नहीं देखा गया और न सुना ही गया-जैसा कि इनका युद्ध था। उस युद्ध को देखने के निमित्त रथ, अश्व, पैदल सैनिक और हाथी सब खड़े के खड़े रह गए ॥५१-५२॥

तयोर्दृष्ट्वा महाराज कर्म संमूढचेतसः ।
सर्वे च समपश्यन्त तद्युद्धमतिमानुषम् ॥५३॥

हे महाराज ! इन दोनों के मनुष्यातिशायी इस युद्ध कर्म को देखकर सारे वीर चकित चित्त होकर खड़े २ देखने लगे ॥५३॥

तयोर्नृवरयो राजन्सारथ्यं दारुकस्य च ।
गतप्रत्यागतावृत्तैर्मण्डलैः सन्निवर्तनैः ॥५४॥

सारथेस्तु रथस्थस्य काश्यपेयस्य विस्मिताः ।
नभस्तलगताश्चैव देवगन्धर्वदानवाः ॥५५॥

हे राजन् ! इन पुरुषप्रवीर कर्ण और सात्यकि का युद्ध तथा कश्यपोत्री रथस्थित दारुक का सारथि कर्म तथा रथ के आने जाने की गति, मण्डल रचना, लौटना और बढ़ना देखकर सारे आकाश स्थित देव, गन्धर्व और दानव, बड़े अचम्भित हुए ॥५५॥

अतीवाऽवहिता द्रष्टुं कर्णशैनेययो रणम् ।
मित्रार्थे तौ पराक्रान्तौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥५६॥

ये दोनों महारथी, अत्यन्त तेजस्वी, कर्ण और सात्यकि, अपने २ मित्रों की विजय के लिए रथ में पराक्रम दिखाने लगे ।

इन दोनों के रण को देखने के लिए सारे वीर बड़ी सावधानी से खड़े हो गए ॥५६॥

कर्णश्चाऽमरसङ्काशो युयुधानश्च सात्यकिः ।
अन्योन्यं तौ महाराज शरवर्षैरवर्षताम् ॥५७॥

हे महाराज ! देवों के समान कान्तिधारी कर्ण और युद्ध में कुशल सात्यकि-ये दोनों अपनी २ बाणवर्षा से एक दूसरे को आच्छादित करने लगे ॥५७॥

प्रममाथ शिनेः पौत्रं कर्णः सायकवृष्टिभिः ।
अमृष्यमाणो निधनं कौरव्यजलसन्धयोः ॥५८॥

अब कर्ण भी अपनी बाण-वर्षा द्वारा शिनि-पौत्र सात्यकि को बींधने लगा । यह कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवा और राजा जलसन्ध की मृत्यु को नहीं सह सका ॥५८॥

कर्णः शोकसमाविष्टो महोरग इव श्वसन् ।
स शैनेयं रणे क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ॥५६॥
अभ्यधावत वेगेन पुनः पुनररिन्दम ।

हे अरिन्दम ! कर्ण बड़े ही क्रोध और शोक में भरा हुआ, बार २ सर्प के सदृश श्वास छोड़ रहा था । वह रण में क्रुद्ध होकर मानो अपने नेत्रों से दग्ध करता हुआ बड़े वेग से बार २ सात्यकि पर झपटने लगा ॥५६॥

तं तु सक्रोधमालोक्य सात्यकिः प्रत्ययुद्ध्यत ॥६०॥
महता शरवर्षेण गजं प्रतिगजो यथा ।

कर्ण को अत्यन्त कुपित देखकर सात्यकि भी युद्ध के लिए मुकाविले पर आ डटा और बाण-वर्षा द्वारा इस प्रकार युद्ध करने लगा-जैसे एक हाथी दूसरे हाथी से भिड़ जाता है ॥६०॥

तौ समेतौ नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ॥६१॥

अन्योन्यं सन्ततघाते रणेऽनुपमविक्रमौ ।

ये दोनो नरश्रेष्ठ, वेगशाली सिंहों की तरह रण में अनुपम पराक्रम दिखाते हुए एक दूसरे को क्षीण करने लगे ॥६१॥

ततः कर्णं शिनेः पौत्रः सर्वपारसवैः शरैः ॥६२॥

बिभेद सर्वगात्रेषु पुनः पुनररिन्दम ।

सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥६३॥

अश्वांश्च चतुरः श्वेतान्निजघान शितैः शरैः ।

हे अरिमर्दन ! अब शिनि के पौत्र सात्यकि ने सारे लोहमय बाणों से बार २ कर्ण के शरीर को जर्जरित कर दिया और बाण मार कर सारथि को रथ के आसन से नीचे गिराया, एवं तीक्ष्ण बाणों से इसके चारों श्वेत अश्वों को भी आहत कर दिया ॥६३॥

छित्त्वा ध्वजं रथं चैव शतधा पुरुषर्षभ ॥६४॥

चकार विरथं कर्णं तव पुत्रस्य पश्यतः ।

ततो विमनसो राजंस्तावकास्ते महारथाः ॥६५॥

हे पुरुषर्षभ ! इस सात्यकि ने कर्ण के रथ और ध्वजा को नष्ट-भ्रष्ट करके उनकी सैंकड़ों धज्जियां कर डाली । तुम्हारे पुत्र भी खड़े २ देख रहे थे और सात्यकि ने इस तरह कर्ण को रथ-हीन

कर दिया। हे राजन्! अब तुम्हारे वे सारे महारथी उदास हो गए॥६४-६५॥

वृषसेनः कर्णसुतः शल्यो मद्राधिपस्तथा।
द्रोणपुत्रश्च शैनेयं सर्वतः पर्यवारयन्॥६६॥
ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन।

हे राजन्! कर्ण-पुत्र वृषसेन, मद्रराज शल्य तथा द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने इस समय शिनि-पौत्र सात्यकि को सब ओर से घेर लिया। अब सारी सेना व्याकुल हो उठी और किसी को कुछ नहीं सूझ पड़ा॥६६॥

तथा सात्यकिना वीरे विरथे सूतजे कृते॥६७॥
हाहाकारस्ततो राजन्सर्वसैन्येष्वभून्महान्।

हे राजन्! इसके अनन्तर सूत-पुत्र कर्ण को सात्यकि द्वारा रथ-हीन कर देने पर सारी सेनाओं में महान् हाहाकार मच गया।

कर्णोऽपि विरथो राजन्सात्वतेन कृतः शरैः॥६८॥
दुर्योधनरथं तूर्णमारुरोह विनिःश्वसन्।

हे राजन्! सात्वतवंशश्रेष्ठ, सात्यकि ने अपने बाणों से जब कर्ण को रथ-हीन बना दिया, तो वह दौड़कर श्वास लेता हुआ झटपट राजा दुर्योधन के रथ पर चढ़ गया॥६८॥

मानयंस्तव पुत्रस्य बाल्यात्प्रभृति सौहृदम्॥६९॥
कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपालयन्।

यह कर्ण तो बचपन से ही तुम्हारे पुत्र से मित्रता मानता था और राजा दुर्योधन द्वारा दिये हुए राज्य के प्रत्युपकार में की हुई अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर रहा था ॥६६॥

तथा तु विरथं कर्णं पुत्रांश्च तव पार्थिव ॥७०॥
दुःशासनमुखान्वीरान्नाऽवधीत्सात्यकिर्वशी ।
रक्षन्प्रतिज्ञां भीमेन पार्थेन च पुरा कृताम् ॥७१॥
विरथान्विह्वलांश्चक्रे न तु प्राणैर्व्ययोजयत् ।

हे नराधिप ! यद्यपि इस समय कर्ण और दुःशासन आदि तुम्हारे पुत्रों को जितेन्द्रिय सात्यकि ने रथ-हीन कर दिया, तो भी उनके प्राणों का अपहरण नहीं किया, क्योंकि इनके वध करने की भीमसेन और अर्जुन ने प्रतिज्ञा कर रखी थी। इसने इनको रथ-हीन और विह्वल अवश्य कर दिया, परन्तु प्राणों से वियुक्त नहीं किया ॥७०-७१॥

भीमसेनेन तु वधः पुत्राणां ते प्रतिश्रुतः ॥७२॥
अनुद्यूते च पार्थेन वधः कर्णस्य संश्रुतः ।

जब द्यूत हो रहा था, तब तुम्हारे पुत्रों के वध करने की भीमसेन ने और कर्ण के वध की अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी ॥७२॥

वधे त्वकुर्वन्यत्नं ते तस्य कर्णमुखास्तदा ॥७३॥
नाऽशक्नुवंस्ततो हन्तुं सात्यकिं प्रवरा रथाः ।

यद्यपि इन रथिश्रेष्ठ कर्ण आदि ने सात्यकि के मारने का बड़ा प्रयत्न किया, तो भी वे महावीर सात्यकि को मारने में समर्थ नहीं हो सके ॥७३॥

द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथैवाऽन्ये महारथाः ॥७४॥
निर्जिता धनुषैकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः ।
कांक्षता परलोकं च धर्मराजस्य च प्रियम् ॥७५॥

द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा अन्य सैंकड़ों महारथियों को अकेले सात्यकि ने अपने एक धनुष के भरोसे पर ही जीत लिया। यह परलोक में सद्गति और इस लोक में केवल धर्मराज की विजय को चाहता था ॥७४-७५॥

कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः ।
जितवान्सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव ॥७६॥

शत्रुतापी सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन के समान पराक्रम दिखाने वाले थे। इन्होंने तुम्हारी सारी सेनाओं को हंसते २ जीत लिया ॥७६॥

कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः ।
शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते ॥७७॥

इस प्रकार के उत्कट कर्म कर दिखाने वाले या तो श्रीकृष्ण या धनुर्धर अर्जुन या नरवीर सात्यकि हैं-चौथा तो कोई संसार में ऐसे कार्य करने में समर्थ दिखाई नहीं देता है ॥७७॥

धृतराष्ट्र उवाच—

अजय्यं वासुदेवस्य रथमास्थाय सात्यकिः ।
विरथं कृतवान्कर्णं वासुदेवसमो युधि ॥७८॥

दारुकेण समायुक्तः स्वबाहुबलदर्पितः ।
कच्चिदन्यं समारूढः सात्यकिः शत्रुतापनः ॥७९॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सूत ! वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के पराजित नहीं होने वाले रथ में बैठकर ही सात्यकि ने कर्ण को रथ-हीन बना दिया, क्योंकि ये युद्ध में श्रीकृष्ण के सदृश थे । यह सब कुछ अपनी भुजाओं पर भरोसा रखने वाले शत्रुतापी सात्यकि ने दारुक सारथि से युक्त होकर किया अथवा पीछे अन्य रथ पर चढ़ कर किया ॥७८-७९॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कुशलो ह्यसि भाषितुम् ।
असह्यं तमहं मन्ये तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥८०॥

हे सञ्जय ! मैं यह सब कुछ सुनना चाहता हूं-तुम इन कथाओं के सुनाने में कुशल हो । मैं तो सात्यकि को ही असह्य समझता हूं-तुम इसको स्पष्ट करके बताओ ॥८०॥

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्यथा वृत्तं रथमन्यं महामतिः ।
दारुकस्याऽनुजस्तूर्णं कल्पनाविधिकल्पितम् ॥८१॥
आयसैः काञ्चनैश्चापि पट्टैः सन्नद्धकूबरम् ।
तारासहस्रखचितं सिंहध्वजपताकिनम् ॥८२॥
अश्वैर्वातजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः ।
सैन्धवैरिन्दुसङ्काशैः सर्वशब्दातिगैर्दृढैः ॥८३॥
चित्रकाञ्चनसन्नाहैर्वाजिमुख्यैर्विशाम्पते ।

घण्टाजालाकुलरवं शक्तितोमरविश्रुतम् ॥८४॥
युक्तं सांग्रामिकैद्रव्यैर्बहुशस्त्रपरिच्छदैः ।
रथं सम्पादयायास मेघगम्भीरनिःस्वनम् ॥८५॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! जिस तरह हुआ-वह सुनो। महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण के सारथि दारुक के छोटे भाई ने रथ सुसज्जित करने के ढंग से सजा कर दूसरा रथ लाकर खड़ा कर दिया। इस रथ के सोने और लोहे के पत्तरों से कूवर के काष्ठ मढ़े हुए थे, जिसमें सहस्रों तार काढ़ रखे थे। इस पर सिंह के चिन्ह वाली ध्वजा लगी थी। इसमें वायु के समान वेगशाली अश्व जुड़े थे, जिनके आभूषण भी सारे सुवर्ण के ही थे। ये अश्व, चन्द्रमा के समान श्वेत और सारे शब्दों को सहने वाले बड़े दृढ़ थे। हे विशाम्पते! इन अश्वों के ऊपर विचित्र सुवर्ण का कवच था। ये उत्तम अश्व सिन्धु देश में उत्पन्न हुए थे। इस रथ में सैकड़ों छोटी २ घण्टी लगी थी, जिनका शब्द सब जगह फैल रहा था। यह शक्ति, तोमर आदि शस्त्रों से सुसज्जित तथा बहुत से अन्य शस्त्र, वस्त्र और युद्ध के उपकरणों से युक्त था। मेघ के समान गम्भीर घोष करने वाले इस रथ को सजा कर दारुक का अनुज वहां ले आया ॥८१-८५॥

तं समारुह्य शैनेयस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
दारुकोऽपि यथाकामं प्रययौ केशवान्तिकम् ॥८६॥

इसके बाद शिनि-पौत्र उस रथ पर चढ़ कर तुम्हारी सेना पर टूट पड़ा और श्रीकृष्ण का सारथि दारुक, अपनी इच्छानुसार श्रीकृष्ण के पास चला गया ॥८६॥

कर्णस्यापि रथं राजञ्छङ्खगोक्षीरपाण्डुरैः ।
चित्रकाञ्चनसन्नाहैः सदश्वैर्वेगवत्तरैः ॥८७॥
हेमकक्ष्याध्वजोपेतं श्लक्ष्णयन्त्रपताकिनम् ।
अग्र्यं रथं सुयन्तारं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ॥८८॥
उपाजह्रुस्तमास्थाय कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्रिपून् ।

हे राजन् ! इधर कर्ण के रथ के अश्व भी गौ के दुग्ध और शङ्ख के तुल्य श्वेत थे । उन पर भी सुवर्ण के विचित्र कवच थे । उन वेगशील अश्वों से कर्ण का रथ बड़ा सुन्दर था । इस पर सुवर्ण की साँकल की ध्वजा का चिन्ह था और उत्तम यन्त्र तथा पताका लगे थे । इसका सारथि भी बड़ा श्रेष्ठ था, जिससे रथ की उत्तमता और बढ़ गई । इसमें भी बहुत से शस्त्रास्त्र सजाये हुए थे । जब सैनिक इस रथ को ले आये-तो कर्ण भी उस पर चढ़ कर शत्रुओं पर झपटा ॥८७-८८॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥८९॥
भूयश्चापि निबोधेमं तवाऽपनयजं क्षयम् ।
एकत्रिंशत्तव सुता भीमसेनेन पातिताः॥९०॥
दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा सततं चित्रयोधिनम् ।
शतशो निहताः शूराः सात्वतेनाऽर्जुनेन च ॥९१॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा भगदत्तं च भारत ।
एवमेष क्षयो वृत्तो राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥९२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णसात्यकियुद्धे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४७॥

हे भरतर्षभ ! जो तुमने पूछा था, वह मैंने तुमको सब कुछ सुना दिया। अब तुम और भी अपनी दुर्नीति का फल सुनो। अब तक तुम्हारे इकतीस पुत्रों को भीमसेन मार चुका था, जिनमें विचित्र युद्ध करने वाले दुर्मुख आदि प्रधान हैं। अर्जुन और सात्यकि ने भी सैंकड़ों शूरवीर मार डाले। जिनमें भगदत्त, भीष्म आदि प्रधान हैं। हे राजन ! यह सब कुछ विनाश तुम्हारी दुर्मन्त्रणा का परिणाम है-इसमें सन्देह नहीं है ॥८६-६२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में कर्ण और सात्यकि के युद्ध का एक सौ सैंतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ अड़तालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तथा गतेषु शूरेषु तेषां मम च सञ्जय।
किं वै भीमस्तदाऽकार्षीत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! जब हमारी और पाण्डवों की सेना के वीर इस तरह भिड़ रहे थे, तो उस समय भीम ने क्या किया-यह सब कुछ मुझे सुनाओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

विरथो भीमसेनो वै कर्णवाक्शल्यपीडितः ।
अमर्षवशमापन्नः फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! भीमसेन रथ से तो रहित हो ही रहा था-अब कर्ण ने कटु वाक्य बाणों से इसे और छेद दिया। इस समय यह क्रोध में भर कर अर्जुन से यह वचन कहने लगा।

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥३॥
इति मामब्रवीत्कर्णः पश्यतस्ते धनञ्जय ।
एवं वक्ता च मे वध्यस्तेन चोक्तोऽस्मि भारत ॥४॥
एतद्व्रतं महाबाहो त्वया सह कृतं मया ।
तथैतन्मम कौन्तेय यथा तव न संशयः ॥५॥
तद्वधाय नरश्रेष्ठ स्मरैतद्वचनं मम ।
यथा भवति तत्सत्यं तथा कुरु धनञ्जय ॥६॥

हे धनञ्जय ! तुम्हारे सन्मुख ही कर्ण ने मुझे मूढ़ बैल की तरह चरने वाला पेटार्थी, अकृतास्त्रक, संग्रामकातर आदि शब्द कहे हैं, इसने कहा-कि मूर्ख तू युद्ध न कर, तू युद्ध करना क्या जाने और तुम यह सब कुछ देखते रहे। हे भारत ! महाबाहो ! मैंने तुम्हारे सामने प्रथम ही प्रतिज्ञा कर रखी है, जो मुझे ऐसे कहेगा-मैं उसे मार डालूंगा। हे कौन्तेय ! जैसे तुम अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा चाहते हो-वैसे ही मैं भी चाहता हूं। हे नरश्रेष्ठ, धनञ्जय ! तुम मेरे वचनों

का स्मरण कर लो-मैं इसे मारे बिना न छोड़ूंगा। अब जैसे मेरे वचन सत्य हों-तुम वही ढंग बताओ ॥३-६॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भीमस्याऽमितविक्रमः।
ततोऽर्जुनोऽब्रवीत्कर्णं किञ्चिदभ्येत्य संयुगे ॥७॥

हे राजन! जब अत्यन्त पराक्रमी अर्जुन ने भीमसेन के ये वचन सुने-तो वह रण में आगे बढ़कर कर्ण के पास पहुंचे और उससे यह वचन बोले ॥७॥

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्राऽऽत्मसंस्तुत।
अधर्मबुद्धे शृणु मे यत्त्वां वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥८॥

अरे सूत-पुत्र कर्ण! तू बड़ा मिथ्या दृष्टि और अपनी प्रशंसा मारने वाला है। तेरी केवल अधर्म बुद्धि प्रवृत्त होती है। अब जो वचन मैं तुमसे कहता हूँ-तू उनको ध्यान से सुन ॥८॥

द्विविधं कर्म शूराणां युद्धे जयपराजयौ।
तौ चाऽप्यनित्यौ राधेय वासवस्याऽपि युध्यतः ॥९॥

हे राधेय! शूरवीरों को युद्ध करने-पर दो ही वस्तु प्राप्त होती हैं या तो विजय या पराजय। यदि इन्द्र भी युद्ध करे-तो उसको युद्ध में जय और पराजय में सन्देह होता है अर्थात् जय और पराजय किसी एक की निश्चित नहीं होती, न जाने किसकी हो जावे ॥९॥

मुमूर्षुर्युयुधानेन विरथो विकलेन्द्रियः।
मद्वध्यस्त्वमिति ज्ञात्वा जित्वा जीवन्विसर्जितः ॥१०॥

यदृच्छया रणे भीमं युध्यमानं महाबलम् ।
कथञ्चिद्विरथं कृत्वा यत्त्वं रूक्षमभाषथाः ॥११॥
अधर्मस्त्वेष सुमहाननार्यचरितं च तत् ।
नाऽरिं जित्वाऽतिकत्थन्ते न च जल्पन्ति दुर्वचः ॥१२
न च कञ्चन निन्दन्ति सन्तः शूरा नरर्षभाः ।
त्वं तु प्राकृतविज्ञानस्तत्तद्वदसि सूतज ॥१३॥

अभी तुम्हें सात्यकि ने रथ-हीन करके इतना व्यथित इन्द्रिय बना दिया था-कि तुम मृत्यु के समीप ही थे। उन्होंने मेरा वध्य समझ तुम्हें जीतकर भी जीता छोड़ दिया, परन्तु तुमने युद्ध करते हुए महाबली भीम को यदृच्छा (इत्तफाक) से रथ-हीन कर दिया-तो तुम कटुभाषण करने लगे। यह बड़ा अधर्म और अनार्य चरित है। जब वीर पुरुष, शत्रु को जीत लेते हैं, तो वे अपनी प्रशंसा की न डींग मारते और न शत्रु से कटु वचन बोलते हैं। जो महात्मा शूरवीर हैं, वे विजय होने पर किसी की निन्दा नहीं करते। हे सूत-पुत्र ! तुममें बहुत ही कम ज्ञान है, जो तू युद्ध में विजयी होकर इस तरह कटु वचनों का प्रयोग करता है ॥१३॥

बह्वबद्धमकर्ण्यं च चापलादपरीक्षितम् ।
युध्यमानं पराक्रान्तं शूरमार्यव्रते रतम् ॥१४॥
यदवोचोऽप्रियं भीमं नैतत्सत्यं वचस्तव ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य ममैव च ॥१५॥

हे कर्ण ! बड़े पराक्रम के साथ युद्ध करते हुए, आयत्त में लगे हुए शूरवीर भीमसेन से यह जो तुमने कर्णों को अप्रिय बहुत सा असम्बद्ध प्रलाप किया है-यह सत्य नहीं है। यह तो तुम्हारी बाल-सुलभ चञ्चलता का परिणाम है। इस तुम्हारी सारी अनुचित कार्यवाही को मैं और स्वयं श्रीकृष्ण बहुत देर से देख रहे हैं ॥१५॥

विरथो भीमसेनेन कृतोऽसि बहुशो रणे।
न च त्वां परुषं किञ्चिदुक्तवान्पाण्डुनन्दनः ॥१६॥
यस्मात्तु बहुरूक्षं च श्रावितस्ते वृकोदरः।
पराक्ष यच्च सौभद्रो युष्माभिर्निहतो मम ॥१७॥
तस्मादस्याऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि।
त्वया तस्य धनुश्छिन्नमात्मनाशाय दुर्मते ॥१८।
तस्माद्वध्योऽसि मे मूढ सभृत्यसुतबान्धवः।
कुरु त्वं सर्वकृत्यानि महत्ते भयमागतम् ॥१९॥
हन्ताऽस्मि वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे।

हे अधिरथ-पुत्र ! तुम्हें रण में भीमसेन ने कई बार रथ-हीन किया, परन्तु पाण्डुनन्दन भीम ने तुम्हें कुछ भी कटु वचन नहीं कहे। तुमने वृकोदर भीम को बहुत कटु वचन सुनाए और तुम सबने मिलकर मेरे पीछे से अभिमन्यु को मार गिराया। अब तुम इस मिथ्या अभिमान का बहुत शीघ्र फल पाओगे। हे दुर्मते। तूने ही अभिमन्यु के धनुष को अपनी मृत्यु के निमित्त काटा था। अरे मूढ़ ! इसी से अब मैं तुम्हें अपने सेवक, पुत्र और बन्धुओं

के सहित मारे विना न छोड़ूंगा। तुम्हें जो काम करना हो-कर लेना, अब तुमको बड़ा भय उपस्थित हो गया है। तेरे देखते २ तेरे पुत्र वृषसेन को मैं मार कर छोड़ूंगा ॥१६-१६॥

ये चाऽन्येऽप्युपयास्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः ॥२०

तांश्च सर्वान्हनिष्यामि सत्येनाऽऽयुधमालभे ।

अरे कर्ण! जो कौरववीर, अपनी अज्ञानता में पड़कर मेरे सन्मुख बढ़ आवेंगे-उन सबको भी मैं मारे विना न रहूंगा-यह मैं शस्त्र छू कर शपथ खाता हूं ॥२०॥

त्वां च मूढाऽकृतप्रज्ञमतिमानिनमाहवे ॥२१॥

दृष्ट्वा दुर्योधनो मन्दो भृशं तप्यति पातितम् ।

अरे मूढ़! तू तो बहुत ही अनुभवहीन और रण में अभिमान रखने वाला है। जब मैं रणभूमि में तुझे गिरा दूंगा-तब इस मूर्ख दुर्योधन को अत्यन्त चिन्ता होगी ॥२१॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णसुतस्य तु ॥२२॥

महान्सुतुमुलः शब्दो बभूव रथिनां तदा ।

हे राजन्! जब कर्ण के मारने की अर्जुन ने इस प्रकार प्रतिज्ञा की, तो दोनों सेनाओं के वीरों में बड़ा ही कोलाहल खड़ा हो गया ॥२२॥

तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ॥२३॥

मन्दरश्मिः सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपाद्रवत् ।

जिस समय इस प्रकार रण में खलबली मच गई और बड़ा भय उपस्थित हुआ-उसी समय सहस्र किरणधारी सूर्य भी अपनी किरणों का तेज सुकोड़ कर अस्ताचल में अस्त हो गया ॥२३॥

ततो राजन्हृषीकेशः संग्रामशिरसि स्थितम् ॥२४॥
तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं परिष्वज्यैनमब्रवीत् ।
दिष्ट्या सम्पादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महती त्वया ॥
दिष्ट्या विनिहतः पापो वृद्धक्षत्रः सहात्मजः ।

हे राजन ! अब हृषीकेश भगवान कृष्ण, युद्ध के अग्र स्थान पर खड़े होकर अपनी प्रतिज्ञा को पार करने वाले स्थित अर्जुन का आलिङ्गन करके यह बचन बोले-हे अर्जुन ! यह बड़े आनन्द की बात है, कि तुमने अपनी महती प्रतिज्ञा को पूर्ण कर लिया और यह भी बड़ी प्रसन्नता की बात है, कि अपने पुत्र राजा जयद्रथ के सहित वृद्ध राजा वृद्धक्षत्र भी मारा गया ॥२४-२५॥

धार्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनाऽपि भारत ॥२६॥
सीदेत समरे जिष्णो नाऽत्र कार्या विचारणा ।
न तं पश्यामि लोकेषु चिन्तयन्पुरुषं क्वचित् ॥२७॥
त्वदृते पुरुषव्याघ्र य एतद्योधयेद्बलम् ।

हे भारत ! इस कुरुसेना के आगे तो रण में देव-सेना भी व्याकुल हो सकती है-इसमें सन्देह नहीं है । हे पुरुषव्याघ्र ! मैंने तो तीनों लोकों में दृष्टि डाल ली; परन्तु तुम्हारे सिवाय अन्य कोई दृष्टि नहीं आया-जो इस भयङ्कर कौरवसेना के साथ युद्ध कर सके ।

महाप्रभावा बहवस्त्वया तुल्याधिकाऽपि वा ॥२८॥
समेताः पृथिवीपाला धार्तराष्ट्रस्य कारणात् ।
ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धा नाऽभ्यवर्तन्त दंशिताः ॥
तव वीर्यं बलं चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम् ।

हे अर्जुन ! धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन के निमित्त बड़े २ प्रभावशाली राजा इकट्ठे हुए हैं, जो बल में तुम्हारे तुल्य या तुम से अधिक ही होंगे, परन्तु रण में बड़े क्रोध और तय्यारी के साथ तुम्हारे सन्मुख आकर भी कोई जीवित नहीं लौट पाता है, यह बड़ा आश्चर्य है। तुम्हारा बल और वीर्य सैंकड़ों रुद्र और यमों के समान है-मुझे तो यही प्रतीत होता है ॥२८-२९॥

नेदृशं शक्नुयात्कश्चिद्रणे कर्तुं पराक्रमम् ॥३०॥
यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापनः ।

हे अर्जुन ! इस महायुद्ध में कोई भी ऐसा पराक्रम नहीं दिखा सकता है-जैसा तुम अकेले ने अपने शत्रुओं को सन्तापित करके दिखाया है ॥३०॥

एवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ॥३१॥
वर्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विषम् ।

हे कौन्तेय ! इसी प्रकार एक दिन तुम, कर्ण को उसकी सेना और बान्धवों के सहित मार सकोगे। मैं उस दिन शत्रु को मार कर निष्कण्टक बने हुए तुम्हारा फिर धन्यवाद करूंगा ॥३१॥

तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात्तव माधव ॥३२॥
प्रतिज्ञेयं मया तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा ।
अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव ॥३३॥
त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां सम्प्राप्स्यति युधिष्ठिरः ।

अब अर्जुन श्रीकृष्ण से बोले—हे माधव ! मैंने यह आपकी कृपा से ही बड़ी दुस्तीर्ण प्रतिज्ञा का पार पाया है। इस प्रतिज्ञा का देवता भी पार नहीं पा सकते थे। हे केशव ! जिनके तुम रक्षक हो-उनको विजय प्राप्त हो जावे, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है। तुम्हारी कृपा से राजा युधिष्ठिर अवश्य सारी पृथ्वी को प्राप्त कर सकेगा ॥३२-३३॥

तव प्रभावो वार्ष्णेय तवैव विजयः प्रभो ॥३४॥
वर्धनीयास्तव वयं सदैव मधुसूदन ।

हे वार्ष्णेय ! प्रभो ! यह सब कुछ आपका ही प्रभाव और आपकी ही विजय है। हे मधुसूदन ! आप इसी तरह अनुग्रह करके हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि करते रहें ॥३४॥

एवमुक्तस्ततः कृष्णः शनकैर्वाहयन्हयान् ।
दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं महत् ॥३५॥

हे राजन् ! भगवान् कृष्ण इतना कह कर धीरे २ अश्वों को चलाते हुए उस बड़े घोर युद्ध का दृश्य अर्जुन को दिखाते हुए अपनी सेना की ओर चल दिए ॥३५॥

श्रीकृष्ण उवाच—

प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितं च महद्यशः ।
पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः ॥३६॥
विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्वरथद्विपाः ।
सञ्छिन्नभिन्नमर्माणो वैक्लव्यं परमं गताः ॥३७॥

श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन! ये शूरवीर राजा, इस युद्ध में अपनी विजय प्राप्त करके बड़ा यश चाह रहे थे, जो तेरे बाणों से आहत होकर आज पृथ्वी में सो रहे हैं। इनके सारे शस्त्र और आभूषण इधर उधर बिखर रहे हैं और रथ, अश्व और हाथी मरे पड़े हैं, इनके सारे मर्म स्थान कटे पड़े हैं, जिनसे ये बड़े ही व्याकुल हो रहे हैं ॥३६-३७॥

ससत्त्वा गतसत्त्वाश्च प्रभया परमा युताः ।
सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वा नराधिपाः ॥३८॥

इन वीरों में जो मर चुके या अभी जीवित हैं, उन सबका तेज ज्यों का त्यों बना हुआ है। इनमें जो राजा मर चुके हैं, वे भी ऐसे दिखाई दे रहे हैं, जैसे अभी जीवित हों ॥३८॥

तेषां शरैः स्वर्णपुङ्खैः शस्त्रैश्च विविधैः शितैः ।
वाहनैरायुधैश्चैव सम्पूर्णां पश्य मेदिनीम् ॥३९॥

इनके सुवर्ण मूलधारी बाण, अन्य तीक्ष्ण शस्त्र, वाहन और अनेक प्रकार के आयुधों से भरी हुई इस रणभूमि को तो देखो।

वर्मभिश्चर्मभिर्हारैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
उष्णीषैर्मुकुटैः स्रग्भिश्चूडामणिभिरम्बरैः ॥४०॥
कण्ठसूत्रैरङ्गदैश्च निष्कैरपि च सप्रभैः ।
अन्यैश्चाऽभरणैश्चित्रैर्भाति भारत मेदिनी ॥४१॥

हे भारत ! कवच, चर्म, (ढाल) हार, कुण्डलों से युक्त मस्तक, पगड़ी, मुकुट, माला, चूड़ामणि, वस्त्र, कण्ठसूत्र, अङ्गद, कान्तिमान् छाती पर पड़े रहने वाले आभूषण तथा अन्य विचित्र २ भूषणों से रणभूमि भरी पड़ी है ॥४०-४१॥

अनुकर्षैरुपासङ्गैः पताकाभिर्ध्वजैस्तथा ।
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ॥४२॥
चक्रैः प्रमथितैश्चित्रैरक्षैश्च बहुधा रणे ।
युगैर्योक्त्रैः कलापैश्च धनुर्भिः सायकैस्तथा ॥४३॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च परिघैरङ्कुशैस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तूणैः शूलैः परश्वधैः ॥४४॥
प्रासैश्च तोमरैश्चैव कुन्तैर्यष्टिभिरेव च ।
शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः खड्गैः परशुभिस्तथा ॥४५॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चैव गदाभिः कुणपैस्तथा ।
सुवर्णविकृताभिश्च कशाभिर्भरतर्षभ ॥४६॥
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां भाण्डैश्च विविधैरपि ।
स्रग्भिश्च नानाभरणैर्वस्त्रैश्चैव महाधनैः ॥४७॥
अपविद्धैर्बभौ भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव शारदी ।

हे भरतर्षभ ! रथ के नीचे के काष्ठ, रथ के तूणीर, पताका, ध्वजा, रथ की छतरी के आधार, बैठने का स्थान, ईषा दण्ड, ऊंचे नीचे काष्ठ, पहिये, धुरे, जुये, जोतें, भूषणों के समूह, धनुष, बाण, हाथियों के भूषण, झूल, परिघ, अंकुश, शक्ति, भिन्दि-पाल, सैनिकों के तूणीर, परश्वध, प्रास, तोमर, कुन्त, यष्टि, शतघ्नी, भूशुण्डी, खड्ग, परशु, मुसल मुद्गर, गदा, मृतक शरीर, सुवर्ण की बनी हुई कशा, (चाबुक) हाथियों के घण्टा, अनेक प्रकार के उनके सामान, माला, अनेक आभूषण और अमूल्य वस्त्रों से सारी रणभूमि भरी पड़ी हैं। ये वस्तु कहीं ज्यों की त्यों और कहीं छिन्न-भिन्न कटी फटी पड़ी है। यह रणभूमि ऐसी प्रतीत होती है, जैसे शरद् ऋतु में आकाश, तारों से भरा हुआ प्रतीत होता है ॥४२-४७॥

पृथिव्यां पृथिवीहेतोः पृथिवीपतयो हताः ॥४८॥

पृथिवीमुपगुह्याऽङ्गैः सुप्ताः कान्तामिव प्रियाम् ।

ये राजा लोग, पृथिवीप्राप्ति के निमित्त मारे हुए पृथिवी में पड़े हैं। इन्होंने अपने अङ्गों से पृथिवी का इस तरह आलिङ्गन कर रखा है, जैसे सोती हुई अपनी कान्ता के लिपटे पड़े हों ॥४८॥

इमांश्च गिरिकूटाभान्नागानैरावतोपमान् ॥४९॥

क्षरतः शोणितं भूरि शस्त्रच्छेददरीमुखैः ।

दरीमुखैरिव गिरीन्गैरिकाम्बुपरिस्रवान् ॥५०॥

तांश्च बाणहतान्वीर पश्य निष्टनतः क्षितौ ।

पर्वत और ऐरावत हाथियों के सदृश इन हाथियों के शरीरों में से शस्त्र के काटे हुए घावों से बहुत अधिक रक्त इस भांति बह रहा है, जैसे पर्वत की गुफा के मुख से पर्वत के गैरिक आदि धातु बह २ कर निकल रहे हों। हे वीर ! तुम इनको पृथिवी पर तड़फड़ाते तो देखो-जो तुम्हारे बाणों से मारे पड़े हैं ॥४६-५०॥

हयांश्च पतितान्पश्य स्वर्णभाण्डविभूषितान् ॥५१॥
गन्धर्वनगराकारान्रथांश्च निहतेश्वरान् ।

सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित इन अश्वों को देखो तथा गन्धर्व नगर के समान विशाल इन पड़े हुए रथों पर जरा दृष्टि डालो, जिनके स्वामी मरे पड़े हैं ॥५१॥

छिन्नध्वजपताकाक्षान्विचक्रान्हतसारथीन् ॥५२॥
निकृत्तकूबरयुगान्भग्नेषान्बन्धुरान्प्रभो ।
पश्य पार्थ हयान्भूमौ विमानोपमदर्शनान् ॥५३॥

बहुत से रथों की ध्वजा, पताका और अक्ष टूट गए, पहिए छिन्न-भिन्न हो गए, सारथि मारे जा चुके, कूबर (रथ का अग्र भाग) और जुए नष्ट-भ्रष्ट हो चुके तथा ईषा और बन्धुर काष्ठ छिन्न-भिन्न हो गए हैं। हे पार्थ ! तुम विमानों के समान दिखाई देने वाले इन रथ और अश्वों को देखो-जो भूमि में पड़े हैं ॥५३॥

पत्तींश्च निहतान्वीर शतशोऽथ सहस्रशः ।
धनुर्भृतश्चर्मभृतः शयानान्रुधिरोक्षितान् ॥५४॥
महीमालिंग्य सर्वाङ्गैः पांसुध्वस्तशिरोरुहान् ।
पश्य योधान्महाबाहो त्वच्छरैर्भिन्नविग्रहान् ॥५५॥

हे वीर! इधर देखो, हजारों लाखों की संख्या में सैनिक वीर मरे पड़े हैं, जिनके शरीर पर अभी धनुष और ढ़ाल आदि ज्यों की त्यों लगी हुई हैं और जो रक्त में भीगे हुए रणभूमि में पड़े हैं। हे महाबाहो! इन वीरों ने सारे अङ्गों से पृथिवी का आलिङ्गन कर रखा है। इनके बालों में मिट्टी भरी पड़ी है। तुम अपने बाणों से भिन्न शरीर धारी इन योद्धाओं को दृष्टि उठाकर तो जरा देखो ॥५४-५५॥

निपातितद्विपरथवाजिसंकुलमसृग्वसापिशितसमृद्धकदमम् ।
निशाचरश्ववृकपिशाचमोदनं महीतलं नरवर पश्य दुर्दशम्

हे नरश्रेष्ठ! गिरे हुए हाथी, रथ और अश्वों से व्याप्त, रक्त, वसा, (चर्बी) मांस की कीचड़ से दुर्गम, राक्षस, कुत्ते, भेड़िये और पिशाचों के आनन्द देने वाले इस दुर्दर्शनीय रणाङ्गण को नेत्र उठाकर देखो ॥५६॥

इदं महत्त्वय्युपपद्यते प्रभो रणाजिरे कर्म यशोभिवर्धनम् ।
शतक्रतौ चापि च देवसत्तमे महाहवे जघ्नुषि दैत्यदानवान्

हे प्रभो! इस महायुद्ध में तुम्हारे यश का बढ़ाने वाला यह महान् कर्म तुम्हारे योग्य ही है, जैसे-महारण में दैत्य दानवों को मारने वाले देवराज इन्द्र का कर्म उसके बल के अनुरूप होता हो।

सञ्जय उवाच—

एवं सन्दर्शयन्कृष्णो रणभूमिं किरीटिने ।
स्वैः समेतः समुदितैः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥५८॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्ण, किरीटधारी अर्जुन को रणभूमि का दर्शन कराते हुए, उत्साहसम्पन्न अपने वीरों को साथ लिए हुए आगे बढ़े और अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाने लगे ॥५८॥

स दर्शयन्नेव किरीटिनेऽरिहा जनार्दनस्तामरिभूमिमञ्जसा ।
अजातशत्रुं समुपेत्य पाण्डवं निवेदयामास हतं जयद्रथम्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वण्यष्टचत्वारिं-
शदधिकशततमोऽध्यायः ॥२४८॥

शत्रु-नाशक जनार्दन कृष्ण, बड़े वेग से शत्रुओं के नाश से सुसम्पन्न, भूमि को अर्जुन के लिए दिखाते हुए, पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर के पास पहुंचे और उनको राजा जयद्रथ के मार लेने की शुभ सूचना सुनाई ॥५६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में 'रणभूमि के दर्शन के वर्णन का एक सौ अड़तालीसवां अध्याय समाप्त हुआ



एक सौ उनंचासवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
ववन्दे स प्रहृष्टात्मा हते पार्थेन सैन्धवे ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! अब धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर के पास भगवान् श्रीकृष्ण पहुंच चुके। वे राजा जयद्रथ के मार लेने से बड़े ही प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने वहां जाकर धर्मराज को वन्दना की ॥१॥

दिष्ट्या वर्धसि राजेन्द्र हतशत्रुर्नरोत्तम ।
दिष्ट्या निस्तीर्णवांश्चैव प्रतिज्ञामनुजस्तव ॥२॥

हे राजेन्द्र ! आज बड़े आनन्द का अवसर है, जो तुम अपने शत्रुओं के मार लेने से वृद्धि को प्राप्त हो रहे हो। हे नरोत्तम ! तुम्हारा लघु भ्राता अर्जुन राजा जयद्रथ के मार लेने की प्रतिज्ञा को पार कर चुका-यह भी बड़ी अच्छी बात हुई है ॥२॥

स त्वेवमुक्तः कृष्णेन हृष्टः परपुरञ्जयः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत ॥३॥
पर्यष्वजत्तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।

हे भारत ! इतना श्रीकृष्ण के मुख से निकलते ही शत्रु-विजयी राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और एकदम रथ से कूद पड़े। इनकी आंखों में आनन्द के आंसू भर आये और इसने श्रीकृष्ण और अर्जुन की गाढ़ी तरह से गोदी भर ली ॥३॥

प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम् ॥४॥
अब्रवीद्वासुदेवं च पाण्डवं च धनञ्जयम् ।

हे राजन् ! कमल के समान कान्तिधारी अपने शुभ मुख को पोंछ कर धर्मराज, श्रीकृष्ण और पाण्डु-पुत्र अर्जुन से इस प्रकार कहने लगे ॥४॥

प्रियमेतदुपश्रुत्य त्वत्तः पुष्करलोचन ॥५॥
नाऽन्तं गच्छामि हर्षस्य तितीर्षुरुदधेरिव ।

हे कमललोचन ! मैं तुम्हारे मुख से यह प्रिय वृत्तान्त सुनकर हर्ष के समुद्र में तैरता हुआ उसका पार नहीं पा रहा हूं ॥५॥

अत्यद्भुतमिदं कृष्ण कृतं पार्थेन धीमता ॥६॥
दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ महारथौ ।

हे कृष्ण ! अर्जुन ने बड़ा ही अद्भुत कार्य कर दिखाया है। आज तुम दोनों महारथी अपनी प्रतिज्ञा का उद्धार कर चुके-यह देखकर मेरे हर्ष का अन्त नहीं होता है ॥६॥

दिष्ट्या विनिहतः पापः सैन्धवः पुरुषाधमः ॥७॥
कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिर्महती प्रतिपादिता ।
त्वया गुप्तेन गोविन्द घ्नता पापं जयद्रथम् ॥८॥
किं तु नाऽत्यद्भुतं तेषां येषां नस्त्वं समाश्रयः ।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥९॥
सर्वलोकगुरुर्येषां त्वं नाथो मधुसूदन ।

हे कृष्ण ! पुरुषाधम राजा जयद्रथ मारा गया-जिसका मुझे बड़ा ही आनन्द है। तुमने यह कार्य करके मेरी प्रीति को बहुत ही बढ़ा दिया है। हे गोविन्द ! यह सब कुछ तुमसे सुरक्षित अर्जुन ने राजा जयद्रथ को मारते हुए किया है। जिनके तुम आश्रय हो जाते हो, उनके लिए यह सब कुछ अद्भुत नहीं रहजाता है। इस दशा में हमारी विजय में भी क्या आश्चर्य हो सकता है।

हे मधुसूदन ! तीनों लोकों में उनको कोई काम कठिन नहीं रह जाता है, जिनके सब लोक में पूज्य आप स्वामी होते हो ॥७-६॥

त्वत्प्रसादाद्धि गोविन्द वयं जेष्यामहे रिपून् ॥१०॥
स्थितः सर्वात्मना नित्यं प्रियेषु च हितेषु च ।

हे गोविन्द ! मैं तुम्हारे अनुग्रह से सारे शत्रुओं को जीत लूंगा, क्योंकि तुम सब तरह से हमारे प्रिय और हित में स्थित हो रहे हो ।

त्वां चैवाऽस्माभिराश्रित्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ॥११॥
सुरैरिवाऽसुरवधे शक्रं शक्रानुजाऽऽहवे ।

हे इन्द्र के अनुज ! कृष्ण ! जैसे-देवता लोग, देवासुर संग्राम में इन्द्र का अवलम्बन लेकर युद्ध में प्रवृत्त हो जाता है, वैसे ही हमने भी तुम्हारा अवलम्बन लेकर इस युद्ध का आरम्भ किया है ॥११॥

असम्भाव्यमिदं कर्म देवैरपि जनार्दन ॥१२॥
त्वद्बुद्धिबलवीर्येण कृतवानेष फाल्गुनः ।

हे जनार्दन ! यह काम तो देवों से भी असम्भव था, उसे तुम्हारे बल, बुद्धि और वीर्य के आश्रय से अर्जुन ने सम्पादित कर लिया है ॥१२॥

बाल्यात्प्रभृति ते कृष्ण कर्माणि श्रुतवानहम् ॥१३॥
अमानुषाणि दिव्यानि महान्ति च बहूनि च ।

हे कृष्ण ! तुमने बचपन से लेकर आज तक बहुत से बड़े २ कार्य किये हैं, जिनको मनुष्य नहीं कर सकते हैं । हम उनको देखते और सुनते आ रहे हैं ॥१३॥

तदैवाऽज्ञासिषं शत्रून्हतान्प्राप्तां च मेदिनीम् ॥१४॥
त्वत्प्रसादसमुत्थेन विक्रमेणाऽरिसूदन ।

हे अरिसूदन ! जब तुमने अनुग्रह करके अपने बल-विक्रम का प्रदर्शन किया, हमने तो उसी समय समझ लिया, कि हम शत्रुओं को मार चुके और पृथ्वी प्राप्त कर चुके ॥१४॥

सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा दैत्यान्सहस्रशः ॥१५॥
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश जगत्स्थावरजङ्गमम् ।

हे हृषीकेश ! तुम्हारे अनुग्रह से ही सहस्रों दैत्यों को मार कर इन्द्र भी चराचर जगत् का स्वामी होता है ॥१५॥

स्ववर्त्मनि स्थितं वीर जपहोमेषु वर्तते ॥१६॥
एकार्णवमिदं पूर्वं सर्वमासीत्तमामयम् ।
त्वत्प्रसादान्महाबाहो जगत्प्राप्तं नरोत्तम ॥१७॥

हे वीर ! तुम्हारी कृपा से ही यह जगत् अपने २ मार्ग में चलता और जप होम करता रहता है । यह एक समुद्र की भांति अन्धकार से भरा हुआ पूर्वकाल में था । हे महाबाहो ! नरोत्तम ! यह आपके अनुग्रह से ही प्रजा ने प्राप्त किया अर्थात् व्यवहार योग्य हुआ है ॥१६-१७॥

स्रष्टारं सर्वलोकानां परमात्मानमव्ययम् ।
ये पश्यन्ति हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥१८॥

जो तुम हृषीकेश को सब लोक के स्रष्टा, परमात्मा और अव्यय जानते हैं, वे कभी मोह को प्राप्त नहीं होते ॥१८॥

पुराणं परमं देवं देवदेवं सनातनम् ।
ये प्रपन्नाः सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥१९॥

जो मनुष्य सबसे प्राचीन देवों के भी देव, परमात्मस्वरूप, सनातन आपको जानकर आपकी शरण में आते हैं-उनको कभी मोह नहीं हो सकता है ॥१९॥

अनादिनिधनं देवं लोककर्तारमव्ययम् ।
ये भक्तास्त्वां हृषीकेश दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥२०॥

हे हृषीकेश ! जो तुमको अनादि और अनन्त लोक के कर्ता अव्यय पुरुष जानते हैं, वे तेरे भक्त बड़े कठिन संकटों को भी पार कर जाते हैं ॥२०॥

परं पुराणं पुरुषं पराणां परमं च यत् ।
प्रपद्यतस्तत्परमं परा भूतिर्विधीयते ॥२१॥

जो परम पुरुष, सनातन और पर से भी परे है, उस परमदेव को प्राप्त करने वाले मनुष्य परम ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं। वह परमदेव तेरा ही स्वरूप है ॥२१॥

गायन्ति चतुरो वेदा यश्च वेदेषु गीयते ।
तं प्रपद्य महात्मानं भूतिमश्नाम्यनुत्तमाम् ॥२२॥

जिसका चारों वेद गान करते हैं और जो वेदों में गाया जाता है, उस महात्मा को पाकर हम भी आज कृतार्थ होकर परम कल्याण का उपभोग कर रहे हैं ॥२२॥

परमेश परेशेश तिर्यगीश नरेश्वर।
सर्वेश्वरेश्वरेशेश नमस्ते पुरुषोत्तम ॥२३॥

आप परम ईश्वर, देवों के भी देव, चराचर जगत् के स्वामी और नारायण हो। सारे ईश्वरों के भी ईश्वर पुरुषोत्तम हो, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥२३॥

त्वमीशेशेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व माधव।
प्रभवाप्यय सर्वस्य सर्वात्मन्पृथुलोचन ॥२४॥

हे माधव ! तुम ईश हो और ऐश्वर्यशालियों के भी ईश्वर हो। आपका यश बढ़ता रहे। तुम उत्पत्ति और प्रलय सब के स्वामी, सर्वात्मा और कमललोचन हो ॥२४॥

धनञ्जयसखा यश्च धनञ्जयहितश्च यः।
धनञ्जयस्य गोप्ता तं प्रपद्य सुखमेधते ॥२५॥

तुम अर्जुन के सखा और अर्जुन के हित में तत्पर हो। तुम ही अर्जुन रक्षक हो-तुमको प्राप्त करके ही मनुष्य सुख पा सकता है ॥२५॥

मार्कण्डेयः पुराणर्षिश्चरितज्ञस्तवाऽनघ।
माहात्म्यमनुभावं च पुरा कीर्तितवान्मुनिः ॥२६॥

हे अनघ ! तुम्हारे चरित को तो मार्कण्डेय मुनि जानता है, क्योंकि वे ही सब में प्राचीन ऋषि हैं। उन्हीं मुनि ने पूर्वकाल में तुम्हारे माहात्म्य और तुम्हारी कीर्ति का गान किया है ॥२६॥

असितो देवलश्चैव नारदश्च महातपाः ।
पितामहश्च मे व्यासस्त्वामाहुर्विधिमुत्तमम् ॥
त्वं तेजस्त्वं परं ब्रह्म त्वं सत्यं त्वं महत्तपः ॥२७॥

असित, देवल, महातपस्वी नारद और मेरे पितामह व्यास ने तुम्हें ही उत्तम विधि (याज्य) बताया है। तुम ही तेज, परब्रह्म, सत्य और महान् तप हो। तुम ही कल्याण, उत्तम यश और जगत के कारण माने गए हो ॥२७॥

त्वं श्रेयस्त्वं यशश्चाऽग्र्यं कारणं जगतस्तथा ।
त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२८॥
प्रलये समनुप्राप्ते त्वां वै निविशते पुनः ।

तुमने ही इस सारे स्थावर जंगम जगत को रचा है। जब प्रलयकाल आवेगा-तब तुम में ही यह लीन हो जावेगा ॥२८॥

अनादिनिधनं देवं विश्वस्येशं जगत्पते ॥२९॥
धातारमजमव्यक्तमाहुर्वेदविदो जनाः ।

हे जगत्पते ! जनार्दन ! आपको ही वेद के ज्ञाता ब्राह्मण, अनादि और अनन्त देव मानते हैं। तुम सारे विश्व के स्वामी धाता, अज और अव्यक्त हो ॥२९॥

भूतात्मानं महात्मानमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥३०॥
अपि देवा न जानन्ति गुह्यमाद्यं जगत्पतिम् ।

तुम ही भूतों के आत्मा, महात्मा, अनन्त और विश्वव्यापी हो। आप जगत्पति, गुह्य आदि पुरुष को देव गण भी नहीं जान पाते हैं ॥३०॥

नारायणं परं देवं परमात्मानमीश्वरम् ॥३१॥

ज्ञानयोनिं हरिं विष्णुं मुमुक्षूणां परायणम् ।

परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परं च यत् ॥३२॥

एवमादिगुणानां ते कर्मणां दिवि चेह च ।

अतीतभूतभव्यानां संख्याताऽत्र न विद्यते ॥३३॥

सर्वतो रक्षणीयाः स्म शक्रेणेव दिवौकसः ।

यस्त्वं सर्वगुणोपेतः सुहृन्न उपपादितः ॥३४॥

तुम नारायण, परमदेव, परमात्मा, ईश्वर ज्ञान के कारण हरि, विष्णु मोक्ष के इच्छुकों के रक्षक, अत्यन्त प्राचीन, पुराण पुरुष और परसे भी पर हो। भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालों में तुम्हारे गुणों की संख्या करने वाला कोई नहीं है। तुम हमारी सब तरह ऐसे रक्षा करते रहो-जैसे देवों की इन्द्र करता रहता है। तुम सर्व गुण सम्पन्न हो। हमने तुमको अपना सुहृद् बना कर स्वीकार किया है ॥३१-३४॥

इत्येवं धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशाः ।

अनुरूपमिदं वाक्यं प्रत्युवाच जनार्दनः ॥३५॥

हे राजन्! जब महायशस्वी भगवान् श्रीकृष्ण से धर्मराज ने इतना कहा-तो श्रीकृष्ण, अपने अनुरूप धर्मराज से यह वचन बोले

भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च ।

साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः ॥३६॥

हे धर्मराज ! तुमने जो बहुत उग्र तप किया है तथा तुम महात्मा और साधु प्रकृति हो-इसी से तुमने आज पापी जयद्रथ का वध देखा है ॥३६॥

अयं च पुरुषव्याघ्र त्वदनुध्यानसंवृतः ।
हत्वा योधसहस्राणि न्यहञ्जिष्णुर्जयद्रथम् ॥३७॥

हे पुरुषव्याघ्र ! यह अर्जुन भी तुम्हारे ध्यान में परायण था, तो भी इसने सहस्रों योधाओं को मार २ कर बिछा दिया और अन्त में राजा जयद्रथ को भी मार लिया ॥३७॥

कृतित्वे बाहुवीर्ये च तथैवाऽसम्भ्रमेऽपि च ।
शीघ्रतामोघबुद्धित्वे नाऽस्ति पार्थसमः क्वचित् ॥३८॥

अस्त्रविद्या में कृती (फुर्तीला) बाहु वीर्य में अद्वितीय, अर्जुन के समान हमने कोई नहीं देखा। यह बिल्कुल नहीं घबराने वाला, शीघ्रकारी और निष्फल नहीं जाने वाली बुद्धि रखता है ॥३८॥

तदयं भरतश्रेष्ठ भ्राता तेऽद्य यदर्जुनः ।
सैन्यक्षयं रणे कृत्वा सिन्धुराजशिरोऽहरत् ॥३९॥

हे भरतश्रेष्ठ ! यह तुम्हारा भ्राता अर्जुन ही है, जिसने रणाङ्गण में कौरवों की भारी सेना का विध्वंस उड़ाकर राजा जयद्रथ का शिर भी धड़ से पृथक् कर दिया ॥३९॥

ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशाम्पते ।
प्रमृज्य वदनं तस्य पर्याश्वासयत प्रभुः ॥४०॥

हे विशाम्पते ! अब धर्मसुत, युधिष्ठिर ने अर्जुन का आलिङ्गन किया और उसके मुख के पसीने पोंछकर उसे आश्वासन दिया ।

अतीव सुमहत्कर्म कृतवानसि फाल्गुन ।
असह्यं चाऽविषह्यं च देवैरपि सवासवैः ॥४१॥

हे फाल्गुन ! तुमने बहुत ही महान् कर्म कर दिखाया है, जिसको इन्द्र के सहित देवता भी नहीं कर सकते थे। इसके सहन करने में तो देवगण भी असमर्थ है ॥४१॥

दिष्ट्या निस्तीर्णभारोऽसि हतारिश्चाऽसि शत्रुहन् ।
दिष्ट्या सत्या प्रतिज्ञेयं कृता हत्वा जयद्रथम् ॥४२॥

हे शत्रुहन् ! तुमने अपने भार को पूरा उतार दिया और अपने शत्रु को मार गिराया। तुमने राजा जयद्रथ को मार कर जो अपनी प्रतिज्ञा सत्य कर दिखाई-इसका मुझे बड़ा हर्ष है ॥४२॥

एवमुक्त्वा गुडाकेशं धर्मराजो महायशाः ।
परस्पर्श पुण्यगन्धेन पृष्ठे हस्तेन पार्थिवः ॥४३॥

हे राजन् ! महायशस्वी धर्मराज ने गुडाकेश अर्जुन से इतना कह कर अपने गन्ध युक्त हाथों से अर्जुन की पीठ का स्पर्श किया।

एवमुक्तौ महात्मानावुभौ केशवपाण्डवौ ।
तावब्रूतां तदा कृष्णौ राजानं पृथिवीपतिम् ॥४४॥

जब धर्मराज ने इस प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन से कहा-तो अब कृष्णार्जुन भी राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार कहने लगे ॥४४॥

तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा जयद्रथः ।
उत्तीर्णं चापि सुमहद्धार्तराष्ट्रबलं रणे ॥४५॥

हे महाभाग ! आपके कोप की वह्नि से ही पापी राजा जयद्रथ जल गया है। आपके ही अनुग्रह से हमने महान् कौरव सेना का रण में पार पाया है ॥४५॥

हन्यन्ते निहताश्चैव विनंक्ष्यन्ति च भारत ।
तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः शत्रुसूदन ॥४६॥

हे भारत ! जो कौरव मारे गये या मारे जा रहे है या मारे जावेंगे-वे सब आपके क्रोध की अग्नि में दग्ध हो रहे हैं, क्योंकि आप शत्रु-नाशक हैं ॥४६॥

त्वां हि चक्षुर्हणं वीरं कोपयित्वा सुयोधनः ।
समित्रबन्धुः समरे प्राणांस्त्यक्ष्यति दुर्मतिः ॥४७॥

हे महानुभाव ! आप तो क्रोध भरी दृष्टि से देखते ही शत्रु का नाश कर देते हो। आज तुम को ही कुपित करके दुर्मति राजा दुर्योधन, अपने मित्र और बान्धुओं के साथ रण में प्राण छोड़ेगा-इसमें सन्देह न समझो ॥४७॥

तव क्रोधहतः पूर्वं देवैरपि सुदुर्जयः ।
शरतल्पगतः शेते भीमः कुरुपितामहः ॥४८॥

हे राजन ! तुम्हारे क्रोध से हत होकर ही देवों से भी दुर्जय, कुरु पितामह भीष्म आज रणभूमि में शरशय्या पर सो रहे हैं।

दुर्लभो विजयस्तेषां संग्रामे रिपुघातिनाम् ।
याता मृत्युवशं ते वै येषां क्रुद्धोऽसि पाण्डव॥४९॥

हे पाण्डव ! धर्मराज ! जिन पर तुम कुपित हो जाते हो, वे शत्रु-घाती वीर भी हों, तो भी उनको रण में विजय प्राप्त होना दुष्कर हो जाता है तथा उनको मृत्यु के मुख में जाना पड़ता है।

राज्यं प्राणाः श्रियः पुत्राः सौख्यानि विविधानि च
अचिरात्तस्य नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि मानद ॥५०॥

हे मानद ! जिनके ऊपर तुमने कोप कर लिया, उनके राज्य, प्राण, लक्ष्मी, पुत्र और अनेक सुख क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं।

विनष्टान्कौरवान्मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान् ।
राजधर्मपरे नित्यं त्वयि क्रुद्धे परन्तप ॥५१॥

हे परन्तप ! मैं तो अब कौरवों को पुत्र, पशु और बान्धवों के साथ नष्ट हुए ही समझता हूं, जो आप राजधर्म में तत्पर होकर उन पर कुपित हो उठे हो ॥५१॥

ततो भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः ।
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविक्षतौ ॥५२॥
क्षितावास्तां महेष्वासौ पाञ्चाल्यपरिवारितौ ।

अब महाबाहु, भीम और महारथी सात्यकि, राजा युधिष्ठिर की वन्दना करके पृथिवी में बैठ गए। ये दोनों महाधनुर्धर शत्रुओं के बाणों से क्षत-विक्षत हो रहे थे। इन दोनों को पाञ्चाल वीरों ने सब ओर से घेर लिया ॥५२॥

तौ दृष्ट्वा मुदितौ वीरौ प्राञ्जली चाऽग्रतः स्थितौ ॥
अभ्यनन्दत कौन्तेयस्तावुभौ भीमसात्यकी ।

उन दोनों महारथी वीर भीम और सात्यकि को हाथ जोड़े हुए सामने खड़े हुए देखकर कुन्ती-पुत्र धर्मराज ने उनकी बहुत ही प्रशंसा की ।।५३।।

दिष्ट्या पश्यामि वां शूरौ विमुक्तौ सैन्यसागरात् ।।५४
द्रोणग्राहदुराधर्षाद्धार्दिक्यमकरालयात् ।
दिष्ट्या विनिर्जिताः संख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।।
युवां विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे ।

हे शूरवीरो ! आज तुम द्रोणरूपी ग्राह से दुराधर्ष, हृदिक-पुत्र कृतवर्मा रूपी मकर से व्याप्त, कौरवरूपी सेना समुद्र को पार कर आये-इसका तुमको धन्यवाद है । मैं तुमको देखकर बड़ा ही प्रसन्न हो रहा हूँ । तुमने रणभूमि में पृथिवी के अनेक राजाओं को जीत लिया-यह क्या थोड़े आनन्द की बात है । तुम रण में विजयी होकर आये हो-यह देखकर तो मेरे आनन्द की सीमा नहीं रही है ।।५५।।

दिष्ट्या द्रोणो जितः संख्ये हार्दिक्यश्च महाबलः ।।
दिष्ट्या विकर्णिभिः कर्णो रणे नीतः पराभवम् ।
विमुखश्च कृतः शल्यो युवाभ्यां पुरुषर्षभौ ।।५७।।

तुमने महाबली द्रोण और हृदिक-पुत्र कृतवर्मा को भी रण में पराजित कर दिया तथा कान तक धनुष खैंचकर छोड़े हुए बाणों से रण में कर्ण को पराजित किया-यह बड़े आनन्द की बात है । तुम दोनों पुरुष-प्रवीरों ने ही राजा शल्य को रण से विमुख बनाया है ।।५६-५७।।

दिष्ट्या युवां कुशलिनौ संग्रामात्पुनरागतौ ।
पश्यामि रथिनां श्रेष्ठावुभौ युद्धविशारदौ ॥५८॥

तुम दोनों कुशलता-पूर्वक संग्राम से लौट आये। युद्ध विशारद रथिश्रेष्ठ तुम दोनों वीरों को देखकर मुझे बड़ा ही हर्ष उत्पन्न हो रहा है ॥५८॥

मम वाक्यकरौ मम वीरौ गौरवयन्त्रितौ ।
सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥५६॥

तुम दोनों मेरी आज्ञा में तत्पर होकर मेरे गौरव की स्थापना के निमित्त ही रण में प्रविष्ट हुए। अब तुम कौरवसेना समुद्र को पार कर आये। इस प्रकार तुम दोनों को देखकर मुझे बहुत ही हर्ष हो रहा है ॥५६॥

समरश्लाधिनौ वीरौ समरेष्वपराजितौ ।
मम वाक्यसमौ चैव दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥६०॥

तुम युद्ध में प्रशंसा पाने वाले और युद्ध में पराजित नहीं होने वाले वीर हो। तुम दोनों ही समान रूप से मेरे वाक्य को मानने वाले हो-इस दशा में तुमको विजयी देखकर मैं-आनन्द के समुद्र में निमग्न हो रहा हूं ॥६०॥

इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन्युयुधानवृकोदरौ ।
सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ हर्षाद्बाष्पं मुमोच ह ॥६१॥

हे राजन्! पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर ने पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि और अर्जुन से इतना कह कर उनका गाढ़ालिङ्गन किया और हर्ष के आंसू छोड़ना आरम्भ किया ॥६१॥

ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद्विशाम्पते ।
पाण्डवानां रणे हृष्टं युद्धाय तु मनो दधे ॥६२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे
एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

हे विशाम्पते ! इस सारे आनन्दमय दृश्य को देखकर पाण्डवों की सेना बड़ी प्रसन्न हुई और युद्ध के लिए अत्यन्त उत्तेजित हो उठी ॥६२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में राजा युधिष्ठिर के हर्ष के वर्णन का एक सौ उनंचासवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ पचासवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सैन्धवे निहते राजन्पुत्रस्तव सुयोधनः ।
अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जब सिन्धुराज जयद्रथ मार लिया गया-तो तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, बड़ा दीन होकर रोने लगा । अब उसको शत्रु के जीतने में बड़ा ही निरुत्साह हो गया ॥१॥

दुर्मना निःश्वसन्दुष्टो भग्नदंष्ट्र इवोरगः ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रस्तेऽऽर्तिं परामगात् ॥२॥

यह दुष्ट उदास मन होकर दांत तोड़े हुए सर्प की तरह श्वास छोड़ने लगा। सारे संसार का अपराधी बना हुआ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन इस समय बड़ा ही चिन्तातुर हुआ ॥२॥

दृष्ट्वा तत्कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत्।
जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे ॥३॥
स विवर्णः कृशो दीनो बाष्पविप्लुतलोचनः।
अमन्यताऽर्जुनसमो न योद्धा भुवि विद्यते ॥४॥

जब इसने अर्जुन, भीम और सात्यकि द्वारा रण में किया हुआ अपनी सेना का बड़ा घोर विध्वंस देखा-तो इसका रंग उड़ गया। यह कृश और दीन होकर आंसूं छोड़ने लगा। अब इसको पता लगा, कि पृथ्वी पर अर्जुन के समान कोई योद्धा नहीं है ॥४॥

न द्रोणो न च राधेयो नाऽश्वत्थामा कृपो न च।
क्रुद्धस्य समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष ॥५॥

हे आर्य! अब दुर्योधन को यह प्रतीत हुआ, कि जब अर्जुन क्रुद्ध होकर रण में कूदता है, तो उसके आगे द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा या कृपाचार्य-कोई भी रण में ठहरने को पर्याप्त (काफी) नहीं है ॥५॥

निर्जित्य हि रणे पार्थः सर्वान्मम महारथान्।
अवधीत्सैन्धवं संख्ये न च कश्चिदवारयत् ॥६॥

अर्जुन ने मेरे सारे महारथियों को संग्राम में जीत कर युद्ध में सिन्धुराज जयद्रथ को जा मारा, परन्तु उसको कोई रोक नहीं सका ॥६॥

सर्वथा हतमेवेदं कौरवाणां महद्बलम् ।
न ह्यस्य विद्यते त्राता साक्षादपि पुरन्दरः ॥७॥
यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः ।
स कर्णो निर्जितः संख्ये हतश्चैव जयद्रथः ॥८॥

अब तो सब तरह से यह कौरव सेनादल विनष्ट ही समझना चाहिए, क्योंकि इसका रक्षक साक्षात् इन्द्र भी दिखाई नहीं देता है। जिस कर्ण का आश्रय लेकर रण में यह सारा शस्त्र बजाया गया, उसको भी आज रण में जीत कर अर्जुन ने राजा जयद्रथ को मार ही लिया ॥८॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य शमं याचन्तमच्युतम् ।
तृणवत्तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि ॥९॥

जब कृष्ण सन्धि के लिए मेरे पास उपस्थित हुए और मैंने जिसके बल के भरोसे पर उनको तृण के तुल्य भी न समझा-आज वही कर्ण जीत लिया गया ॥९॥

एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद् द्रोणमीक्षितुम् ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥१०॥

हे राजन्! इस प्रकार चिन्तित हुआ राजा दुर्योधन द्रोणाचार्य से मिलने को चल दिया। हे भरतर्षभ! इस समय तुम्हारा पुत्र दुर्योधन सारे जगत् का अपराधी माने जाने लगा ॥१०॥

ततस्तत्सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत् ।
परान्विजयतश्चाऽपि धार्तराष्ट्रान्निमज्जतः ॥११॥

राजा दुर्योधन ने-जो कुछ आज कौरवों का महान् विध्वंस हुआ-उसे जाकर ज्यों का त्यों द्रोणाचार्य को सुनाया और कहा, कि जो कौरव, सर्वदा शत्रुओं को जीत लिया करते थे-आज वे डूबे चले जा रहे हैं ॥११॥

दुर्योधन उवाच—पश्य मूर्धाभिषिक्तानामाचार्य कदनं महत् ।
कृत्वा प्रमुखतः शूरं भीष्मं मम पितामहम् ॥१२॥

राजा दुर्योधन बोले-हे आचार्य ! तुम इन उत्तम २ सामन्त क्षत्रियों के महान् विनाश को देखो-जिनमें सबसे अधिक शूरवीर भीष्म पितामह तक का पतन हो गया है ॥१२॥

तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः ।
पाञ्चाल्यैः सहितः सर्वैः सेनाग्रमभिवर्तते ॥१३॥

इनको मार कर शिखण्डी का मन बहुत ही उत्साह में भर गया है और अब यह विजयलोलुप अपने पञ्चालवीरों को साथ लेकर सर्वदा सेना के आगे चलता रहता है ॥१३॥

अपरश्चापि दुर्धर्षः शिष्यस्ते सव्यसाचिना ।
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥१४॥

दूसरा भी तुम्हारा शिष्य अर्जुन बड़ा दुर्धर्ष है, जिसने सात अक्षौहिणी सेना मार कर राजा जयद्रथ को भी जा मारा ॥१४॥

अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम् ।
गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम् ॥१५॥

इसके सिवा जो हमारी विजय की कामना से हमारे उपकारी मित्र आये-आज वे रण में मृत्यु पाकर परलोक चले गए-उनसे अब उऋण होने का कोई ढंग दिखाई नहीं देता है ॥१५॥

ये मदर्थं परिप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः ।
ते हित्वा वसुधैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥१६॥

जो वसुधाधिप, मुझे वसुधा दिलाने के निमित्त युद्ध में जुट रहे थे-वे सारे वसुधा के ऐश्वर्यों को छोड़कर रणभूमि में सो रहे हैं ॥१६॥

सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम् ।
अश्वमेधसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे ॥१७॥

इस प्रकार अपने मित्रों का विनाश करवा कर, मैं कायर पुरुष अभी जीवित हूं। अब तो मैं सहस्रों अश्वमेध करूं-तब भी अपने पापों से शुद्ध नहीं हो सकता हूं ॥१७॥

मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः ।
व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम् ॥१८॥

हे आचार्य ! मुझ पापी, लोभी और धर्मनाशक के निमित्त युद्ध में पराक्रम दिखाते हुए और विजय की कामना करते हुए ये सारे क्षत्रियवीर परलोक को चले गए हैं ॥१८॥

कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः ।
विवरं नाऽशकद्दातुं मम पार्थिवसंसदि ॥१९॥

हे महाभाग! आज इस क्षत्रियपरिषद् में मित्रद्रोही और आचरणहीन मुझ दुर्योधन को पृथिवी भी नहीं फट जाती, जिसमें मैं समा जाऊं ॥१६॥

योऽहं रुधिरसिक्ताङ्गं राज्ञां मध्ये पितामहम् ।
शयानं नाऽशकं त्रातुं भीष्ममायोधने हतम् ॥२०॥

क्या यह साधारण बात है, जो इन राजाओं के समूह में रुधिर से भीगे हुए, युद्ध में मारे जाते हुए, रणभूमि में पड़े हुए, भीष्म-पितामह की भी मैं रक्षा नहीं कर सकता ॥२०॥

तं मामनार्यपुरुषं मित्रद्रुहमधार्मिकम् ।
किं वक्ष्यति हि दुर्धर्षः समेत्य परलोकजित् ॥२१॥

अब परलोक में जाने वाले दुर्धर्ष भीष्मपितामह, वहां जाकर मुझ अनार्य मित्रद्रोही, अधार्मिक व्यक्ति को वे क्या कहेंगे ॥२१॥

जलसन्धं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम् ।
मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम् ॥२२॥

मेरे निमित्त प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने वाले महा-धनुर्धर राजा जलसन्ध को तो देखो-जिसको सात्यकि ने मार कर रणभूमि में सुप्त कर दिया है ॥२२॥

काम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथाऽलम्बुषमेव च ।
अन्यान्बहूंश्च सुहृदो जीवितार्थोऽद्य को मम ॥२३॥

इसी तरह काम्बोजाधिपति और राजा अलम्बुष तथा बहुत से मेरे क्षत्रियवीर मित्र आज मरे पड़े हैं-इस दशा में मेरे जीवित रहने में क्या प्रयोजन है ॥२३॥

व्यायच्छन्तो हताः शूरा मदर्थे येऽपराङ्मुखाः ।

यतमानाः परं शक्त्या विजेतुमहितान्मम ॥२४॥

शत्रुओं को जीतने में तत्पर, अत्यन्त शक्ति के साथ उद्योग करते हुए, युद्ध से पराङ्मुख नहीं होने वाले, मेरी विजय के निमित्त धनुष खैंचते हुए-ये सारे शूरवीर, आज रणभूमि में सो रहे हैं-यह कितने शोक की बात है ॥२४॥

तेषां गत्वाऽहमानृण्यमद्य शक्त्या परन्तप ।

तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनामनु ॥२५॥

हे परन्तप ! आज मैं अपनी शक्ति के अनुसार उनकी कृतज्ञता दिखाता हुआ यमुना तट पर पहुंचूंगा. और वहां उनका तर्पण करके उनसे उऋण होने का प्रयत्न करूंगा ॥२५॥

सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृतां वर ।

इष्टापूर्तेन च शपे वीर्येण च सुतैरपि ॥२६॥

निहत्य तान्रणे सर्वान्पञ्चालान्पाण्डवैः सह ।

शान्ति लब्धास्मि तेषां वा रणे गन्ता सलोकताम् ॥

हे सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ ! आचार्य ! मैं इष्टापूर्त आदि यज्ञ, अपने पराक्रम और पुत्रों की शपथ खाकर सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, कि या तो मैं सारे पाण्डवों के साथ पाञ्चालों को रण में मार कर शान्ति प्राप्त करूंगा या स्वयं मर कर वहीं पहुंचूंगा, जहां पर ये वीर-पुरुष पहुंच चुके हैं ॥२६-२७॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥२८॥

जिन्होंने मेरे निमित्त युद्ध किया और जिनको रण में अर्जुन ने मार गिराया-अब तो मैं भी उनके ही पास जाना चाहता हूं-जहां वे मेरे मित्र पहुंच चुके हैं ॥२८॥

नहीदानीं सहाया मे परीप्सन्त्यनुपस्कृताः ।
श्रेयो हि पाण्डून्मन्यन्ते न तथाऽस्मान्महाभुज ॥२६॥

हे महाभुज ! अब तो मुझे कोई ऐसा निश्चल सहायक ही दिखाई नहीं देता-जो मेरा ही विशुद्ध कल्याण चाहता हो । अब तो मेरे ही सहायक ऐसे हैं, जो जितना अच्छा पाण्डवों को मानते हैं, उतना हम लोगों को अच्छा नहीं समझते ॥२६॥

स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसन्धेन संयुगे ।
भवानुपेक्षां कुरुते शिष्यत्वादर्जुनस्य हि ॥३०॥

सत्यप्रतिज्ञ भीष्म ने रण में अपनी मृत्यु आप ही बता दी और आप भी अर्जुन को अपना प्रिय शिष्य समझ कर उसकी उपेक्षा करते रहते हो ॥३०॥

अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः ।
कर्णमेव तु पश्यामि सम्प्रत्यस्मज्जयैषिणम् ॥३१॥

यही कारण है, कि जितने भी हमारी विजय के अभिलाषी थे-वे सारे राजा मारे जा चुके । मैं तो केवल अकेले कर्ण को ही मेरी विशुद्ध विजय का अभिलाषी देखता हूँ ॥३१॥

यो हि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः ।
मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य सोऽर्थोऽवसीदति ॥२२॥

जो मूर्ख, ठीक २ स्वरूप में मित्र को न पहिचान कर छली मित्र को भी मित्र समझ बैठता है और उसे मित्र के कार्य में लगा देता है-उसका सारा स्वार्थ नष्ट हो जाता है ॥२२॥

तादृग्रूपं कृतमिदं मम कार्यं सुहृत्तमैः ।
मोहाल्लुब्धस्य पापस्य जिह्मस्य धनमीहतः ॥२३॥

उसी ढंग का कार्य मेरे बने हुए मित्र लोगों ने किया है। बात तो यह है, कि मैं मूर्ख हूं और इतना होने पर भी मैं पापी, विजय का लालच कर रहा हूं और मुझे मेरे मित्र कपटी समझते हैं और मैं ऐश्वर्य की अभिलाषा कर रहा हूं ॥२३॥

हतो जयद्रथश्चैव सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥२४॥
सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥२५॥

महापराक्रमी सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा मारा गया तथा राजा जयद्रथ भी मार लिया गया ! अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति आदि क्षत्रियवीर भी बहुत से मारे जा चुके। बस ? अर्जुन से मेरी विजय के निमित्त युद्ध करते हुए मेरे मित्र, वीर पुरुष, जहां गए हैं-मैं भी अब वहीं जाऊंगा ॥२४-२५॥

नहि मे जीवितेनाऽर्थस्तानृते पुरुषर्षभान् ।
आचार्यः पाण्डुपुत्राणामनुजानातु नो भवान् ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनानुतापे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५०॥

अब मुझे उन पुरुषश्रेष्ठ वीरों के बिना जीवन से कुछ प्रयोजन नहीं है। आप पाण्डु-पुत्रों के आचार्य रहिए और मुझे उनके पास जाने की अनुमति दीजिए ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में दुर्योधन के सन्ताप करने का एक सौ पचासवां अध्याय समाप्त हुआ

—:०:—

एक सौ इक्यावनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाचिना ।
तथैव भूरिश्रवसि किमासीद्वो मनस्तदा ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे तात ! रणाङ्गण में सव्यसाची अर्जुन द्वारा सिन्धुराज जयद्रथ तथा राजा भूरिश्रवा के मार लेने पर तुम लोगों के मनों की क्या दशा हुई ॥१॥

दुर्योधनेन च द्रोणस्तथोक्तः कुरुसंसदि ।
किमुक्तवान्परं तस्मै तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥२॥

हे सञ्जय ! कौरव सभा में दुर्योधन द्वारा द्रोणाचार्य से इतना कहने पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से क्या कहा-मुझे यह सब कुछ सुनाओ ॥२॥

सञ्जय उवाच—निष्टानको महानासीत्सैन्यानां तव भारत ।
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! सिन्धुराज जयद्रथ और राजा भूरिश्रवा के मरण को देखकर तुम्हारी सेना में बड़ा ही आर्तनाद होने लगा ॥३॥

मन्त्रितं तव पुत्रस्य ते सर्वमवमेनिरे ।
येन मन्त्रेण निहताः शतशः क्षत्रियर्षभाः ॥४॥

इन सब वीरों ने तुम्हारे पुत्र की इस चेष्टा का बहुत ही अपमान किया, जिसके कारण ये सारे क्षत्रियवीर मृत्यु को प्राप्त हुए ॥४॥

द्रोणस्तु तद्वचः श्रुत्वा पुत्रस्य तव दुर्मनाः ।
मुहूर्तमिव तद्ध्यात्वा भृशमार्त्तोऽभ्यभाषत ॥५॥

द्रोणाचार्य भी तुम्हारे पुत्र के वचन सुनकर अत्यन्त उदास हुए और थोड़ी देर कुछ विचार करके अत्यन्त दुःख से ये वचन बोले ।

द्रोण उवाच—दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरपि कृन्तसि ।
अजय्यं सततं संख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनम् ॥६॥

द्रोणाचार्य ने कहा—हे दुर्योधन ! तुम क्यों मुझे व्यर्थ वाणी के बाणों से छेदते हो-तुम तो स्वयं कहते जा रहे हो-कि रण में सव्यसाची अर्जुन सर्वथा अजेय है ॥६॥

एतेनैवाऽर्जुनं ज्ञातुमलं कौरव संयुगे ।
यच्छिखण्डयवधीद्भीष्मं पाल्यमानः किरीटिना ॥७॥

हे कौरव ! तुमको अर्जुन का पराक्रम इसी में समझ लेना चाहिए-जो अर्जुन से सुरक्षित रह कर शिखण्डी ने भीष्म को मार गिराया ॥७॥

अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देवदानवैः ।
तदैवाऽज्ञासिषमहं नेयमस्तीति भारती ॥८॥

जो भीष्म, देव और दानवों से भी अवध्य था, उसे ही अर्जुन द्वारा रण में निहत देखकर मैंने उसी समय समझ लिया था, कि अब यह कुरु-सेना जीवित नहीं बच सकती है ॥८॥

यं पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्महि ।
तस्मिन्निपतिते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे ॥९॥

जिस भीष्म को हम लोग संसार के वीर पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ समझते थे, उस शूरवीर के रण में गिर जाने पर अब कौन शेष है, जिसका हम लोग आश्रय ग्रहण करें ॥९॥

यान्स्म तान्ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि ।
अक्षान्न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥१०॥

हे तात ! शकुनि ने कौरवसभा में जो पासे फेंके-वे पासे नहीं थे-वे तो शत्रु के छोड़े हुए संतापक तीक्ष्ण बाण थे ॥१०॥

त एते घ्नन्ति नस्तात विशिखाः पार्थचोदिताः ।
तांस्तदाऽऽख्यायमानस्त्वं विदुरेण न बुद्धवान् ॥११॥

हे तात ! आज वे ही अर्जुन के छोड़े हुए तीक्ष्ण बाण हम लोगों को मार रहे हैं, जिनकी सूचना तुझे प्रथम ही विदुर ने दी थी और तू ने उन पर उस समय कुछ भी ध्यान नहीं दिया ॥११॥

यास्ता विलपतश्चाऽपि विदुरस्य महात्मनः ।
धीरस्य वाचो नाऽश्रौषीः क्षेमाय वदतः शिवाः ॥१२

महात्मा विदुर ने बड़े व्याकुल होकर तुमको सब कुछ समझाया, परन्तु तुमने उस विद्वान् के वचनों को बिल्कुल नहीं सुना, जो तुम्हारे कल्याण के लिए सब कुछ कह रहा था ॥१२॥

तदिदं वर्तते घोरमागतं वैशसं महत् ।
तस्याऽवमानाद्वाक्यस्य दुर्योधनकृते तव ॥१३॥

हे दुर्योधन ! तुम्हें जो यह महान् घोर विनाश प्राप्त हुआ है, यह सब उसी महात्मा विदुर के वाक्यों की अवहेलना का फल है।

योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम् ।
स्वमतं कुरुते मूढः स शोच्यो न चिरादिव ॥१४॥

जो मनुष्य, हितेच्छु सुहृदों के वचनों का अपमान करके अपने मन की चलाता है, वह बहुत ही शीघ्र संसार में निन्दा को प्राप्त होता है ॥१४॥

यच्च नः प्रेक्षमाणानां कृष्णामानाय्य तत्सभाम् ।
अनर्हन्तीं कुले जातां सर्वधर्मानुचारिणीम् ॥१५॥
तस्याऽधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत् ।

हे कुरुराज ! तुमने जो हम लोगों के देखते २ सब धर्मों का आचरण करने वाली कुलोत्पन्न, द्रौपदी को सभा में घसीट कर

मंगवाया, जो इसके योग्य नहीं थी, आज यह उसी अधर्म का यह महान् फल प्राप्त हुआ है ॥१५॥

नो चेत्पापं परे लोके त्वमच्छैंथास्ततोऽधिकम् ॥१६॥
यच्च तान्पाण्डवान्द्यूते विषमेण विजित्य ह।
प्राव्राजयस्तदाऽरण्ये रौरवाजिनवाससः ॥१७॥

हे गान्धारे ! परलोक में इससे अधिक तुमको अन्य पाप का फल भोगना नहीं पड़ेगा, जो तुमने छल-पूर्वक जुआ में पाण्डवों को जीत कर और मृग चर्म धारण करा कर वन में भेज दिया।

पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा।
द्रुह्येत्को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः ॥१८॥

सर्वदा धर्म का आचरण करने वाले और मेरे साथ भी पुत्रवत् व्यवहार करने वाले पाण्डवों से मुझे छोड़कर कौन नीच ब्राह्मण होगा, जो द्रोह कर रहा है ॥१८॥

पाण्डवानामयं कोपस्त्वया शकुनिना सह।
आहृतो धृतराष्ट्रस्य सम्मते कुरुसंसदि ॥१९॥
दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्धितः।
क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाऽभ्यस्तः पुनः पुनः ॥२०॥

शकुनि को साथ लेकर तुमने ही तो पाण्डवों के क्रोध को बढ़ाया है। कौरवों की सभा में धृतराष्ट्र भी तो तुम्हारे ही साथ हो गया। दुःशासन भी तुम्हारे ही साथ था और कर्ण ने भी उस

कोप के बढ़ाने में सहारा दिया। तुमने तो विदुर के वाक्य का अनादर करके तथा बार २ उनका अपमान करके उनके कोप की अग्नि को प्रचण्ड किया था ॥१६-२०॥

यत्ताः सर्वे पराभूताः पर्यवारयताऽर्जुनम् ।
सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः ॥२१॥

तुम सब महारथियों ने अर्जुन को बड़ी सावधानी से घेरा था, परन्तु सब को उसने कैसे पराजित कर दिया। तुमने तो सिन्धुराज जयद्रथ को अच्छी तरह आश्रय दिया था, फिर वह क्यों तुम्हारे बीच में ही मारा गया ॥२१॥

कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति ।
अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत् ॥२२॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! तुम्हारे महारथी कर्ण, कृप, शल्य और अश्वत्थामा के जीते रहने पर भी कैसे सिन्धुराज जयद्रथ मृत्यु को प्राप्त हो गया यह तो बताओ ॥२२॥

युध्यन्तः सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते ।
सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः ॥२३॥

इसके सिवाय सारे राजा तीक्ष्ण तेज का अवलम्बन लेकर सिन्धुराज जयद्रथ की रक्षा के निमित्त युद्ध कर रहे थे, फिर भी वह तुम लोगों के मध्य में कैसे मार लिया गया ॥२३॥

मय्येव हि विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि ।
आशंसत परित्राणमर्जुनात्स महीपतिः॥२४॥

ततस्तस्मिन्परित्राणमलब्धवति फाल्गुनात् ।
न किञ्चिदनुपश्यामि जीवितस्थानमात्मनः ॥२५॥

हे दुर्योधन ! राजा जयद्रथ तो मुझ पर और तुम पर ही अर्जुन से बचने का भरोसा रखता था, तो भी हम और तुम राजा जयद्रथको अर्जुन से न बचा सके । इस दशा में तो हम अपना भी जीवन बचता नहीं देख रहे हैं ॥२४-२५॥

मज्जन्तमिव चाऽऽत्मानं धृष्टद्युम्नस्य किल्बिषे ।
पश्याम्यहत्वा पञ्चालान्सह तेन शिखण्डिना ॥२६॥

इसके सिवा धृष्टद्युम्न और शिखण्डी को पाञ्चाल वीरों के साथ अभी तक न मार सकने के कारण मैं भी अपने को धृष्टद्युम्न के पंजे में उलझा हुआ ही देख रहा हूं ।

तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि ।
अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥२७॥

हे भारत ! जब मेरी भी यह दशा है, तो मैं तो स्वयं सन्तापित हो रहा हूं-फिर तू क्यों मुझे वृथा वाक्य बाणों से भी छेदता है । मैं तो सिन्धुराज की रक्षा का भार लेकर भी उसकी रक्षा करने में असमर्थ ही रहा ॥२७॥

सौवर्णं सत्यसन्धस्य ध्वजमक्लिष्टकर्मणः ।
अपश्यन्युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम् ॥२८॥

सब प्रकार के वीरता पूर्ण काम करने में समर्थ, सत्यप्रतिज्ञ भीष्म की सुवर्ण की ध्वजा रण में न देखकर भी तुम कैसे अपनी विजय की अभिलाषा कर रहे हो ॥२८॥

मध्ये महारथानां च यत्राऽहन्यत सैन्धवः ।
हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे ॥२९॥

अनेक महारथियों के मध्य में सिन्धुराज जयद्रथ मार लिया गया और राजा भूरिश्रवा भी मारा गया-तो अब तुम किसके बचने की आशा कर रहे हो ॥२९॥

कृप एव च दुर्धर्षो यदि जीवति पार्थिव ।
यो नाऽगात्सिन्धुराजस्य वर्त्म तं पूजयाम्यहम् ॥३०॥

हे राजन् ! अभी तक महापराक्रमी कृपाचार्य बचे हुए हैं और वे भी सिन्धुराज जयद्रथ की भांति अभी तक नहीं मारे गए-यह उनके पराक्रम की महिमा है ॥३०॥

यत्राऽपश्यं हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै ।
दुःशासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ॥३१॥

हे कुरुराज ! मैंने महापराक्रम करके दिखाने वाले भीष्म को भी मरते देखा और तुम तथा तुम्हारा लघु भ्राता दुःशासन भी इस घटना को देखते ही रह गए ॥३१॥

अवध्यकल्पं संग्रामे देवैरपि सवासवैः ।
न ते वसुन्धराऽस्तीति तदाऽहं चिन्तये नृप ॥३२॥

हे नृप ! इन्द्र को साथ लेकर देवता भी जिस भीष्म का वध नहीं कर सकते थे-उसी भीष्म के मारे जाने पर मैंने तो समझ लिया; कि अब तुमको इस पृथ्वी का राज्य नहीं मिल सकता ॥३२॥

इमानि पाण्डवानां च सृञ्जयानां च भारत।
अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यद्य भारत ॥३३॥
नाऽहत्वा सर्वपञ्चालान्कवचस्य विमोक्षणम्।
कर्तास्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥३४॥

हे भारत! यह पाण्डव और सृञ्जयों की इकट्ठी सेना मेरे ऊपर बार २ आक्रमण करती है। मैं भी सारे पाञ्चालवीरों के बिना मारे कवच नहीं खोलूंगा। हे धृतराष्ट्र-पुत्र! यह सब कुछ मैं तुम्हारे हित के लिए ही कर रहा हूं ॥३३-३४॥

राजन्ब्रूयाः सुतं मे त्वमश्वत्थामानमाहवे।
न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता। ३५॥
यच्च पित्राऽनुशिष्टोऽसि तद्वचः परिपालय।
आनृशंस्ये दमे सत्ये चाऽऽर्जवे च स्थिरो भव ॥३६॥

हे राजन्! तुम जाकर मेरे पुत्र अश्वत्थामा से कहो, कि रण में जीवन की अपेक्षा (परवाह) न करके सारे सोमकवीरों को मार गिराना, उन्हें जीते न छोड़ना। तुम्हारे पिता की यही आज्ञा है, तुम इसका अनुपालन करना और उदारता, जितेन्द्रियता, सत्य और सरलता में अपने को दृढ़ रखना ॥३५-३६॥

धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन्।
धर्मप्रधानकार्याणि कुर्याश्चेति पुनः पुनः ॥३७॥

इसी तरह धर्म, अर्थ और काम के सम्पादन में कुशल रहकर धर्म और अर्थ को कभी पीड़ित न होने देना। तुम धर्म प्रधान कार्यों को बार २ करते रहना ॥३७॥

चक्षुर्मनोभ्यां सन्तोष्या विप्राः पूज्याश्च शक्तितः ।
न चैषां विप्रियं कार्यं ते हि वह्निशिखोपमाः ॥३८॥

तुम सब के ऊपर प्रेम की दृष्टि और प्रेम पूर्ण मन रखना तथ जितनी शक्ति हो-उतना ब्राह्मणों का आदर करना। तुम इन ब्राह्मणों का कभी अनादर न करना, क्योंकि यह अग्नि की लपट के तुल्य भीषण होते हैं ॥३८॥

एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन ।
रणाय महते राजंस्त्वया वाक्यशरपीडितः ॥३९॥

हे अरिसूदन ! राजन् ! मैं तो तेरे वाणी के बाणों से आहत होकर अभी शत्रु सेना में घुस जाता हूँ और वहां जाकर घोर संग्राम मचा दूंगा ॥३९॥

त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्तोऽसि पालय ।
रात्रावपि च योत्स्यन्ते संरब्धाः कुरुसृञ्जयाः ॥४०॥

हे दुर्योधन ! यदि तुझ में शक्ति हो, तो तुम अपनी सेना की रक्षा करते रहना, क्योंकि क्रोध में भरे हुए कौरव और सृञ्जय रात में भी युद्ध कर सकते हैं ॥४०॥

एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
मुष्णन्क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामिवांऽशुमान् ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणवाक्ये
एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५१॥

हे राजन्! इतना कहकर द्रोणाचार्य, नक्षत्रों के तेजों को सूर्य की तरह सारे क्षत्रियवीरों के तेजों का अपहरण करते हुए पाण्डव और सृञ्जयों की सेना की ओर चल दिए ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व
द्रोणवाक्य का एकसौ इक्यावनवां अध्याय पूरा हुआ।

—:※:—

एक सौ बावनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः।
अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! जब राजा दुर्योधन से द्रोणाचार्य ने इतना कहा-तो राजा दुर्योधन क्रोध से उबल उठा और वह युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया ॥१॥

अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव।
पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना ॥२॥
आचार्यविहितं व्यूहं भित्त्वा देवैः सुदुर्भिदम्।
तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥३॥
मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः।

हे राजन्! अब आपके पुत्र राजा दुर्योधन ने कर्ण से कहा—हे कर्ण! तुमने देखा, कि कृष्ण की सहायता से किरीटधारी

पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने आचार्य का बनाया हुआ व्यूह छिन्न-भिन्न कर दिया, जो देवताओं से भी दुर्भेद्य था। उस समय तुम और महात्मा द्रोणाचार्य दोनों ही राजा जयद्रथ की रक्षा में तत्पर थे, परन्तु तुम सब मुख्य २ योद्धाओं के देखते २ सिन्धुराज को अर्जुन ने मार गिराया ॥२-३॥

पश्य राधेय पृथ्वीशाः पृथिव्यां प्रवरा युधि ॥४॥
पार्थेनैकेन निहताः सिंहेनेवेतरे मृगाः ।

हे राधेय ! तुम देखो, कि पृथिवी पर सर्वश्रेष्ठ योद्धा अनेक पृथिवीपतियों को अकेले अर्जुन ने इस तरह मार गिराया-जैसे सिंह साधारण वन के जन्तुओं को मार गिराता है ॥४॥

मम व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥५॥
अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह ।

मैं और महात्मा द्रोणाचार्य गाढ़ा प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु इन्द्र-पुत्र अर्जुन ने मेरी सेना को इतना नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, कि उसमें बहुत थोड़ी शेष रह सकी है ॥५॥

कथं नियच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फाल्गुनः ॥६॥
भिन्द्यात्सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे ।
प्रतिज्ञाया गतः पारं हत्वा सैन्धवमर्जुनः ॥७॥

हे कर्ण ! युद्ध में द्रोणाचार्य के प्रयत्न करने पर अर्जुन कितना ही प्रयत्न करता, परन्तु वह इस दुर्भेद्य व्यूह को नहीं भेद सकता था; परन्तु फिर भी अर्जुन रण में उस व्यूह का भेद कर

गया और सिन्धुराज को मार कर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर गया ॥६-७॥

पश्य राधेय पृथ्वीशान्पृथिव्यां पातितान्बहून् ।
पार्थेन निहतान्संख्ये महेन्द्रोपमविक्रमान् ॥८॥

हे राधेय ! इन्द्र के समान महान् पराक्रम कर दिखाने वाले अपने महीपतियों को भी रण में अर्जुन ने मार २ कर गिरा दिया है-क्या तुम इन मृत राजाओं को अपनी आंखों से नहीं देख रहे हो ?

अनिच्छतः कथं वीर द्रोणस्य युधि पाण्डवः ।
भिन्द्यात्सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानस्य शुष्मिणः ॥९॥

हे वीर ! यदि द्रोणाचार्य नहीं चाहते, तो इस युद्ध में पाण्डु-पुत्र अर्जुन, इस दुर्भेद्य दृढ़ दुर्ग को नहीं बींध सकते थे, क्योंकि द्रोणाचार्य बड़े तेजस्वी हैं। उनके प्रयत्न करने पर अर्जुन की क्या शक्ति थी-मेरी ऐसी धारणा होती है ॥९॥

दयितः फाल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः ।
ततोऽस्य दत्तवान्द्वारमयुद्धेनैव शत्रुहन् ॥१०॥

हे शत्रुहन् ! महात्मा आचार्य को अर्जुन, बहुत ही प्रिय हैं। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि अर्जुन को आचार्य ने विना युद्ध किए ही मार्ग दे दिया ॥१०॥

अभयं सिन्धुराजाय दत्वा द्रोणः परन्तपः ।
आदात्किरीटिने द्वारं पश्य निर्गुणतां मयि ॥११॥

शत्रुतापी द्रोणाचार्य ने सिन्धुराज को अभयदान देकर भी अर्जुन को मार्ग दे दिया- इसमें यह देखना है, कि आचार्य मुझे कितना निर्गुण या निरर्थक समझते हैं ॥११॥

यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान्प्रति ।
प्रस्थातुं सिन्धुराजस्य नाऽभविष्यज्जनक्षयः ॥१२॥

यदि मैं सिन्धुराज को पूर्व ही अपने घर जाने की आज्ञा दे देता-तो आज यह इतना नर-संहार नहीं होता ॥१२॥

जयद्रथो जीवितार्थी गच्छमानो गृहान्प्रति ।
मयाऽनार्येण संरुद्धो द्रोणात्प्राप्याऽभयं सखे ॥१३॥

हे सखे ! राजा जयद्रथ तो जीवन की अभिलाषा से अपने घर जाना चाहता था, परन्तु मुझ अनार्य ने द्रोणाचार्य से अभय पाकर उसे जाने से रोके रखा ॥१३॥

अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्चित्रसेनादयो रणे ।
भीमसेनं समासाद्य पश्यतां नो दुरात्मनाम् ॥१४॥

आज हम दुरात्मा खड़े २ देखते रहे और भीमसेन से युद्ध करके रण में मेरे भाई चित्रसेन आदि नष्ट हो गये ॥१४॥

कर्ण उवाच—आचार्यमाविगर्हस्त्वशक्त्याऽसौयुद्धयते द्विजः
यथाबलं यथोत्साहं त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥१५॥

कर्ण बोले—हे राजन् ! तुम आचार्य की निन्दा न करो-वे अपनी शक्ति लगा कर युद्ध कर रहे हैं। उनमें जितनी शक्ति और जितनी वीरता है, उसी के अनुसार अपने प्राणों का मोह छोड़कर वे युद्ध में तत्पर हैं ॥१५॥

यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ।
नाऽत्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथञ्चन ॥१६

यदि श्वेतवाहन अर्जुन, द्रोणाचार्य का अतिक्रमण करके कुरुसेना में घुस गया-तो इसमें आचार्य का तनिक भी दोष नहीं है।

कृती दक्षो युवा शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दिव्यास्त्रयुक्तमास्थाय रथं वानरलक्षणम् ॥१७॥
कृष्णेन च गृहीताश्वमभेद्यकवचावृतः ।
गाण्डीवमजरं दिव्यं धनुरादाय वीर्यवान् ॥१८॥
प्रवर्षन्निशितान्बाणान्बाहुद्रविणदर्पितः
यदर्जुनोऽभ्ययाद् द्रोणमुपपन्नं हि तस्य तत् ॥१९॥

अर्जुन, युद्धविद्या में बड़ा कृती, कुशल और शूरवीर है। वह युवावस्था में भरा हुआ अस्त्र चलाने में बड़ी ही शीघ्रता दिखाता है। इसका पराक्रम बड़ा ही तीव्र है। यह वानर की ध्वजा और दिव्य अस्त्रों से युक्त रथ में बैठकर अभेद्य कवच से सुसम्पन्न है। इसके रथ के अश्वों की डोर श्रीकृष्ण के हाथ में है। इसकी भुजाओं का बल इतना तीव्र है, कि यह वीर्यवान् उसमें चूर हुआ जब अजर दिव्य गाण्डीव धनुष को उठाता है और उससे तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करता हुआ आगे बढ़ता है-तो जो कुछ द्रोण कर सका वही ठीक था ॥१७-१९॥

आचार्यः स्थविरो राजञ्शीघ्रयाने तथाऽक्षमः ।
बाहुव्यायामचेष्टायामशक्तस्तु नराधिप ॥२०॥

हे राजन ! आचार्य, वृद्ध हो चुके हैं और अब वे इतना तीव्र रथ आगे बढ़ाने में असमर्थ हैं। हे नराधिप ! अब तो वे भुजाओं के बल के उद्योग में भी निर्बल होते जा रहे हैं ॥२०॥

तेनैवमभ्यतिक्रान्तः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
तस्य दोषं न पश्यामि द्रोणस्याऽनेन हेतुना ॥२१॥

इन सब बातों को सोचकर मैं समझता हूं, कि कृष्ण को सारथि बना कर श्वेत अश्वों के वाहन वाला अर्जुन अवश्य द्रोणाचार्य के आगे से निकल गया होगा। इसी हेतु से मैं द्रोणाचार्य का दोष नहीं समझता हूं ॥२१॥

अजय्यान्पाण्डवान्मन्ये द्रोणेनाऽस्त्रविदा मृधे ।
तथा ह्येनमतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ॥२२॥

अस्त्र विद्या के जानने वाले वृद्ध द्रोणाचार्य से अब पाण्डव रण में नहीं जीते जा सकते, ऐसा मेरा विचार है, इसी से द्रोण का अतिक्रमण करके श्वेताश्व वाहनधारी अर्जुन सेना में घुस गया होगा ॥२२॥

दैवादिष्टोऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते क्वचित् ।
यतो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन ॥२३॥
सैन्धवो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम् ।
परं यत्नं कुर्वतां च त्वया सार्धं रणाजिरे ॥२४॥
हत्वाऽस्माकं पौरुषं वै दैवं पश्चात्करोति नः ।
सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च ॥२५॥

हे सुयोधन ! मैं तो दैव की इच्छा के विरुद्ध होता हुआ कुछ भी कार्य नहीं देखता हूं, जो हम पूरी शक्ति लगा कर युद्ध कर रहे थे-तो भी अर्जुन ने सिन्धुराज को मार लिया-इसमें दैव ही प्रबल है। हम लोगों ने तुम्हारे साथ कितना महान् प्रयत्न किया, परन्तु दैव हमारे पुरुषार्थ का नाश करके हमको पीछे धकेल देता है। यद्यपि हम लोकनीति और पराक्रम से सब तरह चेष्टा कर रहे थे।

दैवोपसृष्टः पुरुषो यत्कर्म कुरुते क्वचित् ।
कृतं कृतं हि तत्कर्म दैवेन विनिपात्यते ॥२६॥

दैव से मारा हुआ पुरुष, जिस भी कार्य को कहीं पर करता है, उसी २ कार्य को वही २ पर दैव आकर नष्ट कर देता है॥२६॥

यत्कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
तत्कार्यमविशङ्केन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता ॥२७॥

उद्योग के साथ साथ मनुष्य जितना कर सकता है-उतना निःशङ्क होकर करे, परन्तु उसकी सिद्धि तो दैव के अधीन है।

निकृत्या वञ्चिताः पार्था विषयोगैश्च भारत ।
दग्धा जतुगृहे चापि द्यूतेन च पराजिताः ॥२८॥
राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम् ।
यत्नेन च कृतं तत्तद्दैवेन विनिपातितम् ॥२९॥

हे भारत ! हम लोगों ने उन्हें लाख के घर में जलाया, द्यूत में पराजित किया और दुर्नीति का पक्ष लेकर वन को भी भेजा। हमनें बार २ छल करके उन्हें ठगा और बाल्यावस्था में उन्हें

विष तक दे दिया। यह सब कुछ उद्योग-पूर्वक किया, परन्तु दैव ने इन सब उद्योगों को व्यर्थ कर दिया ॥२६॥

युध्यस्व यत्नमास्थाय दैवं कृत्वा निरर्थकम् ।
यततस्तव तेषां च दैवं मार्गेण यास्यति ॥३०॥

तुम दैव को निरर्थक मान कर प्रयत्न-पूर्वक युद्ध करते चलो, परन्तु तुम्हारे और उनके प्रयत्न के मार्ग में दैव बीच में अवश्य आता है ॥३०॥

न तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित् ।
दुष्कृतं तव वा वीर बुद्ध्या हीनं कुरूद्वह ॥३१॥
दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा ।
अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि ॥३२॥

हे कुरुराज ! मुझे तो कोई भी उनका सत्कर्म बुद्धि-पूर्वक किया हुआ दिखाई नहीं देता और न ऐसा कोई तुम्हारा दुष्कर्म दिखाई देता है, जो तुम्हारी दुर्बुद्धि के कारण हुआ हो । सुकर्म और दुष्कर्म इन सबका कारण भी मुझे तो दैव ही दिखाई देता है। दैव किसी कर्म से टाला नहीं जा सकता-यह सोते हुए मनुष्यों भी जागता रहता है ॥३१-३२॥

बहूनि तव सैन्यानि योधाश्च बहवस्तव ।
न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धमवर्तत ॥३३॥
तैरल्पैर्बहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः ।
शङ्के दैवस्य तत्कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥३४॥

तुम्हारी सेना में बहुत से योद्धा हैं और तुम्हारी सेना भी अधिक है-इसके विपरीत पाण्डवों की सेना में न इतने वीर हैं और न अधिक सेना ही है-इस दशा में युद्ध चल रहा है । थोड़ी संख्या में रहते हुए भी उन पाण्डवों ने तुम्हारे प्रहार-कुशल बहुत से सैनिकों को मार गिराया । मैं तो इसे दैव का कार्य ही समझता हूं, जिसने इस पुरुषार्थ को मिट्टी में मिला दिया ॥३३-३४॥

सञ्जय उवाच—एवं सम्भाषमाणानां बहु तत्तज्जनाधिप ।
पाण्डवानामनीकानि समदृश्यन्त संयुगे ॥३५॥

सञ्जय बोले—हे जनाधिप ! इस प्रकार ये दोनों बहुत सी बातें कर रहे थे, कि पाण्डवों की वहां रण में बहुत सी सेना दिखाई दी ॥३५॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
तावकानां परैः सार्धं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि पुनर्युद्धारंभे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः समाप्तं जयद्रथवधपर्व ॥१५२॥

हे राजन् ! इसी समय रथी और हाथियों का तुम्हारे सैनिकों के साथ पाण्डव सैनिकों का युद्ध होने लगा, जो तुम्हारी दुर्मन्त्रणा से उत्पन्न हुआ है ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में राजा दुर्योधन और कर्ण के वार्तालाप का एक सौ बावनवां अध्याय संपूर्ण हुआ और यहीं पर जयद्रथवधपर्व भी समाप्त हो गया ।

अथ घटोत्कचवधपर्व

एक सौ तरेपनवां अध्याय

सञ्जय उवाच-तदुदीर्णं गजानीकं बलं तव जनाधिप ।
पाण्डुसेनामतिक्रम्य योधयामास सर्वतः ॥१॥
पञ्चालाः कुरवश्चैव योधयन्तः परस्परम् ।
यमराष्ट्राय महते परलोकाय दीक्षिताः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे जनाधिप ! आपके हाथियों की उत्कट सेना सब ओर से पाण्डवसेना को घेर कर युद्ध करने लगी । पाञ्चाल और कौरव परस्पर युद्ध कर रहे थे । वे विशाल यमराष्ट्र के लिए मानो दीक्षा के लिए बैठे थे ॥१-२॥

शूराः शूरैः समागम्य शरतोमरशक्तिभिः ।
विव्यधुः समरेऽन्योन्यं निन्युश्चैव यमक्षयम् ॥३॥

शक्ति, तोमर और वाणों को लेकर शूरवीर, एक दूसरे से से भिड़ गए और उनको रण में आहत करके एक दूसरे को यमराज के घर भेजने लगे ॥३॥

रथिनां रथिभिः सार्धं रुधिरस्रावदारुणम् ।
प्रावर्त्तत महद्युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ॥४॥

एक रथी दूसरे रथी से भिड़ गया, जिनके रुधिर का प्रवाह बह निकला। इस प्रकार एक दूसरे को मारते हुए उनमें परस्पर घोर संग्राम होने लगा ॥४॥

वारणाश्च महाराज समासाद्य परस्परम्।
विषाणैर्दारयामासुः सुसंक्रुद्धा मदोत्कटाः ॥५॥

हे महाराज ! मदोत्कट हाथी, क्रोध में भरे हुए थे-वे एक दूसरे के सन्मुख पहुंच कर अपने २ दांतों से एक दूसरे को चीरने लगे ॥५॥

हयारोहान्हयारोहाः प्रासशक्तिपरश्वधैः।
बिभिदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥६॥

हे राजन् ! इस घोर संग्राम में अपने २ महान् यश की लालसा में फंसे हुए अश्वारोही वीर, प्रास, शक्ति और परशु लेकर विरोधी अश्वारोहियों पर टूट पड़े ॥६॥

पत्तयश्च महाबाहो शतशः शस्त्रपाणयः।
अन्योन्यमार्दयन्राजन्नित्यं यत्ताः पराक्रमे ॥७॥

हे महाबाहो ! जो पैदल सैनिक, नित्य अपने पराक्रम में सावधान रहते थे, वे शस्त्र हाथों में लेकर सैकड़ों की संख्या में एक दूसरे विरोधी सैनिक से भिड़ कर उन्हें आहत करने लगे।

गोत्राणां नामधेयानां कुलानां चैव मारिष।
श्रवणाद्धि विजानीमः पञ्चालान्कुरुभिः सह ॥८॥

हे आर्यगुणसम्पन्न ! इस समय पञ्चाल और कौरवों का इतना घोर संग्राम हो रहा था कि उनको पहचाना भी नहीं जा सकता था, परन्तु जब उनके कुल गोत्र और नाम का उच्चारण सुनते थे, तब उनकी पहचान हो जाती थी ॥८॥

तेऽन्योन्यं समरे योधाः शरशक्तिपरश्वधैः ।
प्रैषयन्परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥६॥

ये वीर, बाण, शक्ति और परश्वध से रण में एक दूसरे को परलोक भेज रहे थे-तो भी ये रण में निर्भीक भाव से विचरते थे ।

शरा दश दिशो राजंस्तेषां मुक्ताः सहस्रशः ।
न भ्राजन्ते यथातत्त्वं भास्करेऽस्तंगतेऽपि च ॥१०॥

हे राजन् ! अब सूर्य छुप चुका था, इससे इनके छोड़े हुए सहस्रों बाण, दशों दिशाओं में छाये हुए भी ठीक २ चमकते हुए दिखाई नहीं देते थे ॥१०॥

तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
दुर्योधनो महाराज व्यगाहत तद्बलम् ॥११॥

हे भरतश्रेष्ठ ! महाराज ! इस प्रकार पाण्डववीर युद्ध कर रहे थे-तो उन्हें देखकर राजा दुर्योधन, उनकी सेना में घुस गया।

सैन्धवस्य वधेनैव भृशं दुःखसमन्वितः ।
मर्तव्यमिति सञ्चिन्त्य प्राविशच्च द्विषद्बलम् ॥१२॥

राजा दुर्योधन, सिन्धुराज जयद्रथ की मृत्यु से अत्यन्त दुखी हो रहे थे । इन्होंने भी इस समय अपने मरण का निश्चय कर लिया और क्रोध के साथ शत्रु सेना में प्रवेश किया ॥१२॥

नादयन्रथघोषेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
अभ्यवर्त्तत पुत्रस्ते पाण्डवानामनीकिनीम् ॥१२॥

हे राजन्! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने अपने रथ की ध्वनि से सारी रणभूमि को गुंजा सा दिया और पृथ्वी कंपायमान सी कर दी। इस प्रकार करते हुए राजा दुर्योधन ने प्रवेश किया ॥१३॥

स सन्निपातस्तुमुलस्तस्य तेषां च भारत ।
अभवत्सर्वसैन्यानामभावकरणो महान् ॥१४॥

हे भारत! इस समय तुम्हारी और पाण्डवसेना में महाघोर संग्राम हुआ। सारी सेना एक दूसरे से भिड़ गई, जिसमें वीरों का अभाव होने लगा ॥१४॥

यथा मध्यन्दिने सूर्यं प्रतपन्तं गभस्तिभिः।
तथा तव सुतं मध्ये प्रतपन्तं शरार्चिभिः ॥१५॥
न शेकुर्भ्रातरं युद्धे पाण्डवाः समुदीक्षितुम् ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥१६॥

हे राजन्! जैसे मध्याह्न काल में सूर्य अपनी किरणों से इतना प्रदीप्त हो उठता है, कि उसे कोई देख भी नहीं सकता, इसी तरह राजा दुर्योधन भी अपने छोड़े हुए बाणों की किरणों से व्याप्त था, जिससे पाण्डव, देखने में भी समर्थ न हो सके। ये इस समय शत्रु के जीतने में अनुत्साहित होकर भाग निकले ॥१५-१६॥

पर्यधावन्त पञ्चाला वध्यमाना महात्मना ।
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥१७॥

महावीर धनुर्धारी तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन द्वारा चमकते हुए सुवर्ण मूलधारी बाणों से आहत किये गए पञ्चाल वीर, रण छोड़कर चारों ओर भागने लगे ॥१७॥

अर्द्यमानाः शरैस्तूर्णं न्यपतन्पाण्डुसैनिकाः ।
न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्तु तावकाः ॥१८॥
यादृशं कृतवान्राजा पुत्रस्तव विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! राजा दुर्योधन के बाणों से क्षत-विक्षत हुए पाण्डव सैनिक, लटपट होकर गिरने लगे । राजा दुर्योधन ने इतना घोर संग्राम किया, जैसा अभी तक तुम्हारे कोई महारथी नहीं कर पाये थे ॥१८॥

पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे ॥१९॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्फुल्लपङ्कजा ।

हे राजन ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने पाण्डवों की सेना को इस समय इस तरह कुचल डाला-जैसे खिले हुए कमल पुष्प से युक्त कमलनियों को सब ओर हाथी कुचल डालता है ॥१९॥

क्षीणतोयाऽनिलार्काभ्यां हतत्विडिव पद्मिनी ॥२०॥
बभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य तेजसा ।

हे भरतर्षभ ! वायु और सूर्य द्वारा जल सुखाने देने पर जैसे कमलिनी की कान्ति फीकी पड़ जाती है, उसी तरह तुम्हारे पुत्र के तेज से पाण्डवों की सेना कान्ति हीन हो गई ॥२०॥

पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत ॥२१॥

भीमसेनपुरोगास्तु पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।

हे भारत ! जब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन द्वारा पाण्डवसेना का विध्वंस सुना-तो भीमसेन को अग्रगामी करके पञ्चालवीर दौड़े ।

स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः ॥२२॥

विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ।

धृष्टद्युम्नं च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ॥२३॥

केकयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ।

सात्वतं पञ्चभिर्विध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥२४॥

घटोत्कचं च समरे विध्वा सिंह इवाऽनदत् ।

अब राजा दुर्योधन ने भीमसेन के दश, माद्री-पुत्र नकुल और सहदेव के तीन तीन. विराट् और द्रुपद के छः, शिखण्डी के सौ, धृष्टद्युम्न के सत्तर, धर्मराज युधिष्ठिर के सात तथा केकय और चेदी वीरों के बहुत से बाण मार दिए। दुर्योधन ने सात्वतवीर सात्यकि के पांच और द्रौपदी पुत्रों के तीन २ बाण मारे एवं घटोत्कच को घायल करके उसने सिंह की भांति गर्जना की ॥२४॥

शतशश्चाऽपरान्योधान्सद्विपांश्च महारणे ॥२५॥

शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।

इस संग्राम में राजा दुर्योधन ने प्रजा का काल की तरह पाण्डव सेना का संहार किया। उसने बहुत से उग्र बाणों से

पाण्डवों के सैंकड़ों हाथियों के सहित योधाओं को मार गिराया ।

सा तेन पाण्डवी सेना वध्यमाना शिलीमुखैः ॥२६॥
तव पुत्रेण संग्रामे विदुद्राव नराधिप ।

हे नराधिप ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन द्वारा अपने तीक्ष्ण बाणों से मारी हुई पाण्डव सेना रण में ठहर नहीं सकी और वह भाग निकली ॥२६॥

तं तपन्तमिवाऽऽदित्यं कुरुराजं महाहवे ॥२७॥
नाऽशकन्वीक्षितुं राजन्पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।

हे राजन् ! इस घोर युद्ध में अपने तेज से देदीप्यमान कुरुराज दुर्योधन को मध्याह्न-काल के सूर्य की तरह, पाण्डवों के सैनिक देखने को भी समर्थ नहीं हो सके ॥२७॥

ततो युधिष्ठिरो राजा कुपितो राजसत्तम ॥२८॥
अभ्यधावत्कुरुपतिं तव पुत्रं जिघांसया ।

हे राजसत्तम ! इस ढंग को देखकर राजा युधिष्ठिर जल उठा और वह तुम्हारे पुत्र कुरुराज दुर्योधन के मारने की इच्छा से उस पर बुरी तरह झपटा ॥२८॥

तावुभौ युधि कौरव्यौ समीयतुररिन्दमौ ॥२९॥
स्वार्थहेतोः पराक्रान्तौ दुर्योधनयुधिष्ठिरौ ।

हे राजन् ! इस युद्ध में अपने २ स्वार्थ को लेकर दोनों अरिमर्दन, अत्यन्त पराक्रमी, कुरुवंशोत्पन्न राजा युधिष्ठिर और दुर्योधन, बड़े वेग से भिड़ गए ॥२९॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३०॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं ध्वजं चिच्छेद चेषुणा ।

अब राजा दुर्योधन ने क्रुद्ध होकर नतपर्वधारी दश बाणों से धर्मराज को बींध दिया और एक बाण छोड़कर उसकी ध्वजा को काट गिराया ॥३०॥

इन्द्रसेनं त्रिभिश्चैव ललाटे जघ्निवान्नृप ॥३१॥
सारथिं दयितं राज्ञः पाण्डवस्य महात्मनः ॥

हे नृप ! राजा दुर्योधन ने महावीर राजा युधिष्ठिर के अत्यन्त प्रिय सारथि इन्द्रसेन के मस्तक में भी तीन बाण मार कर उसे व्याकुल कर दिया ॥३१॥

धनुश्च पुनरन्येन चकर्ताऽस्य महारथः ॥३२॥
चतुर्भिश्चतुरश्चैव बाणैर्विव्याध वाजिनः ।

इसी तरह एक और बाण छोड़कर महारथी दुर्योधन ने धर्मराज का धनुष काट डाला तथा चार बाण छोड़कर उनके चारों अश्वों को बुरी तरह क्षत-विक्षत कर दिया ॥३२॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धो निमेषादिव कार्मुकम् ॥३३॥
अन्यदादाय वेगेन कौरवं प्रत्यवारयत् ।

अब राजा युधिष्ठिर भी, क्रोध से उबल उठा-उसने क्षण भर में ही दूसरा धनुष उठा लिया और बड़े वेग से कुरुराज दुर्योधन पर आक्रमण किया ॥३३॥

तस्य तान्निघ्नतः शत्रून्रुक्मपृष्ठं महद्धनुः ॥३४॥
भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद मारिष ।
विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शितैः शरैः ॥३५॥
मर्म भित्त्वा तु ते सर्वे संलग्नाः क्षितिमाविशन् ।

हे आर्य ! जब राजा दुर्योधन, अपने शत्रुओं को मार रहा था, तो उसी समय धर्मराज युधिष्ठिर ने राजा दुर्योधन के सुवर्ण की पीठ वाले धनुष के अपने दो बाणों से तीन टुकड़े कर दिए और अच्छी तरह तीक्ष्ण दश बाण छोड़कर इसको बींध डाला। वे उसके मर्म स्थान को चीर कर रक्त में भीगे हुए ही पृथ्वी में घुस गए ॥३४-३५॥

ततः परिवृता योधाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥३६॥
वृत्रहत्यै यथा देवाः परिवव्रुः पुरन्दरम् ।

अब पाण्डवों के अनेक वीर आ पहुंचे और उन्होंने राजा युधिष्ठिर को इस तरह सुरक्षित कर लिया-जैसे वृत्रासुर के वध के समय देवों ने इन्द्र को घेर लिया था ॥३६॥

ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रस्य मारिष ।
शरं च सूर्यरश्म्याभमत्युग्रमनिवारणम् ॥३७॥
हा हतोऽसीति राजानमुक्त्वाऽमुञ्चद्युधिष्ठिरः ।
स तेनाऽऽकर्णमुक्तेन विद्धो बाणेन कौरवः ॥३८॥
निषसाद रथोपस्थे भृशं सम्मूढचेतनः ।

हे आर्य ! अब राजा युधिष्ठिर ने तुम्हारे पुत्र के ऊपर सूर्य की किरणों के समान अत्यन्त उग्र, निवृत्त नहीं होने वाले बाण को छोड़ा और कहा-ले अब मारा गया। कान तक खैंच कर छोड़े हुए उस बाण से कुरुराज बड़ा आहत हुआ और वह अचेत होकर अपने रथ के मध्य में चुप चाप बैठ गया ॥३७-३८॥

ततः पाञ्चाल्यसेनानां भृशमासीद्रवो महान् ॥३९॥
हतो राजेति राजेन्द्र मुदितानां समन्ततः ।
बाणशब्दरवश्चोग्रः शुश्रुवे तत्र मारिष ॥४०॥

हे राजेन्द्र ! इस समय प्रसन्न हुई पाञ्चालसेना में सब ओर महाघोर कोलाहल होने लगा, कि राजा दुर्योधन मारा गया। हे मारिष ! वहां पर धर्मराज के बाण का उग्र शब्द भी सबको सुनाई दिया ॥३९-४०॥

अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे ।
हृष्टो दुर्योधनश्चाऽपि दृढमादाय कार्मुकम् ॥४१॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन्पाण्डवमभ्ययात् ।
प्रत्युद्ययुस्तं त्वरिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ॥४२॥

हे राजन ! इसी समय बड़ी शीघ्रता से वहां द्रोणाचार्य पहुंच गए, जिनको देखकर राजा दुर्योधन, प्रसन्न हो उठा और उसने अब दृढ़ धनुष उठाया और ठहर ? ठहर ? इस प्रकार कहते हुए, वह पाण्डु-पुत्र धर्मराज पर झपटा। विजय के अभिलाषी, पञ्चाल भी बड़ी शीघ्रता से धर्मराज की रक्षा में पहुंचे ॥४१-४२॥

तान्द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन्कुरुसत्तम ।

चण्डवातोद्धतान्मेघान्निघ्नन्रश्मिमुचो यथा ॥४३॥

हे राजन् ! कुरुराज दुर्योधन की रक्षा चाहते हुए द्रोणाचार्य ने उन सबको वहीं इस तरह छिन्न-भिन्न कर दिया, जैसे-वायु से फैंके हुए प्रचण्ड मेघों को सूर्य, इधर उधर बखेर देता है ॥४३॥

ततो राजन्महानासीत्संग्रामो भूरिवर्धनः ।

तावकानां परेषां च समेतानां युयुत्सया ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनपराभवे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।

हे राजन् ! इस समय तुम्हारे और पाण्डवों के वीरों के चित्त में युद्ध का उत्साह भरा हुआ था, इससे वे इकट्ठे होकर लड़ने लगे, जिससे यह महाघोर संग्राम हो गया और इसी से यमराज्य की बहुत सी वृद्धि हुई ॥४४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में राजा दुर्योधन के संग्राम के वर्णन का एक सौ तरेपनवां अध्याय पूरा हुआ



एक सौ चौवनवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच–यत्तदा प्राविशत्पाण्डूनाचार्यः कुपितो बली।
उक्त्वा दुर्योधनं मन्दं मम शास्त्रातिगं सुतम् ॥१॥
प्रविश्य विचरन्तं च रथे शूरमवस्थितम्।
कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः पर्यवारयन् ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे तात! गुरु शासन का तिरस्कार करने वाले, मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधन को फटकार जब क्रोध में भरे हुए महाबली आचार्य द्रोण, पाण्डवों की सेना में प्रविष्ट हुए-तो वहां प्रविष्ट होकर रथ में स्थित सब ओर घूमते हुए शूरवीर, महाधनुर्धर द्रोणाचार्य ने क्या किया और किन २ पाण्डववीरों ने उन्हें घेर कर युद्ध में सामना किया॥ १-२॥

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रमाचार्यस्य महाहवे।
के चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतः शात्रवान्बहून् ॥३॥

इस महायुद्ध में आचार्य के दायें चक्र की कौन रक्षा कर रहे थे और बांये चक्र के रक्षक कौन थे, जब कि वे बहुत से शत्रुओं को मार २ कर बिछा रहे थे॥ ३॥

के चाऽस्य पृष्ठतोऽन्वासन्वीरा वीरस्य योधिनः।
के पुरस्तादवर्तन्त रथिनस्तस्य शत्रवः ॥४॥

हे सञ्जय! इस युद्ध करने वाले महावीर द्रोणाचार्य का किन २ कौरववीरों ने अनुगमन किया और कौन पाण्डववीर इस महारथी के सन्मुख आये॥ ४॥

मन्ये तानस्पृशच्छीतमतिवेलमनार्तवम् ।
मन्ये ते समवेपन्त गावो वै शिशिरे यथा ॥५॥
यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः ।
नृत्यन्स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥६॥

मेरे विचार में तो उन शत्रुवीरों को बिना ही शीत ऋतु के अत्यन्त शीत ने व्याप्त कर लिया होगा और वे शीतकाल में गायों की तरह कांपने लगे होंगे, क्योंकि महाधनुर्धर, किसी से नहीं पराजित होने वाले, सेना में प्रविष्ट द्रोणाचार्य से मुकाबिला था। वह सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ था और रथ के मार्गों(पैंतरों) में नाचसा कर रहा था ॥५-६॥

निर्दहन्सर्वसैन्यानि पञ्चालानां रथर्षभः ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥७॥

यह रथिश्रेष्ठ द्रोण, क्रोधातुर हुआ पाञ्चालों की सब प्रकार की सेनाओं को धूमकेतु नक्षत्र की भांति दग्ध करने में समर्थ था, फिर क्या बात हुई कि यह भी मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥७॥

सञ्जय उवाच—सायाह्ने सैन्धवं हत्वा राज्ञा पार्थःसमेत्य च ।
सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाऽभ्यधावताम् ॥८॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! सायंकाल में सिन्धुराज जयद्रथ को मार कर अर्जुन राजा युधिष्ठिर से मिले। जब द्रोणाचार्य का यह युद्ध होने लगा तो अर्जुन और महाधनुर्धर सात्यकि, फिर द्रोणाचार्य पर झपटे ॥८॥

तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः।
पृथक्चमूभ्यां संयत्तौ द्रोणमेवाऽभ्यधावताम् ॥९॥

इधर राजा युधिष्ठिर और पाण्डव भीमसेन पृथक् पृथक् सेना लेकर बड़ी सावधानी से वेग के साथ द्रोणाचार्य पर टूट पड़े ॥९॥

तत्रैव नकुलो धीमान्सहदेवश्च दुर्जयः।
धृष्टद्युम्नः सहानीको विराटश्च सकेकयः ॥१०॥
मत्स्याः शाल्वाः ससेनाश्च द्रोणमेव ययुर्युधि।

इसी तरह महाबुद्धिमान् नकुल और दुर्जय सहदेव, सेना सहित धृष्टद्युम्न, विराट, केकयराज, मत्स्यवीर शाल्ववीर-ये सारे अपनी २ सेना लेकर द्रोणकी ओर दौड़े ॥१०॥

द्रुपदश्च यथा राजा पञ्चालैरभिरक्षितः ॥११॥
धृष्टद्युम्नपिता राजन्द्रोणमेवाऽभ्यवर्तत।

हे राजन्! धृष्टद्युम्न के पिता राजा द्रुपद तो अपनी पांचालों की सेना से सुरक्षित होकर द्रोणाचार्य की ओर ही बढ़ा ॥११॥

द्रौपदेया महेष्वासा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥१२॥
ससैन्यास्ते न्यवर्तन्त द्रोणमेव महाद्युतिम्।

महाधनुर्धर द्रौपदीपुत्र और राक्षस घटोत्कच, वे अपनी २ सेना लेकर महातेजस्वी द्रोणाचार्य की ओर आगे बढ़े ॥१२॥

प्रभद्रकाश्च पञ्चालाः षट्सहस्राः प्रहारिणः ॥१३॥
द्रोणमेवाऽभ्यवर्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।

एक ओर प्रभद्रक और पञ्चालों के छः सहस्र अच्छे युद्ध करने वाले वीर, शिखण्डी को आगे करके द्रोण की ओर ही बढ़े ॥१३॥

तथेतरे नरव्याघ्राः पाण्डवानां महारथाः ॥१४॥
सहिताः संन्यवर्तन्त द्रोणमेव द्विजर्षभम् ।

इसी तरह अन्य भी पाण्डवों के बड़े २ नरश्रेष्ठ महारथी, एक दम द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य पर टूट पड़े ॥ १४ ॥

तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु भरतर्षभ ॥१५॥
बभूव रजनी घोरा भीरूणां भयवर्धिनी ।

हे भरतर्षभ! जब ये शूरवीर युद्ध के निमित्त बढ़े—तो उस समय प्रचण्ड-अन्धेरी रात हो रही थी, जिससे कायरों के चित्त में भय उत्पन्न होता था ॥१५॥

योधानामशिवा रौद्रा राजन्नन्तकगामिनी ॥१६॥
कुञ्जराश्वमनुष्याणां प्राणान्तकरणी तदा ।

हे राजन्! यह रात योधाओं का हनन करने वाली, अकल्याण कारिणी और बड़ी भयानक थी। इसमें हाथी, अश्व और मनुष्य का तो बड़ा ही विध्वंस हो गया ॥१६॥

तस्यां रजन्यां घोरायां नदन्त्यः सर्वतः शिवाः ॥१७॥
न्यवेदयन्भयं घोरं सज्वालकवलैर्मुखैः ।

इस घोर रात में सब ओर लोमड़ियां बोल रही थी, जिनके मुख से आग निकलने से बड़ा ही भय प्रतीत होता था ॥१७॥

उलूकाश्चाऽप्यदृश्यन्त शंसन्तो विपुलं भयम् ॥१८॥
विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्यामतिदारुणाः ।

सब ओर से भय की सूचना देते हुए उल्लू भी दिखाई देने लगे और ये अत्यन्त दारुण जन्तु, कौरवों की सेना में विशेषता से दिखाई दे रहे थे ॥१८॥

ततः सैन्येषु राजेन्द्र शब्दः समभवन्महान् ॥१९॥
भेरीशब्देन महता मृदङ्गानां स्वनेन च ।
गजानां बृंहितैश्चाऽपि तुरङ्गाणां च हेषितैः ॥२०॥
खुरशब्दनिपातैश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।

हे राजेन्द्र ! इस समय सेना में महान् शब्द होने लगा, जो भेरी के महान् शब्द, मृदङ्गों की ध्वनि, हाथियों की चिंघाड़, अश्वों की हिनहिनाहट और खुरों (टापों) की गड़गड़ाहट से भयानक रूप से सब ओर फैल रहा था ॥१९–२०॥

ततः समभवद्युद्धं सन्ध्यायामतिदारुणम् ॥२१॥
द्रोणस्य च महाराज सृञ्जयानां च सर्वशः ।

हे महाराज ! अब इस अन्धेरी रात में सब ओर से द्रोणाचार्य और सृञ्जय वीरों का अत्यन्त दारुण युद्ध होने लगा ॥२१॥

तमसा चाऽऽवृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन ॥२२॥
सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन ह ।

इस समय बड़े ही अन्धेरे से सारा लोक आच्छादित होगया

था और रणभूमि में तो सब ओर सेना द्वारा बड़ी धूलि उठी हुई थी ॥ २२ ॥

नरस्याऽश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥२३॥
नाऽपश्याम रजो भौमं कश्मलेनाऽभिसंवृताः ।

थोड़ी ही देर में मनुष्य, हाथी और घोड़ों का रक्त बहने लगा। उस रक्त के प्रभाव से इतनी कीचड़ हुई, कि फिर कहीं भी धूलि दिखाई नहीं दी ॥ २३ ॥

रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥२४॥
घोरश्चटचटाशब्दः शस्त्राणां पततामभूत् ।

जिस समय रात में बांसों के वन में आग लग जाती है और वे पर्वत में जलने लगते हैं, तो जो उस समय घोर चटचटा शब्द होता है, वैसी तरह शस्त्रों के आघात से घोर ध्वनि होने लगी ॥ २४ ॥

मृदङ्गानकनिर्ह्रादैर्झर्झरैः पटहैस्तथा ॥२५
फेत्कारैर्हेषितैः शब्दैः सर्वमेवाऽऽकुलं बभौ ।

मृदङ्ग, आनक आदि के शब्द तथा झाँझ, नगाड़े और जुझाऊ बाजों के शब्द एवं अश्व आदि की हिनहिनाहट से सारी रणभूमि व्याप्त होगई ॥ २५ ॥

नैव स्वे न परे राजन्प्राज्ञायन्त तमोवृते ॥२६॥
उन्मत्तमिव तत्सर्वं बभूव रजनीमुखे ।

हे राजन्! इस अन्धकार से आवृत रणस्थल में अपना और पराया कुछ नहीं दिखाई देता था। इस रात के प्रथम प्रहर में उन्मत्तों का सा सारा संग्राम मचने लगा ॥ २६ ॥

भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन प्रशाशितम् ॥२७॥
शातकौम्भैश्च कवचैर्भूषणैश्च तमोऽभ्यगात् ।

हे राजेन्द्र! पृथिवी से उठे हुए रज को तो रक्त के प्रवाह ने नष्ट कर दिया और सुवर्ण के चमकीले कवच और आभूषणों से अन्धेरा नष्ट होगया ॥ २७ ॥

ततः सा भारती सेना मणिहेमविभूषिता ॥२८॥
द्यौरिवाऽऽसीत्सनक्षत्रा रजन्यां भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ! इस रात के समय मणि और सुवर्ण से विभूषित, भरतवंशोद्भव क्षत्रियवीरों की यह सेना, नक्षत्रों से भरे हुए आकाश के तुल्य प्रतीत होने लगी ॥ २८ ॥

गोमायुबलसंघुष्टा शक्तिध्वजसमाकुला ॥२९॥
दारुणाभिरुता घोरा क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनादिता ।

गीदड़, बल आदि जन्तुओं की चीत्कार, शक्ति और ध्वजा आदि की झनझनाहट और फरफराहट, हाथियों के घोर शब्द, तथा सिंहनाद और कोलाहल से सारी सेना भयङ्कर प्रतीत होती थी ॥ २९ ॥

तत्राऽभवन्महाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥३०॥
समावृण्वन्दिशः सर्वा महेन्द्राशनिनिःस्वनः ।

इस समय महाघोर लोमहर्षण शब्द हो रहा था, उस इन्द्र के वज्र की ध्वनि के तुल्य घोर ध्वनि से सारी दिशाएँ व्याप्त हो उठी ॥ ३० ॥

सा निशीथे महाराज सेनाऽदृश्यत भारती ॥३१॥
अङ्गदैः कुण्डलैर्निष्कैः शस्त्रैश्चैवाऽवभासिता ।

हे महाराज ! आधी रात के समय वही भारती सेना, सुवर्ण के अङ्गद, कुण्डल, कण्ठसूत्र और शस्त्रों से ज्यों की त्यों दिखाई देने लगी ॥ ३१ ॥

तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ॥३२॥
निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ।

इस युद्ध में सुवर्ण से विभूषित हाथी और रथ, रात में बिजली से युक्त मेघ से दिखाई देते थे ॥ ३२ ॥

ऋष्टिशक्तिगदाबाणमुसलप्रासपट्टिशाः ॥३३॥
सम्पतन्तो व्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाऽग्नयः ।

ऋष्टि, शक्ति, गदा, बाण, मुसल, प्रास और पट्टिश आदि शस्त्र, रण में चल रहे थे, जो लपटों से युक्त अग्नि के तुल्य प्रतीत होते थे ॥ ३३ ॥

दुर्योधनपुरोवातां रथनागबलाहकाम् ॥३४॥
वादित्रघोषस्तनितां चापविद्युद्ध्वजैर्वृताम् ।
द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम् ॥३५॥
शरधारास्त्रपवनां भृशं शीतोष्णसंकुलाम् ।

घोरां विस्मापनीमुग्रां जीवितच्छिद्महावाम् ॥ ३६ ॥
तां प्रविशन्नतिभयां सेनां युद्धचिकीर्षवः ।

इस सेना में राजा दुर्योधन पूर्वी वायु और रथ, हाथी, मेघ के सदृश थे। बाजों का शब्द गर्जना सा प्रतीत होता था और चाप और ध्वजा बिजली के तुल्य थे। द्रोणाचार्य और पाण्डववीर भी बादलों की पंक्ति के तुल्य थे। खड्ग, शक्ति और गदा, वज्र समझने चाहिए। बाणों की धारा और अस्त्र, पवन के झोंके थे, जिससे शीत और उष्ण का सञ्चार था। इस प्रकार नौका से रहित, जीवन का विनाश करने वाली घोर, आश्चर्य में डालने में समर्थ, उग्र नदी वह चली। युद्ध के अभिलाषी वीर, उस अत्यन्त भय देने वाली सेनारूपी नदी में प्रविष्ट होने लगे ॥ ३४-३६ ॥

तस्मिन्रात्रिमुखे घोरो महाशब्दनिनादिते ॥ ३७ ॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।

इस रात के घोर अन्धकार में बड़ी भारी भीषणध्वनि हो रही थी, जिससे कायरों को त्रास उत्पन्न होता था और शूरवीरों को हर्ष होता था ॥ ३७ ॥

रात्रियुद्धे महाघोरे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ३८ ॥
द्रोणमभ्यद्रवन्क्रुद्धाः सहिताः पाण्डुसृञ्जयाः ।

जब यह रात का महाघोर दारुण युद्ध होने लगा—तो इकट्ठे ही पाण्डव और सृञ्जयवीर क्रोध में भर कर द्रोण पर टूट पड़े ॥ ३८ ॥

ये ये प्रमुखतो राजन्नावर्तन्त महारथाः ॥ ३९ ॥
तान्सर्वान्विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम् ।

हे राजन्! इस समय जो २ महारथी द्रोणाचार्य के सम्मुख पड़े, उन सबको उसने रण से विमुख कर दिया और कुछ को तो उसने यमराज के घर ही पहुंचा दिया ॥ ३९ ॥

तानि नागसहस्राणि रथानामयुतानि च ॥ ४० ॥
पदातिहयसङ्घानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
द्रोणेनैकेन नाराचैर्निर्भिन्नानि निशामुखे ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५४॥

इस रात्रि के युद्ध में सहस्र हाथी, दश सहस्र रथ, पचास सहस्र अश्व और अरबों की संख्या में पैदल सैनिक अकेले द्रोणाचार्य ने अपने बाणों से मार गिराए ॥ ४०–४१ ॥

इति श्री महाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व
में रात के युद्ध का एक सौ चौवनवां अध्याय
समाप्त हुआ ।

एक सौ पचपनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच- तस्मिन्प्रविष्टे दुर्धर्षे सृञ्जयानमितौजसि।
अमृष्यमाणे संरब्धे का वोऽभूद्वै मतिस्तदा ॥ १ ॥
दुर्योधनं तथा पुत्रमुक्त्वा शास्त्रातिगं मम ॥
यत्प्राविशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! क्रोध में आविष्ट, किसी की कुछ नहीं सहने वाले, अत्यन्त ओजस्वी, दुर्धर्ष, द्रोणाचार्य के सृञ्जयों पर आक्रमण करने पर तुम लोगों की बुद्धि की क्यादशा रही तथा शासन को नहीं मानने वाले मेरे पुत्र दुर्योधन को कुछ कह सुन कर रण में जो द्रोणाचार्य घुसे तो—अत्यन्त वीर अर्जुन ने उनके साथ क्या व्यवहार किया ॥ १-२ ॥

निहते सैन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव ह ।
यदाऽभ्यगान्महातेजाः पञ्चालानपराजितः ॥३॥
किममन्यत दुर्धर्षे प्रविष्टे शत्रुतापने ।
दुर्योधनस्तु किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥४॥

सिन्धु देश के वीर राजा जयद्रथ और राजा भूरिश्रवा के मारे जाने पर महातेजस्वी, किसी से पराजित नहीं होने वाले आचार्य द्रोण, जब सेना में घुस गए—तो इन शत्रुनाशक, दुर्धर्ष द्रोण के रण में घुसने पर राजा दुर्योधन ने क्या समझा और उसने उस समय अपना क्या कर्तव्य माना ॥ ३-४ ॥

के च तं वरदं वीरमन्वयुर्द्विजसत्तमम्

के चाऽस्य पृष्ठतोऽगच्छन्वीराः शूरास्य युध्यतः ॥५॥
के पुरस्तादवर्तन्त निघ्नतः शात्रवान्रणे ।

युद्ध में वरदानी इस द्विजश्रेष्ठ के साथ में कितने कौरववीर गए और युद्ध में तत्पर इस शूरवीर की सहायता में पीछे से कौन २ वीर पहुंचे एवं जब ये रण में शत्रुओं को मारने लगे—तो कौन शत्रवीर इनके सन्मुख आये ॥ ५ ॥

मन्येऽहं पाण्डवान्सर्वान्भारद्वाजशरार्दितान् ॥६॥
शिशिरे कम्पमाना वै कृशा गाव इव प्रभो ।

हे प्रभो ! मैं तो यह समझता हूं, कि भरद्वाज वंशज द्रोण के बाण से पीड़ित हुए सारे पाण्डववीर शिशिर काल में गायों की तरह कांपने लग गए होंगे ॥ ६ ॥

प्रविश्य स महेष्वासः पञ्चालानरिमर्दनः ।
कथं नु पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवान् ॥७॥

यह अरिमर्दन, महाधनुर्धर, पुरुषव्याघ्र, पाञ्चालवीरों के मध्य में प्रविष्ट होकर कैसे मृत्यु को प्राप्त हुए—यह सब बताओ ॥ ७ ॥

सर्वेषु योधेषु च सङ्गतेषु रात्रौ समेतेषु महारथेषु ।
संलोड्यमानेषु पृथग्बलेषु के वस्तदानीं मतिमन्त आसन्॥८॥

हे सूत ! इस रात में सारे महारथी योद्धाओं के इकट्ठे होकर युद्ध में तत्पर होजाने पर और पृथक् २ सेना के आलोडन करने पर तुम लोगों में कितने वीरों की बुद्धि ठिकाने रह सकी, यह भी बताओ ॥८ ॥

हतांश्चैव विषक्तांश्च पराभूतांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान्युद्धेषु मामकान् ॥९॥
तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्हतचेतसाम् ।
अन्धे तमसि मग्नानामभवत्का मतिस्तदा ॥१०॥

हे सञ्जय ! तुम तो यह बता रहे हो, कि हमारे पक्ष के बहुत योद्धा मारे गए, कितने ही घबड़ा गए, कितने ही पराभूत होगए बहुत से रथी रथरहित कर दिए गए थे। जब पाण्डवों ने कौरव वीरों का मन्थन किया और जब उनके छक्के छूट गए एवं गाढ़ अन्धकार में वे निमग्न होगए—तो तुम लोगों की क्या दशा हुई ॥ ९—१० ॥

प्रहृष्टांश्चाऽप्युदग्रांश्च सन्तुष्टांश्चैव पाण्डवान् ।
शंससीहाऽप्रहृष्टांश्च विभ्रष्टांश्चैव मामकान् ॥११॥
कथमेषां तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम् ।
प्रकाशमभवद्रात्रौ कथं कुरुषु सञ्जय ॥१२॥

तुम तो यह बता रहे थे, कि पाण्डववीर बड़े प्रसन्न, तीव्र तेज में भरे हुए और सन्तुष्ट दिखाई देते थे तथा हमारे पक्ष के कौरव वीर, अप्रसन्न और छिन्न भिन्न हो रहे थे—हे सञ्जय ! उस घोर रात में नहीं भागने वाले पाण्डवों को प्रकाश की कहाँ से प्राप्ति हुई और कौरववीरों को उजाला कहां मिला ॥ ११-१२ ॥

सञ्जय उवाच—रात्रियुद्धे तदा राजन्वर्तमाने सुदारुणे ।
द्रोणमभ्यद्रवन्सर्वे पाण्डवाः सह सोमकैः ॥१३॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब अत्यन्त दारुण रात्रियुद्ध होने लगा, तो सारे सोमकवीरों को साथ लेकर सारे पाण्डव वीर, द्रोणाचार्य की ओर दौड़े ॥ १३ ॥

ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चाऽऽत्मजान् ।
सम्प्रैषयत्प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः ॥१४॥

अब द्रोणाचार्य ने केकयवीर और धृष्टद्युम्न के पुत्रों को अपने आशुगामी बाणों से प्रेतलोक भेज दिया ॥१४॥

तस्य प्रमुखतो राजन्येऽवर्तन्त महारथाः ।
तान्सर्वान्प्रेषयामास पितृलोकं स भारत ॥१५॥

हे राजन् ! जो २ महारथी इस समय आचार्य-द्रोण के सन्मुख आये-हे भारत ! उन सब को उसने पितृलोक भेज कर ही छोड़ा ॥१५॥

प्रमथ्नन्तं तदा वीरान्भारद्वाजं महारथम् ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः शिबी राजा प्रतापवान् ॥१६॥

जब भरद्वाजवंशज महारथी द्रोण, पाण्डवसेना का विध्वंस कर रहे थे-तो उस समय उनके सन्मुख क्रोधातुर प्रतापवान् राजा शिवि पहुंचे ॥१६ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैः सर्वपारसवैः शितैः ॥१७॥

जब द्रोणाचार्य ने पाण्डवों के महारथी राजा शिवि को सन्मुख आते देखा—तो उन्होंने तीक्ष्ण दृढ़ लोहद्वारा बने हुए दश बाणों से उसको आहत कर दिया ॥१७॥

तं शिबिः प्रतिविव्याध त्रिंशता निशितैः शरैः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत् ॥१८॥

राजा शिबिने भी तीस तीक्ष्ण बाण छोड़कर द्रोणाचार्यको बींध दिया और मुसकराते हुए भल्ल नामक बाण छोड़ कर आचार्य द्रोण के सारथि को रथ से नीचे गिरा दिया ॥ १८ ॥

तस्य द्रोणो हयान्हत्वा सारथिं च महात्मनः ।
अथाऽस्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥१९॥

अब आचार्य द्रोण ने भी इस महावीर के अश्व और सारथि को मार कर शिरस्त्राण के सहित इसके मस्तक को भी शरीर से पृथक् करके दूर गिरा दिया ॥१९॥

ततोऽस्य सारथिं क्षिप्रमन्यं दुर्योधनोऽदिशत् ।
स तेन संगृहीताश्वः पुनरभ्यद्रवद्रिपून् ॥२०॥

आचार्य द्रोण का जो सारथि मारा गया-तो राजा दुर्योधन ने झटपट दूसरा सारथि भेज दिया। जब उसने अश्वों की रास पकड़ ली तो यह फिर अपने शत्रु पाण्डववीरों पर झपटा ॥२०॥

कलिङ्गानामनीकेन कालिङ्गस्य सुतो रणे।
पूर्वं पितृवधात्क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत् ॥२१॥

हे राजन्! भीमसेन ने प्रथम कलिङ्गराज का वध कर दिया था। इस पितृघात से क्रोध में भरे हुए उनके पुत्र ने रण में कलिङ्गसेना के साथ भीमसेन पर आक्रमण कर दिया ॥२१॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
विशोकं त्रिभिराजच्छद् ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥२२॥

इसने भीमसेन पर पांच बाण छोड़े और उसके थोड़ी ही देर पीछे सात बाण छोड़ कर उसे आहत किया। उसके अनन्तर तीन बाण छोड़ कर भीमसेन के सारथि को बींध दिया और एक बाण से भीम की ध्वजा काट डाली ॥ २२ ॥

कलिङ्गानां तु तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः ।
रथाद्रथमभिद्रुत्य मुष्टिनाऽभिजघान ह ॥२३॥

इधर तो कलिङ्ग देश का राजकुमार कुपित हो रहा था और दूसरी ओर भीमसेन क्रोध में भरा था। भीमसेन ने अपने रथ से उसके रथ में कूद कर उस पर मुष्टि का प्रहार किया ॥ २३ ॥

तस्य मुष्टिहतस्याऽऽजौ पाण्डवेन बलीयसा ।
सर्वाण्यस्थीनि सहसा प्रापतन्वै पृथक् पृथक् ॥२४॥

हे राजन ! अत्यन्त बलवान् पाण्डव-पुत्र भीमसेन की मुष्टि से आहत हुए उस वीर की सारी हड्डी पृथक् २ हो कर एक दम रण में विखर गई ॥२४॥

तं कर्णो भ्रातरश्चाऽस्य नाऽमृष्यन्त परन्तप ।
ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविषोपमैः ॥२५॥

हे परन्तप ! इस घटना को देख कर अङ्गराज कर्ण और कलिङ्गराजकुमार के भ्राता बड़े आवेश में आये और वे सर्प के तुल्य भीषण बाणों से भीमसेन को घायल करने लगे ॥२५॥

ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः ।
ध्रुवं चाऽस्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् ॥२६॥
स तथा पाण्डुपुत्रेण बलिनाऽभिहतोऽपतत् ।

अब शत्रु के रथ को छोड़ कर भीमसेन कलिङ्गराजकुमार ध्रुव के रथ पर पहुंच गया। ध्रुव भी इस समय लगातार बाण छोड़ रहा था। भीमसेन ने उस पर भी एक मुष्टि का प्रहार करके उसका चूरा कर दिया। बलवान् पाण्डुपुत्र भीमद्वारा नष्ट होकर ध्रुव भूमि में गिर गया ॥२६॥

तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः ॥२७॥
जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवाऽनदत् ।

हे महाराज ! महाबली भीमसेन उसको मार कर फिर जयरात के रथ पर पहुंचे और वहां सिंह की तरह गर्जना करने लगे

जयरातमथाऽऽक्षिप्य नदन्सव्येन पाणिना ॥२८॥
तलेन नाशयामास कर्णस्यैवाऽग्रतः स्थितः ।

भीमसेन ने गर्जते हुए दांये हाथ से जयरात को उठा लिया और कर्ण के देखते २ एक थप्पड़ से उसे मार गिराया ॥२८॥

कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत् ॥२९॥
ततस्तामेव जग्राह प्रहसन्पाण्डुनन्दनः ।

अब अङ्गराज कर्ण ने भी पाण्डु-पुत्र भीमसेन पर सुवर्ण जटित शक्ति का प्रहार किया, परन्तु पाण्डुनन्दन भीम ने हंसते २ उसकी उस शक्ति को पकड़ लिया ॥२९॥

कर्णायैव च दुर्धर्षश्चिक्षेपाऽऽजौ वृकोदरः ॥३०॥
तामापतन्तीं चिच्छेद शकुनिस्तैलपायिना ।

वृकोदर दुर्धर्ष भीम ने उसी शक्ति को वापिस कर्ण पर फैंक दिया। उसको आती हुई देखकर शकुनि ने तेल में बुझे हुए बाण द्वारा उसे काट गिराया ॥३०॥

एतत्कृत्वा महत्कर्म रणेऽद्भुतपराक्रमः ॥३१॥
पुनः स्वरथमास्थाय दुद्राव तव वाहिनीम् ।

अत्यन्त पराक्रमी भीमसेन, इस प्रकार रण में अद्भुत कर्म करके और फिर अपने रथ पर चढ़ कर तुम्हारी सेना पर चढ़ दौड़ा ॥३१॥

तमायान्तं जिघांसन्तं भीमं क्रुद्धमिवाऽन्तकम् ॥३२॥
न्यवारयन्महाबाहुं तव पुत्रा विशाम्पते ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥३३॥

हे विशाम्पते ! सब को मारने की इच्छा से काल की तरह आगे बढ़ते हुए महाबाहु भीम को तुम्हारे पुत्रों ने रोका । ये महारथी, अपनी बहुत सी बाण-वर्षा से भीमसेन को आच्छादित कर रहे थे ॥३२-३३॥

दुर्मदस्य ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे ।
सारथिं च हयांश्चैव शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥३४॥

अब भीमसेन ने हंसते २ रण में तुम्हारे पुत्र दुर्मद के सारथि और अश्वों को अपने बाणों से यमराज के घर पहुंचा दिया ॥३४॥

दुर्मदुस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्याऽवचक्रमे।
तावेकरथारूढौ भ्रातरौ परतापनौ ॥३५॥

अब दुर्मद, दुष्कर्ण के रथ पर जा चढ़ा। इस समय शत्रु-तापी दोनो तुम्हारे पुत्र दुर्मद और दुष्कर्ण एक रथ पर सवार थे ॥३५॥

संग्रामशिरसो मध्ये भीमं द्वावप्यधावताम्।
यथाऽम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ॥३६॥

ये दोनों वीर, संग्राम के अग्रभाग में स्थित हुए भीमसेन पर इस तरह टूट पड़े, जैसे-मित्रावरुण, दैत्यराज तारकासुर झपट रहे हों ॥३६॥

ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवाऽऽत्मजौ।
रथमेकं समारुह्य भीमं बाणैरविध्यताम् ॥३७॥

अब दुर्मद और दुष्कर्ण. तुम्हारे दोनों पुत्र, एक रथ पर ही बैठ कर भीमसेन को बाणों से बींधने लगे ॥३७॥

ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च पाण्डवः ॥३८॥
दुर्मदस्य च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम्।
पादप्रहारेण धरां प्रावेशयदरिन्दमः ॥३६॥

अब कर्ण, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, राजा दुर्योधन, कृपाचार्य, सोमदत्त और बाल्हीकराज के देखते २ पाण्डु-पुत्र अरिमर्दन भीम ने लात मारकर दुर्मद और दुष्कर्ण के उस रथ को पृथिवी घुसा दिया ॥३८-३६॥

ततः सुतौ ते बलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ ।
मुष्टिनाऽऽहत्य संक्रुद्धो ममर्द च ननर्द च ॥४०॥

हे राजन्! इसके अनन्तर महाबली शूरवीर, तुम्हारे पुत्र दुष्कर्ण और दुर्मद को क्रोधातुर भीम ने मुष्टि मारकर मार दिया और फिर बड़े जोर से गर्जना की ॥४०॥

ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा भीमं नृपाऽब्रुवन् ।
रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्तराष्ट्रेषु युध्यति ॥४१॥

हे नृप ! इस समय सारी सेना में हाहाकार मच गया और सारे राजा कहने लगे, कि भीमसेन के रूप में यह रुद्र धृतराष्ट्र पुत्रों से युद्ध कर रहा है ॥४१॥

एवमुक्त्वा पलायन्ते सर्वे भारत पार्थिवाः ।
विसंज्ञा वाहयन्वाहान्न च द्वौ सह धावतः ॥४२॥

हे भारत ! इतना कहकर सारे राजा, अचेत से हुए अपनी २ सवारी को भगाते हुए भाग निकले, परन्तु इनमें भी भय के कारण दो साथ २ नहीं भाग सके ॥४२॥

ततो बले भृशलुलिते निशामुखे सुपूजितो नृपवृषभैर्वृकोदरः
महाबलः कमलविबुद्धलोचनो युधिष्ठिरं नृपतिमपूजयद्बली ।

हे राजन्! इस रात्रियुद्ध में कौरवसेना के छिन्न भिन्न कर देने पर उत्तम २ राजाओं ने भीमसेन का बहुत आदर किया। इस महाबली खिले कमल के तुल्य नेत्रधारी, बलवान् भीम ने आकर राजा युधिष्ठिर को प्रणाम किया ॥४३॥

ततो यमौ द्रुपदविराटकेकया युधिष्ठिरश्चाऽपि परा मुदं ययुः
वृकोदरं भृशमनुपूजयंश्च ते यथाऽन्धके प्रतिनिहते हरं सुराः

अब नकुल सहदेव, द्रुपद, विराट, केकयराज, और राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए। इन्होंने भीमसेन का इतना आदर किया, जितना अंधकासुर के मारने पर भगवान् शंकर का देवों ने किया था ॥४४॥

ततःसुतास्तेवरुणात्मजोपमारुषान्विताःसहगुरुणामहात्मना
वृकोदरं सरथपदातिकुञ्जरा युयुत्सवो भृशमभिपर्यवारयन् ॥

हे नृपते ! अब वरुणकुमारों के तुल्य तुम्हारे पुत्र, क्रोध में भरे हुए अपने महावीर गुरु द्रोणाचार्य तथा रथ, पैदल और हाथियों को साथ लेकर युद्ध की अभिलाषा से भीमसेन पर झपटे।

ततोऽभवत्तिमिरघनैरिवावृते महाभये भयदमतीव दारुणम् ।
निशामुखे वृकबलगृध्रमोदनं महात्मनां नृपवर युद्धमद्भुतम् ।
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे भीमपराक्रमे
पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४७॥

हे नृपवर ! अब गाढ़े तिमिर से भरे हुए, महाभयदायी, अर्ध रात के समय में भेड़िये, गीध और बल पक्षियों को आनन्द देने वाला, अत्यन्त दारुण, भयानक, इन वीरों का अद्भुत युद्ध होने लगा ॥४६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में रात्रियुद्ध का और दुर्मद और दुष्कर्ण की मृत्यु के वर्णन का एक सौ पचपनवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ छप्पनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना तदा।
सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरत! युद्ध-भूमि में मुनि के समान व्रत करके चुप बैठे हुए अपने पुत्र भूरिश्रवा के सात्यकि द्वारा मार लेने पर राजा सोमदत्त बड़े ही कुपित हो रहे थे। वे अब सात्यकि से यह वाक्य बोले ॥१॥

क्षत्रधर्मः पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः।
तं त्वं सात्वत सन्त्यज्य दस्युधर्मे कथं रतः ॥२॥

हे सात्वत! महात्मा विद्वानों ने पूर्वकाल से जो क्षत्रियों के युद्ध धर्म नियत किये हैं, तुमने उनको छोड़कर दस्युधर्म में कैसे प्रेम किया ॥२॥

पराङमुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय सात्यके।
क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद्रणे ॥३॥

हे सात्यके! जो रण का परित्याग कर चुका और जिसने उदास होकर शस्त्र त्याग कर दिए-ऐसे व्यक्ति पर क्षत्रियधर्म से

प्रेम करनेवाला तुम जैसा व्यक्ति, कैसे रण में प्रहार कर सकता है ॥३॥

द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं चैव युधि सात्वत ॥४॥
कथं प्रयोविष्टाय पार्थेन च्छिन्नबाहवे ।
नृशंसं पतनीयं च तादृशं कृतवानसि ॥५॥

हे सात्वत ! वृष्णिवंश में दो महारथी वीर ही बड़े प्रसिद्ध हैं- एक तो तुम और दूसरे महाबाहु प्रद्युम्न । जब तुम इतने माननीय वीर हो-तो तुमने मुनि की भांति उपवास में बैठे हुए और अर्जुन द्वारा भुजा के कट जाने से व्याकुल, भूरिश्रवा के साथ इतना नीच और पतन योग्य कार्य कैसे कर डाला ॥५॥

कर्मणस्तस्य दुर्वृत्त फलं प्राप्नुहि संयुगे ।
अद्य छेत्स्यामि ते मूढ शिरो विक्रम्य पत्रिणा ॥६॥

हे दुर्वृत्त-मूढ़ ! आज तुम अपने उस दुष्कर्म का इस रण में फल पाओगे-मैं अभी पराक्रम दिखाकर बाण से तुम्हारा शिर काटे डालता हूँ ॥६॥

शपे सात्वत पुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च ।
अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीरमानिनम् ॥७॥
अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम् ।
न हन्यां नरके घोरे पतेयं वृष्णिपांसन ॥८॥

हे सात्यकि ! मैं अपने दोनों पुत्र, इष्टदेव और पुण्य की शपथ खाकर कहता हूं, कि इस रात के बीतने से पहिले २ तुझ वीरमानी को मैं तेरे पुत्र और भाई के साथ मार गिराऊँगा, जो अर्जुन रक्षा में नहीं आ पहुंचेगा। हे वृष्णिपामर ! यदि मैं न मार सकूँ तो ईश्वर मुझे घोर नरक में डाल दे ॥७-८॥

एवमुक्त्वा सुसंक्रुद्धः सोमदत्तो महाबलः ।
दध्मौ शङ्खं च तारेण सिंहनादं ननाद च ॥९॥

हे राजन् ! इतना कहकर महाबली राजा सोमदत्त क्रोध में भर गया और उसने बड़े उच्चस्वर में शङ्ख बजाकर सिंहनाद किया।

ततः कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो दुरासदः ।
सात्यकिर्भृशसंक्रुद्धः सोमदत्तमथाऽब्रवीत् ॥१०॥

अब कमलपत्र के समान नेत्रधारी, सिंह की दाढ़ों के समान दाढ़ों वाला दुरासह सात्यकि, अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और राजा सोमदत्त से बोला ॥१०॥

कौरवेय न मे त्रासः कथञ्चिदपि विद्यते ।
त्वया सार्धमथाऽन्यैश्च युध्यतो हृदि कश्चन ॥११॥

हे कौरवेय ! तुम तथा अन्य किसी भी कौरववीर के साथ युद्ध करते हुए मेरे हृदय में कुछ भी भय का सञ्चार नहीं होता है ॥११॥

यदि सर्वेण सैन्येन गुप्तो मां योधयिष्यसि ।
तथापि न व्यथा काचित्त्वयि स्यान्मम कौरव ॥१२॥

हे कौरव ! यदि तुम सारी सेना से सुरक्षित होकर भी मेरे साथ युद्ध करो-तो भी मुझे तुमसे कोई पीड़ा या भीति नहीं हो सकती है ॥१२॥

युद्धसारेण वाक्येन असतां सम्मतेन च ।
नाऽहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते स्थितस्त्वया ॥१३॥

हे वीर ! तुम युद्ध की डींग से भरे हुए, असज्जनों के व्यवहार में लाने योग्य, वाक्यजाल से मुझे डरा नहीं सकते हो, क्योंकि मैं क्षत्रियों के धर्म में स्थित हूँ।

यदि तेऽस्ति युयुत्साऽद्य मया सह नराधिप ।
निर्दयो निशितैर्बाणैः प्रहर प्रहरामि ते ॥१४॥

हे नराधिप ! यदि तुम्हें आज मेरे साथ युद्ध की इच्छा है, तो तुम निर्दयता के साथ बाणों का प्रहार करो-मैं भी खुलकर बाणों का प्रहार करता हूँ ॥१४॥

हतो भूरिश्रवा वीरस्तव पुत्रो महारथः ।
शलश्चैव महाराज भ्रातृव्यसनकर्षितः ॥१५॥
त्वां चाऽप्यद्य वधिष्यामि सहपुत्रं सबान्धवम् ।
तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौरवोऽसि महारथः ॥१६॥

हे महाराज ! मैंने तुम्हारे वीर महारथी पुत्र भूरिश्रवा का वध किया और भाई के दुःख से पीड़ित होकर आक्रमण करने वाले तुम्हारे दूसरे पुत्र शल का भी मैंने ही वध किया है। आज अपने बचे हुए पुत्र और बन्धु बान्धवों के सहित तेरा भी नाश

करूँगा। अब तू सावधान होकर रण में स्थित हो जा-देख तू कौरवों का महारथी है-भाग न जाना ॥१५-१६॥

यस्मिन्दानं दमः शौचमहिंसा ह्रीर्धृतिः क्षमा।
अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे ॥१७॥
मृदङ्गकेतो तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा।
सकर्णसौबलः संख्ये विनाशमुपयास्यसि ॥१८॥

हे मृदङ्ग-केतो! जिस राजा युधिष्ठिर में दान, दम, शौच, अहिंसा, ह्री, धृति, क्षमा और सारे उत्तम २ कर्म विद्यमान हैं, उसके तेज से तो तुम प्रथम से ही विनष्ट हो रहे हो-अब कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि के साथ तुम रण में विनाश प्राप्त करोगे।

शपेऽहं कृष्णचरणैरिष्टापूर्तेन चैव ह।
यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः ॥१९॥
अपयास्यसि चेत्युक्त्वा रणं मुक्तो भविष्यसि।

मैं भी श्रीकृष्ण के चरणों तथा इष्टापूर्त आदि यज्ञ की शपथ खाता हूं, जो युद्ध में क्रोध-पूर्वक तेरा वध न कर दूं। हां? यदि तू पूर्वोक्त वचन कहकर भी भाग जावेगा-तो छुटकारा प्राप्त कर सकेगा ॥१९॥

एवमाभाष्य चाऽन्योन्यं क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥२०॥
प्रवृत्तौ शरसम्पातं कर्तुं पुरुषसत्तमौ।

हे राजन्! इस प्रकार एक दूसरे ने परस्पर कटूक्तियां कहीं और दोनों की आंखें लाल हो उठीं। ये दोनों पुरुष-श्रेष्ठ अब बाण छोड़ने में प्रवृत्त हुए ॥२०॥

ततो रथसहस्रेण नागानामयुतेन च ॥२१॥
दुर्योधनः सोमदत्तं परिवार्य समन्ततः ।
शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥२२॥
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः।
स्यालस्तव महाबाहुर्वज्रसंहनो युवा ॥२३॥
साग्रं शतसहस्रं तु हयानां तस्य धीमतः ।
सोमदत्तं महेष्वासं समन्तात्पर्यरक्षत ॥२४॥
रक्ष्यमाणश्च बलिभिश्छादयामास सात्यकिम् ।

हे राजन् ! इस समय एक सहस्र हाथी लेकर राजा दुर्योधन सब ओर से राजा सोमदत्त को सुरक्षित करके खड़ा हो गया। दूसरी ओर धनुर्धर श्रेष्ठ, शकुनि भी क्रोध में भरकर अपने पुत्र-पौत्र और इन्द्र के समान पराक्रमी भाइयों को लेकर महाधनुर्धर राजा सोमदत्त की रक्षा में आकर उपस्थित हो गया। हे राजन् ! यह शकुनि तुम्हारा साला, बड़ी भुजाओं का धारण करने वाला वज्र के समान देहधारी युवा है । इस महावीर के साथ कोई एक लाख घुड़सवार सेना होगी । इसने अपने को बलवान् वीरों से सुरक्षित करके सात्यकि को अपने बाणों से आच्छादित कर दिया ॥२१-२४॥

तं छाद्यमानं विशिखैर्दृष्ट्वा सन्नतपर्वभिः ॥२५॥
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययात्क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं चमूम् ।

जब पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न ने देखा, कि सात्यकि को नतपर्वधारी बाणों से शकुनि आदि कौरव वीरों ने आच्छादित कर दिया-तो वह विशाल-सेना लेकर क्रोध-पूर्वक आगे बढ़ा ॥२५॥

चण्डवाताभिसृष्टानामुदधीनामिव स्वनः ॥२६॥
आसीद्राजन्बलौघानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ।

हे राजन्! अब एक सेना दूसरी सेना पर प्रहार करने लगी॰ उस समय इस सेना समूह में प्रचण्ड वायु से उछाले हुए समुद्र की सी महाध्वनि होने लगी ॥२६॥

विव्याध सोमदत्तस्तु सात्वतं नवभिः शरैः ॥२७॥
सात्यकिर्नवभिश्चैनमवधीत्कुरुपुङ्गवम् ।

अब राजा सोमदत्त ने नौ बाण मारकर सात्वतवीर सात्यकि को बींध दिया तथा सात्यकि ने भी इस कौरव वीर राजा सोमदत्त को नौ बाणों से आहत किया ॥२७॥

सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्विना ॥२८॥
रथोपस्थं समासाद्य मुमोह गतचेतनः ।

जब दृढ़ धनुर्धर बलवान् सात्यकि द्वारा रण में राजा सोमदत्त आहत किया गया-तो वह अचेत हो गया और रथ के मध्य में चुपचाप बैठ गया ॥२८॥

तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरया युतः ॥२९॥
अपोवाह रणाद्वीरं सोमदत्तं महारथम् ।

जब सारथि ने देखा, कि राजा सोमदत्त मूर्च्छित हो गए हैं, तो वे शीघ्रता से युक्त होकर महारथि वीर राजा सोमदत्त को रण से बाहर ले भागा ॥२६॥

तं विसंज्ञं समालक्ष्य युयुधानशरार्दितम् ॥३०॥
अभ्यद्रवत्ततो द्रोणो यदुवीरजिघांसया ।

जब आचार्य द्रोण ने सात्यकि को बाण से पीड़ित और मूर्च्छित राजा सोमदत्त को देखा-तो वे यदुवीर सात्यकि के मार देने को उस पर वेग से झपटे ॥३०॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥३१॥
परिवव्रुर्महात्मानं परीप्सन्तो यदूत्तमम् ।

जब राजा युधिष्ठिर आदि ने द्रोणाचार्य को लपकते देखा तो वे भी यदुवंशश्रेष्ठ सात्यकि के बचाने को उसको घेर कर खड़े हो गए ॥३१॥

ततः प्रववृते युद्धं द्रोणस्य सह पाण्डवैः ॥३२॥
बलेरिव सुरैः पूर्वं त्रैलोक्यजयकांक्षया ।

अब पाण्डवों के साथ द्रोणाचार्य का इस ढंग से युद्ध होने लगा-जैसा त्रिलोकी की विजय की अभिलाषा से युद्ध करने वाले बलि दैत्य और देवों का युद्ध हुआ था ॥३२॥

ततः सायकजालेन पाण्डवानीकमावृणोत् ॥३३॥
भारद्वाजो महातेजा विव्याध च युधिष्ठिरम् ।

अब भरद्वाज-वंशोत्पन्न महा-तेजस्वी द्रोणाचार्य ने अपने बाण जाल से सारी पाण्डव सेना को पाट दिया और राजा युधिष्ठिर को भी आहत कर दिया ॥३३॥

सात्यकिं दशभिर्बाणैर्विंशत्या पार्षतं शरैः ॥३४॥
भीमसेनं च नवभिर्नकुलं पञ्चभिस्तथा।
सहदेवं तथाऽष्टाभिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥३५॥
द्रौपदेयान्महाबाहुः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः।
विराटं मत्स्यमष्टाभिद्रु पदं दशभिः शरैः ॥३६॥
युधामन्युं त्रिभिः षड्भिरुत्तमौजसमाहवे।
अन्यांश्च सैनिकान्विद्ध्वा युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥३७॥

महाबाहु आचार्य द्रोण, दश बाणों से सात्यकि, बीस से पर्षत-वंशोद्भव धृष्टद्युम्न, नौ से भीमसेन, पांच से नकुल, आठ से सहदेव, सौ से शिखण्डी, पांच २ बाणों से पांचो द्रोपदी के पुत्र, आठ से मत्स्याधिपति विराट, दश से राजा द्रुपद, तीन से युधामन्यु, छः से उत्तमौजा तथा इसी तरह अन्य पाण्डववीरों को रण में आहत करके धर्मराज युधिष्ठिर पर दौड़े ॥३४-३७॥

ते वध्यमाना द्रोणेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः।
प्राद्रवन्वै भयाद्राजन्सार्तनादा दिशो दश ॥३८॥

हे राजन्! द्रोणाचार्य द्वारा क्षतविक्षत किए हुए पाण्डवों के सेनापति चिल्लाते हुए भय के साथ दशों दिशाओं को भाग गए।

काल्यमानं तु तत्सैन्यं दृष्ट्वा द्रोणेन फाल्गुनः ।
किञ्चिदागतसंरम्भो गुरुं पार्थोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥३९॥

जब अर्जुन ने देखा, कि आचार्य द्रोण से सारी पाण्डवसेना इधर उधर भाग रही है, उनको कुछ आवेश आ गया और वे वेग से अपने गुरु द्रोण पर झपटे ॥३९॥

दृष्ट्वा द्रोणस्तु बीभत्सुमभिधावन्तमाहवे ।
संन्यवर्तत तत्सैन्यं पुनर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥४०॥

जब द्रोणाचार्य ने रण में दौड़कर आते हुए अर्जुन को देखा-तो वे फिर उसी अर्जुन की सेना की ओर लौटे और उसी समय राजा युधिष्ठिर की सेना भी लौट पड़ी ॥४०॥

ततो युद्धमभूद्भूयो भारद्वाजस्य पाण्डवैः ।
द्रोणस्तव सुतै राजन्सर्वतः परिवारितः ॥४१॥
व्यधमत्पाण्डुसैन्यानि तूलराशिमिवाऽनलः ।

हे राजन्! अब भरद्वाज-पुत्र द्रोण और पाण्डवों का युद्ध होने लगा। द्रोणाचार्य को तुम्हारे पुत्रों ने सब ओर से घेर कर सुरक्षित कर रखा था। आचार्य द्रोण, रुई की ढेरी को आग की भांति इस समय पाण्डव सेना को भस्म करने लगे ॥४१॥

तं ज्वलन्तमिवाऽऽदित्यं दीप्तानलसमद्युतिम् ॥४२॥
राजन्ननिशमत्यन्तं दृष्ट्वा द्रोणं शरार्चिषम् ।
मण्डलीकृतधन्वानं तपन्तमिव भास्करम् ॥४३॥
दहन्तमहितान्सैन्ये नैनं कश्चिदवारयत् ।

हे राजन् ! सूर्य के समान देदीप्यमान, अग्नि के तुल्य प्रदीप्त, बाणरूपी ज्वालाओं से लगातार अत्यन्त जाज्वल्यमान, मध्याह्न काल के सूर्य के समान धनुष का मण्डल बनाकर प्रदीप्त हुए और शत्रुओं को दग्ध करते हुए द्रोणाचार्य को उस समय पाण्डव सेना का कोई भी वीर नहीं रोक सका ॥४२-४३॥

यो यो हि प्रमुखे तस्य तस्थौ द्रोणस्य पूरुषः ॥४४॥
तस्य तस्य शिरश्छित्वा ययुर्द्रोणशराः क्षितिम् ।

जो २ महारथी वीर या सैनिक, आचार्य के सन्मुख आया, उसी २ के शिर को काटकर द्रोण के बाण पृथ्वी में घुस गए ॥४४॥

एवं सा पाण्डवी सेना वध्यमाना महात्मना ॥४५
प्रदुद्राव पुनर्भीता पश्यतः सव्यसाचिनः ।

इस प्रकार महाशक्तिशाली द्रोणाचार्य से आहत की गई पाण्डवों की सेना भयभीत होकर भाग निकली और अर्जुन इस दृश्य को अपनी आंखों से खड़ा २ देखता रहा ॥४५॥

सम्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेन निशि भारत ॥४६॥
गोविन्दमब्रवीज्जिष्णुर्गच्छ द्रोणरथं प्रति ।

हे भारत ! जब इस रात्रि युद्ध में द्रोण द्वारा अपनी सेना को भगाई हुई देखा-तो अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा-अब तुम सब से प्रथम द्रोणाचार्य के रथ की ओर बढ़ो ॥४६॥

ततो रजतगोक्षीरकुन्देन्दुसदृशप्रभान् ॥४७॥
चोदयामास दाशार्हो हयान्द्रोणरथं प्रति ।

अब चांदी, गोदुग्ध, चमेली, और चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण धारी अश्वों को दशार्हवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने द्रोण के रथ के प्रति दौड़ाया ॥४७॥

भीमसेनोऽपि तं दृष्ट्वा यान्तं द्रोणाय फाल्गुनम् ॥
स्वसारथिमुवाचेदं द्रोणानीकाय मां वह ।

जब भीमसेन ने अर्जुन को द्रोणाचार्य की ओर बढ़ते देखा-तो उसने भी अपने सारथि से कहा-कि तुम मुझे भी द्रोणाचार्य की सेना की ओर ले चलो ॥४८॥

सोऽपि तस्य वचः श्रुत्वा विशोको वाहयद्धयान् ॥
पृष्ठतः सत्यसन्धस्य जिष्णो भरतसत्तम ।

हे भरत सत्तम ! भीमसेन का सारथि विशोक भी भीमसेन के वचन सुनकर अपने २ अश्वों को सत्य-प्रतिज्ञ अर्जुन के पीछे ले चला ॥४९॥

तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ यत्तौ द्रोणानीकमभिद्रुतौ ॥५०॥
पञ्चालाः सृञ्जया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः ।
अन्वगच्छन्महाराज केकयाश्च महारथाः ॥५१॥

हे महाराज ! जब दोनों भ्राता भीम और अर्जुन को बड़ी सावधानी से द्रोणाचार्य की सेना की ओर बढ़ते देखा-तो पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य चेदि, कारूष, कोसल और महारथी केकयवीर, भी इनके पीछे २ हो लिए ॥५०-५१॥

ततो राजन्नभूद्घोरः संग्रामो लोमहर्षणः ।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ॥५२॥
महद्‌भ्यां रथवृन्दाभ्यां बलं जगृहतुस्तव ।

हे राजन् ! अब महावीर लोमों को खड़ा कर देने वाला युद्ध होने लगा। इस युद्ध में अर्जुन दांयी ओर और भीमसेन बांयी ओर थे। इन्होंने बड़ी भारी रथसेना के साथ तुम्हारी सेना को घेर लिया ॥५२॥

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ भीमसेनधनञ्जयौ ॥५३॥
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययाद्राजन्सात्यकिश्च महाबलः ।

हे राजन् ! जब पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन और अर्जुन को आगे बढ़ते देखा-तो द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न और महाबलवान् सात्यकि भी आगे बढ़े ॥५३॥

चण्डवाताभिपन्नानामुदधीनामिव स्वनः ॥५४॥
आसीद्राजन्बलौघानां तदाऽन्योन्यमभिघ्नताम् ।

हे राजन् ! अब दूसरे पर आघात करने वाले इन सैनकों में इतना घोर कोलाहल हो रहा था, जैसे-प्रचण्ड-वायु से समुद्र में शब्द उठा दिया गया हो ॥५४॥

सौमदत्तिवधात्क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ॥५५॥
द्रौणिरभ्यद्रवद्राजन्वधाय कृतनिश्चयः ।

हे राजन् ! सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा के वध से कुपित हुए द्रोणपुत्र अश्वत्थामा भी रण में सात्यकि को देखकर उसके वध का निश्चय कर वधकर देने को आगे लपका ॥५५॥

तमापयन्तं सम्प्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति ॥५६॥
भैमसेनिः सुसंक्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत् ।

अश्वत्थामा को शिनिपौत्र सात्यकि के रथ की ओर बढ़ता देखकर भीमसेन का पुत्र, घटोत्कच, क्रोध के साथ अपने शत्रु अश्वत्थामा को रोकने लगा ॥५६॥

कार्ष्णायसं महाघोरमृक्षचर्मपरिच्छदम् ॥५७॥
महान्तं रथमास्थाय त्रिंशन्नल्वान्तरान्तरम् ।
विक्षिप्तयन्त्रसन्नाहं महामेघौघनिःस्वनम् ॥५८॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैर्न हयैर्नाऽपि वारणैः ।
विक्षिप्तपक्षचरणविवृताक्षेण कूजता ॥५९॥
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजितम् ।
लोहितार्द्रपताकं तु अन्त्रमालाविभूषितम् ॥६०॥
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय विपुलं रथम् ।
शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥६१॥
रक्षसां घोररूपाणामक्षौहिण्या समावृतः ।

घटोत्कच का रथ बड़े दृढ़ लोह का बना हुआ था, जो बड़ा भीषण दिखाई देता था और जिसमें रीछकी खाल बिछी हुई थी। इसमें बैठने का स्थान तीसनल्व के परिमाण में था। इसमें यन्त्र सञ्चालन कवचका काम कर रहा था और इस रथ के चलने से महामेघ की सी ध्वनि होती थी। इसमें हाथी के बराबर ऊँचे अश्व जुते थे, जिनको न तो हाथी ही और न अश्व ही कहा जा सकता है।

अपने चरण और पक्ष फैलाकर खुली आखों वाले शब्द करते हुए गीधपक्षी के चिन्ह से अङ्कित बड़े ऊँचे दण्डे में लगी हुई ध्वजा से यह रथ मण्डित था। इसमें लाल गीली झंडियां लगी थी और आंतों की मालाएँ लटका रखी थी। इस आठ पहियों के रथ में बैठकर शूल और मुद्गर धारण करने वाली तथा पर्वत और वृक्षों को हाथ में उठाये हुए घोर रूप वाली राक्षसों की सेना से युक्त होकर घटोत्कच आगे बढ़ा ॥५७॥

तमुद्यतमहाचापं निशम्य व्यथिता नृपाः ॥६२॥
युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।

महा धनुष को उठाये हुए घटोत्कच को आगे बढ़ता देखकर राजा लोग बड़े व्यथित हुए। यह प्रलय काल में दण्डपाणि काल सा प्रतीत होता था ॥६२॥

ततस्तं गिरिशृङ्गाभं भीमरूपं भयावहम् ॥६३॥
दंष्ट्राकरालोग्रमुखं शंकुकर्णं महाहनुम् ।
ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं दीप्तास्यं निम्नितोदरम् ॥६४॥
महाश्वभ्रगलद्वारं किरीटच्छन्नमूर्धजम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥६५॥
वीक्ष्य दीप्तमिवाऽऽयान्तं रिपुविक्षोभकारिणम् ।
तमुद्यतमहाचापं राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥६६॥
भयार्दिता प्रचुक्षोभ पुत्रस्य तव वाहिनी ।
वायुना क्षोभितावर्ता गंगेवोर्ध्वतरङ्गिणी ॥६७॥

पर्वतकी चोटी के समान भयावह और भीषण आकारधारी, दंष्ट्राओं से कराल मुख और शंकु से कान तथा बड़ी ठोडी, खड़े बाल, भीषण आंख, दीप्त मुख और नीचे पेट वाले, राक्षस घटोत्कच को देखकर तुम्हारी सेना भय से व्याकुल हो उठी। इस राक्षसराज के गलका द्वार एक भीषण बड़े भारी गढ़े के सदृश था। इसके बाल राक्षसोचित मुकुट से ढके थे। इसके देखते ही सारे प्राणी डर जाते थे, जो काल के तुल्य मुख फैलाए हुए था। यह प्रदीप्त आग की भांति बढ़ रहा था, जिसको देखकर शत्रुओं की व्याकुलता बढ़ जाती थी। इसने एक विशाल धनुष ग्रहण कररखा था, जिसको देखकर भय से तुम्हारी सेना इस तरह कांप उठी,जैसे-बाण से आवर्त उठाती हुई ऊँची २ लहरों के साथ गङ्गा कांप रही हो।

घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ॥६८॥

जब राक्षसराज घटोत्कच ने सिंहनाद किया-तो उससे भयभीत होकर हाथी मूतने लगे और सारे योद्धा अत्यन्त भयातुर होगए।

ततोऽश्मवृष्टिरत्यर्थमासीत्तत्र समन्ततः।
सन्ध्याकालाधिकबलैः प्रयुक्ता राक्षसैः क्षितौ ॥६९॥

रात्रि के समय राक्षसों का बल बढ़ जाता है, इसमें यह राक्षस सेना सब ओर से रणभूमि में पत्थरों की वर्षा करने लगी ॥६९॥

आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः प्रासतोमराः।
पतन्त्यविरताः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥७०॥

अब सब ओर लोह के चक्र, भुशुण्डी, प्रास, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश नामक शस्त्र लगातार चलने लगे ॥७०॥

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः ।
तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन्दिशः ॥७१॥

हे राजन ! तुम्हारे पक्ष के राजा लोग, तुम्हारे पुत्र और कर्ण, इस उग्र और अत्यन्त भयानक युद्ध को देखकर बड़े व्यथित हुए और इनमें बहुत से दिशा छोड़ कर भाग निकले ॥७१॥

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रौणिर्मानी न विव्यथे ।
व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् ॥७२॥

इनमें अपने बल का अभिमान रखने वाला, एक द्रोणपुत्र व्याकुल नहीं हुआ। उसने अपने अस्त्रों के बल से राक्षसराज घटोत्कच की मायाको छिन्न-भिन्न कर दिया ॥७२॥

विहतायां तु मायायाममर्षी स घटोत्कचः ।
विससर्ज शरान्घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन् ॥७३॥

जब अश्वत्थामा ने घटोत्कच की माया का नाश कर दिया तो क्रोध में भरा हुआ राक्षसराज घटोत्कच, महावीर बाण छोड़ने लगा, जो अश्वत्थामा के शरीर में प्रवेश करने लगे ॥ ७३ ॥

भुजगा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्छिताः ।
ते शरा रुधिराक्तांगा भित्त्वा शारद्वतीसुतम् ॥७४॥
विविशुर्धरणीं शीघ्रा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।

हे राजन् ! क्रोधपूर्वक छोड़ने के कारण लपलपाते हुए रक्त में भीगे हुए घटोत्कच के सुवर्णमूलवाले शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाण, शरद्वान् की पुत्री के पुत्र अश्वत्थामा को बींध कर उस तरह वेग से पृथ्वी में घुस गए-जैसे सर्प, वेग से बल्मीक में घुस जाते हैं ॥ ७४ ॥

अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥७५॥
घटोत्कचमभिक्रुद्धं बिभेद दशभिः शरैः ।

महाप्रतापी शीघ्रता से बाण फैंकने में समर्थ, अश्वत्थामा बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने क्रोध में भरे हुए घटोत्कच को दश बाणों से बींध लिया ॥ ७५ ॥

घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ॥७६॥
चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ॥७७॥
अश्वत्थाम्नि स चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया ।

जब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने घटोत्कच के मर्मस्थानों को बहुत बींध दिया तो उसने अत्यन्त दुःखी होकर सैकड़ों हजारों अरों को धारण करने वाले एक विशाल छूरे के सदृश तीक्ष्ण, बाल सूर्यवत् चमकीले मणि और हीरों से विभूषित चक्र नामक अस्त्र को उठाया और अश्वत्थामा के मार देने की इच्छा से भीमसेन पुत्र घटोत्कच ने उसे अश्वत्थामा पर फैंका ॥७६-७७॥

वेगेन महतागच्छद्विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः ॥७८॥
अभाग्यस्येव सङ्कल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि ।

वह फेंका हुआ चक्र बड़े वेग में अश्वत्थामा की ओर चला, परन्तु अश्वत्थामा ने उसे अपने बाणों से व्यर्थ कर दिया। वह चक्र भाग्यहीन पुरुष के सङ्कल्प की तरह निष्फल होकर भूमि में गिर गया ॥७८॥

घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥७९॥
द्रौणिं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् ।

जब घटोत्कच ने देखा, कि उसका चक्र कट कर गिर गया, तो उसने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को अपने बाणों से इस तरह ढक दिया-जैसे राहु सूर्य को ढक लेता है ॥७९॥

घटोत्कचसुतः श्रीमान्भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥८०॥
रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाऽद्रिराट् ।
पौत्रेण भीमसेनस्य शरैरञ्जनपर्वणा ॥८१॥
बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिमेरुरिवाऽऽवृतः ।

अञ्जन के पर्वत के खण्ड के सदृश श्रीमान् घटोत्कच का पुत्र अञ्जनपर्वा, जो भीमसेन का पौत्र होता था, उसने आते हुए अश्वत्थामा को अपने बाणों से पर्वत की भांति रोक दिया। यह बाण धाराओं से इस तरह सुशोभित हो रहा था, जैसे-मेघ धारा से पर्वत सुशोभित होता है ॥ ८०-८१ ॥

अश्वत्थामा त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥८२॥

ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाऽञ्जनपर्वणः ।
द्वाभ्यां तु रथयन्तारौ त्रिभिश्चाऽस्य त्रिवेणुकम् ॥८३॥
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।

अश्वत्थामा भी रुद्र, उपेन्द्र और इन्द्र के समान पराक्रमी था । इसने कुछ भी न सटा-पटाकर रामबाण से अञ्जनपर्वा की ध्वजा को काट डाला । फिर अश्वत्थामा ने दो बाण मार कर रथ और सारथि तथा तीन बाणों से रथ के तीनों बांस, एक बाण से धनुष और चार बाणों से चारों अश्वों को छेद दिया ॥८२-८३॥

विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिराचितम् ॥८४॥
विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाऽकरोत् ।

जब अञ्जनपर्वा रथहीन हो गया, तो उसने अपने हाथ में खड्ग उठाया, जो सुवर्ण बिन्दुओं से व्याप्त था । अश्वत्थामा ने उस खड्ग के भी अपने तीक्ष्णबाण से काट कर दो खण्ड कर दिए ॥८४॥

गदां हेमाङ्गदां राजंस्तूर्णं हैडिम्बिसूनुना ॥८५॥
भ्राम्योत्क्षिप्ता शरैः साऽपि द्रौणिनाऽभ्याहताऽपत

हे राजन् ! अब घटोत्कच-पुत्र अञ्जनपर्वा ने सुवर्ण के आभूषणों से सुशोभित गदा उठाई और उसे घुमा कर अश्वत्थामा पर वेग से फेंका—परन्तु अश्वत्थामा ने उसे भी काट दिया और वह भूमि में गिर गई ॥ ८५ ॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्प्लुत्य कालमेघ इवोन्नदत् ॥८६॥
ववर्षाऽञ्जनपर्वा स द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।

अब अञ्जनपर्वा आकाश में उड़ गया और कालमेघ के तुल्य गर्जना करता हुआ आकाशतल से द्रुमसमूह की वर्षा करने लगा ॥ ८६ ॥

ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि ॥८७॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांऽशुभिः ।

इसके अनन्तर मायावी घटोत्कच-पुत्र अञ्जनपर्वा को द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने आकाश में ही इस तरह वींध दिया—जैसे बादलों को सूर्य अपनी किरणों से वींध लेता है ॥ ८७ ॥

सोऽवतीर्य पुरस्तस्थौ रथे हेमविभूषिते ॥८८॥
महीगत इवाऽत्युग्रः श्रीमानञ्जनपर्वतः ।

अब अञ्जनपर्वा सुवर्ण विभूषित रथ में बैठ कर आगे इस तरह खड़ा हो गया जैसे-अत्यन्त ऊंचा, कान्तिमान अञ्जन का पर्वत पृथिवी पर उतर आया हो ॥ ८८ ॥

तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ॥८९॥
जघानाऽञ्जनपर्वाणं महेश्वर इवाऽन्धकम् ।

अब अश्वत्थामा ने अन्धकासुर को महेश्वर की भांति, भीमसेन के पौत्र लोहमय कवचधारी अञ्जनपर्वा को मार डाला ॥८९॥

अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम् ॥९०॥
द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात्प्रज्वलिताङ्गदः ।
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम् ॥ ९१ ॥
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोच्छ्रितम् ।

अश्वत्थामा द्वारा महाबली अपने पुत्र अञ्जनपर्वा को मृत देखकर प्रज्वलित अङ्गारों के धारण करने वाला, घटोत्कच, रोष से अश्वत्थामा के पास जाकर बिना किसी घबराहट से शारद्वती के पुत्र अश्वत्थामा से कहने लगा। इस समय अश्वत्थामा पाण्डवसेना को इस भांति दग्ध कर रहा था, जैसे गहन वन को अग्नि भस्म कर रहा हो॥ ६०-६१॥

घटोत्कच उवाच-तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि॥६२

त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा।

घटोत्कच ने कहा—हे द्रोण-पुत्र! ठहर? ठहर? मेरे जीवित रहने पर तू जीवित नहीं जा सकता। अब मैं भी क्रौंच पर्वत को अग्नि-पुत्र कार्तिकेय की भांति तुझे अभी नष्ट भ्रष्ट किये देता हूं।

अश्वत्थामोवाच-गच्छ वत्स सहाऽन्यैस्त्वं युध्यस्वाऽमरविक्रम६३

नहि पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यः प्रबाधितुम्।

कामं खलु न रोषो मे हैडिम्बे विद्यते त्वयि॥ ६४॥

किं तु रोषान्वितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत।

अश्वत्थामा बोले—हे देवों के तुल्य पराक्रम करने वाले, वत्स! तू जा और अन्यों के साथ युद्ध कर। हे घटोत्कच! पुत्र को चाहिए, कि वह पिता को व्यथा न पहुंचावे। हे हिडिम्बा-पुत्र! तू कितना भी कर, परन्तु मेरा तुझ पर कोई क्रोध नहीं है। जो

कोई भी प्राणी क्रोधातुर होता है,वह तो अपने को भी मार बैठता है ॥ ६३-६४ ॥

सञ्जय उवाच—श्रुत्वैतत्क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकसमन्वितः ६५

अश्वत्थामानमायस्तो भैमसेनिरभाषत ।

किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवाऽऽहवे ॥ ६६ ॥

यन्मां भीषयसे वाग्भिरसदेतद्वचस्तव ।

भीमात्खलु समुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले ॥ ६७ ॥

पाण्डवानामहं पुत्रः समरेष्वनिवर्तिनाम् ।

रक्षसामधिराजोऽहं दशग्रीवसमो बले ॥ ६८ ॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।

युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ६९ ॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन् ! इतना सुनकर पुत्र के शोक से लाल आंखों वाला भीमसेन का पुत्र घटोत्कच, शीघ्रतापूर्वक अश्वत्थामा से बोला—हे अश्वत्थामा ! क्या मैं कायर हूं, जो साधारण मनुष्य की भांति मुझसे बातचीत करता है और कोरी बातचीतों से ही मुझे रण में भयभीत कर देना चाहता है। तुम्हारी यह चेष्टा ठीक नहीं है। मैं कौरवों के विशाल कुल में भीमसेन द्वारा उत्पन्न हूँ। युद्ध में पीछे नहीं हटने वाले पाण्डवों का मैं वंशज हूँ। मैं राक्षसों का राजा और बल में दशग्रीव रावण के समान बली हूं। हे द्रोण-पुत्र ! अब तू ठहर जा, मेरे रहते हुए तू जीवित नहीं जा सकता। इस रणाजिर में आज मैं तेरे युद्ध के प्रेम को नष्ट कर दूंगा ॥ ६५-६९ ॥

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः सुमहाबलः ।
द्रौणिमभ्यद्रवत्क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥ १०० ॥

हे राजन् ! इतना कह कर क्रोध से लाल आंखों वाला, महाबली राक्षसराज, घटोत्कच, क्रोध में भर कर हाथी पर सिंह की भांति अश्वत्थामा पर झपटा ॥ १०० ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥ १०१ ॥

हे भारत ! रथ के अक्षों के परिमाण वाले लम्बे २ मोटे बाणों की रथियों में श्रेष्ठ अश्वत्थामा पर घटोत्कच ने—इस तरह झड़ी लगा दी, जैसे धाराओं से बादल पर्वत पर बरसता हो ॥१०१॥

शरवृष्टिं शरैर्द्रौणिरप्राप्तां तां व्यशातयत् ।
ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाऽभवत् ।१०२।

इस बाणवर्षा को द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपने समीप आने से पूर्व ही काट गिराया। इस समय आकाश में बाणों का दूसरा संग्राम सा होने लगा ॥ १०२ ॥

अथाऽस्त्रसंमर्दकृतैर्विस्फुलिङ्गैस्तदा बभौ ।
विभावरीमुखे व्योम खद्योतैरिव चित्रितम् ॥१०३॥

इस समय जब अस्त्रों का संघर्ष हो रहा था, तो उनके टकराने से उनसे आग की चिनगारी निकल रही थी। रात्रि के समय इन चिनगारियों से आकाश खद्योतों (जुगनू) से व्याप्त सा दिखाई देता था ॥ १०३ ॥

निशाम्य निहतां मायां द्रौणिना रणमानिना ।
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जाऽन्तर्हितः पुनः ॥१०४॥

रण में वीरता का अभिमान रखने वाले, अश्वत्थामा द्वारा अपनी माया का विनाश देखकर घटोत्कच ने अलक्षित होकर फिर माया रचना आरम्भ किया ॥ १०४ ॥

सोऽभवद्गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसङ्कटैः ।
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ॥१०५॥

अब घटोत्कच वृक्षों से व्याप्त, शिखरों से युक्त, एक अत्यन्त ऊंचा पर्वत होकर दिखाई देने लगा। जिससे शूल, प्रास, खड्ग, मुसल आदि शस्त्ररूपी जलों के झरने निकल रहे थे ॥१०५॥

तमञ्जनगिरिप्रख्यं द्रौणिर्दृष्ट्वा महीधरम् ।
प्रपतद्भिश्च बहुभिः शस्त्रसङ्घैर्न विव्यथे ॥१०६॥

अश्वत्थामा ने अञ्जन के पर्वत के समान एक विशाल पर्वत अपने सामने देखा, जो बहुत से गिरते हुए शस्त्र सङ्घ से भी विचलित नहीं हो रहा था ॥ १०६ ॥

ततो हसन्निव द्रौणिर्वज्रमस्त्रमुदैरयत् ।
स तेनास्त्रेण शैलेन्द्रः क्षिप्तः क्षिप्रं व्यनश्यत ॥१०७॥

अब हंसते हुए अश्वत्थामा ने वज्र नामक अस्त्र का प्रहार किया, उस वज्रास्त्र के प्रहार से झटपट वह पर्वत विलीन हो गया ॥ १०७ ॥

ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ।
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रो द्रौणिमाच्छादयद्रणे ॥१०८॥

अब घटोत्कच, फिर नीला मेघ बना, जिसमें इन्द्रायुध चमक रहा था। इसने पत्थरों की वर्षा करके अश्वत्थामा को बिलकुल ढक दिया ॥ १०८ ॥

अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
व्यधमद् द्रोणतनयो नीलमेघं समुत्थितम् ॥१०९॥

अब अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अश्वत्थामा ने वायव्य अस्त्र को चढ़ाकर उस उमड़ते हुए नीले मेघ को वहीं छिन्न भिन्न कर दिया ॥ १०९ ॥

स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ।
शतं रथसहस्राणां जघान द्विपदां वरः ॥११०॥

अब द्रोण-पुत्र मनुजश्रेष्ठ अश्वत्थामा ने सब ओर से अपने बाणजाल से दिशाओं को आच्छादित करके कई सौ रथों को नष्ट कर डाला ॥ ११०

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेनाऽऽयतकार्मुकम् ।
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥१११॥
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तद्विरदविक्रमैः ।
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैरपि ॥ ११२ ॥
विकृतास्यशिरोग्रीवैर्हिडिम्बानुचरैः सह ।
पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥ ११३ ॥
नानाशस्त्रधरैर्वीरर्नानाकवचभूषणैः ।
महाबलैर्भीमरवैः संरम्भोद्वृत्तलोचनैः ॥ ११४ ॥

उपस्थितांस्ततो युद्धे राक्षसेषु दुर्मदैः ।
विषण्णमभिसम्प्रेक्ष्य पुत्रं ते द्रौणिरब्रवीत् ॥ ११५ ॥

अश्वत्थामा ने फिर लम्बे धनुष के धारण करने वाले, निडर, बहुत से राक्षसों से घिरे हुए राक्षसराज घटोत्कच को रथ के द्वारा आता देखा। इन राक्षसों में सिंह, शार्दूल और मदोत्कट हाथियों का सा पराक्रम था, जिनमें कोई तो हाथी, कोई रथ और कोई अश्वों की पृष्ठों पर सवार थे। इन हिडिम्ब राक्षस के अनुचर राक्षसों में बहुतों की हड्डी, शिर और ग्रीवा टेढ़ी-मेढ़ी थी और बहुत से रावणवंशोद्भव राक्षस इन्द्र के समान पराक्रमी और तमोगुण में भरे हुए थे। इन्होंने अनेक ढंग के शस्त्र धारण और अनेक ढंग के कवच पहिन रखे थे। ये महाबली, भीषण शब्द करने वाले थे, जिनकी आंखें क्रोध में भरी हुई फटी २ सी दिखाई देती थी। इन युद्धदुर्मद राक्षसों को उपस्थित देखकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन उदास हो गया— उसको निष्छाय देखकर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा इस प्रकार कहने लगा ॥ १११-११५ ॥

तिष्ठ दुर्योधनाद्य त्वं न कार्यः संभ्रमस्त्वया ।
सहैभिर्भ्रातृभिर्वीरैः पार्थिवैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥ ११६ ॥
निहनिष्याम्यमित्रांस्ते न तवाऽस्ति पराजयः ।
सत्यं ते प्रतिजानामि पर्याश्वासय वाहिनीम् ॥ ११७ ॥

हे दुर्योधन! तुम शान्त चित्त से इन्द्र के तुल्य पराक्रमी अपने इन भाइयों के साथ चुपचाप बैठे रहो; घबड़ाओ नहीं। मैं

तुम्हारे शत्रुओं को अभी मार गिराता हूं—तुम्हारा कभी पराजय नहीं हो सकता है। मैं तुम से सत्य प्रतिज्ञा करता हूं-तुम अपनी सेना का आश्वासन बनाये रहो ॥ ११६-११७॥

दुर्योधन उवाच- न त्वेतदद्भुतं मन्ये यत्ते महदिदं मनः ।

अस्मासु च परा भक्तिस्तव गौतमिनन्दन ॥ ११८ ॥

दुर्योधन ने कहा—हे गौतमिनन्दन ! तुम्हें विजय कर दिखाना कोई अद्भुत बात नहीं है, क्योंकि तुम्हारा मन बहुत विशाल है और इसी तरह आपकी हम पर अनुग्रह या भक्ति भी बहुत है ॥ ११८ ॥

सञ्जय उवाच- अश्वत्थामानमुक्त्वैवं ततः सौबलमब्रवीत् ।

वृतो रथसहस्रेण हयानां रणशोभिनाम् ॥ ११९ ॥

षष्ट्या रथसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धनञ्जयम् ।

कर्णश्च वृषसेनश्च कृपो नीलस्तथैव च ॥ १२० ॥

उदीच्याः कृतवर्मा च पुरुमित्रः सुतापनः ।

दुःशासनो निकुम्भश्च कुण्डभेदी पराक्रमः ॥ १२१॥

पुरंजयो दृढरथः पताकी हेमकम्पनः ।

शल्यारुणीन्द्रसेनाश्च सञ्जयो विजयो जयः ॥ १२

कमलाक्षः परक्राथी जयवर्मा सुदर्शनः ।

एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तिनामयुतानि षट् ॥ १२३

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इस प्रकार अश्वत्थामा से कह व सुबल-पुत्र शकुनि से कहने लगा—हे मातुल ! तुम एक सह

रथों से युक्त होकर आये हुए अर्जुन पर कई सहस्र रथ और साठ सहस्र अश्व लेकर आक्रमण करो। कर्ण, उसका पुत्र वृषसेन, कृप, नील, उदीच्यवीर, कृतवर्मा, पुरुमित्र, सुतापन, दुःशासन, निकुम्भ, कुण्डभेदी, पराक्रम, पुरञ्जय, पताकी, हेमकम्पन, शल्य, आरुणि, इन्द्रसेन, सञ्जय, विजय, जय, कमलाक्ष, परक्राथी, जयवर्मा और सुदर्शन आदि महावीर, साठ हजार पैदल सैनिक लेकर तुम्हारे साथ २ चलेंगे॥ ११६-१२३॥

जहि भीमं यमौ चोभौ धर्मराजं च मातुल।
असुरानिव देवेन्द्रो जयाशा मे त्वयि स्थिता॥ १२४॥

हे मातुल! असुरों को इन्द्र के समान तुम, भीमसेन, नकुल, सहदेव या युधिष्ठिर को मार गिराओ—मुझे तुम पर विजय का बहुत भरोसा है॥ १२४॥

दारितान्द्रौणिना बाणैर्भृशं विक्षतविग्रहान्।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः॥ १२५॥

हे मातुल! जब अश्वत्थामा इनको अपने बाणों से अत्यन्त छेद डाले और इनके शरीर क्षत विक्षत हो जावें, तब तुम राक्षसों को अग्नि पुत्र स्कन्द की भांति कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिरादि को मार कर परलोक भेज देना॥ १२५॥

एवमुक्तो ययौ शीघ्रं पुत्रेण तव सौबलः।
पिप्रीषुस्ते सुतान्राजन्दिधक्षुश्चैव पाण्डवान्॥ १२६॥

हे राजन्! जब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने इतना कहा—तो

सुबल-पुत्र शकुनि तुम्हारे-पुत्र को प्रसन्न करने और पाण्डवों को दग्ध करने की इच्छा से शीघ्र चला गया ॥ १२६ ॥

अथ प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ।
विभावर्यां सुतुमुलं शक्रप्रल्हादयोरिव ॥ १२७ ॥

हे भरतर्षभ ! अब अश्वत्थामा और राक्षसराज घटोत्कच का रणाङ्गण में रात के समय इन्द्र और प्रह्लाद के युद्ध के तुल्य भीषण युद्ध होने लगा ॥ १२७ ॥

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गौतमीसुतम् ।
जघानोरसि संक्रुद्धो विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः ॥ १२८ ॥

अब घटोत्कच ने गौतमी-पुत्र अश्वत्थामा के वक्षस्थल में दश दृढ़ बाणों द्वारा गाढ़ा प्रहार किया, ये बाण विष और अग्नि के तुल्य प्रदीप्त थे ॥ १२८ ॥

स तैरभ्याहतो गाढं शरैर्भीमसुतेरितैः ।
चचाल रथमध्यस्थो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ १२९ ॥

भीमसेन के पुत्र घटोत्कच के बाणों द्वारा अत्यन्त आहत हुआ अश्वत्थामा, रथ के मध्य में इस तरह कंपित हो उठा, जैसे वायु से वृक्ष कम्पायमान कर दिया जाता है ॥ १२९ ॥

भूयश्चाऽञ्जलिकेनाऽथ मार्गणेन महाप्रभम् ।
द्रौणिहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाऽऽशु घटोत्कचः ॥ १३०

अब घटोत्कच ने अञ्जलिक संज्ञक बाण से अत्यन्त कान्तिमान् अश्वत्थामा के हाथ में स्थित, धनुष को झटपट काट गिराया ।१३०।

ततोऽन्यद् द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं महत् ।
ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान्वारिधारा इवाऽम्बुदः ॥१३१॥

इसके अनन्तर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने युद्ध के भार को सहने वाला विशाल दूसरा धनुष उठाया और उससे इस तरह बाण वर्षा करने लगा—जैसे मेघ, जलधारा की झड़ी लगा देता है।

ततः शारद्वतीपुत्रः प्रेषयामास भारत ।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान्खचरान्खचरं प्रति ॥ १३२ ॥

हे भारत ! अब शारद्वती-पुत्र अश्वत्थामा ने सुवर्ण मूलधारी शत्रुनाशक, आकाशचारी बाणों को आकाशचारी राक्षस घटोत्कच के ऊपर छोड़ा ॥ १३२ ॥

तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥ १३३ ॥

अश्वत्थामा के बाणों से अर्दित, पुष्टवक्षस्थलधारी राक्षसों का यूथ, इस तरह व्याकुल हो उठा—जैसे सिंहों से हाथियों का समूह व्याकुल हो उठता है ॥ १३३ ॥

विधम्य राक्षसान्बाणैः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ददाह भगवान्वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥ १३४ ॥

जिस तरह भगवान् अग्निदेव, प्रलयकाल में भूतसंमूह को दग्ध कर देते हैं, उसी तरह अपने बाणों से अश्व, सारथि, रथ और हाथियों के साथ राक्षसों को अश्वत्थामा ने छिन्न भिन्न करके दग्ध कर डाला ॥ १३४ ॥

स दग्ध्वाऽक्षौहिणीं बाणैर्नैऋतीं रुरुचे नृप ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ १३५ ॥

हे नृप ! जिस तरह पूर्वकाल में आकाश में महेश्वर देव ने त्रिपुरासुर को दग्ध किया, उसी तरह अश्वत्थामा अपने बाणों से राक्षसों की अक्षौहिणी सेना का विध्वंस करके सुशोभित होने लगा ॥ १३५ ॥

युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्बणः ।
रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रस्तवाऽहितान् ॥ १३६ ॥

प्रलयकाल में सारे प्राणियों को भस्म करके जैसे उल्बण अग्नि प्रदीप्त होता है उसी तरह विजय करने वालों में श्रेष्ठ, द्रोण-पुत्र ने तुम्हारे शत्रुओं को दग्ध करके नष्ट कर दिया ॥ १३६ ॥

ततो घटोत्कचः क्रुद्धो रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
द्रौणिं हतेति महतीं चोदयामास तां चमूम् ॥१३७॥

अब घटोत्कच अपनी भयङ्कर कर्म करने वाली विशाल राक्षसी सेना पर उबल उठा और बोला—तुम लोग, शीघ्र द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा का वध करो ॥ १३७ ॥

घटोत्कचस्य तामाज्ञां प्रतिगृह्याऽथ राक्षसाः ।
दंष्ट्रोज्ज्वला महावक्त्रा घोररूपा भयानकाः ॥१३८॥
व्यात्ताननाः घोरजिह्वाः क्रोधताम्रेक्षणा भृशम् ।
सिंहनादेन महता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ १३९ ॥
हन्तुमभ्यद्रवन्द्रौणिं नानाप्रहरणायुधाः ।

राक्षसराज घटोत्कच की इस आज्ञा को ग्रहण करके राक्षस लोग अपने महान् सिंहनाद से पृथिवी को शब्दायमान करते हुए द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के मारने को उस पर बुरी तरह टूट पड़े। इन राक्षसों की चमकती हुई दाढ़ें और बड़े २ भयानक घोर रूपधारी मुख थे। ये लोग, उन मुखों को फाड़कर अपनी भीषण जिह्वा को लपलपा रहे थे। इनकी क्रोध से आंखें बहुत ही लाल हो रही थी। ये लोग अनेक भांति के अस्त्र-शस्त्रों को धारण किये हुए थे।

शक्तीः शतघ्नीः परिघानशनीः शूलपट्टिशान्. १४०
खड्गान्गदाभिन्दिपालान्मुसलानि परश्वधान्।
प्रासानसींस्तोमरांश्च कणपान्कम्पनाञ्छितान् ॥१४१॥
स्थूलान्भुशुण्ड्यश्मगदास्थूणान्कार्ष्णायसांस्तथा।
मुद्गरांश्च महाघोरान्समरे शत्रुदारणान् ॥ १४२ ॥
द्रौणिमूर्धन्यसंत्रस्ता राक्षसा भीमविक्रमाः।
चिक्षिपुः क्रोधताम्राक्षाः शतशोऽथ सहस्रशः॥१४३॥
तच्छस्त्रवर्षं सुमहद् द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि।
पतमानं समीक्ष्याऽथ योधास्ते व्यथिताऽभवन् १४४

भयानक पराक्रम कर दिखाने वाले, क्रोध से लाल आंखें बनाये हुए, निडर, सैंकड़ों हजारों राक्षस, शक्ति, शतघ्नी, परिघ, अशनि, शूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, भिन्दिपाल, मुसल, परश्वध, प्रास, खड्ग, तोमर, कणप, तीक्ष्ण कम्पन, बड़ी भुशुण्डी, पत्थर,

गदा, दृढ़ लोहे के बने स्थूण तथा शत्रुओं को चीर देने वाले महा घोर मुद्गरों को रण में अश्वत्थामा पर छोड़ने लगे। इस महा-घोर शस्त्रवर्षा को द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के मस्तक पर गिरती हुई देखकर तुम्हारे पक्ष के योद्धा बड़े ही व्यथित हुए ॥१४०-१४४॥

द्रोणपुत्रस्तु विक्रान्तस्तद्वर्षं घोरमुच्छ्रितम् ।
शरैर्विध्वंसयामास वज्रकल्पैः शिलाशितैः ॥१४५॥

द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा भी अत्यन्त घोर पराक्रमी थे, इस प्रकार की घोर बाणवर्षा को शिला पर तीक्ष्ण किये हुए वज्रोपम बाणों से उसने विध्वंस कर डाला ॥ १४५ ॥

ततोऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं स्वर्णपुङ्खैर्महामनाः ।
निजघ्ने राक्षसान्द्रौणिर्दिव्यास्त्राप्रतिमन्त्रितैः ॥१४६॥

इसके अनन्तर महामनस्वी द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने दिव्य अस्त्रों पर चढ़ाये हुए, सुवर्णमूलधारी अन्य तीखे बाणों से बड़ी शीघ्रता के साथ मार २ कर राक्षसों को बिछाने लगा ॥ १४६ ॥

तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥ १४७ ॥

अत्यन्त पुष्टवक्षस्थलधारी राक्षसों के यूथ, उन बाणों से इस तरह व्याकुल हो गए, जैसे—सिंहों से मदोन्मत्त हाथियों का झुंड व्यथित हो उठता है ॥ १४७ ॥

ते राक्षसाः सुसंक्रुद्धा द्रोणपुत्रेण ताडिताः ।
क्रुद्धाः स्म प्राद्रवन्द्रौणिं जिघांसन्तो महाबलाः १४८

द्रोण-पुत्र से ताड़ित हुए महावली राक्षस, क्रोध में भर गये और अश्वत्थामा को मार देने के लिए आवेश के साथ उस पर झपटे ॥ १४८ ॥

तत्राऽद्भुतमिमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ १४९ ॥
यदेको राक्षसीं सेनां क्षणाद् द्रौणिर्महास्त्रवित् ।
ददाह ज्वलितैर्बाणै राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥ १५० ॥

हे राजन ! इस समय सारे देव दानवादि व्यक्तियों से भी नहीं हो सकने वाले, महान् अद्भुत पराक्रम को उत्तम २ अस्त्रों के ज्ञाता द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने कर दिखाया। जो अकेले ने ही राक्षसी सेना को अपने प्रज्वलित बाणों से राक्षसेन्द्र घटोत्कच के देखते २ क्षण भर में भस्म कर दिया ॥ १४९-१५० ॥

स हत्वा राक्षसानीकं रराज द्रौणिराहवे ।
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्त्तक इवाऽनलः ॥ १५१ ॥

इस समय रण में द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, राक्षससेना का विध्वंस करके इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जैसे सारे प्राणियों को प्रलयकाल में दग्ध करते हुए, संवर्तक नामक अग्निदेव, प्रज्वलित दिखाई देते हैं ॥ १५१ ॥

तं दहन्तमनीकानि शरैराशीविषोपमैः ।
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु भारत ॥ १५२ ॥
नैनं निरीक्षितुं कश्चिदशक्नोद् द्रौणिमाहवे ।
ऋते घटोत्कचाद्वीराद्राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ॥ १५३ ॥

हे भारत ! सर्प के समान भीषण बाणों से सहस्रों पाण्डव राजाओं के सन्मुख राक्षसों की सेना को इस प्रकार दग्ध करते हुए अश्वत्थामा को रण में कोई देखने को भी समर्थ नहीं हो सका। हां ? महाबली राक्षसेन्द्र, अत्यन्त वीर एक घटोत्कच तो सन्मुख ही खड़ा रहा ॥ १५२-१५३ ॥

स पुनर्भरतश्रेष्ठ क्रोधादुद्भ्रान्तलोचनः ।
तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ॥ १५४ ॥
स्वं सूतमब्रवीत्क्रुद्धो द्रोणपुत्राय मां वह ।

हे भरतश्रेष्ठ ! अब घटोत्कच के भी नेत्र क्रोध से जल उठे। वह अपने हाथ से हाथ को मसल कर क्रोध से होंठ काटता हुआ, अपने सारथी से बोला, कि तू मुझे शीघ्र द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के सन्मुख ले चल ॥१५४॥

स ययौ घोररूपेण सुपताकेन भास्वता ॥ १५५ ॥
द्वैरथं द्रोणपुत्रेण पुनरप्यरिसूदनः ।

अब अरिमर्दन घटोत्कच, अपने उत्तम पताकाओं से युक्त घोररूपधारी रथ पर सवार हुआ और द्वन्द्व युद्ध के निमित्त द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के सन्मुख पहुंचा ॥ १५५ ॥

स विनद्य महानादं सिंहवद्भीमविक्रमः ॥ १५६ ॥
चिक्षेपाऽऽविध्य संग्रामे द्रोणपुत्राय राक्षसः ।
अष्टघण्टां महाघोरामशनिं देवनिर्मिताम् ॥ १५७ ॥
तामवप्लुत्य जग्राह द्रौणिर्न्यस्य रथे धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपुप्लुवे ॥१५८॥

सिंह के तुल्य महापराक्रम कर दिखाने वाले, घटोत्कच ने अत्यन्त गर्जना करके, आठ घण्टियों से युक्त, महाघोर, देव निर्मित अशनि को घुमाकर रण में द्रोण-पुत्र पर छोड़ी, परन्तु अश्वत्थामा ने अपना धनुष, रथ में रख कर और कूद कर उस अशनि को पकड़ लिया और उसे वापिस ही घटोत्कच के रथ पर फैंक दिया। यह देखकर घटोत्कच बड़े वेग से अपने रथ से कूद पड़ा ॥ १५६-१५८॥

साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा।
विवेश वसुधां भित्त्वा साऽशनिर्भृशदारुणा ॥१५९॥

यह अत्यन्त चमकीली महादारुण अशनि, राक्षसराज घटोत्कच के अश्व, सारथि और ध्वजासहित रथ को चकनाचूर करके पृथ्वी में घुस गई ॥ १५९ ॥

द्रौणेस्तत्कर्म दृष्ट्वा तु सर्वभूतान्यपूजयन्।
यदवप्लुत्य जग्राह घोरां शङ्करनिर्मिताम् ॥१६०॥

द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने उछल कर जो भगवान् शङ्कर निर्मित महाघोर अशनि नामक अस्त्र को पकड़ लिया, इसकी सारे प्राणियों ने बड़ी ही प्रशंसा की ॥ १६० ॥

धृष्टद्युम्नरथं गत्वा भैमसेनिस्ततो नृप।
धनुर्घोरं समादाय महदिन्द्रायुधोपमम्।
मुमोच निशितान्बाणान्पुनर्द्रौणेर्महोरसि ॥१६१॥

हे नृप ! अब भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न के रथ पर सवार होकर, इन्द्रधनुष के तुल्य विशाल एक

अन्य घोर धनुष को उठाया और उसके द्वारा वह अश्वत्थामा की विशाल छाती में तीक्ष्ण बाणों का प्रहार करने लगा ॥१६१॥

धृष्टद्युम्नस्त्वसंभ्रान्तो मुमोचाऽऽशीविषोपमान् ।
सुवर्णपुङ्खान्निशिखान्द्रोणपुत्रस्य वक्षसि ॥१६२॥

इधर धृष्टद्युम्न भी बिना किसी त्वरा के आशीविष (सर्प) के तुल्य भीषण सुवर्णमूलधारी बाणों को द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के वक्षस्थल में मारने लगा ॥ १६२ ॥

ततो मुमोच नाराचान्द्रौणिस्तांश्च सहस्रशः ।
तावप्यग्निशिखप्रख्यैर्जघ्नतुस्तस्य मार्गणान् ॥१६३॥

अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा भी सहस्रों बाण छोड़ने लगा। उन बाणों को भी अपनी अग्नि की ज्वाला के तुल्य बाणों से धृष्टद्युम्न और घटोत्कच दोनों नष्ट करने लगे ॥ १६३ ॥

अतितीव्रं महद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
योधानां प्रीतिजननं द्रौणेश्च भरतर्षभ ॥१६४॥

हे भरतर्षभ ! अश्वत्थामा और उन पुरुषप्रवीर धृष्टद्युम्न और घटोत्कच का अत्यन्त तीव्र महायुद्ध, योद्धाओं को अत्यन्त हर्ष उत्पन्न कर रहा था ॥ १६४ ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतैस्त्रिभिः ।
षड्भिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमागमत् ॥१६५॥

अब एक सहस्र रथ, तीन सौ हाथी और छः हजार अश्वारोहियों को लेकर भीमसेन उस स्थान पर पहुंचा ॥ १६५ ॥

ततो भीमात्मजं रक्षो धृष्टद्युम्नं च सानुगम् ।
अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरक्लिष्टविक्रमः ॥१६६॥

इस समय भीम-पुत्र राक्षसेन्द्र, घटोत्कच और अपने अनुचरों सहित धृष्टद्युम्न के साथ उत्तम वीरता दिखाने वाला, धर्मात्मा अश्वत्थामा, युद्ध करने लगा ॥ १६६ ॥

तत्राऽद्भुततमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥१६७॥
निमेषान्तरमात्रेण साश्वसूतरथद्विपाम् ।
अक्षौहिणीं राक्षसानां शितैर्बाणैरशातयत् ॥१६८॥
मिषतो भीमसेनस्य हैडिम्बेः पार्षतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य विजयस्याच्युतस्य च ॥१६९॥

हे भारत ! अब अश्वत्थामा ने ऐसा अद्भुत पराक्रम करके दिखाया, कि जिसको समस्त प्राणियों में अन्य कोई करने में समर्थ नहीं हो सकता था, कि एक क्षण में ही उसने अश्व, सारथि, रथ और हाथियों के साथ राक्षसों की एक अक्षौहिणी सेना को तीक्ष्ण बाणों से मार गिराया। इस घटना को भीमसेन, घटोत्कच, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, धर्मराज युधिष्ठिर, अर्जुन और श्रीकृष्ण खड़े २ देखते रहे ॥ १६७-१६९ ॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ सशृङ्गा इव पर्वताः ॥१७०॥

हे राजन् ! वायु के तुल्य गति वाले अश्वत्थामा के बाणों से

अत्यन्त पीड़ित हुए हाथी, शिखरधारी पर्वतों की भांति रणभूमि में गिरने लगे ॥ १७० ॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विचलद्भिरितस्ततः ।
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥१७१॥

कटी हुई हाथियों की सूंड, रण में इस तरह तड़फड़ा रही थी, कि जिस तरह भूमि में अजगर सर्प, लोटपोट हो रहा हो ।

क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ।
द्यौरिवोदितचंद्रार्का ग्रहाकीर्णा युगक्षये ॥१७२॥

सुवर्ण दण्ड कट जाने पर गिरे हुए छत्रों से रणभूमि ऐसी सुशोभित हो रही थी, जैसे प्रलय-काल में उदित हुए चन्द्र और सूर्य तथा ग्रहों से व्याप्त आकाशस्थली हो रही हो ॥१७२॥

प्रवृद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् ।
छत्रहंसावलीजुष्टां फेनचामरमालिनीम् ॥१७३॥
कङ्कगृध्रमहाग्राहां नैकायुधझषाकुलाम् ।
विस्तीर्णगजपाषाणां हताश्वमकराकुलाम् ॥१७४॥
रथक्षिप्तमहावप्रां पताकारुचिरद्रुमाम् ।
शरमीनां महारौद्रां प्रासशक्त्यृष्टिडुण्डुभाम् ॥१७५
मज्जामांसमहापङ्कां कबन्धावर्जितोडुपाम् ।
केशशैवलकल्माषां भीरूणां कश्मलावहाम् ॥१७६॥
नागेन्द्रहययोधानां शरीरव्ययसंभवाम् ।
शोणितौघमहावेगां द्रौणिः प्रावर्तयन्नदीम् ॥१७७॥

योधार्तरवनिर्घोषां क्षतजोर्मिसमाकुलाम् ।
श्वापदातिमहाघोरां यमराष्ट्रमहोदधिम् ॥१७८॥

हे नृप ! इस समय द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने रक्त की नदी बहा दी, जिसमें बड़ीर ध्वजा, मेंडक, भेरी नामक बाजा, कछुआ, छत्र, हंसपंक्ति, चामर, फेनमाला, कङ्क और गीध, बड़े २ ग्राह, अनेक शस्त्र बड़े २ मत्स्य, विशाल हाथी पत्थर, मारे हुए अश्व मकर, पड़े हुए रथ बड़े २ तट, पताका सुन्दर वृक्ष, बाण मछली, प्रास, शक्ति और ऋष्टि नामक अस्त्र जलसर्प, मज्जा मांस कीचड़, मृत वीरों के शरीर नौका और केश, सिवाल के तुल्य प्रतीत होते थे । इससे कायरों को बड़ा ही भय उत्पन्न होता था । यह नदी, हाथी, अश्व और योद्धाओं के शरीर के नाश से उत्पन्न हुई थी। जिसमें रुधिर का अत्यन्त प्रवाह बह रहा था। रणभूमि में पड़े हुए योद्धाओं के आर्तनाद इसमें नदी की ध्वनि से प्रतीत होते थे। रक्त में लहर सी उठ रही थी। यह बनैले जन्तुओं से जल-जन्तुओं के तुल्य भीषण थी। यम का राष्ट्र ही इसका समुद्र था।

निहत्य राक्षसान्बाणैर्द्रौणिर्हैडिंबिमार्दयत् ।
पुनरप्यतिसंक्रुद्धोः सवृकोदरपार्षतान् ॥१७९॥
सनाराचगणैः पार्थान्द्रौणिर्विद्धो महाबलः ।
जघान सुरथं नाम द्रुपदस्य सुतं विभुः ॥१८०॥

अश्वत्थामा ने अपने अस्त्रों से राक्षसों को मारकर हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच पर आक्रमण किया। इस समय द्रोण-पुत्र अत्यन्त

क्रोध में भरा हुआ था। उसका सारा शरीर बाणों से क्षत-विक्षत था। इसी महाबली अश्वत्थामा ने भीमसेन और धृष्टद्युम्न के सारे पाण्डवों को बुरी तरह घायल कर दिया। इस शक्तिशाली ने अपने बाणसमूह से राजा द्रुपद के सुरथ नामक पुत्र को वहीं मार गिराया ॥१७६-१८०॥

पुनः शत्रुञ्जयं नाम द्रुपदस्यात्मजं रणे ।
बलानीकं जयानीकं जयाश्वं चाभिजघ्निवान् ॥१८१॥

इसके अनन्तर राजा द्रुपद के शत्रुञ्जय, बलानीक, जयानीक और जयाश्व नामक पुत्रों को मार लिया ॥१८१॥

श्रुताह्वयं च राजानं द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम् ।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुङ्खैर्हेममालिनम् ॥१८२॥

द्रोण-पुत्र ने इसी समय श्रुताह्वय नामक राजा को भी यमराज के घर पहुंचा दिया और तीन सुन्दर पुङ्खधारी बाणों से राजा हेममाली को भी भूतल में गिरा लिया ॥१८२॥

जघान स पृषध्रं च चन्द्रसेनं च मारिष ।
कुन्तिभोजसुतांश्चाऽसौ दशभिर्दश जघ्निवान् ॥१८३॥

हे आर्य ! इसी प्रकार अश्वत्थामा ने ही पृषध्र, चन्द्रसेन और राजा कुन्ति-भोज के दश पुत्रों को दश बाणों से मार गिराया ॥१८३॥

अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः सन्धायोग्रमजिह्मगम् ।
मुमोचाऽऽकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ॥१८४॥
यमदंडोपमं घोरमुद्दिश्याऽऽशु घटोत्कचम् ।

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य महाशरः ॥१८५॥
विवेश वसुधां शीघ्रं सपुङ्खः पृथिवीपते ।

हे पृथिवीपते ! इस समय अत्यन्त क्रोध में भरे हुए अश्वत्थामा ने बड़ा ही उग्र, सीधा जाने वाला, उत्तम वेग धारी, यमदण्डोपम, घोर बाण को घटोत्कच पर छोड़ा। वह विशाल सुपुङ्ख धारी बाण, उस राक्षसराज घटोत्कच के हृदय को बींध कर शीघ्र पृथिवी में घुस गया ॥१८४-१८५॥

तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः ॥१८६॥
द्रौणेः सकाशाद्राजेन्द्र व्यपनिन्ये रथोत्तमम् ।

हे राजेन्द्र ! इस समय महारथी धृष्टद्युम्न ने समझा, कि घटोत्कच मर कर रथ में गिर गया है–तो वह अपने रथ को अश्वत्थामा के सम्मुख से हटा ले गया ॥१८६॥

ततः पराङ्मुखनृपं सैन्यं यौधिष्ठिरं नृप ॥१८७॥
पराजित्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो ननाद ह ।
पूजितः सर्वभूतेषु तव पुत्रैश्च भारत ॥१८८॥

हे नृपते ! जब राजा युधिष्ठिर की सेना ने अपने सेनापति को रण से विमुख देखा, तो वह भी भाग निकली। इस प्रकार पाण्डव सेना को पराजित करके वीरश्रेष्ठ अश्वत्थामा ने सिंहनाद किया। हे भारत ! इस समय तुम्हारे पुत्र और अन्य वीरों ने अश्वत्थामा की बड़ी ही प्रशंसा की ॥१८७-१८८॥

अथ शरशतभिन्नकृत्तदेहैर्हतपतितैः क्षणदाचरैः समन्तात् ।
निधनमुपगतैर्मही कृताऽभूद्गिरिशिखरैरिव दुर्गमाऽतिरौद्रा ।

हे राजन् ! सैकड़ों बाणों से काट २ कर क्षत विक्षत देह वाले सब ओर मरकर पड़े हुए राक्षसों से रणभूमि व्याप्त होकर इस प्रकार अत्यन्त डरावनी हो गई, जैसे बड़े पर्वतों के शिखरों से व्याप्त होकर दुर्गम हो गई हो ॥१८६॥

तं सिद्धगन्धर्वपिशाचसङ्घा नागाः सुपर्णाः पितरो वयांसि।
रक्षोगणा भूतगणाश्च द्रौणिमपूजयन्नप्सरसः सुराश्च॥१६०॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥

हे भारत ! अब सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, नाग, सुपर्ण, पितर, पक्षी, राक्षस, भूत, अप्सरा और देवों के समूह,द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा की पूजा करने लगे ॥१६०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में
रात्रियुद्ध के वर्णन का एक सौ छप्पनवां अध्याय
सम्पूर्ण हुआ।



एक सौ सत्तावनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

द्रुपदस्याऽऽत्मजान्दृष्ट्वा कुन्तिभोजसुतांस्तथा ।
द्रोणपुत्रेण निहतान्राक्षसांश्च सहस्रशः ॥१॥
युधिष्ठिरो भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
युयुधानश्च संयत्ता युद्धायैव मनो दधुः ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतवंशश्रेष्ठ ! जब राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, पर्वतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न और सात्यकि ने राजा द्रुपद और राजा कुन्ति-भोज के पुत्रों तथा सहस्रों राक्षसों को द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा द्वारा मारे हुए देखा, तो ये बहुत सावधान हो गये और बड़े वेग से युद्ध में प्रवृत्त हुए ॥ १-२ ॥

सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ।
महता शरवर्षेण च्छादयामास भारत ॥३॥

हे भारत ! जब राजा सोमदत्त ने सात्यकि को फिर युद्ध में खड़ा देखा, वह तो बड़े भारी बाणसमूह की वर्षा करके उसको आच्छादित करने लगा ॥ ३ ॥

ततः समभवद्युद्धमतीव भयवर्धनम् ।
त्वदीयानां परेषां च घोरं विजयकांक्षिणाम् ॥४॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर अपनी २ विजय के अभिलाषी तुम्हारे कौरववीर और पाण्डववीरों में महाघोर युद्ध होने लगा--जो साधारण मनुष्यों के चित्त में बड़ा ही भयोत्पादक था ।

तं दृष्ट्वा समुपायान्तं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
दशभिः सात्वतस्याऽर्थे भीमो विव्याध सायकैः ॥५॥

जब भीम ने देखा, कि राजा सोमदत्त, सात्यकि पर झपट रहा है-तो उसने सात्यकि की रक्षा के निमित्त उस पर दश बाण छोड़कर उसे घायल बना दिया ॥५॥

सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत ।
सात्वतस्य सुसंक्रुद्धः पुत्राधिनिरभिप्लुतम् ॥६॥

राजा सोमदत्त ने भी सौ बाण मार कर सात्यकि को क्षत-विक्षत किया । अपने पुत्र भूरिश्रवा के शोक से व्याप्त राजा सोमदत्त पर अब सात्यकि भी कुपित हो उठा ॥६॥

वृद्धं वृद्धगुणैर्युक्तं ययातिमिव नाहुषम् ।
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनिपातनैः ॥७॥
शक्त्या चैनं विनिर्भिद्य पुनर्विव्याध सप्तभिः ।

राजा सोमदत्त नहुष-पुत्र ययाति के तुल्य वृद्ध और वृद्धता के योग्य गुणों से युक्त था । वज्रोपम दश तीक्ष्ण बाण मार कर सात्यकि ने इसको बींध डाला और इस पर शक्ति नामक अस्त्र का प्रहार करके फिर इस पर सात बाणों का प्रयोग किया ॥७॥

ततस्तु सात्यकेरर्थे भीमसेनो नवं दृढम् ॥८॥
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि ।

अब भीमसेन ने भी सात्यकि की रक्षा के लिए एक नया दृढ़ तथा घोर परिघ नामक शस्त्र उठाया और उसका राजा सोमदत्त के मस्तक पर बुरी तरह प्रहार किया ॥८॥

सात्वतोऽप्यग्निसङ्काशं मुमोच शरमुत्तमम् ॥९॥
सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि ।

सात्ववंशोद्भव सात्यकि ने भी राजा सोमदत्त की छाती में उत्तम नोक वाले, तीक्ष्ण अग्नि के सदृश जाज्वल्यमान बाण को युद्ध में बड़े क्रोध के साथ मारा ॥९॥

युगपत्पेततुर्वीर घोरौ परिघमार्गणौ ॥१०॥
शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः ।

हे वीर ! भीमसेन का मारा घोर परिघ और सात्यकि का तीक्ष्ण बाण, राजा सोमदत्त के शरीर पर एकदम आकर लगे-इनके प्रहार से महारथी राजा सोमदत्त पृथिवी पर गिर गया ॥१०॥

व्यामोहिते तु तनये बाह्लीकस्तमुपाद्रवत् ॥११॥
विसृजञ्छरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः ।

जब अपने पुत्र राजा सोमदत्त को मूर्छित देखा-तो बाह्लीक राज सात्यकि पर झपटा और वर्षाकाल में बरसाने वाले मेघ की तरह उस पर उसने बाणवर्षा करना आरम्भ किया ॥११॥

भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे बाह्लीकं नवभिः शरैः ॥१२॥
प्रपीडयन्महात्मानं विव्याध रणमूर्धनि ।

अब भीमसेन ने भी सात्यकि की रक्षा करने के लिए रणाङ्गण में नौ बाण छोड़कर महात्मा बाह्लीकराज को बहुत ही व्यथित कर दिया ॥१२॥

प्रातिपेयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि ॥१३॥
निचखान महाबाहुः पुरन्दर इवाऽशनिम् ।
स तथाऽभिहतो भीमश्चकम्पे च मुमोह च ॥१४॥

प्रतीप-पुत्र वाल्हीकराज भी क्रोध से उबल उठे और इस महाबाहु ने भी भीमसेन के वक्षस्थल में अपनी शक्ति का इस तरह प्रहार किया, जैसे इन्द्र वज्र का प्रहार करता है। वाल्हीक-राज के इस प्रहार से भीमसेन कम्पित होकर मूर्छित हो गया ॥१३॥

प्राप्य चेतश्च बलवान्गदास्मै ससर्ज ह ।
सा पाण्डवेन प्रहिता बाह्लीकस्य शिरोऽहरत् ॥१५॥
स पपात हतः पृथ्व्यां वज्राहत इवाऽद्रिराट् ।

जब भीमसेन को चेत हुआ, तो इस बलवान् भीम ने भी गदा उठाई और उसको वाल्हीकराज पर छोड़ा। उसने गिरते ही वाल्हीकराज के शिर को धड़ से पृथक् कर दिया। वह इस गदा से मृत होकर इस प्रकार भूमि में गिरा-जैसे वज्र के प्रहार से कोई पर्वत गिर गया हो ॥१५॥

तस्मिन्विनिहते वीरे बाह्लीके पुरुषर्षभ ॥१६॥
पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन्भीमं दश दाशरथेः समाः ।
नागदत्तो दृढरथो महाबाहुरयोभुजः ॥१७॥
दृढः सुहस्तो विरजाः प्रमाथ्युग्रोऽनुयाय्यपि ।

हे पुरुषर्षभ ! इस प्रकार वीरश्रेष्ठ वाल्हीकराज के मारे जाने पर दशरथ-पुत्र रामचन्द्र के तुल्य महापराक्रमी नागदत्त, दृढरथ

महाबाहु, अयोभुज, दृढ़, सहस्र, विरजा, प्रमाथी, उग्र और अनुयायी-इन नामों वाले उसके दश पुत्रों ने भीमसेन को व्यथित करना आरम्भ किया ॥१६-१७॥

तान्दृष्ट्वा चुक्रुधे भीमो जगृहे भारसाधनान् ॥१८॥
एकमेकं समुद्दिश्य पातयामास मर्मसु ।

इनको देखकर भीमसेन क्रोध से जल उठा और उसने इस समय के युद्ध के उपयोगी बाणों को उठाया तथा एक २ करके इन के मर्म स्थलों में प्रहार किया ॥१८॥

ते विद्धा व्यसवः पेतुः स्यन्दनेभ्यो हतौजसः ॥१९॥
चण्डवातप्रभग्नास्तु पर्वताग्रान्महीरुहाः ।

ये वीर, उन बाणों से विंध २ कर प्राणहीन हो गए और अपने तेज से हीन होकर रथों से रणभूमि में इस प्रकार गिर गए जैसे तीव्र वायु से आहत होकर पर्वत के अग्र भाग के वृक्ष गिर जाते हैं ॥१९॥

नाराचैर्दशभिर्भीमस्तान्निहत्य तवाऽऽत्मजान् ॥२०॥
कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरत् ।

हे राजन् ! इस प्रकार भीमसेन ने दश बाणों से इन वाल्हीकराज के दशों पुत्रों को मार कर अब तुम्हारे पुत्र और अङ्गराज के प्रिय पुत्र वृषसेन को बाणों से आच्छादित कर दिया ।

ततो वृकरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः ॥२१॥
जघान भीमं नाराचैस्तमप्यभ्यद्रवद्बली ।

महारथी कर्ण का एक वृकरथ नाम का भ्राता था। उसने भीमसेन पर बहुत से बाण मारे। बलवान् भीम ने उस पर भी आक्रमण किया ॥२१॥

ततः सप्त रथान्वीरः स्यालानां तव भारत ॥२२॥
निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोथयत् ।

हे भारत ! महावीर भीमसेन ने तुम्हारे शकुनि आदि सालों के पक्ष के सात अन्य रथी मार डाले और बाण बरसाते हुए आगे बढ़कर शतचन्द्र को भी नष्ट कर डाला ॥२२॥

अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ॥२३॥
शकुनेर्भ्रातरो वीरा गवाक्षः शरभो विभुः ।
सुभगो भानुदत्तश्च शूराः पञ्च महारथाः ॥२४॥
अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन् ।

अब शकुनि के पांच वीर भ्राता, गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त नामक महारथियों से शतचन्द्र का मारा जाना नहीं सहा गया। ये बड़े वेग से आगे बढ़कर तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन को ताड़ित करने लगे ॥२३-२४॥

स ताड्यमानो नाराचैर्वृष्टिवेगैरिवाऽचलः ॥२५॥
जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्चैवाऽतिरथान्बली ।
तान्दृष्ट्वा निहतान्वीरान्विचेलुर्नृपसत्तमाः ॥२६॥

वर्षा की धाराओं से आहत महाबली भीमसेन ने पांच बाण छोड़कर इन पांचों महारथियों को बींध लिया। इन पांचों

को निहत देखकर अन्य उत्तम कौरव पक्ष के राजाओं के छक्के छूट गए ॥२५-२६॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवाऽनीकमशातयत् ।
मिषतः कुम्भयोनेस्तु पुत्राणां तव चाऽनघ ॥ २७॥

हे अनघ ! अब राजा युधिष्ठिर भी कुपित हो रहे थे । वे कुम्भयोनि आचार्य द्रोण और तुम्हारे पुत्र दुर्योधनादि के सन्मुख खड़ी तुम्हारी सेना को मार २ कर रणभूमि में बिछाने लगे ॥२७॥

अम्बष्ठान्मालवाञ्छूरांस्त्रिगर्तान्सशिबीनपि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो युद्धे युधिष्ठिरः ॥२८॥

हे राजन् ! इस युद्ध में क्रुद्ध हुए धर्मराज युधिष्ठिर, अम्बष्ठ, मालव, शूरवीर त्रिगर्त और शिबि नामक क्षत्रियवीरों को मार २ कर मृत्युलोक में भेजने लगे ॥२८॥

अभीषाहाञ्छूरसेनान्बाह्लीकान्सवसातिकान् ।
निकृत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥२९॥

राजा युधिष्ठिर ने अभीषाह, शूरसेन, बाल्हिक वसाति संज्ञक क्षत्रिय वीरों को मार २ कर रणभूमि में रक्त की कीचड़ कर दी ।

यौधेयान्मालवान्राजन्मद्रकाणां गणान्युधि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय शूरान्बाणैर्युधिष्ठिरः ॥३०॥

हे राजन् ! इस युद्ध में राजा युधिष्ठिर ने यौधेय, मालव और मद्रकों की सेना के वीरों को अपने बाणों से मार २ कर मृत्युलोक भेज दिया ॥३०॥

हताऽऽहरत गृह्णीत विध्यत व्यवकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ॥३१॥

इस समय राजा युधिष्ठिर के रथ के पीछे २ यह घोर कोलाहल मच रहा था, कि मारो ? प्रहार करो ? बींध लो ? । देखो-धर्मराज जाने न पावें ॥३१॥

सैन्यानि द्रावयन्तं तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
चोदितस्तव पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत् ॥३२॥

जब आचार्य द्रोण ने राजा युधिष्ठिर को इस प्रकार कौरव सेना का विध्वंस उड़ाते देखा-तो वे तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन का संकेत पाकर बाणवर्षा करते हुए धर्मराज पर झपटे ॥३२॥

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पार्थिवम् ।
विव्याध सोऽपि तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान् ॥३३॥

हे राजन् ! क्रोध में भरे हुए द्रोणाचार्य ने वायव्य नामक दिव्य अस्त्र का प्रयोग करके राजायुधिष्ठिर को बींध दिया। धर्मराज ने भी उस दिव्य वायव्यास्त्र को अपने दिव्य अस्त्र से ही नष्ट कर डाला ॥३३॥

तस्मिन्विनिहते चाऽस्त्रे भारद्वाजो युधिष्ठिरे ।
वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ॥३४॥
चिक्षेप परमक्रुद्धो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ।

जब राजा युधिष्ठिर ने वायव्यास्त्र के प्रहार को व्यर्थ कर दिया-तो भरद्वाज-पुत्र द्रोण बहुत क्रोधित हुआ और उसने पाण्डु-

नन्दन राजा युधिष्ठिर के वध के निमित्त अब वारुण, याम्य, आग्नेय, त्वष्ट्रा और सावित्र नामक दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया ॥२४॥

क्षिप्तानि क्षिप्यमाणानि तानि चाऽस्त्राणि धर्मजः ॥
जघानाऽस्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन् ।

द्रोणाचार्य के चलाये हुए या चलाये जाते हुए दिव्य अस्त्रों को महाबाहु धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने अस्त्रों से वहीं काट डाला और उसने कुम्भोत्पन्न द्रोणाचार्य का कुछ भय नहीं किया ॥२५॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसम्भवः ॥२६॥
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यं च भारत ।
जिघांसुर्धर्मतनयं तव पुत्रहिते रतः ॥२७॥

हे भारत! अपनी प्रतिज्ञा सत्य करने के विचार से आचार्य द्रोण ने अब ऐन्द्र और प्रजापत्य संज्ञक दिव्यास्त्रों का प्रादुर्भाव किया। यह तुम्हारे पुत्र के हित करने के लिए इस समय धर्म-पुत्र युधिष्ठिर का अन्त ही कर देना चाहता था ॥२६-२७॥

पतिः कुरूणां गजसिंहगामी विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः ।
प्रादुश्चकाराऽस्त्रमहीनतेजा माहेन्द्रमन्यत्स जघान तेन ॥

कुरुवंशश्रेष्ठ, गज और सिंह की भांति चलने वाले, विशाल वक्षस्थलधारी, विशाल और लाल लोचन वाले, अत्यन्त तेजस्वी राजा युधिष्ठिर ने अब माहेन्द्र नामक दिव्यास्त्र उठा कर उसका प्रहार किया ॥२८॥

विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः ।
युधिष्ठिरवधं प्रेप्सुर्ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥३६॥

जब द्रोणाचार्य के ये अस्त्र छिन्न-भिन्न हो गए-तो वह क्रोध से जल उठा। इसने राजा युधिष्ठिर के वध की आकांक्षा से फिर इस पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया ॥३६॥

ततो नाऽज्ञासिषं किञ्चिद्घोरेण तमसाऽऽवृते ।
सर्वभूतानि च परं त्रासं जग्मुर्महीपते ॥४०॥

हे महीपते ! इस समय महाघोर अन्धकार छा गया और कुछ नहीं दिखाई देने लगा तथा संसार के समस्त प्राणी बड़े क्लेश को प्राप्त हुए ॥४०॥

ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥४१॥

हे भारत ! जब कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने इस उठते हुए ब्रह्मास्त्र को देखा, तो द्रोणाचार्य के इस ब्रह्मास्त्र को नष्ट करने को धर्मराज ने भी ब्रह्मास्त्र का ही प्रयोग किया ॥४१॥

ततः सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ ।
द्रोणपार्थौ महेष्वासौ सर्वयुद्धविशारदौ ॥४२॥

हे राजन् ! इस समय दोनों सेनाओं के मुख्य २ वीर, दोनों नरश्रेष्ठ, द्रोणाचार्य और धर्मराज को महाधनुर्धर और युद्ध क्रिया में कुशल बता कर इनकी प्रशंसा करने लगे ॥४२॥

ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम् ।

व्यधमत्क्रोधताम्राक्षो वायव्यास्त्रेण भारत ॥४३॥

हे भारत ! अब द्रोणाचार्य ने धर्मराज का पीछा तो छोड़ा, परन्तु क्रोध से आंखें लाल करके वायव्यास्त्र का प्रयोग करते हुए राजा द्रुपद की सेना का विध्वंस करने लगे ॥४३॥

ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन्भयात् ।

पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥४४॥

जब द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों को मारना आरम्भ किया, तो वे भय से भाग निकले। इस दशा को वहीं खड़े हुए भीमसेन और महावीर अर्जुन देखते ही रह गए ॥४४॥

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ।

महद्भ्यां रथवंशाभ्यां परिगृह्य बलं तदा ॥४५॥

अब एकदम भीमसेन और अर्जुन ने एक विशाल रथसेना लेकर उस रथसेना के द्वारा दांये और वायें दोनों ओर से आक्रमण किया ॥४५॥

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ।

भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ॥४६॥

इस समय अर्जुन तो दांयी ओर से और भीम वांयी ओर से बड़ी भारी बाणवर्षा करते हुए भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य को अपने अपने बाणसमूह से व्याकुल करने लगे ॥४६॥

केकयाः सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ।
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्याश्च सह सात्वतैः ।।४७।।

हे महाराज ! इस समय भीम और अर्जुन के साथ केवल सृञ्जय और महा ओजस्वी पाञ्चालवीर चल रहे थे। यादवों के साथ मत्स्यवीर भी इस आक्रमण में सम्मिलित थे ।।४७।।

ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना ।
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ।।४८।।

अब किरीट-धारी अर्जुन ने कौरवसेना का विध्वंस करना आरम्भ किया। यह सेना अन्धकार और नींद से और भी व्याकुल हो रही थी-इससे भाग खड़ी हुई ।।४८।।

द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ।
नाऽशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ।।४९।।

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्रोणयुधिष्ठिरयुद्धे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५७ ।

हे महाराज ! आचार्य द्रोण और स्वयं तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने अपनी सेना को रोकना चाहा, परन्तु वे भी उस समय उन कौरव वीरों के रोकने में समर्थ न हो सके ।।४९।।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में
द्रोण और धर्मराज के रात्रियुद्ध के वर्णन का एक
सौ सत्तावनवां अध्याय समाप्त हुआ ।

एक सौ अट्ठावनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—उदीर्यमाणं तद् दृष्ट्वा पाण्डवानां महद्बलम्
अविषह्यं च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे भरतर्षभ ! राजा दुर्योधन, पाण्डवों की विशाल सेना को उमड़ती देखकर और उसको असह्य मान कर अङ्गराज कर्ण से बोले ॥१॥

अयं स काल सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।
त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान्योधान्महारथान् ॥२॥

पञ्चालैर्मत्स्यकैकेयैः पाण्डवैश्च महारथैः ।
वृतान्समन्तात्संक्रुद्धैर्निःश्वसद्भिरिवोरगैः ॥३॥

हे मित्रवत्सल-कर्ण ! आज अपनी मित्रता दिखाने का समय आ गया है। अब तुम इस रण में हमारे सारे महारथी योधाओं की रक्षा करो, जिनको सर्प की भांति श्वास लेते हुए पञ्चाल, मत्स्य, केकय और पाण्डवों ने बड़े क्रोध के साथ चारों ओर घेर लिया है ॥३॥

एते नदन्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां रथव्रजाः ॥४॥

यह देखो-ये विजय की आशा वाले पाण्डव और इन्द्र के समान पराक्रमी ये बहुत से पञ्चालवीर, किस-उल्लास के साथ गर्जना कर रहे हैं ॥४॥

कर्ण उवाच—परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरन्दरः ।

तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम् ॥५॥

कर्ण बोले—हे राजन् ! तुम चिन्ता न करो, यदि आज अर्जुन की रक्षा के लिए स्वयं इन्द्र भी चला आवेगा-तो भी मैं उसको शीघ्र पराजित करके पाण्डु-पुत्र अर्जुन का वध कर दूंगा ॥५॥

सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत ।

हन्तास्मि पाण्डुतनयान्पञ्चालांश्च समागतान् ॥६॥

हे भारत ! मैं तुमसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, तुम धैर्य धारण करो। मैं रण में सन्मुख आये हुए पञ्चालवीर और पाण्डवों को मार कर ही चुप होऊंगा ॥६॥

जयं ते प्रतिदास्यामि वासवस्येव पावकिः ।

प्रियं तव मया कार्यमिति जीवामि पार्थिव ॥७॥

हे पार्थिव ! इन्द्र को विजय अर्पण करने वाले कार्तिकेय की भांति मैं तुमको अवश्य विजय समर्पित करूंगा। मैं तो जीवित ही इसलिए हूं, कि तुम्हारा कुछ प्रिय सम्पादन करता रहूँ ॥७॥

सर्वेषामेव पार्थानां फाल्गुनो बलवत्तरः ।

तस्याऽमोघां विमोक्ष्यामि शक्तिं शक्रविनिर्मिताम् ॥८॥

इन सारे पाण्डवों में अर्जुन सबसे अधिक बलवान् है । मैं इन्द्र द्वारा बनाई हुई भीषण शक्ति नामक अस्त्र का प्रयोग उसी के ऊपर करूंगा ॥८॥

तस्मिन्हते महेष्वासे भ्रातरस्तस्य मानद ।
तव वश्या भविष्यन्ति वनं यास्यन्ति वा पुनः ॥९॥

हे मानद ! जब महाधनुर्धर अर्जुन मारा जायगा, तो उसके भाई युधिष्ठिर आदि तेरे अधीन हो जायेंगे या फिर वन में चले जायेंगे ॥९॥

मयि जीवति कौरव्य विषादं मा कृथाः क्वचित् ।
अहं जेष्यामि समरे सहितान्सर्वपाण्डवान् ॥१०॥

हे कुरुराज ! जब तक मैं जीवित हूं-तब तक तुम कुछ विषाद न करो । मैं इन सारे पाण्डवों को एक साथ ही समर में जीत लूंगा ।

पञ्चालान्केकयांश्चैव वृष्णींश्चाऽपि समागतान् ।
बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम् ॥११॥

इसी तरह पञ्चाल, केकय और वृष्णियों में से जो सन्मुख आवेगा-उसी के टुकड़े २ करके तुम को इस सारी पृथिवी का राज्य सौंप दूंगा ॥११॥

सञ्जय उवाच—एवं ब्रुवाणं कर्णं तु कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
स्मयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः ॥१२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब कर्ण ने इतना कहा-तब शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य, सूतपुत्र कर्ण से मुसकुराकर यह वचन बोला ॥१२॥

शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुङ्गवः ।
त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति ॥१३॥

हे कर्ण ! तुमने बहुत ठीक कहा, बहुत ठीक कहा है । अब कुरुवंश श्रेष्ठ राजा दुर्योधन सनाथ समझना चाहिए । हे राधेय ! यदि वचन से कुछ काम बन जाता होता-तो राजा दुर्योधन को तुम्हारी ही सहायता पर्याप्त थी ॥१३॥

बहुशः कत्थसे कर्ण कौरवस्य समीपतः ।
न तु ते विक्रमः कश्चिद् दृश्यते फलमेव वा ॥१४॥

हे कर्ण ! तुम कुरुराज के समीप अपनी प्रशंसा तो बहुत करते हो, परन्तु जब पराक्रम दिखाने का समय आता है, तब कुछ नहीं करते हो और इससे तुम्हारे वचनों का कुछ फल नहीं निकलता है ॥१४॥

समागमः पाण्डुसुतैर्दृष्टस्ते बहुशो युधि ।
सर्वत्र निर्जितश्चाऽसि पाण्डवैः सूतनन्दन ॥१५॥

तुम्हारा पाण्डवों के साथ रण में कई बार सामना (मुकाबिला) हुआ, परन्तु पाण्डवों ने सर्वथा तुमको जीत कर ही छोड़ा है ।

ह्रियमाणे तदा कर्ण गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे ।
तदाऽयुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकोऽग्रेऽपलायिथाः ॥१६॥

हे कर्ण ! जब वन में गन्धर्व, धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन का अपहरण कर ले गये थे-तब सारी सेनाओं का संग्राम हुआ-उस समय सबसे प्रथम तू ही अकेला भागा था ॥१६॥

विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः ।
पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वं च कर्ण सहानुजः ॥१७॥

हे कर्ण! विराट नगर में भी सारे इकट्ठे ही कौरववीर पहुँचे हुए थे-उस समय अर्जुन ने तुम्हारे छोटे भाई के साथ तुम्हें जीत लिया था ॥१७॥

एकस्याऽप्यसमर्थस्त्वं फाल्गुनस्य रणाजिरे।
कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान्सर्वपाण्डवान् ॥१८॥

हे कर्ण! मेरी सम्मति में तो तुम अकेले अर्जुन से भी रणाङ्गण में युद्ध करने में असमर्थ हो-फिर श्रीकृष्ण के सहित सारे पाण्डवों के जीतने की डींग कैसे मार रहे हो ॥१८॥

अब्रुवन्कर्ण युध्यस्व कत्थसे बहु सूतज।
अनुक्त्वा विक्रमेद्यस्तु तद्वै सत्पुरुषव्रतम् ॥१९॥

हे सूत-पुत्र-कर्ण! तुमको प्रशंसा न कर युद्ध करना चाहिए, परन्तु तुम डींग बहुत मारते हो। जो अपनी प्रशंसा न करके पराक्रम दिखाता है, वह सत्पुरुषों के व्रत का धारण करने वाला होता है ॥१९॥

गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवाऽजलम्।
निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते ॥२०॥

हे सूत-पुत्र कर्ण! तुम शरद् ऋतु के मेघ की भांति गर्जना करके बरसते नहीं हो और बार २ निष्फल दिखाई देते हो. परन्तु इस बात का कुरुराज को कुछ भी ज्ञान-नहीं है ॥२०॥

तावद्गर्जस्व राधेय यावत्पार्थं न पश्यसि।
आरात्पार्थं हि ते दृष्ट्वा दुर्लभं गर्जितं पुनः ॥२१॥

हे राधेय ! तुम्हारी गर्जना तभी तक चलती है-जब तक रण में सामने अर्जुन दिखाई नहीं देता है। जब युद्ध में अर्जुन समीप आ पहुंचता है, तब तेरा गर्जना दुर्लभ हो जाता है ॥२१॥

त्वमनासाद्य तान्बाणान्फाल्गुनस्य विगर्जसि ।
पार्थसायकविद्धस्य दुर्लभं गर्जितं तव ॥२२॥

तुम अर्जुन के बाणों को न देखकर अब व्यर्थ गर्जना कर रहे हो। जब अर्जुन के बाणों से बिंधने लगोगे-तब तुम्हारी सारी गर्जना नौ दो ग्यारह हो जावेगी ॥२२॥

बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिः शूरा द्विजातयः ।
धनुषा फाल्गुनः शूरः कर्णः शूरोः मनोरथैः ॥२३॥
तोषितो येन रुद्रोऽपि कः पार्थं प्रतिघातयेत् ।

क्षत्रिय वीर अपनी भुजाओं के बल पर शूरवीर होते हैं और ब्राह्मण वाणी के शूर माने गए हैं। अर्जुन धनुष का शूरवीर है, तो कर्ण मनोरथ बनाने में शूरवीर समझना चाहिए। जिस अर्जुन ने भगवान् शङ्कर को भी युद्ध से प्रसन्न कर दिया-उस अर्जुन को कौन मार सकता है ॥२३॥

एवं संरुषितस्तेन तदा शारद्वतेन ह ॥२४॥
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाऽब्रवीत् ।

हे राजन्! जब इस प्रकार शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य ने प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, कर्ण को असन्तुष्ट कर दिया, तो वह कृप से इस प्रकार कहने लगा ॥२४॥

शूरा गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः ॥२५॥
फलं चाऽऽशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तमृताविव ।

हे कृप ! हर एक वीर वर्षा ऋतु के मेघ की भाँति गरजते हैं और बीज बोने के अनन्तर समय पर उसका फल देते हैं ॥२५॥

दोषमत्र न पश्यामि शूराणां रणमूर्धनि ॥२६॥
तत्तद्विकत्थमानानां भारं चोद्वहतां मृधे ।

रणाङ्गण में अपने स्वरूप को बताने वाले वीरों का आत्म-श्लाघा रूप कोई दोष नहीं माना जाता है । रण में अपनी २ भुजाओं पर भार उठाने वाले प्रत्येक वीर, कुछ न कुछ अपने बल का बखान करते ही हैं ॥२६॥

यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ॥२७॥
दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते ।

जो पुरुषश्रेष्ठ, जिस भार को अपने ऊपर धारण करने का मन से उत्साह करता है-उसकी उस कार्य में दैव अवश्य सहायता करता है ॥२७॥

व्यवसायद्वितीयोऽहं मनसा भारमुद्वहन् ॥२८॥
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सकृष्णान्सहसात्वतान् ।
गर्जामि यद्यहं विप्र तव किं तत्र नश्यति ॥२९॥

हे ब्राह्मण ! मैं अपने उद्योग का अवलम्बन लेकर और मन से उत्साह करके रण में श्रीकृष्ण और वृष्णियों के साथ पाण्डवों

के मारने की प्रतिज्ञा कर रहा हूं-तो इसमें तुम्हारा क्या छीनता हूं या तुम्हारा क्या नष्ट होता है ।।२८-२६।।

वृथा शूरा न गर्जन्ति शारदा इव तोयदाः ।
सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति पण्डिताः।।३०।।

शरद्-ऋतु के मेघों की तरह व्यर्थ शूरवीर नहीं गरजते हैं। वे तो स्वयं अपनी सामर्थ्य को जान कर ही गरजना किया करते हैं ।।३०।।

सोऽहमद्य रणे यत्तौ सहितौ कृष्णपाण्डवौ ।
उत्सहे मनसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम ।।३१।।

हे गौतम ! मैं भी आज रण में प्रयत्न करते हुए कृष्ण और अर्जुन को एक साथ जीत लेने का उत्साह कर रहा हूं-इसीलिए गर्ज रहा हूं-इसमें तुम अपने बोलने का प्रयोजन बताओ ।।३१।।

पश्य त्वं गर्जितस्याऽस्य फलं मे विप्र सानुगान् ।
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सहकृष्णान्ससात्वतान् ।।३२।।
दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम् ।

हे विप्र ! अब तुम मेरी इस गर्जना का फल अपने साथियों के साथ देख लेना, कि मैं श्रीकृष्ण और सात्वत वीरों के साथ रण में पाण्डवों को मार कर-शत्रु रहित पृथिवी को राजा दुर्योधन को प्रदान कर दूँगा ।।३२।।

कृप उवाच—मनोरथप्रलापा मे न ग्राह्यास्तव सूतज ।।३३।।
सदा क्षिपसि वै कृष्णौ धर्मराजं च पाण्डवम् ।

कृपाचार्य बोले—हे सूत-पुत्र ! मैं तो तुम्हारे मनोरथमात्र इन प्रलापों (बकवादों) को सुनना नहीं चाहता-तुम तो व्यर्थ ही सदा कृष्णार्जुन और धर्मराज युधिष्ठिर की निन्दा करते रहते हो ॥२३॥

ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ॥२४॥

देवगन्धर्वयक्षाणां मनुष्योरगरक्षसाम् ।

दंशितानामपि रणे अजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥२५॥

हे कर्ण ! सब तरह से सन्नद्ध, देव, गन्धर्वों, यक्ष, मनुष्य, उरग और राक्षसवीरों से भी जो अजेय हैं- वे युद्धविशारद श्रीकृष्ण और पाण्डव, जिस ओर होंगे उधर ही अवश्य विजय समझना चाहिए ॥२४-२५॥

ब्रह्मण्यः सत्यवाग्दान्तो गुरुदैवतपूजकः ।

नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः ॥२६॥

धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

भ्रातरश्चाऽस्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ॥२७॥

गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः ।

धर्म-पुत्र युधिष्ठिर, बड़ा ब्रह्मण्य, सत्यवादी, उदार, गुरु देवता का पूजने वाला, नित्य धर्म में तत्पर, अस्त्र-विद्या में अत्यन्त कुशल, धृतिमान् और कृतज्ञ है। इसके सारे भीम आदि भ्राता भी बड़े बलवान् और सारे अस्त्रों में परिश्रम किये हुए हैं। ये पूज्यों की सेवा में तत्पर, बुद्धिमान, धर्मपरायण और यशस्वी हैं।

सम्बन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः स्वनुरक्ताः प्रहारिणः ॥३८॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः ।
चन्द्रसेनो रुद्रसेनो कीर्तिधर्मा ध्रुवोऽधरः ॥३९॥
वसुचन्द्रो दामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुतेजनः ।
द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ॥४०॥

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, दौर्मुखि, जनमेजय, चन्द्रसेन, रुद्रसेन, कीर्तिधर्मा, ध्रुव, अधर, वसुचन्द्र, दामचन्द्र, सिंहचन्द्र और सुतेजन-ये द्रुपद के पुत्र तथा सम्पूर्ण अस्त्र-विद्या के तत्व ज्ञाता राजा द्रुपद तथा इनके सम्बन्धी पाण्डवों के बड़े अनुरक्त और प्रहार करने में इन्द्र के समान पराक्रम करने वाले हैं ॥३८-४०॥

येषामर्थाय संयत्तो मत्स्यराजः सहानुजः ।
शतानीकः सूर्यदत्तः श्रुतानीकः श्रुतध्वजः ॥४१॥
बलानीको जयानीको जयाश्वो रथवाहनः ।
चन्द्रोदयः समरथो विराटभ्रातरः शुभाः ॥४२॥

शतानीक, सूर्यदत्त, श्रुतनीक, श्रुतध्वज, बलानीक जयानीक जयाश्व, रथवाहन, चन्द्रोदय, समरथ-ये राजा विराट के छोटे भ्राता है, इनको अपने साथ लेकर धर्मराज के विजय के लिए विराटराज बड़ी सावधानी से प्रयत्न कर रहे हैं ॥४१-४२॥

यमौ च द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
येषामर्थाय युध्यन्ते न तेषां विद्यते क्षयः ॥४३॥
एते चाऽन्ये च बहवो गणाः पाण्डुसुतस्य वै ।

नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पांचों पुत्र और राक्षसराज घटोत्कच, जिनके निमित्त युद्ध कर रहे हैं, उनका विनाश कैसे हो सकता है। उपर्युक्त तथा अन्य सामन्तों का गण पाण्डु-सुत धर्मराज के साथ है ॥४३॥

कामं खलु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥४४॥
सयक्षराक्षसगणं सभूतभुजगद्विपम् ।
निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्वाते भीमफाल्गुनौ ॥४५॥
युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद्घोरचक्षुषा ।
अप्रमेयबलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः ॥४६॥
कथं तान्संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान् ।

यह निश्चय बात है, कि देव, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, भूत, सर्प, हाथी आदि जातियों से व्याप्त, इस सारे चराचर जगत् को अपने अस्त्र बल से भीम और अर्जुन निःशेष कर सकते हैं। राजा युधिष्ठिर भी अपने घोर नेत्र से सारी पृथिवी को दग्ध कर सकता है। शूरसेन वंशोद्भव श्रीकृष्ण भी अपरिमित बलशाली हैं और वे भी इन पाण्डवों के लिए ही सब कुछ करने को तैय्यर हैं। हे कर्ण! तुम ऐसे शत्रुओं के जीतने का कैसे साहस कर रहे हो ॥४४-४६॥

महानपनयस्त्वेष नित्यं हि तव सूतज ॥४७॥
यस्त्वमुत्सहसे योद्धुं समरे शौरिणा सह ।

हे सूत-पुत्र ! तुम्हारा यह बहुत ही अनुचित विचार है, जो तुम युद्ध में श्रीकृष्ण के साथ बराबरी करके उनसे युद्ध करने का उत्साह कर रहे हो ॥४७॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन्भरतर्षभ ॥४८॥
अब्रवीच्च तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम् ।

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! जब कृपाचार्य ने इतना कहा-तो राधा-पुत्र कर्ण कुछ हँसने लगे और फिर वे अपने शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य से इस प्रकार बोले ॥४८॥

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन्पाण्डवान्प्रति यद्वचः ॥४९॥
एते चाऽन्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै ।
अजय्याश्च रणे पार्था देवैरपि सवासवैः ॥५०॥
स दैत्ययक्षगन्धर्वैः पिशाचोरगराक्षसैः ।
तथापि पार्थाञ्जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया ॥५१॥
मम ह्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज ।
एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥५२॥

हे ब्रह्मन् ! तुमने जो पाण्डवों के विषय में बात कही है-वह बहुत कुछ सत्य है । तुम्हारे कहे हुए तथा अन्य भी बहुत से गुण पाण्डवों में विद्यमान है और यह भी ठीक है, कि पाण्डव, इन्द्र, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, उरग और राक्षसों सहित देवों से भी नहीं जीते जा सकते हैं, तो भी मैं उनको इन्द्र की दी हुई शक्ति से अवश्य जीत लूंगा । हे ब्रह्मन् ! मुझे इन्द्र ने यह अमोघ शक्ति

प्रदान कर रखी है। मैं इस शक्ति अस्त्र के द्वारा रण में सव्यसाची अर्जुन को मार गिराऊंगा ॥४६-५२॥

हते तु पाण्डवे कृष्णे भ्रातरश्चाऽस्य सोदराः ।
अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथञ्चन ॥५३॥

जब पाण्डु-पुत्र अर्जुन मार लिया जावेगा-तो इसके सहोदर भ्राता युधिष्ठिर आदि बिना अर्जुन के पृथिवी भोगने को समर्थ नहीं होंगे ॥५३॥

तेषु नष्टेषु सर्वेषु पृथिवीयं ससागरा ।
अयत्नात्कौरवेन्द्रस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥५४॥

हे गौतम ! जब ये सारे नष्ट हो जावेंगे-तो यह सारी समुद्र सहित पृथिवी बिना किसी प्रयत्न के कुरुराज दुर्योधन के वश में हो जावेगी ॥५४॥

सुनीतैरिह सर्वार्थाः सिध्यन्ते नाऽत्र संशयः ।
एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम ॥५५॥
त्वं तु विप्रश्च वृद्धश्च अशक्तश्चाऽपि संयुगे ।
कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥५६॥

अच्छी नीति के अनुसार सम्पन्न किये हुए कार्य अवश्य सिद्ध होंगे-इसमें सन्देह नहीं है। हे कृपाचार्य ! इसी बात को विचार कर मैं इस समय गर्जना कर रहा हूं। तुम तो अब वृद्ध हो चुके-इससे युद्ध करने में असमर्थ हो गए हो। ब्राह्मण होने से युद्ध से बचना भी चाहते हो। इसके सिवा तुम पाण्डवों से प्रेम

और उनसे पक्षपात रखते हो-इसी मोह के कारण तुम मुझे फटकार रहे हो ॥५५-५६॥

यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाऽप्रियमिह द्विज।
ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ॥५७॥

अरे दुर्मति ! ब्राह्मण ! यदि इस प्रकार फिर मेरे विषय में कोई ऐसी अप्रिय (गुस्ताखी) की बात कही-तो देख लेना-मैं तेरी जीभ इस खड्ग से काट लूंगा ॥५७॥

यच्चापि पाण्डवान्विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे।
भीषयन्सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ॥५८॥
अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथावद् ब्रुवतो द्विज।

अरे दुर्मति ! ब्राह्मण ! तुम सारी कौरवसेना को भयभीत करने के लिए पाण्डवों की प्रशंसा कर रहे हो-इस विषय में भी मैं तुमसे यह ठीक २ बात कह देना चाहता हूं-तुम ध्यान से सुन लो।

दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः ॥५९॥
दुःशासनो वृषसेनो मद्रराजस्त्वमेव च।
सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः ॥६०॥
तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः।
जयेदेतान्नरः को नु शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः ॥६१॥

हे द्विज ! देख ! राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य, शकुनि, दुर्मुख, जय, दुःशासन, वृषसेन, मद्रराज शल्य, तुम, सोमदत्त, भूरि, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और विविंशति जिस ओर से युद्ध करने को

सन्नद्ध खड़े हो-जो सब प्रकार से युद्ध करने में कुशल हैं-तो कौन इन्द्र के तुल्य पराक्रमी व्यक्ति होगा-जो इनको जीत सकता है।

शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः।
धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि ॥६२॥
एते स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः।
जयमाकांक्षमाणा हि कौरवेयस्य दंशिताः ॥६३॥

ये सारे शूरवीर, अस्त्र विद्या में कुशल, बलवान् और युद्ध में मर कर स्वर्ग के अभिलाषी, धर्म के ज्ञाता तथा युद्ध वीर हैं। ये तो युद्ध में देवों को भी मार कर गिरा सकते हैं। ये सारे ही महारथी पाण्डवों के वध करने के लिए संग्राम में उत्सुक खड़े हैं तथा कुरुराज दुर्योधन की विजय के लिए सब कुछ करने को तय्यार हैं ॥६२-६३॥

दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि।
यत्र भीष्मो महाबाहुः शेते शरशताचितः ॥६४॥

हे विप्र! बलवान् होने पर भी विजय कुछ दैव के अधीन मानी गई है, जो महाबाहु, भीष्म भी सैंकड़ों बाणों से व्याप्त होकर आज रण में शरशय्या पर पड़े हैं ॥६४॥

विकर्णश्चित्रसेनश्च बाह्लिकोऽथ जयद्रथः।
भूरिश्रवा जयश्चैव जलसन्धः सुदक्षिणः ॥६५॥
शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान्।
एते चाऽन्ये च राजानो दैवैरपि सुदुर्जयाः ॥६६॥

निहताः समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः ।
किमन्यद्दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम ॥६७॥

इसी तरह विकर्ण, चित्रसेन, बाल्हिकराज, राजा जयद्रथ, भूरिश्रवा, जय, जरासन्ध, सुदक्षिण, रथिश्रेष्ठ शल, वीर्यवान् भगदत्त आदि राजा तथा अन्य महारथी, देवों से भी दुर्जय, शूरवीर, अत्यन्त बलवान् राजा, पाण्डवों द्वारा युद्ध में मर कर भूमि में पड़े हैं। हे पुरुषाधम ! इस विषय में दैव के अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है ॥६५-६७॥

यांश्च तांस्तौषि सततं दुर्योधनरिपून्द्विज ।
तेषामपि हताः शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥६८॥

हे द्विज ! जिन कुरुराज के शत्रु पाण्डवों की तुम प्रशंसा कर रहे हो-उनके भी तो सैंकड़ों हजारों की संख्या में शूरवीर मरे हैं।

क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैः सह ।
प्रभावं नाऽत्र पश्यामि पाण्डवानां कथञ्चन ॥६९॥

पाण्डवों के साथ होने वाले इस युद्ध में जो कौरवों की भी सारी सेना क्षीण होती जाती है, इसमें कोई पाण्डवों की शक्ति नहीं है, न मालूम क्यों दैव ऐसा कर रहा है ॥६९॥

यस्तान्बलवतो नित्यं मन्यसे त्वं द्विजाधम ।
यतिष्येऽहं यथाशक्ति योद्धुं तैः सह संयुगे ।
दुर्योधनहितार्थाय जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥७०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृपकर्णवाक्येऽष्ट-पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५८॥

हे द्विजाधम ! जिन पाण्डवों को तुम सर्वाधिक बलवान् मानते हो-मैं उनके ही साथ रण में लड़ने का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूँ, जिससे राजा दुर्योधन की विजय हो सके-आगे विजय दैवाधीन है ॥७०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में कृप कर्ण के सम्वाद का एक सौ अट्ठावनवां अध्याय समाप्त हुआ



एक सौ उनसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम्।
खड्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद् द्रुतम् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार अपने मामा कृपाचार्य को कठोर वचन सुनाते हुए कर्ण को देख कर अश्वत्थामा ने खड्ग कोश (म्यान) से बाहर निकाल लिया और वेग से महारथी कर्ण पर आक्रमण किया ॥१॥

ततः परमसंक्रुद्धः सिंहो मत्तमिव द्विपम्।
प्रेक्षतः कुरुराजस्य द्रौणिः कर्णं समभ्ययात् ॥२॥

राजा दुर्योधन इस सारी घटना को देख रहे थे, कि इस समय द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने सिंह की तरह अत्यन्त कुपित होकर मदोन्मत्त हाथी की भांति स्थित महारथी कर्ण पर आक्रमण कर दिया है ॥२॥

अश्वत्थामोवाच—यदर्जुनगुणांस्तथ्यान्कीर्तयानं नराधम ।
शूरं द्वेषात्सुदुर्बुद्धे त्वं भर्त्सयसि मातुलम् ॥३॥

अश्वत्थामा बोले—हे नराधम ! दुर्बुद्धे कर्ण ! शूरवीर अर्जुन के सत्य गुणों का कीर्तन करने वाले मातुल कृपाचार्य को तुम व्यर्थ ही अर्जुन के द्वेष के कारण फटकार रहे हो ॥३॥

विकत्थमानः शार्येण सर्वलोकधनुर्धरम् ।
दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न कश्चिद्गणयन्मृधे ॥४॥

सब मनुष्यों में उत्तम धनुषधारी अर्जुन की तुम शूरवीरता के विषय में निन्दा करते हो । तुमको इतना घमण्ड हो रहा है, कि तुम युद्ध में किसी को कुछ गिनते ही नहीं हो ॥४॥

क्व ते वीर्यं क्व चाऽस्त्राणि यं त्वां निर्जित्य संयुगे ।
गाण्डीवधन्वा हतवान्प्रेक्षतस्ते जयद्रथम् ॥५॥

तेरा पराक्रम और अस्त्र कहां चले गए-जो रण में तुझे जीत कर गाण्डीवधारी अर्जुन ने तेरे देखते २ राजा जयद्रथ को मार गिराया ॥५॥

येन साक्षान्महादेवो योधितः समरे पुरा ।
तमिच्छसि वृथा जेतुं सूताधम मनोरथैः ॥६॥

हे सूतपुत्र ! जिसने रण में साक्षात् शंकर को भी सन्तुष्ट कर दिया-उसको तू वृथा ही मनोरथों से जीतने की इच्छा कर रहा है।

यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः ॥७॥

सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण सहित अर्जुन को जीतने में तो इन्द्र सहित सारे सुर और असुर कोई भी समर्थ नहीं है।

लोकैकवीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे ।
किं पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥८॥

हे दुर्बुद्धे ! सूत-पुत्र ! लोक में एकमात्र वीर, पराजित नहीं होने वाले, अर्जुन को फिर तू क्या इन राजाओं के साथ जीतने में समर्थ हो सकेगा ॥८॥

कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम ।
एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते ॥९॥

हे नराधम ! दुर्बुद्धे कर्ण ! देख और ठहरा रह !! मैं तेरे शिर को तेरे शरीर से अभी काट गिराता हूं ॥९॥

सञ्जय उवाच—तमुद्यतं तु वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
न्यवारयन्महातेजाः कृपश्च द्विपदां वरः ॥१०॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! अश्वत्थामा इस प्रकार कह कर बड़े आवेश में भर गया-तो महातेजस्वी मनुष्यश्रेष्ठ कृपाचार्य और राजा दुर्योधन ने स्वयं उसे रोका ॥१०॥

कर्ण उवाच—शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च द्विजाधमः ।
आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम ॥११॥

कर्ण ने कहा—हे कुरुसत्तम ! यह दुर्मति, नीच ब्राह्मण अश्वत्थामा, शूरवीर और युद्ध में प्रशंसा पाने वाला अपने को मानता है । तुम इसको छोड़ दो, जिससे इसको मेरे पराक्रम का पता लग जावे ॥११॥

अश्वत्थामोवाच—तवैतत्क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते ।
दर्पमुत्सिक्तमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥१२॥

अश्वत्थामा ने कहा—हे दुर्मति ! सूतपुत्र ! हम तो तुझे इनके कहने से क्षमा किये देते हैं, परन्तु तेरे इस चढ़े बढ़े घमण्ड को रण में अर्जुन स्वयं नष्ट कर देगा ॥१२॥

दुर्योधन उवाच—अश्वत्थामन्प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद ।
कोपः खलु न कर्तव्यः सूतपुत्रे कथञ्चन ॥१३॥

राजा दुर्योधन बोले—हे अश्वत्थामन ! तुम क्रोध को छोड़कर क्षमा करो । हे मानद ! तुमको सूत-पुत्र कर्ण पर क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है ॥१३॥

त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजेऽथ सौबले ।
महत्कार्यं समासक्तं प्रसीद द्विजसत्तम ॥१४॥

हे द्विजसत्तम ! तुम कर्ण, कृपाचार्य, द्रोण, मद्रराज शल्य और सुबल-पुत्र शकुनि पर अभी बहुत बड़े कार्य का बोझा पड़ा हुआ है ॥१४॥

एते ह्यभिमुखाः सर्वे राधेयेन युयुत्सवः ।
आयान्ति पाण्डवा ब्रह्मन्नाह्वयन्तः समन्ततः ॥१५॥

हे ब्रह्मन् ! तुम देखो तो सही राधापुत्र कर्ण से युद्ध के इच्छुक ये पाण्डव, किस प्रकार सब तरह ललकारते हुए आगे बढ़े चले आते हैं ॥१५॥

सञ्जय उवाच—प्रसाद्यमानस्तु ततो राज्ञा द्रौणिर्महामनाः ।
प्रससादमहाराज क्रोधवेगसमन्वितः ॥१६॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! इस प्रकार राजा दुर्योधन द्वारा प्रसन्न किया हुआ महामनस्वी अश्वत्थामा क्रोध के वेग से युक्त होने पर भी शान्त हो गया ॥१६॥

ततः कृपोऽप्युवाचेदमाचार्यः सुमहामनाः ।
सौम्यस्वभावाद्राजेन्द्र क्षिप्रमागतमार्दवः ॥१७॥

हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर महामनस्वी आचार्य कृप ने भी यह वचन कहा—इसका सौम्य स्वभाव था, इससे इसको फौरन ही कोमलता आ गई ॥१७॥

कृप उवाच—तवैतत्क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते ।
दर्पमुत्सिक्तमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥१८॥

कृप बोले—हे दुरात्मन् ! सूत-पुत्र ! हम लोग तो तुम्हें क्षमा किए देते हैं, परन्तु तेरे इस उद्धत गर्व को अर्जुन रण में अवश्य नष्ट करेगा ॥१८॥

सञ्जय उवाच—ततस्ते पाण्डवा राजन्पञ्चालाश्च यशस्विनः
आजग्मुः सहिताः कर्णं तर्जयन्तः समन्ततः ॥१६॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! इतनी ही देर में यशस्वी पाण्डव सब ओर से गर्जना करते हुए इकट्ठे ही महारथी कर्ण की ओर झपटे ॥१६॥

कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान्।
कौरवाग्र्यैः परिवृतः शक्रो देवगणैरिव ॥२०॥
पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः।
ततः प्रववृते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः ॥२१॥
भीषणं सुमहाराज सिंहनादविराजितम्।

हे महाराज! रथियों में श्रेष्ठ, वीर्यवान् कर्ण ने भी धनुष उठा लिया और वह कौरवों के उत्तम २ वीरों से इस तरह आवृत हो गया, जैसे देवों से इन्द्र घिर रहा हो। यह अत्यन्त तेजस्वी कर्ण अपने बाहुबल का आश्रय लेकर वहीं डटा रहा। तब महारथी कर्ण का पाण्डवों के साथ घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ, जिसमें दोनों ओर के योद्धाओं का सिंहनाद बढ़ता जा रहा था ॥२०-२१॥

ततस्ते पाण्डवा राजन्पञ्चालाश्च यशस्विनः ॥२२॥
दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुमुच्चैः शब्दमथाऽनदन्।

हे राजन्! अब यशस्वी पाण्डव और पाञ्चाल, महाबाहु कर्ण को देखकर उच्चस्वर में गर्जना करने लगे ॥२२॥

अयं कर्णः कुतः कर्णस्तिष्ठ कर्ण महारणे ॥२२॥
युध्यस्व सहितोऽस्माभिर्दुरात्मन्पुरुषाधम ।

यह कर्ण रहा-कर्ण किधर निकल गया। अरे कर्ण ! तू जरा इस रण में ठहरा रह। हे दुरात्मन् ! पुरुषाधम ! तू हमसे तनिक युद्ध तो कर ॥२३॥

अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोधरक्तेक्षणाऽब्रुवन् ॥२४॥
हन्यतामयमुत्सिक्तः सूतपुत्रोऽल्पचेतनः ।
सर्वैः पार्थिवशार्दूलैर्नाऽनेनाऽर्थोऽस्ति जीवता ॥२५॥
अत्यन्तवैरी पार्थानां सततं पापपूरुषः ।
एष मूलमनर्थानां दुर्योधनमते स्थितः ॥२६॥

अन्य पाण्डव वीर भी कर्ण को देखकर क्रोध से लाल लाल आंखें निकाल कर बोले-तुम सारे वीर-श्रेष्ठ राजाओं को इस क्षुद्रात्मा, उद्धत सूत-पुत्र कर्ण का वध कर देना चाहिये। इसके जीने से कोई लाभ नहीं है। यही पाण्डवों का अत्यन्त वैरी और पापी मनुष्य है। यही अनर्थों का मूल और दुर्योधन के मत में स्थित है ॥२४-२६॥

घ्नतैनमिति जल्पन्तः क्षत्रियाः समुपाद्रवन् ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥२७॥
वधार्थं सूतपुत्रस्य पाण्डवेयेन चोदिताः ।

इतना सुनकर सारे महारथी क्षत्रिय नरेश, मार लो ? मार लो ?

की आवाज देते हुए और बड़ी भारी बाणवर्षा करते हुए राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से सूतपुत्र कर्ण का वध करने के निमित्त उस पर टूट पड़े ॥२७॥

तांस्तु सर्वांस्तथा दृष्ट्वा धावमानान्महारथान् ॥२८॥
न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत ।

उन सारे महारथियों के धावे को देखकर भी सूत-पुत्र कर्ण को न तो कोई व्यथा हुई और न किसी प्रकार का कोई भय ही उपस्थित हुआ ॥२८॥

दृष्ट्वा संहारकल्पं तमुद्धूतं सैन्यसागरम् ॥२९॥
पिप्रीषुस्तव पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः ।
सायकौघेन बलवान्क्षिप्रकारी महाबलः ॥३०॥

हे भरतर्षभ ! प्रलयकाल के वेग की भांति सेना के समुद्र को उछलता देखकर संग्राम से नहीं हटने वाले, तेरे पुत्रों को प्रसन्न करने में तत्पर, महावेगशाली, महाबली, शक्तिमान् कर्ण ने अपनी बाणवर्षा से सारी पाण्डव सेना को वहीं रोक दिया ॥२९-३०॥

वारयामास तत्सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ ।
ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवास्तमवारयन् ॥३१॥
धनूंषि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्यगणा इव ॥३२॥

इसके अनन्तर पाण्डवपक्ष के सैकड़ों सहस्रों राजाओं ने धनुष कंपाते हुए बाणवर्षा करना आरम्भ किया। ये राधा-पुत्र से इस तरह युद्ध कर रहे थे-जैसे इन्द्र से दैत्यगण करते हों।

शरवर्षं तु तत्कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम् ।
शरवर्षेण महता समन्ताद्व्यकिरत्प्रभो ॥२३॥

हे प्रभो ! जब कर्ण ने इन राजाओं द्वारा की हुई बाणवर्षा को देखा-तो सब ओर से महती बाणवर्षा करके उनकी बाण वर्षा को छिन्न भिन्न कर दिया ॥२३॥

तद्युद्धमभवत्तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥२४॥

एक दूसरे के प्रहार के उत्तर में तत्पर, इन राजा और कर्ण में इस प्रकार घोर युद्ध चल पड़ा—जैसे-देवासुर संग्राम में इन्द्र का दैत्यों के साथ युद्ध हुआ था ॥२४॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम् ।
यदेनं सर्वतो यत्ता नाऽऽप्नुवन्ति परे युधि ॥२५॥

इस समय सूत-पुत्र कर्ण का बड़ा ही हस्तकौशल देखा गया। जो सब ओर से बड़ी सावधानी से आक्रमण करने पर भी युद्ध में शत्रुभूत पाण्डव उस पर सिद्धि प्राप्त नहीं कर सके ॥२५॥

निवार्य च शरौघांस्तान्पार्थिवानां महारथः ।
युगेष्वीषासु च्छत्रेषु ध्वजेषु च हयेषु च ॥२६॥
आत्मनामाङ्कितान्घोरान्राधेयः प्राहिणोच्छरान् ।

महारथी कर्ण ने उन महीपालों की बाणवर्षा को रोककर अपने नाम से अङ्कित इतने घोर बाण छोड़े, जो उन राजाओं के

रथ के जूड़े, जूड़े से सटे हुए रथ के अग्रभाग, छत्र, ध्वजा और अश्वों के शरीरों में गड़ गए ॥३६॥

ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः ॥३७॥
बभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव ।

इन कर्ण के प्रहारों से राजा लोग घबरा उठे और वे इस तरह चकराने लगे-जैसे शीत से अर्दित गाय कंपकपाती है ॥३७॥

हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा ॥३८॥
तत्र तत्राऽभ्यवेक्षाम सङ्घान्कर्णेन ताडितान् ।

हे राजन् ! कर्ण से मारे और घायल किए हुए अश्व, हाथी और रथी जिधर देखो ? उधर वे ही दिखाई देते थे ॥३८॥

शिरोभिः पतितै राजन्बाहुभिश्च समन्ततः ॥३९॥
आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनाम् ।

हे राजन् ! सब ओर गिरे हुए युद्ध से नहीं हटने वाले राजाओं के शिर और भुजाओं से सारी रणभूमि व्याप्त हो गई ॥३९॥

हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वशः ॥४०॥
बभूवाऽऽयोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम् ।

मारे हुए और मारे जाते हुए योद्धाओं के सब ओर कहराने से रणभूमि, यमराज की पुरी के समान भयानक दिखाई देने लगी

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥४१॥
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ।

राजा दुर्योधन महारथी कर्ण के पराक्रम को देखकर और अश्वत्थामा के पास पहुंचकर यह वचन बोले ॥४१॥

युध्यतेऽसौ रणे कर्णो दंशितः सर्वपार्थिवैः ॥४२॥

पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम् ।

हे अश्वत्थामन् ! इन सारे राजाओं से किस तय्यारी के साथ रण में कर्ण लड़ रहा है। तुम कर्ण के बाणों से पीड़ित होकर भागती हुई पाण्डवों की सेना को तो देखो ॥४२॥

कार्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव ॥४३॥

दृष्ट्वैतां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता ।

अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघांसया ॥४४॥

यह देखो ? असुर सेना को देवों के सेनापति स्कन्द की भांति महाबुद्धिमान् महावीर कर्ण द्वारा जीती हुई अपनी सेना को देखकर सूत-पुत्र के मारने को अर्जुन आगे बढ़ा चला आता है।

तद्यथा प्रेक्षमाणानां सूतपुत्रं महारथम् ।

न हन्यात्पाण्डवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयताम् ॥४५॥

अब तुम लोगों को देखते २ महारथी सूत-पुत्र को रण में अर्जुन मार न ले-तुम लोग वही रीति ग्रहण करो ॥४५॥

ततो द्रौणिः कृपः शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः ।

प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया ॥४६॥

आयान्तं वीक्ष्य कौन्तेयं शक्रं दैत्यचमूमिव ।

हे राजेन्द्र ! इतना सुनकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और महारथी कृतवर्मा, सूत-पुत्र कर्ण की रक्षा के निमित्त दैत्यों की सेना में इन्द्र के तुल्य पहुंचे हुए अर्जुन को देखकर वहीं पहुंच गए

बीभत्सुरपि राजेन्द्र पञ्चालैरभिसंवृतः ॥४७॥
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णं यथा वृत्रं शतक्रतुः ।

हे महाराज ! अर्जुन भी पाञ्चाल वीरों से सुरक्षित होकर कर्ण पर इस तरह झपटा-जैसे वृत्रासुर पर शतक्रतु इन्द्र झपटता है ।

धृतराष्ट्र उवाच—संरब्धं फाल्गुनं दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम्।
कर्णो वैकर्तनः सूत प्रत्यपद्यत्किमुत्तरम् ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सूत ! काल और अन्तक के समान आवेश में भरे हुए अर्जुन को देखकर सूर्य-पुत्र कर्ण ने क्या उत्तर दिया-मुझे यह बताओ ॥४८॥

यो ह्यस्पर्धत पार्थेन नित्यमेव महारथः ॥४९॥
आशंसते च बीभत्सुं युद्धे जेतुं सुदारुणम् ।

यह महारथी कर्ण सदा अर्जुन से स्पर्धा रखता था और उस महायोद्धा अर्जुन के जीत लेने की सदा आशा करता था ॥४९॥

स तु तं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम् ॥५०॥
कर्णो वैकर्तनः सूत किमुत्तरमपद्यत ।

हे सूत ! उसी सूर्य-पुत्र कर्ण ने जब एकदम अपने अत्यन्त वैरी अर्जुन को पा लिया-तो उसे उसका क्या उत्तर दिया अर्थात् किस प्रकार युद्ध कौशल दिखाया-यह बताओ ॥५०॥

सञ्जय उवाच—आयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा गजं प्रतिगजो यथा
असम्भ्रान्तो रणे कर्णः प्रत्युदीयाद्धनञ्जयम् ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन ! पाण्डुपुत्र अर्जुन को गज के प्रति द्वितीय गज की भांति आता हुआ देखकर बिना किसी घबराहट के रण में कर्ण ने उस पर आक्रमण किया ॥५१॥

तमापतन्तं वेगेन वैकर्तनमजिह्मगैः ॥५२॥
छादयामास पार्थोऽथ कर्णस्तु विजयं शरैः ।
सकर्णं शरजालेन च्छादयामास पाण्डवः ॥५३॥

सूर्य-पुत्र कर्ण को अपने ऊपर वेग से झपटता देखकर सीधे जाने वाले बाणों से अर्जुन ने प्रहार किया और कर्ण ने अपने बाणों से उसे ढक दिया। अर्जुन ने भी अपने बाणजाल से कर्ण को आच्छादित कर दिया ॥५२-५३॥

ततः कर्णः सुसंरब्धः शरैस्त्रिभिरविध्यत ।
तस्य तल्लाघवं पार्थो नाऽमृष्यत महाबलः ॥५४॥

अब कर्ण ने भी आवेश में भरकर तीन बाण मारे। उसकी इस फ़ुर्ती की महाबली अर्जुन ने उपेक्षा नहीं की ॥५४॥

तस्मै बाणाञ्छिलाधौतान्प्रसन्नाग्रानजिह्मगान् ।
प्राहिणोत्सूतपुत्राय त्रिशतं शत्रुतापनः ॥५५॥

शत्रुतापी अर्जुन ने भी शिला पर तीक्ष्ण किए हुए, चमकीले सीधे जाने वाले तीन सौ बाण सूत-पुत्र कर्ण पर छोड़े ॥५५॥

विव्याध चैनं संरब्धो बाणेनैकेन वीर्यवान् ।
सव्ये भुजाग्रे बलवान्नाराचेन हसन्निव ॥५६॥
तस्य विद्धस्य बाणेन कराच्चापं पपात ह ।

इसके बाद महापराक्रमी, शक्तिशाली अर्जुन ने हंसते २ आवेश में भरकर एक नाराच संज्ञक बाण, कर्ण की दांयीं भुजा में मारा। अर्जुन के इस बाण से विंधे हुए कर्ण के हाथ से उसका धनुष छूट पड़ा ॥५६॥

पुनरादाय तच्चापं निमेषार्धान्महाबलः ॥५७॥
छादयामास बाणौघैः फाल्गुनं कृतहस्तवत् ।

महाबली कर्ण ने बड़ी शीघ्रता से फिर दूसरा धनुष उठाया और अपना हस्तकौशल दिखाते हुए अर्जुन को अपने बाणजाल से आच्छादित कर दिया ॥५७॥

शरवृष्टिं तु तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत ॥५८॥
व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनञ्जयः ।

हे भारत ! सूत-पुत्र द्वारा छोड़ी हुई इस बाणवर्षा को हंसते २ अर्जुन ने अपनी बाण वर्षा से छिन्न-भिन्न कर दिया ॥५८॥

तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव ॥५९॥
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

हे राजन् ! ये दोनों महारथी कर्णार्जुन एक दूसरे के उत्तर में परायण हुए, अपनी २ बाण-वर्षा से एक दूसरे को आच्छादित करने लगे ॥५९॥

तदद्भुतंमहद्युद्धं तं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥६०॥
क्रुद्धयोर्वासिताहेतोर्वन्ययोर्गजयोरिव ।

इस समय रणाङ्गण में कर्ण और अर्जुन का महा अद्भुत युद्ध इस तरह होने लगा, जैसे गर्भ धारण को आई हुई हथिनी के कारण क्रोध में भरे हुए दो गजों का युद्ध होता है ॥६०॥

ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥६१॥
मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयाऽन्वितः ।
अश्वांश्च चतुरो भल्लैरनयद्यमसादनम् ॥६२॥
सारथेश्च शिरः कायादहरच्छत्रुतापनः ।

महाधनुर्धर शत्रुतापी अर्जुन ने कर्ण को पराक्रम दिखाते देखकर बड़ी शीघ्रता करके उसकी मुट्ठी के ऊपर से उसका धनुष काट गिराया तथा भल्ल संज्ञक बाणों से कर्ण के चारों अश्वों को यमराज के यहां भेज दिया और सारथि का शिर शरीर से पृथक् कर दिया ॥६१-६२॥

अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम् ॥६३॥
विव्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः ।

इसके अनन्तर जब कर्ण, धनुष, अश्व और सारथि रहित हो गया-तो पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने चार बाण मार कर उसे भी आहत कर दिया ॥६३॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य नरर्षभः ॥६४॥
आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः ।

नर प्रवीर, कर्ण, अश्वों के मरते ही शीघ्र रथ से कूद पड़े। यद्यपि कर्ण, बाणों से बिंधे हुए थे, तो भी वे उछल कर कृपाचार्य के रथ पर जा चढ़े ॥६४॥

स नुन्नोऽर्जुनबाणौघैराचितः शल्यको यथा ॥६५॥
जीवितार्थमभिप्रेप्सुः कृपस्य रथमारुहत् ।

अर्जुन के बाणों से कर्ण इस तरह आच्छादित हो रहे थे, जैसे सेह नामक जन्तु अपने कांटों से व्याप्त होता है। वह इस समय अपने जीवन के बचाने को कृपाचार्य के रथ पर जा चढ़े।

राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ॥६६॥
धनञ्जयशरैर्नुन्नाः प्राद्रवन्त दिशो दश ।

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे पक्ष के वीर, राधा-पुत्र कर्ण को पराजित देखकर अर्जुन के बाणों से बिंधे हुए दशों दिशाओं को भाग निकले ॥६६॥

द्रवतस्तान्समालोक्य राजा दुर्योधनो नृप ॥६७॥
निवर्तयामास तदा वाक्यमेतदुवाच ह ।

हे नृप ! वीरों को भागते देखकर राजा दुर्योधन ने उन्हें रोका और यह वचन कहा—॥६७॥

अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठध्वं क्षत्रियर्षभाः ॥६८॥
एष पार्थवधायाऽहं स्वयं गच्छामि संयुगे ।
अहं पार्थान्हनिष्यामि सपञ्चालान्ससोमकान् ॥६६॥

अरे शूरवीरो ! भागो मत ? तुम क्षत्रियश्रेष्ठ हो-ठहरे रहो । मैं इस रण में अर्जुन के वध के निमित्त स्वयं जाता हूं और मैं स्वयं पञ्चाल और सोमक वीरों के साथ सारे पाण्डवों को अभी मार गिराता हूं ॥६८-६९॥

अद्य मे युध्यमानस्य सह गाण्डीवधन्वना ।
द्रक्ष्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये ॥७०॥

आज जब मैं गाण्डीवधारी अर्जुन के साथ युद्ध करूंगा-तो सारे पाण्डव मेरे पराक्रम को प्रलयकाल के काल की भांति देखेंगे।

अद्य मद्बाणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः ।
द्रक्ष्यन्ति समरे योधाः शलभानामिवाऽऽयतीः ॥७१॥

जब मैं सहस्रों की संख्या में बाण छोड़ूंगा-तो रण में सारे वीर मेरे बाणजाल को शलभ पक्षियों की पंक्ति की भांति छाए हुए देखेंगे ॥७१॥

अद्य बाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः ।
जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रक्ष्यन्ति युधि सैनिकाः ॥७२॥

जब मैं धनुष धारण करके बाणों की लगातार झड़ी सी बांध दूंगा-तो रणाजिर में सैनिक वीर मुझे निश्चय वर्षा-काल के मेघ के सदृश देखेंगे ॥७२॥

जेष्याम्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः ।
तिष्ठध्वं समरे शूरा भयं त्यजत फाल्गुनात् ॥७३॥

मैं अपने नतपर्वधारी बाणों से अभी अर्जुन को जीते लेता हूं। हे वीरो! तुम ठहरो और अर्जुन का कोई भय न मानो ।।७३।।

न हि मद्वीर्यमासाद्य फाल्गुनः प्रसहिष्यति ।
यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः ।।७४।।

हे वीरो! अर्जुन मेरे पराक्रम से टकरा कर इस तरह रुक जावेगा-जैसे वेला को पाकर मकरादि जलजन्तुओं से व्याप्त समुद्र रुक जाता है ।।७४।।

इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः ।
फाल्गुनं प्रति दुर्धर्षः क्रोधात्संरक्तलोचनः ।।७५।।

हे राजन्! इतना कह कर और बहुत बड़ी सेना लेकर क्रोध से लाल २ नेत्र बना कर दुर्धर्ष राजा दुर्योधन, अर्जुन पर वेग से झपटा ।।७५।।

तं प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा ।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ।।७६।।

महाबाहु राजा दुर्योधन को आगे बढ़ता देखकर शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य, अश्वत्थामा के पास पहुंच कर यह वचन बोले ।।७६।।

एष राजा महाबाहुरमर्षी क्रोधमूर्छितः ।
पतंगवृत्तिमास्थाय फाल्गुनं योद्धुमिच्छति ।।७७।।

हे अश्वत्थामा! महाबाहु, क्रोध में भरा हुआ, आवेश युक्त, राजा दुर्योधन, अग्नि में पतङ्ग की भांति अर्जुन से लड़ने को लपक रहा है ।।७७।।

यावन्नः पश्यमानानां प्राणान्पार्थेन संगतः ।
न जह्यात्पुरुषव्याघ्रस्तावद्वारय कौरवम् ।।७८।।

हे महाभाग ! हम खड़े २ देखते रहें और यह पुरुष श्रेष्ठ राजा दुर्योधन, अपने प्राणों की आहुति न दे दे, उससे पूर्व ही इस कुरुराज को वहां जाने से रोक दो ॥७८॥

यावत्फाल्गुनबाणानां गोचरं नाऽद्य गच्छति ।
कौरवः पार्थिवो वीरस्तावद्वारय संयुगे ॥७६॥

हे अश्वर ! जब तक अर्जुन के बाणों के लक्ष्य में राजा दुर्योधन न आवे-उससे पूर्व ही तुम उसे रोक दो ॥७६॥

यावत्पार्थशरैर्घोरैर्निर्मुक्तोरगसन्निभैः ।
न भस्मीक्रियते राजा तावद्युद्धान्निवार्यताम् ॥८०॥

जब तक कांचुली से रहित सर्प की भांति भीषण, अर्जुन के बाणों से राजा दुर्योधन भस्म नहीं होता है, उससे पूर्व ही तुम इसको युद्ध से निवृत्त कर दो ॥७६-८०॥

अयुक्तमिव पश्यामि तिष्ठत्स्वस्मासु मानद ।
स्वयं युद्धाय यद्राजा पार्थं यात्यसहायवान् ॥८१॥

हे मानद ! हम लोगों के रहने पर असहाय की भांति स्वयं राजा दुर्योधन, अर्जुन से युद्ध के लिए जाता है-इसे मैं बहुत अनुचित समझता हूं ॥८१॥

दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरव्यस्य किरीटिना ।
युद्ध्यमानस्य पार्थेन शार्दूलेनेव हस्तिनः ॥८२॥

मैं तो किरीटधारी अर्जुन से युद्ध करने पर सिंह के साथ युद्ध करने वाले हाथी की भांति कुरुराज का जीवन संकट में समझता हूं ॥८२॥

मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितः समभाषत ॥८३॥

जब अपने मामा कृपाचार्य ने अश्वत्थामा से इतना कहा तो शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने शीघ्र लपक कर राजा दुर्योधन से यह वचन कहा ॥८३॥

मयि जीवति गान्धारे न युद्धं गन्तुमर्हसि ।
मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम् ॥८४॥
न हि ते संभ्रमः कार्यः पार्थस्य विजयं प्रति ।
अहमावारयिष्यामि पार्थं तिष्ठ सुयोधन ॥८५॥

हे गान्धारी-पुत्र ! आप मेरे जीते रहने पर युद्ध के लिए आगे नहीं बढ़ सकते । हे कुरुराज ! मैं तो सर्वदा तुम्हारे हित में तत्पर हूं । तुम मेरा अनादर करके अर्जुन पर आक्रमण न करो । मेरे रहते हुए तुमको कोई घबराहट नहीं होनी चाहिए । हे सुयोधन ! तुम ठहरे रहो ! मैं अभी अर्जुन को रोके देता हूं ॥८४-८५॥

दुर्योधन उवाच—आचार्यः पाण्डुपुत्रान्वै पुत्रवत्परिरक्षति ।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥८६॥

राजा दुर्योधन बोले—हे द्विजोत्तम ! आचार्य द्रोण भी पाण्डु-पुत्रों की पुत्र की भांति रक्षा करते हैं और तुम इसीसे पाण्डवों की सदा उपेक्षा करते रहते हो ॥८६॥

मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि ।
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत् ॥८७॥

हे वीर! मेरे मन्दभाग्य या धर्मराज और द्रौपदी के प्रिय करने के निमित्त तुम लोगों का युद्ध में मन्द पराक्रम हो रहा है। क्या बात है-कुछ पता नहीं लगता है ॥८७॥

धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः ।
सुखार्हाः परमं दुःखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः ॥८८॥

मुझ लालची के लिए धिक्कार है, जो मेरे लिए सारे वीर और बान्धव सुख के योग्य होकर भी इस संकट में फंस रहे हैं ॥८८॥

को हि शस्त्रविदां मुख्यो महेश्वरसमो युधि ।
शत्रुं न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद्गौतमीसुतः ॥८९॥

हे अश्वत्थामन्! ऐसा अन्य कौन तुम गौतमीपुत्र के सिवा दयालु होगा-जो शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, शक्तिशाली और महेश्वर के तुल्य पराक्रमी होकर भी शत्रु का नाश न करे और उनकी उपेक्षा करता रहे ॥८९॥

अश्वत्थामन्प्रसीदस्व नाशयैतान्ममाऽहितान् ।
तवाऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः ॥९०॥

हे अश्वत्थामन्! अब प्रसन्न हो जाओ और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो। तुम्हारे शस्त्रों की झपेट में आने पर तो देव या दानव कोई भी नहीं बच सकता है ॥९०॥

पञ्चालान्सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान् ।
वयं शेषान्हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः ॥९१॥

हे द्रोण-पुत्र ! तुम तो सारी सेना के साथ इन पञ्चाल और सोमकों का नाश करो। जब तुम हमारी रक्षा पर होगे, तो हम भी शेष बचे हुए वीरों को मार गिरावेंगे ॥६१॥

एते हि सोमका विप्र पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्निवत् ॥६२॥

हे विप्रेन्द्र ! ये यशस्वी वीर सोमक और पञ्चाल, क्रोध करके मेरी सेना में दावाग्नि की तरह घूमते हैं ॥६२॥

तान्वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम ।
पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥६३॥

हे महाबाहो ! नरोत्तम ! तुम इन केकयों को भी रोको-ये भी अर्जुन से सुरक्षित हुए मेरी सेना का बड़ा विध्वंस करते हैं ॥६३॥

अश्वत्थामंस्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिन्दम ।
आदौ वा यदि वा पश्चात्तवेदं कर्म मारिष ॥६४॥

हे अरिमर्दन ! आर्य ! अश्वत्थामा ! तुम शीघ्रता के साथ आगे या पीछे-जिधर भी इच्छा हो-शीघ्र पहुंचो । यह काम तुम्हारे ही अधीन है ॥६४॥

त्वमुत्पन्नो महाबाहो पञ्चालानां वधं प्रति ।
करिष्यसि जगत्सर्वमपञ्चालं किलोद्यतः ॥६५॥

हे महाबाहो ! तुम, पञ्चालों के वध के लिए ही उत्पन्न हुए हो। यदि तुम तय्यार हो जाओ-तो सारे जगत् को पञ्चालों से रहित कर सकते हो ॥६५॥

एवं सिद्धाऽब्रुवन्वाचो भविष्यति च तत्तथा ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र पञ्चालाञ्जहि सानुगान् ॥९६॥

हे पुरुषव्याघ्र ! यह उपर्युक्त वाणी सिद्धों ने कही है और यह अवश्य सत्य होगी । हे पुरुषव्याघ्र ! इस कारण से तुम सेना रहित इन पञ्चालों को मार गिराओ ॥९६॥

न तेऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवाः सवासवाः ।
किमु पार्थाः सपञ्चालाः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥९७॥

हे वीर ! तुम्हारे अस्त्र के सन्मुख तो इन्द्र सहित देवता भी स्थित नहीं हो सकते हैं, फिर पञ्चाल सहित पाण्डवों की तो तुम्हारे सन्मुख शक्ति ही क्या है-यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥९७॥

न त्वां समर्थाः संग्रामे पाण्डवाः सह सौमकैः ।
बलाद्योधयितुं वीर सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥९८॥

हे वीर ! मैं यह सत्य कह रहा हूं, कि रण में सोमकवीरों के साथ पाण्डव बल लगा कर भी तुम से युद्ध करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥९८॥

गच्छ गच्छ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ।
इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता ॥९९॥

हे महाबाहो ! अब तुम जाओ और शीघ्र जाओ । तुम देख नहीं रहे हो-अर्जुन के बाणों से पीड़ित हुई कौरवसेना किस तरह भाग रही है ॥९९॥

शक्तो ह्यसि महाबाहो दिव्येन स्वेन तेजसा।
निग्रहे पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च मानद ॥१००॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनवाक्ये एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

हे मानद ! महाबाहो ! तुम अपने दिव्य तेज से सारे पाण्डव और पञ्चालों का निग्रह कर सकते हो, क्योंकि तुम सर्वथा शक्तिशाली हो ॥१००॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में रात्रियुद्ध का एक सौ उनसठवां अध्याय पूरा हुआ

एक सौ साठवां अध्याय

सञ्जय उवाच— दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः।
चकाराऽरिवधे यत्नमिन्द्रो दैत्यवधे यथा॥
प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्रमिदं वचः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतश्रेष्ठ ! जब राजा दुर्योधन ने इतना कहा-तो युद्ध में दुर्मद द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने इस तरह शत्रु के वध की चेष्टा की, जैसे इन्द्र दैत्यों के वध में प्रयत्नशील होता है। अब महाबाहु, अश्वत्थामा ने तुम्हारे पुत्र से यह वचन कहा ॥१॥

सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि कौरव ।
प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चाऽपि पितुश्च मे ॥२॥
तथैवाऽऽवां प्रियौ तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह ।
शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत् ॥३॥

हे महाबाहो ! कुरुवंशश्रेष्ठ ! कुरुराज ! यह सत्य है, कि पाण्डव मुझे और मेरे पिता को भी प्रिय हैं और हम दोनों से भी वे बड़ी प्रीति रखते हैं, परन्तु हम लोग युद्ध में किसी का लिहाज़ नहीं करते हैं। हे तात ! जितनी हम लोगों में शक्ति होती है-उतना निर्भीक होकर और प्राणों की परवाह न करके युद्ध करते हैं ॥३॥

अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च ।
निमेषात्पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम ॥४॥
ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात्कुरूद्वह ।
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे ॥५॥

हे नृपोत्तम ! मैं, कर्ण, शल्य, कृप, हृदिक-पुत्र कृतवर्मा क्षण भर में पाण्डवों की सेना का नाश कर सकते हैं, यदि अर्जुन आदि न हों। हे महाबाहो ! इसी तरह पाण्डव भी क्षण भर में कौरवों की सेना का विध्वंस उड़ा सकते हैं, यदि हम लोग युद्ध में उनकी रक्षा न करें ॥४-५॥

युध्यतां पाण्डवाञ्छक्त्या तेषां चाऽस्मान्युयुत्सताम् ।
तेजस्तेजः समासाद्य प्रशमं याति भारत ॥६॥

हे भारत ! हम लोग पाण्डवों से शक्ति लगा कर युद्ध कर रहे हैं और पाण्डव भी हम लोगों से लड़ रहे हैं, इसी से तेज, तेज से टकरा कर शान्त हो रहा है ॥६॥

अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते ॥६॥

हे राजन् ! हम सत्य कहते हैं, कि जब तक पाण्डु-पुत्र जीते हैं, हम लोग पाण्डवों की सेना को वेग के साथ विनष्ट नहीं कर सकते हैं ॥७॥

आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः।
किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत ॥८॥

हे भारत ! पाण्डव, स्वयं शक्तिशाली हैं और अपने स्वार्थ के लिए लड़ रहे हैं, फिर क्यों न वे तुम्हारी सेना के नाश करने में सफल होवें ॥८॥

त्वं तु लुब्धतमो राजन्निकृतिज्ञश्च कौरव।
सर्वाभिशङ्की मानी च ततोऽस्मानभिशङ्कसे ॥६॥

हे कुरुराज ! आप तो एक लालची राजा और चालबाज़ी को अधिक पसन्द करने वाले हैं। सब पर शङ्का करते हुए अभिमान में चूर रहते हो-इसी से सर्वदा हम लोगों पर शङ्का करते रहते हो।

मन्ये त्वं कुत्सितो राजन्पापात्मा पापपूरुषः।
अन्यानपि स नः क्षुद्र शङ्कसे पापभावितः ॥१०॥

हे राजन् ! तुम एक मलिन अन्तःकरण वाले, पापी, वेसमझ महीपाल हो, जो अपनी पाप भावना के कारण अन्य (हम) लोगों को शत्रु से मिले हुए समझते हो ॥१०॥

अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः ।
एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन ॥११॥

हे कुरुनन्दन ! मैं अभी तुम्हारे निमित्त रणभूमि में जा रहा हूं और अपने प्राणों की परवाह न करके शत्रुओं के साथ बड़े प्रयत्न पूर्वक युद्ध करूंगा ॥११॥

योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्धं जेष्यामि च वरान्वरान् ।
पञ्चालैः सह योत्स्यामि सोमकैः केकयैस्तथा ॥१२॥
पाण्डवेयैश्च संग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिन्दम ।

हे अरिमर्दन ! मैं अभी शत्रुओं के साथ युद्ध करता हूं और उनमें उत्तम २ वीरों को जीत लेता हूं । तुम्हारे प्रिय करने के निमित्त पञ्चाल, सोमक, केकय और पाण्डववीरों से संग्राम कर दिखाऊंगा ॥१२॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥१३॥
सिंहेनेवाऽर्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः ।

हे राजन् ! आज मेरे बाण से दग्ध हुए पञ्चाल और सोमक, सिंह से पीड़ित गायों की तरह सब ओर भाग निकलेंगे ॥१३॥

अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम् ॥१४॥
अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह सोमकैः ।

आज धर्म-पुत्र युधिष्ठिर, मेरे पराक्रम को देखकर सोमक वीरों के साथ सारे जगत् में अश्वत्थामा ही अश्वत्थामा को देखेंगे

आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१५॥

दृष्ट्वा विनिहतान्संख्ये पञ्चालान्सोमकैः सह ।

धर्म-पुत्र युधिष्ठिर, रण में सोमकों के साथ मारे हुए पञ्चालों को रण में देखकर बड़ा ही उदासीन होगा ॥१५॥

ये मां युद्धेऽभियोत्स्यन्ति तान्हनिष्यामि भारत ॥१६॥

न हि ते वीर मोच्यन्ते मद्बाह्वन्तरमागताः ।

हे भरतवंशोद्भव ! वीर ! जो मुझसे इस युद्ध में भिड़ बैठेंगे-मैं उनको मारे बिना न छोड़ूँगा। वे मेरी भुजा के जाल में फंसे हुए कभी छुटकारा न पा सकेंगे ॥१६॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव ॥१७॥

अभ्यवर्तत युद्धाय त्रासयन्सर्वधन्विनः ।

चिकीर्षुस्तव पुत्राणां प्रियं प्राणभृतां वरः ॥१८॥

हे राजन् ! इस प्रकार महाबाहु, अश्वत्थामा तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन से कह कर सारे धनुर्धरों को भय उत्पादन करता हुआ युद्ध के लिए चल दिया। हे नृपते ! यह मनुष्यों में श्रेष्ठ, अश्वत्थामा, तुम्हारे पुत्रों का प्रिय सम्पादन कर देना चाहता था।

ततोऽब्रवीत्स कैकेयान्पञ्चालान्गौतमीसुतः ।

प्रहरध्वमितः सर्वे मम गात्रे महारथाः ॥१९॥

स्थिरीभूताश्च युद्ध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम् ।

इसके अनन्तर महारथी गौतमी-पुत्र अश्वत्थामा ने केकय और पञ्चालवीरों से कहा—हे महारथियो ! तुम सब मेरे शरीर पर इच्छानुसार प्रहार करो और स्थिर होकर अपना अस्त्र लाघव दिखाते हुए युद्ध करो ॥१९॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे शस्त्रवृष्टीरपातयन् ॥२०॥
द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव ।

हे महाराज ! जब अश्वत्थामा ने इतना कहा, तो वे सारे वीर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा पर इस तरह बाण बरसाने लगे-जैसे मेघ जलधारा बरसाता है ॥२०॥

तान्निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोथयत् ॥२१॥
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य च प्रभो ।

हे प्रभो ! द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने उन बाणों को काट कर पाण्डवों और सेनापति धृष्टद्युम्न के सन्मुख ही दश पाण्डव वीरों को मार गिराया ॥२१॥

ते हन्यमानाः समरे पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥२२॥
परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त दिशो दश ।

जब रण में अश्वत्थामा ने सोमक और पञ्चालों को आहत करना आरम्भ किया, तो वे रण में द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को छोड़ कर दशों दिशाओं को भाग निकले ॥२२॥

तान्दृष्ट्वा द्रवतः शूरान्पञ्चालान्सहसोमकान् ॥२३॥
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद्रणे ।

हे महाराज ! जब द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न ने सोमक और पञ्चालों को रण से भागते देखा, तो वह वेग से रण में अश्वत्थामा के सन्मुख आया ॥२३॥

ततः काञ्चनचित्राणां सजलाम्बुदनादिनाम् ॥२४॥
वृतः शतेन शूराणां रथानामनिवर्तिनाम् ।
पुत्रः पञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥२५॥
द्रौणिमित्यब्रवीद्वाक्यं दृष्ट्वा योधान्निपातितान् ।

इसके बाद सुवर्ण के कवचों से देदीप्यमान जलधर मेघ की तरह गर्जना करने और युद्ध से पीछे नहीं हटने वाले, सैंकड़ों शूरवीरों से युक्त होकर पञ्चाल-पुत्र महारथी धृष्टद्युम्न, अश्वत्थामा से यह वचन कहने लगा। अपने योद्धाओं को मारते देखकर इसका क्रोध अश्वत्थामा पर बढ़ रहा था ॥२४-२५॥

आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे किमन्यैर्निहतैस्तव ॥२६॥
समागच्छ मया सार्धं यदि शूरोऽसि संयुगे ।
अहं त्वां निहनिष्यामि तिष्ठेदानीं ममाऽग्रतः ॥२७॥

हे दुर्बुद्धे ! आचार्य-पुत्र ! अन्य छोटे मोटे सैनिकों के मारने से क्या प्रयोजन है। यदि तुझ में कुछ बल है-तो रण में मेरे साथ युद्ध कर। तू जरा मेरे सामने ठहरा रह-मैं तुझे अभी मारे लेता हूं

ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
मर्मभिद्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ ॥२८॥

हे भरतर्षभ ! इतना कह कर प्रतापशाली, धृष्टद्युम्न ने बहुत से मर्मभेदी तीक्ष्ण बाणों द्वारा आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा पर बल-पूर्वक प्रहार किया ॥२८॥

ते तु पंक्तीकृता द्रौणिं शरा विविशुराशुगाः ।
रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्राः सर्वकायावदारणाः ॥२९॥
मध्वर्थिन इवोद्दामा भ्रमराः पुष्पितं द्रुमम् ।

इन बाणों की पंक्ति सी बंध गई और आशुगामी सुवर्णपुङ्ख धारी, चमकीली नोक वाले, सबके शरीर के अवदारक ये शर, अश्वत्थामा के शरीर में इस तरह घुस गए जैसे-पुष्प रस का लोभी भ्रमर, पुष्पों से लदे हुए वृक्षों में घुस जाता है ॥२९॥

सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाऽऽक्रान्त इवोरगः ॥३०॥
मानी द्रौणिरसम्भ्रान्तो बाणपाणिरभाषत ।

अब पैर से कुचले हुए सर्प की भांति अत्यन्त अभिमानी द्रोण-पुत्र झल्ला उठा । इसे किसी प्रकार की घबराहट नहीं थी । अब यह बाण को हाथ में लेकर इस तरह कहने लगा ॥३०॥

धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय ॥३१॥
यावत्त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।

हे धृष्टद्युम्न ! तुम स्थिर होकर थोड़ी देर प्रतीक्षा करो । मैं अभी तुमको तीक्ष्ण बाणों से यमराज के यहां भेज देता हूँ ॥३१॥

द्रौणिरेवमथाऽऽभाष्य पार्षतं परवीरहा ॥३२॥
छादयामास बाणौघैः समन्ताल्लघुहस्तवत् ।

शत्रुवीरनाशक, बड़े शीघ्र हाथ फैंकते हुए, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने इतना कह कर अपने बाण-समूह से पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न को सब तरह बींध डाला ॥३२॥

स बाध्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः ॥३३॥
द्रौणिं पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयत्तदा ।

द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा द्वारा रण में आहत हुए, युद्धदुर्मद, पाञ्चाल-पुत्र धृष्टद्युम्न ने अश्वत्थामा को इस तरह फटकारा ॥३३॥

न जानीषे प्रतिज्ञां मे विप्रोत्पत्तिं तथैव च ॥३४॥
द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं सुदुर्मते ।
ततस्त्वाऽहं न हन्म्यद्य द्रोणे जीवति संयुगे ॥३५॥

हे दुर्मते ! विप्र ! क्या तू मेरी उत्पत्ति और प्रतिज्ञा को नहीं जानता है । मैं द्रोणाचार्य को मार कर फिर तुम्हारा भी वध करूंगा । अभी तक द्रोण जीवित हैं, इसी से रण में बाणों द्वारा तुम्हारा वध नहीं कर रहा हूँ ॥३४-३५॥

इमां तु रजनीं प्राप्तामप्रभातां सुदुर्मते ।
निहत्य पितरं तेऽद्य ततस्त्वामपि संयुगे ॥३६॥
नेष्यामि प्रेतलोकाय ह्येतन्मे मनसि स्थितम् ।

हे दुर्मति ! आज जब तक रात समाप्त नहीं होती है, तब तक तुम्हारे पिता आचार्य द्रोण को मार कर तुम्हें भी पीछे प्रेतलोक में भेज दूंगा । मेरे में अब यही निश्चय विचार है ॥३६॥

यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ॥३७॥
तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ।

यह जो तेरा पाण्डवों से द्वेष और कौरवों से प्रेम है। तू उसे खूब दिखा ले। आज मैं तुझे जीता नहीं छोड़ूंगा ॥३७॥

यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ॥३८॥
स वध्यः सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधमः ।

जो ब्राह्मण, ब्राह्मण के कर्मों को छोड़कर क्षत्रिय धर्म में निरत हो जाता है, उस पुरुषाधम का मार लेना सब के लिए विहित है।

इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः ॥३९॥
क्रोधमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवेक्षत ॥४०॥
छादयामास च शरैर्निःश्वसन्पन्नगो यथा ।

जब धृष्टद्युम्न ने इस तरह कठोर वाक्य सुनाए, तो उस द्विज-श्रेष्ठ अश्वत्थामा के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। वह ठहर जा ? ठहर जा ? इस प्रकार कहता हुआ धृष्टद्युम्न पर झपटा। इसने लाल २ आंखें करके इस तरह देखा-जैसे-धृष्टद्युम्न को भस्म करता हो। सर्प की तरह श्वास लेते हुए,-इसने धृष्टद्युम्न को बाणों से बिल्कुल पाट दिया ॥३९-४०॥

स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम ॥४१॥
सर्वपाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः ।

नाऽकम्पत महाबाहुः स्ववीर्यं समुपाश्रितः ॥४२॥
सायकांश्चैव विविधानश्वत्थाम्नि मुमोच ह ।

हे राजसत्तम ! द्रोण-पुत्र द्वारा बाणों से आच्छादित हुए रथि-श्रेष्ठ, धृष्टद्युम्न को रक्षार्थ सारी पञ्चालसेना ने घेर लिया । यह महाबाहु धृष्टद्युम्न भी अपने पराक्रम का अवलम्बन लिए हुए बिलकुल विचलित नहीं हुआ तथा बहुत से बाणों को अश्वत्थामा पर प्रयुक्त करने लगा ॥४१-४२॥

तौ पुनः संन्यवर्तेतां प्राणद्यूतपणे रणे ॥४३॥
निपीडयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षिणौ ।
उत्सृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टीः समन्ततः ॥४४॥

इस रण में प्राणों की बाजी लगे हुए बड़े आवेश में भरे हुए तथा परस्पर एक दूसरे को बाणजाल से व्याप्त करते हुए वीर आमने सामने डट गए। ये दोनों धनुर्धर, सब ओर बाणों की वर्षा सी कर रहे थे ॥४३-४४॥

द्रौणिपार्षतयोर्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
दृष्ट्वा सम्पूजयामासुः सिद्धचारणवातिकाः ॥४५॥

इस समय अश्वत्थामा और धृष्टद्युम्न का घोर और अत्यन्त भयानक युद्ध हो रहा था। इस युद्ध को देखकर सिद्ध, चारण और वायुचारी देव गण इसकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥४५॥

शरौघैः पूरयन्तौ तावाकाशं च दिशस्तथा ।
अलक्ष्यौ समयुध्येतां महत्कृत्वा शरैस्तमः ॥४६॥

इन दोनों महारथियों ने बाण-समूह से आकाश और दिशाएँ भर दी। इन्होंने इतने बाण छोड़े, कि जिनसे अन्धकार छा गया और ये उसमें अलक्षित होकर युद्ध करने लगे ॥४६॥

नृत्यमानाविव रणे मण्डलीकृतकार्मुकौ ।
परस्परवधे यत्तौ सर्वभूतभयङ्करौ ॥४७॥

ये रण में नांच सा कर रहे थे और इनका मण्डल सा बन गया। ये सब प्राणियों को भय देने वाले एक दूसरे को मारने में बड़ा ही प्रयत्न कर रहे थे ॥४७॥

अयुध्येतां महाबाहू चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
सम्पूज्यमानौ समरे योधमुख्यैः सहस्रशः ॥४८॥

ये महाबाहु, बड़े विचित्र, शीघ्र और श्रेष्ठता से युद्ध करने वाले हैं। इनकी सहस्रों मुख्य २ योद्धाओं से रण में प्रशंसा की जाती है ॥४८॥

तौ प्रबुद्धौ रणे दृष्ट्वा वने वन्यौ गजाविव ।
उभयोः सेनयोर्हर्षस्तुमुलः समपद्यत ॥४९॥

वन में क्रोध में भरे हुए दो गजराजों की तरह इन दोनों वीरों को देखकर दोनों सेनाओं के बीच में बड़ा भारी हर्ष उत्पन्न हुआ ॥४९॥

सिंहनादरवाश्चाऽऽसन्दध्मुः शङ्खांश्च सैनिकाः ।
वादित्राण्यभ्यवाद्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥५०॥

अब सैंकड़ों हज़ारों की संख्या में सैनिक वीर, सिंहनाद करने लगे तथा शङ्ख और अनेक बाजे बजाने में तत्पर हुए ॥५६॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्धने ।
मुहूर्तमपि तद्युद्धं समरूपं तदाऽभवत् ॥५१॥

इस प्रकार कायरों को भयोत्पादक इस घोर युद्ध में उन दोनों वीरों का समान रूप से युद्ध होता रहा ॥५१॥

ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः ।
ध्वजं धनुस्तथा छत्रमुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥५२॥
सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याऽभ्यद्रवद्रणे ।

हे महाराज ! अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने महारथी पर्षत-राजकुमार धृष्टद्युम्न की ध्वजा, धनुष, छत्र, दोनों पृष्ठरक्षक, सारथि और चारों अश्वों को रण में मार गिराया ॥५२॥

पञ्चालांश्चैव तान्सर्वान्बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥५३॥
व्यद्रावयदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः ।

अत्यन्त पराक्रमी अश्वत्थामा ने नतपर्वधारी सैंकड़ों सहस्रों की संख्या में बाण छोड़कर सारे पञ्चालों को इधर उधर भगा दिया ॥५३॥

ततस्तु विव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ ॥५४॥
दृष्ट्वा द्रौणेर्महत्कर्म वासवस्येव संयुगे ।

हे भरतर्षभ ! इस घोर संग्राम में इन्द्र के तुल्य अश्वत्थामा के महान् कर्म को देखकर सारी पाण्डवसेना व्याकुल हो उठी ॥५४॥

शतेन च शतं हत्वा पञ्चालानां महारथः ॥५५॥
त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा त्रीन्वै महारथान् ।
द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फाल्गुनस्य च पश्यतः ॥५६॥
नाशयामास पञ्चालान्भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः ।

महारथी अश्वत्थामा ने सौ बाण छोड़कर पञ्चालों के सौ सैनिक वीर मार गिराए तथा तीन तीक्ष्ण बाण मार कर तीन महारथी भी मार लिए। यह सब कुछ अश्वत्थामा ने द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न और अर्जुन के देखते २ किया। इसने वहां स्थित बहुत से पञ्चालवीरों को मार २ कर रणभूमि में बिछा दिया ॥५६॥

ते वध्यमानाः पञ्चालाः समरे सह सृञ्जयैः ॥५७॥
अगच्छन्द्रौणिमुत्सृज्य विप्रकीर्णरथध्वजाः ।

सृञ्जयों के साथ रण में आहत हुए बहुत से पञ्चालवीर अश्वत्थामा को छोड़कर रण से भाग निकले। इनके रथ और ध्वजा सारे छिन्न-भिन्न हो चुके थे ॥५७॥

स जित्वा समरे शत्रून्द्रोणपुत्रो महारथः ॥५८॥
ननाद सुमहानादं तपान्ते जलदो यथा ।

महारथी द्रोण-पुत्र रण में शत्रुओं को जीत कर इस प्रकार घोर शब्द करने लगे-जैसे वर्षा-काल में मेघ महान् भीषण गर्जना करता है ॥५८॥

स निहत्य बहूञ्छूरानश्वत्थामा व्यरोचत ।
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ॥५९॥

अश्वत्थामा बहुत से शत्रुओं को मार कर इस तरह देदीप्यमान दिखाई देने लगा-जैसे प्रलयकाल में सारे प्राणियों को भस्म करके अग्नि दिखाई देता है ॥५६॥

सम्पूज्यमानो युधि कौरवेयैर्निर्जित्यसंख्येऽरिगणान्सहस्रशः।
व्यरोचतद्रोणसुतःप्रतापवान्यथासुरेन्द्रोऽरिगणान्निहत्य वै ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अश्वत्थामापराक्रमे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६०॥

द्रोण-पुत्र महाप्रतापी अश्वत्थामा, सहस्रों शत्रुओं को मार कर रण में इस तरह सुशोभित हो रहे थे, जिस तरह इन्द्र, दैत्यों को जीत कर दिखाई देते हैं। इस समय अश्वत्थामा की सारे कौरव बड़ी ही पूजा कर रहे थे ॥६०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में अश्वत्थामा और धृष्टद्युम्न के युद्ध का एक सौ साठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ



एक सौ इकसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः।
द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात्पर्यवारयन् ॥१॥

सञ्जय बोला—हे महाराज ! इस समय पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर और भीमसेन ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को सब ओर से घेर लिया ॥ १ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः ।

अभ्ययात्पाण्डवान्संख्ये ततो युद्धमवर्तत ॥२॥

घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्धनम् ।

हे महाराज ! अब राजा दुर्योधन, भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य के साथ रण में पाण्डवों पर झपटे । इसके बाद घोर युद्ध होने लगा । यह अत्यन्त घोर युद्ध, डरपोकों के हृदयमें भय उत्पन्न कर देता था ।

अम्बष्ठान्मालवान्वङ्गाञ्छिबींस्त्रैगर्तकानपि ॥३॥

प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान्क्रुद्धो वृकोदरः ।

क्रोध में भरे हुए भीमसेन ने भी अम्बष्ठ, मालव, वङ्ग, शिवि और त्रिगर्तों को मार २ कर मृत्युलोक भेज दिया ॥ ३ ॥

अभीषाहाञ्छूरसेनान्क्षत्रियान्युद्धदुर्मदान् ॥४॥

निकृत्य पृथिवीं चक्रे भीमः शोणितकर्दमाम् ।

भीमसेन ने अभीषाह, शूरसेन आदि युद्धदुर्मद क्षत्रियों को मार २ कर रणभूमि में रक्त की कीचड़ मचा दी ॥ ४ ॥

यौधेयानद्रिजान्राजन्मद्रकान्मालवानपि ॥५॥

प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः ।

हे राजन् ! यौधेय, पर्वतोत्पन्न मद्रक तथा मालवों को तीक्ष्ण बाणों से काट २ कर अर्जुन ने यमलोक को भेज दिया ॥५॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ॥६॥

निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विशृङ्गा इव पर्वताः ।

सीधी गति वाले नाराचों से गाढ़ी तरह आहत किये हुए हाथी, दो शिखर वाले पर्वतों की तरह भूमि में गिरने लगे ॥६॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च चेष्टमानैरितस्ततः ॥७॥
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ।

काटे हुए हाथियों के शुण्डादण्ड इधर उधर भूमि में बिखरे पड़े थे। जो तड़फड़ाते हुए ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे कहीं अजगर सर्प लोटपोट हो रहे हों। इनसे सारी रणभूमि व्याप्त हो गई ॥७॥

क्षिप्तैः कनकचित्रैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ॥८॥
द्यौरिवाऽऽदित्यचन्द्राद्यैर्ग्रहैः कीर्णा युगक्षये ।

सुवर्ण से विचित्र इधर उधर बिखरे हुए राजाओं के छत्रों से रणभूमि ऐसी व्याप्त हो गई—जैसे-सूर्य आदि ग्रहों से प्रलय-काल में आकाश व्याप्त हो रहा हो ॥ ८ ॥

हत प्रहरताऽभीता विध्यत व्यवकृन्तत॥९॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दः शोणाश्वस्य रथं प्रति ।

मारो ! प्रहार करो ! डरो मत ! बींध दो—काट डालो—इस प्रकार लाल अश्व वाले द्रोणाचार्य के रथ के पीछे २ सैनिकों का घोर शब्द हो रहा था ॥ ९ ॥

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे ॥१०॥
व्यधमत्तान्महावायुर्मेघानिव दुरत्ययः ।

द्रोणाचार्य भी अत्यन्त कुपित हो रहे थे। उन्होंने रण में वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र से उसने शत्रुओं का इस तरह विध्वंस उड़ा दिया, जैसे नहीं रुकने वाला महावायु, मेघों को उड़ा देता है ॥ १०॥

ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन्भयात् ॥११॥
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ।

द्रोणाचार्य से आहत हुए पाञ्चाल भयभीत होकर भाग निकले। इस घटना को महावीर भीमसेन और अर्जुन दोनों ही देख रहे थे।

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ॥१२॥
महता रथवंशेन परिगृह्य बलं महत् ।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं तु वृकोदरः ॥१३॥
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ।

अब किरीटधारी अर्जुन और भीमसेन सहसा लौट पड़े। इन्होंने बहुत से रथ समूह के साथ बड़ी भारी सेना ले ली। इस समय अर्जुन दांयी ओर और भीमसेन बांयी ओर थे। इन दोनों ने महान् बाणवर्षा करके भरद्वाजवंशोद्भव द्रोणाचार्य को बुरी तरह आच्छादित कर दिया ॥ १२-१३ ॥

तौ तथा सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ॥१४॥
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्यैश्च सह सोमकैः ।

हे महाराज! इन दोनों महारथी भीमार्जुन के पीछे २ महाओजस्वी सृञ्जय, पाञ्चाल,मत्स्य और सोमक क्षत्रियवीर चल दिये।

तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ॥१५॥
महत्या सेनया राजञ्जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ।

हे राजन्! इसी तरह तुम्हारे पुत्र के पक्ष के भी प्रहार करने में कुशल उत्तम २ महारथी, महती सेना लेकर द्रोण की रक्षा में चल दिये॥ १५ ॥

ततः सा भारती सेना हन्यमाना किरीटिना ॥१६॥
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ।

अब किरीटधारी अर्जुन से छेदी हुई कौरव सेना व्याकुल हो उठी। रात की अन्धेरी और नींद से वह और भी व्याकुल हो रही थी ॥ १६ ॥

द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ॥१७॥
नाऽशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ।

हे महाराज ! आचार्य द्रोण और तुम्हारे पुत्र द्वारा रोके जाने पर भी पाण्डववीर किसी तरह नहीं रुक सके ॥ १७ ॥

सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दीर्यमाणा महाचमूः ॥१८॥
तमसा संवृते लोके व्यद्रवत्सर्वतोमुखी ।
उत्सृज्य शतशो वाहांस्तत्र केचिन्नराधिपाः ।
प्राद्रवन्त महाराज भयाविष्टाः समन्ततः ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे
एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६१॥

हे महाराज ! पाण्डु-पुत्र अर्जुन के बाणों से विदीर्णमाण हुई कौरवसेना, इस घोर अन्धकार में सब ओर भाग निकली और बहुत से राजा तो अपने २ वाहनों को छोड़कर भयातुर हुए रणभूमि में सब ओर भाग गए ॥ १८-१९ ॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में
द्रोण अर्जुन के युद्ध का एक सौ इकसठवां अध्याय
सम्पूर्ण हुआ ।

एक सौ बासठवाँ अध्याय

सञ्जय उवाच—सोमदत्तं तु सम्प्रेक्ष्य विधुन्वानं महद्धनुः ।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह ॥१॥

सञ्जय बोला—हे राजन् ! जब सात्यकि ने राजा सोमदत्त को विशाल धनुष घुमाते देखा-तो उसने सारथि से कहा—कि मुझे तुम राजा सोमदत्त के समीप ले चलो ॥ १ ॥

नह्यहत्वा रणे शत्रुं सोमदत्तं महाबलम् ।
निवर्तिष्ये रणात्सूत सत्यमेतद्वचो मम ॥२॥

हे सूत ! मैं इस युद्ध में महाबली शत्रु राजा सोमदत्त को बिना मारे रण से नहीं लौटूँगा—यह मैं सत्य वचन कहता हूं ॥२॥

ततः सम्प्रैषयद्यन्ता सैन्धवांस्तान्मनोजवान् ।
तुरङ्गमाञ्छङ्खवर्णान्सर्वशब्दातिगान्रणे ॥३॥

इतना सुनकर सारथि ने शङ्ख के समान श्वेत वर्णधारी, सारे शब्दों के सहन करने में समर्थ, मन के समान वेगवाले, सिन्धु-देशोत्पन्न अश्वों को बड़े वेग से चलाया ॥ ३ ॥

तेऽवहन्युयुधानं तु मनोमारुतरंहसः ।
यथेन्द्रं हरयो राजन्पुरा दैत्यवधोद्यतम् ॥४॥

हे राजन् ! मन और वायु के समान वेग वाले वे अश्व,सात्यकि को इस तरह ले उड़े-जैसे-दैत्यों के वध के लिए उद्यत इन्द्र को उसके अश्व ले जाते हैं ॥ ४ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे ।
सोमदत्तो महाबाहुरसम्भ्रान्तो न्यवर्तत ॥५॥

सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि को रण में वेग से बढ़ते देखकर महाबाहु सोमदत्त भी बिना किसी चिन्ता के वापिस लौट पड़ा ।५।

विसृजञ्छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
छादयामास शैनेयं जलदो भास्करं यथा ॥६॥

राजा सोमदत्त ने जलधारा बरसाने वाले मेघ की तरह बाणों की झड़ी लगाकर शिनिवंशोद्भव सात्यकि को इस तरह आच्छादित कर दिया जैसे मेघ सूर्य को ढक लेता है ॥ ६ ॥

असम्भ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम् ।
छादयामास बाणौघैः समन्ताद्भरतर्षभ ॥७॥

हे भरतर्षभ ! सात्यकि भी इस रण में किसी तरह चिन्तातुर नहीं था-उसने भी सब ओर से बाणसमूह की वर्षा करके कुरुश्रेष्ठ राजा सोमदत्त को क्षत विक्षत कर दिया ॥ ७ ॥

सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवम् ।
सात्यकिश्चाऽपि तं राजन्नविध्यत्सायकैः शितैः ॥८॥

हे राजन् ! राजा सोमदत्त ने साठ बाण मारकर सात्यकि के वक्षस्थल को बींध दिया और सात्यकि ने भी उसे तीक्ष्ण बाणों से बींध डाला ॥ ८ ॥

तावन्योन्यं शरैः कृत्तौ व्यराजेतां नरर्षभौ ।
सुपुष्पौ पुष्पसमये पुष्पिताविव किंशुकौ ॥९॥

हे राजन्! एक दूसरे के बाणों से परस्पर आहत हुए, ये दोनों नरश्रेष्ठ, इस तरह सुशोभित होने लगे-जैसे वसन्त में सुन्दर २ पुष्पों से भरे हुए ढाक के वृक्ष दिखाई देते हैं ॥ ९ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥१०॥

इन दोनों के शरीर रक्त में भींगे हुए थे, जिससे कुरु और वृष्णिवंश का गौरव बढ़ता था। ये दोनों अपने २ नेत्रों से एक दूसरे को मानों दग्ध करते हुए देखने लगे ॥ १० ॥

रथमण्डलमार्गेषु चरन्तावरिमर्दनौ ।
घोररूपौ हि तावास्तां वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ॥११॥

ये दोनों अरिमर्दन, रथ का मण्डल बनाकर उसके मार्ग (पैंतरे) दिखाने लगे। ये इस समय वर्षा करने में तत्पर दो मेघों की तरह घोर आकार में दिखाई देते थे ॥ ११ ॥

शरसम्भिन्नगात्रौ तु सर्वतः शकलीकृतौ ।
श्वाविधाविव राजेन्द्र दृश्येतां शरविक्षतौ ॥१२॥

हे राजेन्द्र! इनके शरीर शरों से जर्जरित और सब जगह से खण्ड २ हो रहे थे। ये बाणों से इस तरह व्याप्त प्रतीत होते थे, जैसे दो सेह नामक जन्तु अपने कांटों से व्याप्त हो रहे हों ॥१२॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिराचितौ तौ व्यराजताम् ।
खद्योतैरावृतौ राजन्प्रावृषीव वनस्पती ॥१३॥

हे राजन ! सुवर्ण मूलधारी बाणों से व्याप्त हुए, ये इस तरह सुशोभित होने लगे-जैसे वर्षा ऋतु में खद्योतों से व्याप्त दो वृक्ष दिखाई देते हों ॥ १३ ॥

संप्रदीपितसर्वाङ्गौ सायकैस्तैर्महारथौ ।
अदृश्येतां रणे क्रुद्धावुल्काभिरिव कुञ्जरौ ॥१४॥

इनके सारे अङ्ग बाणों से व्याप्त थे, जिससे ये महारथी ऐसे मालूम होते थे, जैसे-उल्का (मसाल) से युक्त क्रोध में भरे हुए दो गजराज रण में दिखाई दे रहे हों ॥ १४ ॥

ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद्धनुः ॥१५॥

हे महाराज ! अब युद्ध में महारथी सोमदत्त ने अपने अर्ध-चन्द्र नामक बाण से सात्यकि का विशाल धनुष काट गिराया ॥१५॥

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।
त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभिः शरैः ॥१६॥

इसके अनन्तर इसने पचीस बाण और मारे। यह समय बड़ी शीघ्रता का था, इससे शीघ्रता के साथ इसने फिर दश बाण मारे।

अथाऽन्यद्धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम् ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत ॥१७॥

अब सात्यकि ने दूसरा वेगशाली धनुष उठाया और उससे पांच बाण छोड़कर बड़ी शीघ्रता से राजा सोमदत्त को बींध डाला ॥ १७ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ।
वाह्लीकस्य रणे राजन्सात्यकिः प्रहसन्निव ॥१८॥

हे राजन्! अब सात्यकि ने फिर हंसते २ एक भल्ल संज्ञक बाण छोड़ा, जिससे रण में वाह्लीकराज सोमदत्त की सुवर्ण की ध्वजा को काट गिराया ॥ १८ ॥

सोमदत्तस्त्वसम्भ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम् ।
शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥१९॥

यद्यपि राजा सोमदत्त की ध्वजा कट कर गिर गई, तो भी कुरुश्रेष्ठ सोमदत्त कुछ भी नहीं सटपटाया। उसने पचीस बाण छोड़कर शिनि-पौत्र सात्यकि को आहत कर दिया॥ १९ ॥

सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन क्षुरप्रेण शितेन ह ॥२०॥

सात्वतवंशश्रेष्ठ, सात्यकि अब क्रोध में भर गया-उसने भी धनुर्धर राजा सोमदत्त का धनुष अपने क्षुरे के सदृश तीक्ष्ण बाण से काट डाला ॥ २० ॥

अथैनं रुक्मपुङ्खानां शतेन नतपर्वणाम् ।
आचिनोद्बहुधा राजन्भग्नदंष्ट्रमिव द्विपम् ॥२१॥

हे राजन्! सुवर्णमूलधारी सैंकड़ों नतपर्ववाले अपने बाणों से राजा सोमदत्त को इतना व्याकुल कर दिया; जैसे दांत तोड़ देने पर हाथी व्याकुल कर दिया जाता है॥ २१ ॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय सोमदत्तो महारथः ।
सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः ॥२२॥

महारथी सोमदत्त ने भी दूसरा धनुष उठाया। इस महाबली ने बाणों की झड़ी लगाकर सात्यकि को बुरी तरह आच्छादित कर दिया॥ २२॥

सोमदत्तं तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः।
सात्यकिं शरजालेन सोमदत्तोऽप्यपीडयत्॥२३॥

क्रोध में भरे हुए सात्यकि ने रण में राजा सोमदत्त को बींध डाला। राजा सोमदत्त ने भी सात्यकि को अपने बाणजाल से बुरी तरह पीड़ित कर दिया॥ २३॥

दशभिः सात्वतस्याऽर्थे भीमोऽहन्बाह्लिकात्मजम्।
सोमदत्तोऽप्यसम्भ्रान्तो भीममार्च्छच्छितैः शरैः॥२४॥

अब भीमसेन ने सात्यकि की सहायता के निमित्त दश बाणों से बाह्लिक-पुत्र सोमदत्त पर प्रहार किया। इधर राजा सोमदत्त ने भी बिना घबराहट के तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन को व्याप्त कर दिया॥ २४॥

ततस्तु सात्वतस्याऽर्थे भीमसेनो नवं दृढम्।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि॥२५॥

अब सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि की सहायता के लिये भीमसेन नें नौ बाण बड़ी दृढ़ता से मारे और एक घोर परिघ नामक शस्त्र का राजा सोमदत्त के वक्षस्थल में प्रहार किया॥ २५॥

तमापतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम्।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रहसन्निव कौरवः॥२६॥

इस घोररूपधारी परिघ (घन) को वेग से अपने ऊपर गिरता देखकर रण में हंसते २ कुरुश्रेष्ठ सोमदत्त ने दो टुकड़े करके काट गिराया ॥ २६ ॥

स पपात द्विधा च्छिन्न आयसः परिघो महान् ।
महीधरस्येव महच्छिखरं वज्रदारितम् ॥२७॥

वह लोहमय महान् परिघ (घन) इस तरह दो खण्डों में गिर गया-जैसे वज्र से खण्डित पर्वत का महान् शिखर छिन्न-भिन्न होकर गिर गया हो ॥ २७ ॥

ततस्तु सात्यकी राजन्सोमदत्तस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥२८॥

हे राजन् ! अब रण में सात्यकि ने भी एक भल्ल नामक बाण से राजा सोमदत्त का धनुष और पांच बाणों से उसके हस्तावाप (हाथ के कवच) को काट गिराया ॥ २८ ॥

ततश्चतुर्भिश्च शरैस्तूर्णं तांस्तुरगोत्तमान् ।
समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥२९॥

हे भारत ! इसके अनन्तर चार बाण छोड़कर सात्यकि ने कुरुवंशश्रेष्ठ, सोमदत्त के चारों उत्तम अश्वों को मारकर यमराज के पुर में भेज दिया ॥ २९ ॥

सारथेश्च शिरः कायाद्भल्लेन नतपर्वणा ।
जहार नरशार्दूलः प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः ॥३०॥

हे राजन् ! अब शिनिवंशश्रेष्ठ महावीर सात्यकि ने हंसते २ अपने नतपर्ववाले शर से राजा सोमदत्त के सारथि के शिर को शरीर से पृथक् काट गिराया ॥ ३० ॥

ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मुमोच सात्वतो राजन्स्वर्णपुङ्खं शिलाशितम् ॥३१॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर सात्यकि ने सुवर्ण के मूलवाले, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए अग्नि की भांति देदीप्यमान महाघोर बाण को छोड़ा ॥ ३१ ॥

स विमुक्तो बलवता शैनेयेन शरोत्तमः ।
घोरस्तस्योरसि विभो निपपाताऽऽशु भारत ॥३२॥

हे भारत ! बलवान् शिनि-पौत्र सात्यकि द्वारा प्रयुक्त किया गया वह घोर बाण, राजा सोमदत्त की छाती में जाकर चुभ गया ।

सोऽतिविद्धो महाराज सात्वतेन महारथः ।
सोमदत्तो महाबाहुर्निपपात ममार च ॥३३॥

हे महाराज ! सात्वतवीर सात्यकि द्वारा अत्यन्त विद्ध होकर महारथी महाबाहु सोमदत्त भूमि में गिर गया और मर गया ॥३३॥

तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोमदत्तं महारथाः ।
महता शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन् ॥३४॥

जब कौरव महारथियों ने सोमदत्त को मरा हुआ देखा-तो वे बड़ी भारी बाणवर्षा करते हुए सात्यकि पर टूट पड़े ॥३४॥

छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः ।
पाण्डवाश्च महाराज सह सर्वैः प्रभद्रकैः ॥
महत्या सेनया सार्धं द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥३५॥

हे महाराज ! राजा युधिष्ठिर ने जब सात्यकि को बाणों से आच्छादित देखा-तो सारे पाण्डव, प्रभद्रक वीरों की विशाल सेना लेकर एक साथ द्रोण की सेना पर टूट पड़े ॥ ३५ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तावकानां महाबलम् ।
शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ॥३६॥

अब तुम्हारी सेना को राजा युधिष्ठिर कुपित होकर द्रोणाचार्य के देखते २ अपने बाणों से मार २ कर भगाने लगा ॥३६॥

सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः ॥३७॥

जब द्रोणाचार्य ने राजा युधिष्ठिर को कौरवदल को भगाते देखा-तो वह क्रोध से लाल आंखें करके वेग से उसपर झपटा ॥३७॥

ततः सुनिशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धः प्रतिविव्याध पञ्चभिः ॥३८॥

अब द्रोणाचार्य ने सात तीक्ष्ण बाण धर्मराज के शरीर में मारे । इससे राजा युधिष्ठिर भी कुपित हो गये और उन्होंने भी पांच बाण द्रोणाचार्य पर छोड़े ॥ ३८ ॥

सोऽतिविद्धो महाबाहुः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
युधिष्ठिरस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥३९॥

इन बाणों से अत्यन्त बिंधा हुआ आचार्य द्रोण क्रोध से अपने होंट चाटने लगा। इसने बाण छोड़कर राजा युधिष्ठिर की ध्वजा और धनुष काट डाला॥ ३९॥

स च्छिन्नधन्वा त्वरितस्त्वराकाले नृपोत्तमः।
अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम् ॥४०॥

इस शीघ्रता के समय में राजा युधिष्ठिर ने अपने धनुष के कट जाने पर वेग से युद्धोपयोगी दूसरा दृढ़ धनुष ग्रहण किया ४०

ततः शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः।
साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥४१॥

अब राजा युधिष्ठिर ने सहस्रों बाण द्रोण के शरीर पर मारे, जो अश्व, सारथि, ध्वजा और रथ में जाकर लगे। यह बड़ा ही अद्भुत दृश्य माना गया॥ ४१॥

ततो मुहूर्तं व्यथितः शरपातप्रपीडितः।
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो भरतसत्तम ॥४२॥

हे भरतसत्तम! धर्मराज के बाण के आघात से प्रपीड़ित हो कर बड़ी व्यथा के साथ द्रोण रथ के मध्य में स्थित होगए ॥४२॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मुहूर्ताद् द्विजसत्तम।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो वायव्यास्त्रमवासृजत् ॥४३॥

थोड़ी ही देर में द्विज-श्रेष्ठ द्रोणाचार्य को चेतनता प्राप्त हुई। उसने बड़े भारी क्रोध में भरकर वायव्यास्त्र का प्रयोग किया ॥४३॥

असम्भ्रान्तस्ततः पार्थो धनुराकृष्य वीर्यवान् ।

ततस्तदस्त्रमस्त्रेण स्तम्भयामास भारत ॥४४॥

हे भारत ! इस समय कुन्ती-पुत्र महावीर्यवान् धर्मराज कुछ भी नहीं घबराए और द्रोणाचार्य के अस्त्र को अपने अस्त्र से वहीं रोक दिया ॥ ४४ ॥

चिच्छेद च धनुर्दीर्घं ब्राह्मणस्य च पाण्डवः ।

ततोऽन्यद्धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥४५॥

पाण्डुपुत्र धर्मराज ने द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य का वह दीर्घ धनुष भी काट डाला। अब क्षत्रियमर्दन आचार्य द्रोण ने फिर दूसरा धनुष उठाया ॥ ४५ ॥

तदप्यस्य शितैर्भल्लैश्चिच्छेद कुरुपुङ्गवः ।

ततोऽब्रवीद्वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥४६॥

इस धनुष को भी कुरुवंशश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने अपने तीक्ष्ण बाणों से काट डाला। अब कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर से भगवान् कृष्ण ने कहा— ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिर महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ।

उपारमस्व युद्धे त्वं द्रोणाद्भरतसत्तम ॥४७॥

हे महाबाहो ! युधिष्ठिर ! मैं जो तुम्हें कह रहा हूं—तुम उसे सुनो । हे भरतसत्तम ! तुम युद्ध में द्रोणाचार्य के सामने से हट जाओ ॥ ४७ ॥

यतते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे ।
नाऽनुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य त्वया सह ॥४८॥
योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एवैनं हनिष्यति ।
परिवर्ज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ॥४९॥

द्रोणाचार्य इस युद्ध में सदा तुम्हारे पकड़ने की चेष्टा करता रहता है । इसके साथ तुम्हारा युद्ध मैं अनुरूप युद्ध नहीं मानता हूं । द्रोणाचार्य के मारने को परमात्मा ने जिसे रचा है-वही इसे मारेगा । अब तुम आचार्य को छोड़कर उधर युद्ध करने चले जाओ—जिधर राजा दुर्योधन युद्ध कर रहा है ॥ ४८-४९ ॥

राजा राज्ञा हि योद्धव्यो नाऽराज्ञा युद्धमिष्यते ।
तत्र त्वं गच्छ कौन्तेय हस्त्यश्वरथसंवृतः ॥५०॥
यावन्मात्रेण च मया सहायेन धनञ्जयः ।
भीमश्च रथशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह ॥५१॥

राजा को राजा से युद्ध करना चाहिए । जो राजा न हो-उससे राजा को नहीं लड़ना चाहिए । हे कुन्ती-पुत्र ! तुम हाथी, अश्व और रथों की सेना लेकर राजा दुर्योधन की ओर ही चले जाओ । जब तक मैं अपने साथ अर्जुन और रथिश्रेष्ठ भीम को लेकर कौरवों के साथ युद्ध करता हूं ॥ ५०-५१॥

वासुदेववचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम् ॥५२॥

प्रायाद् द्रुतममित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः ।
विनिघ्नंस्तावकान्योधान्व्यादितास्य इवाऽन्तकः ॥५३॥

वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने थोड़ी देर विचार किया और युद्ध की दारुणता पर ध्यान दिया। अब बड़ी शीघ्रता से धर्मराज वहां चल दिये, जिधर भीमसेन स्थित थे। यह भीमसेन तुम्हारे योद्धाओं का नाश कर रहा था और काल की तरह मुंह खोले हुए था ॥ ५२-५३ ॥

रथघोषेण महता नादयन्वसुधातलम् ।
पर्जन्य इव घर्मान्ते नादयन्वै दिशो दश ॥५४॥
भीमस्याऽनिघ्नतः शत्रून्पार्ष्णिं जग्राह पाण्डवः ।
द्रोणोऽपि पाण्डुपञ्चालान्व्यधमद्रजनीमुखे ॥५५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६२॥

जब भीमसेन शत्रुओं का नाश कर रहे थे, तो उसी समय अपने बहुत से रथों की ध्वनि से पृथिवी को तथा वर्षा ऋतु में मेघों की तरह दशों दिशाओं को गुंजाते हुए धर्मराज, भीमसेन की पीठ पर रक्षक होकर पहुंच गए। इधर द्रोणाचार्य भी रात में पाण्डव-वीर और पाञ्चालों का विध्वंस उड़ाने लगे ॥ ५४-५५ ॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में द्रोण और धर्मराज के युद्ध के वर्णन का एक सौ बासठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

एक सौ तरेसठवाँ अध्याय

सञ्जय उवाच—वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयावहे ।
तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते ॥१॥
नाऽपश्यन्त रणे योधाः परस्परमवस्थिताः ।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद्ववृधे महत् ॥२॥
नरनागाश्वमथनं परमं लोमहर्षणम् ।

सञ्जय बोला—हे महीपते ! इस प्रकार भयानक घोर युद्ध के प्रवृत्त होने पर तथा अन्धकार और धूल-मिट्टी से रणप्रान्त के आवृत हो जाने पर योद्धा, सन्मुख स्थित हुए भी परस्पर एक दूसरे को नहीं देख रहे थे। ये वीर अनुमान और अपने नियत संकेतों द्वारा युद्ध करने लगे; जिससे युद्ध बहुत बढ़ गया। इस युद्ध में नर, हाथी और अश्वों का बहुत ही विनाश हुआ, जिससे युद्ध अत्यन्त लोमहर्षण दिखाई देने लगा॥ १-२॥

द्रोणकर्णकृपा वीरा भीमपार्षतसात्यकाः ॥३॥
अन्योन्यं क्षोभयामासुः सैन्यानि नृपसत्तम ।

हे नृपसत्तम ! द्रोण, कृप और कर्ण आदि कौरववीर तथा भीम, धृष्टद्युम्न और सात्यकि परस्पर एक दूसरे की सेना को व्याकुल करने लगे॥ ३॥

वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात्तैर्महारथैः ॥४॥
तमसा संवृते चैव समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ।

जब इन दोनों ओर के महारथियों द्वारा सेनाएँ सब ओर से मारी जाने लगी, तो अन्धकाराच्छन्न इस प्रदेश में सारी सेनाएँ भाग खड़ी हुई ॥ ४ ॥

ते सर्वतो विद्रवन्तो योधा विध्वस्तचेतनाः ॥५॥
अहन्यन्त महाराज धावमानाश्च संयुगे ।

हे महाराज ! इस समय दोनों ओर के योद्धाओं को कुछ भी ध्यान नहीं था, वे सब ओर भाग निकले। इनमें बहुतों को भागते २ अन्य वीरों ने अपने बाणों से रण में मार गिराया ॥ ५ ॥

महारथसहस्राणि जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥६॥
अन्धे तमसि मूढानि पुत्रस्य तव मन्त्रिते ।

सहस्रों महारथी रण में एक दूसरे को मारने लगे तथा तुम्हारे पुत्र की सम्मति से खड़े हुए इस अन्धकार व्याप्त युद्ध में बिल्कुल चौकड़ीचूक हो गए ॥ ६ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनागोपाश्च भारत ॥
व्यमुह्यन्त रणे तत्र तमसा संवृते सति ॥७॥

हे भारत ! इस समय अन्धकार के व्याप्त होने से सारी सेना के वीर और सेनापति इस युद्ध में बहुत ही मोहित हो गए ॥७॥

धृतराष्ट्र उवाच—तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्विहतौजसाम् ।
अन्धे तमसि मग्नानामासीत्किं वो मनस्तदा ॥८॥
कथं प्रकाशस्तेषां वा मम सैन्यस्य वा पुनः ।
बभूव लोके तमसा तथा सञ्जय संवृतः ॥९॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! जिस समय तुम लोगों का तेज नष्ट हो रहा था और पाण्डवों ने सेना का आलोड़न कर रखा था, उस समय गाढ़ अन्धकार में निमग्न तुम लोगों के मन की दशा क्या हुई होगी । जब अन्धकार से सारी सेनाएँ व्याप्त थी, तो हमारी और पाण्डवों की सेना में किस तरह प्रकाश हुआ-यह तो बताओ ॥८-९॥

सञ्जय उवाच-ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै ।
सेनागोपतृनथाऽऽदिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत् ॥१०॥

सञ्जय ने कहा–हे राजन् ! इस समय जो सेना मरने से बची हुई थी, वह सेनापति की आज्ञा पाकर फिर व्यूह रचना के रूप में खड़ी हो गई ॥१०॥

द्रोणःपुरस्ताज्जघने तु शल्यस्तथा द्रौणिः कृतवर्मा सौबलश्च
स्वयंतुसर्वाणिबलानिगजन्राजाऽभ्ययाद्गोपयन्वैनिशायाम् ।

हे राजन् ! इस व्यूह के अग्रभाग में द्रोणाचार्य, पीछे राजा शल्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और सुबल-पुत्र शकुनि थे । राजा दुर्योधन इस रात में सारी अपनी सेना की रक्षा करते हुए इनके साथ २ चल दिए ॥११॥

उवाच सर्वांश्च पदातिसङ्घान्दुर्योधनः पार्थिवसान्त्वपूर्वम् ।
उत्सृज्य सर्वे परमायुधानि गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान्प्रदीपान् ।

हे महीपते ! अब शान्ति के साथ राजा दुर्योधन ने सारे पैदल सैनिकों से कहा–कि तुम लोग अपने २ अस्त्रों को रख दो और सारे प्रदीप्त दीपकों (मसालों) को हाथ में उठा लो ॥१२॥

ते चोदिताः पार्थिवसत्तमेन ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् ।
देवर्षिगन्धर्वसुरर्षिसङ्घा विद्याधराश्चाऽप्सरसां गणाश्च ॥१३॥
नागाः सयक्षोरगकिन्नराश्च हृष्टा दिविस्था जगृहुः प्रदीपान् ।
दिग्दैवतेभ्यश्च समापतन्तोऽदृश्यन्त दीपाः ससुगन्धितैलाः ॥
विशेषतो नारदपर्वताभ्यां सम्बोध्यमानाः कुरुपाण्डवार्थम् ।
साभूयएवध्वजिनीविभक्ताव्यरोचताऽग्निप्रभयानिशायाम् ॥

राजा दुर्योधन से इस प्रकार आज्ञा पाकर उन लोगों ने प्रसन्नता के साथ दीपक उठा लिए। इसी समय आनन्द में भरे हुए देवर्षि, गन्धर्व, सुरर्षि, विद्याधर, अप्सराओं के गण, नाग, यक्ष, उरग और किन्नरों ने आकाश में ही बहुत से प्रदीप्त दीपक ग्रहण कर लिए। इसी तरह दिशाओं के देव भी सुगन्धित तेल लेकर दीपक उठाये हुए दृष्टिगोचर हुए। इसमें भी विशेष रूप से नारद और पर्वत नामक देवर्षियों ने कौरव और पाण्डवों के ज्ञान के निमित्त अधिक दीपक (मसालें) प्रज्वलित किए। इसी समय रात में ही कौरव और पाण्डवों की सेना बंट गई और अग्नि के प्रकाश में दिखाई देने लगी ॥१३-१५॥

महाधनैराभरणैश्च दिव्यैः शस्त्रैश्च दीप्तैरपि सम्पतद्भिः ।
रथे रथे पञ्च विदीपकास्तु प्रदीपकास्तत्र गजे त्रयश्च ॥१६॥
प्रत्यश्वमेकश्च महाप्रदीपः कृतास्तु तैः पाण्डवैः कौरवेयैः ।
क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपान्यादीपयन्तोध्वजिनींतदाऽऽशु ॥

अत्यन्त मूल्य वाले रत्नों से जटित आभूषण, दिव्य और प्रदीप्त, एक दूसरे पर गिरते हुए शस्त्रों से भी प्रकाश हो गया। प्रत्येक रथ में पांच २ दीपक (लालटेनें) लग गईं और प्रत्येक हाथी पर तीन दीपक लगाए गए। प्रत्येक अश्व पर एक दीपक था। इस प्रकार कौरवों ने दीपकों का प्रबन्ध किया। यह सारा प्रबन्ध क्षण भर में हो गया, जिससे तुम्हारी सेना शीघ्र ही प्रदीप्त हो उठी ॥१६-१७॥

सर्वास्तुसेनाव्यतिसेव्यमानाः पदातिभिःपावकतैलहस्तैः ।
प्रकाश्यमानाददृशुर्निशायांयथाऽन्तरिक्षेजलदास्तडिद्भिः॥

अग्नि और तेल हाथ में लिए हुए पैदलों से सेवित सारी सेना रात में प्रकाशित होकर इस तरह दिखाई देने लगीं—जैसे आकाश में बिजली से मेघ दिखाई दे जाते हैं ॥१८॥

प्रकाशितायांतु ततोध्वजिन्यांद्रोणोऽग्निकल्पःप्रतपन्समन्तात्
रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा मध्यङ्गतः सूर्य इवांऽशुमाली ॥१६॥

जब सारी सेना दिखाई देने लगी, तो अग्नि के तुल्य तेजस्वी द्रोणाचार्य सब ओर से पाण्डव वीरों को सन्तप्त करने लगे। हे राजेन्द्र! इस समय द्रोणाचार्य सुवर्ण कवच पहिने हुए इस तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे—मध्यान्हकाल में किरणमाला से देदीप्यमान सूर्य दिखाई देता है ॥१६॥

जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव निष्केषु शुद्धेषु शरासनेषु ।
पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य प्रतिप्रभास्तत्र तदा बभूवुः ॥२०॥

हे राजन् ! सुवर्ण के बने हुए आभूषण, कण्ठहार, शुद्ध सुवर्ण या रजत के बने हुए धनुष तपा कर बनाये हुए शस्त्रों में मशाल की अग्नि की लपटें प्रतिबिम्बित होने लगी ॥२०॥

गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा रथेषु शक्त्यश्च विवर्तमानाः
प्रतिप्रभारश्मिभिराजमीढपुनःपुनःसञ्जनयन्तिदीपान् ॥२१॥

हे आजमीढ़ ! छींके पर आदर-पूर्वक रखी रहने वाली गदा; चमकीले परिघ और रथों में रखी हुई शक्तिओं में प्रतिफलित किरणों से उस समय बहुत से दीपक प्रज्वलित से दिखाई देने लगे।

छत्राणिबालव्यजनानिखड्गादीप्तामहोल्काश्चतथैवराजन् ।
व्याघूर्णमानाश्चसुवर्णमालाव्यायच्छतांतत्रतदाविरेजुः ॥२२

हे राजन् ! छत्र, छोटे २ पङ्खे, खड्ग, प्रदीप्त महोल्का और युद्ध करने वाले वीरों की झूमती हुई सुवर्णमाला सर्वत्र चमकने लगी।

शस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं दीपप्रभाभिश्च तदाबलंतत् ।
प्रकाशितंचाऽभरणप्रभाभिर्भृशंप्रकाशंनृपतेबभूव ॥२३॥

हे नृपते ! शस्त्रों की प्रभा, दीपक की प्रभा तथा आभूषणों की चमक से सारी सेना अत्यन्त चमक उठी ॥२३॥

पीतानिशस्त्राण्यसृगुक्षितानिवीरावधूतानितनुच्छदानि ।
दीप्तांप्रभांप्राजनयन्ततत्रतपात्ययेविद्युदिवाऽन्तरिक्षे ॥२४॥

उज्ज्वल लोह से निर्मित, रक्त में भीगे हुए, वीरों के फटे कटे हुए कवच, इस प्रकार प्रदीप्त चमक उत्पन्न कर रहे थे, जैसे-वर्षा ऋतु में आकाश में बिजली सबको चमका देती है ॥२४॥

प्रकम्पितानामभिघातवेगैरभिघ्नतांचाऽऽपततां जवेन।
वक्त्राण्यकाशन्ततदानगणांवाय्वीरितानीवमहाम्बुजानि ॥

प्रहार के वेग से प्रकम्पित तथा प्रहार करते और वेग से झपटते हुए वीरों के मुख इस तरह विकसित हो रहे थे, जैसे-वायु से कम्पित बड़े कमल खिल रहे हों ॥२५॥

महावनेदारुमयेप्रदीप्तेयथाप्रभाभास्करस्याऽपिनश्येत् ।
तथातदाऽऽसीद्ध्वजिनीप्रदीप्तामहाभयाभारतभीमरूपा ॥

हे भारत ! दारुवन में आग लगने पर इतना प्रकाश हो उठता है, कि जिससे सूर्य की चमक भी कुछ नहीं रहती है। उसी तरह हमारी सेना चमक उठी और अब उसका महा भयकारी भीषण रूप दिखाई देने लगा ॥२६॥

तत्सम्प्रदीप्तं बलमस्मदीयं निशम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव ।
सर्वेषुसैन्येषुपदातिसङ्घानचोदयंस्तेऽपिचक्रुःप्रदीपान् ॥२७॥
गजे गजे सप्त कृताः प्रदीपा रथे रथे चैव दश प्रदीपाः ।
द्वावश्वपृष्ठेपरिपार्श्वतोऽन्येध्वजेषुचाऽन्येजघनेषुचाऽन्ये ॥२८॥
सेनासु सर्वासु च पार्श्वतोन्येपश्चात्पुरस्ताच्च समन्ततश्च।
मध्येतथाऽन्येज्वलिताग्निहस्ताव्यदीपयन्पाण्डुसुतस्यसेनाम्॥

हे राजन् ! हमारी सेना को प्रकाश युक्त देखकर पाण्डवों ने भी अपने पैदलों को मशाल जलाने की आज्ञा दी। उन्होंने हाथी २ के ऊपर सात २ और प्रत्येक रथ में दश २ दीपक प्रज्वलित किए अश्व की पीठ पर दोनों ओर दो दीपक और ध्वजा तथा पिछले

भाग में दीपक जलाए गए। सारी सेना में इधर उधर आगे पीछे सब ओर बीच में प्रज्वलित अग्नि की मशालें लेकर सैनिकों ने पाण्डव सेना को भी देदीप्यमान कर दिया ॥२७-२६॥

मध्येतथाऽन्येज्वलिताग्निहस्ताःसेनाद्वयेऽपिस्मनराविचेरुः ।
सर्वेषुसैन्येषुपदातिसङ्घाव्यामिश्रिताहस्तिरथाश्ववृन्दैः ॥३०॥

सेना के मध्य में अन्य सैनिक प्रज्वलित दीपक लेकर चले तथा कुछ ऐसे भी स्वयंसेवक थे, जो दोनों सेनाओं में दीपक लेकर घूमते थे। इस तरह हाथी, रथ और अश्वों के समूह के साथ बहुत से पैदल सैनिक सारी सेनाओं में रलमिल गए ॥३०॥

व्यदीपयंस्तेध्वजिनींप्रदीप्तास्तथाबलंपाण्डवेयाभिगुप्तम् ।
तेन प्रदीप्तेन तथा प्रदीप्तं बलं तवाऽऽसीद्बलवद्बलेन ॥

दीपकों से युक्त इन सैनिकों ने सारी पाण्डवों की सेना चमका दी। इस प्रकार पाण्डवों द्वारा सुरक्षित सेना प्रकाश युक्त हो उठी। इस प्रकार के प्रदीपों से युक्त पाण्डव सेना से तुम्हारी सेना और भी प्रकाशित हो उठी ॥३१॥

भाः कुर्वताभानुमताशतेनदिवाकरेणाऽग्निरिवाऽभिगुप्तः ।
तयोःप्रभाःपृथिवीमन्तरिक्षं सर्वाव्यतिक्रम्यदिशश्चवृद्धाः ॥

किरणधारी, सैंकड़ों सूर्यों से जितनी चमक हो जाती है, उतनी अग्नि सुरक्षित हो गई। वह प्रकाश इतना बढ़ा, कि जिससे पृथिवी, आकाश और सारी दिशाएँ चमक उठी ॥३२॥

तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं बभूव तेषां तव चैव सैन्यम् ।
तेनप्रकाशेन दिवं गतेनसम्बोधितादेवगणाश्च राजन् ॥३३॥

इस प्रकाश से इतना अधिक प्रकाश हुआ, कि पाण्डव और हमारी सेना प्रकाशित हो गई । हे राजन्! आकाश में पहुंचे हुए इस प्रकाश से देवगण भी चमक उठे ॥३३॥

गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा समागमन्नप्सरसश्च सर्वाः ।
तद्देवगन्धर्वसमाकुलं च यक्षासुरेन्द्राप्सरसां गणैश्च॥३४॥
हतैश्च शूरैर्दिवमारुहद्भिरायोधनं दिव्यकल्पं बभूव ।

गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध और अप्सराएँ, सारे गण, वहां आ पहुंचे । इन देव, यक्ष, गन्धर्व, असुर और अप्सराओं के गणों और मारे हुए शूरवीरों से आकाश भर गया, जिससे यह युद्धस्थल दिव्य युद्ध का स्थान सा हो गया ॥३४॥

रथाश्वनागाकुलदीपदीप्तं संरब्धयोधं हतविद्रुताश्वम् ॥३५॥
महद्बलं व्यूढरथाश्वनागं सुरासुरव्यूहसमं बभूव ।

रथ, अश्व, गजों के समूह पर स्थित दीपक से प्रदीप्त इधर उधर की भाग दौड़ में व्याप्त, योद्धाओं से युक्त, मारे हुए और भागते हुए अश्वों से समन्वित, व्यूह में खड़े हुए रथ, अश्व और हाथियों से संकुल यह विशालसेना देव और असुरों की सेना सी प्रतीत होती थी ॥३५॥

तच्छक्तिसङ्घाकुलचण्डवातं महारथाभ्रं गजवाजिघोषम् ॥
शस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं निशि प्रवृत्तं रथदुर्दिनं तत् ।

इस रण में शक्ति आदि प्रचण्ड शस्त्रों की प्रचण्ड वायु थी। बड़े २ रथ मेघ सदृश दिखाई देते थे। गज और अश्वों के घोष, मेघ की गर्जना से प्रतीत होते थे। शस्त्रसमूह की वर्षाको मेघ की झड़ी सी लगी हुई थी। रुधिर की जल धारा थी। इस प्रकार रथियों का यह दुर्दिन (मेघव्याप्त दिन) इस रात में ही प्रवृत्त हो गया ॥३६॥

तस्मिन्महाग्निप्रतिमो महात्मा सन्तापयन्पाण्डवान्विप्रमुख्यः।
गभस्तिभिर्मध्यगतोयथाऽर्कोवर्षात्ययेतद्वद्भून्नरेन्द्र ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दीपोद्योतने
त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३॥

हे नरेन्द्र! इस युद्ध में प्रचण्ड अग्नि के तुल्य देदीप्यमान, द्विज श्रेष्ठ महारथी द्रोणाचार्य, पाण्डवों को व्याकुल करते हुए इस तरह दिखाई दिए, जैसे-वर्षा की समाप्ति में अपनी किरणों से चमकते हुए मध्यान्हकाल के सूर्य प्रतीत होते हैं ॥३७-३८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में युद्धस्थल में प्रकाश करने के वर्णन का एक सौ तरेसठवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ चौंसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—प्रकाशिते तदा लोके रजसा तमसाऽऽवृते ।
समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! अब धूलि और अन्धकार से व्याप्त, युद्धस्थल में प्रकाशित हो जाने पर परस्पर वध की इच्छा से वीर लोग एक दूसरे की ओर आगे बढ़े ॥१॥

ते समेत्य रणे राजञ्शस्त्रप्रासासिधारिणः ।
परस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥२॥

हे राजन् ! ये वीर, शस्त्र, प्रास, खड्ग धारण करके एक दूसरे के वध की अभिलाषा से परस्पर देखने लगे ॥२॥

प्रदीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैः समन्ततः ।
रत्नाचितैः स्वर्णदण्डैर्गन्धतैलावसिञ्चितैः ॥३॥
देवगन्धर्वदीपाद्यैः प्रभाभिरधिकोज्ज्वलैः ।
विरराज तदा भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव भारत ॥४॥

हे भारत ! इस समय रणभूमि में सब ओर सहस्रों दीपक चमक रहे थे । सुगन्धित तेलों से चिकने किए गए रत्नजटित सुवर्ण के दण्ड तथा देव, गन्धर्व आदि देवों के दीपकों की अत्यन्त उज्ज्वल कान्ति से रणभूमि इस तरह की प्रतीत होने लगी-जैसे ग्रहादि से देदीप्यमान आकाश प्रतीत होता है ॥३-४॥

उल्काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत ।

दह्यमानेव लोकानामभावे च वसुन्धरा ॥५॥

सैंकड़ों प्रज्वलित उल्काओं (मशालों) से रणभूमि ऐसी दिखाई देती थी, मानों प्रलयकाल में लोकों के विनाश होने पर पृथिवी जल रही हो ॥५॥

व्यदीप्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समन्ततः ।

वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृता वृक्षा इवाऽऽबभुः ॥६॥

सब ओर से इन दीपों द्वारा सारी दिशा इस तरह चमक उठी जैसे वर्षाकाल के सायंकाल में खद्योतों (जुगनुओं) से व्याप्त वृक्ष चमचमाते हैं ॥६॥

असज्जन्त ततो वीरा वीरेष्वेव पृथक् पृथक् ।

नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगा हयसादिभिः ॥७॥

रथा रथवरैरेव समाजग्मुर्मुदा युताः ।

हे राजन् ! इसके बाद पृथक् २ वीरों से वीर, गजारोहियों से गजारोही और अश्वारोहियों से अश्वारोही और रथियों से रथी उत्साह-पूर्वक भिड़ गए ॥७॥

तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे तव पुत्रस्य शासनात् ॥८॥

चतुरङ्गस्य सैन्यस्य सम्पातश्च महानभूत् ।

हे भरतर्षभ ! इस रात के प्रारम्भिक घोर अन्धकार में तुम्हारे पुत्र की आज्ञा से चतुरङ्गिणी सेना का महान् संग्राम होने लगा ।

ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम् ॥६॥

व्यधमत्त्वरया युक्तः क्षपयन्सर्वपार्थिवान् ।

हे महाराज ! अब अर्जुन ने कौरवों की सेना का बड़ी शीघ्रता से संहार करना आरम्भ किया। उसने सारे राजाओं को बिल्कुल व्याकुल बना दिया ॥६॥

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम् ॥

अमृष्यमाणे दुर्धर्षे कथमासीन्मनो हि वः ।

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय ! जब आवेश में भरे हुए, असहिष्णु, दुर्धर्ष, अर्जुन ने मेरे पुत्र की सेना में प्रवेश किया, तो उस समय तुम लोगों के मन की क्या दशा हुई-वह बताओ ॥१०॥

किमकुर्वत सैन्यानि प्रविष्टे परपीडने ॥११॥

दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ।

हे सञ्जय ! जब शत्रुओं के पीड़ित करने वाले अर्जुन ने कौरव सेना में प्रवेश कर दिया-तो उस समय कौरव सेना ने क्या किया और राजा दुर्योधन ने समयानुसार अपना क्या कर्तव्य समझा ।

के चैनं समरे वीरं प्रत्युद्ययुररिन्दमाः ॥१२॥

द्रोणं च के व्यरक्षन्त प्रविष्टे श्वेतवाहने ।

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं के च द्रोणस्य सव्यतः ॥१३॥

के पृष्ठतश्चाऽप्यभवन्वीरा वीरान्विनिघ्नतः ।

के पुरस्तादगच्छन्त निघ्नन्तः शात्रवान्रणे ॥१४॥

यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः ।

नृत्यन्निव नरव्याघ्रो रथमार्गेषु वीर्यवान् ॥१५॥

ज्यों ही श्वेत वाहन वाले अर्जुन ने कुरुसेना में प्रवेश किया-तो कौन रण में इस वीर के सन्मुख आए और किन वीरों ने द्रोणाचार्य की रक्षा की तथा उनके दांयें चक्र की ओर कौन रक्षक थे और बांयें चक्र की कौन रक्षा कर रहे थे। जब वीरों का नाश करते हुए अर्जुन ने सेना में प्रवेश किया, तो किन कौरववीरों ने कौरवसेना की पीछे से रक्षा की तथा कौन शत्रुओं को मारते हुए रण में आगे २ चले। पञ्चालों की सेना में किसी से पराजित नहीं होने वाले, महापराक्रमी नरव्याघ्र रथ मार्गों में वीर्यवान द्रोणाचार्य ने जब प्रवेश किया, तो कौन उनके मुकाबिले पर आए।

यो ददाह शरैर्द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजान् ।

धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥१६॥

जिस द्रोणाचार्य ने क्रोध में भर कर अपने बाणों से पञ्चालों के रथसमूह को धूमकेतु ग्रह की भांति दग्ध कर डाला-वह भी कैसे मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥१६॥

अव्यग्रानेव हि परान्कथयस्यत्र पराजितान् ।

हृष्टानुदीर्णान्संग्रामे न तथा सूत मामकान् ॥१७॥

हतांश्चैव विदीर्णांश्च विप्रकीर्णांश्च शंससि ।

रथिनो विरथांश्चैव कृतान्युद्धेषु मामकान् ॥१८॥

हे सूत! तुम तो पाण्डववीरों को किसी से भी पराजित नहीं होने वाले, किसी भी प्रकार की घबराहट से हीन, उल्लास में भरे हुए, संग्राम में उत्साही बताते हो और हमारे वीरों की ऐसी कोई बात नहीं कहते हो; बल्कि हमारे वीरों को तो मृत प्रायः बिखरे हुए, भाग जाने वाले और रथियों को रथहीन बना दिए बता रहे हो ॥१७-१८॥

सञ्जय उवाच—द्रोणस्य मतमाज्ञाय योद्धुकामस्य तां निशाम् ।
दुर्योधनो महाराज वश्यान्भ्रातॄनुवाच ह ॥१९॥
कर्णं च वृषसेनं च मद्रराजं च कौरव ।
दुर्धर्षं दीर्घबाहुं च ये च तेषां पदानुगाः ॥२०॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! उस रात में द्रोण के मतानुसार रात भर युद्ध करने की बात जान कर राजा दुर्योधन ने अपने अनुकूल भ्राताओं तथा कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, दुर्धर्ष, दीर्घबाहु तथा अन्य उनके सहचरों से यह वचन कहा ॥१९-२०॥

द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्व रक्षन्तु पृष्ठतः ।
हार्दिक्यो दक्षिणं चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा ॥२१॥

हे वीरो! तुम लोग पीछे से पराक्रम करते हुए बड़ी सावधानी से द्रोण की रक्षा करो। हृदिक-पुत्र कृतवर्मा तो द्रोणाचार्य के दांयें चक्र और राजा शल्य बांये चक्र की रक्षा करें ॥२१॥

त्रिगर्तानां च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः ।
तांश्चैव पुरतः सर्वान्पुत्रस्ते समचोदयत् ॥२२॥

हे राजन्! त्रिगर्तों के जो मारने से बचे हुए महारथी शूरवीर थे, उन सबको आगे चलने को तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने आज्ञा दी।

आचार्यो हि सुसंयत्तो भृशं यत्ताश्च पाण्डवाः।
तं रक्षत सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ॥२३॥

आचार्य द्रोण बड़े सावधान हैं और इसी तरह पाण्डव भी अत्यन्त प्रयत्नशील चल रहे हैं। जब द्रोणाचार्य रण में बड़े प्रयत्न-पूर्वक शत्रुओं का नाश करें, तो तुम सावधानी से उनकी रक्षा करना ॥२३॥

द्रोणो हि बलवान्युद्धे क्षिप्रहस्तः प्रतापवान्।
निर्जयेत्त्रिदशान्युद्धे किमु पार्थान्ससोमकान् ॥२४॥

द्रोणाचार्य रण में बलवान, शीघ्र हाथ फैंकने वाले, प्रतापी वीर हैं। वे तो युद्ध में देवों को भी जीत सकते हैं, फिर सोमकवीरों के साथ अर्जुन की तो क्या गणना है ॥२४॥

ते यूयं सहिताः सर्वे भृशं यत्ता महारथाः।
द्रोणं रक्षत पाञ्चाला धृष्टद्युम्नान्महारथान् ॥२५॥

हे वीरो! तुम सारे महारथी इकट्ठे ही अत्यन्त सावधान हो जाओ और द्रोण की रक्षा करो तथा धृष्टद्युम्न आदि महारथियों की पाञ्चाल रक्षा करें ॥२५॥

पाण्डवीयेषु सैन्येषु न तं पश्याम कञ्चन।
यो योधयेद्रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते नृपः ॥२६॥

मैं तो पाण्डवों की सेना में धृष्टद्युम्न के सिवाय किसी भी ऐसे राजा को नहीं देखता हूं-जो रण में आचार्य द्रोण से युद्ध कर सके।

तस्मात्सर्वात्मना मन्ये भारद्वाजस्य रक्षणम् ।
सुगुप्तः पाण्डवान्हन्यात्सृञ्जयांश्च ससोमकान् ॥२७॥

इन सब बातों पर विचार करके सब तरह उद्योग करके भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य की रक्षा करो। यदि द्रोणाचार्य सुरक्षित रहे, तो वे सोमकवीरों के साथ सारे सृञ्जयों का नाश कर सकते हैं।

सृञ्जयेष्वथ सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे ।
धृष्टद्युम्नं रणे द्रौणिर्हनिष्यति न संशयः ॥२८॥

इस सेना के मुख पर रहने वाले जब सारे सृञ्जयों का विनाश हो जावेगा-तो रण में धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा मार लेगा-इसमें सन्देह नहीं है ॥२८॥

तथाऽर्जुनं च राधेयो हनिष्यति महारथाः ।
भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दीक्षितः ॥२९॥

इसी तरह महारथी कर्ण, अर्जुन को मारने में समर्थ है और युद्ध की दीक्षा में तत्पर हुआ मैं भी युद्ध में भीमसेन को मार लूंगा

शेषांश्च पाण्डवान्योधाः प्रसभं हीनतेजसः
सोऽयं मम जयो व्यक्तो दीर्घकालं भविष्यति ॥३०॥
तस्माद्रक्षत संग्रामे द्रोणमेव महारथम् ।

जब ये मारे जावेंगे-तो सारे पाण्डववीर निस्तेज हो जावेंगे और उनको फिर बल-पूर्वक हमारे सारे योद्धा मार लेंगे। इस प्रकार दीर्घकाल के लिए मेरी विजय अवश्यम्भावी है, इसलिए तुम लोग संग्राम में महारथी द्रोण की रक्षा करो ॥३०॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥३१॥
व्यादिदेश तथा सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे ।

हे भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने इतना कह कर इस दारुण अन्धकार में सारी सेना को ऐसा करने की आज्ञा दी ॥३१॥

ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ भरतसत्तम ॥३२॥
उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया ।

हे भरतसत्तम ! अब रात में ही दोनों सेनाओं में परस्पर विजय की अभिलाषा से घोर युद्ध होने लगा ॥३२॥

अर्जुनः कौरवं सैन्यमर्जुनं चापि कौरवाः ॥३३॥
नानाशस्त्रसमावायैरन्योन्यं समपीडयन् ।

इस समय अर्जुन तो कौरव सेना को और कौरववीर अर्जुन को अनेक अस्त्र शस्त्रों के आघातों से परस्पर पीड़ित करने लगे।

द्रौणिः पञ्चालराजं च भारद्वाजश्च सृञ्जयान् ॥३४॥
छादयाञ्चक्रिरे संख्ये शरैः सन्नतपर्वभिः ।

द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने पञ्चालराज द्रुपद को, भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य ने सृञ्जयों को अपने नतपर्व वाले बाणों से रण में आच्छादित कर दिया ॥३४॥

पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणां च भारत ॥३५॥
आसीन्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम् ।

हे भारत ! पाण्डु, पाञ्चाल और कौरवों की सेना के परस्पर आघात से उनमें बड़ा ही घोर करुण आर्तनाद उठ खड़ा हुआ ।

नैवाऽस्माभिस्तथा पूर्वं दृष्टपूर्वं तथाविधम् ॥३६॥
श्रुतं वा यादृशं युद्धमासीद्रौद्रं भयानकम् ॥३७॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

हे राजन् ! हमने तो इस तरह का युद्ध पूर्व में कभी देखा या सुना भी नहीं, जैसा यह भयानक और घोर युद्ध हमारी दृष्टि में आया है ॥३६-३७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में घोर युद्ध के वर्णन का एक सौ चौसठवां अध्याय पूरा हुआ.



एक सौ पैंसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—वर्तमाने तदा रौद्रे रात्रियुद्धे विशाम्पते ।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१॥
अब्रवीत्पाण्डवांश्चैव पञ्चालांश्चैव सोमकान् ।
अभिद्रवत संयात द्रोणमेव जिघांसया ॥२॥

सञ्जय बोले—हे विशाम्पते ! जब यह महाभयङ्कर समस्त प्राणियों का नाशक रात्रि युद्ध चल रहा था-तो धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर, सारे पाण्डव, पञ्चाल और सोमकवीरों से कहने लगे-तुम लोग दौड़ो, आक्रमण करो और द्रोणाचार्य का वध करो ॥२॥

राज्ञस्ते वचनाद्राजन्पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ।
द्रोणमेवाऽभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान्रवान् ॥३॥

हे राजन् ! धर्मराज का इतना कहना था, कि पञ्चाल और सृञ्जय भीषण सिंहनाद करते हुए द्रोणाचार्य पर टूट पड़े ॥३॥

तं तु ते प्रतिगर्जन्तः प्रत्युद्यातास्त्वमर्षिताः ।
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं च संयुगे ॥४॥

इन पाण्डवपक्ष के वीरों ने आवेश में भर कर गर्जना की और शक्ति, उत्साह और अपने बल के अनुसार द्रोणाचार्य पर रण में आक्रमण किया ॥४॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ।
द्रोणं प्रति समायान्तं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥५॥

हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने वाले धर्मराज युधिष्ठिर पर इस तरह आक्रमण किया, जैसे-उन्मत्त हाथी पर दूसरा उन्मत्त हाथी झपटता है ॥५॥

शैनेयं शरवर्षाणि विकिरन्तं समन्ततः ।
अभ्ययात्कौरवो राजन्भूरिः संग्राममूर्धनि ॥६॥

हे राजन् ! जब शिनि-पौत्र सात्यकि अपने बाणों की सब ओर झड़ी लगा रहे थे, तो उस समय कुरुवंशश्रेष्ठ, भूरि युद्ध में उसके सन्मुख आया ॥६॥

सहदेवमथाऽऽयान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
कर्णो वैकर्तनो राजन्वारयामास पाण्डवम् ॥७॥

हे राजन् ! द्रोण पर झपटते हुए महारथी पाण्डु-पुत्र सहदेव को देखकर सूर्य-पुत्र कर्ण ने उसे आगे बढ़ने से रोका ॥७॥

भीमसेनमथाऽऽयान्तं व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रतीपं मृत्युमाव्रजत् ।

मुख फाड़े हुए, काल की भांति आक्रमण करते हुए भीमसेन को देखकर स्वयं राजा दुर्योधन, प्रतिपक्ष में स्थित, मृत्यु के समान भीषण भीमसेन पर वेग से झपटे ॥८॥

नकुलं च युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम् ।
शकुनिः सौबलो राजन्वारयामास सत्वरः ॥६॥

हे राजन् ! सारे युद्धों में विशारद योधाओं में श्रेष्ठ नकुल को वेग से आगे बढ़कर सुबल-पुत्र शकुनि ने रोका ॥६॥

शिखण्डिनमथाऽऽयान्तं रथेन रथिनां वरम् ।
कृपः शारद्वतो राजन्वारयामास संयुगे ॥१०॥

हे राजन् ! इसी तरह रथियों में श्रेष्ठ, शिखण्डी को आक्रमण करते देखकर शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य ने रण में आक्रमण किया ।

प्रतिविन्ध्यमथाऽऽयान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत् ॥११॥

हे महाराज ! मयूर के सदृश अश्वों से आते हुए प्रयत्नशील धर्मराज-पुत्र प्रतिविन्ध्य को देखकर बड़ी सावधानी से दुःशासन ने आक्रमण किया ॥११॥

भीमसेनिमथाऽऽयान्तं मायाशतविशारदम् ।
अश्वत्थामा महाराज राक्षसं प्रत्यषेधयत् ॥१२॥

हे महाराज ! सैंकड़ों माया जालों का विस्तार करते हुए भीमसेन-पुत्र राक्षसराज घटोत्कच को आता हुआ देखकर अश्वत्थामा ने उसे रोका ॥१२॥

द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानुगम् ।
वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ॥१३॥

इसी तरह द्रोण पर आक्रमण के अभिलाषी, महारथी द्रुपद को उसके अनुचर और सेना के साथ कर्ण-पुत्र वृषसेन ने रोक दिया ॥१३॥

विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति ।
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत ॥१४॥

हे भारत ! द्रोणाचार्य के मारने की इच्छा से आगे बढ़ते हुए विराटराज को क्रोधाविष्ट मद्रराज शल्य ने रोका ॥१४॥

शतानीकमथाऽऽयान्तं नाकुलिं रभसं रणे ।
चित्रसेनो रुरोधाऽऽशु शरैर्द्रोणपरीप्सया ॥१५॥

नकुल-पुत्र शतानीक को वेग के साथ रण में आगे बढ़ते देखकर द्रोणाचार्य की रक्षा के निमित्त चित्रसेन ने बाण-वर्षा करके उसे वेग से रोक दिया ॥१५॥

अर्जुनं च युधां श्रेष्ठं प्राद्रवन्तं महारथम् ।
अलम्बुषो महाराज राक्षसेन्द्रो न्यवारयत् ॥१६॥

हे महाराज ! योद्धाओं में श्रेष्ठ, महारथी अर्जुन को राक्षसराज अलम्बुष ने रोका ॥१६॥

तथा द्रोणं महेष्वासं निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ।
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपमवारयत् ॥१७॥

महाधनुर्धर रण में शत्रुओं को मारते हुए द्रोणाचार्य को पञ्चाल राज-पुत्र धृष्टद्युम्न ने बड़े उत्साह से रोका ॥१७॥

तथाऽन्यान्पाण्डुपुत्राणां समायातान्महारथान् ।
तावका रथिनो राजन्वारयामासुरोजसा ॥१८॥

हे राजन् ! इसी तरह अन्य भी आते हुए पाण्डु-पुत्रों को तुम्हारे अन्य महारथी वीरों ने अपने ओज से रोक दिया ॥१८॥

गजारोहा गजैस्तूर्णं सन्निपत्य महामृधे ।
योधयन्तश्च मृद्नन्तः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१९॥

इस महायुद्ध में झपट कर सैंकड़ों हज़ारों को कुचलते हुए और युद्ध करते हुए गजारोही अपने २ गजों से आगे बढ़ने लगे।

निशीथे तुरगा राजन्द्रावयन्तः परस्परम् ।
समदृश्यन्त वेगेन पक्षवन्तो यथाऽद्रयः ॥२०॥

हे राजन्! आधी रात में अश्व परस्पर एक दूसरे को भगाते हुए ऐसे दिखाई दे रहे थे-जैसे पक्षधारी पर्वत भाग रहे हो ॥२०॥

सादिनः सादिभिः सार्धं प्रासशक्त्यृष्टिपाणयः।
समागच्छन्महाराज विनदन्तः पृथक् पृथक् ॥२१॥

हे महाराज! पृथक् २ गर्जना करते हुए, भाले, शक्ति और ऋष्टि आदि शस्त्रों को हाथ में लिये हुए अन्य सवारों के साथ अनेक घुड़सवार आक्रमण करने लगे ॥२१॥

नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम्।
गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥२२॥

इसी तरह अनेक पुरुषप्रवीर इस रण में गदा, मुसल तथा अन्य बहुत से शस्त्र लेकर परस्पर एक दूसरे पर झपट पड़े ॥२२॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
वारयामास संक्रुद्धो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥२३॥

हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर को क्रोध-पूर्वक इस तरह रोका-जैसे उछलते हुए समुद्र को उसकी वेला रोक लेती है ॥२३॥

युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विध्वा पञ्चभिराशुगैः।
पुनर्विव्याध त्रिंशत्या तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥२४॥

राजा युधिष्ठिर ने अपने आशुगामी पांच बाणों से कृतवर्मा को बींध दिया और फिर उस पर पांच बाण मार कर कहा-ज़रा ठहरा रह ॥२४॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मपुत्रस्य मारिष ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥२५॥

हे आर्य ! धर्म-पुत्र पर कृतवर्मा बड़े कुपित हो रहे थे, उसने धर्मराज के धनुष को एक बाण से काट डाला और उसे भी सात बाणों से आहत किया ॥२५॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो महारथः ।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥२६॥

महारथी धर्म-पुत्र युधिष्ठिर ने भी दूसरा धनुष उठाया और उससे बाण छोड़कर कृतवर्मा के हृदय और बाहु में बाण मारे ।

माधवस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष ।
प्राकम्पत च रोषेण सप्तभिश्चाऽर्दयच्छरैः ॥२७॥

हे आर्य ! वृष्णिवंशोद्भव कृतवर्मा, धर्मराज के बाण से रण में बिंध कर कांपने लगा और उसने भी क्रोध-पूर्वक सात बाणों से उसे आहत किया ॥२७॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा हस्तावापं निकृत्य च ।
प्राहिणोन्निशितान्बाणान्पञ्च राजञ्छिलाशितान् ॥

हे राजन् ! कुन्ती-पुत्र धर्मराज ने कृतवर्मा का धनुष काट कर उसका हस्तावाप भी काट दिया । इसके बाद उस पर फिर शिला पर तीक्ष्ण किये हुए पांच तीक्ष्ण बाण फेंके ॥२८॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमचित्रं महाधनम् ।
प्राविशन्धरणीं भित्त्वा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥२९॥

हे नृप ! ये बाण इसके बहुत मूल्य वाले सुवर्ण से विचित्र, कवच को चीर कर धरणी में इस तरह घुस गए-जैसे अपने बिल में सर्प घुस जाता है ॥२६॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध पाण्डवं षष्ट्या सूतं च नवभिः शरैः ॥३०॥

पलक झपकाने में जितना समय लगे-उतनी ही देर में कृतवर्मा ने दूसरा धनुष उठा लिया और साठ बाण मार कर पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर और नौ बाण मार कर उसके सारथि को आहत कर दिया ॥३०॥

तस्य शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोपमाम् ।
चिक्षेप भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद्धनुः ॥३१॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब कृतवर्मा के ऊपर पाण्डु-पुत्र महाबली युधिष्ठिर ने अपना धनुष रथ में रख कर सर्प के समान भीषण शक्ति नामक शस्त्र का प्रयोग किया ॥३१॥

सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेरिता ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद्धरणीतलम् ॥३२॥

सुवर्ण से विचित्र, धर्मराज द्वारा फैंकी हुई यह विशाल शक्ति, [illegible] की दांयीं बाहु को चीर कर धरणी में घुस गई ॥३२॥

एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थः पुनर्धनुः ।
हार्दिक्यं छादयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३३॥

इसी समय में धर्मराज ने फिर अपना धनुष उठा लिया और

नतपर्व वाले बाण छोड़कर कृतवर्मा को आच्छादित कर दिया।

ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी।

न्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धाद्युधिष्ठिरम् ॥३४॥

इसके बाद वृष्णियों में श्रेष्ठ, महारथी शूरवीर, कृतवर्मा ने आधे ही क्षण में राजा युधिष्ठिर को अश्व, सारथि और रथ से हीन बना दिया ॥३४॥

ततस्तु पाण्डवो ज्येष्ठः खड्गचर्म समाददे।

तदस्य निशितैर्बाणैर्व्यधमन्माधवो रणे ॥३५॥

अब राजा युधिष्ठिर ने ढ़ाल और तलवार उठाई। धर्मराज की इन ढ़ाल और तलवार को भी कृतवर्मा ने अपने तीक्ष्ण बाणों से रण में काट गिराई ॥३५॥

तोमरं तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम्।

. अप्रैषीत्समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः ॥३६॥

अब सुवर्ण के दण्ड से सुशोभित, दुरासद तोमर, धर्मराज ने उठाया और उसे हृदिक-पुत्र कृतवर्मा पर बड़े वेग से फैंका ॥३६॥

तमापतन्तं सहसा धर्मराजभुजच्युतम्।

द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः स्मयन्निव ॥३७॥

धर्मराज की भुजाओं से फैंके हुए, उस तोमर को अपने ऊपर एकदम गिरता देखकर हाथ चलाने में कुशल हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने हंसते २ दो खण्डों में काट गिराया ॥३७॥

ततः शरशतेनाऽऽजौ धर्मपुत्रमवाकिरत् ।
कवचं चाऽस्य संक्रुद्धः शरैस्तीक्ष्णैरदारयत् ॥३८॥

अब कृतवर्मा ने रणाङ्गण में सैंकड़ों बाण छोड़कर धर्म-पुत्र को आच्छादित कर दिया और क्रोध करके तीक्ष्ण बाणों से इसके कवच को भी काट दिया ॥३८॥

हार्दिक्यशरसंछन्नं कवचं तन्महाधनम् ।
व्यशीर्यत रणे राजंस्ताराजालमिवाऽम्बरात् ॥३९॥

हे राजन् ! कृतवर्मा के बाण से छिन्न-भिन्न हुआ बहुत मूल्य वाला धर्मराज का कवच इस तरह बिखर पड़ा-जैसे आकाश से ताराजाल बिखर कर गिर पड़ा हो ॥३९॥

स च्छिन्नधन्वा विरथं शीर्णवर्मा शरार्दितः ।
अपायासीद्रणात्तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥४०॥

अब धनुष के कट जाने और रथ से हीन हो जाने पर कवच से रहित, बाण से व्याकुल धर्म-पुत्र युधिष्ठिर, बड़ी शीघ्रता से रण से दूर निकल गया ॥४०॥

कृतवर्मा तु निर्जित्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महात्मनः ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे युधिष्ठिरापयाने नाम पञ्चाषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः॥१५८॥

धर्मराज युधिष्ठिर को जीत कर कृतवर्मा फिर महावीर द्रोणाचार्य की सेना की रक्षा करने लगे ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में कृतवर्मा और राजा युधिष्ठिर के युद्ध के वर्णन का एक सौ पैंसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ छियासठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—भूरिस्तु समरे राजञ्शैनेयं रथिनां वरम् ।
आपतन्तमपासेधत्प्रयाणादिव कुञ्जरम् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! रथियों में श्रेष्ठ, आक्रमणकारी शिनि-पौत्र सात्यकि को रण में महावीर भूरि ने इस तरह रोका, जैसे ऊंची भूमि से भागते हुए हाथी को रोकते हैं ॥१॥

अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तस्य प्रास्रवत्तस्य शोणितम् ॥२॥

इसके अनन्तर सात्यकि क्रोध में भर गया, उसने भी भूरि के उरस्थल में पांच तीक्ष्ण बाणों के प्रहार किए, जिससे उसकी छाती से रक्तधारा बह निकली ॥२॥

तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम् ।
दशभिर्निशितैस्तीक्ष्णैरविध्यत भुजान्तरे ॥३॥

इसी तरह कुरुवंशोद्भव भूरि ने युद्ध में दुर्मद शिनि-पौत्र सात्यकि की भुजाओं के मध्यभाग और हृदय में दश तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया ॥३॥

तावन्योन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम् ।
क्रोधसंरक्तनयनौ क्रोधाद्विस्फार्य कार्मुके ॥४॥

हे महाराज! अब इन दोनों ने परस्पर एक दूसरे को बाणों से अत्यन्त आहत कर दिया। इनकी आंखें क्रोध से लाल हो गई और इन्होंने क्रोधातुर होकर अपने २ धनुष उठा लिए ॥४॥

तयोरासीन्महाराज शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ।
क्रुद्धयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥५॥

हे महाराज! इसके बाद ये दोनों बड़ी दारुण बाणवर्षा करने लगे। ये बाण छोड़ते हुए क्रोध में भरे हुए दोनों ही वीर यमराज के समान प्रतीत होते थे ॥५॥

तावन्योन्यं शरै राजन्संछाद्य समवस्थितौ ।
मुहूर्तं चैव तद्युद्धं समरूपमिवाऽभवत् ॥६॥

हे राजन्! इन दोनों ने अपने २ बाणजाल से एक दूसरे को आच्छादित कर दिया। इनका थोड़ी देर तक यह समान रूप में चलता रहा ॥६॥

ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयं प्रहसन्निव ।
धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः ॥७॥

हे महाराज ! क्रोध में भरे हुए शिनि-पौत्र सात्यकि ने कुछ बनावटी मुसकुराकर एक बाण से महावीर कुरुश्रेष्ठ भूरि का धनुष रण में काट गिराया ॥७॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥८॥

जब महारथी भूरि का धनुष कट गया-तो फिर सात्यकि ने नौ तीक्ष्ण बाण शीघ्र २ उसकी छाती में मारे और ठहरो ? ठहरो ? इस प्रकार शब्द कहे ॥८॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ।
धनुरन्यत्समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ॥९॥

बलवान् शत्रु द्वारा इस प्रकार बींधा हुआ शत्रुतापी, भूरि ने दूसरा धनुष उठाया और दूसरा धनुष लेकर उससे सात्यकि को घायल कर दिया ॥९॥

स विध्वा सात्वतं बाणैस्त्रिभिरेव विशाम्पते ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥१०॥

हे विशाम्पते ! उसने तीन बाण मारकर सात्वतवंशप्रवीर सात्यकि को बींध दिया और हंसते २ एक तीक्ष्ण भल्ल नामक बाण से उसका धनुष काट डाला ॥१०॥

छिन्नधन्वा महाराज सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ।
प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि ॥११॥

हे महाराज ! जब सात्यकि का धनुष कट गया, तो वह क्रोध से ज्वल उठा और उसने बड़े वेग वाली शक्ति उठाकर उसकी छाती में मारी ॥११॥

स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात् ।
लोहिताङ्ग इवाऽऽकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥१२॥

इस शक्ति से इसका सारा शरीर विशीर्ण हो गया और वह अपने उत्तम रथ से इस तरह गिर पड़ा-जैसे किरणों से व्याप्त लाल वर्णधारी मङ्गल नक्षत्र अचानक टूट पड़ा हो ॥१२॥

तं तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा महारथः ।
अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ॥१३॥

जब अश्वत्थामा ने महारथी भूरि को मरा हुआ देखा-तो वह रण में वेग से सात्यकि की ओर झपटा ॥१३॥

तिष्ठ तिष्ठेति चाऽऽभाष्य शैनेयं स नराधिप ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्या यथाऽम्बुदः ॥१४॥

हे नराधिप ! इसने शिनि-पौत्र सात्यकि से कहा—ठहर ? ठहर ? और इतना कहकर सात्यकि के रथ पर इस तरह बाणवर्षा की झड़ी लगा दी—जैसे मेरुपर्वत पर मेघ बरस रहा हो।

तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति ।
घटोत्कचोऽब्रवीद्राजन्नादं मुक्त्वा महारथः ॥१५॥

हे राजन ! क्रोध में भरे हुए अश्वत्थामा को सात्यकि के रथ पर झपटता देखकर महारथी घटोत्कच सिंहनाद करके यह वचन बोला ॥१५॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
एष त्वां निहनिष्यामि महिषं षण्मुखो यथा ॥१६॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।

हे द्रोण-पुत्र ! ठहर ? ठहर ? अब तुम मेरे सामने से जीवित नहीं जा सकते हो। जैसे स्कन्द ने महिषासुर का वध किया-उसी तरह मैं तुम्हारा वध किए बिना न रहूँगा। मैं तेरे युद्ध की सारी अकड़ को आज निकाल दूंगा ॥१६॥

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा ॥१७॥
द्रौणिमभ्यद्रवत्क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ।

हे भरतश्रेष्ठ ! शत्रुवीरनाशक, राक्षसराज घटोत्कच इतना कहकर क्रोध में भरा हुआ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पर गजेन्द्र पर सिंह की भांति टूट पड़ा ॥१७॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः ॥१८॥
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ।

घटोत्कच ने अपने रथ के धुरे के तुल्य स्थूल बाणों को रथि-श्रेष्ठ अश्वत्थामा पर इस तरह बरसाये, जैसे-मेघ अपनी जलधारा छोड़ता है ॥१८॥

शरवृष्टिं तु तां प्राप्तां शरैराशीविषोपमैः ॥१९॥
शातयामास समरे तरसा द्रौणिरुत्स्मयन् ।

इस तरह आशीविष सर्पोपम बाणवृष्टि को देखकर अश्वत्थामा ने भी बड़े वेग से रण में अपने बाणों द्वारा उसे हंसते २ काट गिराया ॥१९॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिराशुगैः ॥२०॥
समाचिनोद्राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिन्दमम् ।

इसके अनन्तर मर्मभेदी आशुगामी तीक्ष्ण सैकड़ों बाणों से अश्वत्थामा ने अरिमर्दन राक्षसेन्द्र घटोत्कच को बिल्कुल आच्छादित कर दिया ॥२०॥

स शरैराचितस्तेन राक्षसो रणमूर्धनि ॥२१॥
व्यकाशत महाराज श्वाविच्छललतो यथा ।

हे महाराज ! इस रणशिर में उन बाणों से व्याप्त हुआ राक्षसराज घटोत्कच इस तरह दिखाई देने लगा—जैसे सेह जन्तु अपने कांटों से व्याप्त हो रहा हो ॥२१॥

ततः क्रोधसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान् ॥२२॥
शरैरवचकर्तोग्रैर्द्रौणिं वज्राशनिप्रभैः ।

अब भीमसेन-पुत्र महाप्रतापी घटोत्कच क्रोध में भर गया। उसने वज्रोपम उग्र बाणों से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को बहुत ही छेद डाला ॥२२॥

क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च नाराचैः सशिलीमुखैः ॥२३॥
वराहकर्णैर्नालीकैर्विकर्णैश्चाऽभ्यवीवृषत् ।

उसने क्षुद्रक, अर्धचन्द्र, नाराच, शिलीमुख, वराहकर्ण, नालीक और विकर्ण संज्ञक बाणों की अश्वत्थामा पर झड़ी लगा दी ॥२३॥

तां शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम् ॥२४॥
पतन्तीमुपरि क्रुद्धो द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः ।

वज्र और बिजली के तुल्य भीषण शब्द करने वाली इस अतुल बाणवर्षा को अपने ऊपर गिरती देखकर भी द्रोण-पुत्र कुछ विचलित नहीं हुए, किन्तु उनके शरीर में क्रोध की ज्वाला धधक उठी ॥२४॥

स दुःसहां शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥२५॥
व्यधमत्सुमहातेजा महाभ्राणीव मारुतः ।

इस महातेजस्वी अश्वत्थामा ने दिव्य अस्त्रों से अभिमन्त्रित करके अपने घोर बाणों से उस दुःसह घटोत्कच की बाण-वर्षा को इस तरह छिन्न-भिन्न कर दिया, जैसे-वायु बादलों को उड़ा देती है ॥२५॥

ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाऽभवत् ॥२६॥
घोररूपो महाराज योधानां हर्षवर्धनः ।

अब बाण ही बाणों का आकाश में दूसरा संग्राम उठ खड़ा हुआ, जो बड़ा घोर और योद्धाओं को हर्ष का उत्पादक था ॥२६॥

ततोऽस्त्रसङ्घर्षकृतैर्विस्फुलिङ्गैः समन्ततः ॥२७॥
बभौ निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ।

इस समय रात में अस्त्रों के संघर्ष से उठी हुई चिनगारियों से सब ओर आकाश में खद्योत से छा गए ॥२७॥

स मार्गणगणैद्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वतः ॥२८॥

प्रियार्थं तव पुत्राणां राक्षसं समवाकिरत् ।

हे राजन्! इस समय द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने बाणधारा छोड़कर सारी दिशा तुम्हारे पुत्र के हित सम्पादन के लिए बाणों से आच्छादित कर दी और उसने उस राक्षसराज घटोत्कच को भी बहुत ही क्षत-विक्षत कर दिया ॥२८॥

ततः प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ॥२९॥

विगाढे रजनीमध्ये शक्रप्रह्लादयोरिव ।

अब रणभूमि में द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और राक्षसराज घटोत्कच का युद्ध इस गाढ़ी रात में इन्द्र और प्रह्लाद के युद्ध के तुल्य होने लगा ॥२९॥

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमाहवे ॥३०॥

जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसन्निभैः ।

इसके बाद घटोत्कच ने रण में कालाग्नि के तुल्य अपने दश बाण क्रोध के साथ अश्वत्थामा के वक्षःस्थल में मारे ॥३०॥

स तैरभ्यामतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः ॥३१॥

चचाल समरे द्रौणिर्वातनुन्न इव द्रुमः ।

स मोहमनुसम्प्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥३२॥

राक्षसराज घटोत्कच द्वारा छोड़े हुए बाणों से महाबली अश्वत्थामा इस तरह विचलित हो गए, जैसे-वायु से प्रेरित वृक्ष

व्याकुल हो उठता है। इसको इस समय मूर्च्छा सी हो गई और यह अपनी ध्वजा की यष्टि (लकड़ी) को पकड़ कर बैठ गया ॥३२॥

ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप।
हतं स्म मेनिरे सर्वे तावकास्तं विशाम्पते ॥३३॥

हे जनाधिप! अब सारी कौरवसेना में हाहाकार मच गया और तुम्हारे पक्ष के सब वीरों ने अश्वत्थामा को मर जाने वाला ही समझा ॥३३॥

तं तु दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमाहवे।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥३४॥

अश्वत्थामा की यह अवस्था देखकर रण में पञ्चाल और सृञ्जयवीर हर्ष से सिंहनाद करने लगे ॥३४॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महाबलः।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणाऽमित्रकर्शनः ॥३५॥
मुमोचाऽऽकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम्।
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याऽऽशु घटोत्कचम् ॥३६॥

थोड़ी देर में ही महाबली अश्वत्थामा को चेत हो गया और उस शत्रुतापी वीर ने अपने बायें हाथ में धनुष उठाया। उस धनुष को कान तक खैंच कर अश्वत्थामा ने राक्षसराज घटोत्कच को लक्ष्य बना कर यमदण्डोपम घोर तीखे बाण को उस पर छोड़ दिया ॥३५-३६॥

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः ।
विवेश वसुधामुग्रः सपुङ्खः पृथिवीपते ॥३७॥

हे पृथिवीपते ! यह उग्र, सुन्दर मूलधारी वाण, राक्षसराज घटोत्कच के हृदय को बींध कर पृथिवी में घुस गया ॥३७॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
राक्षसेन्द्रः सुबलवान्द्रौणिना रणशालिना ॥३८॥

हे महाराज ! रण में प्रभाव दिखाने वाले, अश्वत्थामा द्वारा बींधा हुआ, महाबली राक्षसराज व्याकुल होकर रथ के मध्य में मूर्च्छित होकर चुपचाप बैठ गया ॥३८॥

दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं सारथिस्तु रणाजिरात् ।
द्रौणेः सकाशात्सम्भ्रान्तस्त्वपनिन्ये त्वरान्वितः ॥३९॥

जब सारथि ने हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच को मूर्च्छित देखा-तो वह घबरा गया और बड़ी शीघ्रता से उसे अश्वत्थामा के समीप से दूर ले गया ॥३९॥

तथा तु समरे विध्वा राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ।
ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महारथः ॥४०॥

इस प्रकार राक्षसराज घटोत्कच को रण में घायल करके महारथी द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने बड़े उच्चस्वर से गर्जना की ॥४०॥

पूजितस्तव पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत ।
वपुषाऽतिप्रजज्वाल मध्याह्न इव भास्करः ॥४१॥

हे भारत ! इस समय सारे कौरववीर और तुम्हारे पुत्रों ने अश्वत्थामा की बड़ी प्रशंसा की। यह भी अपने शरीर के तेज से इतना चमक उठा, जैसे-मध्यान्ह काल का सूर्य देदीप्यमान हो रहा है ॥४१॥

भीमसेनं तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥४२॥

इधर द्रोणाचार्य के रथ की ओर बढ़ने के लिए युद्ध करते हुए भीमसेन को राजा दुर्योधन ने स्वयं तीखे बाणों से बींध डाला।

तं भीमसेनो दशभिः शरैर्विव्याध मारिष ।
दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत ॥४३॥

हे आर्य ! भीमसेन ने भी अब दश बाण राजा दुर्योधन के मारे और राजा दुर्योधन ने भी बीस बाण मार कर भीमसेन को आहत किया ॥४३॥

तौ सायकैरवच्छिन्नावदृश्येतां रणाजिरे ।
मेघजालसमाच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ ॥४४॥

हे राजन् ! इस समय ये दोनों वीर, रणाजिर में बाणों से इस प्रकार आच्छादित हो गए-जैसे आकाश में सूर्य चन्द्र मेघ-जाल से व्याप्त हो जाते हैं ॥४४॥

अथ दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पत्रिभिः ।
पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥४५॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब राजा दुर्योधन ने पांच बाण मार कर भीमसेन को घायल किया और कहा—तनिक ठहर जा ॥४५॥

तस्य भीमो धनुश्छित्त्वा ध्वजं च दशभिः शरैः ।
विव्याध कौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम् ॥४६॥

भीमसेन ने भी राजा दुर्योधन का धनुष और ध्वजा दश बाण मार कर काट दिए और नतपर्ववाले नव्वे बाण छोड़कर कुरुश्रेष्ठ राजा दुर्योधन को भी क्षत-विक्षत कर दिया ॥४६॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो धनुरन्यन्महत्तरम् ।
गृहीत्वा भरतश्रेष्ठो भीमसेनं शितैः शरैः ।
अपीडयद्रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥४७॥

अब क्रोधातुर होकर भरतवंशश्रेष्ठ राजा दुर्योधन ने महा विशाल धनुष उठाया और उससे तीक्ष्ण बाण छोड़कर सारे धनुर्धरों के देखते २ रण में भीमसेन को व्याकुल कर दिया ॥४७॥

तान्निहत्य शरान्भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान् ।
कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥४८॥

राजा दुर्योधन के धनुष से निकले हुए उन बाणों को काट कर भीमसेन ने कुरुराज पर पचीस क्षुद्रक बाण छोड़े ॥४८॥

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष ।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा दशभिः प्रत्यविध्यत ॥४९॥

हे आर्य ! राजा दुर्योधन भी भीमसेन पर जला बैठा था, उसने क्षुर के सदृश तीक्ष्ण बाण से उसके धनुष को काट कर दश बाणों से उसे विकल बना दिया ॥४९॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो महाबलः ।
विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैः शरैः ॥५०॥

महाबली भीमसेन ने दूसरा धनुष उठाया और उससे शीघ्र २ सात तीक्ष्ण बाण छोड़कर राजा दुर्योधन को बहुत व्याकुल कर दिया ॥५०॥

तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ।
द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पञ्चमं तथा ॥५१॥
आत्तमात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत् ।
तव पुत्रो महाराज जितकाशी मदोत्कटः ॥५२॥

हे महाराज ! अब राजा दुर्योधन ने अपने हाथ की शीघ्रता दिखाते हुए भीमसेन का धनुष काट दिया । ज्यों २ भीमसेन दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां धनुष उठाता गया-त्यों ही कुरुराज उन्हें काटता चला गया । हे नृपते ! मद में भरे हुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को अपने जीतने की बड़ी ही आशा थी ॥५१-५२॥

स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।
शक्तिं चिक्षेप समरे सर्वपारसवीं शुभाम् ॥५३॥

जब भीमसेन ने उसे इस प्रकार धनुष काटते देखा-तो उसने दृढ़ लोहमयी एक भीषण शक्ति का रण में दुर्योधन पर प्रहार किया ॥५३॥

मृत्योरिव स्वसारं हि दीप्तां वह्निशिखामिव ।
सीमन्तमिव कुर्वन्तीं नभसोऽग्निसमप्रभाम् ॥५४॥

अप्राप्तामेव तां शक्तिं त्रिधा चिच्छेद कौरवः ।
पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः ॥५५॥

यह शक्ति मृत्यु की बहन सी भीषण और अग्नि की शिखा के समान प्रज्वलित थी। इसने अपनी अग्नि के समान रेखा से आकाश का विभाग सा बना दिया। यह शक्ति आकर पहुंची भी नहीं, कि कुरुराज ने इस शक्ति के तीन टुकड़े कर डाले, जिसको महाबली भीमसेन और सारे वीर देखते रहे ॥५४-५५॥

ततो भीमो महाराज गदां गुर्वीं महाप्रभाम् ।
चिक्षेपाऽऽविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति ॥५६॥

हे महाराज ! अब भीमसेन ने अत्यन्त चमकीली, विशाल गदा उठाई और राजा दुर्योधन के रथ को लक्ष्य करके उसका प्रयोग किया ॥५६॥

ततः सा सहसा वाहांस्तव पुत्रस्य संयुगे ।
सारथिं च गदा गुर्वी ममर्दाऽस्य रथं पुनः ॥५७॥

हे राजन् ! इस गदा ने एकदम रण में तुम्हारे पुत्र के अश्व, रथ और सारथि को चकनाचूर कर दिया ॥५७॥

पुत्रस्तु तव राजेन्द्र भीमाद्भीतः प्रणश्य च ।
आरुरोह रथं चाऽन्यं नन्दकस्य महात्मनः ॥५८॥

हे राजेन्द्र ! अब तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन भीमसेन से डर गया और वह भाग कर महारथी नन्दक के दूसरे रथ पर जा चढ़ा ॥५८॥

ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् ।
सिंहनादं महच्चक्रे तर्जयन्निशि कौरवान् ५६॥

हे राजन्! भीमसेन ने तो तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को मरा हुआ ही समझ लिया और वह कौरवों को ललकारता हुआ भीषण रूप से सिंहनाद करने लगा ॥५६॥

तावकाः सैनिकाश्चाऽपि मेनिरे निहतं नृपम् ।
ततोऽतिचुक्रुशुः सर्वे ते हाहेति समन्ततः ॥६०॥

हे नृपते! तुम्हारे बहुत से सैनिकों ने भी राजा दुर्योधन को नष्ट हुआ ही समझा। अब कौरवसेना में सब ओर हाहाकार मच गया ॥६०॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा त्रस्तानां सर्वयोधिनाम् ।
भीमसेनस्य नादं च श्रुत्वा राजन्महात्मनः ॥६१॥
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम् ।
अभ्यवर्तत वेगेन यत्र पार्थो वृकोदरः ॥६२॥

हे राजन्! अत्यन्त दुःखी हुए कौरववीरों का आर्तनाद और महावीर भीमसेन का सिंहनाद सुनकर राजा युधिष्ठिर ने समझा, कि दुर्योधन मारा गया। वह इस समय वेग से वहां पहुंचा, जहां पर वृकोदर भीमसेन खड़े थे ॥६१-६२॥

पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्च विशाम्पते ।
सर्वोद्योगेनाऽभिजग्मुर्द्रोणमेव युयुत्सया ॥६३॥

हे विशाम्पते ! पञ्चाल, केकय, मत्स्य और सृञ्जयवीर बड़ा प्रयत्न करके द्रोणाचार्य से युद्ध करने की इच्छा से उसकी ओर बढ़े ॥६३॥

तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं द्रोणस्याऽथ परैः सह ।
घोरे तमसि मग्नानां निघ्नतामितरेतरम् ॥६४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनापयाने षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६६॥

इस समय रात के घोर अन्धकार में डूबे हुए और परस्पर एक दूसरे को मारते हुए वीरों का और द्रोणाचार्य का अपने २ शत्रुओं से महा घोर युद्ध होने लगा ॥६४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में भीमसेन और दुर्योधन के युद्ध के वर्णन का एक सौ छियासठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

एक सौ सड़सठवां अध्याय

सञ्जय उवाच— सहदेवमथाऽऽयान्तं द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे विशाम्पते ! द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने के लिए बढ़ते हुए सहदेव को सूर्य-पुत्र कर्ण ने युद्ध में रोका ॥१॥

सहदेवस्तु राधेयं विध्वा नवभिराशुगैः
पुनर्विव्याध दशभिर्विशिखैर्नतपर्वभिः ॥२॥

सहदेव ने राधा-पुत्र कर्ण को नौ बाणों से बींध कर फिर नतपर्ववाले दश बाणों से आहत किया ॥२॥

तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम् ।
सज्यं चाऽस्य धनुः शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥३॥

कर्ण ने भी नतपर्ववाले सौ शरों से सहदेव को आहत किया और हाथ की लघुता (फुर्ती) दिखाते हुए उसके डोरी युक्त धनुष को काट गिराया ॥३॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥४॥

माद्री-पुत्र प्रतापी सहदेव ने दूसरा धनुष उठाया और उससे बीस बाण छोड़कर कर्ण को घायल कर दिया, जो इसका बहुत ही अद्भुत वीर कर्म माना गया ॥४॥

तस्य कर्णो हयान्हत्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम् ॥५॥

कर्ण ने भी नतपर्ववाले बाणों से उसके अश्वों को मार डाला और एक तीक्ष्ण भल्ल (बाण) से उसके सारथि को भी यमपुर भेज दिया ॥५॥

विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे ।
तदप्यस्य शरैः कर्णो व्यधमत्प्रहसन्निव ॥६॥

जब सहदेव रथहीन हो गया, तो उसने ढाल तलवार उठाई। कर्ण ने हंसते २ अपने बाणों से वह भी काट गिराई ॥६॥

अथ गुर्वीं महाघोरां हेमचित्रां महागदाम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो वैकर्तनरथं प्रति ॥७॥

अब सहदेव ने सुवर्ण से विचित्र, महाघोर गदा क्रोध में भर कर सूर्य-पुत्र कर्ण के रथ पर फैंकी ॥७॥

तामापतन्तीं सहसा सहदेवप्रचोदिताम् ।
व्यष्टम्भयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत् ॥८॥

सहदेव द्वारा फैंकी हुई उस गदा को एकदम अपने ऊपर गिरती देखकर कर्ण ने उसे बाणों से रोककर भूमि में गिरा दिया।

गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याऽच्छिनच्छरैः ॥९॥

सहदेव ने जब अपनी गदा को इस तरह नष्ट-भ्रष्ट देखा, तो उसने शीघ्रता से कर्ण पर एक शक्ति फैंकी। कर्ण ने उसे भी बाणों द्वारा खण्डित कर दिया ॥९॥

ससंभ्रमं ततस्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यवस्थितम् ॥१०॥
रथचक्रं प्रगृह्याऽऽजौ मुमोचाऽऽधिरथं प्रति ।

हे महाराज ! अब बड़ी चिन्ता के साथ सहदेव रथ से कूद पड़ा। उसने अधिरथ-पुत्र कर्ण को अपने सन्मुख स्थित देखा-तो रथ का चक्र उठा कर रण में उस पर प्रहार किया ॥१०॥

तदापतद्वै सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ॥११॥
शरैरनेकसाहस्रैराच्छिनत्सूतनन्दनः ।

यह चक्र भी कर्ण पर एकदम कालचक्र की भांति गिर रहा था, कि कई सहस्र बाण छोड़कर सूत-पुत्र कर्ण ने उसके टुकड़े २ उड़ा दिए ॥११॥

तस्मिंस्तु निहते चक्रे सूतजेन महात्मना ॥१२॥
ईषादण्डकयोक्त्रांश्च युगानि विविधानि च ।
हस्त्यङ्गानि तथाऽश्वांश्च मृतांश्च पुरुषान्बहून् ॥१३॥
चिक्षेप कर्णमुद्दिश्य कर्णस्तान्व्यधमच्छरैः ।

जब महावीर सूत-पुत्र कर्ण ने उस चक्र को भी व्यर्थ कर दिया,तो सहदेव ने ईषा (रथ का अग्रभाग) दण्डें, जोते, जूड़े, अनेक सूंड आदि हाथियों के अङ्ग, मृत अश्व और पुरुष, कर्ण को लक्ष्य कर २ के फैंके, परन्तु कर्ण ने उनको बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया ॥१२-१३॥

स निरायुधमात्मानं ज्ञात्वा माद्रवतीसुतः ॥१४॥
वार्यमाणस्तु विशिखैः सहदेवो रणं जहौ ।

जब माद्री-पुत्र सहदेव ने अपने को शस्त्रहीन देखा, तो वह कर्ण के बाणों से बिंधा हुआ रण से भाग निकला ॥१४॥

तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्ताद्भरतर्षभ ॥१५॥
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सहदेवं विशाम्पते ।

हे भरतर्षभ ! विशाम्पते ! राधा-पुत्र कर्ण ने दौड़ कर सहदेव को पकड़ लिया और हंसते २ उससे यह वाक्य कहा ॥१५॥

मा युध्यस्व रणे धीर विशिष्टैं रथिभिः सह ॥१६॥

सदृशैर्युध्य माद्रेय वचो मे मा विशङ्किथाः ।

हे माद्री-पुत्र ! रणधीर ! तुम अपने से अधिक हम जैसे रथियों से न भिड़ा करो । तुमको तो अपने सदृश वीरों से युद्ध करना और मेरे इस वचन में सन्देह नहीं करना चाहिए ॥१६॥

अथैनं धनुषोऽग्रेण तुदन्भूयोऽब्रवीद्वचः ॥१७॥

एषोऽर्जुनो रणे तूर्णं युध्यते कुरुभिः सह ।

तत्र गच्छस्व माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥१८॥

अब कर्ण ने इसके शरीर में धनुष का अग्रभाग गड़ाया और कहा—देखो ? यहां अर्जुन कौरवों के साथ युद्ध कर रहे हैं। हे माद्रेय ! या तो तुम वहां चले जाओ या इच्छा हो तो घर जाओ

एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनां वरः ।

प्रायात्पाञ्चालपाण्डूनां सैन्यानि प्रदहन्निव ॥१९॥

हे राजन् ! रथियों में श्रेष्ठ, कर्ण इतना कह कर अपने रथ के द्वारा पाञ्चाल और पाण्डवों की सेना को दग्ध करता हुआ आगे चल दिया ॥१९॥

वधं प्राप्तं तु माद्रेयं नाऽवधीत्समरेऽरिहा ।

कुन्त्याः स्मृत्वा वचो राजन्सत्यसन्धो महायशाः ॥२०॥

हे राजन्! अरिमर्दन! कर्ण ने कुन्ती के साथ किये हुए वचनों को पूरा करने के निमित्त वध के समीप प्राप्त हुए सहदेव का भी वध नहीं किया, क्योंकि यह महायशस्वी कर्ण बड़ा ही सत्य प्रतिज्ञा करने वाला था ॥२०॥

सहदेवस्ततो राजन्विमनाः शरपीडितः ।
कर्णवाक्शरतप्तश्च जीवितान्निरविद्यत ॥२१॥

हे राजन्! सहदेव बड़ा उदासीन हुआ और यह बाणों के आघातों से भी बड़ा पीड़ित था। यह कर्ण के वाक्य बाण से इतना दुःखी हुआ, कि इसे जीवन धारण करना भी भारी प्रतीत हुआ।

आरुरोह रथं चापि पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः ॥२२॥

अब यह महारथी सहदेव, महावीर पाञ्चाल राजकुमार जनमेजय के रथ पर रण में दौड़ कर जा चढ़ा ॥२२॥

विराटं सहसेनं तु द्रोणं वै द्रुतमागतम् ।
मद्रराजः शरौघेण च्छादयामास धन्विनम् ॥२३॥

द्रोणाचार्य के पास वेग से आये हुए सेना सहित धनुर्धर विराट को मद्रराज शल्य ने अपने बाणों से आच्छादित किया ॥२३॥

तयोः समभवद्युद्धं समरे दृढधन्विनोः ।
यादृशं ह्यभवद्राजञ्जम्भवासवयोः पुरा ॥२४॥

हे राजन्! इन दोनों दृढ़ धनुर्धर वीरों का समराङ्गण में ऐसा भीषण रण मचा, कि जैसा इन्द्र और जम्भासुर का पूर्वकाल में युद्ध हुआ था ॥२४॥

मद्रराजो महाराज विराटं वाहिनीपतिम् ।
आजघ्ने त्वरितस्तूर्णं शतेन नतपर्वणाम् ॥२५॥

हे महाराज ! बड़ी भारी सेना को लेकर युद्ध करने वाले विराटराज को मद्रराज शल्य ने शीघ्र २ नतपर्ववाले सौ बाण छोड़कर अत्यन्त ही क्षत-विक्षत बना दिया ॥२५॥

प्रतिविव्याध तं राजन्नवभिर्निशितैः शरैः ।
पुनश्चैनं त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन तु ॥२६॥

हे राजन् ! विराटराज ने नौ बाणों से शल्य को घायल बनाया तथा फिर विराट ने तेहत्तर और फिर सौ बाण मारे ॥२६॥

तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः ।
सूतं ध्वजं च समरे शराभ्यां संन्यपातयत् ॥२७॥

अब मद्रराज शल्य ने भी उसके रथ के चारों अश्व मार लिए और दो बाण मार कर रण में उसके सारथि और ध्वजा को बाणों से काट गिराया ॥२७॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं विमुञ्चंश्च शिताञ्शरान् ॥२८॥

महारथी विराटराज अश्वों के मारे जाने पर रथ से कूद पड़े और धनुष चढ़ा कर बाण छोड़ते हुए रणभूमि में खड़े हो गए ।

शतानीकस्ततो दृष्ट्वा भ्रातरं हतवाहनम् ।
रथेनाऽभ्यपतत्तूर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥२९॥

जब शतानीक ने अपने भ्राता विराट को वाहन (रथ) हीन देखा-तो सब लोगों के देखते २ वह अपना रथ लेकर उसके पास पहुंचा ॥२६॥

शतानीकमथाऽऽयान्तं मद्रराजो महामृधे ।
विशिखैर्बहुभिर्विध्वा ततो निन्ये यमक्षयम् ॥३०॥

इस महायुद्ध में शतानीक को आता देखकर मद्रराज शल्य ने बहुत से बाणों से उसे घायल करके यमराज के घर भेज दिया।

तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव ध्वजमालिनम् ॥३१॥

जब विराटराज का भ्राता शतानीक मारा गया, तो उसका रथ खाली हो गया। अब रथियों में श्रेष्ठ विराटराज, ध्वजाओं से सुशोभित उस रथ में बड़ी शीघ्रता से जा चढ़े ॥३१॥

ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद् द्विगुणविक्रमः ।
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ॥३२॥

अब क्रोध से विराटराज ने अपनी लाल २ आंखें निकाली और इस समय इसका क्रोध से दुगुना पराक्रम बढ़ गया। इसने अपने बाणों से मद्रराज शल्य का रथ बिलकुल ढक दिया ॥३२॥

ततो मद्राधिपः क्रुद्धः शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम् ॥३३॥

इस बाण-वर्षा से मद्रराज शल्य भी झल्ला उठा । उसने नतपर्ववाले बाण से विशाल सेना के स्वामी विराट के हृदय में गाढ़ा प्रहार किया ॥३३॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
कश्मलं चाऽऽविशत्तीव्रं विराटो भरतर्षभ ।।३४।।

हे महाराज ! भरतर्षभ ! विराटराज इस बाण से बहुत ही व्याकुल हो उठे और उनको मूर्च्छा आ गई। वे रथ के मध्य में लेट गए ।।३४।।

सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम् ।
ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत ।।३५।।
वध्यमाना शरशतैः शल्येनाऽऽहवशोभिना ।

हे भारत ! जब सारथि ने देखा, कि विराटराज बहुत ही घायल हो गए हैं, तो उनको रण से बाहर निकाल ले गया । इसके अनन्तर विराट की विशाल सेना भी रणकुशल शल्य के सैंकड़ों बाणों से क्षत-विक्षत होकर रात में भाग निकली ।।३५।।

तां दृष्ट्वा विद्रुतां सेनां वासुदेवधनञ्जयौ ।।३६।।
प्रयातौ तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः ।
तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन्राक्षसेन्द्रो ह्यलम्बुषः ।।३७।।
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय प्रवरं रथम् ।
तुरङ्गममुखैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ।।३८।।
लोहितार्द्रपताकं तं रक्तमाल्यविभूषितम् ।
कार्ष्णायसमयं घोरमृक्षचर्मसमावृतम् ।।३९।।

हे राजेन्द्र ! जब विराटराज की सेना को भागते देखा, तो श्रीकृष्ण और अर्जुन वहां पहुंचे, जहां पर राजा शल्य उपस्थित थे।

हे राजन्! इन दोनों से लोहा लेने को राक्षसराज अलम्बुष आठ चक्र से समन्वित, अश्वों का मुख बनाये हुए भीषण आकारधारी, पिशाचों से संयुक्त, लोहित में भीगी हुई पताकाधारी, लाल २ मालाओं से विभूषित, दृढ़ लोह से निर्मित, रीछ के चमड़े से आच्छादित, उत्तम रथ पर बैठकर आगे आया ॥३६-३६॥

रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता ।
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥४०॥

यह रथ भयङ्कर विचित्र पक्षधारी चौड़ी २ आंखों वाले, शब्द करते हुए गृद्धराज पक्षी के चिन्ह से सुशोभित, ऊँचे दण्ड वाली ध्वजा से युक्त था ॥४०॥

स बभौ राक्षसो राजन्भिन्नाञ्जनचयोपमः ।
रुरोधाऽर्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवाऽद्रिराट् ॥४१॥

हे राजन्! इस समय यह राक्षसराज बिखरे हुए अञ्जन के पर्वत के तुल्य दिखाई देता था। इसने आते हुए अर्जुन को इस ढंग से रोका-जैसे वायु को महापर्वत रोक देता है ॥४१॥

किरन्बाणगणान्राजञ्शतशोऽर्जुनमूर्धनि ।
अतितीव्रं महद्युद्धं नरराक्षसयोस्तदा ॥४२॥

हे राजन्! इसने अर्जुन के मस्तक पर सैकड़ों बाणों की झड़ी लगा दी। यह नर और राक्षस के मध्य में बड़ा ही तीव्र युद्ध चल पड़ा ॥४२॥

द्रष्टृणां प्रीतिजननं सर्वेषां तत्र भारत ।
गृध्रकाकबलोलूककङ्कगोमायुहर्षणम् ॥४३॥

हे भारत ! यह युद्ध देखने वाले वीरों को उत्साहजनक और गीध, काक, बल, उलूक, कङ्क, गीदड़ आदि जीवों का हर्षवर्धक था ॥४३॥

तमर्जुनः शतेनैव पत्रिणां समताडयत् ।
नवभिश्च शितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद भारत ॥४४॥
सारथिं च त्रिभिर्बाणैस्त्रिभिरेव त्रिवेणुकम् ।
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥४५॥

हे भारत ! अब अर्जुन ने भी उसके ऊपर कोई सौ बाण छोड़े और नौ तीक्ष्ण बाण छोड़कर उसकी ध्वजा काट डाली। तीन बाणों से सारथि और तीन से ही तीनों वेणु, एक बाण से धनुष, चार से चारों अश्व नष्ट-भ्रष्ट कर डाले ॥४४-४५॥

पुनः सज्यं कृतं चापं तदप्यस्य द्विधाऽच्छिनत् ।
विरथस्योद्यतं खड्गं शरेणाऽस्य द्विधाऽकरोत् ॥४६॥

इसने फिर दूसरा बाण चढ़ाया, उसके भी अर्जुन ने दो टुकड़े कर दिए। जब यह रथहीन हो गया और इसने तलवार निकाली, तो इसकी नंगी तलवार के भी दो खण्ड कर दिए ॥४६॥

अथैनं निशितैर्बाणैश्चतुर्भिर्भरतर्षभ ।
पार्थोऽविध्यद्राक्षसेन्द्रं स विद्धः प्राद्रवद्भयात् ॥४७॥

हे भरतर्षभ ! अब कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से राक्षसराज अलम्बुष को बिल्कुल विकल कर दिया, जिससे वह भयभीत होकर रण छोड़कर भाग गया ॥४७॥

तं विजित्याऽर्जुनस्तूर्णं द्रोणान्तिकमुपाययौ ।
किरञ्शरगणान्राजन्नरवारणवाजिषु ॥४८॥

हे राजन् ! राक्षसराज अलम्बुष को जीत कर अर्जुन शीघ्रता के साथ नर, हाथी और अश्वों को सैंकड़ों बाणों से बींधता हुआ द्रोणाचार्य के पास पहुंचा ॥४८॥

वध्यमाना महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सैनिका न्यपतन्नुर्व्यां वातनुन्ना इव द्रुमाः॥४९॥

हे महाराज ! यशस्वी पाण्डु-पुत्र द्वारा मारे हुए कौरव सैनिक पृथिवी में इस तरह गिर गए, जैसे-वायु से उखाड़े हुए वृक्ष गिर गए हों ॥४९॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु फाल्गुनेन महात्मना ।
सम्प्राद्रवद्बलं सर्वं पुत्राणां ते विशाम्पते ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलम्बुषपराभवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६७॥

हे विशाम्पते ! महावीर अर्जुन द्वारा पीड़ित की हुई कौरवसेना तुम्हारे पुत्रों के देखते २ भाग खड़ी हुई ॥५०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में कर्ण सहदेव और अर्जुन अलम्बुष के युद्ध का एक सौ सड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ।



एक सौ अड़सठवां अध्याय

सञ्जय उवाच— शतानीकं शरैस्तूर्णं निर्दहन्तं चमूं तव ।
चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भारत ! नकुल-पुत्र शतानीक अपने बाणों से तुम्हारी सेना को दग्ध कर रहा था, कि उसको तुम्हारे पुत्र चित्रसेन ने आगे बढ़कर रोका ॥१॥

नाकुलिश्चित्रसेनं तु विध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
स तु तं प्रतिविव्याध दशभिर्निशितैः शरैः ॥२॥
चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि ।
नवभिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥३॥

नकुल-पुत्र शतानीक ने पांच आशुगामी बाण मार कर चित्रसेन को बींध दिया। चित्रसेन ने भी दश तीक्ष्ण बाणों द्वारा शतानीक को आहत किया। हे महाराज ! फिर चित्रसेन ने युद्ध में शतानीक के वक्षःस्थल में नौ तीक्ष्ण बाण मारे ॥२-३॥

नाकुलिस्तस्य विशिखैर्वर्म सन्नतपर्वभिः ।

गात्रात्संच्यावयामास तदद्भुतमिवाऽभवत् ।।४।।

अब नकुल-पुत्र शतानीक ने नतपर्ववाले बाणों से उसका कवच काट कर शरीर से पृथक् कर दिया। यह घटना बहुत ही अद्भुत मानी गई ॥४॥

सोऽपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप ।

उत्सृज्य काले राजेन्द्र निर्मोकमिव पन्नगः ।।५।।

हे नृप! इस समय तुम्हारा पुत्र चित्रसेन कवच से रहित हुआ इस तरह सुशोभित होने लगा—जैसे कांचली छोड़ कर सांप चमकता है ।। ५ ।।

ततोऽस्य निशितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद नाकुलिः ।

धनुश्चैव महाराज यतमानस्य संयुगे ।।६।।

हे महाराज! अब नकुल-पुत्र शतानीक ने तीक्ष्ण बाणों से युद्ध में अत्यन्त पराक्रम दिखाने की चेष्टा वाले, इस चित्रसेन की ध्वजा और धनुष को रणभूमि में काट गिराया ।। ६ ।।

स च्छिन्नधन्वा समरे विवर्मा च महारथः ।

धनुरन्यन्महाराज जग्राहाऽरिविदारणम् ।।७।।

हे महाराज! अब यह महारथी कवच और धनुष से हीन हो गया, तो इसने फिर शत्रुनाशक दूसरा धनुष उठाया ।। ८ ।।

ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं नवभिः शरैः ।

विव्याध समरे क्रुद्धो भरतानां महारथः ।।८।।

इसके अनन्तर कौरववीर महारथी चित्रसेन रण में कुपित हो उठा। इसने नौ बाण छोड़कर नकुल-पुत्र शतानीक को अत्यन्त व्याकुल कर दिया ॥ ८ ॥

शतानीकोऽथ संक्रुद्धश्चित्रसेनस्य मारिष।
जघान चतुरो वाहान्सारथिं च नरोत्तमः ॥९॥

हे आर्य! इस समय चित्रसेन पर शतानीक अत्यन्त कुपित हो उठा। उस वीर-श्रेष्ठ ने इसके चारों अश्व और सारथि को मार गिराया ॥ ९ ॥

अवप्लुत्य रथात्तस्माच्चित्रसेनो महारथः।
नाकुलिं पञ्चविंशत्या शराणामार्दयद्बली ॥१०॥

महारथी बलवान् चित्रसेन उस रथ से कूद पड़ा और पचीस बाण छोड़कर उसने शतानीक को घायल कर दिया ॥ १० ॥

तस्य तत्कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो रणे।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद चापं रत्नविभूषितम् ॥११॥

नकुल-पुत्र शतानीक ने रण में पराक्रम दिखाते हुए चित्रसेन के रत्न विभूषित धनुष को अपने अर्धचन्द्र बाण से काट गिराया ॥ ११ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
आरुरोह रथं तूर्णं हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥१२॥

जब चित्रसेन का धनुष कट गया, तो यह रथहीन हो गया। इसके अश्व और सारथि मारे गए, तो यह झटपट भाग कर हृदिक-पुत्र महावीर कृतवर्मा के रथ पर जा चढ़ा ॥ १२ ॥

द्रुपदं तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
वृषसेनोऽभ्ययात्तूर्णं किरञ्शरशतैस्तदा ॥१३॥

इधर द्रोण पर आक्रमण के अभिलाषी सेना सहित राजा द्रुपद के रोकने को कर्ण-पुत्र वृषसेन तीव्र बाण वर्षा करता हुआ वेग से आगे बढ़ा ॥ १३ ॥

यज्ञसेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम् ।
षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि चाऽनघ ॥१४॥

हे अनघ ! इस रण में महारथी कर्ण-पुत्र वृषसेन की भुजा और छाती में राजा द्रुपद ने साठ बाण मारे ॥ १४ ॥

वृषसेनस्तु संक्रुद्धो यज्ञसेनं रथे स्थितम् ।
बहुभिः सायकैस्तीक्ष्णैराजघान स्तनान्तरे ॥१५॥

हे राजन् ! अब कर्ण-पुत्र वृषसेन क्रोध से उबल उठा—उसने रथ में स्थित यज्ञसेन के वक्षस्थल में बहुत से तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया ॥ १५ ॥

तावुभौ शरनुन्नाङ्गौ शरकण्टकितौ रणे ।
व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥१६॥

हे महाराज ! इस समय रण में इन दोनों वीरों के अंग बाणों से क्षतविक्षत हो रहे थे और बाण कांटों की तरह खड़े थे। ये दोनों ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे—कांटों से व्याप्त दो सेह जन्तु खड़े हुए हों ॥ १६ ॥

रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥१७॥

इन दोनों वीरों के कवच, सुवर्णमूलधारी चमकीले बाणों से कट फट गए, जो रुधिर के प्रवाह से भीगे हुए सुशोभित हो रहे थे ॥ १७ ॥

तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविवाऽद्भुतौ ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ व्यकाशेतां रणाजिरे ॥१८॥

ये वीर, विचित्र, सुनहरी रंग के कल्पवृक्ष से प्रतीत होते थे, जो रणाङ्गण में खिले हुए ढाक के वृक्ष से दिखाई देते थे ॥ १८ ॥

वृषसेनस्ततो राजन्द्रुपदं नवभिः शरैः ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥१९॥

हे राजन्! अब वृषसेन ने नौ बाण मारकर द्रुपद को बींध दिया, तथा फिर सत्तर बाण मारकर बींधा और फिर तीन २ बाण मारे।

ततः शरसहस्राणि विमुञ्चन्विबभौ तदा ।
कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण इवाऽम्बुदः ॥२०॥

हे महाराज! सहस्रों बाणों की झड़ी लगाते हुए कर्ण-पुत्र वृषसेन वर्षा करनेवाले मेघ की भाँति प्रतीत होने लगा ॥ २० ॥

द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनस्य कार्मुकम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥२१॥

अब राजा द्रुपद भी क्रोधातुर हो गए, उन्होंने एक अग्नि में तपाए हुए तीक्ष्ण भल्ल नामक बाण से वृषसेन का धनुष काट दिया ॥ २१ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय रुक्मबद्धं नवं दृढम् ।
तूणादाकृष्य विमलं भल्लं पीतशितं दृढम् ॥२२॥

कार्मुके योजयित्वा तं द्रुपदं सन्निरीक्ष्य च ।
आकर्णपूर्णं मुमुचे त्रासयन्सर्वसोमकान् ॥२३॥
हृदयं तस्य भित्त्वा च जगाम वसुधातलम् ।
कश्मलं प्राविशद्राजा वृषसेनशराहतः ॥२४॥
सारथिस्तमपोवाह स्मरन्सारथिचेष्टितम् ।

हे राजन् ! अब वृषसेन ने सुवर्ण से मँढे हुए, नवीन, दृढ़, दूसरे धनुष को उठाया और उस पर चमकीला, विष में बुझा हुआ तीक्ष्ण, दृढ़ बाण, तूणीर से निकालकर चढ़ाया। राजा द्रुपद को लक्ष्य करके सारे सोमकवीरों को भयभीत करते हुए, कान तक खैंचकर वृषसेन ने उसे छोड़ दिया। वह बाण, राजा द्रुपद के हृदय को बींधकर पृथिवी में घुस गया। राजा द्रुपद वृषसेन के बाण से आहत होकर मूर्च्छा को प्राप्त हुआ। सारथि अपने कर्तव्य का विचार करके उसको रण से दूर ले गया ॥ २३-२४ ॥

तस्मिन्प्रभग्ने राजेन्द्र पञ्चालानां महारथे ॥२५॥
ततस्तु द्रुपदानीकं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् ।
सम्प्राद्रवत्तदा राजन्निशीथे भैरवे सति ॥२६॥

हे राजेन्द्र ! पञ्चालों के महारथी राजा द्रुपद के भागते ही उस भयानक आधी रात में बाणों से छिन्नभिन्न कवचों वाली राजा द्रुपद की सेना भी भाग निकली ॥ २५-२६ ॥

प्रदीपैरपरित्यक्तैर्ज्वलद्भिस्तैः समन्ततः ।
व्यराजत मही राजन्वीताभ्रा द्यौरिव ग्रहैः ॥२७॥

हे राजन्! मृत वीरों के हाथों में दीपक ज्यों के त्यों थे-वे छूटे नहीं थे। इस समय रणभूमि उन दीपकों से ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे मेघ रहित आकाश ग्रहों से सुशोभित हो रहे हों॥ २७॥

तथाऽङ्गदैर्निपतितैर्व्यराजत वसुन्धरा।
प्रावृट्काले महाराज विद्युद्भिरिव तोयदः॥२८॥

हे महाराज! वीरों के सुवर्ण निर्मित बाजूबन्द उस रणभूमि में ऐसे चमक रहे थे, जैसे वर्षाकाल में बिजली से मेघ सुशोभित होता है॥ २८॥

ततः कर्णसुतात्त्रस्ताः सोमका विप्रदुद्रुवुः।
यथेन्द्रभयवित्रस्ता दानवास्तारकामये॥२९॥

हे राजन्! कर्ण-पुत्र वृषसेन से भयभीत हुई सोमकवीरों की सेना इस तरह भाग निकली, जैसे—इन्द्र के भय से तारकासुर के संग्राम में दानव भाग निकले हों॥ २९॥

तेनार्द्यमानः समरे द्रवमाणाश्च सोमकाः।
व्यराजन्त महाराज प्रदीपैरवभासिताः॥३०॥

हे महाराज! कर्ण-पुत्र वृषसेन से पीड़ित होकर भागते हुए सोमकवीर दीपकोंके प्रकाशमें ज्यों के त्यों दिखाई दे रहे थे॥३०॥

तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रोऽप्यरोचत।
मध्यन्दिनमनुप्राप्तो घर्मांशुरिव भारत॥३१॥

हे भारत! उनको युद्ध में जीत कर कर्ण-पुत्र वृषसेन इस तरह सुशोभित हुए, जैसे-मध्यान्हकाल में आकाश में सूर्य तप रहा हो।॥३१॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च ।
एक एव ज्वलंस्तस्थौ वृषसेनः प्रतापवान् ॥३२॥

हे राजन् ! सहस्रों राजा तुम्हारे पक्ष के वीर और विरोधी वीरों के मध्य में केवल एक ही महाप्रतापी कर्णपुत्र वृषसेन, तेज से जाज्वल्यमान होकर दिखाई दे रहे थे ॥३२॥

स विजित्य रणे शूरान्सोमकानां महारथान् ।
जगाम त्वरितस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥३३॥

यह कर्णपुत्र, वृषसेन, महारथी सोमकवीरों को रण में जीत कर वहां पहुंचा—जहां पर राजा युधिष्ठिर स्थित थे ॥३३॥

प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून् ।
दुःशासनस्तव सुतः प्रत्यगच्छन्महारथः ॥३४॥

हे राजन् ! धर्मराज पुत्र, रण में शत्रुओं को दग्ध करते हुए क्रोधातुर प्रतिविन्ध्य को देख कर तुम्हारा पुत्र दुःशासन उसके सन्मुख पहुंचा ॥३४॥

तयोः समागमो राजंश्चित्ररूपो बभूव ह ।
व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभास्करयोरिव ॥३५॥

हे राजन् ! इन दोनों का यह युद्ध में समागम बड़ा ही अद्भुत प्रतीत होता था, जैसे-मेघ से रहित आकाश में बुध और सूर्य का समागम हुआ हो ॥३५॥

प्रतिविन्ध्यं तु समरे कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ।
दुःशासनस्त्रिभिर्बाणैर्ललाटे समविध्यत ॥३६॥

हे राजन्! प्रतिविन्ध्य रण में दुष्कर वीरकर्म कर रहे थे। इसी समय दुःशासन ने उसके मस्तक में तीन बाण मारे ॥३६॥

सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना।
विरराज महाबाहुः सशृङ्ग इव पर्वतः ॥३७॥

हे भरतर्षभ! तुम्हारे महाबली पुत्र धनुर्धर, दुःशासन द्वारा बींधा हुआ महाबाहु प्रतिविन्ध्य, शिखरधारी पर्वत के सदृश दिखाई देने लगा ॥३७॥

दुःशासनं तु समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः।
नवभिः सायकैर्विध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥३८॥

महारथी प्रतिविन्ध्य ने भी रण में दुःशासन को नौ बाणों से बींध कर फिर सात बाणों से उस पर प्रहार किया ॥३८॥

तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान्कर्म दुष्करम्।
प्रतिविन्ध्यहयानुग्रैः पातयामास सायकैः ॥३९॥

हे भारत! इस समय तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने बड़ा दुष्कर कर्म दिखाया। उसने अपने उग्र बाणों से प्रतिविन्ध्य के अश्वों को मार कर गिरा दिया ॥३९॥

सारथिं चाऽस्य भल्लेन ध्वजं च समपातयत्।
रथं च तिलशो राजन्व्यधमत्तस्य धन्विनः ॥४०॥

हे राजन्! इस धनुर्धर प्रतिविन्ध्य के सारथि और ध्वजा को एक बाण से दुःशासन ने काट गिराया और इसके रथ के तिल २ के बराबर टुकड़े कर दिए ॥४०॥

पताकाश्च सतूणीरा रश्मीन्योक्त्राणि च प्रभो ।
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥४१॥

हे प्रभो ! क्रोधाविष्ट दुःशासन ने नतपर्व वाले बाणों से पताका, तूणीर, रस्सी, जोते आदि रण के साधनों को तिल २ की बराबर काट गिराया ॥४१॥

विरथः स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः ।
अयोधयत्तव सुतं किरञ्शरशतान्बहून् ॥४२॥

यह महावीर प्रतिविन्ध्य रथहीन हो गया, परन्तु इसके हाथ में धनुष था। अब यह धनुष लेकर खड़ा हो गया। इस धनुष द्वारा सैकड़ों की संख्या में बाण छोड़ता हुआ तुम्हारे पुत्र दुःशासन से युद्ध करने लगा ॥४२॥

क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद तनयस्तव ।
अथैनं दशभिर्बाणैश्छिन्नधन्वानमार्दयत् ॥४३॥

अब तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने क्षुर के सदृश बाण से प्रतिविन्ध्य का धनुष काट गिराया। इसके बाद धनुष रहित प्रतिविन्ध्य पर उसने दश बाणों से प्रहार किया ॥४३॥

तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भ्रातरोऽस्य महारथाः ।
अन्ववर्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह ॥४४॥

जब धर्मराज-पुत्र प्रतिविन्ध्य को रथहीन देखा तो इसके महारथी भ्राता दौड़े और वे बड़ी भारी सेना लेकर वेग से लौट पड़े ॥४४॥

आप्लुतः स ततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम् ।
धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव ॥४५॥

हे महाराज ! अब प्रतिविन्ध्य उछल कर अपने भ्राता सुतसोम के रथ पर चढ़गया और वहां धनुष उठा कर तुम्हारे पुत्र दुःशासन पर प्रहार किया ॥४५॥

ततस्तु तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव ।
अभ्यवर्तन्त संग्रामे महत्या सेनया वृताः ॥४६॥

अब तुम्हारे पक्ष के वीर भी तुम्हारे पुत्र दुःशासन को घेर कर उसकी रक्षा करने लगे । ये वीर भी अपनी २ विशाल सेना ले कर लौट पड़े थे ॥४६॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे शतानीकादियुद्धे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६८॥

हे भारत ! अब तुम्हारे वीर और पाण्डववीरों में आधी रात के समय यम राष्ट्र की वृद्धि करने वाला महायुद्ध होने लगा ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में शतानीक चित्रसेन, द्रुपद और वृषसेन के युद्ध के वर्णनका एक सौ अड़सठवां अध्याय पूरा हुआ

एक सौ उनहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीं तव ।
अभ्ययात्सौबलः क्रुद्ध स्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा–हे भरतर्षभ ! एक ओर तुम्हारी सेना को इस युद्ध में वेग के साथ नकुल नष्ट-भ्रष्ट कर रहा था । उसके ऊपर क्रुद्ध होकर सुबल-पुत्र शकुनि ने आक्रमण किया और ठहर २ इस प्रकार वचन कहा ॥१॥

कृतवैरौ तु तौ वीरावन्योन्यवधकांक्षिणौ ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥२॥

इन दोनों वीरों का तो प्रथम ही से वैर बढ़ा हुआ था, इससे एक दूसरे के मारने को अत्यन्त लालायित थे । ये अत्यन्त बल के साथ धनुष खैंच २ कर एक दूसरे पर बाणों का आघात करने लगे ॥२॥

यथैव नकुलो राजञ्शरवर्षाण्यमुञ्चत ।
तथैव सौबलश्चापि शिक्षां सन्दर्शयन्युधि ॥३॥

हे राजन् ! जिस प्रकार नकुल बाणों की झड़ी लगा रहे थे, उसी तरह अपने युद्धकौशल को दिखाता हुआ सुबलपुत्र शकुनि भी बाण छोड़ रहा था ॥३॥

तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा ।
व्यराजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥४॥

हे महाराज! ये दोनों शूरवीर, शरों से इतने व्याप्त हो गए, कि रण में अपने २ कांटों से व्याप्त दो सेह नामक जन्तु के सदृश प्रतीत होते थे ॥४॥

रुक्मपुङ्खैरजिह्माग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥५॥

सुवर्ण मूलधारी, सीधी नोक वाले बाणों से इनके कवच छिन्न भिन्न हो गए। इस महायुद्ध में ये दोनों वीर रुधिर प्रवाह में भीगे हुए बड़े ही तेजस्वी दिखाई देते थे ॥५॥

तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविव द्रुमौ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ प्रकाशेते रणाजिरे ॥६॥

इस समय दोनों महारथी, तपाये हुए सुवर्ण से निर्मित चमकीले दो कल्पवृक्ष या पुष्पों से भरे हुए किंशुक (ढाक) वृक्ष के सदृश दिखाई दे रहे थे ॥७॥

तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा।
व्यराजेतां महाराज कण्टकैरिव शाल्मली ॥७॥

हे महाराज! ये दोनों शूरवीर, इस समराङ्गण में बाणों से ऐसे व्याप्त हो गए, जैसे कांटों से शाल्मली वृक्ष व्याप्त होकर सुशोभित होता है ॥८॥

सुजिह्मं प्रेक्षमाणौ च राजन्विवृत्तलोचनौ।
क्रोधसंरक्तनयनौ निर्दहन्तौ परस्परम् ॥८॥

हे राजन्! इन दोनों ने अपनी २ आंखें चढ़ा कर एक दूसरे को तिरछी दृष्टि से देखा। इनकी आंखें क्रोध से लाल हो रही थी और वे परस्पर एक दूसरे को भस्म करना चाहते थे ॥८॥

स्यालस्तु तत संक्रुद्धो माद्रीपुत्रं हसन्निव ।
कर्णिनैकेन विव्याध हृदये निशितेन ॥६॥

हे नृपते! इस समय तुम्हारा साला शकुनि क्रोध में भरा हुआ था। उसने हँसते २ माद्री-पुत्र नकुल के हृदय में एक कर्णि नामक तीक्ष्ण बाण से बुरी तरह आघात किया ॥६॥

नकुलस्तु भृशं विद्धः स्यालेन तव धन्विना ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाऽऽविशन्महत् ॥१०॥

हे नराधिप! धनुर्धर तुम्हारे साले शकुनि द्वारा अत्यन्त बिधा हुआ नकुल रथ के मध्य में तड़फड़ाने लगा और उसको बहुत अधिक मूर्च्छा आ गई ॥१०॥

अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं तथाऽऽगतम् ।
ननाद शकुनी राजंस्तपान्ते जलदो यथा ॥११॥

हे राजन्! अत्यन्त वैरी मदोद्धत शत्रुभूत नकुल को सन्मुख देख कर शकुनि इस तरह गर्जने लगा-जैसे ग्रीष्मकाल के बाद वर्षा में मेघ गरजता है ॥११॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः ।
अभ्ययात्सौबलं भूयो व्यात्तानन इवाऽन्तकः ॥१२॥

थोड़ी देर में पाण्डु-पुत्र नकुल को चेतनता आई, तो वह मुख खोले हुए काल की तरह सुवल-पुत्र शकुनि पर झपटा ॥१२॥

संक्रुद्धः शकुनिं षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ ।

पुनश्चैनं शतेनैव नाराचानां स्तनान्तरे ॥१३॥

हे भरतर्षभ ! इसने क्रोधातुर होकर शकुनि के साठ बाण मारे और फिर शकुनि के हृदय को लक्ष्य करके उस पर सैंकड़ों बाणों का प्रयोग किया ॥१३॥

अथाऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशेऽच्छिनत्तदा ।

ध्वजं च त्वरितं छित्वा रथाद्भूमावपातयत् ॥१४॥

नकुल ने बाण चढ़े हुए इसके धनुष को भी इसके मुष्टि प्रदेश के समीप से काट दिया और ध्वजा को भी जल्दी से काट कर रथ से नीचे भूमि में गिरा दिया ॥१४॥

विशिखेन च तीक्ष्णेन पीतेन निशितेन च ।

ऊरू निर्भिद्य चैकेन नकुलः पाण्डुनन्दनः ॥१५॥

श्येनं सपक्षं व्याधेन पातयामास तं तदा ।

अब पाण्डुनन्दन नकुल ने एक विषदग्ध तीक्ष्ण और नुकीले बाण से उसकी दोनों जंघाएँ बींध दी । उसने शकुनि को ऐसे गिरा दिया, जैसे सपक्ष बाज को शिकारी गिरा लेता है ॥१५॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ॥१६॥

ध्वजयष्टिं परिक्लिश्य कामुकः कामिनीं यथा ।

हे महाराज ! नकुल के बाणों से अत्यन्त बिंधा हुआ शकुनि, रथ के मध्य में ध्वजा की यष्टि को पकड़ कर इस तरह बैठ गया जैसे कामीजन कामिनी का आलिङ्गन करके बैठ जाता है ॥१६॥

तं विसंज्ञं निपतितं दृष्ट्वा स्यालं तवाऽनघ ॥१७॥
अपोवाह रथेनाऽऽशु सारथिर्ध्वजिनीमुखात् ।
ततः संचुक्रुशुः पार्था ये च येषां पदानुगाः ॥१८॥

हे अनघ ! तुम्हारे साले शकुनि को जब उसके सारथि ने मूर्च्छित पड़ा देखा, तो उसे सेना के सामने से वेग के साथ अन्यत्र ले गया। शकुनि के सामने से हटते ही पाण्डव और उनके साथी सैनिक गर्जना करने लगे ॥१७-१७॥

निर्जित्य च रणे शत्रुं नकुलः शत्रुतापनः ।
अब्रवीत्सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मां वह ॥१६॥

शत्रुतापी नकुल, रणमें अपने शत्रु शकुनि को जीतकर क्रोधातुर हुआ सारथि से बोला–अब तुम मुझे शीघ्रातिशीघ्र द्रोण की सेना के पास ले चलो ॥१६॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माद्रीपुत्रस्य सारथिः ।
प्रायात्तेन तदा राजन्यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ॥२०॥

हे राजन् ! माद्री-पुत्र नकुल का सारथि उसके ये वचन सुन कर अपने रथ को उधर ही ले चला,-जिधर द्रोणाचार्य युद्ध कररहे थे।

शिखण्डिनं तु समरे द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कृपः शारद्वतो यत्तः प्रत्यगच्छत्स वेगितः ॥२१॥

हे विशाम्पते ! द्रोण पर आक्रमण के अभिलाषी शिखण्डी पर रण में शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य ने बड़े वेग और सावधानी से आक्रमण किया ॥२१॥

गौतमं द्रुतमायान्तं द्रोणानीकमरिन्दमम् ।
विव्याध नवभिर्भल्लैः शिखण्डी प्रहसन्निव ॥२२॥

जब द्रोण की सेनाकी सहायता के लिए गौतमगोत्री कृपाचार्य वेग से बढ़ रहे थे, तो उस समय उसे शिखण्डी ने हंसते २ नौ भल्ल नामक बाण मार कर घायल कर दिया ॥२२॥

तमाचार्यो महाराज विध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या पुत्राणां प्रियकृत्तव ॥२३॥

हे महाराज ! तुम्हारे पुत्रों के हित में तत्पर आचार्य कृप ने भी उस पर पांच आशुगामी बाण मारे और फिर बीस बाणों का प्रहार करके उसे आहत कर दिया ॥२३॥

महद्युद्धं तयोरासीद्घोररूपं भयानकम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥२४॥

हे राजन् ! जिस तरह देवासुर संग्राम में शम्बरासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ—उसी तरह का भयानक यह घोर रूपधारी महायुद्ध होने लगा ॥२४॥

शरजालावृतं व्योम चक्रतुस्तौ महारथौ ।
मेघाविव तपापाये वीरौ समरदुर्मदौ ॥२५॥
प्रकृत्या घोररूपं तदासीद्घोरतरं पुनः ।

इन दोनों रणविजयी वीरश्रेष्ठ महारथियों ने इस तरह आकाश को बाणजाल से आवृत कर दिया, जैसे-ग्रीष्म के अन्त में वर्षाकाल में मेघ छा जाते हैं। यह युद्ध वैसे ही घोर रूप था, परन्तु इस समय तो और भी भयानक हो गया ॥२५॥

रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ योधानां युद्धशालिनाम् ॥२६॥
कालरात्रिनिभा ह्यासीद्घोररूपा भयानका।

हे भरतश्रेष्ठ ! युद्ध के उत्साह में भरे हुए योद्धाओं को आज को रात्रि भयानक घोररूप कालरात्रि के सदृश हो गई ॥२६॥

शिखण्डी तु महाराज गौतमस्य महद्धनुः ॥२७॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद सज्यं सविशिखं तदा।

हे महाराज ! अब शिखण्डी ने गौतमगोत्रोत्पन्न, कृपाचार्य के बाण से सुसज्जित, विशाल धनुष को अर्ध चन्द्र नामक बाण से काट गिराया ॥२७॥

तस्य क्रुद्धः कृपो राजञ्शक्तिं चिक्षेप दारुणाम् ॥२८॥
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमार्जिताम्।

हे राजन् ! इस पर कुपित होकर कृपाचार्य ने दारुण सुवर्ण दण्ड से सुशोभित, तीक्ष्ण धार वाली, कारीगर से साफ की हुई शक्ति का प्रयोग किया ॥२८॥

तामापतन्तीं चिच्छेद शिखण्डी बहुभिः शरैः ॥२९॥
साऽपतन्मेदिनीं दीप्ता भासयन्ती महाप्रभो।

हे नराधिप ! इसको अपने ऊपर गिरती हुई देखकर शिखण्डी ने बहुत से बाणों से उसे काट डाला। वह अत्यन्त चमकीली महा कान्तिवाली शक्ति चमचमाती हुई पृथिवी में गिर गई ॥२६॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥३०॥
प्राच्छादयच्छितैर्बाणैर्महाराज शिखण्डिनम् ।

हे महाराज ! अब रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने दूसरा धनुष उठाया और उससे शिखण्डीके ऊपर बाणों की झड़ी लगादी॥३०॥

स च्छाद्यमानः समरे गौतमेन यशस्विना ॥३१॥
न्यषीदत रथोपस्थे शिखण्डी रथिनां वरः ।

यशस्वी कृपाचार्य द्वारा रण में बाणों से अच्छादित हुआ रथिश्रेष्ठ शिखण्डी रथ के मध्य में व्याकुल होकर लेट गया ॥३१॥

सीदन्तं चैनमालोक्य कृपः शारद्वतो युधि ॥३२॥
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्जिघांसन्निव भारत ।

हे भारत ! जब शरद्वान-पुत्र कृपाचार्य ने इस युद्ध में रथ के मध्य में शिखण्डी को तड़फड़ाता देखा—तो उसने इसके मारने की इच्छा से बहुत से बाणों का प्रहार किया ॥३२॥

विमुखं तु रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनिं महारथम् ॥३३॥
पञ्चालाः सोमकाश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ।

हे राजन् ! इस समय रण में पराजित द्रुपद-पुत्र महारथी शिखण्डी को देख कर सब ओर से उसकी रक्षा के निमित्त पञ्चाल और सोमकवीरों ने उसे घेर लिया ॥३३॥

तथैव तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम् ॥३४॥

महत्या सेनया सार्धं ततो युद्धमवर्तत ।

हे नृपते ! इसी तरह तुम्हारे पुत्रों ने भी द्विजश्रेष्ठ कृपाचार्य की रक्षा में तत्पर होकर उसे बड़ी भारी सेना के साथ घेर लिया। अब दोनों का घोर युद्ध होने लगा ॥३४॥

रथानां च रवो राजन्नन्योन्यमभिधावताम् ॥३५॥

बभूव तुमुलः शब्दो मेघानां गर्जतामिव ।

हे राजन् ! इस समय एक दूसरे पर आक्रमण करने वाले रथियों का इतना घोर शब्द हुआ, कि जैसे मेघ गरजना कर रहे हों ॥३४॥

द्रवतां सादिनां चैव गजानां च विशाम्पते ॥३६॥

अन्योन्यमभितो राजन्क्रूरमायोधनं बभौ ।

हे विशाम्पते ! एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए, गजारोही और अश्वारोहियों की भाग दौड़ इतनी तीव्र हो रही थी, कि एक दूसरे के समीप बड़ा दारुण युद्ध होने लगा ॥३६॥

पत्तीनां द्रवतां चैव पादशब्देन मेदिनी ॥३७॥

अकम्पत महाराज भयत्रस्तेव चाङ्गना ।

हे महाराज ! जब पैदल सैनिक दौड़ते थे, तो उनके पदों की आहट से पृथिवी इस तरह कांपने लगती थी, जैसे भय से व्याप्त कोई अबला स्त्री कांप रही हो ॥३७॥

रथिनो रथमारुह्य प्रद्रुता वेगवत्तरम् ॥३८॥
अगृह्णन्बहवो राजञ्शलभान्वायसा इव ।

हे राजन्! रथिलोग रथ पर बैठकर वेग से दौड़ पड़े। वे एक दूसरे को इस तरह पकड़ने लगे, जैसे कव्वे, शलभ पक्षियों को पकड़ लेते हैं ॥३८॥

तथा गजान्प्रभिन्नांश्च सम्प्रभिन्ना महागजाः ॥३९॥
तस्मिन्नेव पदे यत्ता निगृह्णन्ति स्म भारत ।

हे भारत! इसी तरह मदस्रावी हाथी, शत्रु के मदस्रावी हाथियों पर एकदम सावधानी से झपट कर परस्पर आघात करने लगे ।

सादी सादिनमासाद्य पत्तयश्च पदातिनम् ॥४०॥
समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नाऽतिचक्रमुः ।

अश्वारोही अश्वारोही पर और पैदल, पैदल सैनिक के ऊपर आवेश में भरे हुए आक्रमण करते थे, परन्तु कोई किसी को पराजित करने में समर्थ नहीं होता था ॥४०॥

धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्ततामपि ॥४१॥
बभूव तत्र सैन्यानां शब्दः सुविपुलो निशि ।

हे नराधिप! दौड़ते, झपटते और फिर २ कर लौटते रहने पर सेनाओं का बहुत अधिक शब्द उस रात में रणभूमि में फैल गया ॥४१॥

दीप्यमानाः प्रदीपाश्च रथवारणवाजिषु ॥४२॥
अदृश्यन्त महाराज महोल्का इव खाच्च्युताः ।

हे राजन्! इस रण में रथ, हाथी और अश्वों पर जले हुए दीपक इस तरह दिखाई देते थे, जैसे आकाश से गिरे हुए उल्कापात सब ओर चमक रहे हों ॥४२॥

सा निशा भरतश्रेष्ठ प्रदीपैरवभासिता ॥४२॥
दिवसप्रतिमा राजन्बभूव रणमूर्धनि।

हे भरतश्रेष्ठ! इन दीपकों से यह युद्धरात्रि इतनी प्रकाशित हो रही थी, कि रण में दिन सा दिखाई दे रहा था ॥४३॥

आदित्येन यथा व्याप्तं तमो लोके प्रणश्यति । ४४॥
तथा नष्टं तमो घोरं दीपैर्दीप्तैरितस्ततः।

हे राजन्! इन दीपकों की दीप्ति से इधर उधर घोर अन्धकार इस तरह नष्ट हो गया, जैसे सूर्य से अन्धकार नष्ट हो जाता है।

दिवं च पृथिवीं चैव दिशश्च प्रदिशस्तथा ॥४५॥
रजसा तमसा व्याप्ता द्योतिताः प्रभया पुनः।

आकाश, पृथिवी, दिशा और प्रदिशा, रज और अन्धकार से व्याप्त हो रही थी, परन्तु इन दीपकों के प्रकाश से फिर प्रज्वलित हो उठी ॥४५॥

अस्त्राणां कवचानां मणीनां च महात्मनाम् ॥४६॥
अन्तर्दधुः प्रभाः सर्वा दीपैस्तैरवभासिताः ।

अस्त्र, कवच और योद्धाओं के आभूषणों की चमक, उन दीपकों के प्रकाश के होते ही सब लुप्त सी हो गई ॥४६॥

तस्मिन्कोलाहले युद्धे वर्तमाने निशामुखे ॥४७॥
न किंचिद्विदुरात्मानमयमस्मीति भारत ।

हे भारत ! इस आधी रात के समय महान् कोलाहल में युक्त, युद्ध के वर्तमान होने पर किसी को यह पता नहीं था, कि मैं कहां और कौन हूं ॥४७॥

अवधीत्समरे पुत्रं पिता भरतसत्तम ॥४८॥
पुत्रश्च पितरं मोहात्सखायं च सखा तथा ।
स्वस्रीयं मातुलश्चापि स्वस्रीयश्चापि मातुलम् ॥४९॥

हे भरतसत्तम ! इस समय पिता ने पुत्र का, पुत्र ने पिता का, मित्र ने मित्र का, मामा ने भानजे का, भानजे ने मामा का, अज्ञान में वध कर दिया ॥४८-४९॥

स्वे स्वान्परे परांश्चापि निजघ्नुरितरेतरम् ।
निर्मर्यादमभूद्युद्धं रात्रौ भीरुभयानकम् ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥

इस समय अपने पक्ष के अपने को और शत्रु पक्ष के शत्रु को मार रहे थे। यह युद्ध इस रात में इतनी सीमा से बाहर हो गया, कि इससे कायरों को बहुत ही भय खड़ा हो रहा था ॥५०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में रात में नकुल और शकुनि तथा शिखण्डी और कृपाचार्य के घोर युद्ध के वर्णन का एक सौ उनहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ



एक सौ सत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच-तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमेवाऽभ्यवर्तत ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! जब यह भयानक, महाघोर युद्ध चल रहा था, तो इसी समय धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया ॥१॥

सन्दधानो धनुः श्रेष्ठं ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः।
अभ्यद्रवत द्रोणस्य रथं रुक्मविभूषितम् ॥२॥

धृष्टद्युम्न ने बड़ा उत्तम धनुष धारण कर रखा था और वे उसकी प्रत्यञ्चा को बार २ खैंच रहे थे। उसने इस समय सुवर्ण-विभूषित द्रोणाचार्य के रथ पर वेग से आक्रमण किया ॥२॥

धृष्टद्युम्नमथाऽऽयान्तं द्रोणस्याऽन्तचिकीर्षया।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥३॥

हे महाराज! द्रोणाचार्य के अन्त कर देने की आकांक्षा से आगे बढ़ते हुए धृष्टद्युम्न की रक्षा के लिए पञ्चाल और पाण्डव वीरों ने उसे घेर लिया ॥३॥

तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्यसत्तमम्।
पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररक्षुर्द्रोणमाहवे ॥४॥

आचार्य-सत्तम द्रोण को इस प्रकार अनुरक्षित देखकर तुम्हारे पुत्रों ने भी इस घोर रण में द्रोणाचार्य की रक्षा का बड़ी सावधानी से प्रबन्ध किया ॥४॥

बलार्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निशामुखे ।
वातोद्धूतौ क्षुब्धसत्त्वौ भैरवौ सागराविव ॥५॥

इस रात के मध्य में इस तरह दोनों सेना-समुद्र परस्पर टकरा गए-जैसे वायु से उछाले हुए व्याकुल जीव जन्तुओं से परिपूर्ण भीषण दो समुद्र मिल रहे हों ॥५॥

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पञ्चभिः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद च ॥६॥

हे महाराज ! अब पञ्चालवीर, धृष्टद्युम्न ने पांच बाण द्रोणाचार्य के हृदय में बड़ी शीघ्रता से मारे और इसके बाद बड़े उच्चस्वर में सिंहनाद किया ॥६॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या विध्वा भारत संयुगे ।
चिच्छेदाऽन्येन भल्लेन धनुरस्य महास्वनम् ॥७॥

हे भारत ! इस घोर रण में द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न को पच्चीस बाण मार कर बींध दिया और एक दूसरा भल्ल नामक बाण मार कर इसका महाध्वनि करने वाला धनुष काट गिराया ॥७॥

धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धो द्रोणेन भरतर्षभ ।
उत्ससर्ज धनुस्तूर्णं सन्दश्य दशनच्छदम् ॥८॥

हे भरतर्षभ! द्रोणाचार्य द्वारा आहत किया हुआ धृष्टद्युम्न क्रोध से अपने होठ चाबने लगा और उसने अपना वह खण्डित धनुष फैंक दिया ॥८॥

ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
आददेऽन्यद्धनुः श्रेष्ठं द्रोणस्याऽन्तचिकीर्षया ॥९॥

हे महाराज! अब प्रतापी धृष्टद्युम्न क्रोध में भर गया और उसने द्रोणाचार्य के अन्त करने की इच्छा से दूसरा धनुष उठाया।

विकृष्य च धनुश्चित्रमाकर्णात्परवीरहा ।
द्रोणस्याऽन्तकरं घोरं व्यसृजत्सायकं ततः ॥१०॥

अब शत्रुवीरनाशक धृष्टद्युम्न ने अपने अद्भुत धनुष को खैंचा; और द्रोणाचार्य के अन्त करने वाले घोर बाण का प्रयोग किया ॥१०॥

स विसृष्टो बलवता शरो घोरो महामृधे ।
भासयामास तत्सैन्यं दिवाकर इवोदितः ॥११॥

इस महायुद्ध में बलवान् धृष्टद्युम्न द्वारा छोड़े हुए, उस घोर बाण ने सारी सेना को इस तरह प्रकाशित कर दिया जैसे-उदय को प्राप्त होता हुआ सूर्य प्रकाशित करता है ॥११॥

तं तु दृष्ट्वा शरं घोरं देवगन्धर्वमानवाः ।
स्वस्त्यस्तु समरे राजन्द्रोणायेत्यब्रुवन्वचः ॥१२॥

हे राजन्! धृष्टद्युम्न के इस घोर बाण को देव, गन्धर्व और मनुष्य देखकर यह वचन बोले, कि हे भगवन्! द्रोणाचार्य का कल्याण हो ॥१२॥

इसी समय दशार्हवंशश्रेष्ठ सात्यकि, बाणों की झड़ी लगाता हुआ, महापराक्रमी धृष्टद्युम्न की सहायता के लिए आ पहुंचा ॥२६॥

तमायान्तं महेष्वासं सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ।
राधेयो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ॥३०॥

युद्ध में दुर्मद, महाधनुर्धर सात्यकि को झपटते देखकर राधा-पुत्र कर्ण ने सीधे जाने वाले दश बाण मार कर उसको बींध दिया ॥३०॥

तं सात्यकिर्महाराज विव्याध दशभिः शरैः ।
पश्यतां सर्ववीराणां मा गास्तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥३१॥

हे महाराज ! सात्यकि ने भी दश बाणों से उसे आहत किया और सारे वीर खड़े २ देखते रहे । सात्यकि ने कहा देखना-भाग न जाना, ठहरे रहना ॥३१॥

स सात्यकेस्तु बलिनः कर्णस्य च महात्मनः ।
आसीत्समागमो राजन्बलिवासवयोरिव ॥३२॥

हे राजन् ! सात्यकि और महावीर कर्ण का यह युद्ध बलि और इन्द्र के युद्ध के बराबर भीषण प्रतीत होने लगा ॥३२॥

त्रासयन्रथघोषेण क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
राजीवलोचनं कर्णं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥३३॥

क्षत्रिय-श्रेष्ठ सात्यकि ने सारे क्षत्रियवीरों को अपने रथ की ध्वनि से त्रास युक्त बना दिया । अब सात्यकि ने कमल के तुल्य बड़ी २ आंखों वाले कर्ण पर आक्रमण किया ॥३३॥

कम्पयन्निव घोषेण धनुषो वसुधां बली ।
सुतपुत्रो महाराज सात्यकिं प्रत्ययोधयत् ॥३४॥

हे महाराज ! महाबली सूत-पुत्र कर्ण ने अपने धनुष की ध्वनि से सारी पृथिवी को कंपा डाला और इसने सात्यकि से युद्ध की ठानी ॥३४॥

विपाठकर्णिनाराचैर्वत्सदन्तैः क्षुरैरपि ।
कर्णः शरशतैश्चापि शैनेयं प्रत्यविद्धयत॥३५॥

अब कर्ण ने विपाठ, कर्णि, नाराच, वत्सदन्त और क्षुर नामक सैंकड़ों शरों से शिनि-पौत्र सात्यकि को क्षत-विक्षत कर डाला ।

तथैव युद्धयमानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो युधि ।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णं तद्युद्धमभवत्समम् ॥३६॥

वृष्णियों में श्रेष्ठ, सात्यकि ने भी इस युद्ध में युद्ध करते हुए इतनी बाण-वर्षा की, कि दोनों का युद्ध बराबर ही माना गया ।

तावकाश्च महाराज कर्णपुत्रश्च दंशितः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥३७॥

हे महाराज ! तुम्हारे वीर और रण सामग्री से सुसज्जित कर्ण-पुत्र वृषसेन ने शीघ्र २ तीक्ष्ण चमकीले बाण छोड़कर सात्यकि को बुरी तरह मार दिया ॥३७॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां कर्णस्य वा विभो ।
अविध्यत्सात्यकिः क्रुद्धो वृषसेनं स्तनान्तरे ॥३८॥

धृष्टद्युम्न ने भी सीधे जाने वाले तीन बाण छोड़कर उसको आहत किया। ये तीन बाण सुवर्णमूलधारी, शिला पर तीक्ष्ण किये गए और रण में प्राणों का अन्त कर देने वाले थे ॥२१॥

भल्लेनाऽन्येन तु पुनः सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलम् ।
निचकर्त शिरः कायाद् द्रुमसेनस्य वीर्यवान् ॥२२॥

अब वीर्यवान् धृष्टद्युम्न ने एक अन्य भल्ल नामक बाण छोड़ा, जिससे सुवर्ण के कुण्डलों से उज्ज्वल, राजा द्रुमसेन के मस्तक को शरीर से पृथक् काट कर गिरा दिया ॥२२॥

तच्छिरो न्यपतद्भूमौ सन्दष्टौष्ठपुटं रणे ।
महावातसमुद्धूतं पक्वं तालफलं यथा ॥२३॥

वह शिर कट कर पृथिवी में गिर गया, परन्तु इसका होंठ काटने की मुद्रा ज्यों की त्यों बनी हुई थी। वह इस तरह गिर गया-जैसे आंधी में पका हुआ ताल फल गिर जाता है ॥२३॥

तान्स विध्वा पुनर्योधान्वीरः सुनिशितैः शरैः ।
राधेयस्याऽच्छिनद्भल्लैः कार्मुकं चित्रयोधिनः ॥२४॥

पाञ्चालवीर धृष्टद्युम्न ने अब इन योधाओं को क्षत-विक्षत करके अपने बाण से विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाले कर्ण के धनुष को काट गिराया ॥२४॥

न तु तन्ममृषे कर्णो धनुषश्छेदनं तथा ।
निकर्तनमिवाऽत्युग्रं लांगूलस्य महाहरिः ॥ २५ ॥

हे राजन्! जैसे कोई बलवान् सिंह अपनी पूंछ का कटना नहीं सह सकता है, उसी तरह कर्ण से अपने धनुष का छेदन नहीं सहा जा सका ॥२५॥

सोऽन्यद्धनुः समादाय क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् ।
अभ्यद्रवच्छरौघैस्तं धृष्टद्युम्नं महाबलम् ॥२६॥

हे जनाधिप! कर्ण की आंखें क्रोध से लाल हो रही थी। उसने क्रोध के सांस मारते हुए दूसरा धनुष उठाया और वह उसके द्वारा बाण-वर्षा करता हुआ महाबली धृष्टद्युम्न पर टूट पड़ा।

दृष्ट्वा कर्णं तु संरब्धं ते वीराः षड्रथर्षभाः ।
पाञ्चाल्यपुत्रं त्वरिताः परिवव्रुर्जिघांसया ॥२७॥

जब कर्ण से भिन्न छः वीरश्रेष्ठ महारथियों ने कर्ण को क्रोध में भरा हुआ देखा-तो वे भी शीघ्रता से पाञ्चाल-पुत्र धृष्टद्युम्न के मारने के लिए उसे घेर कर खड़े हो गए ॥२७॥

षण्णां योधप्रवीराणां तावकानां पुरस्कृतम् ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं धृष्टद्युम्नममंस्महि ॥२८॥

हे राजेन्द्र! तुम्हारे छः महारथी वीरों के मध्य में पहुंचे हुए धृष्टद्युम्न को इस समय हम लोगों ने मृत्यु के मुख में पहुंचा हुआ ही समझा ॥२८॥

एतस्मिन्नेव काले तु दाशार्हो विकिरञ्छरान् ।
धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः प्रत्यपद्यत ॥२९॥

तं तु सायकमायान्तमाचार्यस्य रथं प्रति ।
कर्णो द्वादशधा राजंश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥१३॥

हे राजन्! यह घोर बाण ज्यों ही द्रोणाचार्य के रथ की ओर आ रहा था, कि युद्ध में हस्तकौशल दिखाने वाले कर्ण ने उसके बारह टुकड़े कर डाले ॥१३॥

स च्छिन्नो बहुधा राजन्सूतपुत्रेण धन्विना ।
निपपात शरस्तूर्णं निर्विषो भुजगो यथा ॥१४॥

हे राजन्! धनुर्धर-श्रेष्ठ सूत-पुत्र कर्ण द्वारा खण्डित किया हुआ वह बाण, वेग से भूमि में इस तरह गिर गया-जैसे विषहीन सर्प गिर गया हो ॥१४॥

धृष्टद्युम्नं ततः कर्णो विव्याध दशभिः शरैः ।
पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणस्तु सप्तभिः ॥१५॥
शल्यश्च दशभिर्बाणैस्त्रिभिर्दुःशासनस्तथा ।
दुर्योधनस्तु विंशत्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः ॥१६॥
पाञ्चाल्यं त्वरयाऽविध्यन्सर्व एव महारथाः ।

हे राजन्! अब कर्ण ने भी धृष्टद्युम्न के दश, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने पांच, स्वयं द्रोण ने सात, शल्य ने दश, दुःशासन ने तीन, दुर्योधन ने बीस, शकुनि ने पांच बाण मारे । इन सारे महारथियों ने वेग के साथ पञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न को अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया ॥१५-१६॥

स विद्धः सप्तभिर्वीरैर्द्रोणस्याऽर्थे महाहवे ॥१७॥
सर्व्वानसम्भ्रमाद्राजन्प्रत्यविद्ध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ।
द्रोणं द्रौणिं च कर्णं च विव्याध च तवाऽऽत्मजम् ॥

हे राजन्! इस महारण में द्रोण के वध के निमित्त आगे बढ़ते हुए धृष्टद्युम्न को कर्णादि सात वीरों ने बींध डाला। इसने भी विना किसी घबराहट के प्रत्येक महारथी के तीन २ बाण मारे और द्रोण, अश्वत्थामा, कर्ण और तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को भी बींध लिया ॥१७॥

ते भिन्ना धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे ।
विव्यधुः पञ्चभिस्तूर्णमेकैको रथिनां वरः ॥१८॥

इस धनुर्धर धृष्टद्युम्न द्वारा आहत हुए इन प्रत्येक महारथियों ने फिर रण में धृष्टद्युम्न के ऊपर पांच २ बाण छोड़े ॥१८॥

द्रुमसेनस्तु संक्रुद्धो राजन्विव्याध पत्रिणा ।
त्रिभिश्चाऽन्यैः शरैस्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥२०

हे राजन्! इस समय द्रुमसेन नामक महारथी क्रोध में भर रहा था, उसने एक बाण मार कर धृष्टद्युम्न को बींध दिया और फिर तीन बाण मार कर कहा-तनिक ठहरा रह ॥२०॥

स तु तं प्रतिविव्याध त्रिभिस्तीक्ष्णैरजिह्मगैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैः प्राणान्तकरणैर्युधि ॥२१॥

हे विभो ! अपने अस्त्रों से कर्ण के तथा अन्य वीरों के अस्त्रों को रोककर क्रोधातुर सात्यकि ने वृषसेन के वक्षःस्थल में प्रहार किया ॥३८॥

तेन बाणेन निर्विद्धो वृषसेनो विशाम्पते ।
न्यपतत्स रथे मूढो धनुरुत्सृज्य वीर्यवान् ॥३९॥

हे विशाम्पते ! इस बाण से बिंधा हुआ वीर्यवान वृषसेन, धनुष को छोड़कर रथ में मूर्छित होकर गिर गया ॥३९॥

ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथम् ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तः सात्यकिं प्रत्यपीडयत् ॥४०॥

जब कर्ण ने देखा, कि महारथी वृषसेन मारा गया-तो वह अपने पुत्र के शोक से व्याप्त होकर सात्यकि को बींधने लगा ॥४०॥

पीड्यमानस्तु कर्णेन युयुधानो महारथः ।
विव्याध बहुभिः कर्णं त्वरमाणः पुनः पुनः॥४१॥

जब कर्ण ने महारथी सात्यकि को बहुत ही पीड़ित किया-तो सात्यकि ने भी बड़ी शीघ्रता में बार २ बाण छोड़ना आरम्भ किया।

स कर्णं दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं च सप्तभिः ।
सहस्तावापधनुषी तयोश्चिच्छेद सात्वतः ॥४२॥

कर्ण पर दश और वृषसेन पर सात बाण मारकर सात्वत-वंशश्रेष्ठ सात्यकि ने भी उन दोनों के हस्तावाप (हाथ के कवच) और धनुष को काट गिराया ॥४२॥

तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा शत्रुभयङ्करे ।
युयुधानमविध्येतां समन्तान्निशितैः शरैः ॥४३॥

शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाले इन दोनों वीर, कर्ण और वृषसेन ने धनुष चढ़ाकर सात्यकि को सब ओर से तीक्ष्ण बाणों द्वारा वींध डाला ॥४३॥

वर्तमाने तु संग्रामे तस्मिन्वीरवरक्षये ।
अतीव शुश्रुवे राजन्गाण्डीवस्य महास्वनः ॥४४॥

हे राजन्! वीरवरों के संहार से संयुक्त इस महायुद्ध में अर्जुनके गाण्डीव धनुष की ध्वनि बड़े जोर से सुनाई दे रही थी।

श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निःस्वनम् ।
सूतपुत्रोऽब्रवीद्राजन्दुर्योधनमिदं वचः ॥४५॥

हे राजन्! अर्जुन के रथ की ध्वनि और गाण्डीव की टङ्कार सुनकर सूत-पुत्र कर्ण ने राजा दुर्योधन से यह वचन कहा ॥४५॥

एष सर्वां चमूं हत्वा मुख्यांश्चैव नरर्षभान् ।
पौरवांश्च महेष्वासो विक्षिपन्नुत्तमं धनुः ॥४६॥
पार्थो विजयते तत्र गाण्डीवनिनदो महान् ।
श्रूयते रथघोषश्च वासवस्येव नर्दतः ॥४७॥
करोति पाण्डवो व्यक्तं कर्मौपयिकमात्मनः ।
एषा विदार्यते राजन्बहुधा भारती चमूः ॥४८॥
विप्रकीर्णान्यनेकानि नहि तिष्ठन्ति कर्हिचित् ।

हे महाराज ! राजा दुर्योधन के इतना कहने पर दुःशासन आदि तुम्हारे पुत्रों को लेकर शकुनि बड़ी भारी सेना के साथ तुम्हारे पुत्रों के हित और पाण्डवों के वध करने को चल दिया।

ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ॥६७॥
प्रयाते सौबले राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ।

हे राजन ! सुबल-पुत्र शकुनि के पाण्डवों की सेना की ओर जाते ही तुम्हारे वीर और पाण्डववीरों में घमसान युद्ध आरम्भ हो गया ॥६७॥

बलेन महता युक्तः सूतपुत्रस्तु सात्वतम् ॥६८॥
अभ्ययात्त्वरितो युद्धे किरञ्शरशतान्बहून् ।
तथैव पार्थिवाः सर्वे सात्यकिं पर्यवारयन् ॥६९॥

इधर बड़ी भारी सेना के साथ सूत-पुत्र कर्ण बहुत प्रकार से बाण-वर्षा करता हुआ, शीघ्रता के साथ सात्यकि पर झपटा। इसके साथ ही अन्य कौरवपक्ष के राजाओं ने सात्यकि को घेर लिया ॥६८-६९॥

भारद्वाजस्ततो गत्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
महद्युद्धं तदासीत्तु द्रोणस्य निशि भारत ।
धृष्टद्युम्नेन वीरेण पञ्चालैश्च सहाऽद्भुतम् ॥७०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे
सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

हे भारत ! भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य भी धृष्टद्युम्न के रथ की ओर चल दिए। आचार्य द्रोण का भी इस रात में वीरश्रेष्ठ

धृष्टद्युम्न और पञ्चालसेना के साथ अत्यन्त अद्भुत महा युद्ध होने लगा ॥७०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में सात्यकि और कर्ण आदि के घोर युद्ध के वर्णन का एक सौ सत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ इकहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच— ततस्ते प्राद्रवन्सर्वे त्वरिता युद्धदुर्मदाः ।
अमृष्यमाणाः संरब्धा युयुधानरथं प्रति ॥१॥
ते रथैः कल्पितै राजन्हेमरूप्यविभूषितैः ।
सादिभिश्च गजैश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इस समय सारे युद्धदुर्मद, शत्रु के आक्रमण को नहीं सहने वाले, आवेश में भरे हुए कौरववीर, सुवर्ण और चांदी के भूषणों से विभूषित, सुसज्जित रथी, अश्वारोही और गजारोहियों को साथ लेकर बड़े वेग से सात्यकि के रथ पर टूट पड़े। उन्होंने उस रथ को सब ओर से घेर लिया ॥२॥

अथैनं कोष्ठकीकृत्य सर्वतस्ते महारथाः ।
सिंहनादांस्ततश्चक्रुस्तर्जयन्ति स्म सात्यकिम् ॥३॥

सव्यसाची पुरोऽभ्येति द्रोणानीकाय भारत ॥५७॥

संसक्तं सात्यकिं ज्ञात्वा बहुभिः कुरुपुङ्गवैः ।

तत्र गच्छन्तु बहवः प्रवरा रथसत्तमाः ॥५८॥

यावत्पार्थो न जानाति सात्यकिं बहुभिर्वृतम् ।

हे भारत ! सव्यसाची अर्जुन, सात्यकि को बहुत से कौरव वीरों में फंसा देखकर द्रोण की सेना की ओर जाता हुआ भी इधर लौटेगा। इस समय बहुत से रथिश्रेष्ठ कौरववीर सात्यकि के घेरने को पहुँच जावें। यह सब कुछ तब तक ही हो जाना चाहिए-जब तक अर्जुन को इसका पता न लगे ॥५७-५८॥

ते त्वरध्वं तथा शूराः शराणां मोक्षणे भृशम् ॥५९॥

यथा त्विह व्रजत्येष परलोकाय माधवः ।

तथा कुरु महाराज सुनीत्या सुप्रयुक्तया ॥६०॥

अब ये सारे शूरवीर लगातार बाण छोड़ने में इतनी शीघ्रता करें-कि जिससे यह वृष्णिवंशोद्भव सात्यकि परलोक चल दे। हे महाराज ! यह सब बातें बड़ी सुप्रयुक्त नीति के साथ करनी चाहिए।

कर्णस्य मतमास्थाय पुत्रस्ते प्राह सौबलम् ।

यथेन्द्रः समरे राजन्प्राह विष्णुं यशस्विनम् ॥६१॥

हे राजन् ! कर्ण की इस सम्मति को मानकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन सुबल-पुत्र शकुनि से इस तरह कहने लगा-जैसे युद्ध में इन्द्र ने यशस्वी विष्णु से कहा था ॥६१॥

वृतः सहस्रैर्दशभिर्गजानामनिवर्तिनाम् ।
रथैश्च दशसाहस्रैस्तूर्णं याहि धनञ्जयम् ॥६२॥
दुःशासनो दुर्विषहः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तिभिर्बहुभिर्वृताः ॥६३॥

हे शकुनि ! तुम दश सहस्र युद्ध के पीछे नहीं हटने वाले, गजों और दश सहस्र रथियों की सेना लेकर झटपट अर्जुन के समीप पहुँच जाओ। दुःशासन, दुर्विषह, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण आदि महारथी बहुत से पैदल सैनिक लेकर तुम्हारे साथ जावेंगे ॥६२-६३॥

जहि कृष्णौ महाबाहो धर्मराजं च मातुल ।
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं तथैव च ॥६४॥
देवानामिव देवेन्द्रे जयाशा त्वयि मे स्थिता ।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥६५॥

हे महाबाहो ! वहां तुम उन दोनों कृष्ण और अर्जुन, नकुल, सहदेव और भीमसेन को मार लेना। जिस तरह देवता देवेन्द्र में विजय की आशा रखते हैं-उसी तरह मुझे भी तुम पर भरोसा है। हे मातुल ! तुम असुरों को स्कन्द की तरह कुन्ती-पुत्र अर्जुनादि का वध कर डालो ॥६४-६५॥

एवमुक्तो ययौ पार्थान्पुत्रेण तव सौबलः ।
महत्या सेनया सार्धं सह पुत्रैश्च ते विभो ॥६६॥
प्रियार्थं तव पुत्राणां दिधक्षुः पाण्डुनन्दनान् ।

वातेनेव समुद्धूतमभ्रजालं विदीर्यते ॥४६॥
सव्यसाचिनमासाद्य भिन्ना नौरिव सागरे ।

हे राजन् ! यह महाधनुर्धर, अर्जुन अपने उत्तम गाण्डीव धनुष द्वारा सारी सेना और मुख्य २ कौरववीरों को मार रहा है। वहां अर्जुन की विजय हो रही, क्योंकि गाण्डीव धनुष की ध्वनि बड़े जोर से सुनाई दे रही है। इसी समय पाण्डु-पुत्र अर्जुन अपने अनुरूप वीर कर्म कर रहा प्रतीत होता है। हे राजन् ! यह देखो ? कौरवसेना किस तरह विदीर्ण हो रही है । अनेक वीर बिखर रहे हैं और कोई ठहरता दिखाई नहीं दे रहा है। वायु से उड़ाये हुए अभ्रजाल की तरह सेना बिखरी जा रही है। हे राजन् ! सव्य-साची अर्जुन को युद्ध में पाकर ये इस तरह चकरा रहे हैं, जैसे छिद्र वाली नौका समुद्र में चकराती है ॥४६-४६॥

द्रवतां योधमुख्यानां गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥५०॥
विद्धानां शतशो राजञ्श्रूयते निःस्वनो महान् ।

हे राजन् ! गाण्डीव के बाणों से बिंधे हुए और भागते हुए, उत्तम वीरों का यह महान् कोलाहल सुनाई दे रहा है ॥५०॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषमर्जुनस्य रथं प्रति ॥५१॥
निशीथे राजशार्दूल स्तनयित्नोरिवाम्बरे ।

हे राजशार्दूल ! तुम इस आधी रात में अर्जुन के रथ के समीप दुन्दुभी की ध्वनि सुनो, जो आकाश में मेघ की गर्जना सी प्रतीत होती है ॥५१॥

हाहाकाररवांश्चैव सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥५२॥
शृणु शब्दान्बहुविधानर्जुनस्य रथं प्रति ।

हे नृपते ! अर्जुन के रथ के समीप ही महान् हाहाकार और अनेक प्रकार के सिंहनादों को भी तुम सुन रहे होगे ॥५२॥

अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं सात्यकिः सात्वतां वरः ५३
इह चेल्लभ्यते लक्ष्यं कृत्स्नाञ्जेष्यामहे परान् ।

इधर सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि हमारे बीच में स्थित है, यदि इसके शरीर में बाण पार हो जावे-तो मैं आगे बढ़कर सारे शत्रुओं को जीत लूँ ॥५३॥

एष पाञ्चालराजस्य पुत्रो द्रोणेन सङ्गतः ॥५४॥
सर्वतः संवृतो योधैः शूरैश्च रथसत्तमैः ।
सात्यकिं यदि हन्याम धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥५५॥
असंशयं महाराज ध्रुवो नो विजयो भवेत् ।

हे महाराज ! दूसरी ओर द्रोणाचार्य से युद्ध करता हुआ द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न बड़े महारथी, शूरवीर योद्धाओं से घिर गया है। यदि हमने सात्यकि और पर्वतकुमार धृष्टद्युम्न को मार लिया, तो हमारा अवश्य विजय हो जावेगा ॥५४-५५॥

सौभद्रवदिमौ वीरौ परिवार्य महारथौ ॥५६॥
प्रयतामो महाराज निहन्तुं वृष्णिपार्षतौ ।

हे महाराज ! सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु की भांति इन दोनों वीर, वृष्णि और पर्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि और धृष्टद्युम्न को घेर कर मारने का हम लोग प्रयत्न करें ॥५६॥

अब महारथी कौरवों ने सात्यकि को सब ओर से मण्डल में घेर कर सिंहनाद करना आरम्भ किया। वे सब तरह से सात्यकि को ललकारने या भयभीत करने लगे ॥३॥

तेऽभ्यवर्षञ्छरैस्तीक्ष्णैः सात्यकिं सत्यविक्रमम्।
त्वरमाणा महावीरा माधवस्य वधैषिणः ॥४॥

वृष्णिवंशोद्भव, सात्यकि के मार लेने के अभिलाषी, महावीर कौरव, सत्यपराक्रमी सात्यकि पर बड़े वेग से तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे ॥४॥

तान्दृष्ट्वाऽऽपततस्तूर्णं शैनेयः परवीरहा।
प्रत्यगृह्णान्महाबाहुः प्रमुञ्चन्विशिखान्बहून् ॥५॥

शत्रुवीरनाशक शिनि-पौत्र, महाबाहु सात्यकि ने जब उन कौरव वीरों को अपने ऊपर झपटते देखा, तो वह भी बहुत से बाण छोड़ता हुआ उनका मुकाबिला करने में जुट गया ॥५॥

तत्र वीरो महेष्वासः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः।
निचकर्त शिरांस्युग्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥६॥

युद्ध में मदोन्मत्त महाधनुर्धर वीरश्रेष्ठ सात्यकि ने अपने नतपर्ववाले उग्र बाणों से उनके शिर काट लिए ॥६॥

हस्तिहस्तान्हयग्रीवा बाहूनपि च सायुधान्।
क्षुरप्रैः शातयामास तावकानां स माधवः ॥७॥

वह वृष्णिवंशश्रेष्ठ, सात्यकि ने तुम्हारे पक्ष के हाथियों की सूंड़, अश्वों की ग्रीवा और आयुध सहित वीरों की भुजाएँ क्षुर के सदृश तीक्ष्ण बाणों से काट २ कर रणभूमि में बिछा दी ॥७॥

पतितैश्चामरैश्चैव श्वेतच्छत्रैश्च भारत ।

बभूव धरणी पूर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिव प्रभो ॥८॥

हे भारत ! गिरे हुए चँवर और श्वेत छत्रों से परिपूर्ण रणभूमि इस तरह की दिखाई देने लगी, जैसे द्युलोक, नक्षत्रों से व्याप्त दिखाई देता है ॥८॥

एतेषां युयुधानेन युध्यतां युधि भारत ।

बभूव तुमुलः शब्दः प्रेतानां क्रन्दतामिव ॥९॥

हे प्रभो ! इन कौरववीरों का रणाङ्गण में सात्यकि के साथ युद्ध करते हुए इतना विकराल शब्द होने लगा, जैसे प्रेतगण चीत्कार कर रहे हों ॥९॥

तेन शब्देन महता पूरिताऽभूद्वसुन्धरा ।

रात्रिः समभवच्चैव तीव्ररूपा भयावहा ॥१०॥

इस महान् शब्द से पृथिवी भर गई, जिससे रात बड़ी तीव्र और भयानक दिखाई देने लगी॥१०॥

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा युयुधानशराहतम् ।

श्रुत्वा च विपुलं नादं निशीथे लोमहर्षणे ॥११॥

सुतस्तवाऽब्रवीद्राजन्सारथिं रथिनां वरः ।

यत्रैष शब्दस्तत्राऽश्वांश्चोदयेति पुनः पुनः ॥१२॥

हे राजन् ! सात्यकि के बाण से आहत हुई सेना को भागती हुई देखकर और लोमों को खड़े कर देने वाली आधी रात में उनका

विपुल आर्तनाद सुनकर रथियों में श्रेष्ठ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन अपने सारथि से वार २ कहने लगा—हे सारथे ! तुम मेरे रथ को उसी स्थान पर ले चलो-जहां यह चीत्कार हो रहा है ॥१२॥

तेन सञ्चोद्यमानस्तु ततस्तांस्तुरगोत्तमान् ।
सूतः सञ्चोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥१३॥

जब राजा दुर्योधन ने बहुत प्रेरणा की, तो सारथि ने अपने उत्तम अश्वों को सात्यकि के रथ की ओर दौड़ाया ॥१३॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः ।
शीघ्रहस्तश्चित्रयोधी युयुधानमुपाद्रवत ॥१४॥

इसके बाद दृढ़ धनुषधारी, श्रमहीन, क्रोधातुर, राजा दुर्योधन बड़े वेग से सात्यकि पर झपटा । राजा दुर्योधन बड़े ही अद्भुत ढंग से युद्ध करने वाले विचित्र लड़ाकू थे ॥१४॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः शोणितभोजनैः ।
दुर्योधनं द्वादशभिर्माधवः प्रत्यविध्यत ॥१५॥

अब वृष्णिवंशश्रेष्ठ सात्यकि ने अपनी पूर्ण शक्ति से खैंचे हुए रक्त के चाट जाने वाले बारह बाण राजा दुर्योधन पर छोड़े ॥१५॥

दुर्योधनस्तेन तथा पूर्वमेवार्दितः शरैः ।
शैनेयं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदमर्षितः ॥१६॥

राजा दुर्योधन तो इस समय और इससे पूर्व भी सात्यकि के बाणों से व्याकुल थे, तो भी उसने क्रोध में भर कर दश बाणों द्वारा शिनि-पौत्र सात्यकि को बींध लिया ॥१६॥

ततः समभवद्युद्धं तुमुलं भरतर्षभ ।
पञ्चालानां च सर्वेषां भरतानां च दारुणम् ॥१७॥

हे भरतर्षभ ! इस समय सारे पाञ्चाल और कौरवों का बड़ा दारुण घमसान युद्ध होने लगा ॥१७॥

शैनेयस्तु रणे क्रुद्धस्तत्र पुत्रं महारथम् ।
सायकानामशीत्या तु विव्याधोरसि भारत ॥१८॥
ततोऽस्य वाहान्समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
सारथिं च रथात्तूर्णं पातयामास पत्त्रिणा ॥१९॥

हे भारत ! अब शिनि-पौत्र सात्यकि, तुम्हारे पुत्र महारथी राजा दुर्योधन पर कुपित हो गए। सात्यकि ने अस्सी बाण छोड़कर रण में उनकी छाती में घाव कर दिया । इसके अनन्तर इनके वाहनों को भी अपने बाणों से यमराज के घर भेज दिया और एक बाण से ही बड़ी शीघ्रता से उसके सारथि को भी मार गिराया ॥१८-१९॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन्पुत्रस्तव विशाम्पते ।
मुमोच निशितान्बाणाञ्शैनेयस्य रथं प्रति ॥२०॥

हे विशाम्पते ! अश्वों के मारे जाने पर भी उसी रथ में तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन बैठे रहे और वहीं से शिनि-पौत्र सात्यकि के रथ के ऊपर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगे ॥२०॥

शरान्पञ्चशतांस्तांस्तु शैनेयः कृतहस्तवत् ।
चिच्छेद समरे राजन्प्रेषितांस्तनयेन ते ॥२१॥

हे राजन् ! शिनि-पौत्र सात्यकि हाथ के चलाने में बड़ा फुर्तीला था; उसने तुम्हारे पुत्र के छोड़े हुए युद्ध में पांच सौ बाणों को रण में काट २ कर गिरा दिया ॥२१॥

अथाऽपरेण भल्लेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ।
चिच्छेद तरसा युद्धे तत्र पुत्रस्य माधवः ॥२२॥

इसके बाद दूसरे भल्ल नामक बाण से तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के महाधनुष को युद्ध में सात्वतवीर सात्यकि ने मुट्ठी के समीप से वेग के साथ काट गिराया ॥२२॥

विरथो विधनुष्कश्च सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥२३॥

इस समय सारे संसार का स्वामी शक्तिशाली दुर्योधन रथ और धनुष से हीन था । वह बड़ी शीघ्रता से दौड़कर कृतवर्मा के चमकीले रथ पर जा चढ़ा ॥२३॥

दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव वाहिनीम् ।
द्रावयामास विशिखैर्निशामध्ये विशाम्पते ॥२४॥

हे विशाम्पते ! जब राजा दुर्योधन युद्ध से पराङ्मुख हो गया, तो सात्यकि ने तुम्हारे पुत्र की सेना को इस रात में बाणों से मार-२ कर भगाना आरम्भ किया ॥२४॥

शकुनिश्चार्जुनं राजन्परिवार्य समन्ततः ।
रथैरनेकसाहस्रैर्गजैश्चाऽपि सहस्रशः ॥२५॥
तथा हयसहस्रैश्च नानाशस्त्रैरवाकिरत् ।

हे राजन्! गान्धारराज शकुनि ने भी कई सहस्र रथ, कई सहस्र हाथी और कई सहस्र अश्व लेकर तथा सब ओर से अर्जुन को घेर कर उस पर अनेक प्रकार के शस्त्रों की झड़ी बांध दी।

ते महास्त्राणि सर्वाणि विकिरन्तोऽर्जुनं प्रति ॥२६॥
अर्जुनं योधयन्ति स्म क्षत्रियाः कालचोदिताः ।

इन बड़े २ सारे अस्त्रों को अर्जुन पर फैंकते हुए काल प्रेरित क्षत्रिय वीर, अर्जुन से युद्ध करने लगे ॥२६॥

तान्यर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ॥२७॥
प्रत्यवारयदायस्तः प्रकुर्वन्विपुलं क्षयम् ।

बड़ी भारी व्यग्रता में तल्लीन हुए अर्जुन ने इन सहस्रों रथ, हाथी और अश्वों का महान् विध्वंस करते हुए उनको वहीं रोक दिया ॥२७॥

ततस्तु समरे शूरः शकुनिः सौबलस्तदा ॥२८॥
विव्याध निशितैर्बाणैरर्जुनं प्रहसन्निव ।
पुनश्चैव शतेनाऽस्य संरोध महारथम् ॥२९॥

अब सुबल-पुत्र शूरवीर शकुनि ने हंसते २ तीक्ष्ण बाण मार कर अर्जुन को घायल कर दिया और सौ बाण मार कर अर्जुन को आगे बढ़ने से रोक दिया ॥२८-२९॥

तमर्जुनस्तु विंशत्या विव्याध युधि भारत ।
अथेतरान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ॥३०॥

हे भारत ! अब अर्जुन ने भी युद्ध में बीस बाण छोड़े तथा अन्य महाधनुर्धरों को तीन २ बाण मार कर घायल किया ॥२०॥

निवार्य तान्बाणगणैर्युधि राजन्धनञ्जयः ।
जघान तावकान्योधान्वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥२१॥

हे राजन् ! धनञ्जय अर्जुन अपने बाणजाल से रण में इन वीरों को रोक कर तुम्हारे वीरों को इस तरह मारने लगा, जैसे वज्रपाणि इन्द्र, असुरों को मार २ कर बिछा देता है ॥२१॥

भुजैश्छिन्नैर्महीपाल हस्तिहस्तोपमैर्मृधे ।
समाकीर्णा मही भाति पञ्चास्यैरिव पन्नगैः ॥२२॥

हे महीपाल ! हाथी की सूंड के सदृश कटी हुई भुजाओं से परिपूर्ण भूमि इस तरह सुशोभित होने लगी जैसे, पांच मुख वाले सर्पों से भरी पड़ी हो ॥२२॥

शिरोभिः सकिरीटैश्च सुनसैश्चारुकुण्डलैः ।
सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रुद्धैस्तथैवोद्वृत्तलोचनैः ॥२३॥
निष्कचूडामणिधरैः क्षत्रियाणां प्रियंवदैः ।
पङ्कजैरिव विन्यस्तैः पर्वतैर्विबभौ मही ॥२४॥

मुकुट सहित सुन्दर नासिका वाले, सुचारु कुण्डलों से सुशोभित, ओष्ठ पुट क्रोध से दाबे हुए, क्रोधातुर होने से आंखें निकाले हुए, कण्ठ-सूत्र और चूड़ामणिधारी, प्रियभाषी क्षत्रियों के मस्तकों से रणभूमि इस तरह की दिखाई देती थी, जैसे बिखरे हुए कमलों से पर्वत सुशोभित हो रहे हों ॥२३-२४॥

कृत्वा तत्कर्म बीभत्सुरुग्रमुग्रपराक्रमः ।

विव्याध शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥२५॥

उग्र पराक्रमी, अर्जुन ने इस उग्र वीरकर्म को करके फिर पांच नतपर्व वाले बाण छोड़कर शकुनि को क्षत-विक्षत कर दिया।

अताडयदुलूकं च त्रिभिरेव तथा शरैः ।

उलूकस्तु तथा विद्धो वासुदेवमताडयत् ॥२६॥

ननाद च महानादं पूरयन्निव मेदिनीम् ।

अर्जुन ने तीन बाण शकुनि-पुत्र उलूक के शरीर में मारे। इस प्रहार से झल्ला कर उलूक ने वसुदेव-पुत्र कृष्ण पर बाण का प्रहार किया और पृथिवी को पूर्ण करते हुए महान् आघोष से पृथिवी को परिपूर्ण कर दिया ॥२६॥

अर्जुनः शकुनेश्चापं सायकैश्छिन्नद्रणे ॥२७॥

निन्ये च चतुरो वाहान्यमस्य सदनं प्रति ।

हे राजन्! अर्जुन ने इस रण में अपने बाणों से शकुनि का धनुष काट गिराया और उसके चारों अश्वों को यमराज के घर का अतिथि बनाया ॥२७॥

ततो रथादवप्लुत्य सौबलो भरतर्षभ ॥२८॥

उलूकस्य रथं तूर्णमारुरोह विशाम्पते ।

हे भरतर्षभ! विशाम्पते! अब सुबल-पुत्र शकुनि रथ से कूद कर बड़ी शीघ्रता से अपने पुत्र उलूक के रथ पर चढ़ गया ॥२८॥

तावेकरथमारूढौ पितापुत्रौ महारथौ ॥३९॥
पार्थं सिषिचतुर्बाणैर्गिरिं मेघाविवाऽम्बुभिः ।

अब दोनों महारथी पिता पुत्र शकुनि और उलूक एक रथ पर बैठ गए और वे बाणों से अर्जुन को इस तरह पाटने लगे, जैसे-जल धारा से मेघ, पर्वत को आच्छादित कर लेते हैं ॥३९॥

तौ तु विध्वा महाराज पाण्डवो निशितैः शरैः ॥४०॥
विद्रावयंस्तव चमूं शतशो व्यधमच्छरैः ।

हे महाराज ! एक ही पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने बहुत से वीरों को बींध लिया और सैंकड़ों की संख्या में बाण छोड़ कर तुम्हारी सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥४०॥

अनिलेन यथाऽभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ॥४१॥
विच्छिन्नानि तथा राजन्बलान्यासन्विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! जैसे-वायु से इधर उधर सब ओर बादल बिखर जाते हैं, उसी तरह तुम्हारी सेना के वीर इधर उधर बिखर गए ॥४१॥

तद्बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं तदा निशि ॥४२॥
प्रदुद्राव दिशः सर्वा वीक्षमाणं भयार्दितम् ।

हे भरतश्रेष्ठ ! उस रात्रि में ताड़ित की हुई तुम्हारी सेना भयातुर होकर पीछे को देखती हुई सारी दिशाओं को भाग गई ।

उत्सृज्य वाहान्समरे चोदयन्तस्तथाऽपरे ॥४३॥
सम्भ्रान्ताः पर्यधावन्त तस्मिंस्तमसि दारुणम् ।

हे राजन् ! कोई वीर तो अपने वाहनों को छोड़कर और कोई रणाङ्गण की ओर उनको चला कर उस घोर अन्धकार में बड़ी सम्भ्रान्ति के साथ दौड़ने लगे ॥४३॥

विजित्य समरे योधांस्तावकान्भरतर्षभ ।४४।।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ ।

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे योद्धाओं को जीतकर रण में श्रीकृष्ण और अर्जुन ने प्रसन्नतापूर्वक अपने २ शङ्ख बजाए ।।४४।।

धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणं विध्वा त्रिभिः शरैः ।।४५।।
चिच्छेद धनुषस्तूर्णं ज्यां शरेण शितेन ह ।

हे महाराज ! धृष्टद्युम्न ने आचार्य द्रोण को तीन बाणों से बींधकर उसके धनुष और उसकी प्रत्यञ्चा को अपने तीक्ष्ण बाण से काट गिराया ।।४५।।

तन्निधाय धनुर्भूमौ द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।।४६।।
आददेऽन्यद्धनुः शूरो वेगवत्सारवत्तरम् ।

क्षत्रियनाशक शूरवीर द्रोण ने उस धनुष को भूमि में रख दिया और बड़ा वेगशाली युद्ध में शक्ति दिखाने वाला दूसरा धनुष उठाया ।।४६।।

धृष्टद्युम्नं ततो द्रोणो विध्वा सप्तभिराशुगैः ।।४७।।
सारथिं पञ्चभिर्बाणै राजन्विव्याध संयुगे ।

हे राजन् ! आचार्य द्रोण ने आशुगामी सात बाण मारकर धृष्टद्युम्न को और पांच बाण छोड़कर रण में उसके सारथि को बींध दिया ।।४७।।

तं निवार्य शरैस्तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥४८॥
व्यधमत्कौरवीं सेनामासुरीं मघवानिव ।

महारथी धृष्टद्युम्न ने अपने बाणों से झटपट कौरवसेना को इस तरह मारना आरम्भ किया, जैसे इन्द्र, आसुरी सेना को मार गिराता है ॥४८॥

वध्यमाने बले तस्मिंस्तव पुत्रस्य मारिष ॥४९॥
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।

हे आर्य ! तुम्हारे पुत्र की सेना के इस ढंग से मारे जाने पर रक्त के प्रवाह से परिपूर्ण, घोर नदी वह निकली ॥४९॥

उभयोः सेनयोर्मध्ये नराश्वद्विपवाहिनी ॥५०॥
यथा वैतरणी राजन्यमराजपुरं प्रति ।

हे राजन् ! यमराज पुरी को गमन करते समय जैसे वैतरणी नदी बीच में आती है, उसी तरह दोनों सेनाओं के मध्य में नर, अश्व और गजों की सेना दिखाई देने लगी ॥५०॥

द्रावयित्वा तु तत्सैन्यं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ५१॥
अभ्यराजत तेजस्वी शक्रो देवगणेष्विव ।

महाप्रतापी और तेजस्वी धृष्टद्युम्न, कौरवों की सेना को नष्ट भ्रष्ट करके इस तरह सुशोभित हुए, जैसे देवगणों में इन्द्र सुशोभित होते हैं ॥५१॥

अथ दध्मुर्महाशङ्खान्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥५२॥
यमौ च युयुधानश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।

अब धृष्टद्युम्न और शिखण्डी, नकुल और सहदेव, सात्यकि और पाण्डु-पुत्र भीम ने अपने २ महाशङ्ख बजाए ॥५२॥

जित्वा रथसहस्राणि तावकानां महारथाः ॥५३॥

सिंहनादरवांश्चक्रुः पाण्डवा जितकाशिनः ।

पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च रणोत्कटाः ।

तथा द्रोणस्य शूरस्य द्रौणेश्चैव विशाम्पते ॥५४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

हे विशाम्पते ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन, कर्ण, शूरवीर द्रोण और अश्वत्थामा के देखते २ तुम्हारे सहस्रों रथियों को जीत कर महारथी, विजय की आशा वाले पाण्डव, रण में उद्धत होकर सिंहनाद करने लगे ॥५३-५४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में अर्जुन और शकुनि आदि के युद्ध का एक सौ इकहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ बहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः ।

क्रोधेन महताऽऽविष्टः पुत्रस्तव विशाम्पते ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे विशाम्पते ! अपनी सेना को भागती हुई और पाण्डव वीरों से मारी जाती हुई देखकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन अत्यन्त क्रोध में भर गया ॥१॥

अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणं च जयतां वरम् ।

अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीत् ॥२॥

यह एकदम विजयशील, द्रोणाचार्य और राजा कर्ण के पास पहुंचा। क्रोध और आवेश में भरा हुआ तथा बोलने के ढंग का जानने वाला दुर्योधन, उनसे यह वचन बोला ॥२॥

भवद्भ्यामिह संग्रामः क्रुद्धाभ्यां सम्प्रवर्तितः ।

आहवे निहतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना ॥३॥

निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीम् ।

भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः ॥४॥

हे वीरो ! संग्राम में तुम लोगों ने सव्यसाची अर्जुन द्वारा सिन्धुराज जयद्रथ के मारे जाने पर क्रोध में भर कर यह युद्ध जारी रखा था। अब तुम पाण्डवों की सेना द्वारा मेरी सेना का विनाश देखकर भी ऐसे चुपचाप देख रहे हो, जैसे कुछ शक्ति ही

नहीं रखते हो, यद्यपि तुम लोग, पाण्डवों की सेना के जीतने में समर्थ हो ॥३-४॥

यद्यहं भवतोस्त्याज्यो न वाच्योऽस्मि तदैव हि ।
आवां पाण्डुसुतान्संख्ये जेष्याव इति मानदौ ॥५॥

हे मान देने वाले ! यदि तुम लोग ऐसी गम्भीर परिस्थिति में मेरा त्याग करना उचित समझते थे-तो तुमको पहिले यह नहीं कहना चाहिए था, कि हम पाण्डवों को रण में जीत लेंगे ॥५॥

तदैवाऽहं वचः श्रुत्वा भवद्भ्यामनुसम्मतम् ।
नाऽकरिष्यमिदं पार्थैर्वैरं योधविनाशनम् ॥६॥

मैं उसी समय तुम लोगों के आन्तरिक विचार से युक्त वचन सुनकर चुप हो जाता और योद्धाओं के वृथा नाश कारी इस संग्राम का नाम भी न लेता और न पाण्डवों से वैर रखता ॥६॥

यदि नाऽहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ ।
युध्यतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ ॥७॥

यदि तुम पुरुषप्रवीर मुझे छोड़ नहीं रहे हो-तो तुम लोग अपने पराक्रम के अनुरूप युद्ध कर दिखाओ, क्योंकि तुम लोग बड़े पराक्रमी हो ॥७॥

वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते ।
प्रावर्तयेतां संग्रामं घट्टिताविव पन्नगौ ॥८॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र की वाणी के प्रतोद (चाबुक) से अत्यन्त व्याकुल हुए द्रोण और कर्ण ने फिर इस तरह संग्राम छेड़ दिया, जैसे छेड़ा हुआ सर्प भीषण हो उठा हो ॥८॥

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।

शैनेयप्रमुखान्पार्थानभिदुद्रुवतू रणे ॥९॥

अब सब संसार में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर, महारथी द्रोणाचार्य और कर्ण, सात्यकि आदि पाण्डववीरों पर रण में बुरी तरह टूट पड़े।

तथैव सहिताः पार्थाः सर्वसैन्येन संवृताः ।

अभ्यवर्तन्त तौ वीरौ नर्दमानौ मुहुर्मुहुः ॥१०॥

इसी तरह पाण्डववीर भी अपनी २ सेना के साथ बार २ गर्जना करते हुए कौरवों पर आक्रमण करने लगे ॥१०॥

अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिः शिनिपुङ्गवम् ।

अविध्यत्त्वरितं क्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥११॥

अब महाधनुर्धर सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने क्रोध में भर कर वेग के साथ शिनिवंशश्रेष्ठ सात्यकि पर दश बाणों का प्रहार किया ॥११॥

कर्णश्च दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तव सप्तभिः ।

दशभिर्वृषसेनश्च सौबलश्चाऽपि सप्तभिः ॥१२॥

एते कौरवसंक्रन्दे शैनेयं पर्यवाकिरन् ।

हे राजन् ! इस कौरवों के घोर आक्रमण के समय कर्ण ने दश, तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने सात, वृषसेन ने भी दश और शकुनि ने सात बाणों से सात्यकि को आच्छादित कर दिया ॥१२॥

दृष्ट्वा च समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवीं चमूम् ॥१३॥
विव्यधुः सोमकास्तूर्णं समन्ताच्छरवृष्टिभिः ।

जब सोमकवीरों ने आचार्य द्रोण को इस तरह पाण्डव सेना का विध्वंस उड़ाते देखा, तो वे बड़े वेग से बाणों की झड़ी लगाते हुए द्रोणाचार्य को बींधने लगे ॥१३॥

तत्र द्रोणोऽहरत्प्राणान्क्षत्रियाणां विशाम्पते ॥१४॥
रश्मिभिर्भास्करो राजंस्तमांसीव समन्ततः ।

हे विशाम्पते ! इस समय द्रोण ने भी क्षत्रियवीरों के प्राणों का इस तरह अपहरण करना आरम्भ किया, जैसे-सूर्य अपनी किरणों से सब ओर के अन्धकार का नाश कर देता है ॥१४॥

द्रोणेन वध्यमानानां पञ्चालानां विशाम्पते ॥१५॥
शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरम् ।

हे विशाम्पते ! जब द्रोणाचार्य ने पाञ्चालवीरों का इस तरह वध किया-तो वे एक दूसरे को सहायता के लिये चिल्लाने लगे, इससे रणाङ्गण में महाघोर आर्तनाद की उत्पत्ति हो गई ॥१५॥

पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄनन्ये च मातुलान् ॥१६॥
भागिनेयान्वयस्यांश्च तथा सम्बन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति त्वरिता जीवितेप्सवः ॥१७॥

कोई अपने पुत्र, कोई पिता, कोई भ्राता, मातुल, भानजे, मित्रों तथा अन्य सम्बन्धी बान्धवों को छोड़कर अपने २ जीवन बचाने की चिन्ता में वेग से भाग रहे थे ॥१६-१७॥

अपरे मोहिता मोहात्तमेवाऽभिमुखा ययुः ।
पाण्डवानां रणे योधाः परलोकं गताः परे ॥१८॥

कुछ लोग भूल भाल कर उसी ओर भागने लगे, जिधर द्रोणाचार्य युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार पाण्डवों के बहुत से योद्धा परलोक पहुंच गए ॥१८॥

सा तथा पाण्डवी सेना पीड्यमाना महात्मना ।
निशि सम्प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥१९॥
पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याऽच्युतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥२०॥

हे राजन्! इस महावीर द्रोण द्वारा पीड़ित की हुई पाण्डव सेना के सहस्रों वीर, उल्का (मशाल) फैंक २ कर रात में भाग निकले। इस सारी घटना को भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, नकुल, सहदेव, धर्मराज और धृष्टद्युम्न खड़े २ देख रहे थे ॥१९-२०॥

तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन ।
कौरवाणां प्रकाशेन दृश्यन्ते विद्रुताः परे ॥२१॥

इस समय अन्धकार से व्याप्त होने पर कुछ भी दिखाई नहीं देता था। कहीं २ कौरवों की मशालों के प्रकाश से भागते हुए पाण्डव-सैनिक दृष्टि में आ जाते थे ॥२१॥

द्रवमाणं तु तत्सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ ।
जघ्नतुः पृष्ठतो राजन्किरन्तौ सायकान्बहून् ॥२२॥

हे राजन्! महारथी द्रोणाचार्य और राजा कर्ण, भागती हुई पाण्डव-सेना को देखकर अपने बहुत से बाण छोड़ २ कर उनका पीछे से वध करने लगे ॥२२॥

पञ्चालेषु प्रभग्नेषु क्षीयमाणेषु सर्वतः ।
जनार्दनो दीनमनाः प्रत्यभाषत फाल्गुनम् ॥२३॥

जब पाञ्चालवीर भाग गए और सब ओर से क्षीण हो गए-तो उदास होकर श्रीकृष्ण, अर्जुन से कहने लगे ॥२३॥

द्रोणकर्णौ महेष्वासावेतौ पार्षतसात्यकी ।
पञ्चालांश्चैव सहितौ जघ्नतुः सायकैर्भृशम् ॥२४॥

हे अर्जुन! ये दोनों महाधनुर्धर, आचार्य द्रोण और महारथी कर्ण, धृष्टद्युम्न और सात्यकि तथा पञ्चालों को एक साथ बाण-वर्षा करके कितना अधिक क्षत-विक्षत कर रहे हैं ॥२४॥

एतयोः शरवर्षेण प्रभग्ना नो महारथाः ।
वार्यमाणाऽपि कौन्तेय पृतना नाऽवतिष्ठते ॥२५॥

हे कौन्तेय! इन दोनों महारथियों की बाण-वर्षा से हमारे सारे महारथी भाग निकले और बहुत प्रयत्न के साथ रोकी हुई सेना भी ठहरती नहीं थी ॥२५॥

तां तु विद्रुवतीं दृष्ट्वा ऊचतुः केशवार्जुनौ ।
मा विद्रवत वित्रस्ता भयं त्यजत पाण्डवाः ॥२६॥

अपनी सेना को भागती देखकर फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने कहा—हे पाण्डववीरो! तुम भयभीत होकर भागो मत, अपने भय को छोड़ दो ॥२६॥

तावावां सर्वसैन्यैश्च व्यूहैः सम्यगुदायुधैः ।
द्रोणं च सूतपुत्रं च प्रयताव: प्रबाधितुम् ॥२७॥

हम लोग अपनी शस्त्रधारिणी सेना को संगठित करके अभी सूत-पुत्र कर्ण और द्रोणाचार्य के व्यथित करने का उपाय करते हैं।

एतौ हि बलिनौ शूरौ कृतास्त्रौ जितकाशिनौ ।
उपेक्षितौ तव बलैर्नाशयेतां निशामिमाम् ॥२८॥
तयोः संवदतोरेवं भीमकर्मा महाबलः ।
आयाद्वृकोदरः शीघ्रं पुनरावर्त्य वाहिनीम् ॥२९॥

ये दोनों कर्ण और द्रोणाचार्य, बड़े बली, शूरवीर, अस्त्रविद्या में कुशल और विजयी होने का साहस रखते हैं। यदि इनकी उपेक्षा की गई, तो ये तुम्हारी सेना का इसी रात में नाश कर देंगे। ये दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन इस तरह बातें कर रहे थे, कि इसी समय महाबली भयानक वीर-कर्म करने में समर्थ, भीमसेन, लौट कर फिर अपनी सेना में पहुंचे ॥२९॥

वृकोदरमथाऽऽयान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः ।
पुनरेवाऽब्रवीद्राजन्हर्षयन्निव पाण्डवम् ॥३०॥

हे राजन! अब जनार्दन कृष्ण ने वृकोदर भीम को अपनी ओर आता देखा-तो पाण्डु-पुत्र अर्जुन को हर्षित करते हुए फिर इस प्रकार कहने लगे ॥३०॥

एष भीमो रणश्लाघी वृतः सोमकपाण्डवैः ।
अभ्यवर्त्तत वेगेन द्रोणकर्णौ महारथौ ॥३१॥

हे अर्जुन ! यह देखो ? रण में प्रशंसा के योग्य, भीमसेन, सोमक और पाण्डव सैनिकवीरों को साथ लिए हुए बड़े वेग से महारथी द्रोण और कर्ण पर आक्रमण करने को आगे बढ़ रहा है ॥३१॥

एतेन सहितौ युध्य पञ्चालैश्च महारथैः ।
आश्वासनार्थं सैन्यानां सर्वेषां पाण्डुनन्दन ॥३२॥

हे पाण्डु-नन्दन ! अब तुम सारी सेना के आश्वासन के निमित्त भीमसेन और पञ्चालदेशोत्पन्न इन महारथियों को साथ लेकर युद्ध में तत्पर हो जाओ ॥३२॥

ततस्तौ पुरुषव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ।
द्रोणकर्णौ समासाद्य धिष्ठितौ रणमूर्धनि ॥३३॥

हे राजन ! इसके अनन्तर वृष्णिवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और पाण्डु-पुत्र अर्जुन-ये दोनों पुरुषप्रवीर, द्रोण और कर्ण का मुकाबिला करने को रण में स्थित हुए ॥३३॥

सञ्जय उवाच— ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
ततो द्रोणश्च कर्णश्च परान्ममृदतुर्युधि ॥३४॥

सञ्जय बोले—हे जनाधिप ! अब फिर राजा युधिष्ठिर की विशाल सेना लौट आई । अब कर्ण और द्रोण भी युद्ध में इस सेना का फिर विध्वंस उड़ाने लगे ॥३४॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो निशि प्रत्यभवन्महान् ।
यथा सागरयो राजंश्चन्द्रोदयविवृद्धयोः ॥३५॥

हे राजन्! इस रात में दोनों सेनाओं की टक्कर बड़ी ही भयङ्कर हो गई, जैसे-चन्द्रोदय से बढ़े हुए दो समुद्र आपस में टकरा रहे हों ॥३५॥

तत उत्सृज्य पाणिभ्यां प्रदीपांस्तव वाहिनी ।
युयुधे पाण्डवैः सार्धमुन्मत्तवदसंकुला ॥३६॥

हे नृपते! अब तुम्हारी सेना, अपने हाथों में से दीपक फेंक फांक कर पाण्डवों के साथ उन्मत्त की तरह फैलकर भिड़ पड़ी।

रजसा तमसा चैव संवृते भृशदारुणे ।
केवलं नामगोत्रेण प्रायुध्यन्त जयैषिणः ॥३७॥

रज और अन्धकार से रणभूमि के व्याप्त हो जाने पर वह बड़ी ही भयङ्कर हो गई। विजयाभिलाषी वीर केवल नाम और गोत्र के उच्चारण से युद्ध करते हुए दिखाई दे रहे थे ॥३७॥

अश्रूयन्त हि नामानि श्राव्यमाणानि पार्थिवैः ।
प्रहरद्भिर्महाराज स्वयंवर इवाऽऽहवे ॥३८॥

हे महाराज! इस महायुद्ध में प्रहार-परायण राजाओं द्वारा अपने २ नाम इस तरह सुनाये जाने लगे, जैसे कोई स्वयम्वर में सुना रहा हो ॥३८॥

निःशब्दमासीत्सहसा पुनः शब्दो महानभूत् ।
क्रुद्धानां युध्यमानानां जीयतां जयतामपि ॥३९॥

एक वार तो रणाङ्गण शब्द हीन हो गया था-अब फिर उसमें जीते जाने वाले वीरों का आर्तनाद और क्रोध में भरे हुए विजयी वीरों के सिंहनाद से अत्यन्त कोलाहल होने लगा ॥३९॥

यत्र यत्र स्म दृश्यन्ते प्रदीपाः कुरुसत्तम ।

तत्र तत्र स्म शूरास्ते निपतन्ति पतङ्गवत् ॥४०॥

हे कुरुसत्तम ! जहां २ पर प्रदीप दिखाई देते थे, वहीं पर शूरवीर पतङ्ग की तरह जा टूटते थे ॥४०॥

तथा संयुध्यमानानां विगाढाऽऽसीन्महानिशा ।

पाण्डवानां च राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥

हे राजेन्द्र ! पाण्डव और कौरववीरों के सब ओर घमसान युद्ध के छेड़ देने पर यह महानिशा अत्यन्त भयङ्कर दिखाई देने लगी ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में कर्ण और द्रोणाचार्य के घोर युद्ध करने के वर्णन का एक सौ बहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ तेहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच— ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा।
आजघ्नोरसि शरैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ! शत्रुवीरनाशक, कर्ण ने रण में पर्षतवंशोद्भव, धृष्टद्युम्न को देखकर दश मर्मभेदी बाणों से उसके वक्षःस्थल में प्रहार किया ॥१॥

प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष।
दशभिः सायकैर्हृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥२॥

हे आर्य! महारथी धृष्टद्युम्न ने भी बड़ी प्रसन्नता के साथ दश बाणों से कर्ण को बाधित किया और तनिक ठहर? ठहर? इस प्रकार वचन कहा ॥२॥

तावन्योन्यं शरैः संख्ये सञ्छाद्य सुमहारथौ।
पुनः पूर्णायतोत्सृष्टैर्विव्यधाते परस्परम् ॥३॥

इन दोनों महारथियों ने पूर्ण खैंचे हुए अपने २ धनुष से छोड़े हुए बाणों से एक दूसरे को परस्पर अत्यन्त घायल कर दिया ॥३॥

ततः पञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
सारथिं चतुरश्चाऽश्वान्कर्णो विव्याध सायकैः ॥४॥
कार्मुकप्रवरं चापि प्रचिच्छेद शितैः शरैः।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥५॥

अब रण में पञ्चालमुख्य धृष्टद्युम्न के सारथि और चारों अश्वों को अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण ने बींध डाला तथा धृष्टद्युम्न का धनुष काट गिराया और एक भल्ल नामक बाण से सारथि को अन्त में रथ के आसन से नीचे गिरा दिया ॥४-५॥

धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याऽश्वानपीपिषत् ॥६॥

अब धृष्टद्युम्न के अश्व और सारथि मारे गए। वह रथहीन हो गया। इसने घोर परिघ उठाकर कर्ण के अश्वों को चकनाचूर कर डाला ॥६॥

विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषोपमैः ।
ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवाऽन्वपद्यत ॥७॥

यद्यपि कर्ण ने धृष्टद्युम्न को आशीविष सर्प के तुल्य बहुत से बाणों से बींध रखा था, तो भी वह पैदल ही राजा युधिष्ठिर की सेना तक पहुंच गया ॥७॥

आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष ।
प्रयातुकामः कर्णाय वारितो धर्मसूनुना ॥८॥

हे आर्य ! अब धृष्टद्युम्न, सहदेव के रथ पर चढ़ गया और कर्ण की ओर जाने को उद्यत हुआ, परन्तु धर्म-पुत्र युधिष्ठिर ने उसे रोक दिया ॥८॥

कर्णस्तु सुमहातेजाः सिंहनादविमिश्रितम् ।
धनुःशब्दं महच्चक्रे दध्मौ तारेण चाऽम्बुजम् ॥९॥

महातेजस्वी कर्ण ने सिंहनाद से मिला हुआ महान् धनुष का शब्द किया और बड़े उच्च-स्वर में शङ्ख बजाया ॥९॥

दृष्ट्वा विनिर्जितं युद्धे पार्षतं ते महारथाः ।

अमर्षवशमापन्नाः पञ्चालाः सहसोमकाः ॥१०॥

सूतपुत्रवधार्थाय शस्त्राण्यादाय सर्वशः ।

प्रययुः कर्णमुद्दिश्य मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥११॥

महारथी सोमक और पाञ्चालवीरों ने जब देखा, कि धृष्टद्युम्न पराजित हो गए-तो वे क्रोध से ज्वल उठे। वे लोग सूत-पुत्र कर्ण के वध के निमित्त शस्त्र लेकर सब ओर से झपटे। इनको इस समय मृत्यु का भय भी नहीं था। इन्होंने महारथी कर्ण को लक्ष्य करके उस पर आक्रमण किया ॥१०-११॥

कर्णस्याऽपि रथे वाहानन्यान्सूतोऽभ्ययोजयत् ।

शङ्खवर्णान्महावेगान्सैन्धवान्साधुवाहिनः ॥१२॥

अब कर्ण के सारथि ने कर्ण के रथ में भी अन्य अश्व जोड़े। ये अश्व सिन्धुदेशोत्पन्न, अच्छी तरह रथ में चलने वाले, महा वेगशाली श्वेतवर्ण के थे ॥१२॥

लब्धलक्षस्तु राधेयः पञ्चालानां महारथान् ।

अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मेघ इवाऽचलम् ॥१३॥

राधा-पुत्र कर्ण, पञ्चालों के जिन महारथियों पर बाण छोड़ते थे, वे बिंधते ही दिखाई देते थे। बड़ी व्यग्रता के साथ बाण फेंक

कर कर्ण ने पञ्चालों को इस तरह पीड़ित कर दिया, जैसे-जलधारा से मेघ पर्वत को पाट देता है ॥१३॥

सा पीड्यमाना कर्णेन पञ्चालानां महाचमूः ।
सम्प्राद्रवत्सुसन्त्रस्ता सिंहेनेवाऽर्दिता मृगी ॥१४॥

कर्ण द्वारा पीड़ित हुई पञ्चालों की महासेना, इस तरह भाग निकली, जैसे सिंह से दबाई हुई हरिणी भाग निकलती है ॥१४॥

पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले ।
रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त ततस्ततः ॥१५॥

इस रण में अश्व, गज और रथों से सवार पृथिवी पर शीघ्र २ जहां तहां गिरते ही दिखाई दे रहे थे ॥१५॥

धावमानस्य योधस्य क्षुरप्रैः स महामृधे ।
बाहू चिच्छेद वै कर्णः शिरश्चैव सकुण्डलम् ॥१६॥

इस महायुद्ध में दौड़ते हुए योद्धाओं के बाहु और कुण्डल सहित मस्तकों को कर्ण ने क्षुर के सदृश बाणों से काट २ कर गिरा दिया ॥१६॥

ऊरू चिच्छेद चाऽन्यस्य गजस्थस्य विशाम्पते ।
वाजिपृष्ठगतस्याऽपि भूयिष्ठस्य च मारिष ॥१७॥

हे विशाम्पते ! कर्ण ने किसी गजारोही की जंघा काट डाली और बहुत से अश्वरोहियों की टांगें काट गिराईं ॥१७॥

नाऽज्ञासिषुर्धावमाना बहवश्च महारथाः ।
सञ्छिन्नान्यात्मगात्राणि वाहनानि च संयुगे ॥१८॥

हे आर्य ! इस रण में बहुत से महारथियों को तो भाग दौड़ में अपने शरीर के कटने और वाहनों के घायल होने की ख़बर तक न हुई ॥१८॥

ते वध्यमानाः समरे पञ्चालाः सृञ्जयैः सह ।
तृणप्रस्पन्दनाच्चापि सूतपुत्रं स्म मेनिरे ॥१९॥

हे राजन ! कर्ण द्वारा छेदे हुए पञ्चाल और सृञ्जयवीर इतने भयभीत हो गए, कि जो कहीं तिनका भी हिलता था, तो वे सूत-पुत्र कर्ण को ही आता हुआ समझते थे ॥१९॥

अपि स्वं समरे योधं धावमानं विचेतसम् ।
कर्णमेवाऽभ्यमन्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥२०॥

यदि कोई अपना योद्धा भी बेहोशी से भागकर आता था, तो पाण्डववीर उसे कर्ण ही समझते और उससे भयभीत होकर भाग निकलते थे ॥२०॥

तान्यनीकानि भग्नानि द्रवमाणानि भारत ।
अभ्यद्रवद् द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥२१॥

हे भारत ! इन सेनाओं को भागती देखकर कर्ण भी अपने शरों को फैंकता हुआ बड़े वेग से उनके पीछे, २ दौड़ा ॥२१॥

अवेक्षमाणास्त्वन्योन्यं सुसम्मूढा विचेतसः ।
नाऽशक्नुवन्नवस्थातुं काल्यमाना महात्मना ॥२२॥

इस महावीर कर्ण द्वारा धकेले हुए, पाण्डववीर, एक दूसरे का मुंह देख रहे थे और अचेत से हुए चौकड़ी भूल रहे थे। ये किसी भी तरह कर्ण के सन्मुख ठहरने में समर्थ नहीं हो सके।

कर्णेनाऽभ्याहता राजन्पञ्चालाः परमेषुभिः ।
द्रोणेन च दिशः सर्वा वीक्षमाणाः प्रदुद्रुवः ॥२३॥

हे राजन् ! द्रोण और कर्ण द्वारा अपने उत्तम २ बाणों से आहत किये हुए पञ्चालवीर, सारी दिशाओं को देखते हुए भाग निकले ॥२३॥

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं प्रेक्ष्य विद्रुतम् ।
अपयाने मनः कृत्वा फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥२४॥

अब राजा युधिष्ठिर ने अपनी सेना को भागती देखा-तो उनके रोकने के निमित्त विचार करके अर्जुन से यह वचन कहा ॥२४॥

पश्य कर्णं महेष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
निशीथे दारुणे काले तपन्तमिव भास्करम् ॥२५॥

हे अर्जुन ! तुम महाधनुर्धर, धनुष्पाणि, रण में स्थित, इस दारुण आधी रात के समय कर्ण को तो देखो, कि यह सूर्य की तरह तप रहा है ॥२५॥

कर्णसायकनुन्नानां क्रोशतामेष निःस्वनः ।
अनिशं श्रूयते पार्थ त्वद्बन्धूनामनाथवत् ॥२६॥

हे पार्थ ! कर्ण के बाणों से क्षत-विक्षत और चिल्लाते हुए घायल वीरों का अनाथों का सा आर्तनाद लगातार सुनाई दे रहा है, जिसमें तुम्हारे बहुत से बान्धव सम्मिलित हैं ॥२६॥

यथा विसृजतश्चाऽस्य सन्दधानस्य चाऽऽशुगान् ।
पश्यामि नाऽन्तरं पार्थ क्षपयिष्यति नो ध्रुवम् ॥२७॥

हे कौन्तेय! यह जिस तरह बाण छोड़ता और चढ़ाता है, उसमें जरा भी अन्तर दिखाई नहीं देता। इससे तो यही प्रतीत होता है, कि वह निश्चय हमको नष्ट करके छोड़ेगा ॥२७॥

यदत्राऽनन्तरं कार्यं प्राप्तकालं च पश्यसि।
कर्णस्य वधसंयुक्तं तत्कुरुष्व धनञ्जय ॥२८॥

हे धनञ्जय! अब इसके अनन्तर समयानुसार जिससे कर्ण का वध हो सके, वही अपना कर्तव्य निश्चित करो ॥२८॥

एवमुक्तो महाराज पार्थः कृष्णमथाऽब्रवीत्।
भीतः कुन्तीसुतो राजा राधेयस्याऽद्य विक्रमात् ॥२९॥

हे महाराज! जब धर्मराज ने इतना कहा, तो अर्जुन श्रीकृष्ण से बोले—हे भगवन्! आज राधा-पुत्र कर्ण के पराक्रम से धर्मराज भयभीत हो उठे हैं ॥२९॥

एवङ्गते प्राप्तकालं कर्णानीके पुनः पुनः।
भवान्व्यवस्यतु क्षिप्रं द्रवते हि वरूथिनी ॥३०॥

इस दशा में समयानुसार यही कर्तव्य है, कि आप कर्ण के समीप पहुंचने की जल्दी से जल्दी चेष्टा करें, क्योंकि पाण्डव-सेना वहां बुरी तरह भाग रही है ॥३०॥

द्रोणसायकनुन्नानां भग्नानां मधुसूदन।
कर्णेन त्रास्यमानानामवस्थानं न विद्यते ॥३१॥

हे मधुसूदन! एक ओर द्रोणाचार्य के बाण से व्याकुल होकर भागते हैं और दूसरी ओर कर्ण से भयभीत हो रहे हैं। इस अवस्था में हमारे सैनिकों को कहीं भी चैन नहीं पड़ रहा है ॥३१॥

पश्यामि च तथा कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
द्रवमाणान्रथोदारान्किरन्तं निशितैः शरैः ॥३२॥

मैं यहां से ही निर्भीक भाव से घूमते हुए और तीक्ष्ण बाण फैंकते हुए तथा बड़े महारथियों को भगाते हुए कर्ण को देख रहा हूं ॥३२॥

नैनं शक्ष्यामि संसोढुं चरन्तं रणमूर्धनि ।
प्रत्यक्षं वृष्णिशार्दूल पादस्पर्शमिवोरगः ॥३३॥

हे वृष्णिशार्दूल ! कर्ण रण में इस उद्दण्डता से घूम रहा है, जिसे मैं सह नहीं सकता हूं । यह तो प्रत्यक्ष सर्प को पैर से कुचलता है ॥३३॥

स भवांस्तत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः ।
अहमेनं हनिष्यामि मां वैष मधुसूदन ॥३४॥

हे मधुसूदन ! अब तुम शीघ्र वहां पहुंचो-जहां पर महारथी कर्ण लड़ रहा है । आज या तो मैं ही इसे मार लेता हूं या वही मुझे मार लेगा ॥३४॥

श्रीवासुदेव उवाच—पश्यामि कर्णं कौन्तेय देवराजमिवाऽऽहवे
विचरन्तं नरव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम् ॥३५॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे कौन्तेय ! मनुष्यों का अतिक्रमण करके पराक्रमादि रखने वाले और रण में निडर घूमने वाले नरव्याघ्र, कर्ण को मैं रण में देवराज इन्द्र की तरह घूमता देखता हूं ॥३३॥

नैतस्याऽन्योऽस्ति संग्रामे प्रत्युद्याता धनञ्जय ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद्वा घटोत्कचात् ॥३६॥

हे पुरुषव्याघ्र ! अर्जुन ! तुम्हारे या राक्षसराज घटोत्कच के सिवा इस समय कर्ण के सन्मुख जाने की किसी की शक्ति नहीं है ॥३६॥

न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवाऽनघ ।
समागमं महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥३७॥
दीप्यमाना महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।
त्वदर्थं हि महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥३८॥
रक्ष्यते शक्तिरेषा हि रौद्रं रूपं बिभर्ति च ।

हे सर्वगुणसम्पन्न ! महाबाहो ! इस समय मैं तुम्हारा कर्ण के साथ युद्ध करना उचित नहीं समझता हूँ, क्योंकि उसके पास बड़ी देदीप्यमान बिजली की तरह चमकने वाली एक इन्द्र की दी हुई शक्ति विद्यमान है। हे महाबाहो ! कर्ण ने रण में तुमसे सामना होने पर उसका प्रयोग करनेका निश्चय कर रखा है इसी से उसे सुरक्षित रख छोड़ा है। यह शक्ति बड़ी ही भयङ्कर है।

घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः ॥ ३९॥
स हि भीमेन बलिना जातः सुरपराक्रमः ।
तस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्यासुराणि च ॥४०॥
सततं चाऽनुरक्तो वो हितैषी च घटोत्कचः ।
विजेष्यति रणे कर्णमिति मे नाऽत्र संशयः ॥४१॥

हे कौन्तेय ! इस समय महाबली घटोत्कच, महारथी कर्ण के मुकाबिले पर पहुंचे। वह देवों के सदृश पराक्रम रखता है, क्योंकि वह महारथी भीमसेन से उत्पन्न है। इसके पास बहुत से राक्षस और असुर सुलभ अस्त्र विद्यमान हैं। यह घटो से प्रेम करने वाला और हमारा हितैषी है। यह रण में कर्ण को अवश्य जीत लेगा—इसमें सन्देह नहीं समझना चाहिए ॥३६-४१॥

एवमुक्तो महाबाहुः पार्थः पुष्करलोचनाः ।
आजुहावाऽथ तद्रक्षस्तच्चाऽऽसीत्प्रादुरग्रतः ॥४२॥

जब श्रीकृष्ण ने कमल के समान नेत्रधारी अर्जुन से यह वचन कहा, तो अर्जुन ने राक्षसराज घटोत्कच को बुलाया—वह आकर सन्मुख उपस्थित हुआ ॥४२॥

कवची सशरः खड्गी सधन्वा च विशाम्पते ।
अभिवाद्य ततः कृष्णं पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥
अब्रवीच्च तदा कृष्णमयमस्म्यनुशाधि माम् ॥४३॥

हे विशाम्पते ! इसने कवच, वाण, खड्ग, धनुष आदि वीरोप-योगी अस्त्र शस्त्र धारण कर रखे थे। उसने श्रीकृष्ण और पाण्डु-पुत्र अर्जुन को प्रणाम करके कहा—हे कृष्ण ! मैं उपस्थित हूं, कहिए-मुझे क्या आज्ञा है ॥४३॥

ततस्तं मेघसङ्काशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम् ।
अभ्यभाषत हैडिम्बिं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥४४॥

घटोत्कच के इतना कहने पर मेघ के समान आकारधारी, प्रदीप्त कुण्डलों से देदीप्यमान मुख वाले हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच से हंसते २ दशार्हवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने यह वचन कहा ॥४४॥

वासुदेव उवाच—घटोत्कच विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।
प्राप्तो विक्रमकालोऽयं तव नाऽन्यस्य कस्यचित् ॥४५॥
स भवान्मज्जमानानां बन्धूनां त्वं प्लवो भव ।
विविधानि तवाऽस्त्राणि सन्ति माया च राक्षसी ।४६॥

हे घटोत्कच ! पुत्रक ! तुम जानते हो-जो मैं तुमसे कहना चाहता हूं। अब यह तो तुम्हारे पराक्रम दिखाने का ही समय आ गया--अन्य किसी में शक्ति नहीं है। इस समय विपत्ति सागर में डूबते हुए अपने बन्धुओं का तुम उद्धार करो। तुम्हारे पास बहुत से अस्त्र शस्त्र हैं और तुमको राक्षसी माया का भी पूरा ज्ञान है ॥४५-४६॥

पश्य कर्णेन हैडिम्बे पाण्डवानामनीकिनी ।
काल्यमाना यथा गावः पालेन रणमूर्धनि ।४७।

हे हिडिम्बा-पुत्र ! तुम देख रहे हो, कि कर्ण ने पाण्डवों की सेना को संग्राम में किस तरह भगा दिया, जैसे-ग्वाला, गायों को लट्ठ मार कर भगा रहा हो ॥४७॥

एष कर्णो महेष्वासो मतिमान्दृढविक्रमः ।
पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान् ॥४८॥

यह कर्ण, महाधनुर्धर, बुद्धिमान् और दृढ़ पराक्रमी है। इसने पाण्डवों की सेना में क्षत्रियवीरों को मार २ कर बिछा दिया है।

किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः ।
न शक्नुवन्त्यवस्थातुं पीड्यमानाः शरार्चिषा ४९॥

यह दृढ़ धनुषधारी इतनी महान् बाणवर्षा करता है, कि इसकी बाणों की ज्वाला से पीड़ित हुए कोई भी क्षत्रियवीर इसके सन्मुख स्थित होने को समर्थ नहीं है ॥४६॥

निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः ।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः सिंहेनेवाऽर्दिता मृगाः ॥५०॥

इस आधी रात में सूत-पुत्र कर्ण की बाणवर्षा से पीड़ित हुए पाञ्चाल इस तरह भाग रहे हैं, जैसे-सिंह से अर्दित मृग भाग निकलते हैं ॥५०॥

एतस्यैवं प्रवृद्धस्य सूतपुत्रस्य संयुगे ।
निषेद्धा विद्यते नाऽन्यस्त्वामृते भीमविक्रम ॥५१॥

हे भीमपराक्रमी ! रण में बढ़े हुए इस कर्ण के रोकने में अब तुम्हारे सिवा मैं और किसी अन्य वीर को नहीं देखता हूं।

स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहाऽऽत्मनः ।
मातुलानां पितृणां च तेजसोऽस्त्रबलस्य च ॥५२॥

हे महाबाहो ! अब तुम अपने पराक्रम से योग्य तथा अपने मामा और पिता के कुल के योग्य तेज और अस्त्रबल का उपयोग कर दिखाओ ॥५२॥

एतदर्थं हि हैडिम्बे पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ।
कथं नस्तारयेद्दुःखात्स त्वं तारय बान्धवान् ॥५३॥

हे हिडिम्बा-पुत्र ! संसार के मनुष्य इसीलिए पुत्रों की इच्छा करते हैं, कि वे दुःख सागर में डूबने के समय अपनी शक्ति के

अनुसार पितरों की रक्षा कर सकें—इससे तुम भी अपने बन्धुओं का इस दुःख से उद्धार करो ॥५३॥

इच्छन्ति पितरः पुत्रान्स्वार्थहेतोर्घटोत्कच ।
इह लोकात्परे लोके तारयिष्यन्ति ये हिताः ॥५४॥

हे घटोत्कच ! पुत्रों को तो पिता अपने स्वार्थ के निमित्त ही चाहते हैं, कि वे इस लोक के सिवा परलोक में भी पितृपिण्ड क्रिया द्वारा उनका उद्धार करने में समर्थ होते हैं ॥५४॥

तव ह्यत्र बलं भीमं मायाश्च तव दुस्तराः ।
संग्रामे युध्यमानस्य सततं भीमनन्दन ॥५५॥

हे भीमनन्दन ! तुम्हारा बल भी बड़ा भयङ्कर है और तुम माया भी बड़ी दुस्तर जानते हो। यह सब कुछ संग्राम में युद्ध के समय सदा दिखाते आए हो ॥५५॥

पाण्डवानां प्रभग्नानां कर्णेन निशि सायकैः ।
मज्जतां धार्तराष्ट्रेषु भव पारं परन्तप ॥५६॥

हे परन्तप ! इस रात में जब बाणवर्षा से कर्ण ने पाण्डव वीरों को बुरी तरह भगा दिया है और पाण्डवसेना, कौरवसेना रूपी समुद्र में डूब रही है, तो इस समय तुम उनको नौका के रूप में बन जाओ ॥५६॥

रात्रौ हि राक्षसा भूयो भवन्त्यमितविक्रमाः ।
बलवन्तः सुदुर्धर्षा शूरा विक्रान्तचारिणः ॥५७॥

हे वीर ! रात में तो राक्षस और भी बलवान, अत्यन्त दुर्धर्ष, शूर और महापराक्रमी दिखाई देते हैं ॥५७॥

जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे ।
पार्था द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥५८॥

अब तुम इस अर्धरात्रि में अपनी माया दिखा कर रण में कर्ण को मार लो, इधर धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालों को साथ लेकर पाण्डव, द्रोणाचार्य का वध किए देते हैं ॥५८॥

सञ्जय उवाच— केशवस्य वचः श्रुत्वा बीभत्सुरपि राक्षसम् ।
अभ्यभाषत कौरव्य घटोत्कचमरिन्दमम् ॥५९॥
घटोत्कच भवांश्चैव दीर्घबाहुश्च सात्यकिः ।
मतौ मे सर्वसैन्येषु भीमसेनश्च पाण्डवः ॥६०॥
तद्भवान्यातु कर्णेन द्वैरथं युध्यतां निशि ।
सात्यकिः पृष्ठगोपस्ते भविष्यति महारथः ॥६१॥

सञ्जय बोले—हे कौरव्य ! श्रीकृष्ण के वचन सुनकर अर्जुन भी अरिमर्दन राक्षसराज घटोत्कच से कहने लगे । हे घटोत्कच ! मुझे अपनी सेना में एक तो तुम, दूसरे दीर्घबाहु सात्यकि और तीसरे पाण्डु-पुत्र भीमसेन ही दिखाई देते हो । तुम महापराक्रमी हो, इससे इस कर्ण के घोर संग्राम में तुम्हीं जाओ । महारथी सात्यकि तुम्हारे पृष्ठरक्षक होकर चलेंगे ॥ ५९-६१ ॥

जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहायवान् ।
यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जघ्निवान् ॥६२॥

अब तुम सात्यकि की सहायता से रण में कर्ण को पछाड़ लो, जैसे पूर्वकाल में इन्द्र ने स्कन्द की सहायता से तारकासुर को मार गिराया था ॥ ६२ ॥

घटोत्कच उवाच—अलमेवाऽस्मि कर्णाय द्रोणायाऽलं च भारत ।
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणां महात्मनाम् ॥६३॥
अद्य दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि ।
यं जनाः सम्प्रवक्ष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥६४॥

घटोत्कच ने कहा—हे भारत! मैं तो कर्ण ही क्या? द्रोणाचार्य के लिये भी पर्याप्त हूं। अस्त्र विद्या में कुशल इन महावीर अन्य क्षत्रियों की भी मेरे सामने कुछ नहीं चल सकती है। आज ही रात में सूत-पुत्र कर्ण के साथ मैं इतना संग्राम कर दिखाऊंगा, जिसको जब तक भूमि रहेगी, लोग गाते रहेंगे॥ ६३-६४॥

न चाऽत्र शूरान्मोक्ष्यामि न भीतान्न कृताञ्जलीन् ।
सर्वानेव वधिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः ॥६५॥

आज तो मैं अपने राक्षस धर्म पर अड़कर भयभीत होकर हाथ जोड़ते हुए वीरों को भी नहीं छोड़ूंगा। सबको मार गिराऊँगा॥ ६५॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा महाबाहुर्हैडिम्बिः परवीरहा ।
अभ्यायात्तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन् ॥६६॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! बड़े २ उत्तम शत्रुवीरों के मारने में समर्थ, महाबाहु हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच, इतना कह कर घोर संग्राम में तुम्हारी सेना को भयभीत करता हुआ कर्ण के समीप आ पहुंचा॥६६॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं दीप्तास्यं दीप्तमूर्धजम् ।
प्रहसन्पुरुषव्याघ्रः प्रतिजग्राह सूतजः ॥६७॥

क्रोध में भर कर आते हुए प्रदीप्त मुख और चमकीले बालों वाले घटोत्कच का पुरुषप्रवीर, सूत-पुत्र कर्ण ने हंसते २ बाणों से स्वागत किया ॥६७॥

तयोः समभवद्युद्धं कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
गर्जतो राजशार्दूल शक्रप्रह्लादयोरिव ॥६८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचप्रोत्साहने त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७३॥

हे राजशार्दूल ! इस समय संग्राम भूमि में कर्ण और राक्षस-राज घटोत्कच का ऐसा घोर संग्राम हुआ जैसे कभी गर्जना करते हुए इन्द्र और प्रह्लाद का युद्ध हुआ था ॥६८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में घटोत्कच के युद्ध में भेजने के वर्णन का एक सौ तेहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



एक सौ चौहत्तरवां अध्याय

दृष्ट्वा घटोत्कचं राजन्सूतपुत्ररथं प्रति ।
आयान्तं तु तथा युक्तं जिघांसुं कर्णमाहवे ॥१॥
अब्रवीत्तत्र पुत्रस्ते दुःशासनमिदं वचः ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! सूत-पुत्र कर्ण के रथ की ओर पूर्वोक्त रणसामग्री से सुसज्जित रण में कर्ण के वध कर देने की इच्छा से घटोत्कच को आगे बढ़ते देख कर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, दुःशासन से यह वचन कहने लगा ॥१॥

एतद्रक्षो रणे तूर्णं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥२॥
अभियाति द्रुतं कर्णं तद्वारय महारथम् ।

हे दुःशासन! यह राक्षसराज, कर्ण के पराक्रम को देखकर उसे रोकने के लिये वेग से बढ़ रहा है, इस महारथी को तुम आगे बढ़ कर रोको ॥२॥

वृतः सैन्येन महता याहि यत्र महाबलः ॥३॥
कर्णो वैकर्तनो युद्धे राक्षसेन युयुत्सति ।

अब तुम भी बहुत सी सेना लेकर वहीं जाओ, जहां पर महाबली सूर्य-पुत्र कर्ण, युद्ध में राक्षसराज घटोत्कच से भिड़ जाना चाहता है ॥३॥

रक्ष कर्णं रणे यत्तो वृतः सैन्येन मानद ॥४॥
मा कर्णं राक्षसो घोरः प्रमादान्नाशयिष्यति ।

हे मानद ! तुम अपनी सेना को साथ लेकर रण में बड़ी सावधानी से कर्ण की रक्षा करो। यदि तुमने उसे न रोका, तो यह भयङ्कर राक्षस कहीं भूल में महारथी कर्ण को मार न ले ॥४॥

एतस्मिन्नन्तरे राजञ्जटासुरसुतो बली ॥५॥
दुर्योधनमुपागम्य प्राह प्रहरतां वरः ।

हे राजन् ! इसी समय महाबली, प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, जटासुर का पुत्र अलम्बुष, राजा दुर्योधन के पास पहुंच कर यह वचन कहने लगा ॥५॥

दुर्योधन तवाऽमित्रान्प्रख्यातान्युद्धदुर्मदान् ॥६॥
पाण्डवान्हन्तुमिच्छामि त्वयाऽऽज्ञप्तः सहानुगान् ।

हे दुर्योधन ! मैं युद्धदुर्मद तुम्हारे प्रसिद्ध शत्रु पाण्डवों को सेना सहित मार गिराना चाहता हूं। मैं इसमें केवल आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में हूं ॥६॥

जटासुरो मम पिता रक्षसां ग्रामणीः पुरा ॥७॥
प्रयुज्य कर्म रक्षोघ्नं क्षुद्रैः पार्थैर्निपातितः ।

पूर्वकाल में राक्षसों के गांवों के नेता, मेरे पिता जटासुर को इन दुष्ट पाण्डवों ने राक्षस नाशकारी किसी कर्म का प्रयोग करके उनका वध कर डाला ॥७॥

तस्याऽपचितिमिच्छामि शत्रुशोणितपूजया ।
शत्रुमांसैश्च राजेन्द्र मामनुज्ञातुमर्हसि ॥८॥

हे राजेन्द्र ! अब मैं अपने मृत पिता की पूजा, शत्रु के रक्त और मांस से करना चाहता हूं--आप मुझे आज्ञा दीजिए ॥८॥

तमब्रवीत्ततो राजा प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
द्रोणकर्णादिभिः सार्धं पर्याप्तोऽहं द्विषद्वधे ॥९॥
त्वं तु गच्छ मयाऽऽज्ञप्तो जहि युद्धे घटोत्कचम् ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं रक्षोमानुषसम्भवम् ॥१०॥

राजा दुर्योधन, इतना सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा-इन पाण्डव आदि अन्य शत्रुओं के वधके लिए तो द्रोण, कर्ण-आदि के साथ मैं पर्याप्त हूं। मैं तुझे आज्ञा देता हूं, कि तुम जाओ और घटोत्कच का वध करो। यह घटोत्कच, राक्षसी और भीमसेन द्वारा उत्पन्न हुआ बड़ा क्रूर-कर्मा राक्षस है ॥९-१०॥

पाण्डवानां हितं नित्यं हस्त्यश्वरथघातिनम् ।
वैहायसगतं युद्धे प्रेषयेर्यमसादनम् ॥११॥

यह राक्षसराज, सदा पाण्डवों के हित में तत्पर रहने वाला है। यह सदा मेरे हाथी, अश्व और रथों का घातक है। तुम आकाशचारी इस दुष्ट को किसी तरह यमराज के घर पहुंचा दो ॥११॥

तथेत्युक्त्वा महाकायः समाहूय घटोत्कचम् ।
जाटासुरिर्भैमसेनिं नानाशस्त्रैरवाकिरत् ॥१२॥

हे राजन्! अब महा बाणधारी जटासुर-पुत्र अलम्बुष ने राजा दुर्योधन की बात मान कर भीमसेन-पुत्र घटोत्कच पर आक्रमण किया और उसे अनेक शस्त्रों से पाट दिया ॥१२॥

अलम्बुषं च कर्णं च कुरुसैन्यं च दुस्तरम् ।
हैडिम्बिः प्रममाथैको महावातोऽम्बुदानिव ॥१३॥

राक्षस राज अलम्बुष, कर्ण तथा दुस्तर कौरवसेना को अकेले हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच ने इस तरह आलोड़ित कर डाला जैसे-महावायु, मेघों को उड़ा देती है ॥१३॥

ततो मायाबलं दृष्ट्वा रक्षस्तूर्णमलम्बुषः ।
घटोत्कचं शरव्रातैर्नानालिङ्गैः समार्पयत् ॥१४॥

जब राक्षसेन्द्र, अलम्बुष ने राक्षसराज घटोत्कच की यह फैली हुई माया देखी-तो उसने अनेक प्रकार के बाणसमूह से घटोत्कच को घायल कर डाला ॥१४॥

विद्ध्वा च बहुभिर्बाणैर्भैमसेनिं महाबलः ।
व्यद्रावयच्छरव्रातैः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥१५॥

महाबली अलम्बुष ने बहुत से बाणों से भीमसेन-पुत्र घटोत्कच को घायल करके अपने शरस मूह से पाण्डवों की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥१८॥

तेन विद्राव्यमाणानि पाण्डुसैन्यानि भारत ।
निशीथे विप्रकीर्यन्ते वातनुन्ना घना इव ॥१६॥

हे भारत ! इस प्रकार अलम्बुष द्वारा इस आधी रात में भगाई हुई, पाण्डवसेना इस तरह बिखर गई, जैसे वायु से उड़ाए हुए बादल इधर उधर बिखर जाते हैं ॥१६॥

घटोत्कचशरैर्नुन्ना तथैव तव वाहिनी ।
निशीथे प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥१७॥

हे राजन्! इसी तरह इस अर्ध रात्रि के समय घटोत्कच के बाणों से उड़ाए हुए, तुम्हारे सहस्रों सैनिक, अपनी उल्का (मशाल) फैंक कर भाग निकले ॥१७॥

अलम्बुषस्ततः क्रुद्धो भैमसेनिं महामृधे ।
आजघ्ने दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥१८॥

हे नृप! जैसे तोत्र नामक सोटे से गजराज की ताड़ना की जाती है, उसी तरह इस घोर युद्ध में राक्षसराज अलम्बुष से क्रोध में भर कर भीमसेन-पुत्र घटोत्कच ने कहा ॥१८॥

तिलशस्तस्य संवाहं सूतं सर्वायुधानि च ।
घटोत्कचः प्रचिच्छेद प्रणदंश्चाऽतिदारुणम् ॥१९॥

अब घटोत्कच ने उसके अश्व, सारथि और सारे आयुध, तिल २ भर के परिमाण में काट गिराए तथा अत्यन्त दारुण (कठोर) शब्द में गर्जना की ॥१९॥

ततः कर्णं शरव्रातैः कुरूनन्यान्सहस्रशः ।
अलम्बुषं चाऽभ्यवर्षन्मेघो मेरुमिवाऽचलम् ॥२०॥

अब घटोत्कच ने कर्ण तथा सहस्रों अन्य कौरवों को अपने बाणसमूह से पाट कर राक्षस अलम्बुष पर बड़े वेग से झड़ी लगाना आरम्भ किया ॥२०॥

ततः संचुक्षुभे सैन्यं कुरूणां राक्षसार्दितम् ।
उपर्युपरि चाऽन्योन्यं चतुरङ्गं ममर्द ह ॥२१॥

इस समय राक्षसराज घटोत्कच द्वारा व्याकुल की गई कौरव सेना तिलमिला उठी और एक दूसरे के ऊपर आक्रमण करके अपने २ शत्रु की सेना को कुचलने लगी ॥२१॥

जाटासुरिर्महाराज विरथो हतसारथिः ।
घटोत्कचं रणे क्रुद्धो मुष्टिनाऽभ्याहनद् दृढम् ॥२२॥

हे महाराज ! इस समय जटासुर-पुत्र, राक्षसेन्द्र, सारथि और रथ से हीन हो गया । अब इसने घटोत्कच पर रण में क्रोध-पूर्वक अपने घूंसे का अच्छी तरह प्रहार किया ॥२२॥

मुष्टिनाऽभ्याहतस्तेन प्रचचाल घटोत्कचः ।
क्षितिकम्पे यथा शैलः सवृक्षस्तृणगुल्मवान् ॥२३॥

इस मुष्टिका के आघात से घटोत्कच इस तरह तड़फड़ाने लगा, जैसे पृथिवी के हिलने के समय वृक्ष, तृण और झाड़ियों के साथ पर्वत कांपने लगता है ॥२३॥

ततः सपरिघाभेन द्विट्सङ्घघ्नेन बाहुना ।
जाटासुरिं भैमसेनिरवधीन्मुष्टिना भृशम् ॥२४॥

अब परिघ के समान विशाल, शत्रुसंघनाशक भुजा द्वारा पकड़ कर भीमसेन-पुत्र घटोत्कच ने अपनी मुट्ठी द्वारा उस पर अत्यन्त तीव्र प्रहार किया ॥२४॥

तं प्रमथ्य ततः क्रुद्धस्तूर्णं हैडिम्बिराक्षिपत् ।
दोर्भ्यामिन्द्रध्वजाभाभ्यां निष्पिपेष च भूतले ॥२५॥

उस राक्षसराज को मथ कर हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच अत्यन्त क्रोध में भर गया। इसने इन्द्र की ध्वजा के समान आकारधारी दोनों भुजाओं से उसे भूतल पर बहुत ही रगड़ा ॥२५॥

जाटासुरिर्मोचयित्वा आत्मानं च घटोत्कचात् ।
पुनरुत्थाय वेगेन घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥२६॥

किसी प्रकार जटासुर-पुत्र ने घटोत्कच से अपने को जैसे तैसे बचाया, परन्तु फिर उठ कर उसने वेग से घटोत्कच पर आक्रमण कर दिया ॥२६॥

अलम्बुषोऽपि विक्षिप्य समुत्क्षिप्य च राक्षसम् ।
घटोत्कचं रणे रोषान्निष्पिपेष च भूतले ॥२७॥

राक्षसराज अलम्बुष ने भी राक्षसराज घटोत्कच को कभी नीचे डाला और कभी उठा कर तथा पृथिवी पर क्रोध के साथ फिर पटक कर रण में बहुत ही रगड़ा ॥२७॥

तयोः समभवद्युद्धं गर्जतोरतिकाययोः ।
घटोत्कचालम्बुषयोस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥२८॥

अत्यन्त विशाल शरीर धारी और गर्जना करते हुए घटोत्कच और अलम्बुष का बड़ा घोर लोमहर्षण युद्ध खड़ा हो गया ॥२८॥

विशेषयन्तावन्योन्यं मायाभिरतिमायिनौ ।
युयुधाते महावीर्याविन्द्रवैरोचनाविव ॥२९॥

हे नृप ! अपनी माया से एक दूसरे को जीतते हुए, ये दोनों महापराक्रमी और अत्यन्त मायावी वीर, इन्द्र और विरोचन-पुत्र बलि की भांति युद्ध करने लगे ॥२९॥

पावकाम्बुनिधी भूत्वा पुनर्गरुडतक्षकौ ।
पुनर्मेघमहावातौ पुनर्वज्रमहाचलौ ॥२०॥
पुनः कुञ्जरशार्दूलौ पुनः स्वर्भानुभास्करौ ।
एवं मायाशतसृजावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥२१॥
भृशं चित्रमयुध्येतामलम्बुषघटोत्कचौ ।

कभी तो ये अग्नि और जल बन जाते, कभी गरुड़ और तक्षक बनते थे। फिर मेघ और महावायु और कभी वज्र और बड़े पर्वत हो जाते थे। कभी उत्तम से उत्तम हाथी बनते और कभी राहु और सूर्य बनते थे। ये दोनों राक्षसराज, सैकड़ों माया रच कर एक दूसरे के मारने में लगे हुए थे। इस प्रकार घटोत्कच और अलम्बुष बड़ी विचित्रता से अत्यन्त भीषण युद्ध कर रहे थे ॥२०-२१॥

परिघैश्च गदाभिश्च प्रासमुद्गरपट्टिशैः ॥२२॥
मुसलैः पर्वताग्रैश्च तावन्योन्यं विजघ्नतुः ।

ये दोनों वीर, परिघ, गदा, प्रास, मुद्गर, पट्टिश, मुसल और पर्वत की चोटी के पत्थरों से एक दूसरे को मारने लगे ॥२२॥

हयाभ्यां च गजाभ्यां च रथाभ्यां च पदातिभिः ॥
युयुधाते महामायौ राक्षसप्रवरौ युधि ।

हे राजन्! इस युद्ध में महा मायावी ये दोनों राक्षसराज, हाथी, गज, रथी और पैदलों के साथ युद्ध करने लगे ॥२३॥

ततो घटोत्कचो राजन्नलम्बुषवधेप्सया ॥३४॥
उत्पपात भृशं क्रुद्धः श्येनवन्निपपात च ।
गृहीत्वा च महाकायं राक्षसेन्द्रमलम्बुषम् ॥३५॥
उद्यम्य न्यवधीद्भूमौ मयं विष्णुरिवाऽऽहवे ।

हे राजन्! अब घटोत्कच ने अलम्बुष के मारने की इच्छा से अत्यन्त क्रोध के साथ आकाश में उड़ान भरी और उसने कबूतर को श्येन पक्षी की तरह महाकायधारी, राक्षसराज अलम्बुष को पकड़ कर रण में मय दैत्य को विष्णु की तरह ऊपर उठा कर भूमि में दे मारा ॥३४-३५॥

ततो घटोत्कचः खड्गमुद्यम्याऽद्भुतदर्शनम् ॥३६॥
रौद्रस्य कायाद्धि शिरो भीमं विकृतदर्शनम् ।

हे राजन्! अब घटोत्कच ने अपनी अद्भुत चमकीली तलवार निकाली और भयानक आकारधारी, राक्षसराज की भयकारी देह से उसके भयानक शिर को काट डाला ॥३६॥

स्फुरतस्तस्य समरे नदतश्चाऽतिभैरवम् ॥३७॥
निचकर्त महाराज शत्रोरमितविक्रमः ।

हे महाराज! राक्षसराज अलम्बुष, अत्यन्त भयानक गर्जना कर रहा था। इसी समय अपरिमित बलशाली घटोत्कच ने शत्रुभूत अलम्बुष का शिर काट गिराया ॥३७॥

शिरस्तच्चाऽपि संगृह्य केशेषु रुधिरोक्षितम् ॥३८॥
ययौ घटोत्कचस्तूर्णं दुर्योधनरथं प्रति ।

अब घटोत्कच रक्त में भीगे हुए राक्षस अलम्बुष के मस्तक को बालों से पकड़ कर झटपट राजा दुर्योधन के रथ की ओर बढ़ा ॥३८॥

अभ्येत्य च महाबाहुः स्मयमानः स राक्षसः ॥३९॥
शिरो रथेऽस्य निक्षिप्य विकृताननमूर्धजम् ।
प्राणदद्भैरवं नादं प्रावृषीव बलाहकः ॥४०॥

हे राजन् ! अब राक्षसराज, महाबाहु, घटोत्कच ने हंसते २ रंगत बदले हुए मुख और बालधारी अलम्बुष के मस्तक को राजा दुर्योधन के रथ के पास पहुंच कर उसमें फैंक दिया और बड़ी भीषण गर्जना की, जैसे कोई वर्षा ऋतु में मेघ गरजता हो ॥४०॥

अब्रवीच्च ततो राजन्दुर्योधनमिदं वचः ।
एष ते निहतो बन्धुस्त्वया दृष्टोऽस्य विक्रमः ॥४१॥
पुनर्द्रष्टासि कर्णस्य निष्ठामेतां तथाऽऽत्मनः ।

इसके बाद घटोत्कच ने राजा दुर्योधन से यह वचन कहा—हे दुर्योधन ! यह तुम्हारा महावीर मारा गया है, तुमने इसका पराक्रम देख लिया । अब तुम शीघ्र ही कर्ण और अपनी भी यही अवस्था देखोगे ॥४१॥

स्वधर्ममर्थं कामं च त्रितयं योऽभिवाञ्छति ॥४२॥
रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं ब्राह्मणं स्त्रियम् ।
तिष्ठस्व तावत्सुप्रीतो यावत्कर्णं वधाम्यहम् ॥४३॥

सौवर्णं कमलाक्षस्य तारकाक्षस्य राजतम् ।
तृतीयं तु पुरं तेषां विद्युन्मालिन आयसम् ॥६५॥
न शक्तस्तानि मघवान्भेत्तुं सर्वायुधैरपि ।
अथ सर्वे सुरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ॥६६॥
ते तमूचुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः ।
ब्रह्मदत्तवरा ह्येते घोरास्त्रिपुरवासिनः ॥६७॥
पीडयन्त्यधिकं लोकं यस्मात्ते वरदर्पिताः ।
त्वदृते देवदेवेश नाऽन्यः शक्तः कथञ्चन ॥६८॥
हन्तुं दैत्यान्महादेव जहि तांस्त्वं सुरद्विषः ।
रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु ॥६९॥
निपातयिष्यसे चैतानसुरान्भुवनेश्वर ।

हे अर्जुन ! आकाश में महाशक्तिशाली असुरों के तीन विशाल पुर, लोह, चांदी और सुवर्ण के थे। कमलाक्ष असुर का सुवर्ण, तारकाक्ष का चांदी और लोहमयपुर विद्युन्माली राक्षस का था। इन्द्र भी अपने सारे वज्र आदि अस्त्रों से उनके भेदन करने में समर्थ नहीं हो सका। सारे देव, अत्यन्त पीड़ित होकर इस समय भगवान् शङ्कर की शरण में पहुंचे। अब इन इन्द्र आदि देवों ने महात्मा शिव से कहा—हे भगवन् ! इन तीनों असुरों को ब्रह्म का वरदान प्राप्त है। वे वरदान से उन्मत्त होकर लोक को अत्यन्त पीड़ित कर रहे हैं। हे देवों के देव ! तुम्हारे सिवा, कोई अन्य इन दैत्यों के नाश करने में समर्थ नहीं है। हे महादेव ! अब तुम इन देवों के शत्रु तीनों राक्षसों का नाश करो। हे रुद्र ! ये पशु,

(असुर) सारे कामों में रौद्ररूपधारी होंगे-हे भुवनेश्वर ! इन असुरों के नाश करने की शक्ति तो केवल आप में ही विद्यमान है।

स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा देवानां हितकाम्यया ॥७०॥
गन्धमादनविन्ध्यौ च कृत्वा वंशध्वजौ हरः।
पृथ्वीं ससागरवनां रथं कृत्वा तु शङ्करः ॥७१॥
अक्षं कृत्वा तु नागेन्द्रं शेषं नाम त्रिलोचनः।
चक्रे कृत्वा तु चन्द्रार्कौ देवदेवः पिनाकधृक् ॥७२॥
अणीकृत्वैलपत्रं च पुष्पदन्तं च त्र्यम्बकः।
यूपं कृत्वा तु मलयमवनाहं च तक्षकम् ॥७३॥
योक्त्राङ्गानि च सत्वानि कृत्वा शर्वः प्रतापवान्।
वेदान्कृत्वाऽथ चतुरश्चतुरश्वान्महेश्वरः ॥७४॥
उपवेदान्खलीनांश्च कृत्वा लोकत्रयेश्वरः।
गायत्रीं प्रग्रहं कृत्वा सावित्रीं च महेश्वरः ॥७५॥
कृत्वोङ्कारं प्रतोदं च ब्रह्माणं चैव सारथिम्।
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा तु वासुकिम् ॥७६॥
विष्णुं शरोत्तमं कृत्वा शल्यमग्निं तथैव च।
वायुं कृत्वाऽथ वाजाभ्यां पुङ्खे वैवस्वतं यमम् ॥७७॥
विद्युत्कृत्वाऽथ निश्राणं मेरुं कृत्वा च वै ध्वजम्।
आरुह्य स रथं दिव्यं सर्वदेवमयं शिवः ॥७८॥
त्रिपुरस्य वधार्थाय स्थाणुः प्रहरतां वरः।

असुराणामन्तकरः श्रीमानतुलविक्रमः ॥७९॥
स्तूयमानः सुरैः पार्थ ऋषिभिश्च तपोधनैः ।

जब देवों ने इस प्रकार स्तुति की तो देवों के हित की कामना से भगवान् शङ्कर ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इन्होंने अब गन्धमादन और विन्ध्य पर्वत को ध्वजा और उसका बांस बनाया। समुद्र और वन सहित पृथिवी को भगवान् शङ्कर ने रथ बनाया। त्रिलोचन ने शेष नाग को रथ का धुरा कल्पित किया और पिनाकधारी देवाधिदेव शङ्कर ने चन्द्र और सूर्य को रथ के पहिए बनाए। त्र्यम्बक ने एलपत्र और पुष्पदन्त नामक दोनों को रथ के अक्ष की कीली बनाया। मलय पर्वत उस रथ का यूप हुआ। तक्षक सर्प उस काष्ठ के जोड़ने की रस्सी बना। महाप्रतापी शङ्कर ने सत्वगुण को जोते बनाया। इसी तरह महेश्वर ने चारों वेदों को उस रथ के चार अश्व कल्पित किए। तीनों लोकों के पति शंकर ने उपवेदों को खलीन (लगाम) बनाया, गायत्री और सावित्री को महेश्वर ने अश्वों की रास नियत किया। ओङ्कार इन अश्वों के चलाने को प्रतोद (चाबुक) स्वरूप माना गया। ब्रह्मा इसका सारथि हुआ। मन्दर पर्वत धनुष और वासुकि सर्प उसकी प्रत्यञ्चा बना। भगवान् विष्णु को बाण और अग्नि को उसका फण (नोक) बनाया। वायु, उन बाणों के पंखे थे और विवस्वान्-पुत्र यमराज उसके मूल में नियंत हुए। विजली इस बाण की चमक और मेरु पर्वत ध्वजा बना। सारे प्रहार करने वाले वीरों में श्रेष्ठ स्थाणुनामधारी भगवान् शङ्कर, उस सारे देवों मय रथ में स्थित

हुए। हे पार्थ ! ये भगवान शिव, अतुल पराक्रमी, कान्तिमान और असुरों के नाशक थे। देवता और तपोधन ऋषियों ने उनकी स्तुति की ७०-७६॥

स्थानं माहेश्वरं कृत्वा दिव्यमप्रतिमं प्रभुः ॥८०॥
अतिष्ठत्स्थाणुभूतः स सहस्रं परिवत्सरान् ।

अब एक महेश्वर नामक दिव्य अद्भुत स्थान की रचना की गई। वहां पर स्थाणु के समान भगवान ने सहस्र वर्ष पर्यन्त निवास किया ॥८०॥

यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे पुराणि च ॥८१॥
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि बिभेद सः ।

जब वे तीनों पुर अन्तरिक्ष में इकट्ठे उड़ रहे थे, उस समय तीन पर्व और तीन शल्य धारी बाण से उनको भेद किया ॥८१॥

पुराणि न च तं शेकुर्दानवाः प्रतिवीक्षितुम् ॥८२॥
शरं कालाग्निसंयुक्तं विष्णुसोमसमायुतम् ।
पुराणि दग्धवन्तं तं देवी याता प्रवीक्षितुम् ॥८३॥
बालमङ्कगतं कृत्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः ।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्सुरान् ॥८४॥
असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः ।
बाहुं सवज्रं तं तस्य क्रुद्धस्यास्तम्भयत्प्रभुः ॥८५॥
प्रहस्य भगवांस्तूर्णं सर्वलोकेश्वरो विभुः ।

अब दानवलोग, जलते हुए उन पुरों की ओर देख भी नहीं सके। इनमें कालाग्नि के सदृश विष्णु और सोम संयुक्त बाण

जा लगे। जब इन तीनों पुरों को दग्ध किया गया-तो देवी पार्वती पांच शिखाधारी एक बालक को गोद में लेकर वहां आई। पार्वती ने देवों से जानने की इच्छा से कहा—बताओ ? यह बालक कौन है। इन्द्र को इस प्रश्न से द्वेष हुआ और उसने क्रोध में भर कर वज्र का प्रहार करना चाहा। यद्यपि इन्द्र क्रोध में भरे हुए थे, तो भी सब लोकों के ईश्वर शक्तिशाली भगवान् शङ्कर ने उनकी वज्र सहित भुजा को हंसते २ वहीं रोक दिया ॥८२-८५॥

ततः स स्तम्भितभुजः शक्रो देवगणैर्वृतः ॥८६॥
जगाम ससुरस्तूर्णं ब्रह्माणं प्रभुमव्ययम् ।
ते तं प्रणम्य शिरसा प्रोचुः प्राञ्जलयस्तदा ॥८७॥
किमप्यङ्कगतं ब्रह्म पार्वत्या भूतमद्भुतम् ।
बालरूपधरं दृष्ट्वा नाऽस्माभिरभिलक्षितः ॥८८॥
तस्मात्त्वां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै वयम् ।
अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरन्दराः ॥८९॥

जब इन्द्र की भुजा स्तम्भित हो गई-तो देव गण से आवृत, देवों के साथ २ इन्द्र, प्रभु और अव्यय भगवान् ब्रह्मा की शरण में पहुंचे। उन्होंने हाथ जोड़कर तथा शिर नवा कर प्रणाम किया और कहा—हे भगवन् ! पार्वती की गोद में यह अद्भुत ब्रह्माकार के समान तेजोभूत कौन बालक है। इसका बालक रूप है, जिसे हम जान नहीं सके। उसने हमको जीत लिया-इससे हम आप से उसे पूछते हैं। इस बालक ने तो कोई युद्ध भी नहीं किया और लीला के साथ ही इन्द्रादि देवों को जीत लिया ॥८६-८९॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
ध्यात्वा स शम्भुं भगवान्बालं चाऽमिततेजसम् ॥६०॥
उवाच भगवान्ब्रह्मा शक्रादींश्च सुरोत्तमान्।
चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान्हरः ॥६१॥
तस्मात्परतरं नाऽन्यत्किञ्चिदस्ति महेश्वरात्।
यो दृष्टो ह्युमया सार्धं युष्माभिरमितद्युतिः ॥६२॥
स पार्वत्या कृते शर्वः कृतवान्बालरूपताम्।
ते मया सहिता यूयं प्रापयध्वं तमेव हि ॥६३॥
स एष भगवान्देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः।

हे अर्जुन! ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा जी उनके वचन सुनकर शङ्कर के ध्यान में मग्न हुए-तो उन्होंने अत्यन्त तेजस्वी बाल को ध्यान में देखा। भगवान् ब्रह्मा ने इन्द्र आदि देवों से कहा-कि चराचर जगत् के स्वामी ये ही भगवान् शङ्कर हैं। इन महेश्वर देव से अधिक कोई शक्तिशाली नहीं है, जिन अत्यन्त कान्ति-धारी भगवान् के तुम लोगों ने पार्वती के साथ दर्शन किए थे। पार्वती के प्रेम के कारण उन्होंने ही यह बालक रूप धारण किया है। तुम लोग भी मेरे साथ उनकी शरण को प्राप्त करो। वे ही भगवान् शङ्कर सब लोक के प्रभु हैं ॥६०-६३॥

न सम्बुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम् ॥६४॥
सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशप्रभम्।

इतना कहने पर भी प्रजापति आदि देवगण उन भुवनेश्वर बाल सूर्य के समान देदीप्यमान शङ्कर को जान नहीं सके ॥६४॥

अथाऽभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा स च महेश्वरम् ॥९५॥
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तं पितामहः ।

अब ब्रह्माजी वहाँ समीप में आए और भगवान् महेश्वर के दर्शन किए। पितामह ब्रह्मा ने समझ लिया, कि ये देव सारे देवों में श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार जानकर ब्रह्मा ने उनकी वन्दना की ॥९५॥

ब्रह्मोवाच— त्वं यज्ञो भुवनस्याऽस्य त्वं गतिस्त्वं परायणम्॥
त्वं भवस्त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम् ।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥९७॥
भगवन्भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ।
प्रसादं कुरु शक्रस्य त्वया क्रोधार्दितस्य वै ॥९८॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् ! तुम यज्ञ स्वरूप, सारे भुवनों के आधार रक्षक हो । तुम भव महादेव और परम धाम हो। हे भगवन् ! तुमने ही इस सारे स्थावर जङ्गम जगत को व्याप्त कर रखा है। हे भूत भव्य के स्वामी ! लोकनाथ ! जगत्पति ! तुम इन्द्र पर कृपा करो। वह तुम्हारे क्रोध से दग्ध होता जा रहा है।

व्यास उवाच— पद्मयोनिवचः श्रुत्वा ततः प्रीतो महेश्वरः ।
प्रसादाभिमुखो भूत्वा अट्टहासमथाऽकरोत् ॥९९॥

व्यासजी बोले—हे अर्जुन ! कमलयोनि ब्रह्मा के वचन सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गए। वे कृपापरायण होकर जोर से हंसने लगे।

ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः ।
अभवच्च पुनर्बाहुर्यथाप्रकृति वज्रिणः ॥१००॥

हे पार्थ ! अब देवताओं ने फिर भगवान् शङ्कर और , पार्वती की स्तुति की-तो इन्द्र की भुजा फिर पूर्ववत् ज्यों की त्यों हो गई ।

तेषां प्रसन्नो भगवान्सपत्नीको वृषध्वजः ।
देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः ॥१०१॥

अब पार्वती सहित वृषध्वज भगवान् शंकर इन देवों पर प्रसन्न हो गए, जो देवों में श्रेष्ठ और दक्षयज्ञ के विनाशक हैं ।

स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वश्च सर्ववित् ।
स चेन्द्रश्चैव वायुश्च सोऽश्विनौ च स विद्युतः ॥
स भवः स च पर्जन्यो महादेवः सनातनः ।
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः ॥१०३॥
स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो रात्र्यहानि तु ।
मासार्धमासा ऋतवः सन्ध्ये संवत्सरश्च सः ॥१०४॥
धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत् ।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः ॥१०५॥

रुद्र, शिव, अग्नि, सर्व और सर्वज्ञ इन्द्र, वायु, अश्विनी कुमार, विद्युत् भव, पर्जन्य महादेव, सनातन, चन्द्रमा, ईशान, सूर्य, वरुण, काल, अन्तक मृत्यु, यम, रात दिन, मास, अर्धमास, (पक्ष) ऋतु, सन्ध्या, संवत्सर, धाता, विधाता, विश्वात्मा, विश्वकर्मकृत् आदि सारे नाम रूप इन्हीं भगवान् शङ्कर के नाम भेद हैं । ये निराकार होकर सारे देवों के रूपों के धारक है ॥१०२-१०५॥

सर्वदेवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः ।
शतधा सहस्रधा चैव भूयः शतसहस्रधा ॥१०६॥

सारे देवों ने एक रूप से बहु रूपधारी भगवान् शङ्कर देव की स्तुति की । उनके सैंकड़ों सहस्रों और फिर लाखों रूपों की स्तुति की गई ॥१०६॥

द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः ।
घोरा चाऽन्या शिवा चाऽन्या ते तनू बहुधा पुनः ॥

वेद के ज्ञाता ब्राह्मण उस देव की दो मूर्ति मानते हैं, जिसमें एक घोर और दूसरी शिव नामक मूर्ति है। इन मूर्तियों के फिर अनेक शरीर भेद माने हैं ॥१०७॥

घोरा तु यातुधानस्य सोऽग्निर्विष्णुः स भास्करः ।
सौम्या तु पुनरेवाऽस्य आपो ज्योतींषि चन्द्रमा ॥

इस भगवान् शङ्कर की घोर मूर्ति के अग्नि, विष्णु और भास्कर रूप है, जिसकी उपासना यातुधान करते हैं तथा सौम्य मूर्ति के जल, ज्योतिः और चन्द्रमा रूप माने गए हैं ॥१०८॥

वेदाः साङ्गोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः ।
यदत्र परमं गुह्यं सर्वदेवो महेश्वरः ॥१०९॥

वेद, साङ्ग, उपनिषद्, पुराण, अध्यात्मनिश्चय तथा अन्य भी जो कुछ गुह्य वस्तु है, वह सब कुछ महेश्वर देव है ॥१०९॥

ईदृशश्च महादेवो भूयांश्च भगवानजः ।
नहि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः ॥११०॥
अपि वर्षसहस्रेण सततं पाण्डुनन्दन ।

हे पाण्डु-नन्दन! भगवान् शङ्कर इन गुणों से युक्त अज और महादेव हैं। मैं उन भगवान् शङ्कर के सारे गुणों के कथन करने में एक सहस्र वर्ष पर्यन्त भी समर्थ नहीं हो सकता हूं ॥११०॥

सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान्वै सर्वपापसमन्वितान् ॥१११॥
स मोचयति सुप्रीतः शरण्यः शरणागतान् ।

जो भक्त भगवान् शङ्कर की शरण में पहुंच जाता है, उसको शरणागतवत्सल शिव, प्रसन्न होकर दुःखों से छुड़ा देते हैं, चाहे वह ग्रहों से गृहीत या सारे पापों से युक्त भी क्यों न हो ॥१११॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् ॥११२॥
स ददाति मनुष्येभ्यः स चैवाऽऽक्षिपते पुनः ।
सेन्द्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते ॥११३॥

आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और पुष्कल कामना इन सबका वह मनुष्यों को वितरण करता रहता है और वही रुष्ट होने पर फिर उनको समेट लेता है। इन्द्रादि देवों के मध्य में जो ऐश्वर्य दिखाई देता है, वह सब भगवान् शङ्कर का ही है ॥११२-११३॥

स चैव व्यापृतो लोके मनुष्याणां शुभाशुभे ।
ऐश्वर्याच्चैव कामनामीश्वरश्च स उच्यते ॥११४॥

भगवान् शम्भु ही मनुष्यों के शुभ और अशुभ कर्मों के फल दाता हैं तथा ऐश्वर्यशाली होने के कारण सारी कामनाओं के प्रदान करने में भी वे ही समर्थ हैं ॥११४॥

महेश्वरश्च महतां भूतानामीश्वरश्च सः ।
बहुभिर्बहुधा रूपैर्विश्वं व्याप्नोति वै जगत् ॥११५॥

महा शक्तिशालियों में महेश्वर और सारे भूतों का नियन्ता ईश्वर है। वह सारे जगत को अपने बहुत से रूपों से आवृत किए हुए है ॥११५॥

तस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे तदधिष्ठितम् ।
वडवामुखेति विख्यातं पिबत्तोयमयं हविः ॥११६॥

देवाधिदेव महादेव का मुख समुद्र में अधिष्ठित है। उसका नाम वडवानल है, जो जल रूप हविः का भोजन करता है ॥११६

एष चैव श्मशानेषु देवो वसति नित्यशः ।
यजन्त्येनं जनास्तत्र वीरस्थान इतीश्वरम् ॥११७॥

यह महादेव सर्वदा श्मशान में निवास करता है। इन्हीं देवेश्वर की वीर-स्थान पर भक्त उपासना करते हैं ॥११७॥

अस्य दीप्तानि रूपाणि घोराणि च बहूनि च ।
लोके यानस्य पूज्यन्ते मनुष्याः प्रवदन्ति च ॥११८॥

इन भगवान् के बहुत से घोर और दीप्त रूप हैं। मनुष्य उनकी पूजा और स्तुति करते रहते हैं ॥११८॥

नामधेयानि लोकेषु बहून्यस्य यथार्थवत् ।
निरुच्यन्ते महत्वाच्च विभुत्वात्कर्मणस्तथा ॥११९॥

इन देव के यथार्थ नाम भी अनेक है। वे सारे इनके महत्व, व्यापकत्व और कर्म करने के ध्यान से पृथक् २ हुए हैं ॥११९॥

वेदे चास्य समाम्नातं शतरुद्रियमुत्तमम् ।
नाम्ना चानन्तरुद्रेति ह्युपस्थानं महात्मनः ॥१२०॥

वेद में शतरुद्रीय नामक मन्त्रसमूह इन्हीं की स्तुति करता है। इन महाप्रभु की स्तुतिपरक यह प्रकरण अनन्त रुद्र के नाम से प्रसिद्ध है ॥१२०॥

स कामानां प्रभुर्देवो ये दिव्या ये च मानुषाः ।
स विभुः स प्रभुर्देवो विश्वं व्याप्नोति वै महत् ॥१२१

जो देव और मनुष्यों की कामना है, उन सारी कामनाओं के स्वामी भी ये ही महादेव हैं। यही विभु और प्रभु है। इसी ने इस सारे विशाल विश्व को व्याप्त कर रखा है ॥१२१॥

ज्येष्ठं भूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा मुनयस्तथा ।
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादस्याऽनलोऽभवत् ॥१२२॥

ब्राह्मण और मुनि लोग, महादेव की ज्येष्ठ रूप से स्तुति करते हैं। यही सारे देवों में प्रथम हुआ है और इसी के मुख से अग्नि की उत्पत्ति है ॥१२२॥

सर्वथा यत्पशून्पाति तैश्च यद्रमते पुनः ।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात्पशुपतिः स्मृतः ॥१२३॥

यह सब तरह से सारे प्राणियों की पालना करता है और उन ही के साथ यह सर्वदा रमण करता है। उन सारे पशु संज्ञक प्राणियों का यह अधिपति है, इसी से इसे पशुपति भी कहते हैं।

दिव्यं च ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यथास्थितम् ।
महयत्येष लोकांश्च महेश्वर इति स्मृतः ॥१२४॥

इन भगवान् शङ्कर का दिव्य लिङ्ग-ब्रह्मचर्य से स्थित है। यह लोकों को महत्वशाली बनाता है, इससे इन्हें महेश्वर कहते हैं।

ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमस्याऽर्चयन्ति स्म तच्चाऽप्यूर्ध्वं समास्थितम् ।

ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सरा, ऊपर को स्थित महादेव के लिङ्ग की उपासना करते रहते हैं ॥१२५॥

पूज्यमाने ततस्तस्मिन्मोदते स महेश्वरः ।
सुखी प्रीतश्च भवति प्रहृष्टश्चैव शङ्करः ॥१२६॥

यदि इस लिङ्ग की पूजा की जावे-तो भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो जाते हैं। इससे महेश्वर, सुखी प्रसन्न और हर्षोत्फुल्ल हो जाते हैं।

यदस्य बहुधा रूपं भूतभव्यभवत्स्थितम् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ॥१२७॥

इनके बहुत से भूत, भविष्यत और वर्तमान में स्थावर जङ्गम रूप होते हैं, इसी से इनको बहुरूप भी कहते हैं ॥१२७॥

एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
क्रोधाद्यश्चाऽऽविशल्लोकांस्तस्मात्सर्व इति स्मृतः ॥१२८

भगवान् शंकर अपनी एक तीसरी आंख या सब ओर आँख बनाकर क्रोध-पूर्वक सारे लोकों में घुस जावेगा-इससे इन्हें सर्व भी कहेंगे ॥१२८॥

धूम्ररूपं च यत्तस्य धूर्जटिस्तेन चोच्यते ।
विश्वे देवाश्च यत्तस्मिन्विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥१२९॥

इनका धूम्र रूप भी है, इससे इन्हें धूर्जटि भी कहते हैं। विश्वे-देवा भी इनमें ही हैं, इससे इन्हें विश्वरूप भी कहना चाहिए।

तिस्रो देवीर्यदा चैव भजते भुवनेश्वरः ।
द्यामपः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकश्च ततः स्मृतः ॥१३०॥

भुवनेश्वर शंकर जब द्यौ, जल और पृथिवी रूप तीनों दिव्य रूपों को स्वीकार करता है, तो इससे इन्हें त्र्यम्बक भी कहते हैं ॥१३०॥

स मेधयति यन्नित्यं सर्वाथान्सर्वकर्मसु ।
शिवमिच्छन्मनुष्याणां तस्मादेष शिवः स्मृतः ॥१३१॥

सारे कर्मों में सारे अर्थों की जो पुष्टि करते हैं और मनुष्यों के कल्याण में प्रवृत्त होते हैं-इससे इन्हें शिव कहते हैं ॥१३१॥

सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
यच्च विश्वं महत्पाति महादेवस्ततः स्मृतः ॥१३२॥

यह देव, सहस्राक्ष, दश सहस्राक्ष या सारा ही अक्षिमय होकर सारे विश्व की पालना करता है, इससे इन्हें महादेव कहते हैं।

महत्पूर्वं स्थितो यच्च प्राणोत्पत्तिस्थितश्च यत् ।
स्थितलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः॥१३३॥

इनका पहला रूप महत्तत्व है, जिससे प्राणों की उत्पत्ति और स्थिति होती है। जो लिङ्ग रूप से सर्वत्र स्थित है, इससे लोग इन्हे स्थाणु कहने लगे ॥१३३॥

सूर्याचन्द्रमसोर्लोके प्रकाशन्ते रुचश्च याः ।
ताः केशसंज्ञितास्त्र्यक्षे व्योमकेशस्ततः स्मृतः॥१३४॥

हे अर्जुन ! सूर्य और चन्द्रमा की ज्योति, जो लोक में प्रकाशित हैं, वह केश कहलाती है, वह शिव में है, इससे महादेव को व्योमकेश भी कहते हैं ॥१३४॥

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं जगदशेषतः ।
भव एव ततो यस्माद्भूतभव्यभवोद्भवः ॥१३५॥

भूत, भविष्यत और वर्तमान रूप जो सारा जगत् है, यह महेश्वर से ही उत्पन्न है, इससे यह भूत, भविष्य और वर्तमान का उत्पादक कहाता है ॥१३५॥

कपिः श्रेष्ठ इति प्रोक्तो धर्मश्च वृष उच्यते ।
स देवदेवो भगवान्कीर्त्यतेऽतो वृषाकपिः ॥१३६॥

कपि नाम श्रेष्ठ का है और वृष नाम धर्म का है, इससे भगवान् महादेव को वृषाकपि कहते हैं ॥१३६॥

ब्रह्माणमिन्द्रं वरुणं यमं धनदमेव च ।
निगृह्य हरते यस्मात्तस्माद्धर इति स्मृतः ॥१३७॥

ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, इन सबको भगवान् शंकर नियमन कर संहार कर देते हैं, इससे ये हर कहाते हैं ॥१३७॥

निमीलिताभ्यां नेत्राभ्यां बलाद्देवो महेश्वरः ।

ललाटे नेत्रमसृजत्तेन त्र्यक्षः स उच्यते ॥१३८॥

अपने दोनों नेत्रों को भींच कर बल-पूर्वक महेश्वर देव अपने ललाट में तीसरा नेत्र खोलते हैं-इससे वे त्र्यक्ष कहाते हैं ॥१३८॥

विषमस्थः शरीरेषु समश्च प्राणिनामिह ।

स वायुर्विषमस्थेषु प्राणोऽपानः शरीरिषु ॥१३९॥

प्राणियों के शरीर के विषम और सम स्थानों में यह वायु रूप है। विषम स्थानों में स्थित प्राणियों में वही महेश्वर प्राण अपान रूप से विद्यमान है ॥१३९॥

पूजयेद्विग्रहं यस्तु लिङ्गं चापि महात्मनः ।

लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥१४०॥

जो भगवान् शंकर की साकार मूर्ति या लिङ्गमूर्ति का पूजन करता है, वह बहुत कल्याण प्राप्त करता है ॥१४०॥

ऊरुभ्यामर्धमाग्नेयं सोमोर्धं च शिवा तनुः ।

आत्मनोऽर्धं तथा चाऽग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते

तैजसी महती दीप्ता देवेभ्योऽस्य शिवा तनुः ।

भास्वती मानुषेष्वस्य तनुर्घोराऽग्निरुच्यते ॥१४२॥

भगवान् के ऊरु का आधा भाग आग्नेय और आधा भाग सौम्य (जल) रूप है। शेष भाग शिवा मूर्ति है। उनके शरीर का आधा भाग आग्नेय और जलात्मक है। देवों से भी अधिक

तेजोमय जो इनकी कल्याणकारिणी मूर्ति मनुष्यलोक में विद्यमान है, वह बड़ी घोर और भास्वर है, जिसे अग्नि कहते हैं।

ब्रह्मचर्यं चरत्येष शिवा याऽस्य तनुस्तया।
याऽस्य घोरतरा मूर्तिः सर्वानत्ति तयेश्वरः ॥१४३

यह शिव अपनी शिवा नामक मूर्ति से वेद का आविर्भाव करते हैं तथा जो इनकी घोरतर प्रदीप्त अग्नि मूर्ति है, उससे यह महेश्वर सारे संसार को प्रलय में भस्म करता है ॥१४३॥

यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत्प्रतापवान्।
मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥१४४॥

यह प्रतापी देव, तीक्ष्ण और उग्र होकर प्रलय में सब के मांस, रक्त और मज्जा को चाट जाता है, इससे इसे रुद्र कहते हैं।

एष देवो महादेवो योऽसौ पार्थ तवाऽग्रतः।
संग्रामे शात्रवान्निघ्नंस्त्वया दृष्टः पिनाकधृक् ॥

हे अर्जुन! यह महादेव, देवों के देव हैं, जो तेरे आगे २ शत्रुओं का नाश करते हुए चलते हैं और जिनको तूने पिनाक धारण किए हुए देखा है ॥१४५॥

सिन्धुराजवधार्थाय प्रतीज्ञाते त्वयाऽनघ।
कृष्णेन दर्शितः स्वप्ने यस्तु शैलेन्द्रमूर्धनि ॥
एष वै भगवान्देवः संग्रामे याति तेऽग्रतः।
येन दत्तानि तेऽस्त्राणि यैस्त्वया दानवा हताः ॥

हे अनघ! जब सिन्धुराज जयद्रथ के वध के निमित्त तूने प्रतिज्ञा की और पर्वत की चोटी पर स्वप्न में तुझे जो कृष्ण ने दिखाया था, वे ही भगवान् शङ्कर हैं। ये ही संग्राम में तेरे आगे चलते हैं। इन्हीं देव ने तुम्हें अस्त्र दिए, जिनसे तूने दानवों का नाश किया है ॥१४६-१४७॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।
देवदेवस्य ते पार्थ व्याख्यातं शतरुद्रियम् ॥१४८॥
सर्वार्थसाधनं पुण्यं सर्वकिल्बिषनाशनम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखभयापहम् ॥१४९॥

हे पार्थ! बड़ा धन्य, यशकारी, आयु देने वाला, पवित्र वेद सम्मत यह शतरुद्रिय नामक महादेव का आख्यान मैंने तुमको सुना दिया है। यह सब अर्थों के साधन में समर्थ और सारे पापों का नाश कर्ता है। इसके सुनने से सारे मोह नष्ट हो जाते हैं।१४९

चतुर्विधमिदं स्तोत्रं यः शृणोति नरः सदा ।
विजित्य शत्रून्सर्वान्स रुद्रलोके महीयते ॥१५०॥

जो मनुष्य चार प्रकार के इस स्तोत्र को सुनता है-वह शत्रुओं को उन्नत कर अन्त में रुद्रलोक में जाता है ॥१५०॥

चरितं महात्मनो नित्यं सांग्रामिकमिदं स्मृतम्
पठन्वै शतरुद्रियं शृण्वंश्च सततोत्थितः ॥१५१॥
भक्तो विश्वेश्वरं देवं मानषेषु च यः सदा ।
वरान्कामान्स लभते प्रसन्ने त्र्यम्बके नरः ॥१५२॥

महादेव का इस चरित का श्रवण संग्राम में बड़ा लाभ पहुँचाता है। जो मनुष्य सदा भक्ति श्रद्धा-पूर्वक इस शतरुद्रीय आख्यान को सुनता या पढ़ता है, वह मनुष्यों में श्रेष्ठ भक्त, विश्वेश्वर देव को प्रसन्न कर लेता है। जब त्र्यम्बक देव प्रसन्न हो जाते हैं, तो जो मनुष्य कामना करता है, उसे वही प्राप्त हो जाती है॥१५१-१५२॥

गच्छ युद्ध्यस्व कौन्तेय न तवाऽस्ति पराजयः ।
यस्य मन्त्री च गोप्ता च पार्श्वस्थो हि जनार्दनः ॥

हे कौन्तेय ! जाओ और युद्ध करो। तुम्हारा पराजय नहीं हो सकता है, क्योंकि तुम्हारा मन्त्री और रक्षक स्वयं जनार्दन कृष्ण हैं

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वाऽर्जुनं संख्ये पराशरसुतस्तदा ।
जगाम भरतश्रेष्ठ यथागतमरिन्दम ॥१५४॥
युद्धं कृत्वा महद्घोरं पञ्चाऽहानि महाबलः ।
ब्राह्मणो निहतो राजन्ब्रह्मलोकमवाप्तवान् ॥१५५॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार पराशर-पुत्र भगवान् वेदव्यास, रण में अर्जुन से इतना कहकर जहां से आए थे-वहीं चले गए। हे अरिन्दम ! राजन् ! महाबली ब्राह्मण द्रोणाचार्य, पांच दिन तक लगातार महाघोर युद्ध करके अन्त में मारे गए और ब्रह्मलोक पहुँच गए॥१५५॥

स्वधीते यत्फलं वेदे तदस्मिन्नपि पर्वणि ।
क्षत्रियाणामभीरूणां युक्तमत्रमहद्यशः ॥१५६॥

जो वेद पढ़ता है, उसको जो पुण्य होता है, वही पुण्य इस द्रोणपर्व के पढ़ने से होता है। निर्भीकवीर क्षत्रियों को तो इसके पठन से बड़े यश की प्राप्ति होती है ॥१५६॥

य इदं पठते पर्व शृणुयाद्वाऽपि नित्यशः ।

स मुच्यते महापापैः कृतैर्घोरैश्च कर्मभिः ॥१५७॥

जो इस पर्व को पढ़ता या नित्य सुनता है–वह बड़े २ पाप, और घोरकर्मों से छुटकारा पा जाता है ॥१५७॥

यज्ञावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह नित्यं घोरे युद्धे क्षत्रियाणां यशश्च

शेषौ वर्णौ काममिष्टं लभेते पुत्रान्पौत्रान्नित्यमिष्टांस्तथैव

इति श्रीमहाभारत शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां

द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि द्व्यधिकद्विशततमो

ध्यायः ॥२०२॥ समाप्तं नारायणास्त्रमोक्षपर्व ।

द्रोणपर्व च समाप्तम् ।

इसके पठन से ब्राह्मण को यज्ञफल की प्राप्ति होती है और क्षत्रियवीरों को घोर युद्ध में महान् यश उपलब्ध होता है । शेष दोनों वर्ण, वैश्य और शूद्र भी, अपने अभीष्ट को पाते हैं, तथा उनको पुत्र पौत्र और नित्य इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती रहती है ।

इति श्री महाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्व में दो सौ दोवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर नारायणास्त्रमोक्षपर्व और द्रोणपर्व भी समाप्त होगया ।

(चौथा भाग समाप्त)

जो मनुष्य, अपना धर्म, अर्थ और काम की वृद्धि चाहे, वह राजा, ब्राह्मण और स्त्री से खाली हाथों से न मिले। अब तुम जरा शान्ति के साथ ठहरे रहो। मैं अभी कर्ण को मारे लाता हूँ ॥४३॥

एवमुक्त्वा ततः प्रायात्कर्णं प्रति नरेश्वर।
किरञ्छरगणांस्तीक्ष्णान्कुपितो रणमूर्धनि ॥४४॥

हे नरेश्वर! राक्षसराज घटोत्कच इतना कहकर रण में बाणों की झड़ी लगाता हुआ क्रोध-पूर्वक कर्ण की ओर बढ़ा ॥४४॥

ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम्।
विस्मापनं महाराज नरराक्षसयोर्मृधे ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलंबुषपराभवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७४॥

हे महाराज! अब नरश्रेष्ठ कर्ण और राक्षसराज घटोत्कच का रणभूमि में महा भयानक घोर रूपधारी युद्ध होने लगा ॥४५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में घटोत्कच द्वारा अलम्बुप के मारे जाने के वर्णन का एक सौ चौहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



एक सौ पिचहत्तरवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—यत्तद्वैकर्तनः कर्णो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
निशीथे समसज्जेतां तद्युद्धमभवत्कथम् ॥१॥
कीदृशं चाऽभवद्रूपं तस्य घोरस्य राक्षसः ।
रथश्च कीदृशस्तस्य हयाः सर्वायुधानि च ॥२॥
किम्प्रमाणा हयास्तस्य रथकेतुर्धनुस्तथा ।
कीदृशं वर्म चैवाऽस्य शिरस्त्राणं च कीदृशम् ॥३॥
पृष्टस्त्वमेतदाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ।

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! आधी रात में राक्षसराज घटोत्कच और सूर्य-पुत्र कर्ण का जो आमना सामना हो गया था-तो उनका किस तरह युद्ध चला, तुम मुझे यह बताओ । उस भयङ्कर राक्षस का युद्ध में कैसा रूप हो गया और रथ, अश्व तथा सारे आयुधों का क्या ढंग था । उसके अश्व किस प्रमाण के थे । रथ, ध्वजा, धनुष, कवच और शिरस्त्राण की क्या दशा थी । हे सञ्जय ! यह सब कुछ मैं तुमसे पूछ रहा हूं-तुम ठीक २ सुनाओ ॥१-३॥

सञ्जय उवाच—लोहिताक्षोमहाकायस्ताम्रास्योनिम्नितोदरः ॥
ऊर्ध्वरोमा हरिश्मश्रुः शंकुकर्णो महाहनुः ।
आकर्णदारितास्यश्च तीक्ष्णदंष्ट्रः करालवान् ॥४॥
सुदीर्घताम्रजिह्वोष्ठो लम्बभ्रूः स्थूलनासिकः ।
नीलाङ्गो लोहितग्रीवो गिरिवर्ष्मा भयंङ्करः ॥५॥

महाकायो महाबाहुर्महाशीर्षो महाबलः ।
विकृतः परुषस्पर्शो विकचोद्बद्धपिण्डकः ॥७॥
स्थूलस्फिग्गूढनाभिश्च शिथिलोपचयो महान् ।
तथैव हस्ताभरणी महामायोऽङ्गदी तथा ॥८॥
उरसा धारयन्निष्कमग्निमालां यथाऽचलः ।

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! राक्षसराज घटोत्कच की लाल आंखें, विशाल शरीर, लाल मुख, गड़ा हुआ पेट, खड़े बाल, भूरी २ दाढ़ी-मूछ, शंकु तुल्य कान और बहुत बड़ी ठोडी थी । इसका मुख कान तक फटा हुआ था । वह तीक्ष्ण दाढ़ और दांतों से ही बड़ा विकराल था । उसके दीर्घ, लाल जिह्वा और ओष्ठ थे । इसकी लम्बी २ भौंहें और स्थूल नासिका थी । इसकी काली देह, लाल ग्रीवा, पर्वत के समान भयङ्कर शरीर की ऊंचाई थी । यह महाबली विशाल काय, बड़ी २ भुजा और बहुत बड़े मस्तक वाला था । यह क्षण २ में बिगड़ जाने वाला, कठोर स्पर्श से संयुक्त तथा लम्बी, चौड़ी और मोटी जंघा वाला था । इसकी कमर मोटी और नाभि गम्भीर थी । यह मोटा और गिलगिला दिखाई देता था । इसके हाथ में सुवर्ण के आभूषण और अङ्गद थे । यह बड़ा ही मायावी था । इसके गले में ऐसी चमकीली माला पड़ी थी, जैसे पर्वत पर अग्नि की ज्वाला फैल रही हो ॥४-८॥

तस्य हेममयं चित्रं बहुरूपाङ्गशोभितम् ॥९॥
तोरणप्रतिमं शुभ्रं किरीटं मूर्ध्न्यशोभत ।

कुण्डले बालसूर्याभे मालां हेममयीं शुभाम् ॥१०॥
धारयन्विपुलं कांस्यं कवचं च महाप्रभम् ।
किङ्किणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ॥११॥
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गं नल्वमात्रं महारथम् ।
सर्वायुधवरोपेतमास्थितं ध्वजमालिनम् ॥१२॥
अष्टचक्रसमायुक्तं मेघगम्भीरनिःस्वनम् ।

इसके मस्तक पर सुवर्ण निर्मित अनेक तरह विचित्र रूपधारी, तोरण के समान लम्बा चौड़ा सुन्दर मुकुट सुशोभित था। इसके कुण्डल उदय होते हुए सूर्य के सदृश थे और सुवर्णयुक्त माला गले में थी। इसने बहुत बड़ा कांसी का कवच पहिन रखा था। इसके रथ में सैंकड़ों घण्टी और लाल पताकाएँ थीं। उस रथ में रीछ के चर्म से स्थान २ पर बन्धन थे। यह विशाल रथ चार सौ हाथ ऊंचा था। इसमें उत्तम २ अस्त्र शस्त्र सुसज्जित थे। ध्वजाओं की माला सी लग रही थी। इसके आठ पहिए और मेघ के समान ध्वनि थी ॥६-१२॥

मत्तमातङ्गसङ्काशा लोहिताक्षा विभीषणाः ॥१३॥
कामवर्णजवा युक्ता बलवन्तः शतं हयाः ।
वहन्तो राक्षसं घोरं बालवन्तो जितश्रमाः ॥१४॥
विपुलाभिः सटाभिस्ते हेषमाणा मुहुर्मुहुः ।

इस रथ में मस्त हाथियों के सदृश लाल २ आंखों वाले, अत्यन्त भयानक काम के समान वेगधारी, महाबलवान् सौ अश्व

जुते थे। इन अश्वों के सुन्दर २ बाल थे। जो अधिकतर थकते न थे। इनकी ग्रीवा के बाल सिंह के बालों के सदृश थे। ये अश्व, बार २ हिनहिनाते थे ॥१३-१४॥

राक्षसोऽस्य विरूपाक्षः सूतो दीप्तास्यकुण्डलः ॥१५॥
रश्मिभिः सूर्यरश्म्याभैः सञ्जग्राह हयान्रणे ।

प्रदीप्त मुख और कुण्डल धारी विरूपाक्ष नामक राक्षस घटोत्कच का सारथि था। वह सूर्य की किरणों के समान चमकीली रासों को पकड़कर रण में इन अश्वों का सञ्चालन कर रहा था ॥१५॥

स तेन सहितस्तस्थावरुणेन यथा रविः ॥१६॥
संसक्त इव चाभ्रेण यथाऽद्रिर्महता महान् ।

हे राजन्! राक्षसराज, घटोत्कच इस सारथि से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे-अरुण से सूर्य दिखाई दे तथा जैसे विशाल मेघों से कोई विशाल पर्वत संयुक्त हो ॥१६॥

दिवः स्पृक् सुमहान्केतुः स्यन्दनेऽस्य समुच्छ्रितः ॥
रक्तोत्तमाङ्गः क्रव्यादो गृध्रः परमभीषणः ।

इसके रथ में आकाश को स्पर्श करने वाली बहुत ऊंची ध्वजा थी, जिसमें लाल मस्तक वाला, महा भयङ्कर मांसभोजी गीध का चिन्ह था ॥१७॥

वासवाशनिनिर्घोषं दृढज्यमतिविक्षिपन् ॥१८॥
व्यक्तं किष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम् ।

रथाक्षमात्रैरिषुभिः सर्वाः प्रच्छादयन्दिशः ॥१९॥
तस्यां वीरापहारिण्यां निशायां कर्णमभ्ययात् ।

घटोत्कच के धनुष की ध्वनि इन्द्र धनुष के तुल्य थी, जिसकी प्रत्यञ्चा बड़ी दृढ़ थी। इसकी चौड़ाई एक हाथ और लम्बाई बारह अरत्नि (बारह हाथ से कुछ कम) थी। यह इस धनुष को खैंचता हुआ रथ के धुरे के बराबर बाण चलाता था, जिनसे सारी दिशाएँ आच्छादित हो जाती थी। वीरों के नाश करने वाली इस रात में राक्षसवीर घटोत्कच ने महारथी कर्ण पर आक्रमण किया ॥१८-१९॥

तस्य विक्षिपतश्चापं रथे विष्टभ्य तिष्ठतः ॥२०॥
अश्रूयत धनुर्घोषो विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।

जब घटोत्कच रथ में बैठ कर धनुष खैंचता था, तो खैंचने के समय इसके धनुष से इस तरह की ध्वनि सुनी जाती थी, जैसे-कहीं बिजली गिर रही हो ॥२०॥

तेन वित्रास्यमानानि तव सैन्यानि भारत ॥२१॥
समकम्पन्त सर्वाणि सिन्धोरिव महोर्मयः ।

हे भारत! घटोत्कच द्वारा वित्रासित की हुई, तुम्हारी सारी सेना इस तरह कांपने लगी, जैसे-समुद्र की बड़ी २ लहरें कांप रही हो ॥२१॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ॥२२॥
उत्स्मयन्निव राधेयस्त्वरमाणोऽभ्यवारयत् ।

इस विरूप नेत्रधारी, भयङ्कर घटोत्कच को आक्रमण करता देखकर मुस्कुराता हुआ राधा-पुत्र कर्ण बड़े वेग से उसे रोकने को आगे बढ़ा ॥२२॥

ततः कर्णोऽभ्ययादेनमस्यन्नस्यन्तमन्तिकात् ॥२३॥

मातङ्ग इव मातङ्गं यूथर्षभमिवर्षभः ।

यह घटोत्कच बड़े वेग से बाण फैंक रहा था, इस पर बाण-वर्षा करता हुआ कर्ण, इसके सन्मुख इस तरह पहुंचा-जैसे-एक हाथी पर दूसरा हाथी और एक सांड पर दूसरा सांड आक्रमण करता है ॥२३॥

स सन्निपातस्तुमुलस्तयोरासीद्विशाम्पते ॥२४॥

कर्णराक्षसयो राजन्निन्द्रशम्बरयोरिव ।

हे विशाम्पते ! इस समय घटोत्कच और कर्ण का इन्द्र और शम्बर असुर के सदृश महाघोर संग्राम होने लगा ॥२४॥

तौ प्रगृह्य महावेगे धनुषी भीमनिःस्वने ॥२५॥

आच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ महेषुभिः ।

इन्होंने महा वेगधारी, भयानक शब्द करने वाले, अपने २ धनुष उठा लिए और उनसे बड़े २ बाण छोड़कर घायल करते हुए, ये एक दूसरे को आच्छादित करने लगे ॥२५॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैरिषुभिर्नतपर्वभिः ॥२६॥

न्यवारयेतामन्योन्यं कांस्ये निर्भिद्य वर्मणी ।

अब कान तक तीव्रता के साथ खैंच कर छोड़े हुए नतपर्व वाले बाणों से एक दूसरे के कांसी निर्मित कवचों को काट कर उन्हें आहत करने लगे ॥२६॥

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥२७॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्च ततक्षतुः ।

वे दोनों वीर, नखों से सिंह और दांतों से महागजों की भांति अपनी २ शक्ति और बाणों से एक दूसरे को काटने छांटने लगे।

सञ्छिन्दन्तौ च गात्राणि सन्दधानौ च सायकान् ॥
दहन्तौ च शरोल्काभिर्दुष्प्रेक्ष्यौ च बभूवतुः ।

ये बाणों को धनुषों पर चढ़ाकर एक दूसरे के शरीर को छेदने और बाणों की ज्वाला से परस्पर दग्ध करते हुए बड़े दुष्प्रेक्ष्य दिखाई देने लगे ॥२८॥

तौ तु विक्षतसर्वाङ्गौ रुधिरौघपरिप्लुतौ ॥२९॥
विभ्राजेतां यथा वारि स्रवन्तौ गैरिकाचलौ ।

इनके सारे शरीर क्षत-विक्षत हो गए और सारा शरीर रुधिर के प्रवाह में भर गया। ये ऐसे प्रतीत होने लगे, जैसे गैरिक धातु युक्त पर्वत, जल प्रवाह बहाते हुए सुशोभित होते हैं ॥२९॥

तौ शराग्रविनुन्नाङ्गौ निर्भिन्दन्तौ परस्परम् ॥३०॥
नाऽकम्पयेतामन्योन्यं यतमानौ महाद्युती ।

इन दोनों वीर घटोत्कच और कर्ण के शरीर बाण के नुकीले अग्रभाग से छिद चुके थे। ये दोनों महा कान्तिमान् वीर, बड़ा

भारी प्रयत्न करते हुए भी एक दूसरे को कम्पायमान नहीं कर सके ॥३०॥

तत्प्रवृत्तं निशायुद्धं चिरं सममिवाऽभवत् ॥३१॥
प्राणयोर्दीव्यतो राजन्कर्णराक्षसयोर्मृधे ।

हे राजन्! कर्ण और घटोत्कच अपने २ प्राणों की बाजी लगा कर युद्ध का द्यूत खेल रहे थे। इन दोनों का यह रात्रियुद्ध बहुत देर तक समान रूप से ही चलता रहा ॥३१॥

तस्य सन्दधतस्तीक्ष्णाञ्छरांश्चाऽऽसक्तमस्यतः ॥३२॥
धनुर्घोषेण वित्रस्ताः स्वे परे च तदाऽभवन् ।

इस समय घटोत्कच तीक्ष्ण बाणों को धनुष पर चढ़ाता और बड़े वेग से फेंकता था। इसके धनुष की ध्वनि से इस समय अपने और पराए सब व्याकुल हो उठे ॥३२॥

घटोत्कचं यदा कर्णो विशेषयति नो नृप ॥३३॥
ततः प्रादुष्करोद्दिव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।

हे नृप! जब कर्ण, घटोत्कच से अधिक कोई युद्ध-कौशल न दिखा सका तो अस्त्रविद्या के जानने वाले कर्ण ने अपना दिव्य अस्त्र का प्रयोग किया ॥३३॥

कर्णेन सन्धितं दृष्ट्वा दिव्यमस्त्रं घटोत्कचः ॥३४॥
प्रादुश्चक्रे महामायां राक्षसीं पाण्डुनन्दनः ।

जब घटोत्कच ने देखा, कि कर्ण ने अपना दिव्य अस्त्र उठा लिया, तो पाण्डुवंशोद्भव घटोत्कच ने भी अपनी राक्षसी माया का प्रादुर्भाव किया ॥३४॥

शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥३५॥
रक्षसां घोररूपाणां महत्या सेनया वृतः।

अब यह शूलमुद्गरधारी, पर्वत और वृक्षों को हाथ में लिए हुए भयङ्कर रूपधारी राक्षसों की महासेना से घिरकर खड़ा हो गया ॥३५॥

तमुद्यतमहाचापं दृष्ट्वा ते व्यथिता नृपाः ॥३६॥
भूतान्तकमिवाऽऽयान्तं कालदण्डोग्रधारिणम्।

इस प्रकार महाधनुष को लेकर उद्यत हुए तथा कालदण्ड के तुल्य उग्र दण्डधारी प्राणियों के काल की भांति आते हुए घटोत्कच को देखकर कौरवपक्ष के राजा बड़े ही व्यथित हुए।।

घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ॥३७॥
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम्।

घटोत्कच के द्वारा किए हुए सिंहनाद से भयभीत हुए गज मूत्रोत्सर्ग करने और मनुष्य बड़े व्यथित होने लगे ॥३७॥

ततोऽश्मवृष्टिरत्युग्रा महत्यासीत्समन्ततः ॥३८॥
अर्धरात्रेऽधिकबलैर्विमुक्ता रक्षसां बलैः।

इस समय सब ओर महान् उग्र पत्थरों की वर्षा होने लगी, जिसको आधी रात के समय अधिक बलवान हो जाने वाले राक्षसों ने प्रयुक्त की थी ॥३८॥

आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः शक्तितोमराः ॥३९
पतन्त्यविरलाः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा।

लोह के चक्र, भुशुण्डी, शतघ्नी, पट्टिश, शक्ति, तोमर और शूल लगातार रण में चलने लगे ॥३९॥

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिप ॥४०॥
पुत्राश्च तव योधाश्च व्यथिता विप्रदुद्रुवुः ।

हे नराधिप ! इस उग्र और महाभयानक युद्ध को देखकर तुम्हारे पुत्र और योद्धा बड़े दुःखी होकर भाग निकले ॥४०॥

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी कर्णो मानी न विव्यथे ॥४१॥
व्यधमच्च शरैर्मायां तां घटोत्कचनिर्मिताम् ।

इस समय अपने अस्त्रों के बल का अभिमान रखने वाला केवल कर्ण ही पीड़ित नहीं हुआ। इसने अपने बाणों से घटोत्कच की माया को भी नष्ट भ्रष्ट कर दिखाया ॥४१॥

मायायां तु प्रहीणायाममर्षाच्च घटोत्कचः ॥४२॥
विससर्ज शरान्घोरान्सूतपुत्रं त आविशन् ।

जब घटोत्कच की माया नष्ट हो गई, तो वह क्रोध से जल उठा। उसने घोर बाणों का छोड़ना आरम्भ किया, जो सूत-पुत्र कर्ण के शरीर में जा २ कर घुसने लगे ॥४२॥

ततस्ते रुधिराभ्यक्ता भित्वा कर्णं महाहवे ॥४३॥
विविशुर्धरणीं बाणाः संक्रुद्धा इव पन्नगाः ।

इस महायुद्ध में वे रुधिर में भीगे हुए बाण, कर्ण के शरीर को बींधकर पृथिवी में इस तरह घुस जाते थे, जैसे क्रोध में भरे हुए सांप बिल में घुसते हैं ॥४३॥

सूतपुत्रस्तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥४४॥
घटोत्कचमतिक्रम्य बिभेद दशभिः शरैः ।

महाप्रतापी, शीघ्र हाथ फैंकने वाले, क्रोधातुर सूत-पुत्र, कर्ण ने घटोत्कच पर आक्रमण करके उसको दश बाणों से बींध डाला।

घटोत्कचो विनिर्भिन्नः सूतपुत्रेण मर्मसु ॥४५॥
चक्रं दिव्यं सहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ।

इस प्रकार सूत-पुत्र द्वारा मर्मस्थानों में बींधे हुए घटोत्कच ने व्यथित होकर सहस्रों धार वाले दिव्य चक्र को उठाया ॥४५॥

क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम् ॥४६।
चिक्षेपाऽऽधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया ।

अब भीमसेन-पुत्र घटोत्कच ने क्षुर के समान तीक्ष्ण, उदय होते हुए सूर्य के सदृश चमकीले, मणि रत्नों से विभूषित, उसी चक्र को अधिरथ-पुत्र कर्ण के ऊपर मार देने को फैंका ॥४६॥

प्रविद्धमतिवेगेन विच्छिन्नं कर्णसायकैः ॥४७॥
अभाग्यस्येव सङ्कल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि ।

अत्यन्त वेग से फैंका हुआ भी कर्ण के बाणों से विद्ध होकर वह चक्र, अभागे मनुष्य के संकल्प की तरह निष्फल होकर पृथिवी में गिर गया ॥४७॥

घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥४८॥
कर्णं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् ।

इस चक्र के गिरते ही घटोत्कच क्रोध में भर गया और वह बाणों से कर्ण को इस तरह आच्छादित करने लगा-जैसे राहु, सूर्य को आच्छादित कर लेता है ॥४८॥

सूतपुत्रस्त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥४९॥
घटोत्कचरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ।

सूत-पुत्र कर्ण किसी भी तरह नहीं घबराने वाले थे, क्योंकि वे रुद्र और इन्द्र के समान पराक्रमी थे। इसने अपने बाणों से घटोत्कच के रथ को बड़े वेग से आच्छादित कर दिया ॥४९॥

घटोत्कचेन क्रुद्धेन गदा हेमाङ्गदा तदा ॥५०॥
क्षिप्ता भ्राम्य शरैः साऽपि कर्णेनाऽभ्याहताऽपतत् ।

अब क्रोध में भर कर घटोत्कच ने सुवर्ण के आभूषण धारण वाली, भीषण गदा को घुमा कर कर्ण पर फैंका, परन्तु कर्ण ने उसे भी छिन्न-भिन्न करके गिरा दिया ॥५०॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य कालमेघ इवोन्नदन् ॥५१॥
प्रववर्ष महाकायो द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।

अब घटोत्कच आकाश में उछला और कालमेघ की भांति गर्जना करने लगा। इस महाकायधारी, राक्षस ने आकाशतल से वृक्षों की वर्षा करना आरम्भ किया ॥५१॥

ततो मायाविनं कर्णो भीमसेनसुतं दिवि ॥५२॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांऽशुभिः ।

अ र अङ्गराज कर्ण ने भीमसेन के पुत्र मायावी घटोत्कच को अपने बाणों से इस तरह बींध लिया, जैसे-सूर्य अपनी किरणों से मेघ को बींध देता है ॥५२॥

तस्य सर्वान्हयान्हत्वा सञ्छिद्य शतधा रथम् ॥५३॥
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।

उसके सारे अश्वों को मार कर और रथ के सैंकड़ों टुकड़े करके मेघ की तरह झड़ी लगाता हुआ कर्ण, अपने बाणों से बरसने लगा ॥५३॥

न चाऽस्याऽऽसीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यंगुलमन्तरम् ॥५४॥
सोऽदृश्यत मुहूर्तेन श्वाविच्छललतो यथा ।

इस समय घटोत्कच के शरीर में दो अंगुल का भी ऐसा स्थान शेष नहीं बचा था, जो बाणों से नहीं छिद गया हो । वह थोड़ी देर तक कांटों से व्याप्त सेह जन्तु की भांति दिखाई देने लगा ॥५४॥

न हयान्न रथं तस्य न ध्वजं न घटोत्कचम् ॥५५॥
दृष्टवन्तः स्म समरे शरौघैरभिसंवृतम् ।

हे राजन् ! बाण-जाल से बिंध जाने के कारण घटोत्कच के अश्व, रथ और ध्वजा कुछ भी दिखाई नहीं देते थे । रण में सारे वीर उन्हें केवल बाणों से व्याप्त ही देख रहे थे ॥५५॥

स तु कर्णस्य तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण शातयन् ॥५६॥
मायायुद्धेन मायावी सूतपुत्रमयोधयत् ।

अब मायावी, घटोत्कच ने माया द्वारा सूत-पुत्र कर्ण से युद्ध करना आरम्भ किया। उसने अपने अस्त्र से कर्ण के दिव्य अस्त्र को काट गिराया ॥५६॥

सोऽयोधयत्तदा कर्णं मायया लाघवेन च ॥५७॥
अलक्ष्यमाणानि दिवि शरजालानि चाऽपतन् ।

यह घटोत्कच अपनी ओर अस्त्र चलाने की शीघ्रता के साथ कर्ण से युद्ध करने लगा। इस समय आकाश से अलक्षित रूप में बाण धारा गिरने लगी ॥५७॥

भैमसेनिर्महामायो मायया कुरुसत्तम ॥५८॥
विचचार महाकायो मोहयन्निव भारत ।

हे कुरुसत्तम ! मायावी भीमसेन-पुत्र घटोत्कच ने अपनी माया द्वारा विशाल शरीर धारण करके सबको मोहित करते हुए रण में घूमना आरम्भ किया ॥५८॥

स तु कृत्वा विरूपाणि वदनान्यशुभानि च ॥५९॥
अग्रसत्सूतपुत्रस्य दिव्यान्यस्त्राणि मायया ।

इसने अपने अनेक भयङ्कर घोर मुख बना लिए और उन मुखों द्वारा अपनी माया से सूत-पुत्र कर्ण के दिव्य अस्त्रों का ग्रसन करना आरम्भ किया ॥५९॥

पुनश्चापि महाकायः सञ्छिन्नः शतधा रणे ॥६०॥
गतसत्त्वो निरुत्साहः पतितः खाद्व्यदृश्यत ।

यह घटोत्कच अपनी विशाल काय के सैंकड़ों टुकड़े करके आकाश से गिरता हुआ रण में दिखाई दिया। इस समय इसका उत्साह नष्ट हो गया और सारा बल जाता रहा ॥६०॥

तं हतं मन्यमानाः स्म प्राणादन्कुरुपुङ्गवाः ॥६१॥
अथ देहैर्नवैरन्यैर्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ।

इस घटोत्कच को नष्ट हुआ समझ कर कौरववीर सिंहनाद करने लगे। इसी समय फिर वह सैंकड़ों नये शरीर बना कर सारी दिशाओं में दिखाई देने लगा ॥६१॥

पुनश्चापि महाकायः शतशीर्षः शतोदरः ॥६२॥
व्यदृश्यत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः ।

इसके बाद फिर उसने एक विशाल शरीर धारण किया, जिसके सैंकड़ों शिर और सैंकड़ों पेट थे। यह महाबाहु, मैनाक पर्वत की भांति ऊंचा दिखाई देता था ॥६२॥

अंगुष्ठमात्रो भूत्वा च पुनरेव स राक्षसः ॥६३॥
सागरोर्मिरिवोद्धूतस्तिर्यगूर्ध्वमवर्तत ।

हे राजन्! फिर यह राक्षसराज, अंगुष्ठमात्र शरीर धारण करके खड़ा हो गया। थोड़ी देर में समुद्र की लहरों की भांति लहराने लगा और ऊपर नीचे दिखाई देने लगा ॥६३॥

वसुधां दारयित्वा च पुनरप्सु न्यमज्जत ॥६४॥
अदृश्यत तदा तत्र पुनरुन्मज्जितोऽन्यतः ।

कभी यह पृथिवी को चीर कर पानी में डूब जाता था और फिर दूसरी ओर से निकलता दिखाई देने लगा ॥६४॥

सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे हेमपरिष्कृते ॥६५॥
क्षितिं खं च दिशश्चैव माययाऽभ्येत्य दंशितः ।

अब यह सुवर्ण निर्मित रथ में बैठ कर नीचे उतरा । इसने अपनी माया से पृथिवी, दिशा और आकाश को व्याप्त करके अपने को सुसज्जित रूप में खड़ा किया ॥६५॥

गत्वा कर्णरथाभ्याशं व्यचरत्कुण्डलाननः ॥६६॥
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं विशाम्पते ।

हे नृपते ! घटोत्कच के मुख पर कुण्डल घूमते रहते थे । अब यह कर्ण के रथ के पास जाकर घूमने लगा । इसने सूत-पुत्र कर्ण से बिना किसी घबराहट के यह वचन कहा ॥६६॥

तिष्ठेदानीं क्व मे जीवन्सूतपुत्र गमिष्यसि ॥६७॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।

हे सूत-पुत्र ! तुम ठहरे रहो-तुम जीते हुए ही मेरे सामने से कहां जा सकते हो । मैं इस रणाङ्गण में तेरे युद्ध के अभिमान को चकना-चूर किये बिना न छोड़ूंगा ॥६७॥

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षं रक्षः क्रूरपराक्रमम् ॥६८॥
उत्पपातान्तरिक्षं च जहास च सुविस्तरम् ।

हे राजन् ! इतना कहकर क्रोध से लाल नेत्र धारी, महा पराक्रमी राक्षस घटोत्कच, आकाश में उड़ गया और बड़े अट्टहास से हंसने लगा ॥६८॥

कर्णमभ्यहनच्चैव गजेन्द्रमिव केसरी ॥६६॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः ।

हे महीपाल ! अब घटोत्कच, कर्ण पर इस तरह प्रहार करने लगा, जैसे सिंह किसी गजराज पर प्रहार करता हो । इसने रथ के धुरे के समान मोटे बाणों से कर्ण पर आक्रमण किया ॥६६॥

रथिनामृषभं कर्णं धाराभिरिव तोयदः ॥७०॥

शरवृष्टिं च तां कर्णो दूरात्प्राप्तामशातयत् ।

जिस तरह मेघ अपनी धाराओं से वर्षा करता है, उसी तरह रथिश्रेष्ठ कर्ण पर उसने बाणों की झड़ी लगा दी । दूर से गिरने वाली इस बाण-वर्षा को कर्ण ने काट २ कर गिरा दिया ॥७०॥

दृष्ट्वा च विहतां मायां कर्णेन भरतर्षभ ॥७१॥

घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जाऽन्तर्हितः पुनः ।

हे भरतर्षभ ! जब घटोत्कच ने देखा, कि कर्ण ने मेरी माया का विनाश कर दिया है, तो उसने फिर माया रची और उसके भीतर आप भी अलक्षित हो गया ॥७१॥

सोभवद्गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसङ्कटैः ॥७२॥

शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ।

यह इस समय वृक्षसमूह से व्याप्त, शिखरों वाले अत्यन्त ऊंचे पर्वत के सदृश दिखाई देता था । इस घटोत्कच रूपी पर्वत में शूल, प्रास, खड्ग और मुसल आदि शस्त्रास्त्र रूपी जल धारा के बड़े २ प्रवाह थे ॥७२॥

तमञ्जनचयप्रख्यं कर्णो दृष्ट्वा महीधरम् ॥७३॥
प्रपातैरायुधान्युग्राण्युद्वहन्तं न चुक्षुभे ।

इस घटोत्कच को अञ्जन के महीधर और उग्र आयुधों के प्रपात (प्रवाह) के सदृश देखकर भी महारथी कर्ण कुछ भी व्याकुल नहीं हुए ॥७३॥

स्मयन्निव ततः कर्णो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥७४॥
ततः सोऽस्त्रेण शैलेन्द्रो विक्षिप्तो वै व्यनश्यत ।

अब कर्ण ने कुछ मुस्करा कर दिव्य अस्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र के प्रयोग के करते ही वह घटोत्कच रूपी पर्वत झटपट विशीर्ण हो गया ॥७४॥

ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ॥७५॥
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रः सूतपुत्रमवाकिरत् ।

अब घटोत्कच, इन्द्रायुध से संयुक्त, नीला, आकाशचारी जलद बन गया। वहां से वह सूत-पुत्र कर्ण पर पत्थरों की वर्षा करने लगा ॥७५॥

अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥७६॥
व्यधमत्कालमेघं तं कर्णो वैकर्तनो वृषः ।

इसके अनन्तर वृष नाम धारी, अस्त्रविद्या में कुशल सूर्य-पुत्र कर्ण ने वायव्यास्त्र छोड़कर उस घटोत्कच रूपी कालमेघ को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥७६॥

स मार्गणगणैः कर्णो दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ॥७७॥
जघानाऽस्त्रं महाराज घटोत्कचसमीरितम् ।

हे महाराज ! अब कर्ण ने वाण समूह छोड़कर सब ओर से दिशाओं को ढ़क दिया । इसने घटोत्कच के छोड़े हुए अस्त्र को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला ॥७७॥

ततः प्रहस्य समरे भैमसेनिर्महाबलः ॥७८॥
प्रादुश्चक्रे महामायां कर्णं प्रति महारथम् ।

हे महाभाग ! अब भीमसेन-पुत्र महाबली घटोत्कच ने मुसकुरा कर अपनी महामाया का प्रादुर्भाव किया और उसे महारथी कर्ण के रथ पर छोड़ दिया ॥७८॥

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेन रथिनां वरम् ॥७९॥
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ।

कर्ण ने रथियों में श्रेष्ठ, रथ के द्वारा आते हुए किसी भी प्रकार की घबराहट से हीन, अनेक राक्षसों से युक्त, राक्षसराज, घटोत्कच को इस तरह आक्रमण करते देखा ॥७९॥

सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तमातङ्गविक्रमैः ॥८०॥
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैस्तथा ।
नानाशस्त्रधरैर्घोरैर्नानाकवचभूषणैः ॥८१॥
वृतं घटोत्कचं क्रूरैर्मरुद्भिरिव वासवम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महेष्वासो योधयामास राक्षसम् ॥८२॥

हे राजन्! सिंह और शार्दूल के सदृश पराक्रमी, मत्त हाथियों के समान बली, गज, रथ और अश्वों के सवारों सहित नाना शस्त्र धारी, अनेक कवचों से आच्छादित, अनेक भूषणधारी, क्रूरकर्मा, भयङ्कर राक्षसों से घटोत्कच को इस तरह देखा, कि जैसे देवों से संयुक्त इन्द्र हो। इस रूप में राक्षसराज घटोत्कच को देखकर महाधनुर्धर कर्ण, उससे युद्ध करने लगा ॥८०-८२॥

घटोत्कचस्ततः कर्णं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
ननाद भैरवं नादं भीषयन्सर्वपार्थिवान् ॥८३॥

इसके अनन्तर घटोत्कच ने पांच आशुगामी बाण छोड़कर कर्ण को बींध दिया। इस समय इसने सारे राजाओं को भयातुर करते हुए बड़ा भीषण सिंहनाद किया ॥८३॥

भूयश्चाऽञ्जलिकेनाऽथ समार्गणगणं महत् ।
कर्णहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाऽऽशु घटोत्कचः ॥८४॥

अब फिर घटोत्कच ने अपने अञ्जलिक अस्त्र से बाणसमूह सहित कर्ण के हाथ में स्थित धनुष को काट गिराया ॥८४॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय दृढं भारसहं महत् ।
विचकर्ष बलात्कर्ण इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम् ॥८५॥

हे राजन्! अब कर्ण ने फिर युद्ध के भार सहने में समर्थ विशाल दूसरा धनुष उठाया। उसको उसने इतने बल से खैंचा, कि वह इन्द्र-धनुष की तरह चढ़ा हुआ दिखाई देने लगा ॥८५॥

ततः कर्णो महाराज प्रेषयामास सायकान् ।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान्खेचरान्राक्षसान्प्रति ॥८६॥

हे महाराज ! इसके बाद कर्ण, सुवर्ण मूलधारी, शत्रुनाशक, आकाशगामी बाणों को राक्षसों पर फैंकने लगा ॥८६॥

तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहेनेवाऽर्दितं वन्यं गजानामाकुलं कुलम् ॥८७॥

हे नृपते ! इन बाणों से पुष्ट वक्षःस्थल धारी राक्षसों का यूथ इस तरह व्याकुल हो उठा, जैसे सिंह से अर्दित वन के गजों का समूह व्याकुल हो उठता है ॥८७॥

विधम्य राक्षसान्बाणैः साश्वसूतगजान्विभुः ।
ददाह भगवान्वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥८८॥

इस शक्तिशाली कर्ण ने अपने बाणों से अश्व, सारथि और गजों से युक्त राक्षसों को इस तरह भस्म कर दिया, जैसे प्रलय-काल में जाज्वल्यमान अग्नि, प्राणियों को दग्ध कर देता है ॥८८॥

स हत्वा राक्षसीं सेनां शुशुभे सूतनन्दनः ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥८९॥

हे महीपाल ! इस प्रकार राक्षसीसेना को दग्ध करके सूत-पुत्र कर्ण, ऐसे प्रज्वलित हो उठा जैसे-त्रिपुरासुर को दग्ध करके आकाश में महेश्वर प्रज्वलित हो उठे हों ॥८९॥

तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु मारिष ।
नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति पार्थिवः ॥९०॥

ऋते घटोत्कचाद्राजन्राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ।
भीमवीर्यबलोपेतात्क्रुद्धाद्वैवस्वतादिव ॥९१॥

हे आर्य ! इस समय पाण्डव पक्ष के सहस्रों राजा, इस कर्ण की ओर नेत्रों से देखने में भी समर्थ न हो सके। केवल एक महाबली राक्षसेन्द्र घटोत्कच ही ऐसा था, जो क्रुद्ध हुए यमराज के समान भयङ्कर भीमसेन के बल से परिपुष्ट होने के कारण कर्ण से विचलित न हो सका ॥६०-६१॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां पावकः समजायत ।
महोल्काभ्यां यथा राजन्सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥६२॥

हे राजन् ! क्रोध में भरे हुए घटोत्कच की आंखों से इस तरह आग झड़ने लगी, जैसे उल्काओं (मशालों) से ज्वाला सहित तेल के बिन्दु टपक रहे हों ॥६२॥

तलं तलेन संहत्य सन्दश्य दशनच्छदम् ।
रथमास्थाय च पुनर्मायया निर्मितं तदा ॥६३॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैः पिशाचवदनैः खरैः ॥
स सूतमब्रवीत्क्रुद्धः सूतपुत्राय मां वह ॥६४॥

अब घटोत्कच ने अपनी हथेली से हथेली मली और क्रोध से ओष्ठ काटना आरम्भ किया। इसने माया से निर्मित अपने रथ में आसन ग्रहण किया। पिशाच के मुखों के समान मुख धारी खर जाति के हाथी के समान ऊंचे अश्व, इसके रथ में जुते हुए थे। इसने क्रोधातुर होकर अपने सारथि से कहा-तुम मुझे शीघ्र सूतपुत्र कर्ण के पास ले चलो ॥६३-६४॥

स ययौ घोररूपेण रथेन रथिनां वरः ।
द्वैरथं सूतपुत्रेण पुनरेव विशाम्पते ॥६४॥

हे विशाम्पते ! यह रथिश्रेष्ठ, घटोत्कच अपने घोर रूपधारी, रथ से सूत-पुत्र कर्ण के साथ युद्ध करने के लिए फिर आगे बढ़ा।

स चिक्षेप पुनः क्रुद्धः सूतपुत्राय राक्षसः ।
अष्टचक्रां महाघोरामशनिं रुद्रविनिर्मिताम् ॥६६॥
द्वियोजनसमुत्सेधां योजनायामविस्तराम् ।
आयसीं निशितां शूलैः कदम्बामिव केसरैः ॥६७॥

हे राजन् ! अब राक्षसराज घटोत्कच ने क्रोध में आकर रुद्र से निर्मित आठ चक्र वाली महाघोर अशनि को सूत-पुत्र कर्ण पर छोड़ा। यह अशनि, दो योजन तक लम्बी और एक योजन चौड़ी शूलों से संयुक्त, बड़ी तीक्ष्ण लोह निर्मित थी, जो इन शूलों से ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे केसरों (पुष्पांकुरों) से कदम्ब दिखाई देता हो ॥६६-६७॥

तामवप्लुत्य जग्राह कर्णो न्यस्य महद्धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपुप्लुवे ॥६८॥

अब कर्ण ने अपना विशाल धनुष रख दिया और कूद कर उस अशनि को जा पकड़ा। इसके अनन्तर उसी अशनि को घटोत्कच पर उसी समय फैंक दिया, जिसके भय से घटोत्कच रथ से कूद पड़ा ॥६८॥

साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्वा सुरास्तत्र विसिस्मियुः ॥९९॥

इस चमकती हुई बिजली ने घटोत्कच के अश्व, सारथि और ध्वजा सहित रथ को भस्म कर दिया और फिर वह पृथिवी को चीरकर उसमें घुस गई, जिससे देवों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

कर्णं तु सर्वभूतानि पूजयामासुरञ्जसा ।
यदवप्लुत्य जग्राह देवसृष्टां महाशनिम् ॥१००॥

हे राजन्! अब सारे प्राणी कर्ण की बड़ी प्रशंसा करने लगे, जो उसने वेग से कूद कर देव-निर्मित इस अशनि नामक अस्त्र को पकड़ लिया ॥१००॥

एवं कृत्वा रणे कर्ण आरुरोह रथं पुनः ।
ततो मुमोच नाराचान्सूतपुत्रः परन्तप ॥१०१॥
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु मानद ।
यदकार्षीत्तदा कर्णः संग्रामे भीमदर्शने ॥१०२॥

हे परन्तप! सूतपुत्र कर्ण इस पराक्रम को करके फिर अपने रथ पर जा चढ़ा और वहां से अन्य बहुत से नाराचों को छोड़ने लगा। हे मानद! ऐसा करने में सारे भूतों में अन्य कोई समर्थ नहीं हो सकता था। जो कुछ इस महाभयङ्कर संग्राम में कर्ण ने कर दिखाया ॥१०१-१०२॥

स हन्यमानो नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतः ।
गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥१०३॥

हे नृप ! धाराओं से पर्वत की तरह नाराचों से आहत हुआ घटोत्कच, गन्धर्वनगर के समान फिर अन्तर्हित होगया ॥१०३॥

एवं स वै महाकायो मायया लाघवेन च ।
अस्त्राणि तानि दिव्यानि जघान रिपुसूदनः ॥१०४॥

इस प्रकार वह विशाल कायधारी, रिपुनाशक राक्षस घटोत्कच, अपनी माया स्फूर्ति से कर्ण के उन दिव्य अस्त्रों का नाश करता रहा ॥१०४॥

निहन्यमानेष्वस्त्रेषु मायया तेन रक्षसा ।
असम्भ्रान्तस्तदा कर्णस्तद्रक्षः प्रत्ययुध्यत ॥१०५॥

यद्यपि उस राक्षसराज घटोत्कच ने अपनी माया से कर्ण के अस्त्रों को काट गिराया, तो भी कर्ण न घबराया और उस राक्षस से युद्ध ही करता रहा ॥१०५॥

ततः क्रुद्धो महाराज भैमसेनिर्महाबलः ।
चकार बहुधाऽऽत्मानं भीषयाणो महारथान् ॥१०६॥

हे महाराज ! अब भीमसेन-पुत्र महाबली घटोत्कच क्रोधातुर हो उठा और कौरव महारथियों को भयभीत बनाते हुए उसने अपने अनेक रूप बना लिए ॥१०६॥

ततो दिग्भ्यः समापेतुः सिंहव्याघ्रतरक्षवः ।
अग्निजिह्वाश्च भुजगा विहगाश्चाऽप्ययोमुखाः ॥१०७॥

इसके बाद प्रत्येक दिशा से सिंह, व्याघ्र, तरक्षु, (तेंदुआ) अग्नि के समान जिह्वा वाले सर्प और लोहमय चोंच धारी पक्षी आ २ कर वहां गिरने लगे ॥१०७॥

स कीर्यमाणो विशिखैः कर्णचापच्युतैः शरैः ।
नागराडिव दुष्प्रेक्ष्यस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥१०८॥

इस समय कर्ण के धनुष से छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से व्याप्त हुआ राक्षसेन्द्र घटोत्कच, नागराज की तरह दुर्निरीक्ष्य होकर वहीं पर अन्तर्हित हो गया ॥१०८॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च यातुधानास्तथैव च ।
शालावृकाश्च बहवो वृकाश्च विकृताननाः ॥१०९॥
ते कर्णं क्षपयिष्यन्तः सर्वतः समुपाद्रवन् ।

हे राजन्! इसी समय, राक्षस, पिशाच, यातुधान, शालावृक और भयानक आकारधारी बहुत से भेड़िये, कर्ण को व्याकुल करते हुए उस पर टूट २ कर पड़ने लगे ॥१०९॥

अथैनं वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयाञ्चक्रिरे तदा ॥११०॥
उद्यतैर्बहुभिर्घोरैरायुधैः शोणितोक्षितैः ।
तेषामनेकैरेकैकं कर्णो विव्याध सायकैः ॥१११॥

इन राक्षस आदि ने अपनी उग्र वाणी से भी कर्ण को भय देना आरम्भ किया। इन्होंने रक्त में भीगे हुए बहुत से घोर नग्न आयुध धारण कर रखे थे। उनमें प्रत्येक आयुध को कर्ण ने अपने बाणों द्वारा छेद डाला ॥११०॥

प्रतिहत्य तु तां मायां दिव्येनाऽस्त्रेण राक्षसीम् ।
आजघान हयानस्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥११२॥

हे महीपाल! अब कर्ण ने अपने दिव्य अस्त्र से घटोत्कच की राक्षसी माया को नष्ट कर डाला और अपने नतपर्वधारी बाणों से इसके अश्वों को भी मार गिराया ॥११२॥

ते भग्ना विक्षताङ्गाश्च भिन्नपृष्ठाश्च सायकैः ।
वसुधामन्वपद्यन्त पश्यतस्तस्य रक्षसः ॥११३॥

इन बाणों से आहत होते ही घटोत्कच के अश्वों के सारे शरीर छिन्न भिन्न हो गए। कर्ण के बाणों से इनकी पीठ छिद गई। हे नृप! ये अश्व, राक्षसराज घटोत्कच के देखते देखते ही पृथिवी में गिर पड़े ॥११३॥

स भग्नमायो हैडिम्बिः कर्णं वैकर्तनं तदा ।
एष ते विदधे मृत्युमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥११४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि रात्रियुद्धे कर्णघटोत्कचयुद्धे पञ्चसप्तत्यधिक-शततमोऽध्यायः ॥१७५॥

हे भरतर्षभ! हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच की माया का नाश हो चुका था। अब वह सूर्य-पुत्र कर्ण से कहने लगा-मैं अभी तेरी मृत्यु का उपाय कर देता हूं-जरा ठहर। हे राजन्! इतना कहकर घटोत्कच अलक्षित हो गया ॥११४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में कर्ण और घटोत्कच के युद्ध के वर्णन का एक सौ पिचहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ छियत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—तस्मिंस्तथा वर्तमाने कर्णराक्षसयोर्मृधे ।

अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्तत ॥१॥

महत्या सेनया युक्तो दुर्योधनमुपागमत् ।

राक्षसानां विरूपाणां सहस्रैः परिवारितः ॥२॥

नानारूपधरैर्वीरैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।

तस्य ज्ञातिर्हि विक्रान्तो ब्राह्मणादो बको हतः ॥३॥

किर्मीरश्च महातेजा हिडिम्बश्च सखा तदा ।

सञ्जय कहने लगे—हे राजन्! जब इस प्रकार का घोर युद्ध कर्ण और राक्षसराज घटोत्कच में हो रहा था, तो इसी समय अलायुध नामक शक्तिशाली राक्षस उपस्थित हुआ। इसके साथ बड़ी भारी सेना और नाना रूपधारी सहस्रों विकराल राक्षस वीर थे। यह भीम के पूर्व वैर को स्मरण करता हुआ राजा दुर्योधन के पास पहुँचा। भीमसेन ने इसके बन्धु-भूत ब्राह्मण-भोजी बकासुर, महातेजस्वी किर्मीर और सखाभूत हिडिम्बा को मार गिराया था।

स दीर्घकालाध्युषितं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥४॥

विज्ञायैतन्निशायुद्धं जिघांसुर्भीममाहवे ।

स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्ध इव चोरगः ॥५॥

दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीद्युद्धलालसः ।

यह अलायुध बहुत दीर्घकाल से चले आते हुए अपने वैर का बदला चुकाने का इस रात्रियुद्ध को अच्छा अवसर जानकर रण में भीमसेन को मारने के लिए यहां आया था। अलायुध मदोन्मत्त हाथी की तरह मस्त और सर्प की तरह क्रोध में भर रहा था। यह युद्ध की लालसा से उपस्थित होकर राजा दुर्योधन से यह वाक्य बोला ॥४-५॥

विदितं ते महाराज यथा भीमेन राक्षसाः ॥६॥
हिडिम्बबककिर्मीरा निहता मम बान्धवाः ।
परामर्शश्च कन्याया हिडिम्बायाः कृतः पुरा ॥७॥
किमन्यद्राक्षसानन्यानस्मांश्च परिभूय ह ।

हे महाराज! जिस तरह भीमसेन ने मेरे बान्धवभूत, हिडिम्ब, बक और किर्मीर आदि राक्षस मार दिए हैं, यह आपको सब कुछ विदित है। इसने बल-पूर्वक हमारी कन्या हिडिम्बा का पाणिग्रहण किया और उसमें अन्य राक्षसवीर और हमारा कुछ भी भय न माना, जो हमारा एक प्रकार का महा अपमान है। ॥८॥

तमहं सगणं राजन्सवाजिरथकुञ्जरम् ।
हैडिम्बिं च सहामात्यं हन्तुमभ्यागतः स्वयम् ।

हे राजन्! आज मैं भीमसेन तथा अश्व, रथ, हाथी, सेना और अमात्यों के सहित, हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच को मारने के लिए आया हूँ, क्योंकि घटोत्कच हमारे अपमान का जीता जागता उदाहरण है ॥८॥

अद्य कुन्तीसुतान्सर्वान्वासुदेवपुरोगमान् ॥९॥

हत्वा सम्भक्षयिष्यामि सर्वैरनुचरैः सह ।

निवारय बलं सर्वं वयं योत्स्याम पाण्डवान् ॥१०॥

आज श्रीकृष्ण सहित सारे पाण्डवों को भी उनके अनुचरों के साथ मारकर खा जाऊँगा। तुम अपने बल को पीछे हटा लो-हम पाण्डवों से युद्ध करेंगे ॥९-१०॥

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधनस्तदा ।

प्रतिगृह्याऽब्रवीद्वाक्यं भ्रातृभिः परिवारितः ॥११॥

इस अलायुध के ये वचन सुनकर राजा दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ। वह अपने भाइयों के सहित उससे इस प्रकार कहने लगा।

त्वां पुरस्कृत्य सगणं वयं योत्स्यामहे परान् ।

नहि वैरान्तमनसः स्थास्यन्ति मम सैनिकाः ॥१२॥

हम लोग, तुमको आगे करके शत्रुओं से लड़ेंगे, क्योंकि मन में वैर की आग प्रज्वलित होने से हमारे सैनिक चुप नहीं रह सकते हैं ॥१२॥

एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा राक्षसपुङ्गवः ।

अभ्ययात्त्वरितो भैमिं सहितः पुरुषादकैः ॥१३॥

राक्षसपुङ्गव, अलायुध ने कहा-अच्छी बात है। इतना कहकर वह मनुष्यभोजी राक्षसों के साथ बड़े वेग से भीमसेन-पुत्र घटोत्कच पर झपटा ॥१३॥

दीप्यमानेन वपुषा रथेनाऽऽदित्यवर्चसा।

तादृशेनैव राजेन्द्र यादृशेन घटोत्कचः ॥१४॥

हे राजेन्द्र ! इसका शरीर देदीप्यमान था और रथ भी सूर्य के सदृश चमक रहा था, जैसा-रथ घटोत्कच का था-वही दशा इसके रथ की थी ॥१४॥

तस्याऽप्यतुलनिर्घोषो बहुतोरणचित्रितः।

ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गो नल्वमात्रो महारथः ॥१५॥

इस रथ की भी ध्वनि बड़ी विचित्र और इसमें भी बहुत से अद्भुत तोरण लगे हुए थे। इसमें भी रीछ के चर्म के बन्धन थे और यह भी नल्वमात्र (चार सौ हाथ) ऊंचा विशाल रथ था।

तस्यापि तुरगाः शीघ्रा हस्तिकायाः खरस्वनाः।

शतं युक्ता महाकाया मांसशोणितभोजनाः ॥१६॥

इसके अश्व भी शीघ्रगामी हाथी के बराबर आकार धारी और गधे की सी वाणी बोलने वाले थे। ये बड़े २ शरीर वाले अश्व सौ संख्या में रथ में जुते थे, जो मांस और रक्त का भोजन करने वाले थे ॥१६॥

तस्यापि रथनिर्घोषो महामेघरवोपमः।

तस्यापि सुमहच्चापं दृढज्यं कनकोज्ज्वलम् ॥१७॥

इस रथ का निर्घोष भी महामेघ की गर्जना के तुल्य था। इस अलायुध का धनुष भी बड़ा विशाल, दृढ़ प्रत्यञ्चा वाला और सुवर्ण से जटित था ॥१७॥

तस्याऽप्यक्षसमा बाणा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
सोऽपि वीरो महाबाहुर्यथैव स घटोत्कचः ॥१८॥

इसके बाण भी रथ के धुरे के समान विशाल, सुवर्ण मूल धारी, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए थे। यह अलायुध भी घटोत्कच के सदृश ही महाबाहु और महाबली था ॥१८॥

तस्यापि गोमायुबलाभिगुप्तो बभूव केतुर्ज्वलनार्कतुल्यः ।
स चापि रूपेण घटोत्कचस्य श्रीमत्तमो व्याकुलदीपितास्यः ।

इसकी ध्वजा में गीदड़ और बल पक्षी के चिन्ह थे, जो अग्नि और सर्प के सदृश भीषण थी। इसका आकार भी घटोत्कच के आकार के सदृश कान्तिमान् और प्रदीप्त विशाल मुख धारी था ॥१९॥

दीप्ताङ्गदो दीप्तकिरीटमाली बद्धस्रगुष्णीषनिबद्धखड्गः ।
गदी भुशुण्डी मुसली हली च शरासनी वारणतुल्यवर्ष्मा ।

इसके अङ्गद चमक रहे थे, मस्तक पर मुकुटों की माला थी। इसने माला, पगड़ी और खड्ग धारण कर रखे थे। यह गदा, भुशुण्डी मुसल, हल, धनुष बाण आदि शस्त्रों से सुशोभित था। इसका शरीर हाथी के सदृश दृढ़ और ऊंचा था ॥२०॥

रथेन तेनाऽनलवर्चसा तदा विद्रावयन्पाण्डववाहिनीं ताम् ।
रराज संख्ये परिवर्तमानो विद्युन्माली मेघ इवाऽन्तरिक्षे ।

यह अपने अग्नि के तुल्य तेज धारी, रथ से पाण्डवसेना में खलबली मचाने लगा। यह युद्ध में घूमता हुआ ऐसा दिखाई दिया जैसे आकाश में बिजली सहित मेघ घूम रहा हो ॥२१॥

ते चापि सर्वप्रवरा नरेन्द्र महाबला वर्मिणश्चर्मिणश्च ।
हर्षान्विता युयुधुस्तस्य राजन्समन्ततः पाण्डवयोधवीराः ॥
इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
अलायुधयुद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

हे नरेन्द्र ! इस समय पाण्डवों के उत्तम २ महाबली योद्धा, कवच ढाल तलवार धारण किये हुए, इससे युद्ध करने को बड़े हर्ष के साथ सब ओर से आगे बढ़े । हे राजन् ! इन वीरों ने बड़े वेग से इसके साथ युद्ध करना आरम्भ किया ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में राक्षसराज
अलायुध के कौरवों की ओर आने के वर्णन का एक सौ
छियत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

—:※:—

एक सौ सतहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच— तमागतमभिप्रेक्ष्य भीमकर्माणमाहवे ।
हर्षमाहारयाञ्चक्रुः कुरवः सर्व एव ते ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! राक्षसराज, भयङ्कर कर्म करने वाले अलायुध को अपनी ओर आया हुआ देखकर कौरववीर बड़े ही हर्ष में भर गए ॥१॥

तथैव तव पुत्रास्ते दुर्योधनपुरोगमाः ।
अप्लवाः प्लवमासाद्य तर्तुकामा इवाऽर्णवम् ॥२॥

पुनर्जातमिवाऽऽत्मानं मन्वानाः पुरुषर्षभाः ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं स्वागतेनाऽभ्यपूजयन् ॥३॥

हे राजन्! इसी तरह तुम्हारे दुर्योधन आदि पुत्र भी बड़े प्रसन्न हुए। वे इस युद्ध रूपी समुद्र को तर जाना चाहते थे, परन्तु उनके पास कोई साधन रूपी नौका नहीं थी। अब उनको यह अलायुध रूपी नौका मिल गई। इन पुरुषप्रवीरों ने अलायुध को देखकर अपने को फिर उत्पन्न हुआ समझा। इन्होंने राक्षसराज अलायुध का बड़ा ही स्वागत किया ॥२-३॥

तस्मिंस्त्वमानुषे युद्धे वर्तमाने महाभये ।
कर्णराक्षसयोर्नक्तं दारुणप्रतिदर्शने ॥४॥
उपप्रैक्षन्त पञ्चालाः स्मयमानाः सराजकाः ।
तथैव तावका राजन्वीक्षमाणास्ततस्ततः ॥५॥

हे राजन्! महाभयकारी, मनुष्यों के युद्धों के अतिक्रमण कर जाने वाले दारुण घटनाओं के दिखाने में समर्थ, कर्ण और राक्षसराज घटोत्कच के इस वर्तमान युद्ध को आश्चर्य में भर कर अपने पक्ष के राजाओं के सहित पाञ्चालवीर देखने लगे और इसी तरह तुम्हारे पक्ष के वीर भी खड़े २ इस दृश्य के देखने में तत्पर हुए ॥४-५॥

चुक्रुशुर्नेदमस्तीति द्रोणद्रौणिकृपादयः ।
तत्कर्म दृष्ट्वा सम्भ्रान्ता हैडिम्बस्य रणाजिरे ॥६॥

इस समय द्रोण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य चिल्लाने लगे, कि अब यह युद्ध समाप्त होने वाला है अर्थात् घटोत्कच सबका विध्वंस उड़ा कर नाश कर देने वाला है। ये रणाङ्गण में हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच के कृत्यों को देखकर बड़े घबराए ॥६॥

सर्वमाविग्नमभवद्धाहाभूतमचेतनम् ।
तव सैन्यं महाराज निराशं कर्णजीविते ॥७॥

हे महाराज! इस समय सारी सेना उद्विग्न हो उठी। उसमें सर्वत्र हाहाकार मच गया। वह मूर्छित सी होकर कर्ण के जीवन में निराश हो गई ॥७॥

दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य कर्णमार्तिं परां गतम् ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं समाहूयेदमब्रवीत् ॥८॥

जब राजा दुर्योधन ने कर्ण को बड़ी झंझट में उलझा हुआ देखा, तो उसने राक्षसेन्द्र अलायुध को बुला कर यह वचन कहा।

एष वैकर्तनः कर्णो हैडिम्बेन समागतः ।
कुरुते कर्म सुमहद्यदस्यौपयिकं मृधे ॥९॥

हे अलायुध! यह सूर्य-पुत्र कर्ण, हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच से भिड़ रहा है। यह उस उग्र कर्म को कर रहा है, जो घटोत्कच की प्रतिक्रिया के निमित्त उपयोगी है ॥९॥

पश्यैतान्पार्थिवाञ्छूरान्निहतान्भैमसेनिना ।
नानाशस्त्रैरभिहतान्पादपानिव दन्तिना ॥१०॥

तुम देखो तो सही ? कि भीमसेन-पुत्र घटोत्कच ने कितने शूरवीर राजा मार गिराए हैं। ये अनेक शस्त्रों से इस तरह मार डाले गए-जैसे हाथी वृक्षों को उखाड़ फेंकता है ॥१०॥

तवैष भागः समरे राजमध्ये मया कृतः ।
तवैवाऽनुमते वीर तं विक्रम्य निबर्हय ॥११॥

हे वीर ! मैं इस घटोत्कच को रण में अन्य राजाओं को छोड़कर तुम्हारे हिस्से में करता हूं। तुम यह चाहते भी हो । अब तुम पराक्रम दिखाकर इसका विनाश करो ॥११॥

पुरा वैकर्तनं कर्णमेष पापो घटोत्कचः ।
मायाबलं समाश्रित्य कर्षयत्यरिकर्शन ॥१२॥

हे अरिकर्शन ! बहुत काल से इस पापी राक्षस घटोत्कच ने अपनी माया का आश्रय लेकर सूर्य-पुत्र कर्ण को उलझा रखा है ।

एवमुक्तः स राज्ञा तु राक्षसो भीमविक्रमः ।
तथेत्युक्त्वा महाबाहुर्घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥१३॥

जब राजा दुर्योधन ने इतना कहा-तो भयङ्कर पराक्रम कर दिखाने वाला, महाबाहु राक्षसराज अलायुध, इस आज्ञा को स्वीकार करके घटोत्कच पर दौड़ा ॥१३॥

ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि प्रभो ।
प्रत्यमित्रमुपायान्तमर्दयामास मार्गणैः ॥१४॥

हे प्रभो ! अब भीमसेन-पुत्र घटोत्कच ने भी कर्ण को छोड़ दिया और अपने बाणों से अपने समीप पहुंचे हुए नवीन शत्रु को व्यथित करना आरम्भ किया ॥१४॥

तयोः समभवद्युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः ।
मत्तयोर्वासिताहेतोर्द्विपयोरिव कानने ॥१५॥

इसके बाद दोनों राक्षसों में क्रोध के साथ इस तरह युद्ध होने लगा, जैसे गर्भ धारण को आई हुई हथिनी के निमित्त दो गजों में वन में युद्ध चल पड़ता है ॥१५॥

रक्षसा विप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि रथिनां वरः ।
अभ्यद्रवद्भीमसेनं रथेनाऽऽदित्यवर्चसा ॥१६॥

जब महारथी कर्ण को राक्षसराज घटोत्कच से छुटकारा मिला, तो उसने सूर्य के तुल्य चमकीले अपने रथ से भीमसेन पर आक्रमण किया ॥१६॥

तमायान्तमनादृत्य दृष्ट्वा ग्रस्तं घटोत्कचम् ।
अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवां पतिम् ॥१७॥
रथेनाऽऽदित्यवपुषा भीमः प्रहरतां वरः ।
किरञ्छरौघान्प्रययावालायुधरथं प्रति ॥१८॥

यद्यपि भीमसेन ने कर्ण को अपनी ओर आते देखा, तो भी उसने अपने पुत्र घटोत्कच को आपत्तिग्रस्त देखकर कर्ण के आने की कुछ भी परवाह नहीं की। प्रहार करने वालों में कुशल, भीमसेन ने घटोत्कच को अलायुध के चक्कर में इस तरह फंसा हुआ देखा, जैसे-सिंह के पंजे में वृषभ फंस गया हो । अब यह सूर्य के समान तेजस्वी रथ से बाण-जाल को बरसाता हुआ अलायुध के रथ पर वेग से झपटा ॥१७-१८॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदाऽलायुधः प्रभो ।
घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समाह्वयत् ॥१९॥

हे प्रभो ! जब राक्षसराज अलायुध ने भीमसेन को आता देखा, तो उसने घटोत्कच को छोड़कर भीमसेन को ललकारा ।

तं भीमः सहसाऽभ्येत्य राक्षसान्तकरः प्रभो ।
सगणं राक्षसेन्द्रं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥२०॥

हे प्रभो ! राक्षसों का अन्त करने वाले भीमसेन ने वेग से आगे बढ़ कर सेना सहित राक्षसराज अलायुध पर बाण बरसाना आरम्भ किया ॥२०॥

तथैवाऽलायुधो राजञ्शिलाधौतैरजिह्मगैः ।
अभ्यवर्षत कौन्तेयं पुनः पुनररिन्दम ॥२१॥

हे अरिमर्दन ! इसी तरह अलायुध ने भी शिला पर तीक्ष्ण किये हुए सीधे जाने वाले बाणों की बार २ कुन्ती-पुत्र भीमसेन पर झड़ी सी लगा दी ॥२१॥

तथा ते राक्षसाः सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन् ।
नानाप्रहरणा भीमास्त्वत्सुतानां जयैषिणः ॥२२॥

हे राजन् ! इसी तरह तुम्हारे पुत्रों की विजय चाहने वाले, अनेक शस्त्र धारी अन्य भयङ्कर राक्षसों ने भी भीमसेन पर आक्रमण किया ॥२२॥

स ताड्यमानो बहुभिर्भीमसेनो महाबलः ।
पञ्चभिः पञ्चभिः सर्वास्तानविध्यच्छितैः शरैः ॥२३॥

जब महाबली भीमसेन पर बहुत से राक्षसवीरों ने आक्रमण किया, तो उसने भी उन सब वीरों को पांच २ तीखे बाण मार कर क्षत-विक्षत कर दिया ॥२३॥

ते वध्यमाना भीमेन राक्षसाः क्रूरबुद्धयः ।
विनेदुस्तुमुलान्नादान्दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥२४॥

जब भीमसेन ने क्रूरबुद्धि इन राक्षसों पर आक्रमण किया-तो वे घोर चीत्कार करते हुए दशों दिशाओं को भाग निकले ॥२४॥

तांस्त्रास्यमानान्भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम् ।
अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरत् ॥२५॥

भीम द्वारा भगाई हुई अपनी सेना को देखकर महाबली राक्षस वेग से दौड़ा और बाणों की वर्षा करने लगा ॥२५॥

तं भीमसेनः समरे तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः ।
अलायुधस्तु तानस्तान्भीमेन विशिखान्रणे ॥२६॥
चिच्छेद कांश्चित्समरे त्वरया कांश्चिदग्रहीत् ।

अब भीमसेन ने भी तीखे नोक वाले बाणों से रण में उनको छेद डाला । अलायुध ने भी भीमसेन द्वारा फैंके हुए कुछ बाणों को तो रण में काट गिराया और कुछ को झपट कर पकड़ लिया ।

स तं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं भीमो भीमपराक्रमः ॥२७॥
गदां चिक्षेप वेगेन वज्रापातोपमां तदा ।

भयानक पराक्रमधारी, भीमसेन ने अलायुध राक्षस को देखकर वज्रपात के समान भयानक गदा को वेग से अलायुध पर चलाया ॥२७॥

तामापतन्तीं वेगेन गदां ज्वालाकुलां ततः ॥२८॥
गदया ताडयामास सा गदा भीममाव्रजत् ।
स राक्षसेन्द्रं कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥२९॥
तानप्यस्याऽकरोन्मोघान्राक्षसो निशितैः शरैः ।

अग्नि ज्वाला से व्याप्त, उस गदा को अपने ऊपर गिरती देखकर अलायुध ने अपनी गदा से उस पर प्रहार किया । इस प्रहार से वह गदा उलटी ही भीमसेन पर चल पड़ी । अब कुन्ती-पुत्र भीम ने राक्षस अलायुध पर बाण-वर्षा करना आरम्भ किया, परन्तु राक्षसराज अलायुध ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उस बाण-वर्षा को भी व्यर्थ कर दिया ॥२८-२९॥

ते चाऽपि राक्षसाः सर्वे रजन्यां भीमरूपिणः ॥३०॥
शासनाद्राक्षसेन्द्रस्य निजघ्नू रथकुञ्जरान् ।

अलायुध के साथी अन्य राक्षस भी रात में भयानक रूप बना २ कर राक्षसेन्द्र अलायुध की आज्ञा से पाण्डवों के उत्तम २ रथियों को मार २ कर गिराने लगे ॥३०॥

पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव वाजिनः परमद्विपाः ॥३१॥
न शान्तिं लेभिरे तत्र राक्षसैः शरपीडिताः ।

हे नृप ! पञ्चाल, सृञ्जय, अश्व और बड़े २ हाथी राक्षसों से पीड़ित हुए कहीं भी शान्ति नहीं पा रहे थे ।३१।

तं तु दृष्ट्वा महाघोरं वर्तमानं महाहवम् ॥३२॥
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमिदं वचः ।

इस महाघोर भीषण युद्ध को प्रवृत्त देखकर कमललोचन भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से यह वचन कहा ॥३२॥

पश्य भीमं महाबाहुं राक्षसेन्द्रवशङ्गतम् ॥३३॥

पदमस्याऽनुगच्छ त्वं मा विचारय पाण्डव ।

हे पाण्डव ! तुम देखते नहीं हो, कि भीमसेन इस राक्षस अलायुध के फेर में फंस गया है । अब तुम उसकी सहायता को पहुंचो-देर न करो ॥३३॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च युधामन्यूत्तमौजसौ ॥३४॥

सहितौ द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः ।

नकुलः सहदेवश्च युयुधानश्च वीर्यवान् ॥३५॥

इतरान्राक्षसान्घ्नन्तु शासनात्तव पाण्डव ।

हे अर्जुन ! तुम, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, युधामन्यु, उत्तमौजा और साथ में ही महारथी द्रौपदी-पुत्र, कर्ण पर आक्रमण करें तथा नकुल, सहदेव और महापराक्रमी सात्यकि, तुम्हारी आज्ञा से अन्य राक्षसों को मारें ॥३४-३५॥

त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुरस्कृताम् ॥३६॥

वारयस्व नरव्याघ्र महद्धि भयमागतम् ।

हे महाबाहो ! नरव्याघ्र ! तुम भी द्रोण को आगे करके चलने वाली इस सेना को रोको । तुम देखते हो, कि कितना भय उपस्थित हो गया है ॥३६॥

एवमुक्ते तु कृष्णेन यथोद्दिष्टा महारथाः ॥३७॥
जग्मुर्वैकर्तनं कर्णं राक्षसांश्चैव तान्रणे ।

जब श्रीकृष्ण ने इतना कहा—तो जिन २ वीरों से आक्रमण करने को कहा था, वे वीर वेग से सूर्य-पुत्र कर्ण और दूसरे वीर राक्षसों पर झपटे ॥३७॥

अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैराशीविषोपमैः ॥३८॥
धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।

अब अत्यन्त बल के साथ खैंच कर छोड़े हुए सर्प के समान भीषण बाणों से महाप्रतापी राक्षसराज अलायुध ने भीमसेन का धनुष काट डाला ॥३८॥

हयांश्चाऽस्य शितैर्बाणैः सारथिं च महाबलः ॥३९॥
जघान मिषतः संख्ये भीमसेनस्य राक्षसः ।

महाबली राक्षसेन्द्र अलायुध ने भीमसेन के देखते २ अपने तीक्ष्ण बाणों से रण में उसके अश्व और सारथि को मार गिराया।

सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वो हतसारथिः ॥४०॥
तस्मै गुर्वीं गदां घोरां विनदन्नुत्ससर्ज ह ।

अब अश्वों और सारथि के मारे जाने से भीमसेन रथ के मध्य से नीचे कूद पड़ा और महाघोर भारी गदा उठाकर गर्जना करते हुए राक्षस पर छोड़ा ॥४०॥

ततस्तां भीमनिर्घोषामापतन्तीं महागदाम् ॥४१॥
गदया राक्षसो घोरो निजघान ननाद च ।

हे नृप ! इस प्रकार भयानक शब्द करने वाली, अपने ऊपर गिरती हुई महागदा को देखकर राक्षसराज अलायुध ने अपनी गदा फैंक कर उस गदा को नष्ट कर दिया और फिर भीषण गर्जना की ॥४१॥

तद् दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य घोरं कर्म भयावहम् ॥४२॥
भीमसेनः प्रहृष्टात्मा गदामाशु परामृशत् ।

हे राजन ! इस प्रकार राक्षसेन्द्र अलायुध के इस भयानक भीषण कर्म को देखकर भीमसेन बड़ा उत्तेजित हुआ और उसने फिर झटपट गदा उठाई ॥४२॥

तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं नररक्षसोः ॥४३॥
गदानिपातसंह्रादैर्भुवं कम्पयतोभृशम् ।

अब इन दोनों मनुष्य और राक्षस में घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ । ये अपनी २ गदा के आघातों से पृथिवी को अत्यन्त कम्पित कर रहे थे ॥४३॥

गदाविमुक्तौ तौ भूयः समासाद्येतरेतरम् ॥४४॥
मुष्टिभिर्वज्रसंह्रादैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।

अब ये गदा से छुटकारा पाकर फिर एक दूसरे के सन्मुख पहुंचे । ये वज्र के समान शब्द करने वाली मुष्टिकाओं के प्रहारों से एक दूसरे को मारने लगे ॥४४॥

रथचक्रैर्युगैरक्षैरधिष्ठानैरुपस्करैः ॥४५॥
यथासन्नमुपादाय निजघ्नतुरमर्षणौ ।

ये दोनों क्रोध में भरे हुए थे। इनके हाथ में रथ के चक्र, जूड़े, धुरे, अधिष्ठान तथा अन्य डण्डे आदि जो कुछ भी आ जाता था, वे उसी से मारने लग जाते थे ॥४५॥

तौ विक्षरन्तौ रुधिरं समासाद्येतरेतरम् ॥४६॥
मत्ताविव महानागौ चकृषाते पुनः पुनः ।

अब इन दोनों के शरीर से रुधिर धारा बह निकली। ये परस्पर एक दूसरे को इस तरह बार २ खैंचने लगे, जैसे दो मदोन्मत्त हाथी एक दूसरे को खैंचते हैं ॥४६॥

तदपश्यद्धृषीकेशः पाण्डवानां हिते रतः ॥४७॥
स भीमसेनरक्षार्थं हैडिम्बिं पर्यचोदयत् ॥४८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधयुद्धे-सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७७॥

हे भारत ! पाण्डवों के हित करने में तत्पर भगवान् श्रीकृष्ण ने यह सब कुछ देखा। उन्होंने भीमसेन की रक्षा के निमित्त हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच को आज्ञा दी ॥४७-४८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में अलायुध और भीमसेन के युद्ध के वर्णन का एक सौ सतहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

एक सौ अठहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—सन्दृश्य समरे भीमं रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात् ।
वासुदेवोऽब्रवीद्राजन्घटोत्कचमिदं वचः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण ने जब समीप में ही राक्षसराज अलायुध द्वारा भीमसेन को रण में फंसा देखा, तो वे घटोत्कच से यह वचन बोले— ॥१॥

पश्य भीमं महाबाहो रक्षसा ग्रस्तमाहवे ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महाद्युते ॥२॥

हे महाबाहो ! तुम रण में राक्षस के चंगुल में फंसे हुए भीमसेन को क्या नहीं देख रहे हो ? हे महाद्युते ! तुम्हारे और सारी सेना के देखते २ भीमसेन को इसने फांस लिया है ॥२॥

स कर्णं त्वं समुत्सृज्य राक्षसेन्द्रमलायुधम् ।
जहि क्षिप्रं महाबाहो पश्चात्कर्णं वधिष्यसि ॥३॥

हे महाबाहो ! अब तुम कर्ण को छोड़कर प्रथम इस राक्षसराज अलायुध को शीघ्र मारो । इसके बाद कर्ण को मार लेना ॥३॥

स वार्ष्णेयवचः श्रुत्वा कर्णमुत्सृज्य वीर्यवान् ।
युयुधे राक्षसेन्द्रेण बकभ्रात्रा घटोत्कचः ॥४॥

जब वीर्यवान् घटोत्कच ने वृष्णिवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण का यह वचन सुना, तो वह महारथी कर्ण को छोड़कर बकासुर के भ्राता, राक्षसेन्द्र अलायुध से युद्ध करने चल पड़ा ॥४॥

तयोः सुतुमुलं युद्धं बभूव निशि रक्षसोः ।
अलायुधस्य चैवोग्रं हैडिम्बेश्चाऽपि भारत ॥५॥

हे भारत ! अब राक्षसराज अलायुध और हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच का इस रात में महावीर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥५॥

अलायुधस्य योधांश्च राक्षसान्भीमदर्शनान् ।
वेगेनाऽऽपततः शूरान्प्रगृहीतशरासनान् ॥६॥
आत्तायुधः सुसंक्रुद्धो युयुधानो महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च चिच्छिदुर्निशितैः शरैः ॥७॥

हे राजन् ! अब जो अलायुध के साथ भयानक दर्शन वाले शूरवीर राक्षस योद्धा धनुष बाण लेकर वेग से आक्रमण कर रहे थे, उनको महारथी शस्त्रों से सुसज्जित सात्यकि, नकुल और सहदेव क्रोध में भरकर अपने तीक्ष्ण बाणों से मार २ कर विछाने लगे ॥६-७॥

सर्वांश्च समरे राजन्किरीटी क्षत्रियर्षभान् ।
परिचिक्षेप बीभत्सुः सर्वतः प्रकिरञ्छरान् ॥८॥

हे राजन ! दूसरी ओर रण में सब ओर से बाणवर्षा करता हुआ किरीटधारी अर्जुन, सारे उत्तम २ क्षत्रियवीरों को क्षत-विक्षत करने लगा ॥८॥

कर्णश्च समरे राजन्व्यद्रावयत पार्थिवान् ।
धृष्टद्युम्नशिखण्ड्यादीन्पञ्चालानां महारथान् ॥९॥

हे राजन्! इधर कर्ण भी पाण्डवपक्ष के राजा तथा पञ्चालों के महारथी, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि को विचलित करनेलगा।

तान्वध्यमानान्दृष्ट्वाऽथ भीमो भीमपराक्रमः।
अभ्ययात्त्वरितः कर्णं विशिखान्प्रकिरन्रणे ॥१०॥

इस तरह पञ्चालवीरों को मारे जाते देखकर भयानक पराक्रमधारी भीमसेन वेग से कर्ण पर बाणवर्षा करते हुए वहां पहुँचे ॥१०॥

ततस्तेऽप्याययुर्हत्वा राक्षसान्यत्र सूतजः।
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ॥११॥
ते कर्णं योधयामासुः पञ्चाला द्रोणमेव तु।

हे नृपते! इसी तरह नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि भी राक्षसवीरों को मारकर वहीं पहुँचे, जहां पर महावीर कर्ण पाञ्चाल सेना का विनाश कर रहे थे। इधर पाञ्चाल भी अपनी शक्ति लगाकर कर्ण और द्रोण से युद्ध कर रहे थे ॥११॥

अलायुधस्तु संक्रुद्धो घटोत्कचमरिन्दमम्।
परिघेणाऽतिकायेन ताडयामास मूर्धनि ॥१२॥

हे राजन्! राक्षसराज अलायुध बहुत क्रुद्ध हो रहा था, उसने अरिमर्दन घटोत्कच के मस्तक पर एक बहुत बड़े परिघ से प्रहार किया ॥१२॥

स तु तेन प्रहारेण भैमसेनिर्महाबलः।
ईषन्मूर्छितमात्मानमस्तम्भयत वीर्यवान् ॥१३॥

इस परिघ के प्रहार से भीमसेन-पुत्र, महाबली, वीर्यवान् घटोत्कच थोड़ी सी मूर्च्छा को प्राप्त हो गया। इसने अपने को वहीं जड़ीभूत सा देखा ॥१३॥

ततो दीप्ताग्निसंकाशां शतघण्टामलंकृताम् ।
चिक्षेप तस्मै समरे गदां काञ्चनभूषिताम् ॥१४॥

इसके बाद प्रदीप्त अग्नि के समान प्रज्वलित, सैंकड़ों घण्टियों से युक्त, अलंकृत सुवर्णजटित, गदा को रण में घटोत्कच ने अलायुध पर फैंका ॥१४॥

सा हयांश्च रथं चाऽस्य सारथिं च महास्वना ।
चूर्णयामास वेगेन विसृष्टा भीमकर्मणा ।१५॥

भयानक कर्म करने वाले घटोत्कच द्वारा फैंकी हुई महान् कर्म करने वाली गदा ने अश्व, रथ और इसके सारथि को चूर्ण कर डाला ॥१५॥

स भग्नहयचक्राक्षाद्विशीर्णध्वजकूवरात् ।
उत्पपात रथात्तूर्णं मायामास्थाय राक्षसीम् ॥१६॥

राक्षसराज, अलायुध, राक्षसी माया का अवलम्बन करके अश्व, चक्र और अक्षों के नाश से युक्त, ध्वजा और कूबर के विशीर्ण होने से छिन्न-भिन्न रथ से वेग से कूद पड़ा ॥१६॥

स समास्थाय मायां तु ववर्ष रुधिरं बहु ।
विद्युद्विभ्राजितं चाऽऽसीत्तुमुलाभ्राकुलं नभः ॥१७॥

अब इसने राक्षसी माया का आश्रय लेकर रुधिर बरसाना आरम्भ किया । इस समय आकाश बादलों और बिजली से व्याप्त हो रहा था ॥ १७ ॥

ततो वज्रनिपाताश्च साशनिस्तनयित्नवः ।
महांश्चटचटाशब्दस्तत्राऽऽसीच्च महाहवे ॥१८॥

अब वज्र गिरने लगे और मेघों में बिजली कड़कड़ाने लगी । इस महायुद्ध में बड़ा भारी चटचटा शब्द खड़ा हो गया ॥१८॥

तां प्रेक्ष्य महतीं मायां राक्षसो राक्षसस्य च ।
ऊर्ध्वमुत्पत्य हैडिम्बिस्तां मायां माययाऽवधीत्॥१९॥

राक्षसराज अलायुध की इस महती माया को राक्षसेन्द्र हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच देखकर आकाश में उछला और उस माया को अपनी माया से नष्ट कर डाला ॥ १९ ॥

सोऽभिवीक्ष्य हतां मायां मायावी माययैव हि ।
अश्मवर्षं सुतुमुलं विससर्ज घटोत्कचे ॥२०॥

जब अलायुध ने अपनी माया को नष्ट देखा, तो वह मायावी फिर अपनी माया द्वारा घटोत्कच पर घोर पत्थरों की वर्षा करने लगा ॥ २० ॥

अश्मवर्षं स तं घोरं शरवर्षेण वीर्यवान् ।
दिक्षु विध्वंसयामास तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२१॥

वीर्यवान् घटोत्कच ने भी उस घोर पत्थरों की वर्षा को अपनी बाणवर्षा से विध्वंस करके दिशाओं में विलीन कर दिया, जिसे देखकर सबने बड़ा अद्भुत समझा ॥ २१ ॥

ततो नानाप्रहरणैरन्योन्यमभिवर्षताम् ।
आयसैः परिघैः शूलैर्गदामुसलमुद्गरैः ॥२२॥
पिनाकैः करवालैश्च तोमरप्रासकम्पनैः ।
नाराचैर्निशितैर्भल्लैः शरैश्चक्रैः परश्वधैः ।
अयोगुडैर्भिन्दिपालैर्गोशीर्षोलूखलैरपि ॥२३॥

हे भारत ! अब ये दोनों चोर, लोहमय, परिघ, (धन) शूल, गदा, मुसल, मुद्गर, पिनाक, करवाल, (तलवार) तोमर, प्रास, कम्पन, तीदण नाराच, भल्ल संज्ञक वाण, चक्र, परश्वध, अयोगुड, भिन्दिपाल, गोशीर्ष, उलूखल आदि अनेक प्रकार के शस्त्रों से प्रहार करने लगे ॥ २२-२३ ॥

उत्पाटितैर्महाशाखैर्विविधैर्जगतीरुहैः ।
शमीपीलुकदम्बैश्च चम्पकैश्चैव भारत ॥२४॥
इंगुदैर्बदरीभिश्च कोविदारैश्च पुष्पितैः ।
पलाशैश्चाऽरिमेदैश्च प्लक्षन्यग्रोधपिप्पलैः ॥२५॥
महद्भिः समरे तस्मिन्नन्योन्यमभिजघ्नतुः ।

हे भरतर्षभ ! ये दोनों राक्षस इसी तरह बड़ी २ शाखा वाले, अनेक उखाड़े हुए शमी, पीलु, कदम्ब, चम्पक, इंगुदी, बदरी, कोविदार, खिले हुए पलाश, अरिमेद, प्लक्ष, न्यग्रोध, पिप्पल आदि तथा अन्य बड़े २ वृक्षों से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥२५॥

विपुलैः पर्वताग्रैश्च नानाधातुभिराचितैः ॥२६॥
तेषां शब्दो महानासीद्वज्राणां भिद्यतामिव ।

हे राजन्! इसी तरह इसने फिर अनेक धातुओं से व्याप्त, बहुत से पर्वतों के शिखरों का प्रहार किया, जिनका इतना भीषण शब्द खड़ा हो गया, मानो वज्र फट रहे हो ॥ २६ ॥

युद्धं समभवद्घोरं भैम्यलायुधयोर्नृप ॥२७॥
हरीन्द्रयोर्यथा राजन्वालिसुग्रीवयोः पुरा ।

हे नृप! इस समय भीमसेन-पुत्र घटोत्कच और अलायुध का इस तरह घोर युद्ध हो रहा था, जैसे वानराधिप बलि और सुग्रीव का युद्ध होने लगा हो ॥ २७ ॥

तौ युद्ध्वा विविधैर्घोरैरायुधैर्विशिखैस्तथा ।
प्रगृह्य च शितौ खड्गावन्योन्यमभिपेततुः ॥२८॥

ये अनेक घोर शस्त्रों तथा बाणों से युद्ध करके और तीक्ष्ण खड्ग उठा कर एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे ॥ २८ ॥

तावन्योन्यमभिद्रुत्य केशेषु सुमहाबलौ ।
भुजाभ्यां पर्यगृह्णीतां महाकायौ महाबलौ ॥२९॥

हे नृप! इन महाकायधारी, महाबली राक्षसों ने इनके लम्बे २ बालों को एक दूसरे ने दौड़ कर अपनी २ भुजाओं से पकड़ लिया ॥ २९ ॥

तौ स्विन्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रुवाते जनाधिप ।
रुधिरं च महाकायावतिवृष्टाविवाम्बुदौ ॥३०॥

हे जनाधिप! इस समय इनके सारे शरीर में पसीना भर गया और वह पानी की तरह बहने लगा। इनके शरीर से रुधिर

की धारा भी इस तरह निकल चली, जैसे महामेघ से जल की महती वृष्टि हो रही हो ॥ ३० ॥

अथाऽभिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसम् ।
बलेनाऽऽक्षिप्य हैडिम्बिश्चकर्ताऽस्य शिरो महत् ॥३१॥

अब राक्षसेन्द्र घटोत्कच ने बड़े वेग से उछल कर अलायुध को उठा कर बलपूर्वक दे मारा और उसका विशाल मस्तक अपने शस्त्र से काट लिया ॥ ३१ ॥

सोऽपहृत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ।
तदा सुतुमुलं नादं ननाद सुमहाबलः ॥३२॥

हे राजन् ! कुण्डलों से विभूषित इसके मस्तक को काट कर महाबली घटोत्कच ने अत्यन्त घोर सिंहनाद किया और बड़ी तीव्र गर्जना की ॥ ३२ ॥

हतं दृष्ट्वा महाकायं बकज्ञातिमरिन्दमम् ।
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान्विनेदिरे ॥३३॥

हे नृप ! बकासुर के भ्राता, अरिमर्दन, महाकायधारी अलायुध को मृत देखकर पञ्चाल और पाण्डव अत्यन्त वेग से सिंहनाद करने लगे ॥ ३३ ॥

ततो भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च ।
अवादयन्पाण्डवेया राक्षसे निहते युधि ॥३४॥

जब यह राक्षस अलायुध मारा गया, तो पाण्डवपक्ष के वीरों ने सहस्रों भेरी और दशों हजार शंख रणभूमि में बजाये ॥३४॥

अतीव सा निशा तेषां बभूव विजयावहा ।
विद्योतमाना विबभौ समन्ताद्दीपमालिनी ॥३५॥

हे राजन् ! इस रात में पाण्डवों को बहुत ही अधिक विजय प्राप्त हुई । यह प्रदीपों से देदीप्यमान रात्रि सब ओर से प्रकाशित होकर पाण्डवों को विजय देने लगी ॥ ३५ ॥

अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः ।
दुर्योधनस्य प्रमुखे चिक्षेप गतचेतसः ॥३६॥

भीमसेन-पुत्र महाबली घटोत्कच ने मृतक राक्षस अलायुध के मस्तक को दुर्योधन के सन्मुख फैंक दिया ॥ ३६ ॥

अथ दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा हतमलायुधम् ।
बभूव परमोद्विग्नः सह सैन्येन भारत ॥३७।

हे भारत ! जब राजा दुर्योधन ने अलायुध राक्षस को मृत देखा, तो वह अपनी सेना के साथ बड़ा ही उद्विग्न हुआ ॥३७॥

तेन ह्यस्य प्रतिज्ञातं भीमसेनमहं युधि ।
हन्तेति स्वयमागम्य स्मरता वैरमुत्तमम् ॥३८॥
ध्रुवं स तेन हन्तव्य इत्यमन्यत पार्थिवः ।
जीवितं चिरकालं हि भ्रातृणां चाऽप्यमन्यत ॥३९॥

इस अलायुध ने स्वयं आकर पुराने वैर के कारण यह कहा था, कि मैं आज इस युद्ध में भीमसेन को मार गिराऊंगा, इसीलिए राजा दुर्योधन ने यह समझ लिया था, कि यह अवश्य

इसे मार लेगा और मुझे भी अपने भाइयों के साथ चिरकाल तक को जीवन प्राप्त हो जावेगा ॥ ३८-३९ ॥

स तं दृष्ट्वा विनिहतं भीमसेनात्मजेन वै ।
प्रतिज्ञां भीमसेनस्य पूर्णामेवा ऽभ्यमन्यत ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधयुद्धे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७८॥

अब भीमसेन के पुत्र घटोत्कच द्वारा मारे हुए अलायुध को देखकर राजा दुर्योधन ने भीमसेन की प्रतिज्ञा को भी पूर्ण होती हुई समझा ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में घटोत्कच द्वारा अलायुध के वध का एक सौ अठहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

एक सौ उनासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच— निहत्याऽलायुधं रक्षः प्रहृष्टात्मा घटोत्कचः
ननाद विविधान्नादान्वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! राक्षसराज अलायुध को मार कर भीमसेन-पुत्र घटोत्कच बड़ा प्रसन्न हुआ । इसने तुम्हारी सेना के मुख पर खड़े होकर अनेक प्रकार के सिंहनाद किए ॥१॥

तस्य तं तुमुलं शब्दं श्रुत्वा कुञ्जरकम्पनम् ।
तावकानां महाराज भयमासीत्सुदारुणम् ॥२॥

हे महाराज ! घटोत्कच की इस भीषण गजों को कंपा देने वाली गर्जना को सुनकर तुम्हारी सेना के वीरों के हृदय में भय का सञ्चार हो गया ॥२॥

अलायुधविषक्तं तु भैमसेनिं महाबलम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महाबाहुः पञ्चालान्समुपाद्रवत् ॥३॥

महाबली भीमसेन-पुत्र घटोत्कच को अलायुध के साथ युद्ध करता देखकर महाबाहु कर्ण ने पाञ्चालों पर आक्रमण कर दिया

दशभिर्दशभिर्बाणैर्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्बिभेद नतपर्वभिः ॥४॥

अब महारथी धृष्टद्युम्न और शिखण्डी को पूर्ण शक्ति के साथ खैंचकर छोड़े हुए नतपर्व वाले, दश २ दृढ़ बाणों से कर्ण ने बींध डाला ॥४॥

ततः परमनाराचैर्युधामन्यूत्तमौजसौ ।
सात्यकिं च रथोदारं कम्पयामास मार्गणैः ॥५॥

इसके बाद उत्तम २ नाराचों से युधामन्यु और उत्तमौजा तथा महारथी सात्यकि को भी अपने बाणों से कर्ण ने कम्पायमान कर दिया ॥५॥

तेषामप्यस्यतां संख्ये सर्वेषां सव्यदक्षिणम् ।
मण्डलान्येव चापानि व्यदृश्यन्त जनाधिप ॥६॥

हे जनाधिप ! जब सात्यकि आदि पाण्डववीर भी दांयी और बांयी ओर से कर्ण पर बाण फेंक रहे थे, तो उन लोगों के भी धनुष का केवल मण्डल ही दिखाई देता था ॥६॥

तेषां ज्यातलनिर्घोषो रथनेमिस्वनश्च ह ।
मेघानामिव घर्मान्ते बभूव तुमुलो निशि ॥७॥

हे राजन् ! इस रात्रि में इन वीरों के धनुष की प्रत्यञ्चा का शब्द और रथनेमि की ध्वनि इतनी प्रचण्ड हो रही थी, जैसे-वर्षा-काल में मेघों की महागर्जना बढ़ रही हो ॥७॥

ज्यानेमिघोषस्तनयित्नुमान्वै धनुस्तडिन्मण्डलकेतुशृङ्गः
शरौघवर्षाकुलवृष्टिमांश्च संग्राममेघः स बभूव राजन्

हे भरतर्षभ ! यह संग्राम रूप मेघ बहुत फैल गया । इसमें धनुष की डोरी और रथ की नेमि की ध्वनि गर्जना के तुल्य थी । धनुष, बिजली का मण्डल और ध्वजा, पताका उसके शिखर माने गए एवं बाणों के समूह की वर्षा, मेघ की झड़ी सी दिखाई देती थी ॥८॥

तदद्भुतं शैल इवाऽप्रकम्प्यो वर्षं महाशैलसमानसारः ।
विध्वंसयामास रणे नरेन्द्र वैकर्तनः शत्रुगणावमर्दी

हे नरेन्द्र ! इन पाण्डववीरों की अद्भुत बाण-वर्षा को शत्रुगणनाशक, अकम्पित नहीं होने वाले महाशैल के समान आकारधारी सूतपुत्र कर्ण ने बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥९॥

ततोऽतुलैर्वज्रनिपातकल्पैः शितैःशरैः काञ्चनचित्रपुङ्खैः
शत्रून्व्यपोहत्समरे महात्मा वैकर्तनः पुत्रहिते रतस्ते

हे महीपाल ! तुम्हारे पुत्रों के हित में तत्पर, महावीर, सूर्य-पुत्र कर्ण ने अपने वज्र के तुल्य, सुवर्ण मूलधारी तीक्ष्ण बाणों से रण में शत्रुओं को मार २ कर बिछा दिया ॥१०॥

सञ्छिन्नभिन्नध्वजिनश्च केचित्केचिच्छरैरर्दितभिन्नदेहाः
केचिद्विसूता विहयाश्च केचिद्वैकर्तनेनाऽऽशु कृता बभूवुः

हे नृप ! सूर्य-पुत्र कर्ण ने किन्हीं वीरों की तो ध्वजा छिन्न-भिन्न कर दी और बहुत से वीरों की देह बाणों से छेद डाली । कुछ को सारथि और अश्वों से हीन बना दिया । हे राजन् ! महारथी कर्ण ने इस प्रकार की खलबली सारी रणभूमि में मचा डाली ॥११॥

अविन्दमानास्त्वथ शर्म संख्ये यौधिष्ठिरंतेबलमभ्यपद्यन्
तान्प्रेक्ष्य भग्नान्विमुखीकृतांश्च घटोत्कचोरोषमतीवचक्रे

हे महाराज ! जब पाण्डववीरों को कहीं भी रण में सुख प्राप्त नहीं हुआ, तो वे राजा युधिष्ठिर की सेना में पहुंचे । अपने पक्ष के वीरों को इस प्रकार सेना से विमुख होकर भागते देखकर राक्षसराज घटोत्कच अत्यन्त कुपित हो उठा ॥१२॥

आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं रथोत्तमं सिंहवत्संननाद
वैकर्तनं कर्णमुपेत्य चापि विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः

अब घटोत्कच ने सुवर्ण और रत्नों से चित्र विचित्र उत्तम रथ पर चढ़ कर सिंह की तरह गर्जना करना आरम्भ किया। वह सूर्य-पुत्र कर्ण के समीप पहुंच कर वज्र तुल्य बाणों से कर्ण को आच्छादित करने लगा ॥१३॥

तौ कर्णिनाराचशिलीमुखैश्च नालीकदण्डासनवत्सदन्तैः
वराहकर्णैः सविपाठशृङ्गैःक्षुरप्रवर्षैश्च विनेदतुः खम् ॥१४॥

अब घटोत्कच और कर्ण ने कर्णि, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दण्डासन, वत्सदन्त, वराहकर्ण, विपाठशृङ्ग और क्षुरप्रसंज्ञक बाणों से आकाश को भर दिया ॥१४॥

तद्बाणधारावृतमन्तरिक्षं तिर्यग्गताभिः समरे रराज।
सुवर्णपुङ्खज्वलितप्रभाभिर्विचित्रपुष्पाभिरिव स्रजाभिः ॥१५॥

इन बाणों की धारा से सारा आकाश भर गया तथा इनकी सुवर्णमय मूल से तीखी जाने वाली कान्ति से आकाश ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे-विचित्र पुष्पों की माला धारण किये हुए स्त्री पुरुषों से नगर सुशोभित हो रहा हो ॥१५॥

समाहितावप्रतिमप्रभावावन्योन्यमाजघ्नतुरुत्तमास्त्रैः।
तयोर्हिवीरोत्तमयोर्न कश्चिद्ददर्श तस्मिन्समरे विशेषम् ॥१६॥

ये अद्भुत प्रतापशाली, बड़े सावधान कर्ण और घटोत्कच, अपने २ उत्तम शस्त्रों से एक दूसरे को मारने लगे। इन दोनों उत्तम वीरों के विषय में कोई भी वीर कुछ तारतम्य (फर्क) नहीं देख पाता था ॥१६॥

अतीव तच्चित्रमतुल्यरूपं बभूव युद्धं रविभीमसून्वोः।
समाकुलं शस्त्रनिपातघोरं दिवीव राह्वंशुमतोः प्रमत्तम्॥१७॥

हे भारत ! यह अत्यन्त विचित्र, अप्रतिम, शस्त्रों के आघात से घोर युद्ध, सूर्य-पुत्र कर्ण और भीमसेन-पुत्र घटोत्कच में इतनी तीव्रता से फैला, कि जैसा आकाश में राहु और सूर्य का युद्ध होता है ॥१७॥

सञ्जय उवाच—घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप।
ततः प्रादुश्चकारोग्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥१८॥
तेनाऽस्त्रेणाऽवधीत्तस्य रथं सहयसारथिम्।
विरथश्चापि हैडिम्बिः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥१९॥

सञ्जय कहने लगे—हे नृप ! जब अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण, घटोत्कच से अपनी कुछ भी अधिकता न दिखा सके, तो उन्होंने अपने उग्र अस्त्र का प्रादुर्भाव किया। इस उग्र अस्त्र से कर्ण ने घटोत्कच के अश्व और सारथि के सहित रथ को चकना-चूर कर दिया। जब हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच रथ-हीन हो गया, तो वह बहुत शीघ्र वहां से अलक्षित हो गया ॥१८-१९॥

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्नन्तर्हिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे।
मामकैः प्रतिपन्नं यत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥२०॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय ! जब कूट-योधी राक्षस घटोत्कच अलक्षित हो गए-तो मेरे पुत्रों ने क्या समझा-यह मुझे बताओ ॥२०॥

सञ्जय उवाच —

अन्तर्हितं राक्षसेन्द्रं विदित्वा सम्प्राक्रोशन्कुरवः सर्व एव ।
कथं नाऽयं राक्षसः कूटयोधी हन्यात्कर्णं समरेऽदृश्यमानः

सञ्जय बोले—हे भारत ! जब कौरववीरों ने राक्षसराज घटोत्कच को अलक्षित देखा, तो सारे कौरव चिल्लाने लगे, कि कहीं यह छल से युद्ध करने वाला राक्षस अलक्षित होकर कर्ण को मार न डाले ॥२१॥

ततः कर्णो लघुचित्रास्त्रयोधी सर्वा दिशः प्रावृणोद्बाणजालैः
न वै किञ्चित्प्रापतत्तत्र भूतं तमोभूते सायकैरन्तरिक्षे ॥२२॥

अब बड़ी शीघ्रता और विचित्र अस्त्रों के साथ युद्ध करने वाले कर्ण ने अपने बाण-जाल से सारी दिशाएँ आच्छादित कर दी। बाणों के आच्छादन से सर्वत्र अन्धकार हो गया, जिससे कोई भी पदार्थ दिखाई नहीं देता था ॥२२॥

नैवाऽऽददानो न च सन्दधानो न चेषुधीस्पृश्यमानः कराग्रैः ।
अदृश्यद्वै लाघवात्सूतपुत्रः सर्वं बाणैश्छादयानोऽन्तरिक्षम् ।

हे राजन् ! सूत-पुत्र कर्ण ने अपने बाणों से सारे आकाश को भर दिया। यह इतनी फुर्ती कर रहे थे, कि बाणों को लेते, धनुष पर चढ़ाते तथा हाथों से तूणीर से बाण निकालते हुए दिखाई ही नहीं देते थे ॥२३॥

ततो मायां दारुणामन्तरिक्षे घोरां भीमां विहितां राक्षसेन ।
अपश्याम लोहिताभ्रप्रकाशां देदीप्यन्तीमग्निशिखामिवोग्राम् ॥

इसके अनन्तर अन्तरिक्ष में राक्षसराज घटोत्कच ने भयङ्कर घोर और दारुण माया की रचना की। यह माया लाल बादलों की तरह प्रकाशित और देदीप्यमान, उग्र अग्नि शिखा के तुल्य दिखाई देने लगी ॥२४॥

ततस्तस्यां विद्युत प्रादुरासन्नुल्काश्चापिज्वलिताःकौरवेन्द्र।
घोषश्चाऽस्याःप्रादुरासीत्सुघोरःसहस्रशोनदतांदुन्दुभीनाम्

हे कौरवेन्द्र! अब इस मायामेघ में बिजली उठने लगी और जलती हुई उल्का चमकने लगी। इसमें ही सहस्रों दुन्दुभियों के बजने के तुल्य महाघोर घोष उत्पन्न हो गया ॥२५॥

ततः शराः प्रापतन्रुक्मपुङ्खाःशक्त्यृष्टिप्रासमुसलान्यायुधानि
परश्वधास्तैलधौताश्च खड्गाः प्रदीप्ताग्रास्तोमराः पट्टिशाश्च ॥
मयूखिनः परिघा लोहबद्धा गदाश्चित्राः शितधाराश्च शूलाः।
गुर्व्यो गदा हेमपट्टावनद्धाः शतघ्न्यश्च प्रादुरासन्समन्तात्॥

अब सुवर्ण मूलधारी बाण, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, मुसल आदि शस्त्र, परशु, तेल से चमकाये हुए खड्ग, चमकते हुए तोमर और पट्टिश, किरणधारी परिघ, लोहमय गदा, तीक्ष्ण धार वाले शूल, सुवर्णपत्र से जटित भारी गदा और शतघ्नियां सब ओर रण में चल पड़ी ॥२६-२७॥

महाशिलाश्चाऽपतंस्तत्र तत्र सहस्रशः साशनयश्च वज्राः।
चक्राणि चाऽनेकशतक्षुराणि प्रादुर्बभूवुर्ज्वलनप्रभाणि ॥

इस स्थान में सहस्रों की संख्या में बड़ी २ शिला और कड़क के साथ बिजली गिरने लगी। इसी तरह अनेक तीक्ष्ण धार वाले अग्नि के समान प्रदीप्त कान्ति वाले चक्र चलने लगे ॥२८॥

तां शक्तिपाषाणपरश्वधानां प्रासासिवज्राशनिमुद्गराणाम् ।
वृष्टिं विशालां ज्वलितां पतन्तीं कर्णः शरौघैर्नशशाकहन्तुम्

शक्ति, पाषाण, परश्वध, प्रास, असि, वज्र, अशनि, मुद्गर आदि शस्त्रों की जलती हुई विशाल गिरती हुई वृष्टि को अपने बाण-जाल से कर्ण भी काटने में समर्थ न हो सका ॥२९॥

शराहतानां पततां हयानां वज्राहतानां च तथा गजानाम्
शिलाहतानां च महारथानां महान्निनादः पततां बभूव॥२०

बाणों से आहत होकर गिरते हुए अश्व, वज्र से आहत गज तथा शिला से आहत होकर गिरते हुए महारथियों का महान् आर्तनाद रणभूमि में बढ़ने लगा ॥३०॥

सुभीमनानाविधशस्त्रपातैर्घटोत्कचेनाऽभिहतं समन्तात् ।
दौर्योधनं वै बलमार्तरूपमावर्तमानं ददृशे भ्रमत्तत् ॥३१॥

हे राजन्! अनेक भांति के भयानक शस्त्रों के आघात से घटोत्कच ने सारी दुर्योधन सेना को सब ओर से अत्यन्त व्याकुल कर दिया। इस समय कौरवसेना बड़ी आर्तनाद करती हुई रणभूमि में घूमती दिखाई देने लगी ॥३१॥

हाहाकृतं सम्परिवर्तमानं संलीयमानं च विषण्णरूपम् ।
ते त्वार्यभावात्पुरुषप्रवीराः पराङ्मुखा नो बभूवुस्त नीदाम्

हे राजन्! यह सारी कौरवसेना हाहाकार कर रही थी। यह इतनी सुस्त हो गई, कि इसका रूप बहुत ही उदास दिखाई देता था। इनमें बहुत से पुरुषप्रवीर आर्यत्व का अभिमान करके रण से उस समय पराङ्मुख नहीं हो रहे थे ॥२२॥

तां राक्षसीं भीमरूपां सुघोरां वृष्टिं महाशस्त्रमयीं पतन्तीम्
दृष्ट्वा बलौघांश्च निपात्यमानान्महद्भयं तव पुत्रान्विवेश ॥

हे महाभाग! राक्षसराज घटोत्कच द्वारा की गई महाभयानक, अत्यन्त घोर शस्त्रवृष्टि को गिरती हुई तथा उससे सेना समूह को नष्ट होता देखकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन आदि भयभीत हो गये ॥२३॥

शिवाश्च वैश्वानरदीप्तजिह्वाः सुभीमनादाः शतशो नन्दतीः।
रक्षोगणान्नर्दतश्चापि वीक्ष्य नरेन्द्रयोधा व्यथिता बभूवुः ॥

इस समय अपने मुख से अग्नि निकालती हुई बहुत सी लोमड़ियां भयङ्कर शब्द करने लगी। ये कौरववीर, राक्षसों को गर्जते देखकर अत्यन्त ही व्यथित हुए ॥२४॥

ते दीप्तजिह्वानलतीक्ष्णदंष्ट्रा विभीषणाः शैलनिकाशकायाः।
नभोगताः शक्तिविषक्तहस्ता मेघा व्यमुञ्चन्निव वृष्टिमुग्राम्

इन राक्षसों की जिह्वा आग के तुल्य जल रही थी। इनकी दाँढ़े बड़ी तीव्र थी। ये पर्वत के समान शरीरधारी राक्षस बड़े ही भयानक दिखाई देते थे। ये शक्ति आदि शस्त्रों को हाथ में

होकर आकाश में उड़ गए और वहां मेघों की भांति उग्र शस्त्र वृष्टि करने लगे ॥३५॥

तैराहतास्ते शरशक्तिशूलैर्गदाभिरुग्रैः परिघैश्च दीप्तैः ।
वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैः शतघ्निचक्रैर्मथिताश्च पेतुः ॥

बाण, शक्ति, शूल, गदा, उग्र और दीप्त परिघ, वज्र, धनुष अशनि और शतघ्नी समूह के प्रहारों से उन राक्षस द्वारा आहत और चकनाचूर होकर राजा लोग रणभूमि में गिरने लगे ॥३६॥

शूलाभुशुण्ड्योऽश्मगुडाःशतघ्न्यःस्थूलाश्चकार्ष्णायसपट्टनद्धाः
तेऽवाकिरंस्तव पुत्रस्य सैन्यं ततोऽभवत् कश्मलंप्रादुरासीत् ॥

हे राजन्! शूल, भुशुण्डी, पत्थरों के टुकड़े, शतघ्नी तथा दृढ़ लोह के पत्तर से मढ़े हुए स्थूणा नामक शस्त्रों से तुम्हारी सेना व्याप्त हो गई। इस समय तुम्हारी सेना में बड़ी भयानक उदासी छा गई ॥३७॥

विकीर्णान्त्रा निहतैरुत्तमाङ्गैः समग्नाङ्गाः शिश्यिरेतत्रशूराः
छिन्ना हयाः कुञ्जराश्चापिभग्नाःसंचूर्णिताश्चैवरथाःशिलाभिः

हे नराधिप! तुम्हारी सेना के बहुतों के मस्तक कट गए। अनेकों की आतें निकल आई। बहुत से वीर अंग भंग होकर रणभूमि में गिर गए। अश्वों के शरीर छिन्नभिन्न हो गए। हाथी भी विदीर्ण कर दिये गए तथा शिलाओं से रथ भी चकनाचूर कर डाले ॥३८॥

एवं महच्छस्त्रवर्षं सृजन्तस्ते यातुधाना भुवि घोररूपाः।
मायाःसृष्टास्तत्रघटोत्कचेननाऽमुञ्चन्वैयाचमानंनभीतम्

हे राजन्! इस प्रकार घोर रूपधारी राक्षस महान शस्त्र-वृष्टि करने लगे। घटोत्कच ने बड़ी भारी माया रची थी। ये राक्षस न तो प्राण भीख मांगने वालों को छोड़ते थे और न भयभीतों के ही प्राणों को क्षमा करते थे ॥३६॥

तस्मिन्घोरे कुरुवीरावमर्दे कालोत्सृष्टेक्षत्रियाणामभावे
ते वै भग्नाःसहसा व्यद्रवन्त आक्रोशन्तःकौरवाःसर्वएव
पलायध्वं कुरवो नैतदस्ति सेन्द्रादेवाघ्नन्तिनःपाण्डवार्थे
तथा तेषां मज्जतां भारतानांतस्मिन्द्वीपः सूतपुत्रोबभूव

इस प्रकार क्षत्रियों के विनाशी घोर युद्ध में समय के अनुसार उन राक्षसों द्वारा क्षत्रियों का अभाव होने लगा। हे नृप! अब कौरवगण चिल्लाते हुए एकदम बिखर कर भागते हुए कहने लगे-हे कौरवो! भागो, नहीं तो तुममें कोई भी न बचेगा। आज तो पाण्डवों की विजय के लिए, मानो इन्द्र आदि देवता हमारा वध कर रहे हैं। हे भारत! इस समय विपत्ति समुद्र में डूबते हुए कौरवों का सूत-पुत्र कर्ण ही द्वीप के तुल्य रक्षक बन सका ॥४१॥

तस्मिन्संक्रन्दे तुमुले वर्तमानेसैन्येभग्नेलीयमानेकुरूणाम्
अनीकानां प्रविभागे प्रकाशे नाऽज्ञायन्तकुरवोनेतरेच

हे महाभाग ! जब यह घोर भयानक युद्ध प्रवृत्त हो रहा था और कौरवसेना भाग रही थी, तो कौरव, पाण्डवों की सेना के विभाग के चिन्ह प्रायः लुप्त हो चुके थे, उस समय कौरव और पाण्डव वीरों की पृथक् २ पहिचान न हो सकी ॥४२॥

निर्मर्यादे विद्रवे घोररूपेसर्वादिशःप्रेक्षमाणाःस्मशून्याः
तां शस्त्रवृष्टिमुरसा गाहमानं कर्णमेकंतत्रराजन्नपश्यन्

हे राजन् ! जब इस घोर युद्ध में योद्धा मर्यादाहीन होकर बिखर गये, तो जिधर देखो—उधर ही दिशाएँ सूनी दिखाई देती थी। इस समय राक्षसों की बाणवृष्टि को अपनी छाती पर सहते हुए केवल अकेले एक कर्ण ही रणभूमि में दिखाई दे रहे थे ॥४३॥

ततो बाणैराववृणोदन्तरिक्षं दिव्यांमायांयोधयन्राक्षसस्य
ह्रीमान्कुर्वन्दुष्करं चाऽऽर्यकर्म नैवाऽमुह्यत्संयुगेसूतपुत्रः

हे जनाधिप ! इस समय राक्षस घटोत्कच की माया से युद्ध करते हुए महारथी कर्ण ने सारा अन्तरिक्ष बाणों से भर दिया। सूतपुत्र कर्ण अपने आर्यत्व की लज्जा को रखने वाला था, इससे दुष्कर आर्यकर्म में तत्पर होकर युद्ध करता रहा। इसको युद्ध में कुछ भी घबराहट न हुई ॥४४॥

ततो भीताः समुदैक्षन्तकर्णंराजन्सर्वेसैन्धवावाल्हिकाश्च
असंमोहं पूजयन्तोऽस्यसंख्येसम्पश्यन्तोविजयंराक्षसस्य

हे राजन्! सारे सैन्धव और वाल्हिकवीर भयभीत हुए कर्ण की ओर कातर दृष्टि से देखने लगे। यद्यपि ये राक्षसराज घटोत्कच की रण में विजय देख रहे थे, तो भी कर्ण के न घबराने की ये बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥४५॥

तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नीसमंसर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन्गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः

हे भरतश्रेष्ठ! अब घटोत्कच ने चक्र के साथ एक शतघ्नी छोड़ी-इसने एकदम कर्ण के चारों अश्वों को मार गिराया। इनकी रणभूमि में गोड़ी गल गई। ये आंख और जीभ निकाल कर प्राण-विहीन हो गए ॥४६॥

ततो हताश्वादवरुह्य यानादन्तर्मनाः कुरुषु प्रद्रवत्सु
दिव्ये चाऽस्त्रे मायया वध्यमानेनैवाऽमुह्यच्चिन्तयन्प्राप्तकालम्

हे राजन्! जब कौरववीर भाग रहे थे, तो अपने मन को सम्हाल कर कर्ण अश्व-हीन रथ से वेग के साथ कूद पड़े। यद्यपि कर्ण के दिव्य अस्त्रों को घटोत्कच ने अपनी माया से कुण्ठित कर दिया था-तो भी कर्ण कुछ भी मोहित न हुए और समय के अनुसार विजय का ढंग सोचने लगे ॥४७॥

ततोऽब्रुवन्कुरवः सर्व एव कर्णं दृष्ट्वा घोररूपां च मायाम्
शक्त्या रक्षो जहि कर्णाऽद्य तूर्णं नश्यन्त्येतेकुरवोधार्तराष्ट्राः

अब सारे कौरववीर इस घोर राक्षसी माया को देखकर कहने लगे—हे कर्ण! अब तुम इन्द्र की दी हुई अपनी शक्ति से

इस राक्षस को शीघ्र मारो-नहीं तो ये सारे कौरववीर और धृतराष्ट्र-पुत्र अभी मारे जाते हैं ॥४८॥

करिष्यतः किञ्च नो भीमपार्थौ तपन्तमेनं जहि पापं निशीथे
यो नः संग्रामाद्‌घोररूपाद्विमुच्येत्स नः पार्थान्सबलान्योधयेत

हम लोगों का भीमसेन और अर्जुन क्या कर सकते हैं। अब तो आधी रात में प्रचण्ड हुए इस पापी घटोत्कच को मार डालो। यदि हम इस घोर भयङ्कर संग्राम से बच गए तो, उन महाबली पाण्डवों से तो हम सब निबट लेंगे ॥४९॥

तस्मादेनं राक्षसं घोररूपं शक्त्या जहि त्वं दत्तया वासवेन।
मा कौरवाः सर्व एवेन्द्रकल्पा रात्रियुद्धे कर्ण नेशुः सयोधाः

अब तुम, इन्द्र द्वारा प्रदान की हुई अपने शक्ति नामक शस्त्र से इस घोररूपधारी राक्षस का वध करो। हे कर्ण! इस रात्रि में इन्द्र के समान पराक्रमी सारे कौरववीर अपनी २ सेना के साथ भी इस युद्ध के करने में समर्थ नहीं हो रहे हैं ॥५०॥

स वध्यमानो रक्षसा वैनिशीथेदृष्ट्वाराजंस्त्रास्यमानंबलं च।
महच्छ्रुत्वा निनदं कौरवाणां मतिं दध्रे शक्तिमोक्षायकर्णः

हे राजन्! इस प्रकार अर्धरात्रि में राक्षसराज घटोत्कच द्वारा क्षत-विक्षत हुए कर्ण ने अपनी सारी सेना को अत्यन्त व्याकुल देखा। जब कर्ण ने कौरववीरों का बहुत ही आर्तनाद सुना, तो उसने भी घटोत्कच पर ही उस शक्ति को छोड़ देना निश्चित किया ॥५१॥

स वै क्रुद्धः सिंह इवाऽत्यमर्षी नाऽमर्षयन्प्रतिघातं रणेऽसौ ।
शक्तिं श्रेष्ठां वैजयन्तीमसह्यां समाददे तस्य वधं चिकीर्षन् ॥

अत्यन्त आवेश में आने वाले कर्ण रण में घटोत्कच के प्रहारों को क्षमा नहीं कर सके। वे अब सिंह के सदृश कुपित हो उठे। उन्होंने राक्षसराज घटोत्कच के वध के लिए विजय दिलाने वाली असह्य शक्ति को उस राक्षस पर फैंक दिया ॥५२॥

याऽसौ राजन्निहितावर्षपूगान्वधायाऽऽजौसत्कृताफाल्गुनस्य
यांवैप्रादात्सूतपुत्रायशक्रःशक्तिंश्रेष्ठांकुण्डलाभ्यांनिमाय ॥

हे राजन्! जिस शक्ति को अनेक वर्षों से बड़ी सुरक्षित रख छोड़ा था, जिससे कर्ण, रण में अर्जुन का वध कर देना चाहते थे। यह वही शक्ति थी, जिसको कुण्डलों के बदले में इन्द्र ने सूत-पुत्र कर्ण को प्रदान की थी ॥५३॥

तांवैशक्तिंलेलिहानां प्रदीप्तांपाशैर्युक्तामन्तकस्येवजिह्वाम् ।
मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोल्कांवैकर्तनःप्राहिणोद्राक्षसाय

यह शक्ति पाशों से बन्धी हुई थी, जो प्रदीप्त और लपलपाती काल की जिह्वा सी प्रतीत होती थी। यह मृत्यु की दूसरी बहिन और प्रज्वलित उल्का सी प्रतीत होती थी। सूर्य-पुत्र कर्ण ने उसे राक्षसराज घटोत्कच पर फैंका ॥५४॥

तामुत्तमां परकायावहन्त्रीं दृष्ट्वा शक्तिंबाहुसंस्थांज्वलन्तीम्
भीतं रक्षो विप्रदुद्रावराजन्कृत्वाऽऽत्मानं विन्ध्यतुल्यप्रमाणम्

हे राजन् ! शत्रु की देह को काट देने वाली उस जाज्वल्य- मान शक्ति को कर्ण की भुजाओं में देखकर राक्षसराज घटोत्कच बड़ा भय-भीत हुआ और वह अपना आकार विन्ध्य-पर्वत की तरह बनाकर वहां से भागने लगा ॥५५॥

दृष्ट्वा शक्तिं कर्णबाह्वन्तरस्थां नेदुर्भूतान्यन्तरिक्षे नरेन्द्र ।
ववुर्वातास्तुमुलाश्चापि राजन्सनिर्घाता चाऽशनिर्गां जगाम॥

हे नरेन्द्र ! कर्ण की बाहुओं के मध्य में स्थित शक्ति को देखकर सारे प्राणी अन्तरिक्ष में चिल्लाने लगे । हे राजन् ! इस समय बड़ी आंधी चलने और कड़क के साथ बिजली गिर कर पृथिवी में घुसने लगी ॥५६॥

सा तां मायां भस्मकृत्वाज्वलन्ती भित्त्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य ।
ऊर्ध्वं ययौ दीप्यमाना निशायां नक्षत्राणामन्तराण्याविवेश ॥

इस जाज्वल्यमान शक्ति ने सारी राक्षसी माया को छिन्न-भिन्न कर दिया । यह शक्ति राक्षस घटोत्कच के हृदय को गाढ़ी तरह बींध कर दीप्ति के साथ रात में ही आकाश में उड़ गई और वहां नक्षत्रों के मध्य में घुस कर अलक्षित हो गई ॥५७॥

स निर्भिन्नो विविधैरस्त्रपूगैर्दिव्यैर्नागैर्मानुषै राक्षसैश्च ।
नदन्नादान्विविधान्भैरवांश्च प्राणानिष्टांस्त्याजितः शक्रशक्त्या

यह राक्षसराज घटोत्कच, नाग, मनुष्य आदि वीरों से दिव्य अस्त्रों द्वारा युद्ध करके बहुत ही घायल हो रहा था, परन्तु इन्द्र की

शक्ति से तो यह अनेक प्रकार के आर्तनाद करता हुआ अपने प्रिय प्राणों को छोड़कर परलोक चल दिया ॥५८॥

इदं चाऽन्यच्चित्रमाश्चर्यरूपं चकाराऽसौ कर्म शत्रुक्षयाय ।
तस्मिन्काले शक्तिनिर्भिन्नमर्मा बभौ राजञ्शैलमेघप्रकाशः ॥

इस घटोत्कच ने शत्रु पक्ष के क्षय करने को अनेक विचित्र आश्चर्यकारी कर्म कर दिखाए। हे राजन्! इस समय शक्ति से विशीर्ण देह वाला होकर घटोत्कच पर्वत पर छाये हुए मेघ की भांति रात में गिर पड़ा ॥५६॥

ततोऽन्तरिक्षादपतद्गतासुः स राक्षसेन्द्रो भुवि भिन्नदेहः ।
अवाक्शिराःस्तब्धगात्रोविजिह्वोघटोत्कचोमहदास्थायरूपम्॥

हे राजन्! अपनी देह के छिन्न-भिन्न होने से प्राण हीन होकर राक्षसराज घटोत्कच आकाश से नीचे गिर पड़ा। इस समय इसका नीचे को शिर और सारा शरीर जड़ीभूत हो चुका था। इसकी जीभ निकल आई और यह भीषण रूप धारण करके भूमि में गिर गया ॥६०॥

स तद्रूपं भैरवं भीमकर्मा भीमं कृत्वा भैमसेनिः पपात ।
हतोऽप्येवं तव सैन्यैकदेशमपोथयत्स्वेन देहेन राजन् ॥

हे नरेन्द्र! अब भयङ्कर कर्म-कर्ता भीमसेन-पुत्र घटोत्कच, अपने आकार को भीषण और भयानक बनाकर गिर गया। हे राजन्! मरे हुए भी इस राक्षस ने गिरते २ अपनी देह से तुम्हारी सेना के एक भाग को चकना-चूर कर डाला ॥६१॥

पतद्रक्षः स्वेन कायेन तूर्णमतिप्रमाणेन विवर्धता च।
प्रियं कुर्वन्पाण्डवानां गतासुरक्षौहिणीं तव तूर्णं जघान ॥

रणभूमि में गिरते हुए राक्षस ने अपनी देह को बहुत अधिक प्रमाण में बढ़ा लिया। इस मरने वाले घटोत्कच ने पाण्डवों के हित के लिए तुम्हारी सेना की एक अक्षौहिणी सेना को वेग से नष्ट-भ्रष्ट कर डाला ॥६२॥

ततो मिश्राः प्राणदन्सिंहनादैर्भेर्यः शङ्खा मुरजाश्चाऽनकाश्च
दग्धां मायां निहतं राक्षसं च दृष्ट्वा हृष्टाःप्राणदन्कौरवेयाः

हे राजन्! इस समय सिंहनादों के साथ मिलकर भेरी, शङ्ख, मुरज और आनक संज्ञक बाजे एकदम बजने लगे। कौरववीर, राक्षसराज घटोत्कच की माया को नष्ट देखकर बड़े प्रसन्न हुए और सिंहनाद करने लगे ॥६३॥

ततः कर्णः कुरुभिः पूज्यमानो यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः।
अन्वारूढस्तव पुत्रस्य यानं हृष्टश्चापि प्राविशत्तत्स्वसैन्यम्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७९॥

हे राजन्! इस समय कौरवों ने कर्ण की इस तरह पूजा की जैसे-देवों ने वृत्रासुर के वध करने पर इन्द्र की पूजा की थी। अब

कर्ण, तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के रथ पर चढ़कर ही बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी सेना में प्रविष्ट हुए ॥६४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में
घटोत्कच के वध के वर्णन का एक सौ उनासीवां
अध्याय समाप्त हुआ।



एक सौ अस्सीवां अध्याय

सञ्जय उवाच-हैडिम्बिं निहतं दृष्ट्वा विशीर्णमिव पर्वतम्।
बभूवुः पाण्डवाः सर्वे शोकबाष्पाकुलेक्षणाः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले-हे राजन्! अब हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच को पर्वत के बिखर जाने की तरह नष्ट हुआ देख कर सारे पाण्डव शोकातुर होकर आंसू छोड़ने लगे ॥१॥

वासुदेवस्तु हर्षेण महताऽभिपरिप्लुतः।
ननाद सिंहनादं वै पर्यष्वजत फाल्गुनम् ॥ २ ॥

हे राजन्! इस समय वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण हर्ष से उछल उठे और सिंह की तरह गर्जना करके अर्जुन से लिपट गए ॥२॥

स विनद्य महानादमभीषून्सन्नियम्य च ।
ननर्त्त हर्षसंवीतो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ ३ ॥

हे नृप! अब श्रीकृष्ण, महान् सिंह गर्जना करके और अपने रथ की रस्सी पकड़ कर हर्ष में इस तरह नांच उठे, कि जैसे वायु से वृक्ष नांच उठता है ॥३॥

ततः परिष्वज्य पुनः पार्थमास्फोट्य चाऽसकृत् ।
रथोपस्थगतो धीमान्प्राणदत्पुनरच्युतः ॥ ४ ॥

ये बार २ अर्जुन का आलिङ्गन करने लगे और अर्जुन की पीठ फटकारने लगे। युद्ध में पीछे नहीं हटने वाले, बुद्धिमान श्रीकृष्ण ने अपने रथ में स्थिर होकर बार २ सिंह की भांति गर्जना की ॥४॥

अप्रहृष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलः ।
अर्जुनोऽथाऽब्रवीद्राजन्नाऽतिहृष्टमना इव ॥ ५ ॥

हे राजन् ! जब महाबली अर्जुन ने वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रफुल्लित देखा, तो आप भी प्रफुल्लित होकर श्रीकृष्ण से यह वचन बोले ॥५॥

अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाऽद्य मधुसूदन ।
शोकस्थाने तु सम्प्राप्ते हैडिम्बस्य वधेन तु ॥ ६ ॥

हे मधुसूदन ! आज तो आपका यह उल्लास बहुत असमय में हो रहा है। अब तो हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच के मरने से शोक का स्थान सम्प्राप्त हो रहा है ॥६॥

विमुखानीह सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम् ।
वयं च भृशमुद्विग्ना हैडिम्बस्तु निपातनात् ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! घटोत्कच के मरते ही सारी सेना युद्ध से विमुख होकर चल पड़ी तथा इस घटोत्कच के मरने से तो हम लोग भी बड़े क्लेशित हो रहे हैं ॥७॥

नैतत्कारणमल्पं हि भविष्यति जनार्दन ।
तदद्य शंस मे पृष्टः सत्यं सत्यवतां वर ॥ ८ ॥

हे जनार्दन ! इसका कोई छोटा मोटा कारण नहीं हो सकता है । हे सत्यधारियों में श्रेष्ठ ! मैं आपसे प्रश्न करता हूं-आप इसका कारण बताइए ॥८॥

यद्येतन्न रहस्यं ते वक्तुमर्हस्यरिन्दम ।
धैर्यस्य वैकृतं ब्रूहि त्वमद्य मधुसूदन ॥ ९ ॥

हे अरिमर्दन ! यदि इसमें कोई छुपाने की बात नहीं है, तो तुम इसे मुझे भी बताओ । हे मधुसूदन ! इस आनन्द में तो आप की गम्भीरता भी नष्ट सी हो रही है—इसका भी मुझे कारण सुनाओ ॥९॥

समुद्रस्येव संशोषं मेरोरिव विसर्पणम् ।
तथैतदद्य मन्येऽहं तव कर्म जनार्दन ॥ १० ॥

हे जनार्दन ! आज मैं आपका हर्ष में भर जाना समुद्र के सूखने और मेरु पर्वत के चलने के सदृश बड़ा ही विपरीत कर्म समझता हूं, इससे आप इसका कारण मुझे अवश्य बतावें ॥१०॥

वासुदेव उवाच-अतिहर्षमिमं प्राप्तं शृणु मे त्वं धनञ्जय ।
अतीव मनसः सद्यः प्रसादकरमुत्तमम् ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण बोले-हे धनञ्जय ! यह जो मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है--तुम उसका कारण सुनो । आज मेरे मन को बहुत ही अधिक आनन्द करने वाला कार्य सम्पादित हुआ है ॥११॥

शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते ।
कर्णं निहतमेवाऽऽजौ विद्धि सद्यो धनञ्जय ॥ १२ ॥

हे महाद्युते ! आज घटोत्कच ने कर्ण की शक्ति नामक शस्त्र को व्यतीत कर दिया है। अब तो तुम रण में कर्ण को बस ? मरा हुआ ही समझो ॥१२॥

शक्तिहस्तं पुनः कर्णं को लोकेऽस्ति पुमानिह ।
य एनमभितस्तिष्ठेत्कार्तिकेयमिवाऽऽहवे ॥ १३ ॥

यदि कर्ण के हाथ में शक्ति नामक वह अस्त्र रहता, तो इस लोक में कौन ऐसा पुरुष था, जो शक्ति के कारण कार्तिकेय के समान पराक्रमी कर्ण के सन्मुख रण में ठहर सकता ॥१३॥

दिष्ट्याऽपनीतकवचो दिष्ट्याऽपहृतकुण्डलः ।
दिष्ट्या सा व्यंसिता शक्तिरमोघाऽस्य घटोत्कचे ॥१४॥

अब कर्ण, कवच से रहित है और इसके पास कुण्डल भी नहीं रहे, यह बड़ी ही अच्छी बात हुई, परन्तु सबसे अच्छी बात यह हुई, कि इसकी अमोघ शक्ति राक्षसराज घटोत्कच पर समाप्त हो गई ॥१४॥

यदि हि स्यात्सकवचस्तथैव स्यात्सकुण्डलः ।
सामरानपि लोकांस्त्रीनेकः कर्णो जयेद्रणे ॥ १५ ॥

यदि कर्ण के पास अपना कवच होता या कुण्डल रहे होते, उनको मांग कर इन्द्र न ले गया होता, तो रण में अकेला कर्ण ही देवों सहित तीनों लोकों को जीत लेता ॥१५॥

वासवो वा कुबेरो वा वरुणो वा जलेश्वरः ।
यमो वा नोत्सहेत्कर्णं रणे प्रतिसमासितुम् ॥ १६ ॥

इन्द्र हो या कुबेर जलेश्वर वरुण हो या यमराज जब शक्ति के रहते रण में कर्ण से भिड़ जाते, तो वे कभी कर्ण के जीतने में समर्थ न हो सकते ॥१६॥

गाण्डीवमुद्यम्य भवांश्चक्रं चाऽहं सुदर्शनम् ।
न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथा युक्तं नरर्षभम् ॥ १७ ॥

शक्ति से संयुक्त इस पुरुषप्रवीर कर्ण को रण में गाण्डीव उठा कर आप और सुदर्शन चक्र उठा कर मैं इस प्रकार हम दोनों भी उसके जीतने में समर्थ नहीं हो सकते थे ॥१७॥

त्वद्धितार्थं तु शक्रेण मायापहृतकुण्डलः ।
विहीनकवचश्चाऽयं कृतः परपुरञ्जयः ।

तुम्हारे हित को लक्ष्य करके ही इन्द्र ने अपनी माया से इस शत्रुविजयी कर्ण के कवच और कुण्डलों का अपहरण किया ॥१८॥

उत्कृत्य कवचं यस्मात्कुण्डले विमले च ते ।
प्रादाच्छक्राय कर्णो वै तेन वैकर्तनः स्मृतः ॥१९॥

इसने अपने शरीर से कवच और निर्मल कुण्डल उखाड़ कर इन्द्र को दे दिए-इससे ही इसे वैकर्तन (काट कर देने वाला) कहते हैं ॥१९॥

आशीविष इव क्रुद्धो जृम्भितो मन्त्रतेजसा ।
तथाऽद्य भाति कर्णो मे शान्तज्वाल इवाऽनलः॥२०॥

यह मन्त्रबल से जाज्वल्यमान हुआ आशीविष सर्प की भांति क्रोध में भरा हुआ था, परन्तु आज वही कर्ण मुझे बुझी आग सा प्रतीत होता है ॥२०॥

यदाप्रभृति कर्णाय शक्तिर्दत्ता महात्मना ।
वासवेन महाबाहो क्षिप्ता याऽसौ घटोत्कचे ॥ २१ ॥

कुण्डलाभ्यां निमायाऽथ दिव्येन कवचेन च ।
तां प्राप्याऽमन्यत वृषः सततं त्वां हतं रणे ॥२२ ॥

हे महाबाहो ! जब से महात्मा इन्द्र ने कर्ण को उस शक्ति का प्रदान किया, जिसको इसने घटोत्कच पर छोड़ दी-तब से यह धर्मात्मा तुम्हें रण में मारा हुआ ही समझता था। इसको यह शक्ति, दिव्य (देह के साथ खिले हुए) कवच और कुण्डलों के बदले में मिली थी ॥२१-२२॥

एवङ्गतोऽपि शक्योऽयं हन्तुं नाऽन्येन केनचित् ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन चाऽनघ ॥ २३ ॥

हे अनघ ! पुरुषव्याघ्र ! यद्यपि इसके कवच और कुण्डल अपहृत किये जा चुके और इन्द्र की दी हुई शक्ति भी नष्ट भ्रष्ट हो गई, परन्तु इस दशा में भी यह तुम्हारे सिवा अन्य किसी से नहीं जीता जा सकता है-यह मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूं ॥२३॥

ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः ।
रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात्कर्णो वृषः स्मृतः ॥२४॥

युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्योद्यतशरासनः ।
केसरीव वने नर्दन्मातङ्ग इव यूथपान् ॥२५॥

यह बड़ा ब्रह्मण्य, सत्यवादी, तपस्वी, व्रतशील, शत्रुओं में भी दयावान् है-इसी से कर्ण को वृष कहते हैं। यह महाबाहु युद्ध का खिलाड़ी और नित्य अपने धनुष पर भरोसा रखने वाला है। यह वन में केसरी की भांति युद्ध में गरजता रहता है और बड़े २ यूथपति हाथियों में भी मदोन्मत्त हाथी की तरह सर्वदा फिरता है ॥२४-२५॥

विमदान्रथशार्दूलान्कुरुते रणमूर्धनि ।
मध्यङ्गत इवाऽऽदित्यो यो न शक्यो निरीक्षितुम्॥२६॥
त्वदीयैः पुरुषव्याघ्र योधमुख्यैर्महात्मभिः ।
शरजालसहस्रांशुः शरदीव दिवाकरः ॥२७॥

हे पुरुषव्याघ्र! यह कर्ण बड़े २ रथि-श्रेष्ठों के भी युद्ध के घमण्ड को चकनाचूर कर देता है। तुम्हारे पक्ष के जो महावीर प्रधान २ योद्धा हैं, वे भी शरद् ऋतु के मध्यान्हकाल के सूर्य की भांति इसके देखने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। बाणजाल ही इस कर्ण रूपी सूर्य का सहस्रों किरणजाल माना जाता है ॥२६-२७॥

तपान्ते जलदो यद्वच्छरधाराः क्षरन्मुहुः ।
दिव्यास्त्रजलदः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥२८॥

ग्रीष्मऋतु के अन्त होने पर वर्षाकाल में जैसे मेघ जलधारा चार २ छोड़ता रहता है उसी तरह दिव्य अस्त्ररूपी जलधारा वरसाने वाला कर्ण, मेघ की तरह वरसता रहता है ॥२८॥

त्रिदशैरपि चाऽस्यद्भिः शरवर्षं समन्ततः ।
अशक्यस्तदयं जेतुं स्रवद्भिर्मांसशोणितम् ॥२६॥

हे राजन ! यदि देवगण भी सब ओर से बाणवर्षा करने लगे और वे इतने युद्ध में आसक्त हो जावें, कि उनके शरीर से मांस-रक्त की धारा बह निकले, तो भी वे इस कर्ण के जीतने में समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥२६॥

कवचेन विहीनश्च कुण्डलाभ्यां च पाण्डव ।
सोऽद्य मानुषतां प्राप्तो विमुक्तः शक्रदत्तया ॥३०॥

हे पाण्डव ! आज कर्ण, कवच और कुण्डल तथा इन्द्र की दी हुई शक्ति से हीन होकर साधारण मनुष्य योद्धा की तरह हो गए हैं, नहीं तो यह देवों के सदृश वली था ॥३०॥

एको हि योगोऽस्य भवेद्वधाय छिद्रे होनं स्वप्रमत्तः प्रमत्तम्
कृच्छ्रप्राप्तं रथचक्रे विभग्ने हन्याः पूर्वं त्वं तुसंज्ञां विचार्य

हे धनञ्जय ! अब तो इसके वध का एक ही उपाय है- कि तुम असवाधान न रहकर इसके असावधान होते ही मौका पाकर इसे मार गिराओ । कर्ण के रथ के पहिए जब भूमि में धस जावें और यह आपद्ग्रस्त हो जावे-तो तुम अपने बलको सम्हाल कर कर्ण को मार डालो ॥३१॥

न ह्युद्यतास्त्रं युधि हन्यादजय्यमप्येकवीरो बलभित्सवज्रः
जरासन्धश्चेदिराजो महात्मा महाबाहुश्चैकलव्यो निषादः
एकैकशो निहताः सर्व एते योगैस्तैस्तैस्त्वद्धितार्थं मयैव ।

हे अर्जुन ! यदि एक मात्र वीर इन्द्र भी वज्र धारण करके आवे, तो भी उद्यत शस्त्रधारी अजेय कर्ण को युद्ध में वह नहीं मार सकता है। मैंने तो तुम्हारे हित में तत्पर होकर जरासन्ध, चेदिराज महाबली शिशुपाल तथा महाबाहु एकलव्य निषाद आदि वीर, चुन २ कर पृथक् २ योगों (उपायों) से मरवा डाले हैं ॥२२॥

अथाऽपरे निहता राक्षसेन्द्रा हिडिम्बकिर्मीरबकप्रधानाः ।
अलायुधः परचक्रावमर्दी घटोत्कचश्चोग्रकर्मा तरस्वी ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे श्रीकृष्णहर्षे
ऽशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

हे धनञ्जय ! इसी तरह तुम्हारे हित के कारण ही मैंने राक्षसेन्द्र हिडिम्ब, किर्मीर और बक आदि प्रधान वीर तथा शत्रु-सेना नाशक अलायुध और उग्र कर्म करने वाला वेगशाली घटोत्कच भी मरवा डाला है ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में श्रीकृष्ण के वैभव वर्णन का एक सौ अस्सीवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ इक्यासीवां अध्याय

अर्जुन उवाच—कथमस्मद्धितार्थं ते कैश्च योगैर्जनार्दन ।
जरासन्धप्रभृतयो घातिताः पृथिवीश्वराः ॥१॥

अर्जुन बोले-हे जनार्दन ! आपने हमारे हित में तत्पर होकर किन २ उपायों से जरासन्ध जैसे महाबली राजाओं को मरवा डाला है ॥१॥

वासुदेव उवाच—जरासन्धश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः ।
यदि स्युर्न हताः पूर्वमिदानीं स्युर्भयङ्कराः ॥२॥

श्रीकृष्ण बोले-हे अर्जुन ! राजा जरासन्ध, चेदिराज शिशुपाल, महाबली निषाद एकलव्य, यदि न मारे गए होते, तो आज वे बड़ा भयङ्कर रूप धारण करते ॥२॥

दुर्योधनस्तानवश्यं वृणुयाद्रथसत्तमान् ।
तेऽस्मासु नित्यविद्विष्टाः संश्रयेयुश्च कौरवान् ॥३॥

राजा दुर्योधन उन महारथियों को अवश्य युद्ध का निमन्त्रण भेजता और वे भी हमसे नित्य द्वेष करते थे-अतः अवश्य कौरवों का पक्ष स्वीकार करते ॥३।

ते हि वीरा महेष्वासाः कृतास्त्रा दृढयोधिनः ।
धार्तराष्ट्रीं चमूं कृत्स्नां रक्षेयुरमरा इव ॥४॥

वे वीर, महाधनुर्धर, अस्त्रविद्या में कुशल और दृढ़ योद्धा थे। ये कौरवों की सारी महासेना की देवों की तरह रक्षा करने में अवश्य सफल होते ॥४॥

सूतपुत्रो जरासन्धश्चेदिराजो निषादजः ।
सुयोधनं समाश्रित्य जयेयुः पृथिवीमिमाम् ॥५॥

सूत्र-पुत्र कर्ण, राजा जरासन्ध, चेदिराज शिशुपाल और एकलव्य निषाद, यदि राजा दुर्योधन की ओर हो जाते-तो वे इस सारी पृथिवी को जीत लेते ॥५॥

योगैरपि हता यैस्ते तन्मे शृणु धनञ्जय ।
अजय्या हि विना योगैर्मृधे ते दैवतैरपि ॥६॥

हे धनञ्जय ! मैंने जिन २ उपायों से इनको मारा-तुम वह सुनो। यदि मैंने इनको किसी प्रकार से न मारा होता, तो ये आज देवों से भी अजेय थे ॥६॥

एकैको हि पृथक्तेषां समस्तां सुरवाहिनीम् ।
योधयेत्समरे पार्थ लोकपालाभिरक्षिताम् ॥७॥

हे पार्थ ! ये इतने वीर थे, कि इनमें एक एक राजा रण में इन्द्र आदि लोकपालों से सुरक्षित देवसेना के साथ भी युद्ध कर सकते थे ॥७॥

जरासन्धो हि रुषितो रौहिणेयप्रधर्षितः ।
अस्मद्वधार्थं चिक्षेप गदां वै सर्वघातनीम् ॥८॥

सीमन्तमिव कुर्वाणां नभसः पावकप्रभाम् ।
अदृश्यताऽऽपतन्ती सा शक्रमुक्ता यथाऽशनिः ॥९॥

हे अर्जुन ! जब रोहिणी-पुत्र बलराम ने जरासन्ध पर प्रहार किया-तो उसने कुपित होकर हमारे वध के निमित्त सर्वघातिनी

गदा का प्रयोग किया था। वह गदा अग्नि की लपट के तुल्य आकाश को सीमा में विभक्त करती हुई—इस तरह आकर गिरने लगी जैसे इन्द्र से छोड़ी हुई अशनि गिर रही हो ॥९॥

तामापतन्तीं दृष्ट्वैव गदां रोहिणिनन्दनः ।
प्रतिघातार्थमस्त्रं वै स्थूणाकर्णमवासृजत् ॥१०॥

जब रोहिणी-पुत्र बलराम ने अपने ऊपर गिरती हुई गदा को देखा—तो उसके नाश करने के लिए उन्होंने स्थूणाकर्ण अस्त्र का प्रयोग किया ॥१०॥

अस्त्रवेगप्रतिहता सा गदा आपतद्भुवि।
दारयन्ती धरां देवीं कम्पयन्तीव पर्वतान् ॥११॥

स्थूणाकर्ण अस्त्र के वेग से प्रतिहत वह गदा, पृथिवी को चीरती हुई और पर्वतों को कंपाती हुई रणभूमि में गिर गई ॥११॥

तत्र सा राक्षसी घोरा जरा नाम्नी सुविक्रमा ।
सन्दधे सा हि सञ्जातं जरासन्धमरिन्दमम् ॥१२॥
द्वाभ्यां जातो हि मातृभ्यामर्धदेहः पृथक्पृथक् ।
जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्धस्ततोऽभवत् ॥१३॥

एक जरा नाम की घोर राक्षसी बड़ी पराक्रम वाली थी, उसने अरिन्दम जरासन्ध को उत्पन्न होते ही जोड़ दिया था। यह जरासन्ध अपनी माता के गर्भ से पृथक् २ दो टुकड़ों में उत्पन्न हुआ था। इसको जरा राक्षसी ने जोड़ा था-इससे ही यह जरासन्ध कहलाया ॥१२-१३॥

सा तु भूमिं गता पार्थ हता ससुतबान्धवा ।
गदया तेन चाऽस्त्रेण स्थूणाकर्णेन राक्षसी ॥१४॥
विनाभूतः स गदया जरासन्धो महामृधे ।
निहतो भीमसेनेन पश्यतस्ते धनञ्जय ॥१५॥

हे पार्थ ! वह जरा नामक राक्षसी, जब गदा और स्थूणाकर्ण अस्त्र का प्रयोग हुआ—तो वह भूमि पर ही थी। उस समय वह अपने पुत्र और बान्धवों के साथ वहीं गदा और स्थूणाकर्ण की मुठभेड़ में मारी गई। हे धनञ्जय ! जब भीमसेन का जरासन्ध से युद्ध हुआ, तो वह उस गदा से हीन था। इसी से मल्ल-युद्ध में तुम्हारे देखते २ उसे भीमसेन ने मार गिराया ॥१५॥

यदि हि स्याद्‌गदापाणिर्जरासन्धः प्रतापवान् ।
सेन्द्रा देवा न तं हन्तुं रणे शक्ता नरोत्तम ॥१६॥

हे नरोत्तम ! यदि प्रतापी जरासन्ध गदापाणि रहता-तो इन्द्र सहित देवता भी रण में जरासन्ध से युद्ध कर सकने में समर्थ नहीं हो सकते थे ॥१६॥

त्वद्धितार्थं च नैषादिरंगुष्ठेन वियोजितः ।
द्रोणेनाऽऽचार्यकं कृत्वा छद्मना सत्यविक्रमः ॥१७॥

हे अर्जुन ! तुम्हारे हित के लिए ही द्रोणाचार्य ने अपना आचार्यत्व बताकर सत्यपराक्रमी निषाद-पुत्र एकलव्य का अंगूठा कटवा लिया था ॥१७॥

स तु बद्धांगुलित्राणो नैषादिर्दृढविक्रमः ।
अतिमानी वनचरो बभौ राम इवाऽपरः ॥१८॥

यह निषाद-पुत्र, सर्वदा अङ्गुलित्राण पहिने रहता था और बड़ा दृढ़ पराक्रमी था। यह बड़ा घमण्डी, वनचर और दूसरे परशुराम के समान महाबली था ॥१८॥

एकलव्यं हि सांगुष्ठमशक्ता देवदानवाः ।
सराक्षसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि कर्हिचित् ॥१९॥

हे पार्थ ! यदि एकलव्य के अंगुष्ठ रहा होता—तो देव, दानव, राक्षस और उरग कोई भी युद्ध में उसे जीतने में समर्थ नहीं हो सकते थे ॥१९॥

किमु मानुषमात्रेण शक्यः स्यात्प्रतिवीक्षितुम् ।
दृढमुष्टिः कृती नित्यमस्यमानो दिवानिशम् ॥२०॥

यह एकलव्य बड़ा दृढ़ मुट्ठी वाला और अस्त्र विद्या में कुशल तथा बाण फैंकने में समर्थ वीर था। इसको तो मनुष्य मात्र देखने में भी समर्थ नहीं हो सकते थे ॥२०॥

त्वद्धितार्थं तु स मया हतः संग्राममूर्धनि ।
चेदिराजश्च विक्रान्तः प्रत्यक्षं निहतस्तव ॥२१॥

मैंने तुम्हारे हित के लिए ही राजसूय यज्ञ में संग्राम छेड़ कर महापराक्रमी शिशुपाल का वध कर दिया, जो तुम्हारे सामने की बात है ॥२१॥

स चाप्यशक्यः संग्रामे जेतुं सर्वैसुरासुरैः ।
वधार्थं तस्य जातोऽहमन्येषां च सुरद्विषाम् ॥२२॥
त्वत्सहायो नरव्याघ्र लोकानां हितकाम्यया ।

इस शिशुपाल को भी सुर और असुर कोई भी रण में नहीं जीत सकते थे। मैं तो उसके और सुरद्वेषी असुरों के वध के लिए अवतीर्ण हुआ हूं--हे नरव्याघ्र ! संसार के हित की कामना को दृष्टि में रख कर मैं तुम्हारे साथ रह कर ही उसके पूर्ण करने की चेष्टा कर रहा हूं ॥२२॥

हिडिम्बबककिर्मीरा भीमसेनेन पातिताः ॥२३॥
रावणेन समप्राणा ब्रह्मयज्ञविनाशनाः ।

रावण के समान पराक्रमी, ब्रह्मयज्ञ के नाशक हिडिम्ब, बक और किर्मीर नामक राक्षसों को भी मैंने भीमसेन के द्वारा मरवा डाला ॥२३॥

हतस्तथैव मायावी हैडिम्बेनाऽप्यलायुधः ॥२४॥
हैडिम्बश्चाऽप्युपायेन शक्त्या कर्णेन घातितः ।

इसी तरह मायावी अलायुध भी हिडिम्ब-पुत्र घटोत्कच ने मार लिया और राक्षसेन्द्र घटोत्कच को भी उपाय द्वारा कर्ण की शक्ति से मरवा दिया ॥२४॥

यदि ह्येनं नाऽहनिष्यत्कर्णः शक्त्या महामृधे ॥२५
मया वध्यो भविष्यत्स भैमसेनिर्घटोत्कचः ।

यदि कर्ण ने अपनी शक्ति द्वारा इसे इस युद्ध में न मार गिराया होता--तो फिर भीमसेन-पुत्र घटोत्कच मुझे मारना पड़ता ॥२५॥

मया न निहतः पूर्वमेष युष्मत्प्रियेप्सया ॥२६॥
एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः।

मैंने तो अब तक तुम्हारे प्रेम के कारण इसे नहीं मारा-नहीं तो यह बड़ा ब्राह्मण द्वेषी और यज्ञद्वेषी राक्षस था ॥२६॥

धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेष निपातितः ॥२७॥
व्यंसिता चाप्युपायेन शक्रदत्ता मयाऽनघ।
ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव ॥२८॥
धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाऽव्यया।

यह घटोत्कच धर्म का लोप करने वाला, पापात्मा व्यक्ति था। हे अनघ! मैंने इसे मरवा कर ही कर्ण की शक्ति को व्यतीत करवाया है। राक्षसों के मारने की मेरी अटल प्रतिज्ञा केवल धर्म की रक्षा के निमित्त ही है ॥२७-२८॥

ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः श्रीधृतिः क्षमा॥२९॥
यत्र तत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शपे।

वेद, सत्य, दम, शौच, धर्म, लज्जा, श्री, धृति और क्षमा जिस स्थान पर होंगी। मैं तो वहीं पर निवास करूंगा-यह मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूं ॥२९॥

न विषादस्त्वया कार्यः कर्णं वैकर्तनं प्रति ॥३०॥
उपदेक्ष्याम्युपायं ते येन तं प्रसहिष्यसि।

अब तुम सूर्य-पुत्र कर्ण के विषय में चिन्ता न करो। मैं तुमको ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे तुम उसको रण में मार सकोगे ॥३०॥

सुयोधनं चापि रणे हनिष्यति वृकोदरः ॥३१॥
तस्याऽपि च वधोपायं वक्ष्यामि तव पाण्डव ।

हे पाण्डव ! वृकोदर भीमसेन रण में जिस प्रकार राजा दुर्योधन को मार गिरावेगा-वह उपाय भी मैं तुम्हें उसी समय बता दूंगा ॥३१॥

वर्धते तुमुलस्त्वेष शब्दः परचमूं प्रति ॥३२॥
विद्रवन्ति च सैन्यानि त्वदीयानि दिशो दश ।

अब यह देखो-शत्रु सेना में कितना उल्लास हो रहा है और तुम्हारी सेना दशों दिशाओं में भय से भाग रही है ॥३२॥

लब्धलक्ष्या हि कौरव्या विधमन्ति चमूं तव ।
दहत्येष च वः सैन्यं द्रोणः प्रहरतां वरः ॥३३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

कौरववीरों का इतना सही-लक्ष्यवेधन है, कि वह कभी नहीं चूकता है, जिससे वे तुम्हारी सेना का विध्वंस कर रहे हैं। इधर प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य ने भी तुम्हारी सेना का भस्म करना आरम्भ कर दिया है ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में कृष्ण के कथन का एक सौ इक्यासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ बयासीवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—एकवीरवधे मोघा शक्तिः सूतात्मजे यदा ।

कस्मात्सर्वान्समुत्सृज्य स तां पार्थे न मुक्तवान् ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय ! महारथी कर्ण के पास ऐसी शक्ति थी, जो केवल एक वीर को मार कर निष्फल हो गई, तो उसने सबको छोड़कर उस शक्ति का अर्जुन पर ही क्यों नहीं प्रयोग किया ॥१॥

तस्मिन्हते हता हि स्युः सर्वे पाण्डवसृञ्जयाः ।

एकवीरवधे कस्माद्युद्धे न जयमादधे ॥२॥

यदि अर्जुन मार लिया गया होता, तो सारे पाण्डव और सृञ्जय मारे जाते । अकेले अर्जुन को मार कर कर्ण ने क्यों नहीं यह विजय प्राप्त की ॥२॥

आहूतो न निवर्त्तेयमिति तस्य महाव्रतम् ।

स्वयं मार्गयितव्यः स सूतपुत्रेण फाल्गुनः ॥३॥

यदि कोई युद्ध के लिए ललकारे-तो अर्जुन पीछे नहीं हटने वाला है, यही अर्जुन का महान् व्रत है । फिर क्यों नहीं सूत-पुत्र कर्ण ने स्वयं अर्जुन को सर्व प्रथम युद्ध के लिए ललकारा ॥३॥

ततो द्वैरथमानीय फाल्गुनं शक्रदत्तया ।

जघान न वृषः कस्मात्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥४॥

हे सञ्जय ! कर्ण ने अर्जुन को युद्ध में बुलाकर इन्द्र की दी हुई शक्ति द्वारा क्यों नहीं मार लिया, यह सब कुछ तुम मुझे सुनाओ ॥४॥

नूनं बुद्धिविहीनश्चाऽप्यसहायश्च मे सुतः ।
शत्रुभिर्व्यंसितः पापः कथं नु स जयेदरीन् ॥५॥

मेरा पुत्र दुर्योधन बुद्धि से विहीन और सहायता से रहित प्रतीत होता है, जिसको शत्रुओं ने शक्ति जैसे साधन से भी हीन बना दिया। अब वह कैसे शत्रुओं को जीत सकता है ॥५॥

या ह्यस्य परमा शक्तिर्जयस्य च परायणम् ।
सा शक्तिर्वासुदेवेन व्यंसिता च घटोत्कचे ॥६॥

जो महारथी कर्ण के पास अद्भुत शक्ति थी और जिससे रण में विजय प्राप्त की जा सकती थी, उस महान् शक्ति को श्रीकृष्ण ने घटोत्कच पर समाप्त करा दी ॥६॥

कुणेर्यथा हस्तगतं ह्रियेत्फलं बलीयसा ।
तथा शक्तिरमोघा सा मोघीभूता घटोत्कचे ॥७॥

जिस तरह किसी निर्बल पुरुष के हस्तगत फल को कोई बलवान् पुरुष छीन लेता है, इसी तरह इस शक्ति को भी घटोत्कच पर समाप्त करा कर मानो छीन लिया गया ॥७॥

यथा वराहस्य शुनश्च युध्यतोस्तयोरभावे श्वपचस्य लाभः ।
मन्ये विद्वन्वासुदेवस्य तद्वद्युद्धे लाभः कर्णहैडिम्बयोर्वै ॥८॥

हे राजन्! जिस तरह सूकर और कुत्ते के युद्ध में किसी एक के मरने पर श्वपच को तो लाभ ही है। इसी तरह कर्ण और घटोत्कच के युद्ध से श्रीकृष्ण को सब तरह लाभ ही हुआ ॥८॥

घटोत्कचो यदिहन्याद्धिकर्णं परोलाभःसमभवेत्पाण्डवानाम् ।
वैकर्तनोवायदितंनिहन्यात्तथाऽपिकृत्यंशक्तिनाशात्कृतंस्यात्

यदि घटोत्कच कर्ण को मार लेता, तो पाण्डवों को बहुत लाभ था और जो कर्ण ने घटोत्कच को मार लिया, तो शक्ति अस्त्र के समाप्त होने से यह भी पाण्डवों का बड़ा ही कार्य सिद्ध हुआ ॥६॥

इति प्राज्ञः प्रज्ञयैतद्विचिन्त्य घटोत्कचं सूतपुत्रेण युद्धे ।
अघातयद्वसुदेवो नृसिंहः प्रियं कुर्वन्पाण्डवानां हितं च ॥

बुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने यही सोच कर घटोत्कच का सूत-पुत्र कर्ण के साथ युद्ध करवाया। नरश्रेष्ठ कृष्ण ने घटोत्कच को मरवा कर पाण्डवों का बड़ा ही प्रिय और हितकारी कार्य समाप्त कर दिया ॥१०॥

सञ्जय उवाच—एतच्चिकीर्षितं ज्ञात्वा कर्णस्य मधुसूदनः ।
नियोजयामास तदा द्वैरथे राक्षसेश्वरम् ॥११॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! कर्ण उस शक्ति से अर्जुन को मार देना चाहता था। उसके इस अभिप्राय को जानकर ही कर्ण के साथ राक्षसेश्वर घटोत्कच का श्रीकृष्ण ने युद्ध करवाया ॥११॥

घटोत्कचं महावीर्यं महाबुद्धिर्जनार्दनः ।
अमोघाया विघातार्थं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥१२॥

हे राजन्! तुम्हारी दुर्मन्त्रणा से उठे हुए इस युद्ध में महाबुद्धिमान् जनार्दन कृष्ण ने महाशक्तिशाली घटोत्कच को कर्ण से इसीलिए भिड़ाया, कि जिससे कर्ण की शक्ति समाप्त हो जावे।

तदैव कृतकार्या हि वयं स्याम कुरूद्वह।
न रक्षेद्यदि कृष्णस्तं पार्थं कर्णान्महारथात् ॥१३॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ! यदि इस तरह श्रीकृष्ण ने महारथी कर्ण से अर्जुन को न बचा लिया होता, तो हम अवश्य इस युद्ध में कृतकार्य हो जाते ॥१३॥

साश्वध्वजरथः संख्ये धृतराष्ट्र पतेद्भुवि।
विना जनार्दनं पार्थो योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥१४॥

हे धृतराष्ट्र! यदि योगीश्वर, सब तरह से समर्थ, भगवान् कृष्ण अर्जुन के पक्ष में नहीं होते, तो कर्ण के सन्मुख होने पर अर्जुन अवश्य अपनी ध्वजा, अश्व और रथ के साथ रणभूमि में लोटता ॥१४॥

तैस्तैरुपायैर्बहुभी रक्ष्यमाणः स पार्थिव।
जयत्यभिमुखः शत्रून्पार्थः कृष्णेन पालितः ॥१५॥

हे पार्थिव! श्रीकृष्ण के किये हुए उपायों से समय २ पर सुरक्षित होकर अर्जुन, श्रीकृष्ण की कृपा से ही सारे शत्रुओं के सन्मुख पड़ कर उनको जीत लेता है ॥१५॥

स विशेषात्त्वमोघायाः कृष्णोऽरक्षत पाण्डवम्।
हन्यात्क्षिप्तं हि कौन्तेयं शक्तिर्वृक्षमिवाऽशनिः ॥१६॥

श्रीकृष्ण ने यह तो बड़ा ही कार्य किया—जो कर्ण की अमोघ शक्ति नामक अस्त्र को समाप्त करवा दिया। यदि वह शक्ति रहती, तो कुन्ती-पुत्र अर्जुन को इस तरह मार गिराती, जैसे अशनि वृक्ष को गिरा देती है ॥१६॥

धृतराष्ट्र उवाच—विरोधी च कुमन्त्री च प्राज्ञमानी ममाऽऽत्मजः
यस्यैष समतिक्रान्तो वधोपायो जयं प्रति ॥१७॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! मेरा पुत्र सज्जनों का विरोधी, कुमन्त्रणा से युक्त और अपने को व्यर्थ ही बड़ा बुद्धिमान मानने वाला है। यह सोचने की बात है, कि इसने अर्जुन के जीतने में समर्थ शक्ति को किस तरह समाप्त हो जाने दी है ॥१७॥

स वा कर्णो महाबुद्धिः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
न मुक्तवान्कथं सूतताममोघां धनञ्जये ॥१८॥

हे सूत ! सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, कर्ण तो बड़ा बुद्धिमान् है, उसने उस अमोघशक्ति का क्यों नहीं अर्जुन पर प्रयोग किया ॥१८॥

तवापि समतिक्रान्तमेतद्गावल्गणे कथम्।
एतमर्थं महाबुद्धे यत्त्वया नाऽवबोधितः ॥१९॥

हे गवलगण-पुत्र ! महाबुद्धिमान ! सञ्जय ! इस विषय में तुम भी कैसे चूक गए, जो तुमने भी कर्ण को इस शक्ति को केवल अर्जुन पर छोड़ने को न सुझाया ॥१९॥

सञ्जय उवाच—दुर्योधनस्य शकुनेर्मम दुःशासनस्य च।
रात्रौ रात्रौ भवत्येषा नित्यमेव समर्थना ॥२०॥

श्वः सर्वसैन्यानुत्सृज्य जहि कर्ण धनञ्जयम् ।
प्रेष्यवत्पाण्डुपञ्चालानुपभोक्ष्यामहे ततः ॥२१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! राजा दुर्योधन, शकुनि, मैं और दुशाःसन प्रत्येक रात में यही मन्त्रणा करते थे, कि हे कर्ण! तुम कल सारी सेनाओं का मारना छोड़ कर अर्जुन को ही मार गिराना। इसके बाद तो हम पाण्डव और पाञ्चालों को दास की तरह नाच नचा लेंगे ॥२०-२१॥

अथवा निहते पार्थे पाण्डवान्यतमं ततः ।
स्थापयेद्यदि वार्ष्णेयस्तस्मात्कृष्णो हि हन्यताम् ॥२२॥
कृष्णो हि मूलं पाण्डूनां पार्थः स्कन्ध इवोद्गतः ।
शाखा इवेतरे पार्थाः पञ्चालाः पत्रसंज्ञिताः ॥२३॥

यदि अर्जुन के मार लेने पर कृष्ण किसी दूसरे पाण्डव को उठाकर युद्ध में प्रवृत्तहो, तो फिर कृष्ण को मार लेना। पाण्डवों के सिद्धि वृक्ष का तो कृष्ण मूल है और अर्जुन तो उसका एक मोटा टहना हैं; दूसरे पाण्डव छोटी मोटी शाखा और पञ्चाल पत्तों के सदृश हैं॥२२-२३॥

कृष्णाश्रयाः कृष्णबलाः कृष्णनाथाश्च पाण्डवाः ।
कृष्णः परायणं चैषां ज्योतिषामिव चन्द्रमाः ॥२४॥

पाण्डवों को कृष्ण का ही आश्रय है। वे केवल कृष्ण का ही बल मानते हैं। श्रीकृष्ण भी उनके सब तरह से सहायक हैं। जिस

तरह अन्य ज्योतियों का चन्द्रमा आधार है, उसी तरह पाण्डवों का आधार जनार्दन कृष्ण हैं ॥२४॥

तस्मात्पर्णानि शाखाश्च स्कन्धं चोत्सृज्य सूतज ।
कृष्णं हि विद्धि पाण्डूनां मूलं सर्वत्र सर्वदा ॥२५॥

हे सूत-पुत्र कर्ण! पत्ते, शाखा और स्कन्धभूत पाञ्चाल, पाण्डव और अर्जुन को छोड़कर तुम पाण्डवों के कार्य वृक्ष का मूल श्रीकृष्ण को समझो ॥२५॥

हन्याद्यदि हि दाशार्हं कर्णो यादवनन्दनम् ।
कृत्स्ना वसुमती राजन्वशे तस्य न संशयः ॥२६॥

हे राजन्! यदि कर्ण ने दशार्हवंशश्रेष्ठ, यादव-नन्दन कृष्ण को मार लिया होता, तो सारी पृथिवी इसके वश में हो जाती, इसमें सन्देह नहीं है ॥२६॥

यदि हि स निहतःशयीतभूमौयदुकुलपाण्डवनन्दनोमहात्मा ।
ननु तव वसुधा नरेन्द्र सर्वा सगिरिसमुद्रवना वशं व्रजेत ।

हे नरेन्द्र! यदि यदुकुल और पाण्डवों को आनन्दित करने वाला महात्मा कृष्ण मारा जाकर रणभूमि में लेट जाता, तो सारे पर्वत, समुद्र और वनों के सहित सारी पृथिवी तुम्हारे आधीन हो जाती-इसमें संशय न समझो ॥२७॥

सा तु बुद्धिः कृताऽप्येवं जाग्रति त्रिदशेश्वरे ।
अप्रमेये हृषीकेशे युद्धकालेऽप्यमुह्यत ॥२८॥

हे राजन ! हम लोग रात में तो यह मति निर्धारित करते और दिन में युद्ध के समय त्रिदशेश्वर, अद्भुत शक्ति-शाली हृषीकेष कृष्ण के अद्भुत चमत्कार को देखकर मोहित हो जाते थे ॥२८॥

अर्जुनं चापि राधेयात्सदा रक्षति केशवः ।
न ह्येनमैच्छत्प्रमुखे सौतेः स्थापयितुं रणे ॥२९॥

श्रीकृष्ण सदा अर्जुन को कर्ण से बचाते रहे-उन्होंने कभी अर्जुन को रण में अच्छी तरह कर्ण के सन्मुख नहीं आने दिया।

अन्यांश्चाऽस्मै रथोदारानुपास्थापयदच्युतः ।
अमोघां तां कथं शक्तिं मोघां यामिति प्रभो ॥३०॥

हे प्रभो ! श्रीकृष्ण सर्वदा अन्य बड़े २ महारथियों को कर्ण के सन्मुख भेजते रहे, फिर उस अमोघशक्ति को कैसे अर्जुन पर छोड़ कर हम सफल बना सकते थे ॥३०॥

यश्चैवं रक्षते पार्थं कर्णात्कृष्णो महामनाः ।
आत्मानं स कथं राजन्न रक्षेत्पुरुषोत्तमः ॥३१॥

हे राजन् ! महामनस्वी कृष्ण ने जब इस तरह अर्जुन को कर्ण से बचाए रखा-तो फिर पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण अपने को भी कर्ण से क्यों नहीं बचाते-इसके विषय में तो अधिक कहना ही क्या है।

परिचिन्त्य तु पश्यामि चक्रायुधमरिन्दमम् ।
न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु यो जयेत जनार्दनम् ॥३२॥

मैं अरिमर्दन, सुदर्शन चक्रधारी श्रीकृष्ण के विषय में जब गम्भीरता से सोचता हूं-तो मुझे त्रिलोकी में कोई वीर दिखाई नहीं देता-जो कृष्ण को जीत लेवे ॥३२॥

सञ्जय उवाच—ततः कृष्णं महाबाहुं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।

पप्रच्छ रथशार्दूलः कर्णं प्रति महारथः ॥३३॥

अयं च प्रत्ययः कर्णे शक्तिश्चाऽमितविक्रमा ।

किमर्थं सूतपुत्रेण न मुक्ता फाल्गुने तु सा ॥३४॥

सञ्जय ने फिर कहा—हे राजन्! इसी कर्ण की बात को सत्यपराक्रमी, रथियों में श्रेष्ठ, महारथी सात्यकि ने महाबाहु श्रीकृष्ण से पूछा था, कि जब सूत-पुत्र कर्ण को यह पता था, कि यह शक्ति, अद्भुत प्रभाव रखती है-तो उसने फिर क्यों नहीं इस शक्ति का प्रयोग केवल धनञ्जय अर्जुन पर किया ॥३३-३४॥

वासुदेव उवाच—दुःशासनश्च कर्णश्च शकुनिश्च ससैन्धवः ।

सततं मन्त्रयन्ति स्म दुर्योधनपुरोगमाः ॥३५॥

कर्ण कर्ण महेष्वास रणेऽमितपराक्रम ।

नाऽन्यस्य शक्तिरेषा ते मोक्तव्या जयतां वर ॥३६॥

ऋते महारथात्कर्ण कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ।

स हि तेषामतियशा देवानामिव वासवः ॥३७॥

तस्मिन्विनिहते पार्थे पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।

भविष्यन्ति गतात्मानः सुरा इव निरग्नयः ॥३८॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे सात्यकि ! दुःशासन, कर्ण, शकुनि, सिन्धुराज जयद्रथ और स्वयं राजा दुर्योधन, कर्ण से यही कहते रहते थे, कि हे महाधनुर्धर ! अत्यन्त पराक्रमी ! जयशील ! कर्ण ! तुम इस शक्ति को अर्जुन के सिवा किसी अन्य वीर पर न छोड़ देना। इस शक्ति को तो केवल कुन्ती-पुत्र धनञ्जय के लिए ही सुरक्षित रखो। पाण्डवों में अर्जुन ही देवों में इन्द्र के समान महान् यशस्वी है। इस अर्जुन के मार लेने पर ही सृञ्जयों के साथ सारे पाण्डव, इस प्रकार निरुत्साही हो जावेंगे, जैसे यज्ञ रहित होने पर देवता हो जाते हैं ॥३५-३८॥

तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन शिनिपुङ्गव ।
हृदि नित्यं च कर्णस्य वधो गाण्डीवधन्वनः ॥३९॥

हे शिनिपुङ्गव ! कर्ण ने उनकी इस बात को मान भी रखा था, क्योंकि कर्ण भी सर्वदा यही चाहता रहता था, कि मैं किसी प्रकार गाण्डीवधारी अर्जुन को मार लूं ॥३९॥

अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधां वर ।
ततो नाऽवसृजच्छक्तिं पाण्डवे श्वेतवाहने ॥४०॥

हे योद्धाओं में श्रेष्ठ ! सात्यकि ! मैं राधा-पुत्र कर्ण को युद्ध में सर्वदा चकमा देता रहा, जिससे वह इस शक्ति को श्वेतवाहन-धारी पाण्डु-पुत्र अर्जुन पर नहीं छोड़ सका ॥४०॥

फाल्गुनस्य हि सा मृत्युरिति चिन्तयतोऽनिशम् ।
न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति-युधां वर ॥४१॥

हे महारथिन्! मुझे तो सर्वदा यही चिन्ता लगी रहती थी, कि यह शक्ति पाण्डु-पुत्र अर्जुन की मृत्यु का साधन है, इससे मुझे न तो कभी अच्छी तरह नींद आई और न मैं कभी प्रफुल्लित हुआ ॥४१॥

घटोत्कचे व्यंसितां तु दृष्ट्वा तां शिनिपुङ्गव।
मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं पश्याम्यद्य धनञ्जयम् ॥४२॥

हे शिनिवंशश्रेष्ठ! जब वह शक्ति आज घटोत्कच पर समाप्त हो गई, तो अब मैंने धनञ्जय अर्जुन का मृत्यु के मुख से बच निकलना समझा है ॥४२॥

न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे ॥४३॥

पिता, माता, तुम, भ्रातृवर्ग तथा प्राणों की भी मैं इतनी रक्षा नहीं कर रहा हूं, जितनी अर्जुन की इस रण में रक्षा करता हूं।

त्रैलोक्यराज्याद्यत्किञ्चिद्भवेदन्यत्सुदुर्लभम्।
नेच्छेयं सात्वताऽहं तद्विना पार्थं धनञ्जयम् ॥४४॥

हे सात्वतवंशश्रेष्ठ! यदि त्रिलोकी के राज्य से भी कोई बढ़कर वस्तु हो-तो कुन्ती-पुत्र अर्जुन को छोड़कर मैं उसका भी ग्रहण करना नहीं चाहता हूं ॥४४॥

अतः प्रहर्षः सुमहान्युयुधानाऽद्य मेऽभवत्।
मृतं प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थं धनञ्जयम् ॥४५॥

हे युयुधान ! आज मृत्यु के बन्धन से मानों छुटकारा पाकर अर्जुन छूटे हैं, इसीलिए मुझे बहुत अधिक आनन्द हो रहा है।

अतश्च प्रहितो युद्धे मया कर्णाय राक्षसः।

न ह्यन्यः समरे रात्रौ शक्तः कर्णं प्रबाधितुम् ॥४६॥

रात्रि में कर्ण को दबा देने वाला राक्षसराज घटोत्कच के सिवा अन्य नहीं हो सकता-मैंने यही सोचकर युद्ध में घटोत्कच को कर्ण के सन्मुख भेजा ॥४६॥

सञ्जय उवाच—इति सात्यकये प्राह तदा देवकिनन्दनः।

धनञ्जयहिते युक्तस्तत्प्रिये सततं रतः ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८२॥

सञ्जय फिर बोले—हे राजन् ! धनञ्जय अर्जुन के प्रिय और हित में तत्पर देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण ने सात्यकि को इस प्रकार यह सारी घटना सुनाई ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में सञ्जय धृतराष्ट्र और सात्यकि कृष्ण के सम्वाद का एक सौ बयासीवां अध्याय समाप्त हुआ।



एक सौ तिरासीवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—कर्णदुर्योधनादीनां शकुनेः सौबलस्य च ।
अपनीतं महत्तात तव चैव विशेषतः ॥१॥
यदि जानीथ तां शक्तिमेकघ्नीं सततं रणे ।
अनिवार्यामसह्यां च देवैरपि सवासवैः ॥२॥
सा किमर्थं तु कर्णेन प्रवृत्ते समरे पुरा ।
न देवकीसुते मुक्ता फाल्गुने वाऽपि सञ्जय ॥३॥

धृतराष्ट्र बोले—हे तात ! कर्ण, दुर्योधन, सुबल-पुत्र शकुनि और विशेष कर तुम्हारी यह बड़ी ही भूल हुई-जो शक्ति का प्रयोग घटोत्कच पर हो जाने दिया। जो तुम लोग यह जानते थे, कि यह शक्ति रण में जिस पर फैंकी जावेगी; उसे मारे विना न छोड़ेगी, उस असह्य शक्ति को रोकने में इन्द्र सहित देवता भी समर्थ नहीं हैं, तो हे सञ्जय ! फिर उस शक्ति को कर्ण ने रण के आरम्भ होने पर क्यों नहीं देवकी-पुत्र कृष्ण या अर्जुन पर छोड़ा ॥१-३॥

सञ्जय उवाच—संग्रामाद्विनिवृत्तानां सर्वेषां नो विशाम्पते ।
रात्रौ कुरुकुलश्रेष्ठ मन्त्रोऽयं समजायत ॥४॥
प्रभातमात्रे श्वोभूते केशवायाऽर्जुनाय वा ।
शक्तिरेषा हि मोक्तव्या कर्ण कर्णेति नित्यशः ॥५॥
ततः प्रभातसमये राजन्कर्णस्य दैवतैः ।
अन्येषां चैव योधानां सा बुद्धिर्नाश्यते पुनः ॥६॥

सञ्जय ने उत्तर दिया—हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! विशाम्पते ! जब हम लोग संग्राम से लौट कर रात में अपने शिविरों में आते थे, तो हम लोगों की यह सम्मति होती थी, कि हे कर्ण ! तुम प्रातः काल, कल इस शक्ति को श्रीकृष्ण या अर्जुन पर अवश्य छोड़ देना-परन्तु हे राजन ! प्रातःकाल होने पर कर्ण तथा अन्य वीरों की बुद्धि को देवता विपरीत कर देते थे ॥५-६॥

दैवमेव परं मन्ये यत्कर्णो हस्तसंस्थया ।
न जघान रणे पार्थं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥७॥

हे नराधिप ! मैं तो इसमें दैव को ही प्रधान मानता हूं, जो हाथ में शक्ति के आने पर भी कर्ण, धनञ्जय अर्जुन या देवकी-पुत्र कृष्ण को न मार सका ॥७॥

तस्य हतस्थिता शक्तिः कालरात्रिरिवोद्यता ।
दैवोपहतबुद्धित्वान्न तां कर्णो विमुक्तवान् ॥८॥
कृष्णे वा देवकीपुत्रे मोहितो देवमायया ।
पार्थे वा शक्रकल्पे वै वधार्थं वासवीं प्रभो ॥९॥

कर्ण के हाथ में कालरात्रि के समान भीषण शक्ति आ गई थी, तो भी दैव के विरुद्ध होने से कर्ण, इन्द्र की इस शक्ति को कृष्ण या इन्द्र तुल्य पराक्रमी अर्जुन के वध के लिए उन पर नहीं छोड़ सका। यह सब कुछ दैव की माया से मोहित होने से ही हुआ है ॥८-९॥

धृतराष्ट्र उवाच—दैवेनोपहता यूयं स्वबुद्ध्या केशवस्य च ।
गता हि वासवी हत्वा तृणभूतं घटोत्कचम् ॥१०॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! तुम्हारी बुद्धि दैव ने नष्ट कर दी या श्रीकृष्ण की युक्ति से तुम्हारी बुद्धि नष्ट हुई है, जो तिनके के समान स्थित वाले घटोत्कच पर इन्द्र की दी हुई शक्ति को समाप्त कर लिया ॥१०॥

कर्णश्च मम पुत्राश्च सर्वे चाऽन्ये च पार्थिवाः ।
तेन वै दुष्प्रणीतेन गता वैवस्वतक्षयम् ॥११॥

हे सूत ! कर्ण, मेरे पुत्र तथा अन्य सारे राजा इसी दुर्नीति के के कारण यमराज के घर के अतिथि बने पड़े हैं-मुझे यह प्रतीत होगा ॥११॥

भूय एव तु मे शंस यथा युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च हैडिम्बौ निहते तदा ॥१२॥

अब तुम फिर यह बताओ, कि हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच के मारे जाने पर कौरव और पाण्डवों का कैसे युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥१२॥

ये च तेऽभ्यद्रवन्द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
सृञ्जयाः सह पञ्चालैस्तेऽप्यकुर्वन्कथं रणम् ॥१३॥

प्रहार करने में कुशल, सेना का व्यूह बनाये हुए पाञ्चाल और सृञ्जय वीरों में से किन २ वीरों ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया और उनका कितना भीषण संग्राम हुआ-मुझे यह बताओ ॥१३॥

सौमदत्तेर्वधाद् द्रोणमायान्तं सैन्धवस्य च ।
अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं वरूथिनीम् ॥१४॥

जृम्भमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।
कथं प्रत्युद्ययुर्द्रोणमस्यन्तं पाण्डुसृञ्जयाः ॥१५॥

सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा और राजा जयद्रथ के मरने पर आवेश में भर कर जंभाई लेते हुए, व्याघ्र और मुख फाड़े हुए काल की तरह पाण्डव सेना का आलोडन करते हुए तथा जीवन की परवाह न करके आक्रमण करते हुए बाणों की झड़ी लगाने वाले आचार्य द्रोण पर पाण्डव और सृञ्जय वीरों में कौन सन्मुख आया ॥१५॥

आचार्यं ये च तेऽरक्षन्दुर्योधनपुरोगमाः ।
द्रौणिकर्णकृपास्तात ते वा कुर्वन्किमाहवे ॥१६॥

हे तात ! राजा दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृप और कर्ण आदि वीर, जो द्रोणाचार्य की रक्षा में तत्पर थे, उन्होंने युद्ध में क्या कर्म कर दिखाया ॥१६॥

भारद्वाजं जिघांसन्तौ सव्यसाचिवृकोदरौ ।
समार्च्छन्मामका युद्धे कथं सञ्जय शंस मे ॥१७॥

भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य के मार देने की अभिलाषा वाले, सव्यसाची अर्जुन और वृकोदर भीमसेन के साथ जिन मेरे वीरों ने युद्ध किया, मुझे यह भी बताओ ॥१७॥

सिन्धुराजवधेनेमे घटोत्कचवधेन ते ।
अमर्षिताः सुसंक्रुद्धा रणे चक्रुः कथं निशि ॥१८॥

कौरव तो सिन्धुराज जयद्रथ के वध से क्रुद्ध हो रहे थे और पाण्डव, घटोत्कच के वध से जल उठे थे। अब उन्होंने रात में कैसा युद्ध किया-मुझे यह सुनाओ ॥१८॥

सञ्जय उवाच—हते घटोत्कचे राजन्कर्णेन निशि राक्षसे ।
प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु ॥१९॥
आपतत्सु च वेगेन वध्यमाने बलेऽपि च ।
विगाढायां रजन्यां च राजा दैन्यं परं गतः ॥२०॥
अब्रवीच्च महाबाहुर्भीमसेनमिदं वचः ।

सञ्जय बोले—हे राजन्! जब इस रात में महारथी कर्ण ने राक्षसराज घटोत्कच को मार लिया, तो तुम्हारे वीर बड़े प्रसन्न होकर युद्ध की अभिलाषा से गर्जना करने और पाण्डवों की सेना पर झपटने लगे। इस घनघोर रात में अपनी सेना के नाश होने पर महाबाहु, राजा युधिष्ठिर बड़ा ही दुःखी हुआ। वे अब भीमसेन से इस प्रकार कहने लगे ॥१९-२०॥

आवारय महाबाहो धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ॥२१॥
हैडिम्बेश्चैव घातेन मोहो मामाविशन्महान् ।

हे महाबाहो! भीमसेन! तुम धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन की सेना को रोको। इस समय हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच के मारे जाने से तो मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है ॥२१॥

एवं भीमं समादिश्य स्वरथे समुपाविशत् ॥२२॥
अश्रुपूर्णमुखो राजा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ।
कश्मलं प्राविशद्घोरं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥२३॥

हे राजन्! इस प्रकार भीमसेन से कह कर राजा युधिष्ठिर रोने लगे। उनका मुख आँसुओं से भर गया और वे बार २ श्वास

लेते हुए अपने रथ में बैठ गए । कर्ण के पराक्रम को देखकर इन्हें बड़ा ही क्लेश छा गया ॥२२-२३॥

तं तथा व्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो वचनमब्रवीत् ।
मा व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥२४॥
वैक्लव्यं भरतश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे ।
उत्तिष्ठ राजन्युध्यस्व वह गुर्वीं धुरं विभो ॥२५॥
त्वयि वैक्लव्यमापन्ने संशयो विजये भवेत् ।

धर्मराज को इतना चिन्तातुर देखकर श्रीकृष्ण यह वचन बोले—हे कौन्तेय ! तुम व्यथा न करो—हे भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारा इस प्रकार व्याकुल होना—तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप नहीं हैं । ऐसी व्याकुलता सामान्य जनों में आती है । हे राजन् ! उठो और युद्ध करो । हे विभो ! इस राज्य भार की भारी धुर का वहन करो । यदि तुमने कुछ कातरता दिखाई, तो विजय में संशय खड़ा हो जावेगा ॥२५॥

श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥२६॥
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत् ।

धर्मराज युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण के बचन सुनकर और अपने हाथों से नेत्र पोंछ कर श्रीकृष्ण से यह वचन बोले ॥२६॥

विदिता मे महाबाहो धर्माणां परमा गतिः ॥२७॥
ब्रह्महत्याफलं तस्य यः कृतं नाऽवबुध्यते ।

हे महाबाहो ! मुझे धर्म की सूक्ष्म गति का ज्ञान है । जो मनुष्य उपकार को नहीं मानता, उसको ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है ॥२७॥

अस्माकं हि वनस्थानां हैडिम्बेन महात्मना ॥२८॥
बालेनाऽपि सता तेन कृतं साह्यं जनार्दन ।

हे जनार्दन ! जब हम लोग वन में स्थित थे, तो उस समय यह घटोत्कच बालक था, तो भी हिडिम्बा-पुत्र महाबली घटोत्कच ने बाल्यावस्था में ही हमारी बड़ी सहायता की ॥२८॥

अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेतवाहनम् ॥२९॥
असौ कृष्ण महेष्वासः काम्यके मामुपस्थितः ।

जब घटोत्कच को यह पता लगा, कि श्वेत अश्वों के वाहनधारी अर्जुन अस्त्रविद्या सीखने गए हैं, तो यह धनुर्धर घटोत्कच हमारे पास काम्यक वन में सर्वदा स्थित रहता था ॥२९॥

उषितश्च सहाऽस्माभिर्यावन्नाऽऽसीद्धनञ्जयः ॥३०॥
गन्धमादनयात्रायां दुर्गेभ्यश्च स्म तारिताः ।

इस घटोत्कच ने हमारे पास उस समय तक निवास किया, जब तक अर्जुन स्वर्ग से न लौट आए । इसी घटोत्कच ने गन्धमादन पर्वत की यात्रा के समय हम लोगों को बड़े २ संकटों से बचाया है ।

पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महात्मना ॥३१॥
आरम्भाच्चैव युद्धानां यदेष कृतवान्प्रभो ।
मदर्थे दुष्करं कर्म कृतं तेन महाहवे ॥३२॥

जब पाञ्चाली थक गई, तो इस महावीर ने उसे पीठ पर उठा लिया। हे प्रभो ! इसने युद्ध के आरम्भ से जो मेरे निमित्त बड़े २ दुष्कर कर्म महारण में कर दिखाए ॥३१-३२॥

स्वभावाद्या च मे प्रीतिः सहदेवे जनार्दन ।
सैव मे परमा प्रीती राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे ॥३३॥

हे जनार्दन ! स्वभाव से ही जैसी मेरी प्रीति अपने भ्राता सहदेव में है, वही प्रीति, इस राक्षसेन्द्र घटोत्कच में थी ॥३३॥

भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याऽहं प्रियश्च मे ।
तेन विन्दामि वार्ष्णेय कश्मलं शोकतापितः ॥३४॥
पश्य सैन्यानि वार्ष्णेय द्राव्यमाणानि कौरवैः ।

यह महाबाहु घटोत्कच मेरा बड़ा भक्त था। इसको हम लोग बड़े प्रिय थे और हम भी इस पर अत्यन्त प्रीति रखते थे। हे वार्ष्णेय ! इसी कारण से मैं शोक से सन्तप्त होकर बड़ी मूर्च्छा को प्राप्त हो रहा हूं। हे कृष्ण ! इस समय तुम कौरवों द्वारा भगाई हुई पाण्डव सेनाओं को देखो ॥३४॥

द्रोणकर्णौ तु संयत्तौ पश्य युद्धे महारथौ ॥३५॥
निशीथे पाण्डवं सैन्यमेतत्सैन्यप्रमर्दितम् ।
गजाभ्यामिव मत्ताभ्यां यथा नलवनं महत् ॥३६॥

हे राजन् ! महारथी द्रोण और कर्ण को तुम बड़ी सावधानी से स्थित देखो। इस अर्धरात्रि के समय में पाण्डवसेना को भी

इन द्रोण आदि की सेना से इस प्रकार दबोची हुई देख लो-जैसे-दो मदोन्मत्त हाथी, नलवन को मसल डालते हैं ॥३५-३६॥

अनादृत्य बलं बाह्वोर्भीमसेनस्य माधव ।
चित्रास्त्रतां च पार्थस्य विक्रमन्ति स्म कौरवाः ॥३७॥

हे माधव ! इस समय भीमसेन के बाहुओं के बल को तथा अर्जुन के विचित्र ढंग से बाण चलाने की शैली की कुछ भी परवाह न करके कौरववीर, कितना पराक्रम कर रहे हैं।

एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः ।
निहत्य राक्षसं युद्धे हृष्टा नर्दन्ति संयुगे ॥३८॥

यह द्रोणाचार्य, महारथी कर्ण और राजा दुर्योधन युद्ध में राक्षसराज घटोत्कच को मारकर रण में बड़े उल्लास से गर्जना कर रहे हैं ॥३८॥

कथं बाऽस्मासु जीवत्सु त्वयि चैव जनार्दन ।
हैडिम्बिः प्राप्तवान्मृत्युं सूतपुत्रेण सङ्गतः ॥३९॥

हे जनार्दन ! हम लोगों और आपके जीवित रहते हुए भी हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच, सूत-पुत्र कर्ण से युद्ध करके कैसे मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥३९॥

कदर्थीकृत्य नः सर्वान्पश्यतः सव्यसाचिनः ।
निहतो राक्षसः कृष्ण भैमसेनिर्महाबलः ॥४०॥

हे कृष्ण ! सव्यसाची अर्जुन के देखते रहने पर भी हम सबको व्याकुल करके, महाबली- भीमसेन-पुत्र घटोत्कच को महारथी कर्ण ने मार लिया ॥४०॥

यदाऽभिमन्युर्निहतो धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः ।
नाऽऽसीत्तत्र रणे कृष्ण सव्यसाची महारथः ॥४१॥

हे कृष्ण ! जब दुरात्मा धृतराष्ट्र-पुत्रों ने अभिमन्यु को मारा, तो उस समय महारथी अर्जुन समीप में नहीं थे ॥४१॥

निरुद्धाश्च वयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना ।
निमित्तमभवद् द्रोणः सपुत्रस्तत्र कर्मणि ॥४२॥

जब हम लोग उसके साथ आगे बढ़ने लगे, तो दुरात्मा सिन्धुराज ने हमको रोक दिया। अभिमन्यु की मृत्यु के कारणों में पुत्र सहित द्रोणाचार्य भी एक कारण हैं ॥४२॥

उपदिष्टो वधोपायः कर्णस्य गुरुणा स्वयम् ।
व्यायच्छतश्च खड्गेन द्विधा खड्गं चकार ह ॥४३॥

आचार्य द्रोण ने ही कर्ण को अभिमन्यु के वध का उपाय बताया था-यही बात नहीं है, प्रत्युत खड्ग लेकर युद्ध करते हुए अभिमन्यु के खड्ग के दो टुकड़े ही द्रोणाचार्य ने किए थे ॥४३॥

व्यसने वर्तमानस्य कृतवर्मा नृशंसवत् ।
अश्वाञ्जघान सहसा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥४४॥

तथेतरे महेष्वासाः सौभद्रं युध्यपातयन् ।

जब अभिमन्यु इस संकट में फंस रहे थे, तो कृतवर्मा ने नीच व्यक्ति की तरह एकदम अभिमन्यु के अश्वों को मार डाला और उसके दोनों पार्ष्णिरक्षकों को भी यमधाम भेज दिया। इसके

बाद अन्य कई धनुर्धरों ने सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु को रण में मार गिराया ॥४४॥

अल्पे च कारणे कृष्ण ततो गाण्डीवधन्वना ॥४५॥

सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तच्च नाऽतिप्रियं मम ।

यदि शत्रुवधो न्याय्यो भवेत्कर्तुं हि पाण्डवैः ॥४६॥

कर्णद्रोणौ रणे पूर्वं हन्तव्याविति मे मतिः ।

हे यदुकुलश्रेष्ठ ! कृष्ण ! राजा जयद्रथ के थोड़े से अपराध पर गाण्डीवधारी अर्जुन ने उसे मार गिराया, जो मुझे अधिक प्रिय नहीं है । यदि हम लोगों को शत्रु का वध करना न्यायानुकूल है, तो मेरी मति में सबसे पूर्व द्रोण और कर्ण को मार लेना चाहिए ।

एतौ हि मूलं दुःखानामस्माकं पुरुषर्षभ ॥४७॥

एतौ रणे समासाद्य समाश्वस्तः सुयोधनः ।

हे पुरुषर्षभ ! ये द्रोणाचार्य और महारथी कर्ण ही हमारे क्लेशों के मूल हैं । इनको पाकर ही राजा दुर्योधन को युद्ध करने का साहस हो रहा है ॥४७॥

यत्र वध्यो भवेद् द्रोणः सूतपुत्रश्च सानुगः ॥४८॥

तत्राऽवधीन्महाबाहुः सैन्धवं दूरवासिनम् ।

जब कि अर्जुन को प्रथम द्रोणाचार्य या सेना सहित महारथी कर्ण को मारना था, वहां महाबाहु धनञ्जय ने दूरवासी सिन्धुराज को व्यर्थ ही जा मारा ॥४८॥

अवश्यं तु मया कार्यः सूतपुत्रस्य निग्रहः ॥४९॥

ततो यास्याम्यहं वीर स्वयं कर्णजिघांसया ।

हे वीर ! मुझे तो सूत-पुत्र कर्ण का वध करना बहुत ही अभीष्ट है, इससे अब मैं स्वयं ही कर्ण के मारने को उस पर आक्रमण करूँगा ॥४९॥

भीमसेनो महाबाहुर्द्रोणानीकेन सङ्गतः ॥५०॥

एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं त्वरमाणो युधिष्ठिरः ।

स विस्फार्य महच्चापं शङ्खं प्राध्माप्य भैरवम् ॥५१॥

महाबाहु भीमसेन तो द्रोणाचार्य की सेना से लड़ रहे हैं। हे राजन् ! इतना कहकर राजा युधिष्ठिर अपने भीषण शङ्खों को बजा कर और विशाल धनुष को चढ़ाकर बड़े वेग से कर्ण की ओर झपटे ॥५०-५१॥

ततो रथसहस्रेण गजानां च शतैस्त्रिभिः ।

वाजिभिः पञ्चसाहस्रैः पञ्चालैः सप्रभद्रकैः ॥५२॥

वृतः शिखण्डी त्वरितो राजानं पृष्ठतोऽन्वयात् ।

हे राजन् ! एक सहस्र रथ, तीन सौ हाथी, पांच हजार घुड़सवार तथा अन्य पाञ्चाल और प्रभद्रक वीरों को साथ लेकर शिखण्डी बड़ी शीघ्रता से धर्मराज के साथ हो लिया ॥५२॥

ततो भेरीः समाजघ्नुः शङ्खान्दध्मुश्च दंशिताः ॥५३।

पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव युधिष्ठिरपुरोगमाः ।

हे नराधिप! अब राजा युधिष्ठिर को आगे करके सारे पाञ्चाल और पाण्डव सैनिकवीर, सुसज्जित होकर शङ्ख और भेरी आदि बाजे बजाने लगे ॥५३॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्वासुदेवो धनञ्जयम् ॥५४॥
एष प्रयाति त्वरितः क्रोधाविष्टो युधिष्ठिरः ।
जिघांसुः सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते ॥५५॥

अब वसुदेव-पुत्र महाबाहु श्रीकृष्ण ने धनञ्जय (अर्जुन) से कहा-कि राजा युधिष्ठिर क्रोध में भरकर बड़े वेग से अङ्गराज कर्ण पर आक्रमण कर रहे हैं। ये सूत-पुत्र कर्ण को मार देने की चेष्टा कर रहे हैं। तुमको इनकी उपेक्षा (लापरवाही) नहीं करनी चाहिए ॥५४-५५॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशः शीघ्रमश्वानचोदयत् ।
दूरं प्रयान्तं राजानमन्वगच्छज्जनार्दनः ॥५६॥

हे राजन्! इतना कह कर हृषीकेश कृष्ण ने अपने अश्वों को भी शीघ्रता से आगे बढ़ाया। यद्यपि राजा युधिष्ठिर दूर पहुंच चुके थे, परन्तु ये भी दौड़कर उनके पीछे हो लिए ॥५६॥

तं दृष्ट्वा सहसाऽऽयान्तं सूतपुत्रजिघांसया ।
शोकोपहतसङ्कल्पं दह्यमानमिवाऽग्निना ॥५७॥
अभिगम्याऽब्रवीद्व्यासो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

हे महाराज! अब वेदव्यास जी, सूत-पुत्र के मार देने की अभिलाषा से एकदम झपटते हुए, शोक से कुछ भी सोचने में

असमर्थ, अग्नि से सन्तापित हुए के तुल्य, धर्मराज युधिष्ठिर को देखकर उनके पास पहुंचे और यह वचन कहने लगे ॥५७॥

व्यास उवाच—कर्णमासाद्य संग्रामे दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः

सव्यसाचिवधाकांक्षी शक्तिं रक्षितवान्हि सः ।

न चाऽगाद् द्वैरथं जिष्णुर्दिष्ट्या तेन महारणे ॥५९॥

सृजेतां स्पर्धिनावेतौ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः ।

वध्यमानेषु चाऽस्त्रेषु पीडितः सूतनन्दनः ॥६०॥

वासवीं समरे शक्तिं ध्रुवं मुञ्चेद्युधिष्ठिर ।

हे धर्मराज ! अर्जुन का कई बार कर्ण से युद्ध तो हुआ और उनमें अर्जुन बचे रहे, यह भी बड़े आनन्द की बात रही, क्योंकि कर्ण ने अर्जुन के मार देने के लिए इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति अपने पास सुरक्षित रख छोड़ी थी। हे राजन् ! इतने पर भी किसी महारण में अर्जुन और कर्ण का द्वैरथ (बिल्कुल आमने सामने का युद्ध) नहीं हुआ, यह बड़ी उत्तम बात हुई। हे युधिष्ठिर ! यदि इनका मुकाबिला हो जाता, तो ये अच्छी तरह अपने दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करते। जब अर्जुन द्वारा कर्ण के अस्त्रों को काट दिया जाता, तो वह सूत-नन्दन कर्ण, अवश्य रण में इन्द्र की दी हुई शक्ति का प्रयोग करता ॥५८-६०॥

ततो भवेत्ते व्यसनं घोरं भरतसत्तम ॥६१॥

दिष्ट्या रक्षो हतं युद्धे सूतपुत्रेण मानद ।

हे भरतसत्तम ! इससे तुमको बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ता। हे मानद ! इस युद्ध में सूत-पुत्र ने अपनी शक्ति को छोड़ कर जो घटोत्कच का वध कर डाला, यह कार्य बड़ा ही अच्छा हुआ है ॥६१॥

वासवीं कारणं कृत्वा कालेनोपहतो ह्यसौ ॥६२॥
तवैव कारणाद्रक्षो निहतं तात संयुगे ।

इसका तो काल आ गया था, परन्तु इसके कारण इन्द्र की शक्ति का जो नाश हो गया–वह कितना अच्छा हुआ है। हे तात ! यह सब कुछ तुम्हारी विजय को ध्यान में रख कर ही रण में किया गया है ॥६२॥

मा क्रुधो भरतश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ॥६३॥
प्राणिनामिह सर्वेषामेषा निष्ठा युधिष्ठिर ।

हे भरतश्रेष्ठ ! तुम न तो क्रोध करो और न मन में कुछ शोक ाओ। हे धर्मराज ! इस संसार में तो सारे प्राणियों की एक दिन -यु होकर यही दशा होनी है ॥६३॥

भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः ॥६४॥
कौरवान्समरे राजन्प्रतियुध्यस्व भारत ।

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! धर्मराज ! तुम अपने सारे भाइयों और महाबली राजाओं को साथ लेकर रण में कौरवों से युद्ध करो ॥

पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति ॥६५॥
नित्यं च पुरुषव्याघ्र धर्ममेवानुचिन्तय ।

हे तात! अब पांचवें दिन सारी पृथिवी तेरी हो जावेगी। हे पुरुषव्याघ्र! तुम नित्य धर्म का अनुचिन्तन करते रहो ॥६५॥

आनृशंस्यं तपो दानं क्षमां सत्यं च पाण्डव ॥६६॥
सेवेथाः परमप्रीतो यतो धर्मस्ततो जयः।
इत्युक्त्वा पाण्डवं व्यासस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥६७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे व्यासवाक्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३॥

समाप्तं च घटोत्कचवधपर्व।

हे पाण्डव! तुम उदार भाव, तप, दान, क्षमा और सत्य का सेवन परम प्रीति के साथ करते रहो-तुम जानते हो, कि जिधर धर्म होता है, उस पक्ष की ही विजय होती है। हे राजन्! इतना धर्मराज से कहकर व्यास जी अन्तर्हित हो गए ॥६६-६७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत घटोत्कचवधपर्व में व्यास और धर्मराज के मिलने के वर्णन का एक सौ तिरासीवां अध्याय पूरा हुआ और यहीं पर घटोत्कचवधपर्व भी पूरा हो गया

अथ द्रोणवधपर्व

एक सौ चौरासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच— व्यासेनैवमथोक्तस्तु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
स्वयं कर्णवधाद्वीरो निवृत्तो भरतर्षभ ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! जब भगवान् वेदव्यास ने इतना कहा, तो वीरश्रेष्ठ, धर्मराज युधिष्ठिर ने स्वयं कर्ण के वध करने का विचार छोड़ दिया ॥१॥

घटोत्कचे तु निहते सूतपुत्रेण तां निशाम् ।
दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥२॥

हे नृप ! जब सूत-पुत्र कर्ण ने राक्षसराज घटोत्कच को मार लिया, तो उस रात को धर्मराज ने बड़े शोक और आवेश में व्यतीत किया ॥२॥

दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमूं तव ।
धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भयोनिं निवारय ॥३॥

धर्मराज ने जब अकेले भीमसेन को कौरवसेना को रोकते देखा-तो वे धृष्टद्युम्न से बोले, कि तुम आगे बढ़ो और कुम्भयोनि द्रोणाचार्य को वहीं रोक दो ॥३॥

त्वं हि द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ।
सशरः कवची खड्गी धन्वी च परतापनः ॥४॥
अभिद्रव रणे हृष्टो मा च ते भीः कथञ्चन ।
जनमेजयः शिखण्डी च दौर्मुखिश्च यशोधरः ॥५॥
अभिद्रवन्तु संहृष्टाः कुम्भयोनिं समन्ततः ।

तुम तो द्रोण के नाश करने को धनुष बाण, खड्ग और कवच पहिने हुए ही यज्ञ की अग्नि से उत्पन्न हुए हो । तुम तो शत्रुनाशक हो, इससे बड़े उत्साह के साथ रण में द्रोणाचार्य पर आक्रमण करो । तुमको रण में कुछ भय न मानना चाहिए । अब जनमेजय, शिखण्डी, दुर्मुख-पुत्र यशोधर बड़ी वीरता के साथ सब ओर से कुम्भयोनि द्रोणाचार्य पर आक्रमण करें ॥४-५॥

नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥६॥
द्रुपदश्च विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ ।
सात्यकिः केकयाश्चैव पाण्डवश्च धनञ्जयः ॥७॥
अभिद्रवन्तु वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया ।

इसी तरह नकुल, सहदेव, द्रौपदी-पुत्र, प्रभद्रकवीर-पुत्र और भ्राताओं के साथ द्रुपद और विराटराज, सात्यकि, केकयवीर और पाण्डु-पुत्र अर्जुन, कुम्भयोनि द्रोण के वध की इच्छा से वेग से आक्रमण करें ॥६-७॥

तथैव रथिनः सर्वे हस्त्यश्वं यच्च किञ्चन ॥८॥
पदाताश्च रणे द्रोणं पातयन्तु महारथम् ।

सारे रथी वीर, गजारोही, अश्वारोही और पैदलवीर भी रण में महारथी द्रोणाचार्य के गिरा देने की चेष्टा में संलग्न हो जावें ॥८॥

तथाऽऽज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महात्मना ॥९॥
अभ्यद्रवन्त वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया ।

इस प्रकार महात्मा युधिष्ठिर द्वारा आज्ञा देने पर सारे वीर कुम्भयोनि द्रोणाचार्य के वध के निमित्त वेग से दौड़े ॥९॥

आगच्छतस्तान्सहसा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥१०॥
प्रतिजग्राह समरे द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।

जब इन वीरों ने सारा बल लगा कर एकदम आक्रमण किया, तो शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोण ने रण में बाणों से इनका स्वागत किया ॥१०॥

ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥११॥
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्ध इच्छन्द्रोणस्य जीवितम् ।

हे राजन्! अब राजा दुर्योधन ने भी सब शक्ति लगाकर क्रोध के साथ पाण्डवों पर आक्रमण किया, क्योंकि वह द्रोणाचार्य के जीवन की रक्षा चाहता था ॥११॥

ततः प्रववृते युद्धं श्रान्तवाहनसैनिकम् ॥१२॥
पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम् ।

यद्यपि गजादि वाहन और सैनिकवीर थक चुके थे, तो भी एक दूसरे की ओर गर्जना करते हुए कौरव पाण्डव वीरों में घोर युद्ध चल पड़ा ॥१२॥

निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे ॥१३॥
नाऽभ्यपद्यन्त समरे काञ्चिच्चेष्टां महारथाः ।
त्रियामा रजनी चैषा घोररूपा भयानका ॥१४॥
सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी ।

हे महाराज ! ये सारे वीर और वाहन निद्रा में झटके खा रहे थे और बड़े ही थक चुके थे । इन महारथियों को रण में कुछ भी करने का साहस नहीं होता था । यह तीन पहर की रात्रि बड़ी ही घोर भयानक प्राणापहारिणी और भयानक रूपधारिणी सहस्रों पहर की सी प्रतीत होने लगी ॥१४॥

वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः ॥१५॥
अर्धरात्रिः समाजज्ञे निद्रान्धानां विशेषतः ।

ये वीर, एक दूसरे पर प्रहार करते थे । इनमें अधिकांश वीर घायल हो चुके थे । इस प्रकार नींद में झूमते हुए इन वीरों की आधी रात व्यतीत हो गई ॥१५॥

सर्वे ह्यासन्निरुत्साहाः क्षत्रिया दीनचेतसः ॥१६॥
तव चैव परेषां च गतास्त्रा विगतेषवः ।

हे राजन् ! इस समय सारे क्षत्रिय दीन चित्त वाले और निरुत्साह हो गए । यह दशा तुम्हारे और पाण्डव दोनों पक्ष ही के वीरों की हो रही थी । उनके हाथ से सारे अस्त्र और बाण गिरने लगे ॥१६॥

ते तदा पारयन्तश्च ह्रीमन्तश्च विशेषतः ॥१७॥
स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुः स्वामनीकिनीम् ।

ये वीर इस युद्ध का पार पा जाना चाहते थे। कुछ को तो अपने कुल की लज्जा रोक रही थी। ये अपने क्षत्रिय धर्म के ध्यान से अपनी सेना को छोड़कर कहीं न गए ॥१७॥

अस्त्राण्यन्ये समुत्सृज्य निद्रान्धाः शेरते जनाः ॥१८॥
रथेष्वन्ये गजेष्वन्ये हयेष्वन्ये च भारत।

हे भारत! कुछ वीर निद्रा में लीन होकर और अस्त्रों को छोड़कर अपने २ रथ, गज और अश्वों पर ही सो गए ॥१८॥

निद्रान्धा नो बुबुधिरे काञ्चिच्चेष्टां नराधिप ॥१९॥
तानन्ये समरे योधाः प्रेषयन्तो यमक्षयम्।

हे नराधिप! इन निद्रातुर वीरों को कुछ करने की इच्छा न हुई। अन्य योद्धाओं ने रण में झपट कर ऐसे निश्चेष्ट वीरों को यमधाम भेज दिया ॥१९॥

स्वप्नायमानांस्त्वपरे परानतिविचेतसः ॥२०॥
आत्मानं समरे जघ्नुः स्वानेव च परानपि।
नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्रान्धास्ते महारणे ॥२१॥

कोई २ वीर नींद के प्रभाव में आये हुए शत्रु वीरों को मारने लगे तथा किसी ने अपने ऊपर ही प्रहार कर लिया और किसी ने अपने पक्ष या दूसरे पक्ष के वीरों को मार दिया। ये इस महारण में निद्रा से अन्धे हुए अनेक प्रकार की वाणी भूल से बोल देते थे ॥२०-२१॥

अस्माकं च महाराज परेभ्यो बहवो जनाः ।
योद्धव्यमिति तिष्ठन्तो निद्रासंरक्तलोचनाः ॥२२॥

हे महाराज ! हमारे पक्ष के बहुत से वीर, शत्रु पक्ष के योद्धाओं की अपेक्षा निद्रा में अधिक व्याकुल हुए भी युद्ध को अपना कर्तव्य समझ कर रणभूमि में ही डटे रहे ॥२२॥

संसर्पन्तो रणे केचिन्निद्रान्धास्ते तथाऽपरान् ।
जघ्नुः शूरा रणे शूरांस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥२३॥

कुछ निद्रातुर वीर रण में शत्रुओं पर आक्रमण कर रहे थे । इस समय घोर अन्धकार में बहुत शूरवीरों ने विरोधी वीरों को मार गिराया ॥२३॥

हन्यमानमथाऽऽत्मानं परेभ्यो बहवो जनाः ।
नाऽभ्यजानन्त समरे निद्रया मोहिता भृशम् ॥२४॥

बहुत से वीर तो इतने निद्रा में डूब चुके थे, कि अपने ऊपर प्रहार होने पर भी उनको कुछ पता न लगता था ॥२४॥

तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः ।
उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः सन्नादयन्दिशः ॥२५॥

इन वीरों की ऐसी चेष्टा देखकर पुरुषप्रवीर अर्जुन अपने उच्चस्वर से दिशाओं को शब्दायमान करते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥२५॥

श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्वे एव सवाहनाः ।
तमसा चाऽऽवृते सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥२६॥

ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः ।
निमीलयत चाऽत्रैव रणभूमौ मुहूर्तकम् । २७॥

हे वीरो ! तुम थक चुके हो और निद्रा से आतुर हो रहे हो। तुम्हारे सारे वाहन भी थक चुके । इस समय अन्धकार और धूलि से सेना भी आवृत्त हो रही है। हे सैनिको ! यदि तुम्हारी इच्छा हो-तो अब युद्ध बन्द कर दिया जावे। अब तुम थोड़ी देर तक इसी रणभूमि में नींद ले लो ॥२६-२७॥

ततो विनिद्रा विश्रान्ताश्चन्द्रमस्युदिते पुनः ।
संसाधयिष्यथाऽन्योन्यं संग्रामं कुरुपाण्डवाः ॥२८॥

थोड़ी देर में जब चन्द्रमा निकल आवे और तुम्हारी नींद भर जावे तथा थकान उतर जावे-तो तुम कौरव और पाण्डव, फिर संग्राम का आरम्भ करके अपने कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न कर लेना।

तद्वचः सर्वधर्मज्ञा धार्मिकस्य विशाम्पते ।
अरोचयन्त सैन्यानि तथा चाऽन्योन्यमब्रुवन् ॥२९॥

हे विशाम्पते ! इस प्रकार धर्मात्मा अर्जुन के वचन सुन कर धर्म के सिद्धान्त को जानने वाले वीर बड़े प्रसन्न हुए और वे एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे ॥२९॥

चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तथा दुर्योधनेति च ।
उपारमत पाण्डूनां विरता हि वरूथिनी ॥३०॥

हे कर्ण ! हे दुर्योधन ! इस प्रकार चिल्लाते हुए कौरववीर बोले-तुम लोग अपनी सेना को पीछे हटाओ, क्योंकि पाण्डवों की सेना विश्राम के लिए युद्ध से पृथक् हो रही है ॥३०॥

तथा विक्रोशमानस्य फाल्गुनस्य ततस्ततः ।
उपारमत पाण्डूनां सेना तव च भारत ॥३१॥

हे भारत ! जब पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने बड़े उच्चस्वर में जहां तहां रणभूमि में यह घोषणा सुनाई-तो पाण्डव और कौरव दोनों की सेना युद्ध से पीछे हट गई ॥३१॥

तामस्य वाचं देवाश्च ऋषयश्च महात्मनः ।
सर्वसैन्यानि चाऽक्षुद्रां प्रहृष्टाः प्रत्यपूजयन् ॥३२॥

अर्जुन की इस उदार वाणी की देव तथा महात्मा ऋषि मुनियों ने और सारी सेनाओं ने आनन्द-पूर्वक बड़ी ही प्रशंसा की

तत्सम्पूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत ।
मुहूर्तमस्वपन्राजञ्श्रान्तानि भरतर्षभ ॥३३॥

हे भारत ! दोनों पक्षों की सारी सेनाओं ने अर्जुन की इस क्रूरता-हीन वाणी की बड़ी बड़ाई करके थोड़ी देर के लिए शयन किया। हे भरतवंशश्रेष्ठ ! राजन् ! इस प्रकार अब दोनों पक्ष के सेनाओं की थकान निवृत्त हो गई ॥३३॥

सा तु सम्प्राप्य विश्रामं ध्वजिनी तव भारत ।
सुखमाप्तवती वीरमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ॥३४॥

हे भारत ! अब तुम्हारी सेना विश्राम पाकर बड़ी सुख युक्त हो गई और वह मन ही मन अर्जुन की बड़ी प्रशंसा करने लगी।

त्वयि वेदास्तथाऽस्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ ।
धर्मस्त्वयि महाबाहो दया भूतेषु चाऽनघ ॥३५॥

यच्चाऽऽश्वस्तास्तदिच्छामः शर्म पार्थ तदस्तु ते ।
मनसश्च प्रियानर्थान्वीर क्षिप्रमवाप्नुहि ॥३६॥

हे महाबाहो ! सर्वगुणसम्पन्न ! अर्जुन तुम्हारे हृदय में धर्म की जागृति और प्राणियों की दया विद्यमान है। हे पार्थ ! अब हमको बड़ी शान्ति प्राप्त हुई है-इससे तुम्हारे कल्याण की अभिलाषा करते हैं। हे वीर ! तुम शीघ्र अपने मनोरथों को प्राप्त करो। ॥३५-३६॥

इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः ।
निद्रया समवाक्षिप्तास्तूष्णीमासन्विशाम्पते ॥३७॥

हे विशाम्पते ! इस तरह सारे महारथी नरश्रेष्ठ अर्जुन की प्रशंसा करते हुए नींद से व्याप्त होकर चुपचाप सो गए ॥३७॥

अश्वपृष्ठेषु चाऽप्यन्ये रथनीडेषु चाऽपरे ।
गजस्कन्धगताश्चाऽन्ये शेरते चाऽपरे क्षितौ ॥३८॥

कोई अश्व की पीठ पर, कोई हाथी की पीठ पर, कोई रथ की शय्या पर और कोई पैदल सैनिक भूमि में ही सो गए ॥३८॥

सायुधाः सगदाश्चैव सखड्गा सपरश्वधाः ।
सप्रासकवचाश्चाऽन्ये नराः सुप्ताः पृथक्पृथक् ॥३९॥

सारे वीर, शस्त्र, गदा, खड्ग, परश्वध, प्रास और कवचों के साथ पृथक् २ स्थानों में यथारुचि सो गए ॥३९॥

गजास्ते पन्नगाभोगैर्हस्तैर्भूरेणुगुण्ठितैः ।
निद्रान्धा वसुधां चक्रुर्घ्राणनिःश्वासशीतलाम् ॥४०॥

निद्रातुर हाथियों ने शयन करके सर्प के फन के आकार वाली अपनी सूंड से श्वास छोड़कर उस जगह की भूमि को बहुत ही शीतल कर दिया। श्वास से उड़ी हुई धूल से इनकी सारी सूंड मिट्टी से व्याप्त हो रही थी ॥४०॥

सुप्ताः शुशुभिरे तत्र निःश्वसन्तो महीतले।
विकीर्णा गिरयो यद्वन्निःश्वसद्भिर्महोरगैः ॥४१॥

ये सोते हुए हाथी श्वास लेते हुए इस तरह सुशोभित हो रहे थे, मानो बिखर कर पड़े हुए पर्वत सर्पों के द्वारा श्वास ले रहे हों

समां च विषमां चक्रुः खुराग्रैर्विक्षतां महीम्।
हयाः काञ्चनयोक्त्रास्ते केसरालम्बिभिर्युगैः ॥४२॥

अश्वों की ग्रीवा के बालों में अभी रथों के जूये पड़े थे और सुवर्ण के जोते लटक रहे थे, तो भी अश्व बिल्कुल सो गए और उन्होंने अपनी खुरों की फटकार से सारी सम भूमि को विषम भूमि बना दिया ॥४२॥

सुषुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता वाहेषु सर्वशः।
एवं हयाश्च नागाश्च योधाश्च भरतर्षभ।
युद्धाद्विरम्य सुषुपुः श्रमेण महताऽन्विताः ॥४३॥

हे राजेन्द्र! भरतर्षभ! अपने २ यान में जुड़े हुए ही हाथी और घोड़े सो गए और मनुष्य जहां थे, वहीं लेट गए। ये लोग युद्ध से विश्राम पाकर तत्क्षण सो गए, क्योंकि इनको थकान बहुत हो चुकी थी ॥४३॥

तत्तथानिद्रया मग्नमबोधं प्रास्वपद्बलम् ।
कुशलैः शिल्पिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिवाऽद्भुतम् ॥४४॥

हे राजन् ! जब इस प्रकार सारी सेना नींद में डूब गई और अत्यन्त अबोध रूप में सो गई, तो ऐसी प्रतीत होने लगी-जैसे कुशल शिल्पियों ने कपड़े पर किसी युद्ध का अद्भुत चित्र खींच दिया हो ॥४४॥

ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः परस्परं सायकविक्षताङ्गाः
कुम्भेषु लीनाः सुषुपुर्गजानां कुचेषु लग्ना इवकामिनीनाम्

इन क्षत्रियवीरों ने कुण्डल धारण कर रखे थे। ये सारे युवावस्था में भरे हुए परस्पर बाणों से विद्ध हुए हाथियों के मस्तकों से चिपट कर इस तरह सो रहे थे—जैसे कामीजन कामिनियों के स्तनो से चिपट कर सो रहे हों ॥४५॥

ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता ॥४६॥

हे राजन् ! इसी समय कामिनी के कपोलों के समान गौर वर्णधारी, नेत्रों को आनन्द देने वाले कुमुदनाथ चन्द्रमा ने पूर्व दिशा को सुशोभित किया ॥४६॥

दशशताक्षककुब्दरिनिःसृतः किरणकेसरभासुरपिञ्जरः ।
तिमिरवारणयूथविदारणः समुदियादुदयाचलकेसरी ॥४७॥

नक्षत्र रूपी सहस्रों टिमकनों से युक्त, दिशा रूपी गुफा से निकला हुआ, अपनी किरणरूपी ग्रीवा के बालों का धारी, अन्धकाररूपी

हाथियों के यूथ को विदीर्ण में समर्थ चन्द्रमारूपी सिंह, उदयाचल पर उदित हुए ॥४७॥

हरवृषोत्तमगात्रसमद्युतिः स्मरशरासनपूर्णसमप्रभः ।
नववधूस्मितचारुमनोहरः प्रविसृतः कुमुदाकरबान्धवः

इस समय चन्द्रमा की ज्योतिः शिव के वृषभ के तुल्य उज्ज्वल थी। इसका कामदेव के धनुष के श्वेतपन के समान गौर वर्ण था। नववधू के सुन्दर हास के समान मनोहर और कुमुदवन को खिलाने वाला था। इस तरह सुन्दर रूप को धारण करके चन्द्रमा का उदय हुआ ॥४८॥

ततो मुहूर्ताद्भगवान्पुरस्ताच्छशलक्षणः ।
अरुणां दर्शयामास ग्रसञ्ज्योतिःप्रभां प्रभुः ॥४९॥

हे राजन्! अब थोड़ी ही देर में भगवान् चन्द्रमा ने अपने शश के चिन्ह को प्रकट किया। इसने अन्य सारी नक्षत्र आदि की प्रभा को फीकी कर दिया। इस समय चन्द्रमा का लाल वर्ण बड़ा ही सुन्दर दिखाई दे रहा था ॥४९॥

अरुणस्य तु तस्याऽनु जातरूपसमप्रभम् ।
रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमवासृजत् ॥५०॥

इस लालवर्ण के अनन्तर सुवर्ण के समान उज्ज्वल महान् रश्मिजाल को धीरे २ चन्द्रमा ने प्रकट किया ॥५०॥

उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः ।
पर्यगच्छञ्छनैः सर्वा दिशः खं च क्षितिं तथा ॥५१॥

हे नृप ! अब चन्द्रमा की किरणें अपनी चमक से सारे अन्धकार को विनष्ट करती हुई धीरे २ सारी दिशा, आकाश और पृथिवी में छा गई ॥५१॥

ततो मुहूर्ताद्भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाऽभवत् ।
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाऽऽशु तमस्तथा ॥५२॥

हे राजन् ! थोड़ी ही देर में सारा भुवन ज्योतिर्मय हो गया और अन्धकार इतना लुप्त हो गया, कि उसकी सत्ता कहीं ढूंढने पर भी दिखाई नहीं दी ॥५२॥

प्रतिप्रकाशिते लोके दिवाभूते निशाकरे ।
विचेरुर्न विचेरुश्च राजन्नक्तञ्चरास्ततः ॥५३॥

हे राजन् ! चन्द्रमा द्वारा संसार में दिन सा बना देने पर सारा लोक प्रकाशित हो उठा । अब निशाचर ठिठक २ कर विचरण करने लगे ॥५३॥

बोध्यमानं तु तत्सैन्यं राजंश्चन्द्रस्य रश्मिभिः ।
बुबुधे शतपत्राणां वनं सूर्यांशुभिर्यथा ॥५४॥

हे राजन् ! अब चन्द्रमा की किरणों से सारी सेना इस तरह जागृत हो उठी जैसे-सूर्य की किरणों से कमलों का वन विकसित हो उठता है ॥५४॥

यथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितः सागरोऽभवत् ।
तथा चन्द्रोदयोद्धूतः स बभूव बलार्णवः ॥५५॥

जिस तरह चन्द्रमा के उदित होने पर समुद्र उछलने लगता है-उसी तरह चन्द्रोदय होने पर सेना, समुद्र की तरह उछलने लगी।

ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशाम्पते।
लोके लोकविनाशाय परं लोकमभीप्सताम् ॥५६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि रात्रियुद्धे सैन्यनिद्रायां
चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८४॥

हे विशाम्पते ! अब स्वर्गलोक के अभिलाषी कौरव-पाण्डव वीरों का संसार में प्रलय मचा देने वाला रणाङ्गण में फिर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥५६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणवधपर्व में रात्रि में वीरों के शयन का एक सौ चौरासीवां अध्याय पूरा हुआ।

एक सौ पिच्चासीवां अध्याय

संजय उवाच— ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्याऽब्रवीदिदम्
अमर्षवशमापन्नो जनयन्हर्षतेजसी ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य के समीप पहुंचे और आवेश में भरे हुए हर्ष और तेज का उद्बोधन करते हुए यह वचन बोले ॥१॥

दुर्योधन उवाच—न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः
सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्षा विशेषतः ॥२॥

दुर्योधन ने कहा—हे आचार्य ! यदि शत्रु लोग थक कर विश्राम कर रहे हों-तो उन पर क्षमा नहीं करनी चाहिए । शत्रु तो जिस समय अधिक घबराये हुए हों-उसी समय उनको अधिक बींधना चाहिए ॥२॥

यत्तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया ।
त एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः ॥३॥

हम लोग आपकी इच्छा के अनुसार उन लोगों को क्षमा करते रहे हैं और वे पाण्डव विश्राम प्राप्त करके उलटे बलवान् होते चले गए हैं ॥३॥

सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च ।
भवता पाल्यमानास्ते विवर्धन्ते पुनः पुनः ॥४॥

अब हम लोग बल और तेज में बहुत ही न्यून हो गए हैं और आपकी पालना से पाण्डव बार २ बढ़ते चले गए ॥४॥

दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि ब्राह्मादीनि च यानि ह ।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति भवत्येव विशेषतः ॥५॥
न पाण्डवेया न वयं नाऽन्ये लोके धनुर्धराः ।
युध्यमानस्य ते तुल्याः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥६॥

जितने ब्रह्मास्त्र आदि दिव्य अस्त्र हैं, वे सारे विशेष रूप से आपके पास हैं । आपके समान न तो पाण्डव और न हम लोग तथा

अन्य लोक में धनुर्धर कोई भी नहीं है, जो युद्ध करने के समय तुम्हारे बराबर हो सके-यह मैं सत्य कहता हूं ॥५-६॥

ससुरासुरगन्धर्वानिमाँल्लोकान्द्विजोत्तम ।
सर्वास्त्रविद्धवान्हन्याद्दिव्यैरस्त्रैर्न संशयः ॥७॥

हे द्विजोत्तम ! तुम इतनी अस्त्रविद्या के जानने वाले हो, जो इच्छा करो-तो सुर, असुर, गन्धर्व और इस लोक के राजाओं को क्षण भर में अपने दिव्य अस्त्रों से मार कर गिरा सकते हो-इसमें सन्देह नहीं है ॥७॥

स भवान्मर्षयत्येतांस्त्वत्तो भीतान्विशेषतः ।
शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यताम् ॥८॥

जो तुम से सब तरह से डरते हैं, तुम उनकी ही रक्षा करते हो। इसका कारण या तो यह है, कि वे तुम्हारे शिष्य हैं या इसमें मेरी मन्दभाग्यता कारण है ॥८॥

सञ्जय उवाच— एवमुद्धर्षितो द्रोणः कोपितश्च सुतेन ते ।
समन्युरब्रवीद्राजन्दुर्योधनमिदं वचः ॥९॥
स्थविरः सन्परं शक्त्या घटे दुर्योधनाऽऽहवे ।
अतः परं मया कार्यं क्षुद्रं विजयगृद्धिना ॥१०॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को फटकारा और उन्हें कुपित कर दिया, तो वे क्रोध में भर कर राजा दुर्योधन से यह वचन बोले—हे दुर्योधन ! मैं यद्यपि वृद्ध हो चुका-तो भी तुम्हारे लिए इस युद्ध में सब कुछ कर रहा

था। अब मैं तुम्हारी विजय के लिए क्षुद्र कर्म करने पर भी उद्यत हो जाऊंगा ॥९-१०॥

अनस्त्रविदयं सर्वो हन्तव्योऽस्त्रविदा जनः ।
यद्भवान्मन्यते चापि शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥११॥
तद्वै कर्ताऽस्मि कौरव्य वचनात्तव नाऽन्यथा ।

हे कुरुराज ! ये जो मेरे सन्मुख स्थित हैं, ये दिव्य अस्त्रों के प्रयोग को नहीं जानते हैं और मैं अस्त्रों के प्रयोगों को जानता हूं। यद्यपि अस्त्रों के प्रयोग जानने वाले व्यक्ति को अस्त्र विद्या के नहीं जानने वालों को नहीं मारना चाहिए, परन्तु तो भी जो आपकी इच्छा है, मैं वही शुभ हो अथवा अशुभ-तुम्हारी इच्छा के आधार पर उसे कर दिखाऊँगा ॥११॥

निहत्य सर्वपञ्चालान्युद्धे कृत्वा पराक्रमम् ॥१२॥
विमोक्ष्ये कवचं राजन्सत्येनाऽऽयुधमालभे ।

हे राजन् ! अब मैं सारे पाञ्चालों को मार कर और युद्ध में पराक्रम दिखाकर ही कवच खोलूंगा-यह मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूं ॥१२॥

मन्यसे यच्च कौन्तेयमर्जुनं श्रान्तमाहवे ॥१३॥
तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव ।
तं न देवा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः ॥१४॥
उत्सहन्ते रणे जेतुं कुपितं सव्यसाचिनम् ।

हे महाबाहो ! जो तुम समझते हो, कि अर्जुन रण में थक गया है तो हे कौरव्य ! तुम अर्जुन का सत्य २ पराक्रम सुनो-कि कि जब रण में सव्यसाची अर्जुन कुपित हो उठता है, तो उस समय देव, गन्धर्व, यक्ष वा राक्षस कोई भी उसे जीतने में समर्थ नहीं हो सकता है ॥१३-१४॥

खाण्डवे येन भगवान्प्रत्युद्यातः सुरेश्वरः ॥१५॥
सायकैर्वारितश्चापि वर्षमाणो महात्मना ।
यक्षा नागास्तथा दैत्या ये चाऽन्ये बलगर्विताः ॥१६॥
निहताः पुरुषेन्द्रेण तचाऽपि विदितं तव ।

इस महावीर अर्जुन ने खाण्डवप्रस्थ में वर्षा करने को उद्यत भगवान् इन्द्र को अपने बाणों से वहीं रोक दिया । उस समय यक्ष, नाग, दैत्य या अन्य कोई भी वीर बल में दर्पित होकर अर्जुन के सन्मुख आया-उसको पुरुषप्रवीर अर्जुन ने मार गिराया-यह सब कुछ तुमको विदित है ॥१५-१६॥

गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादयो जिताः ॥१७॥
यूयं तैर्ह्रियमाणाश्च मोचिता दृढधन्वना ।

जब तुमने घोषयात्रा की थी और गन्धर्व लोग तुम्हारा अपहरण करके ले गए-तो दृढ़ धनुष धारी अर्जुन ने ही तुम लोगों को भी छुटाया था ॥१७॥

निवातकवचाश्चापि देवानां शत्रवस्तथा ॥१८॥
सुरैरवध्याः संग्रामे तेन वीरेण निर्जिताः ।

देवों के शत्रु निवातकवच राक्षस, तुमने भी सुने होंगे-जो देवों से भी नहीं जीते जा सके। महा संग्राम में इसी वीर अर्जुन ने उन सबको जीत लिया था ॥१८॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥१९॥
विजिग्ये पुरुषव्याघ्रः स शक्यो मानुषैः कथम् ।

जिस अर्जुन ने हिरण्यपुरवासी सहस्रों दानवों को जीत लिया-तो वह पुरुषव्याघ्र, मनुष्यों से कैसे जीता जा सकता है ॥१९॥

प्रत्यक्षं चैव ते सर्वं यथा बलमिदं तव ॥२०॥
क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टतां नो विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! तुम यह भी अपनी आंखों से देख रहे हो, कि हम लोग कितना बल लगा रहे हैं-तो भी पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने तुम्हारी सेना को किस तरह नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है ॥२०॥

संजय उवाच— तं तदाऽभिप्रशंसन्तमर्जुनं कुपितस्तदा॥२१॥
द्रोणं तव सुतो राजन्पुनरेवेदमब्रवीत् ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब द्रोणाचार्य ने अर्जुन की इतनी प्रशंसा की, तो तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, द्रोणाचार्य पर और भी कुपित हो गया और वह इस प्रकार कहने लगा ॥२१॥

अहं दुःशासनः कर्णः शकुनिर्मातुलश्च मे ॥२२॥
हनिष्यामोऽर्जुनं संख्ये द्विधा कृत्वाऽद्य भारतीम् ।

हे आचार्य ! आज अपनी सेना को दो भागों में बांट कर मैं, दुःशासन, कर्ण और मातुल शकुनि रण में अवश्य अर्जुन को मार गिरावेंगे ॥२२॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो हसन्निव ॥२३॥
अन्ववर्तत राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाऽब्रवीत् ।

हे राजन्! उसके ये वचन सुनकर भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य हंसने लगा और कुछ न बोल कर राजा के अनुकूल ही बोला, कि तुम्हारा कल्याण हो ॥२३॥

को हि गाण्डीवधन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥२४॥
अक्षयं क्षपयेत्कश्चित्क्षत्रियः क्षत्रियर्षभम् ।
तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो न यमो न जलेश्वरः ॥२५॥
नाऽसुरोरगरक्षांसि क्षपयेयुः सहायुधम् ।
मूढास्त्वेतानि भाषन्ते यानीमान्यात्थ भारत ॥२६॥
युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान्को व्रजेद् गृहान् ।

द्रोण ने कहा—हे राजन्! तेज से जाज्वल्यमान, नष्ट नहीं होने वाले गाण्डीवधारी अर्जुन को क्या कोई क्षत्रियवीर मार सकता है, जब अर्जुन शस्त्र धारण कर लेता है, तो उस समय उसको न तो धनपति कुबेर, न इन्द्र, न यम और न वरुण, न असुर, उरग और राक्षस कोई भी नष्ट नहीं कर सकता हैं। हे भारत! जैसी बातें तुम कर रहे हो-ये बातें तो मूढ़ लोग किया करते हैं। जब कोई युद्ध में अर्जुन के सन्मुख आ जाता है, तो कौन जीता जागता उससे बचकर निकल सकता है ॥२४-२६॥

त्वं तु सर्वाभिशङ्कित्वान्निष्ठुरः पापनिश्चयः ॥२७॥
श्रेयसस्त्वद्धिते युक्तांस्तत्तद्वक्तुमिहेच्छसि ।

गच्छ त्वमपि कौन्तेयमात्मार्थे जहि मा चिरम् ॥२८॥
त्वमप्याशंससे योद्धुं कुलजः क्षत्रियो ह्यसि ।

तुम तो सब पर शंका करते रहते हो-यह तुम्हारी कठोरता है, इसी से तुम्हें पापनिश्चयी माना गया है । जो तुम्हारे कल्याण में तत्पर है, तुम उसको ही जली भुनी सुनाते रहते हो । अब जरा तुम ही जाओ और अपने राज्य की नींव दृढ़ करने को अर्जुन को मार लो-देर न करो । तुम भी लड़ना जानते हो । क्षत्रियों के उत्तम कुल में उत्पन्न तुम भी तो एक उत्तम क्षत्रिय-वीर हो ॥२७-२८॥

इमान्किं क्षत्रियान्सर्वान्घातयिष्यस्यनागसः ॥२९॥
त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयाऽर्जुनम् ।

तुम इन अन्य निरपराधी सारे क्षत्रियों का क्यों वध करा रहे हो । तुम ही तो इस सारे वैर का मूल हो-तनिक तुम ही तो अर्जुन पर आक्रमण करके दिखाओ ॥२९॥

एष ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥३०॥
दुर्द्यूतदेवी गान्धारे प्रयात्वर्जुनमाहवे ।

हे दुर्योधन ! यह तुम्हारा मामा शकुनि भी तो बुद्धिमान और क्षत्रियधर्म में परायण है । यह बड़ा जुआ का खिलाड़ी है-यही युद्ध में तनिक अर्जुन के सन्मुख पहुंच जावे ॥३०॥

एषोऽक्षकुशलो जिह्मो द्यूतकृत्कितवः शठः ॥३१॥
देविता निकृतिप्रज्ञो युधि जेष्यति पाण्डवान् ।

यह बड़ा भारी पासे फैंकने में कुशल है तथा बड़ा ही कपटी जुआरी और बांका शठ है। यह छल से खेलने में कुशल है, इसलिये यह सारे पाण्डवों को अभी जीत देगा ॥३१॥

त्वया कथितमत्यर्थं कर्णेन सह हृष्टवत् ॥३२॥
असकृच्छून्यवन्मोहाद्धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ॥३३॥
पाण्डुपुत्रान्हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः ।
इति ते कत्थमानस्य श्रुतं संसदि संसदि ॥३४॥
अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग्भव तैः सह ।
एष ते पाण्डवः शत्रुरविशङ्कोऽग्रतः स्थितः ॥३५॥
क्षत्रधर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात् ।

हे राजन् ! तुमने संसार को शून्य समझकर बड़ी प्रसन्नता के साथ कर्ण को साथ लेकर बार २ राजा धृतराष्ट्र के समीप में अज्ञान-पूर्वक यह कहा था, कि हे तात ! मैं, कर्ण और भ्राता दुःशासन-हम तीन ही रण में एकत्रित हुए पाण्डु-पुत्रों को मार लेंगे। तुमने यह बार २ अपनी थोथी प्रशंसा की और हमने प्रत्येक सभा में तुम्हारी यह डींग सुनी थी। अब तुम उस प्रतिज्ञा का पालन करो और उनको साथ लेकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो । यह तुम्हारा शत्रु अर्जुन बिना किसी शंका के तुम्हारे सन्मुख खड़ा है। अब तुम क्षत्रियधर्म का अनुकरण करो-युद्ध में तो विजय की अपेक्षा मर जाना ही श्रेयस्कर माना है ॥३२-३५॥

दत्तं भुक्तमधीतं च प्राप्तमैश्वर्यमीप्सितम् ॥३६॥

कृतकृत्योऽनृणश्चाऽसि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम् ।

तुम तो दान दे चुके, भोग चुके, पढ़ चुके और जो ऐश्वर्य प्राप्त करना था, वह भी कर चुके। तुम तो कृतकृत्य होकर सबसे अनृण हो गए-अब तुम्हें भय क्या है, जाओ और युद्ध करो ॥३६॥

इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्तत यतः परे ।

द्वैधीकृत्य ततः सेनां युद्धं समभवत्तदा ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणदुर्योधनभाषणे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५॥

हे राजन्! इतना कहकर द्रोणाचार्य रण में उधर चले गए, जिधर शत्रु तय्यार खड़े थे। अब ये लोग अपनी सेना के दो भाग करके भीषण युद्ध में प्रवृत्त हुए ॥३७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणवधपर्व में राजा दुर्योधन और द्रोणाचार्य के सम्भाषण का एक सौ पिचासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

—:※:—

एक सौ छियासीवां अध्याय

संजय उवाच— त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशाम्पते ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे विशाम्पते ! अब रात व्यतीत हो चुकी और उसका एक भाग शेष था। इसी रात्रि के समय ही उत्साह में भरे हुए कौरव और पाण्डवों का फिर युद्ध होने लगा ॥१॥

अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन्नादित्यस्य पुरःसरः ।
अरुणोऽभ्युदयाञ्चक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाऽम्बरम् ॥२॥

अब चन्द्रमा की कान्ति को क्षीण करता हुआ सूर्य का अग्रगामी अरुण आकाश को लाल करता हुआ उदय को प्राप्त हुआ ॥२॥

प्राच्यां दिशि सहस्रांशोररुणेनाऽरुणीकृतम् ।
तापनीयं यथा चक्रं भ्राजते रविमण्डलात् ॥३॥

पूर्व दिशा में सूर्य का मण्डल उदय को प्राप्त हुआ; जिसको अरुण सारथि ने अरुण कर रखा था। अब यह सूर्य-मण्डल, सुवर्ण के चक्र की तरह सुशोभित दिखाई देने लगा ॥३॥

ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययानान्युत्सृज्य सर्वे कुरुपाण्डुयोधाः
दिवाकरस्याऽभिमुखं जपन्तः सन्ध्यागताः प्राञ्जलयो बभूवुः

इस समय रथ, अश्व और पालकी आदि मनुष्य-यानों को छोड़कर सारे कौरव-पाण्डववीर सूर्य के सन्मुख खड़े होकर और हाथ जोड़कर सन्ध्या करते हुए वेदमन्त्रों का जप करने लगे ॥३॥

ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान् ।
अभ्यद्रवत्सपञ्चालान्दुर्योधनपुरोगमः ॥५॥

इसके अनन्तर द्रोणाचार्य ने अपनी सेना के दो भाग किये और राजा दुर्योधन को आगे करके वे सोमक, पाण्डव और पञ्चालवीरों पर वेग से झपटे ॥५॥

द्वैधीकृतान्कुरून्दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
सपत्नान्सव्यतः कृत्वा अपसव्यमिमं कुरु ॥६॥

जब श्रीकृष्ण ने कौरवों की सेना को दो भागों में विभक्त देखा, तो वे अर्जुन से कहने लगे-तुम इन लोगों को दांयी ओर और इन शत्रुओं को बांयी ओर करके बीच से निकल चलो ॥६॥

स माधवमनुज्ञाय कुरुष्वेति धनञ्जयः ।
द्रोणकर्णौ महेष्वासौ सव्यतः पर्यवर्तत ॥७॥
अभिप्रायं तु कृष्णस्य ज्ञात्वा परपुरञ्जयः ।
आजिशीर्षगतं पार्थं भीमसेनोऽभ्युवाच ह ॥८॥

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—ठीक है-ऐसा ही करो । अब अर्जुन ने महाधनुर्धर द्रोण और कर्ण को तो दांयी ओर छोड़ दिया । श्रीकृष्ण के अभिप्राय को समझकर शत्रुतापी भीमसेन, रण के अग्रभाग पर स्थित अर्जुन से यह वचन कहने लगा ॥८॥

भीमसेन उवाच—

अर्जुनाऽर्जुन बीभत्सो शृणुष्वैतद्वचो मम ।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥९॥

हे अर्जुन! निर्भीक अर्जुन! तुम मेरे वचन सुनो। जिस लिए क्षत्रियाणी सन्तान उत्पन्न करती हैं, उसका समय आज उपस्थित हो गया है ॥९॥

अस्मिंश्चेदागते काले श्रेयो न प्रतिपत्स्यसे।
असम्भावितरूपस्त्वं सुनृशंसं करिष्यसि ॥१०॥

यह बड़ा अच्छा समय उपस्थित हुआ है। इस समय पर यदि तुम कल्याणकारी कार्य न करोगे-तो तुम्हारा यश नष्ट हो जावेगा और तुम बहुत ही अनुचित करोगे ॥१०॥

सत्यश्रीधर्मयशसां वीर्येणाऽऽनृण्यमाप्नुहि।
भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ अपसव्यमिमान्कुरु ॥११॥

हे योद्धाओं में श्रेष्ठ! तुम अपना पराक्रम दिखा कर सत्य, श्री, धर्म और यश को प्राप्त करके उऋण हो जाओ। तुम शत्रुओं की सेना को चीर डालो और इनको बांयी ओर कर दो।

सञ्जय उवाच—

स सव्यसाची भीमेन चोदितः केशवेन च।
कर्णद्रोणावतिक्रम्यसमन्तात्पर्यवारयत् ॥१२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! जब श्रीकृष्ण और भीमसेन ने सव्यसाची अर्जुन को प्रेरणा की-तो कर्ण और द्रोण, दोनों का अतिक्रमण करके अर्जुन ने उन्हें आगे से जा घेरा ॥१२॥

तमाजिशीर्षमायान्तं दहन्तं क्षत्रियर्षभान्।
पराक्रान्तं पराक्रम्य ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥१३।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं वर्धमानमिवाऽनलम्।

अर्जुन को युद्ध के शीर्षस्थान पर आते और क्षत्रियवीरों को दग्ध करते देखकर इस पराक्रमी अर्जुन को पराक्रम दिखाकर क्षत्रियवीर, बढ़ती हुई अग्नि के सदृश अर्जुन के रोकने में समर्थ न हो सके ॥१३॥

अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चाऽपि सौबलः ॥१४॥
अभ्यवर्षञ्छरव्रातैः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ।

अब राजा दुर्योधन, कर्ण और सुबल-पुत्र शकुनि, कुन्ती-पुत्र अर्जुन पर बाणों की झड़ी लगाने लगे ॥१४॥

तेषामस्त्राणि सर्वेषामुत्तमास्त्रविदां वरः ॥१५॥
कदर्थीकृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरत् ।

हे राजेन्द्र ! उत्तम अस्त्रों के ज्ञाता अर्जुन ने उन सबके अस्त्रों को छिन्न-भिन्न करके अपने बाणों की वर्षा से सबको आच्छादित कर दिया ॥१५॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य लघुहस्तो जितेन्द्रियः ॥१६॥
सर्वानविध्यन्निशितैर्दशभिर्दशभिः शरैः ।

शीघ्रता से हाथ फेंकने में समर्थ, जितेन्द्रिय, अर्जुन ने अपने अस्त्रों से शत्रु के अस्त्रों को रोक कर दश २ तीक्ष्ण बाणों से सबको बींध दिया ॥१६॥

उद्धूता रजसो वृष्टिः शरवृष्टिस्तथैव च ॥१७॥
तमश्च घोरं शब्दश्च तदा समभवन्महान् ।

अब एक ओर तो धूलि बरस रही थी, दूसरी ओर बाणवर्षा हो रही थी, जिससे घोर अन्धकार था। इस समय बड़ा ही तीव्र कोलाहल रणभूमि में खड़ा हो गया ॥१७॥

न द्यौर्न भूमिर्न दिशः प्राज्ञायन्त तथागते ॥१८॥
सैन्येन रजसा मूढं सर्वमन्धमिवाऽभवत्॥

इस दशा के उपस्थित होने पर आकाश, भूमि और दिशाओं का कुछ भी पता न लगता था। सेना की उठाई हुई रज से सारा रणस्थल अन्धकारमय हो गया। उसमें कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥१८॥

नैव ते न वयं राजन्प्राज्ञासिष्म परस्परम् ॥१९॥
उद्देशेन हि तेन स्म समयुध्यन्त पार्थिवाः।

हे राजन्! इस समय न तो पाण्डववीर और न हम लोग ही परस्पर कुछ जान सके। केवल अपने २ अनुमान से ही राजा लोग परस्पर युद्ध करने लगे ॥१९॥

विरथा रथिनो राजन्समासाद्य परस्परम् ॥२०॥
केशेषु समसज्जन्त कवचेषु भुजेषु च।
हताश्वा हतसूताश्च निश्चेष्टा रथिनो हताः ॥२१॥
जीवन्त इव तत्र स्म व्यदृश्यन्त भयार्दिताः।

हे राजन्! रथी लोग, विरथ हो गए-वे एक दूसरे के सम्मुख पहुंच कर उनके परस्पर बाल, कवच और भुजा पकड़ लेते थे।

ततो विराटः कुपितः समरे तोमरान्दश ॥३९॥
दश चिक्षेप च शरान्द्रोणस्य वधकांक्षया ।

अब विराटराज भी कुपित हुए। उन्होंने रण में दश तोमर नामक बाण छोड़े और दश साधारण बाण द्रोणाचार्य के मार देने को छोड़ दिए ॥३९॥

शक्तिं च द्रुपदो घोरामायसीं स्वर्णभूषिताम् ॥४०॥
चिक्षेप भुजगेन्द्राभां क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ।

हे राजन्! राजा द्रुपद ने भी कुपित होकर सुवर्णजटित लोह-निर्मित घोर शक्ति, अपनी सर्वोपम भुजा द्वारा द्रोण के रथ पर छोड़ी ॥४०॥

ततो भल्लैः सुनिशितैश्छित्त्वा तांस्तोमरान्दश ॥४१॥
शक्तिं कनकवैदूर्यां द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।

अब आचार्य द्रोण ने भी अपने तीक्ष्ण अस्त्रों से उन दश तोमर नामक विराट के बाणों को काट दिया और सायकों से राजा द्रुपद की छोड़ी हुई शक्ति को भी काट गिराया ॥४१॥

ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः ॥४२॥
द्रुपदं च विराटं च प्रेषयामास मृत्यवे ।

इसके अनन्तर अरिमर्दन द्रोण ने विष में बुझे हुए भल्ल नामक दो बाणों से दोनों विराट और राजा द्रुपद को मृत्यु के समीप भेज दिया ॥४२॥

हते विराटे द्रुपदे केकयेषु तथैव च ॥४३॥

तथैव चेदिमत्स्येषु पञ्चालेषु तथैव च ।

हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च नप्तृषु ॥४४॥

द्रोणस्य कर्म तद् दृष्ट्वा कोपदुःखसमन्वितः ।

शशाप रथिनां मध्ये धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥४५॥

जब द्रोणाचार्य ने विराटराज और राजा द्रुपद को मार लिया और केकयवीर भी मार गिराए, उसी तरह बहुत से चेदि, मत्स्य और पञ्चालवीर मार डाले तथा राजा द्रुपद के पौत्र, तीनों महारथी वीर भी मार लिए, तो द्रोणाचार्य के इस भीषण कर्म को देखकर क्रोध और दुःख से युक्त, महामनस्वी धृष्टद्युम्न ने रथियों के मध्य में यह प्रतिज्ञा की ॥४३-४५॥

इष्टापूर्तात्तथा क्षात्राद् ब्राह्मण्याच्च स नश्यतु ।

द्रोणो यस्याऽद्य मुच्येत यं वा द्रोणः पराभवेत् ॥४६।

इति तेषां प्रतिश्रुत्य मध्ये सर्वधनुष्मताम् ।

आयाद् द्रोणं सहानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा ॥४७।

हे वीरो ! यदि आज जो वीर द्रोण को जीता जाने देगा या द्रोणाचार्य से पराजित होगा-वह इष्टापूर्त यज्ञ, क्षात्रधर्म और ब्रह्मप्राप्ति से वञ्चित हो जावे। इस प्रकार उसने सारे धनुर्धरों के मध्य में प्रतिज्ञा की-इस प्रतिज्ञा को करके शत्रुवीरनाशक, पञ्चाल-वीर धृष्टद्युम्न अपनी सेना के साथ द्रोणाचार्य के सन्मुख आया।

पाञ्चालास्तु विशेषेण द्रोणसायकपीडिताः ॥३०॥
समसज्जन्त राजेन्द्र समरे भृशवेदनाः ।

हे राजेन्द्र ! इस समय पञ्चाल-वीर, द्रोणाचार्य के बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे, तो भी अत्यन्त वेदना का अनुभव करने पर वे रण में वीरता के साथ लड़ रहे थे ॥३०॥

ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रति ययू रणे ।३१॥
तथा चरन्तं संग्रामे भृशं समरदुर्जयम् ।

हे राजन् ! अब संग्राम में दुर्जय, द्रोणाचार्य पर राजा विराट और द्रुपद ने बड़े वेग से आक्रमण किया । द्रोणाचार्य बड़े ही निडर भाव से रणाङ्गण में वेग से चक्कर लगा रहे थे ॥३१॥

द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव विशाम्पते ॥३२॥
चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाऽभ्ययुर्युधि ।

हे विशाम्पते ! राजा द्रुपद के तीन पौत्र और महाधनुर्धर, चेदिवीर भी द्रोणाचार्य पर वेग से झपटे ॥३२॥

तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः ॥३३॥
त्रिभिर्द्रोणोऽहरत्प्राणांस्ते हया न्यपतन्भुवि ।

अब द्रोणाचार्य ने तीन तीक्ष्ण बाण छोड़कर तीनों द्रुपद-पौत्रों के प्राण अपहरण कर लिए । वे अपने अश्वों के सहित रणभूमि में लेट गए ॥३३॥

ततो द्रोणोऽजयद्युद्धे चेदिकैकेयसृञ्जयान् ॥३४॥
मत्स्यांश्चैवाऽजयत्कृत्स्नान्भारद्वाजो महारथान् ।

इसके अनन्तर भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य ने इस युद्ध में सारे चेदि, केकय, सञ्जय और महारथी मत्स्य वीरों को क्षण भर में जीत लिया ॥३४॥

ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच्छरवर्षमवासृजत् ॥३५॥
द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे ।

हे महाराज ! अब आचार्य द्रोण पर कुपित होकर राजा द्रुपद और विराटराज रण में अपने २ बाणों की झड़ी लगाने लगे ॥३५॥

तन्निहत्येषुवर्षं तु द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥३६॥
तौ शरैश्छादयामास विराटद्रुपदावुभौ ।

क्षत्रियों के मान मर्दन में समर्थ द्रोणाचार्य ने इन दोनों की बाणवर्षा को नष्ट करके, इन राजा विराट और द्रुपद को भी अपने बाणों से बहुत ही आच्छादित कर दिया ॥३६॥

द्रोणेन च्छाद्यमानौ तु क्रुद्धौ संग्राममूर्धनि ॥३७॥
द्रोणं शरैर्विव्यधतुः परमं क्रोधमास्थितौ ।

जब द्रोणाचार्य ने इनको अपने बाणों से पाट दिया, तो ये रणाजिर में जल उठे और अत्यन्त क्रोध में भर कर द्रोणाचार्य को बाणों से बींधने लगे ॥३७॥

ततो द्रोणो महाराज क्रोधामर्षसमन्वितः ॥३८॥
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां चिच्छेद धनुषी तयोः ।

हे महाराज ! अब द्रोणाचार्य क्रोध और आवेश में भर गए । इन्होंने उन दोनों के धनुषों को अपने अत्यन्त तीक्ष्ण भल्ल संज्ञक बाणों से रणभूमि में काट गिराया ॥३८॥

इन रथियों के अश्व और सारथि मारे जा चुके। ये भी निश्चेष्ट होकर मारे जा रहे थे। बहुतसे क्षत्रिय भय से इतने व्याकुल हुए पड़े थे, कि वे जैसे तैसे जीवित दिखाई देते थे ॥२०-२१॥

हतान्गजान्समाश्लिष्य पर्वतानिव वाजिनः ॥२२॥
गतसत्वा व्यदृश्यन्त तथैव सह सादिभिः ।

बहुत से वीर मरे हुए, पर्वत के समान पड़े हुए हाथियों के चिपट कर और बहुत से अश्व अपने अश्वारोही के साथ मरे हुए रणभूमि में पड़े दिखाई दे रहे थे ॥२२॥

ततस्त्वभ्यवसृत्यैव संग्रामादुत्तरां दिशम् ॥२३॥
आतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।

अब द्रोणाचार्य आगे बढ़े और वे रण की उत्तर दिशा में पहुंचे। वहां वे रण में इस तरह स्थित हुए-जैसे धूम रहित प्रज्वलित अग्नि जल रहा हो ॥२३॥

तमाजिशीर्षादेकान्तमपक्रान्तं निशम्य तु ॥२४॥
समकम्पन्त सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! रण के मुख्य स्थान से हट कर एकान्त में द्रोणाचार्य के चले जाने को देख कर पाण्डवों की सेना एकदम चकराने लगी ॥२४॥

भ्राजमानं श्रिया युक्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥२५॥
द्रोणं दृष्ट्वा परे त्रेसुश्चेलुर्मम्लुश्च भारत ।

हे भारत! तेज से जाज्वल्यमान, कान्ति से उज्ज्वल, सब तरह चमकते हुए द्रोण को देखकर शत्रु डरने, घूमने और मलिन होने लगे ॥२५॥

आह्वयन्तं परानीकं प्रभिन्नमिव वारणम् ॥२६॥
नैनमाशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा।

शत्रु सेना को ललकारते हुए और मदस्रावी हाथी की तरह मदोन्मत्त द्रोणाचार्य को जीतने में पाण्डव इस तरह समर्थ दिखाई नहीं देते थे, जैसे-दानव इन्द्र के जीतने में समर्थ नहीं हो सकते हैं

केचिदासन्निरुत्साहाः केचित्क्रुद्धा मनस्विनः ॥२७॥
विस्मिताश्चाऽभवन्केचित्केचिदासन्नमर्षिताः।

इस समय कोई तो निरुत्साह हो गए और कोई मनस्वी वीर कुपित हुए। कोई चकित और कोई २ वीर आवेश में आ गए॥

हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन्नराधिपाः ॥२८॥
अपरे दशनैरोष्ठानदशन्क्रोधमूर्च्छिताः।

इस समय राजा लोग अपने हाथों से हाथ मलने लगे और दूसरे वीर क्रोध में भर कर अपने दांतों से ओष्ठ चबाने लगे॥

व्याक्षिपन्नायुधान्यन्ये ममृदुश्चाऽपरे भुजान् ॥२६॥
अन्ये चाऽन्वपतन्द्रोणं त्यक्तात्मानो महौजसः।

कोई तो अपने शस्त्रों को उछाल रहे थे और कोई अपनी भुजाओं को मसल रहे थे तथा कोई महाओजस्वी वीर अपने जीवन की परवा न करके द्रोण पर आक्रमण करने लगे॥२६॥

पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन्पाण्डवैः सह।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चाऽपि सौबलः ॥४८॥
सोदर्याश्च यथामुख्यास्तेऽरक्षन्द्रोणमाहवे।
रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं सर्वैस्तैस्तु महारथैः ॥४९॥
यतमानास्तु पञ्चाला न शेकुः प्रतिवीक्षितुम्।

अब एक ओर तो पाण्डववीरों के साथ पञ्चाल, द्रोणाचार्य पर प्रहार कर रहे थे और दूसरी ओर से राजा दुर्योधन, कर्ण, सुबल-पुत्र शकुनि, मुख्य २ राजा दुर्योधन के सहोदर भ्राता रण में द्रोणाचार्य की रक्षा में तत्पर थे। इन महारथियों से सब ओर से सुरक्षित द्रोणाचार्य को प्रयत्न करते हुए पञ्चाल देखने में भी समर्थ न हो सके ॥४८-४९॥

तत्राऽक्रुध्यद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥५०॥
स एनं वाग्भिरुग्राभिस्ततक्ष पुरुषर्षभः।

हे आर्य! इस समय पुरुषप्रवीर भीमसेन, धृष्टद्युम्न पर कुपित होकर उसे अपनी उग्रवाणी से पीड़ित करते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥५०॥

भीमसेन उवाच—

द्रुपदस्य कुले जातः सर्वास्त्रेष्वस्त्रवित्तमः ॥५१॥
कः क्षत्रियो मन्यमानः प्रेक्षेताऽरिमवस्थितम्।
पितृपुत्रवधं प्राप्य पुमान्कः परिपालयेत् ॥५२॥
विशेषतस्तु शपथं शपित्वा राजसंसदि।

हे महाबाहो ! तुम राजा द्रुपद के उच्च कुल में उत्पन्न हुए हो और सारी अस्त्र विद्या के जानने में कुशल हो। जो अपने को क्षत्रिय मानता हो, वह कैसे सन्मुख उपस्थित शत्रु को क्षमा कर सकता है। कौन ऐसा पुरुष होगा, जो अपने पिता और पुत्रों के वध को भी सहता रहे। तुमने तो फिर राजसभा में विशेष रूप से सत्य की शपथ खाकर प्रतिज्ञा की है ॥५१-५२॥

एष वैश्वानर इव समिद्धः स्वेन तेजसा ॥५३॥
शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा।

यह द्रोणाचार्य अपने तेज से अग्नि की भांति प्रज्वलित हो रहा है। यह आचार्य बाण और धनुष को अग्नि के प्रज्वलित करने का साधन इन्धन बनाकर अपने तेज से सारे क्षत्रिय-संसार को दग्ध कर देना चाहता है ॥५३॥

पुरा करोति निःशेषां पाण्डवानामनीकिनीम् ॥५४॥
स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव व्रजाम्यहम्।

यह देखो ? हमारे तुम्हारे देखते २ पाण्डवों की सेना को द्रोणाचार्य किस तरह विध्वंस कर रहे हैं। अब तुम खड़े २ मेरे पराक्रम को देखते रहो-मैं द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने जाता हूँ।

इत्युक्त्वा प्राविशत्क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः ॥५५॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्द्रावयंस्तव वाहिनीम्।

हे राजन्! इतना कहकर वृकोदर भीम क्रोध के साथ द्रोणाचार्य की सेना में घुस गया। उसने अत्यन्त वीरता के साथ

तेषु सर्वेष्वनीकेषु व्यतिषक्तेष्वनेकशः ।
स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे स्वांश्च स्वान्परांश्च परे परान् ॥१२॥

इस प्रकार सेना के अनेक प्रकार से युद्ध में प्रवृत्त होने पर बहुत से वीर भूल से अपने ही वीरों को तथा शत्रु वीर भी अपने वीरों को मारने लगे। हम और शत्रु अपने २ शत्रुओं पर ही प्रहार कर रहे थे ॥१२॥

वीरबाहुविसृष्टाश्च योधेषु च गजेषु च ।
राशयः प्रत्यदृश्यन्त वाससां नेजनेष्विव ॥१३॥

वीरों की भुजाओं से छोड़े हुए योद्धा और गजों पर पड़ते हुए खड्गों के समूह इस तरह प्रतीत होते थे, जैसे धोबियों ने धोने के स्थान पर वस्त्रों का ढेर लगा रखा हो ॥१३॥

उद्यतप्रतिपिष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः ।
स एव शब्दस्तद्रूपो वाससां निज्यतामिव ॥१४॥

वीरों की बाहुओं द्वारा उठाये जाकर फैंके हुए खड्गों का उसी तरह का शब्द हो रहा था, जैसे वस्त्र पछाँटने के समय शब्द प्रवृत्त होता है ॥१४॥

अर्धासिभिस्तथा खड्गैस्तोमरैः सपरश्वधैः ।
निकृष्टयुद्धं संसक्तं महदासीत्सुदारुणम् ॥१५॥

छोटी तलवार, बड़ी तलवार, तोमर और परश्वध आदि शस्त्रों से इतना समीप में युद्ध होने लगा, कि जो बहुत ही दारुण प्रतीत होता था ॥१५॥

गजाश्वकायप्रभवां नरदेहप्रवाहिनीम् ।
शस्त्रमत्स्यसुसम्पूर्णां मांसशोणितकर्दमाम् ॥१६॥
आर्तनादस्वनवतीं पताकाशस्त्रफेनिलाम् ।
नदीं प्रावर्तयन्वीराः परलोकौघगामिनीम् ॥१७॥

इस समय दोनों ओर के वीरों ने रक्त की नदी प्रवाहित कर दी, जो गज, अश्व आदि वाहनों के शरीर से उत्पन्न हुई थी। उसमें मनुष्यों के देह बहे चले जाते थे। इसमें बहते हुए शस्त्र, मत्स्य तुल्य दिखाई देते थे। यहां मांस और रक्त की नदी बह रही थी। वीरों का आर्तनाद ही नदी का शब्द था और पताका तथा चमकते हुए शस्त्र ही नदी के फेन (झाग) से प्रतीत होते थे। इस तरह यह नदी यमलोक रूपी समुद्र को बही जा रही थी ॥१६-१७॥

शरशक्त्यर्दिताः क्लान्ता रात्रिमूढाल्पचेतसः ।
विष्टभ्य सर्वगात्राणि व्यतिष्ठन्गजवाजिनः ॥१८॥

हे राजन्! अब हाथी और अश्व, बाण, शक्ति आदि शस्त्रों से व्याकुल होकर बहुत थक चुके थे। वे रात भर युद्ध करने से बहुत ही व्याकुल चित्त थे। ये अपने शरीरों को जड़ी भूत करके ज्यों के त्यों खड़े दिखाई देने लगे। ॥१८॥

बाहुभिः कवचैश्छिन्नैः शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ।
युद्धोपकरणैश्चाऽन्यैस्तत्र तत्र चकाशिरे ॥१९॥
क्रव्यादसङ्घैराकीर्णं मृतैरर्धमृतैरपि ।
नाऽऽसीद्रथपथस्तत्र सर्वमायोधनं प्रति ॥२०॥

इसके अनन्तर तपाये हुए सुवर्ण के समान उज्ज्वल सूर्य के उदित हो जाने पर और संसार में प्रकाश फैल जाने पर फिर युद्ध प्रवृत्त होने लगा ॥२॥

द्वन्द्वानि तत्र यान्यासन्संसक्तानि पुरोदयात् ।
तान्येवाऽभ्युदिते सूर्ये समसज्जन्त भारत ॥३॥

हे भारत ! सूर्य उदय से पूर्व जिन २ वीरों की जोड़ी बध चुकी थीं-वे सूर्य के उदय होते ही युद्ध करने में प्रवृत्त हो गए ॥३॥

रथैर्हया हयैर्नागाः पादातैश्चाऽपि कुञ्जराः ।
हयैर्हयाः समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः ॥४॥
रथा रथैरिभैर्नागास्तथैव भरतर्षभ ।
संसक्ताश्च वियुक्ताश्च योधाः संन्यपतन्रणे ॥५॥

हे भरतर्षभ ! इस समय रथियों से अश्वारोही, अश्वारोहियों से गजारोही, पैदलों से गज सवार, अश्वारोहियों से अश्वारोही और पैदल वीरों से पैदल सैनिक, रथियों से रथी और हाथियों से हाथी युद्ध करने में प्रवृत्त हुए। बहुत से योद्धा जोट बांध कर और बहुत से पृथक् २ युद्ध कर रहे थे, इनमें से बहुत से रणभूमि में शयन कर गए ॥४-५॥

ते रात्रौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा ।
क्षुत्पिपासापरीताङ्गा विसंज्ञा बहवोऽभवन् ॥६॥

ये वीर रात भर युद्ध करते रहे थे, इससे सूर्य की धूप लगते ही व्याकुल हो उठे। अब इनको भूख और प्यास ने भी विकल कर दिया, अतएव बहुत से वीर अचेत होकर पृथिवी में गिर गए

शङ्खभेरीमृदङ्गानां कुञ्जराणां च गर्जताम् ।
विस्फारितविकृष्टानां कार्मुकाणां च कूजताम् ॥७॥
शब्दः समभवद्राजन्दिवस्पृग्भरतर्षभ ।
द्रवतां च पदातीनां शस्त्राणां पततामपि ॥८॥
हयानां ह्रेषतां चापि रथानां च निवर्तताम् ।
क्रोशतां गर्जतां चैव तदासीत्तुमुलं महत् ॥९॥
विवृद्धस्तुमुलः शब्दो द्यामगच्छन्महांस्तदा ।

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! राजन् ! इस समय शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, गर्जते हुए हाथी और खोलकर खैंचे हुए धनुषों के कूजन का इतना शब्द उठा, कि आकाश में छा गया। पैदलों के भागने, शस्त्रों के चलने, अश्वों के हिनहिनाने, रथों के फिरने और वीरों के चिल्लाने तथा गर्जने से वह कोलाहल और भी बढ़ गया। यह बढ़ा हुआ महान् कोलाहल आकाश में भर गया ॥७-९॥

नानायुधनिकृत्तानां चेष्टतामातुरः स्वनः ॥१०॥
भूमावश्रूयत महांस्तदासीत्कृपणं महत् ।
पततां पात्यमानानां पत्त्यश्वरथदन्तिनाम् ॥११॥

अनेक वीर अनेक प्रकार के शस्त्रों से काट डाले गए। वे तड़फड़ाते हुए बड़ा आर्तस्वन कर रहे थे। इस समय रणभूमि में पड़े हुए या गिराये जाते हुए पैदल, अश्व, रथी और हाथियों का बड़ा ही दीन आर्तस्वर रणभूमि में भर गया ॥१०-११॥

कान तक धनुष खैंचकर छोड़े हुए बाणों से तुम्हारी सेना को विचलित करना आरम्भ किया ॥५५॥

धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः प्रविश्य महतीं चमूम् ॥५६॥
आससाद रणे द्रोणं तदासीत्तुमुलं महत् ।

हे नृप ! पञ्चालवीर धृष्टद्युम्न भी तुम्हारी विशाल सेना में घुस गया और रण में द्रोणाचार्य को जा पकड़ा । इस समय बड़ा ही घोर युद्ध होने लगा ॥५६॥

नैव नस्तादृशं युद्धं दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥५७॥
यथा सूर्योदये राजन्समुत्पिञ्जोऽभवन्महान् ।

हे राजन् ! हमने इस ढंग का युद्ध न तो आज तक देखा और न सुना ही था, जो सूर्योदय होने पर यह घमसान युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥५७॥

संसक्तान्येव चाऽदृश्यन्रथवृन्दानि मारिष ॥५८॥
हतानि च विकीर्णानि शरीराणि शरीरिणाम् ॥

हे आर्य ! इस समय रथियों के समूह एक दूसरे पर झपटने लगे । शरीर धारी वीरों के शरीर विशीर्ण होकर बिखर गए ।

केचिदन्यत्र गच्छन्तः पथि चाऽन्यैरुपद्रुताः ॥५९॥
विमुखाः पृष्ठतश्चाऽन्ये ताड्यन्ते पार्श्वतः परे ।

कोई वीर रण में दूसरी ओर जा रहे थे, कि उन पर दूसरे वीरों ने आक्रमण कर दिया । जो विमुख हुए, उन पर पीछे से और अगल बगल से वीर ताड़ना करने लगे ॥५९॥

तथा संसक्तयुद्धं तदभवद् भृशदारुणम् ।
अथ सन्ध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत ॥६०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८६॥

इस प्रकार वीरों के भिड़ जाने पर अत्यन्त दारुण युद्ध होने लगा। बस ? अब थोड़ी ही देर में सूर्य सन्धिकाल में आ गए॥६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणवधपर्व में घोर युद्ध के वर्णन का एक सौ छियासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ सत्तासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच— ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि ।
सन्ध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! इस समय रण के मुख्य स्थान मे सुसज्जित होकर खड़े हुए सारे वीर प्रातःकाल की सन्धि के उपस्थित होते ही सहस्र किरणधारी सूर्य के उपस्थान में भक्ति के साथ तत्पर हुए॥१॥

उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे ।
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत ॥२॥

हे राजन् ! वीरों के बाहु, विचित्र कवच, सुन्दर कुण्डल वाले शिर तथा युद्ध की अन्य सामग्री रणभूमि में जहां देखो, वहीं दिखाई देने लगी। रणभूमि मृत और अर्धमृत वीरों के देह से भरी पड़ी थी। मांसभोजी जीवजन्तु सब ओर घूम रहे थे। इस सम्पूर्ण रणस्थली में कहीं भी रथ के घूमने को स्थान नहीं रह गया था ॥१६-२०॥

मज्जत्सु चक्रेषु रथान्सत्वमास्थाय वाजिनः ।
कथञ्चिदवहञ्श्रान्ताः वेपमानाः शरार्दिताः ॥२१॥
कुलसत्वबलोपेता वाजिनो वारणोपमाः ।

इस समय रक्त की कीचड़ में रथ के पहिये घुसे जाते थे—तो अश्व बड़ा ही बल लगा कर उनको खैंच पाते थे। अश्वों के शरीर में भी बाण लग चुके थे-वे कांपते हुए और थके हुए जैसे तैसे अपने रथ को लेकर चल रहे थे। ऐसा वे ही अश्व कर सके, जो उत्तम कुल (नस्ल) में उत्पन्न हुए थे। वे मन और शरीर के बल से परिपूर्ण हाथी के तुल्य पराक्रमी थे ॥२१॥

विह्वलं तूर्णमुद्भ्रान्तं सभयं भारताऽऽतुरम् ॥२२॥
बलमासीत्तदा सर्वमृते द्रोणार्जुनावुभौ ।

हे भारत ! इस समय केवल द्रोणाचार्य और अर्जुन को छोड़कर दोनों पक्ष की सारी सेना बड़ी विह्वल, भयातुर और व्याकुल हो उठी ॥२२॥

तावेवाऽऽस्तां निलयनं तावार्तायनमेव च ॥२३॥
तावेवाऽन्ये समासाद्य जग्मुर्वैवस्वतक्षयम् ।

ये दोनों ही महारथी द्रोण और अर्जुन अपने २ पक्ष के आश्रय और अपने भयातुर वीरों के भय के नाशक थे। इन दोनों के सामने जो वीर पड़ गए-वे इस लोक को छोड़कर परलोक सिधार गए ॥२३॥

आविग्नमभवत्सर्वं कौरवाणां महद्बलम् ॥२४॥

पञ्चालानां च संसक्तं न प्राज्ञायत किञ्चन।

हे राजन्! इस समय कौरव और पञ्चालों की विशाल सेना बहुत ही उद्विग्न हो गई। इस युद्ध में अब कुछ भी जाना नहीं जा रहा था ॥२४॥

अन्तकाक्रीडसदृशं भीरूणां भयवर्धनम् ॥२५॥

पृथिव्यां राजवंश्यानामुत्थिते महति क्षये।

अब यह युद्धस्थल काल का क्रीडा स्थान तथा कायर लोगों को भय का बढ़ाने वाला हो रहा था। पृथिवी पर जितने उत्तम २ राजवंश थे, उन सबका यहां-महान् विनाश उपस्थित हो गया ॥२५॥

न तत्र कर्णं द्रोणं वा नाऽर्जुनं न युधिष्ठिरम् ॥२६॥

न भीमसेनं न यमौ न पाञ्चाल्यं न सात्यकिम्।

न च दुःशासनं द्रौणिं न दुर्योधनसौबलौ ॥२७॥

न कृपं मद्रराजं च कृतवर्माणमेव च।

न चाऽन्यान्नैव चाऽऽत्मानं न क्षितिं न दिशस्तथा ॥

पश्याम राजन्संसक्तान्सैन्येन रजसाऽऽवृतान्।

हे राजन्! इस समय कर्ण, द्रोण, अर्जुन, राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, पञ्चालवीर धृष्टद्युम्न, सात्यकि, दुःशासन, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, राजा दुर्योधन, सुबल-पुत्र शकुनि, कृपाचार्य, महाराज शल्य, कृतवर्मा तथा अन्य महारथी वीर कहां युद्ध कर रहे हैं—इसका कुछ भी पता नहीं लगता था, क्योंकि रण में बहुत ही धूल उठी हुई थी। इस समय तो अपने खड़े होने, पृथिवी और दिशाओं तक का कुछ ज्ञान नहीं रह गया था ॥२६-२८॥

सम्भ्रान्ते तुमुले घोरे रजोमेघे समुत्थिते ॥२९॥
द्वितीयामिव सम्प्राप्ताममन्यन्त निशां तदा।

हे राजन्! जब इस प्रकार धूलि के मेघ खड़े हो गए और घोर अन्धकार मच गया-तो यह प्रतीत होने लगा, कि मानो फिर दूसरी रात उपस्थित हो गई है ॥२९॥

न ज्ञायन्ते कौरवेया न पाञ्चाला न पाण्डवाः ॥३०॥
न दिशो द्यौर्न चोर्वी च न समं विषमं तथा।

हे भरतर्षभ! इस घोर अन्धकार में न तो कौरवों का पता चलता था और न पाञ्चाल या पाण्डववीर पहिचान में आते थे। न कुछ दिशाओं का पता चलता था, न आकाश, पृथिवी और न भूमि की सम विषमता की ही कुछ जांच होती थी ॥३०॥

हस्तसंस्पर्शमापन्नान्परानप्यथवा स्वकान् ॥३१॥
न्यपातयंस्तदा युद्धे नराः स्म विजयैषिणः।

जो वीर विजय की अभिलाषा से युद्ध में प्रवृत्त हुए थे-वे हाथ का स्पर्श होते ही अपना हो या पराया सबको मार लेते थे ॥३१॥

उद्धूतत्वात्तु रजसः प्रसेकाच्छोणितस्य च ॥३२॥
प्राशाम्यत रजो भौमं शीघ्रत्वादनिलस्य च ।

यद्यपि रणस्थल में धूलि बहुत उठ रही थी-तो भी शीघ्रगामी वायु और वीरों के रक्त की धारा के कारण वह भूमि से उठी हुई धूलि बहुत ही शीघ्र नष्ट हो गई ॥३२॥

तत्र नागा हया योधा रथिनोऽथ पदातयः ॥३३॥
पारिजातवनानीव व्यरोचन्रुधिरोक्षिताः ।

इस युद्ध में हाथी, अश्व, योधा, रथी और पैदल वीर रक्त में भीगे हुए लाल कमल के वन के तुल्य प्रतीत होते थे ॥३३॥

ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुःशासनस्तथा ॥३४॥
पाण्डवैः समसज्जन्त चतुर्भिश्चतुरो रथाः ।
दुर्योधनः सह भ्राता यमाभ्यां समसज्जत ॥३५॥
वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चाऽर्जुनः ।

अब राजा दुर्योधन, कर्ण, द्रोण और दुःशासन चारों, पाण्डवों के साथ भिड़ गए। राजा दुर्योधन और दुःशासन तो नकुल और और सहदेव से उलझ गए, भीमसेन के साथ कर्ण का युद्ध होने लगा। भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य, अर्जुन से लड़ने में प्रवृत्त हुए ॥

तद्घोरं महदाश्चर्यं सर्वे प्रैक्षन्त सर्वतः ॥३६॥
रथर्षभाणामुग्राणां सन्निपातममानुपम् ।

यह घोर युद्ध सर्वश्रेष्ठ महारथी वीरों का था, जो मनुष्यों के युद्धों का अतिक्रमण कर जाने वाला था। इसको सारे वीर खड़े होकर आश्चर्य के साथ देखने लगे ॥६६॥

रथमार्गैर्विचित्रैस्तैर्विचित्ररथसंकुलम् ॥३७॥
अपश्यन्रथिनो युद्धं विचित्रं चित्रयोधिनाम् ।

इन महारथियों के रथों के विचित्र मार्गों के कारण रणाङ्गण रथों से भरा हुआ दिखाई देने लगा । बहुत से रथी वीर तो विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाले इन वीरों के युद्ध को देखकर अवाक् रह गए ॥३७॥

यतमानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीषवः ॥३८॥
जीमूता इव घर्मान्ते शरवर्षैरवाकिरन् ।

ये पराक्रमी बड़े प्रयत्न के साथ अपनी २ विजय की इच्छा से इस तरह बाणवर्षा करने लगे, जैसे वर्षा ऋतु में मेघ, जल धारा की झड़ी लगा देते हैं ॥३८॥

ते रथान्सूर्यसङ्काशानास्थिताः पुरुषर्षभाः ॥३९॥
अशोभन्त यथा मेघाः शारदाश्चलविद्युतः ।

ये पुरुषप्रवीर सूर्य के सदृश देदीप्यमान रथों पर बैठ गए और ऐसे प्रतीत होने लगे-जैसे शरद् ऋतु के मेघों में बिजली फड़फड़ा रही हो ॥३९॥

योधास्ते तु महाराज क्रोधामर्षसमन्विताः ॥४०॥
स्पर्धिनश्च महेष्वासाः कृतयत्ना धनुर्धराः ।
अभ्यगच्छंस्तथाऽन्योन्यं मत्ता गजवृषा इव ॥४१॥

हे महाराज ! इस समय दोनों ओर के वीर क्रोध और आवेश में भर गए । ये धनुर्धर बड़े २ धनुष उठा कर बड़े प्रयत्न

के साथ एक दूसरे के जीतने की स्पर्धा में संलग्न हुए मदोन्मत्त हाथियों की तरह एक दूसरे पर बुरी तरह टूट पड़े ॥४०-४१॥

न नूनं देहभेदोऽस्ति काले राजन्ननागते।
यत्र सर्वे न युगपद्व्यशीर्यन्त महारथाः ॥४२॥

हे राजन ! जब तक मृत्यु काल उपस्थित न हो जावे, तब तक देह का पतन नहीं होता है। यही कारण है, कि इस घोर युद्ध के प्रवृत्त होने पर भी सारे योधा एकदम मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए ॥

बाहुभिश्चरणैश्छिन्नैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः।
कार्मुकैर्विशिखैः प्रासैः खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥४३॥
नालीकैः क्षुद्रनाराचैर्नखरैः शक्तितोमरैः।
अन्यैश्च विविधाकारैर्धौतैः प्रहरणोत्तमैः ॥४४॥
विचित्रैर्विविधाकारैः शरीरावरणैरपि।
विचित्रैश्च रथैर्भग्नैर्हतैश्च गजवाजिभिः ॥४५॥
शून्यैश्चैव नगाकारैर्हतयोधध्वजै रथैः।
अमनुष्यैर्हयैस्त्रस्तैः कृष्यमाणैस्ततस्ततः ॥४६॥
वातायमानैरसकृद्धतवीरैरलंकृतैः।
व्यजनैः कङ्कटैश्चैव ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥४७॥
छत्रैराभरणैर्वस्त्रैर्माल्यैश्च ससुगन्धिभिः।
हारैः किरीटैर्मुकुटैरुष्णीषैः किङ्किणीगणैः ॥४८॥

उरःस्थैर्मणिभिर्निष्कैश्चूडामणिभिरेव च ।
आसीदायोधनं तत्र नभस्तारागणैरिव ॥४६॥

हे राजन्! इस समय रणस्थल कटी हुई वीरों की भुजा, चरण, कुण्डल सहित मस्तक, धनुष, बाण, प्रास, खड्ग, परशु, पट्टिश, नालीक, क्षुद्र नाराच, नखर, शक्ति, तोमर तथा अन्य बहुत से चमकीले शस्त्र एवं अनेक प्रकार के शरीरों के कवच, टूटे फूटे विचित्र रथ, मारे हुए हाथी घोड़े, योधा और ध्वजा के नाश से शून्य पर्वत के समान प्रतीत होने वाले सारथि से रहित होने से व्याकुल हुए वायु तुल्य वेग वाले अश्वों से इधर उधर बार २ खैंचे गए, अलङ्कारों से विभूषित, मरे हुए अनेक वीर, पङ्खे, कवच, गिरी हुई ध्वजा, छत्र, आभरण, वस्त्र, सुगन्धित माला, हार, किरीट, मुकुट, उष्णीष, किङ्किणी समूह, हृदय पर लटकने वाली मणि, कण्ठहार, चूड़ामणि, आदि वस्तुओं से इस तरह व्याप्त हो गया-जैसे नक्षत्रगण से आकाश व्याप्त हो जाता है ॥४३-४६॥

ततो दुर्योधनस्याऽऽसीन्नकुलेन समागमः ।
अमर्षितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनाऽमर्षितस्य च ॥५०॥

अब क्रोध और आवेश में भरे हुए राजा दुर्योधन का, क्रोध और आवेश में भरे हुए नकुल से युद्ध होने लगा ॥५०॥

अपसव्यं चकाराऽथ माद्रीपुत्रस्तवाऽऽत्मजम् ।
किरञ्छरशतैर्हृष्टस्तत्र नादो महानभूत् ॥५१॥

अब माद्री-पुत्र नकुल ने तुम्हारे पुत्र को बांयी ओर करके सैंकड़ों बाणों की झड़ी लगा दी। इस समय बड़ी ही गर्जना होने लगी ॥

अपसव्यं कृतं संख्ये भ्रातृव्यं नाऽत्यमर्षिणा ।
नाऽमृष्यत तमप्याजौ प्रतिचक्रेऽपसव्यतः ॥५२॥
पुत्रस्तव महाराज राजा दुर्योधनो द्रुतम् ।

हे महाराज ! अत्यन्त आवेश में भरे हुए तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन से रण में अपना बांई ओर कर देना सहा न जा सका। उसने भी दौड़ कर रण में नकुल को अपनी बांई ओर करना चाहा ॥५२॥

ततः प्रतिचिकिर्षन्तमपसव्यं तु ते सुतम् ॥५३॥
न्यवारयत तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्गवित् ।

हे राजन् ! जब तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, नकुल को अपने बांये ओर ले जाने की चेष्टा कर रहा था, तो विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाले तेजस्वी नकुल ने उसे वहीं रोक दिया ॥५३॥

स सर्वतो निवार्यैनं शरजालेन पीडयन् ॥५४॥
विमुखं नकुलश्चक्रे तत्सैन्याः समपूजयन् ।

अब नकुल ने सब ओर से कुरुराज को रोक कर अपने शरजाल से उसे व्याप्त करके रण से विमुख कर दिया । इसको देखकर नकुल पक्ष के वीरों ने नकुल की बड़ी प्रशंसा की ।

तिष्ठतिष्ठेति नकुलो बभाषे तनयं तव ।
संस्मृत्य सर्वदुःखानि तव दुर्मन्त्रितं च तत् ॥५५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि नकुलयुद्धे सप्ताशीत्यधिक-शततमोऽध्यायः ॥१८७॥

अब नकुल ने तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन से क्रोध पूर्वक कहा— तनिक तुम ठहरे रहो-भागो मत। इस समय नकुल को अपने पूर्व के सारे दुःख और तुम्हारी दुर्मन्त्रणाओं का स्मरण हो रहा था॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणवधपर्व में राजा दुर्योधन और नकुल के युद्ध का एक सौ सत्तासीवां अध्याय समाप्त हुआ



एक सौ अट्ठासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच— ततो दुःशासनः क्रुद्धः सहदेवमुपाद्रवत् ।
रथवेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! दूसरी ओर कुपित हुए दुःशासन ने सहदेव पर आक्रमण किया। इसके रथ का वेग बड़ा ही तीव्र था, जो पृथिवी को कम्पायमान सा कर रहा था॥१॥

तस्याऽऽपतत एवाऽऽशु भल्लेनाऽमित्रकर्शनः ।
माद्रीपुत्रः शिरो यन्तुः सशिरस्त्राणमच्छिनत् ॥२॥

हे जनाधिप ! दुःशासन के आक्रमण करते ही शत्रुनाशक सहदेव ने एक भल्ल नामक बाण का प्रयोग किया, जिससे उसने शिरस्त्राण के सहित दुःशासन के सारथि का शिर काट गिराया।

नैनं दुःशासनः सूतं नाऽपि कश्चन सैनिकः ।
कृत्तोत्तमाङ्गमाशुत्वात्सहदेवेन बुद्धवान् ॥३॥

इस सारथि का इतनी शीघ्रता से शिर काट लिया गया, कि इसको न तो दुःशासन ही जान सका और न अन्य किसी सैनिक को ही पता लगा, कि इस सारथि का शिर सहदेव ने उड़ा दिया है ॥३॥

यदा त्वसंगृहीतत्वात्प्रयान्त्यश्वा यथासुखम् ।
ततो दुःशासनः सूतं बुबुधे गतचेतसम् ॥४॥

जब दुःशासन ने देखा, कि कोई अश्वों की रास नहीं पकड़ रहा है और अश्व अपनी इच्छानुसार चल रहे हैं-तो उसे पता लगा, कि मेरा सारथि मारा जा चुका है ॥४॥

स हयान्सन्निगृह्याऽऽजौ स्वयं हयविशारदः ।
युयुधे रथिनां श्रेष्ठो लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥५॥

अब दुःशासन ने रण में स्वयं अश्वों का संयमन किया, क्योंकि यह भी अश्वों के हांकने में बड़ा कुशल था। यह रथियों में श्रेष्ठ, दुःशासन बड़ी विचित्रता और शीघ्रता के साथ उत्तमतापूर्वक युद्ध करने लगा ॥५॥

तदस्याऽपूजयन्कर्म स्वे परे चापि संयुगे ।
हतसूतरथेनाऽऽजौ व्यचरद्यदभीतवत् ॥६॥

दुःशासन के इस अद्भुत कर्म को अपने और शत्रु के वीर प्रशंसा करने लगे, कि सारथि के मारे जाने पर भी यह किस प्रकार रण में निर्भीकभाव से घूम रहा है ॥६॥

सहदेवस्तु तानश्वांस्तीक्ष्णैर्बाणैरवाकिरत् ।
पीड्यमानाः शरैश्चाऽऽशु प्राद्रवंस्ते ततस्ततः ॥७॥

अब सहदेव ने बड़े तीक्ष्ण बाण छोड़कर उन अश्वों का छेदना आरम्भ किया। बाणों से पीड़ित हुए वे अश्व, बड़ी शीघ्रता से इधर उधर भागने लगे ॥७॥

स रश्मिषु विषक्तत्वादुत्ससर्ज शरासनम् ।
धनुषा कर्म कुर्वंस्तु रश्मींश्च पुनरुत्सृजत् ॥८॥

जब दुःशासन अश्वों की रास पकड़ता-उस समय धनुष को रख देता था और जब वह धनुष से बाण फेंकता; तब उसे अश्वों की रास छोड़नी पड़ती थी ॥८॥

छिद्रेष्वेतेषु तं बाणैर्माद्रीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ।
परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस्तदन्तरमवापतत् ॥९॥

हे राजन्! इसी अवसर को पाकर माद्री-पुत्र सहदेव, दुःशासन को बाणों से आच्छादित कर देता था। इस समय तुम्हारे पुत्र दुःशासन की रक्षा करने को उनके मध्य में महारथी कर्ण आ कूदा ॥९॥

वृकोदरस्ततः कर्णं त्रिभिर्भल्लैः समाहितः ।
आकर्णपूर्णैरभ्यघ्नन्बाह्वोरुरसि चाऽनदत् ॥१०॥

वृकोदर भीम ने कर्ण को आया हुआ देखकर बड़ी कुशलता से तीन भल्ल संज्ञक बाण कान तक खैंचकर और कर्ण की भुजा और छाती में मार कर बड़े उच्चस्वर में गर्जना की ॥१०॥

स निवृत्तस्ततः कर्णः सङ्कुद्धित इवोरगः ।
भीममावारयामास विकिरन्निशिताञ्छरान् ॥११॥

इन बाणों के लगने से कर्ण ने कुचले हुए सर्प की तरह पलटा खाया और तीक्ष्ण बाण छोड़कर भीम को वहीं रोक दिया ॥११॥

ततोऽभूत्तुमुलं युद्धं भीमराधेययोस्तदा ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ विवृत्तनयनावुभौ ॥१२॥
वेगेन महताऽन्योन्यं संरब्धावभिपेततुः ।

अब भीमसेन और कर्ण का घोर युद्ध होने लगा। उन दोनों की क्रोध से आंखें चढ़ी हुई थी और वे सांड की तरह गर्जना कर रहे थे। अब वे दोनों आवेश में भरे हुए बड़े वेग से एक दूसरे पर टूट पड़े ॥१२॥

अभिसंश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः ॥१३॥
विच्छिन्नशरपातत्वाद्गदायुद्धमवर्तत ।

इन दोनों युद्ध-कुशल भीम और कर्ण के भिड़ जाने पर बहुत से बाण व्यतीत हो गए-तो फिर गदा-युद्ध होने लगा ॥१३॥

गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूबरम् ॥१४॥
बिभेद शतधा राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

हे राजन् ! अब भीमसेन ने अपनी गदा का ऐसा प्रहार किया, कि जिससे कर्ण के रथ के कूबर के सौ टुकड़े हो गए-इस कर्म को दर्शकों ने बड़ा ही अद्भुत कर्म समझा ॥१४॥

ततो भीमस्य राधेयो गदामाविध्य वीर्यवान् ॥१५॥

अवासृजद्रथे तां तु विभेद गदया गदाम् ।

अब राधा-पुत्र महापराक्रमी कर्ण ने भी अपनी गदा उठाई और उसे भीमसेन के रथ पर फैंका तथा भीमसेन की गदा को अपनी गदा से छिन्न-भिन्न कर डाला ॥१५॥

ततो भीमः पुनर्गुर्वीं चिक्षेपाऽऽधिरथेर्गदाम् ॥१६॥

तां गदां बहुभिः कर्णः सुपुङ्खैः सुप्रवेजितैः ।

प्रत्यविध्यत्पुनश्चाऽन्यैः सा भीमं पुनराव्रजत् ॥१७॥

व्यालीव मन्त्राभिहता कर्णबाणैरभिद्रुता ।

अब भीमसेन ने फिर दूसरी भारी गदा उठाई और उसको अधिरथ-पुत्र कर्ण पर फैंका। कर्ण ने भी बहुत से सुन्दर मूल वाले बाणों से उसे वहीं रोक दिया और फिर अन्य बाण मार कर उसे उलटे भीम की ओर चलती कर दिया। यह कर्ण के बाणों से लौटाई हुई सर्पिणी की तरह भीम की ओर चली ॥१६-१७॥

तस्याः प्रतिनिपातेन भीमस्य विपुलो ध्वजः ॥१८॥

पपात सारथिश्चाऽस्य मुमोह च गदाहतः ।

हे भारत! इस गदा के प्रहार से भीमसेन की विशाल ध्वजा गिर गई और गदा से आहत हुआ सारथि भी गिर कर मूर्च्छित हो गया ॥१८॥

स कर्णं सायकानष्टौ व्यसृजत्क्रोधमूर्च्छितः ॥१९॥

तैस्तस्य निशितैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनो महाबलः ।

चिच्छेद परवीरघ्नः प्रहसन्निव भारत ॥२०॥
ध्वजं शरासनं चैव शरावापं च भारत ।

हे भरतर्षभ ! अब क्रोध में भर कर भीमसेन ने कर्ण पर आठ बाण छोड़े । शत्रु वीरनाशक महाबली भीमसेन ने हंसते २ इन तीक्ष्ण बाणों से कर्ण की ध्वजा, धनुष और हाथ के कवच को काट गिराया ॥१९-२०॥

कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥२१॥
ततः पुनस्तु राधेयो हयानस्य रथेषुभिः ।
ऋक्षवर्णाञ्जघानाऽऽशु तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥२२॥

हे राजन् ! अब महारथी कर्ण ने भी सुवर्ण की पीठ वाला दूसरा दुरासद धनुष उठाया । इस धनुष से राधा-पुत्र कर्ण ने रथ पर से बाण छोड़कर भीमसेन के ऋक्ष के समान वर्णधारी काले अश्वों और दोनों पार्ष्णिरक्षक और सारथि को मार गिराया ।

स विपन्नरथो भीमो नकुलस्याऽऽप्लुतो रथम् ।
हरिर्यथा गिरेः शृङ्गं समाक्रामदरिन्दमः ॥२३॥

अब भीमसेन का रथ टूट चुका, इससे अरिमर्दन भीमसेन कूद कर नकुल के रथ पर इस तरह जा चढ़ा, जैसे पर्वत की चोटी पर वानर जा चढ़ता है ॥२३॥

तथा द्रोणार्जुनौ चित्रमयुध्येतां महारथौ ।
आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र कृतप्रहरणौ युधि ॥२४॥

हे राजेन्द्र ! दूसरी ओर महारथी द्रोणाचार्य और अर्जुन बड़ा विचित्र युद्ध करने लगे—ये दोनों गुरु शिष्य युद्ध में शस्त्र चलाने में बड़े ही कुशल थे ॥२४॥

लघुसन्धानयोगाभ्यां रथयोश्चरणेन च ।
मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षूंषि च मनांसि च ॥२५॥

ये दोनों महारथी शीघ्रता से बाण चढ़ाने और छोड़ने तथा रथ के चलाने से मनुष्यों के मन और नेत्रों को मुग्ध करने लगे।

उपारमन्त ते सर्वे योधा भरतसत्तम ।
अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस्तद्युद्धं गुरुशिष्ययोः ॥२६॥

हे भरतसत्तम ! इस समय सारे योद्धा युद्ध से पृथक् खड़े होकर इन गुरु शिष्य का अभूतपूर्व युद्ध देखने लगे ॥२६॥

विचित्रान्पृतनामध्ये रथमार्गानुदीर्य तौ ।
अन्योन्यमपसव्यं च कर्तुं वीरौ तदेषतुः ॥२७॥

इन दोनों महारथी द्रोण और अर्जुन ने सेना के मध्य में विचित्र रथ के मार्ग दिखाए। ये एक दूसरे को अपनी बांयी ओर कर लेना चाहते थे ॥२७॥

पराक्रमं तयोर्योधा ददृशुस्ते सुविस्मिताः ।
तयोः समभवद्युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत् ॥२८॥
आमिषार्थे महाराज गगने श्येनयोरिव ।

इन दोनों वीरों का पराक्रम देखकर सारे योद्धा अत्यन्त ही चकित हुए। हे नृप ! द्रोण और अर्जुन का यह आकाश में मांस के लिए लड़ने वाले दो श्येन पक्षी की तरह बड़ा ही घोर युद्ध था

यद्यच्चकार द्रोणस्तु कुन्तीपुत्रजिगीषया ॥२६॥
तत्तत्प्रतिजघानाऽऽशु प्रहसँस्तस्य पाण्डवः।

कुन्ती-पुत्र अर्जुन को जीतने की इच्छा से जो २ कार्य द्रोणाचार्य ने किए-उन २ कार्यों का ज्यों का त्यों उत्तर देकर पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने उन्हें वहीं नष्ट कर दिया ॥२६॥

यदा द्रोणो न शक्नोति पाण्डवं स्म विशेषितुम् ॥
ततः प्रादुश्चकाराऽस्त्रमस्त्रमार्गविशारदः।

जब द्रोणाचार्य किसी भी तरह अर्जुन से अधिक अपने को प्रमाणित न कर सके-तो अस्त्रों के मार्ग दिखाने में कुशल द्रोण ने अब दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया ॥३०॥

ऐन्द्रं पाशुपतं त्वाष्ट्रं वायव्यमथ वारुणम् ॥३१॥
मुक्तं मुक्तं द्रोणचापात्तज्जघान धनञ्जयः।

अब ऐन्द्र, पाशुपत, त्वाष्ट्र, वायव्य और वारुण नामक जिन २ दिव्य अस्त्रों का द्रोणाचार्य ने प्रयोग किया; उनको द्रोणाचार्य के हाथ से निकलते ही धनञ्जय अर्जुन ने काट गिराया ॥३१॥

अस्त्राण्यस्त्रैर्यदा तस्य विधिवद्धन्ति पाण्डवः ॥३२॥
ततोऽस्त्रैः परमैर्दिव्यैर्द्रोणः पार्थमवाकिरत्।

अर्जुन जिस २ तरह द्रोणाचार्य के दिव्य अस्त्रों को अपने दिव्य अस्त्रों से युद्ध विधि के अनुसार काट देता था, त्योंही उनसे अधिक दिव्य अस्त्र द्रोण, अर्जुन पर चलाता जाता था ॥३२॥

यद्यदस्त्रं स पार्थाय प्रयुंक्ते विजिगीषया ॥२३॥

तस्य तस्य विघाताय तत्तद्धि कुरुतेऽर्जुनः ।

जिस २ अस्त्र को अर्जुन के जीतने के लिए द्रोणाचार्य ने प्रयुक्त किया, उसी २ अस्त्र के उत्तार रूप अस्त्र से अर्जुन ने उसे वहीं छिन्न-भिन्न कर डाला ॥२३॥

स वध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथाविधि ॥२४॥

अर्जुनेनाऽर्जुनं द्रोणो मनसैवाऽभ्यपूजयत् ।

जब अर्जुन ने युद्ध विधि के अनुसार सारे द्रोण के दिव्य अस्त्र काट दिए-तो द्रोणाचार्य ने मन ही मन अर्जुन की बड़ी प्रशंसा की ॥२४॥

मेने चाऽऽत्मानमधिकं पृथिव्यामधि भारत ॥२५॥

तेन शिष्येण सर्वेभ्यः शस्त्रविद्भ्यः परन्तपः ।

हे भारत ! इस समय शत्रुतापी द्रोणाचार्य ने अपने को सारी पृथिवी पर धन्य समझा, जो कि उसका शिष्य अर्जुन सारे शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ हो गया था ॥२५॥

वार्यमाणस्तु पार्थेन तथा मध्ये महात्मनाम् ॥२६॥

यतमानोऽर्जुनं प्रीत्या प्रत्यवारयदुत्स्मयन् ।

इन महारथियों के मध्य में जब अर्जुन द्वारा द्रोणाचार्य रोक दिया गया-तो वह प्रेम से कुछ मुस्कुरा कर बड़े प्रेम से फिर अर्जुन के रोकने में प्रवृत्त हुआ ॥२६॥

ततोऽन्तरिक्षे देवाश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ॥३७॥
ऋषयः सिद्धसङ्घाश्च व्यतिष्ठन्त दिदृक्षया ।

इस समय इस गुरु शिष्य के युद्ध को देखने के लिए आकाश में सहस्रों की सख्या में देव, गन्धर्व, ऋषि और सिद्ध आकर खड़े हो गए ॥३७॥

तदप्सरोभिराकीर्णं यक्षगन्धर्वसंकुलम् ॥३८॥
श्रीमदाकाशमभवद्भूयो मेघाकुलं यथा ।

इस समय यक्ष, गन्धर्व और अप्सराओं के गणों से व्याप्त देदीप्यमान आकाश इस तरह सुन्दर दिखाई देने लगा-जैसे उसमें मेघ चढ़ आए हों ॥३८॥

तत्र स्माऽन्तर्हिता वाचो व्यचरन्त पुनः पुनः ॥३९॥
द्रोणपार्थस्तवोपेता व्यश्रूयन्त नराधिप ।

हे नराधिप ! अब वहां पर अलक्षित वाणी सुनाई देने लगी, जिनमें द्रोण और अर्जुन की प्रशंसा भरी पड़ी थी ॥३९॥

विसृज्यमानेष्वस्त्रेषु ज्वालयत्सु दिशो दश ॥४०॥
अब्रुवंस्तत्र सिद्धाश्च ऋषयश्च समागताः ।
नैवेदं मानुषं युद्धं नाऽऽसुरं न च राक्षसम् ॥४१॥
न दैवं न च गान्धर्वं ब्राह्मं ध्रुवमिदं परम् ।
विचित्रमिदमाश्चर्यं न नो दृष्टं न च श्रुतम् ॥४२॥
अति पाण्डवमाचार्यो द्रोणं चाऽऽप्यति पाण्डवः ।
नाऽनयोरन्तरं शक्यं द्रष्टुमन्येन केनचित् ॥४३॥

जब इन दोनों महारथियों ने अपने २ दिव्य अस्त्र छोड़ दिए, जो दशों दिशाओं को जलाने लगे-तो उस स्थान पर पहुंचे हुए ऋषि और सिद्धों के समूह इस प्रकार कहने लगे-कि ऐसा युद्ध मनुष्य, असुर, राक्षस, देव और गन्धर्वों में कहीं भी नहीं देखा गया-यह तो सर्वोत्कृष्ट ब्राह्म-युद्ध है। हमने आज तक न तो यह युद्ध देखा और न सुना ही है। अर्जुन का अतिक्रमण करके तो द्रोणाचार्य प्रवर्तमान हो रहे हैं और द्रोणाचार्य का अतिक्रमण करके अर्जुन प्रवृत्त हुए दिखाई देते हैं। इन दोनों के भेद को कोई साधारण अन्य मनुष्य कुछ भी नहीं बता सकता है ॥४३॥

यदि रुद्रो द्विधाकृत्य युध्येताऽऽत्मानमात्मना ।
तत्र शक्योपमा कर्तुमन्यत्र तु न विद्यते ॥४४॥

यदि भगवान् शङ्कर अपने आपको दो भागों में विभक्त करके युद्ध में प्रवृत्त करें, तो इस युद्ध की उपमा दी जा सकती है अन्यथा इस युद्ध की कोई उपमा नहीं हो सकती ॥४४॥

ज्ञानमेकस्थमाचार्ये ज्ञानं योगश्च पाण्डवे ।
शौर्यमेकस्थमाचार्ये बलं शौर्यं च पाण्डवे ॥४५॥

अस्त्रविद्या का पूर्ण-ज्ञान आचार्य द्रोण में इकट्ठा था और अर्जुन तो युवा होने के कारण शस्त्रविद्या का ज्ञान और उसका प्रयोग करना भी जानते थे। आचार्य शौर्य की अवधि थे, परन्तु अर्जुन के भीतर शौर्य और बल दोनों विद्यमान थे ॥४५॥

नेमौ शक्यौ महेष्वासौ युद्धे क्षपयितुं परैः ।
इच्छमानौ पुनरिमौ हन्येतां सामरं जगत् ॥४६॥

इन दोनों महाधनुर्धर द्रोण और अर्जुन को कोई भी रण में जीतने में समर्थ नहीं हो सकते थे। यदि ये दोनों मिल जावें-तो देवों के सहित सारे जगत् का विध्वंस कर सकते हैं ॥४६॥

इत्यब्रुवन्महाराज दृष्ट्वा तौ पुरुषर्षभौ।
अन्तर्हितानि भूतानि प्रकाशानि च सर्वशः ॥४७॥

हे महाराज! इस प्रकार उन दोनों पुरुषप्रवीर द्रोण और अर्जुन को देखकर सबके सन्मुख ही सारे दिव्य प्राणी अन्तर्हित हो गए ॥४७॥

ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं प्रादुश्चक्रे महामतिः।
सन्तापयन्रणे पार्थं भूतान्यन्तर्हितानि च ॥४८॥

अब महाबुद्धिमान् द्रोणाचार्य ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, जिससे रण में अर्जुन को सन्तप्त कर देना चाहा। इस समय सारे आकाशचारी प्राणी अलक्षित हो गए ॥४८॥

ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा।
ववौ च विषमो वायुः सागराश्चाऽपि चुक्षुभुः ॥४९॥

इसके अनन्तर वन और पर्वतों के साथ सारी पृथिवी चल पड़ी। वायु बड़ी तीव्र गति से चलने लगा और समुद्र भी उछलने लगे ॥४९॥

ततस्त्रासो महानासीत्कुरुपाण्डवसेनयोः।
सर्वेषां चैव भूतानामुद्यतेऽस्त्रे महात्मना ॥५०॥

इस समय कौरव और पाण्डव सेना में महान त्रास खड़ा हो गया और महावीर द्रोणाचार्य के इस अस्त्र के प्रयुक्त करने पर सारे प्राणी कम्पायमान हो उठे ॥५०॥

ततः पार्थोऽप्यसम्भ्रान्तस्तदस्त्रं प्रतिजघ्निवान् ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ततः सर्वमशीशमत् ॥५१॥

इस समय अर्जुन को कुछ भी घबराहट नहीं हुई और उसने उस ब्रह्मास्त्र का वहीं अपने ब्रह्मास्त्र से विनाश कर दिया तथा सर्वत्र शक्ति फैला दी ॥५१॥

यदा न गम्यते पारं तयोरन्यतरस्य वा ।
ततः संकुलयुद्धेन तद्युद्धं व्याकुलीकृतम् ॥५२॥

जब इन दोनों में किसी एक पर दूसरे का वश न चला, तो फिर घमसान युद्ध प्रवृत्त किया, जिससे सारा रणस्थल व्याकुल हो उठा ॥५२॥

नाऽऽज्ञायत ततः किञ्चित्पुनरेव विशाम्पते ।
प्रवृत्ते तुमुले युद्धे द्रोणपाण्डवयोर्मृधे ॥५३॥
शरजालैः समाकीर्णे मेघजालैरिवाऽम्बरे ।
नाऽपतच्च ततः कश्चिदन्तरिक्षचरस्तदा ॥५४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८॥

हे विशाम्पते ! अब फिर द्रोणाचार्य और अर्जुन के घोर युद्ध के प्रवृत्त होने पर कुछ भी विदित नहीं होता था। आकाश मेघ-जाल से व्याप्त होने के तुल्य बाण-जाल से भर गया। इस समय कोई भी आकाशचारी प्राणी वहां से गमन नहीं कर सकता था।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणवधपर्व में द्रोण और अर्जुन के युद्ध के वर्णन का एक सौ अट्ठासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ नवासीवां अध्याय

संजय उवाच— तस्मिंस्तथा वर्तमाने गजाश्वनरसंक्षये।

दुःशासनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! जब इस प्रकार युद्ध में बड़े भीषण रूप से गज, अश्व और मनुष्यों का संहार हो रहा था, तो उसी समय महारथी दुःशासन, धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे ॥१॥

स तु रुक्मरथासक्तो दुःशासनशरार्दितः।

अमर्षात्तव पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत् ॥२॥

इस समय धृष्टद्युम्न, सुवर्णरथधारी द्रोणाचार्य से युद्ध कर रहे थे। जब वे दुःशासन के बाण से आहत हुए, तो उन्हें बड़ा क्रोध भर आया। अब उन्होंने अनेक बाण छोड़कर दुःशासन के अश्वों को बाणों से बिल्कुल आच्छादित कर दिया ॥२॥

क्षणेन स रथस्तस्य सध्वजः सहसारथिः ।
नाऽदृश्यत महाराज पार्षतस्य शरैश्चितः ॥३॥

हे महाराज ! अब थोड़ी ही देर में पर्षतकुमार धृष्टद्युम्न के बाणों से दुःशासन इतना आच्छादित हो गया, कि उसकी ध्वजा और सारथि के सहित सारा रथ दिखाई देता ही बन्द हो गया ।

दुःशासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
नाऽशकत्प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः ॥४॥

हे राजेन्द्र ! पाञ्चालवीर महात्मा धृष्टद्युम्न के बाण-जाल से पीड़ित हुए दुःशासन में यह सामर्थ्य दिखाई नहीं दिया-जो वह धृष्टद्युम्न के सन्मुख ठहर पाता ॥४॥

स तु दुःशासनं बाणैर्विमुखीकृत्य पार्षतः ।
किरञ्छरसहस्राणि द्रोणमेवाऽभ्ययाद्रणे ॥५॥

अब पर्षतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न अपने बाणों से दुःशासन को रण से विमुख करके सहस्रों बाणों की झड़ी लगाता हुआ रण में द्रोणाचार्य की ओर फिर चला ॥५॥

अभ्यपद्यत हार्दिक्यः कृतवर्मा त्वनन्तरम् ।
सोदर्याणां त्रयश्चैव त एनं पर्यवारयन् ॥६॥

इस समय हृदिक-पुत्र कृतवर्मा और राजा दुर्योधन के तीन महारथी भ्राताओं ने धृष्टद्युम्न को घेर लिया ॥६॥

तं यमौ पृष्ठतोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं दीप्यमानमिवाऽनलम् ॥७॥

अग्नि के तुल्य देदीप्यमान, द्रोणाचार्य पर झपटते हुए धृष्टद्युम्न की रक्षा करते हुए उसके पीछे २ दोनों भ्राता पुरुषश्रेष्ठ नकुल और सहदेव चले ॥७॥

सम्प्रहारमकुर्वंस्ते सर्वे च सुमहारथाः ।
अमर्षिताः सत्त्ववन्तः कृत्वा मरणमग्रतः ॥८॥

ये सारे उत्तम महारथी बड़े बल सम्पन्न और आवेश में भरे हुए थे। इनको मृत्यु की कुछ भी परवाह न थी। ये एकदम धृष्टद्युम्न पर प्रहार करने लगे ॥८॥

शुद्धात्मानः शुद्धवृत्ता राजन्स्वर्गपुरस्कृताः ।
आर्यं युद्धमकुर्वन्त परस्परजिगीषवः ॥९॥

हे राजन्! ये बहुत शुद्ध आत्मा वाले, सदाचारी और युद्ध द्वारा स्वर्ग के अभिलाषी थे। ये दोनों पक्ष के वीर अपनी २ विजय के लिए आर्य-युद्ध करने लगे ॥९॥

शुक्लाभिजनकर्माणो मतिमन्तो जनाधिप ।
धर्मयुद्धमयुध्यन्त प्रेप्सन्तो गतिमुत्तमाम् ॥१०॥

हे जनाधिप! ये बुद्धिमान् अपने २ शुद्ध क्षत्रियकुल के अनुकूल कर्म करने में तत्पर थे और धर्म-युद्ध करते हुए उत्तम गति के अभिलाषी थे ॥१०॥

न तत्राऽऽसीदधर्मिष्ठमशस्तं युद्धमेव च ।
नाऽत्र कर्णी न नालीको न लिप्तो न च वस्तिकः ॥११

न सूची कपिशो नैव न गजास्थिर्गजास्थिजः ।
इषुरासीन्न संश्लिष्टो न पूतिर्न च जिह्मगः ॥१२॥

ऋजून्येव विशुद्धानि सर्वे शस्त्राण्यधारयन् ।
सुयुद्धेन पराँल्लोकानीप्सन्तः कीर्तिमेव च ॥१३॥

इनके युद्ध में कोई अधार्मिकता या अनुचितता नहीं थी, यहां तक कि कर्णी, नालीक, विपलिप्त, वस्तिक, सूची, कपिश, गजास्थि या गज की हड्डी के बनाये हुए तक बाण न थे। न कोई संश्लिष्ट, पूति और तीखा चलने वाला बाण था। उन वीरों ने तो सीधे २ विशुद्ध शस्त्र ही धारण कर रखे थे, क्योंकि ये युद्ध द्वारा इस लोक में कीर्ति और परलोक में गति चाहते थे ॥११-१३॥

तदासीत्तुमुलं युद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
चतुर्णां तव योधानां तैस्त्रिभिः पाण्डवैः सह ॥१४॥

अब इन चार कौरव पक्ष के महारथी (तीन तो धृतराष्ट्र-पुत्र और एक कृतवर्मा) और तीन पाण्डववीर (एक तो धृष्टद्युम्न और दो नकुल सहदेव) में सब दोषों से रहित घोर युद्ध होने लगा ॥१४॥

धृष्टद्युम्नस्तु तान्दृष्ट्वा तव राजन्रथर्षभान् ।
यमाभ्यां वारितान्वीराञ्छीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात् ॥१५

हे राजन्! जब महारथी धृष्टद्युम्न ने देखा, कि तुम्हारे चारों वीरों को नकुल और सहदेव रोक रहे हैं, तो वह शीघ्र २ बाण छोड़ता हुआ द्रोण की ओर झपटा ॥१५॥

निवारितास्तु ते वीरास्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
समसज्जन्त चत्वारो वाताः पर्वतयोरिव ॥१६॥

जब इन दोनों वीर नकुल और सहदेव के द्वारा तुम्हारे चारों वीर रोके गए-तो वे इन दोनों वीरों से इस तरह भिड़ गए-जैसे पर्वत से वायु के झोके टकराते हैं ॥१६॥

द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं रथाभ्यां रथपुङ्गवौ ।
समासक्तौ ततो द्रोणं धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥१७॥

हे राजन् ! अब रथिश्रेष्ठ नकुल और सहदेव, दो कौरव महारथियों से युद्ध करने लगे । यह देखकर धृष्टद्युम्न आगे बढ़कर द्रोणाचार्य से भिड़ गए ॥१७॥

दृष्ट्वा द्रोणाय पाञ्चाल्यं व्रजन्तं युद्धदुर्मदम् ।
यमाभ्यां तांश्च संसक्तांस्तदन्तरमुपाद्रवत् ॥१८॥

दुर्योधनो महाराज किरञ्छोणितभोजनान् ।
तं सात्यकिः शीघ्रतरं पुनरेवाऽभ्यवर्तत ॥१९॥

हे महाराज ! जब राजा दुर्योधन ने देखा, कि हमारे चारों वीरों को दोनों पाण्डववीर नकुल और सहदेव ने रोक लिया है और युद्ध में दुर्मद पञ्चालवीर धृष्टद्युम्न आक्रमण करने को आगे बढ़ गया है, तो वह रक्त के चाट जाने वाले बाणों की झड़ी लगाता हुआ-उनके मध्य में पहुंचा । जब सात्यकि ने यह देखा-तो वह शीघ्रता से आगे बढ़ा ॥१८-१९॥

तौ परस्परमासाद्य समीपे कुरुमाधवौ ।
हसमानौ नृशार्दूलावभीतौ समसज्जताम् ॥२०॥

जब कुरुवंशवीर दुर्योधन और वृष्णिवंशवीर सात्यकि का आमना सामना हुआ, तो वे नरश्रेष्ठ कुछ हंसने लगे और फिर बिल्कुल निडरता के साथ परस्पर युद्ध करने लगे ॥२०॥

बाल्यवृत्तानि सर्वाणि प्रीयमाणौ विचिन्त्य तौ ।
अन्योन्यं प्रेक्षमाणौ च स्मयमानौ पुनः पुनः ॥२१॥

ये बड़े प्रेम से बाल्यावस्था में अपने साथ रहने के वृत्तान्तों का स्मरण कर रहे थे। ये बार २ एक दूसरे को देखते और कुछ २ प्रेम से मुस्कुराते जाते थे ॥२१॥

अथ दुर्योधनो राजा सात्यकिं समभाषत ।
प्रियं सखायं सततं गर्हयन्वृत्तमात्मनः ॥२२॥
धिक् क्रोधं धिक्सखे लोभं धिङ् मोहं धिगमर्षितम् ।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलमौरसम् ॥२३॥
यत्र मामभिसन्धत्से त्वां चाऽहं शिनिपुङ्गव ।

अब राजा दुर्योधन अपने व्यवहार की निन्दा करता हुआ, अपने प्रिय मित्र सात्यकि से कहने लगा—हे शिनिवंशश्रेष्ठ ! मित्र ! सात्यकि ! क्रोध, लोभ, मोह और आवेश को धिक्कार है तथा क्षत्रियधर्म और अपने शरीर बल को भी धिक्कार है, जो तुम मुझसे और मैं तुमसे युद्ध करने खड़ा हो गया हूं ॥२२-२३॥

त्वं हि प्राणैः प्रियतरो ममाऽहं च सदा तव ॥२४॥
स्मरामि तानि सर्वाणि बाल्यवृत्तानि यानि नौ ।
तानि सर्वाणि जीर्णानि साम्प्रतं नो रणाजिरे ॥२५॥
किमन्यत्क्रोधलोभाभ्यां युद्धमेवाऽद्य सात्वत ।

हे सात्वतवंशप्रवीर ! तुम मेरे सदा प्राणों से भी अधिक प्रिय थे और इसी तरह मैं तुम्हारा प्रिय था। जो तुम्हारे और हमारे बाल्य-अवस्था के प्रेम पूर्णव्यवहार थे-वे अभी तक मुझे याद हैं। आज इस रणभूमि में वे सारे व्यवहार छिन्न-भिन्न होकर गल गए। यह युद्ध केवल क्रोध और लोभ के सिवा क्या वस्तु है ॥२५॥

तं तथावादिनं तत्र सात्यकिः प्रत्यभाषत ॥२६॥
प्रहसन्विशिखांस्तीक्ष्णानुद्यम्य परमास्त्रवित् ।
नेयं सभा राजपुत्र नाऽऽचार्यस्य निवेशनम् ॥२७॥
यत्र क्रीडितमस्माभिस्तदा राजन्समागतैः ।

हे राजन ! इस प्रकार कहते हुए राजा दुर्योधन से अस्त्रविद्या में कुशल सात्यकि तीक्ष्ण बाणों को उठाते हुए और कुछ २ मुस्कुराते हुए कहने लगे—हे राज-पुत्र ! यह कोई राजसभा नहीं है और न आचार्य का गुरुकुल है। वह समय गया-जब हम तुम इकट्ठे रह कर वहां खेला करते थे ॥२६-२७॥

दुर्योधन उवाच—

क्व सा क्रीडा गताऽस्माकं बाल्ये वै शिनिपुङ्गव ॥
क्व च युद्धमिदं भूयः कालो हि दुरतिक्रमः ।

किन्तु नो विद्यते कृत्यं धनेन धनलिप्सया ॥२९॥
यत्र युद्ध्यामहे सर्वे धनलोभात्समागताः ।

दुर्योधन ने कहा—हे शिनिपुङ्गव ! तुम देखो-तो सही ? कहां तो वह प्रेमपूर्ण बाल्य अवस्था की अपनी क्रीड़ा और कहां यह भीषण युद्ध; परन्तु क्या किया जावे-काल बड़ा दुरतिक्रम होता है। हम लोगों का इस धन से क्या कार्य सम्पादित होगा-कि जिसके लालच से हम सब लोग इकट्ठे हुए और धन की लालसा से ही इस घोर युद्ध को कर रहे हैं ॥२८-२९॥

सञ्जय उवाच— तं तथावादिनं तत्र राजानं माधवोऽब्रवीत् ॥
एवं वृत्तं सदा क्षात्रं युध्यन्तीह गुरूनपि ।

सञ्जय बोले—हे राजन् ! राजा दुर्योधन ने इतना कहा-तो उससे सात्यकि बोले—हे राजन् ! यह तो क्षत्रियों का धर्म ही है, जो समय पर अपने पूज्य व्यक्तियों से भी लड़ जाना पड़ता है।

यदि तेऽहं प्रियो राजञ्जहि मां मा चिरं कृथाः । ३१॥
त्वत्कृते सुकृतांल्लोकान्गच्छेयं भरतर्षभ ।
या ते शक्तिर्बलं यच्च तत्क्षिप्रं मयि दर्शय ॥३२॥
नेच्छामि तदहं द्रष्टुं मित्राणां व्यसनं महत् ।

हे राजन् ! यदि मैं तुम्हारा प्रियमित्र हूँ-तो तुम मेरा शीघ्र वध करो; जिससे मैं तुम्हारे अनुग्रह से शीघ्र पुण्य लोकों को प्राप्त कर सकूं। हे भरतर्षभ ! जो तुमसें बल और शक्ति है-वह शीघ्र मुझे दिखाओ। अब मैं तो अपने पक्ष की बहुत काल तक विपत्ति देखना नहीं चाहता हूं ॥३१-३२॥

इत्येवं व्यक्तमाभाष्य प्रतिभाष्य च सात्यकिः ॥३३॥
अभ्ययात्तूर्णमव्यग्रो दयां नाऽकुरुताऽऽत्मनि ।

हे राजन् ! इस प्रकार स्पष्ट भाषण करके और राजा दुर्योधन के सन्मुख होकर बड़ी आतुरता के साथ सात्यकि ने राजा दुर्योधन पर आक्रमण किया और उसने अपने ऊपर कुछ भी दया न की अर्थात् अपने बचाने की कुछ भी चेष्टा न की ॥३३॥

तमायान्तं महाबाहुं प्रत्यगृह्णात्तथाऽऽत्मजः ॥३४॥
शरैश्चाऽवाकिरद्राजञ्शैनेयं तनयस्तव ।

हे राजन् ! महाबाहु सात्यकि को झपटता देखकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने भी उसका बाणों से स्वागत किया । उसने अपने बाणों के समूह से शिनि-पौत्र सात्यकि को अत्यन्त आच्छादित कर दिया ॥३४॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः ॥३५॥
अन्योन्यं क्रुद्धयोर्घोरं यथा द्विरदसिंहयोः ।

इसके अनन्तर कुरु और वृष्णिवंश के दो सिंहों में इस तरह घोर युद्ध होने लगा-जैसे क्रोध में भरे हुए दो हाथी और सिंह वन में लड़ते हों ॥३५॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ॥३६॥
दुर्योधनः प्रत्यविध्यत्कुपितो दशभिः शरैः ।

अब पूर्ण शक्ति के द्वारा खैंचे हुए धनुष से छोड़े हुए दश बाणों से क्रोध में भरे हुए राजा दुर्योधन ने युद्धदुर्मद सात्यकि को अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया ॥३६॥

तं सात्यकिः प्रत्यविध्यत्तथैवाऽवाकिरच्छरैः ॥३७॥
पञ्चाशता पुनश्चाऽऽजौ त्रिंशता दशभिश्च ह ।

इधर सात्यकि ने उसी तरह बहुत से बाण छोड़े, प्रथम पचास, फिर दश बाणों से राजा दुर्योधन को घायल कर दिया ॥३७॥

सात्यकिं तु रणे राजन्प्रहसंस्तनयस्तव ॥३८॥
आकर्णपूर्णैर्निशितैर्विव्याध त्रिंशता शरैः ।
ततोऽस्य सशरं चापं क्षुरप्रेण द्विधाऽच्छिनत् ॥३९॥

हे राजन ! अब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने कुछ मुसकुरा कर और कान तक धनुष खैंच कर तीस बाण छोड़े। इसके बाद एक क्षुर के सदृश तीखा बाण छोड़ कर राजा दुर्योधन ने बाण सहित सात्यकि के धनुष के दो टुकड़े कर डाले ॥३८-३९॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय लघुहस्तस्ततो दृढम् ।
सात्यकिर्व्यसृजच्चापि शरश्रेणीं सुतस्य ते ॥४०॥

हे राजन् ! अब युद्ध में शीघ्र हाथ फैंकने में कुशल, सात्यकि ने दूसरा दृढ़ धनुष उठाया और उसके द्वारा शीघ्रता से तुम्हारे पुत्र पर बाण पर बाण छोड़ना आरम्भ किया ॥४०॥

तामापतन्तीं सहसा शरश्रेणीं जिघांसया ।
चिच्छेद बहुधा राजा तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥४१॥

राजा दुर्योधन को मारने को एकदम आती हुई-उस बाण-परम्परा को देखकर कुरुराज ने स्वयं उसके बहुत से टुकड़े कर डाले, जिसे देखकर सारे कौरववीर हर्ष-ध्वनि करने लगे ॥४१॥

सात्यकिं च त्रिसप्तत्या पीडयामास वेगितः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णापूर्णनिःसृतैः ॥४२॥

राजा दुर्योधन ने वेग के साथ कान तक खैंच कर धनुष से छोड़े हुए सुवर्ण मूलधारी, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, तेहत्तर बाणों से सात्यकि को अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥४२॥

तस्य सन्दधतश्चेषुं संहितेषु च कार्मुकम् ।
आच्छिनत्सात्यकिस्तूर्णं शरैश्चैवाऽभ्यवीविधत् ॥४३॥
स गाढविद्धो व्यथितः प्रत्यपायाद्रथान्तरे ।
दुर्योधनो महाराज दाशार्हशरपीडितः ॥४४॥
समाश्वस्य तु पुत्रस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात् ।
विसृजन्निषुजालानि युयुधानरथं प्रति ॥४५॥

हे राजन् ! जब राजा दुर्योधन बाण चढ़ाना चाह रहे थे और वे धनुष पर बाण रख ही रहे थे, कि सात्यकि ने वेग से बाण छोड़कर कुरुराज के धनुष को काट गिराया और उसे बाणों से बींध भी दिया। हे महाराज ! सात्यकि के बाण का गाढ़ा प्रहार पाकर राजा दुर्योधन बड़ा व्यथित हुआ और वह वहां से दूसरे रथ में चला गया। हे राजन् ! सात्यकि के बाण से पीड़ित तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन थोड़ी देर में आश्वासन पाकर फिर सात्यकि की ओर आया। इस समय इसने सात्यकि के रथ पर बाणों की झड़ी लगा दी ॥४३-४५॥

तथैव सात्यकिर्बाणान्दुर्योधनरथं प्रति ।
सततं विसृजन्राजंस्तत्संकुलमवर्तत ॥४६॥

हे राजन्! इसी तरह सात्यकि ने भी राजा दुर्योधन के रथ पर बाण बरसाना आरम्भ किया । लगातार बाण बर्षाने से दुर्योधन का रथ बाणों से आच्छादित हो गया ॥४६॥

तत्रेषुभिः क्षिप्यमाणैः पतद्भिश्च शरीरिषु ।
अग्नेरिव महाकक्षैः शब्दः समभवन्महान् ॥४७॥

इस समय उच्च कोटि के बाण के फेंकने और शरीर पर लगने से इस प्रकार महान् शब्द होने लगा, जैसे अग्नि के जलने पर चटचटा शब्द होता है ॥४७॥

तयोः शरसहस्रैश्च सञ्छन्नं वसुधातलम् ।
अगम्यरूपं च शरैराकाशं समपद्यत ॥४८॥

उनके सहस्रों बाणों से भूतल व्याप्त हो गया और बाणों से आकाश-तल भी बड़ा अगम्य दिखाई देने लगा ॥४८॥

तत्राऽप्यधिकमालक्ष्य माधवं रथसत्तमम् ।
क्षिप्रमभ्यपतत्कर्णः परीप्संस्तनयं तव ॥४९॥

अब महारथी कर्ण ने सात्यकि की ओर दृष्टि उठाई । उसने रथिश्रेष्ठ सात्यकि को दुर्योधन से कुछ अधिक समझा, तो वह तुम्हारे पुत्र की सहायता को वेग से झपटा ॥४९॥

न तु तं मर्षयामास भीमसेनो महाबलः ।
सोऽभ्ययात्त्वरितः कर्णं विसृजन्सायकान्बहून् ॥५०॥

महारथी कर्ण की यह क्रिया महाबली भीमसेन से नहीं सही जा सकी, इससे वह बहुत से बाण बरसाता हुआ वेग से कर्ण की ओर दौड़ा ॥५०॥

तस्य कर्णः शितान्बाणान्प्रतिहन्य हसन्निव ।
धनुः शरांश्च चिच्छेद सूतं चाऽभ्याहनच्छरैः ॥५१॥

हे राजन् ! अब हंसते २ कर्ण ने तीक्ष्ण बाण छोड़े, जिनसे उसने भीमसेन के धनुष-बाण काट डाले और सारथि को भी बहुत घायल कर दिया ॥५१॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामादाय पाण्डवः ।
ध्वजं धनुश्च सूतं च सम्ममर्दाऽऽहवे रिपोः ॥५२॥

इस समय पाण्डु-पुत्र भीमसेन क्रोध में भर गए और उन्होंने गदा उठाई । इस गदा से रण में अपने शत्रुभूत कर्ण की ध्वजा, उसके धनुष और सारथि को कुचल डाला ॥५२॥

रथचक्रं च कर्णस्य बभञ्ज स महाबलः ।
भग्नचक्रं रथेऽतिष्ठदकम्पः शैलराडिव ॥५३॥

इस समय महाबली भीम ने कर्ण के रथ के पहियों को चकनाचूर कर दिया, तो भी कर्ण निष्कम्प पर्वत की भांति टूटे चक्र वाले रथ में ही बैठे रहे ॥५३॥

एकचक्रं रथं तस्य तमूहुः सुचिरं हयाः ।
एकचक्रमिवाऽर्कस्य रथं सप्तहया यथा ॥५४॥

अब कर्ण के रथ में केवल एक ही पहिया रह गया था-तो भी उसके अश्व उसे बहुत देर तक इस तरह चलाते रहे, जैसे सूर्य के एक चक्र के रथ को सूर्य के सात अश्व चलाते रहते हैं।

अमृष्यमाणः कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत।
विविधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥५५॥

कर्ण, भीमसेन की इस चेष्टा को नहीं सह सके। उन्होंने अनेक प्रकार के बाण और अस्त्र शस्त्रों से रण में भीमसेन से लड़ना आरम्भ किया ॥५५॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धः सूतपुत्रमयोधयत्।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने क्रुद्धो धर्मसुतोऽब्रवीत् ॥५६॥
पञ्चालानां नरव्याघ्रान्मत्स्यांश्च पुरुषर्षभान्।
ये नः प्राणाः शिरो ये च ये नो योधा महारथाः ॥
त एते धार्तराष्ट्रेषु विषक्ताः पुरुषर्षभाः।
किं तिष्ठत यथा मूढाः सर्वे विगतचेतसः ॥५८॥
तत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका रथाः।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य सर्व एव गतज्वराः ॥५९॥
जयन्तो वध्यमानाश्च गतिमिष्टां गमिष्यथ।

अब भीमसेन भी कुपित हो रहे थे-इससे सूत-पुत्र कर्ण से घोर युद्ध में प्रवृत्त थे। इसी बीच में क्रोधातुर होकर धर्म-पुत्र युधिष्ठिर ने पञ्चालों के नर-व्याघ्र और मत्स्यदेश के महारथियों से कहा-कि जो हमारे प्राण, शिर और सर्वश्रेष्ठ योद्धा महारथी

हैं, वे सारे पुरुषप्रवीर ही युद्ध में जुटे हुए हैं। अब तुम लोग चेष्टाहीन हुए मूर्ख की भांति कैसे स्थित हो रहे हो। तुम शीघ्र वहीं पहुँचो-जहां हमारे ये महारथी क्षत्रियधर्म को प्रधान मानकर और सब प्रकार की चिन्ता छोड़कर युद्ध कर रहे हैं। यदि तुम लोग विजयी हो गए या मारे गए, तो दोनों ही तरह अभीष्ट गति को प्राप्त करोगे ॥५६-५६॥

जित्वा वा बहुभिर्यज्ञैर्यजध्वं भूरिदक्षिणैः ॥६०॥
हता वा देवसाद्भूत्वा लोकान्प्राप्स्यथ पुष्कलान् ।

यदि तुम विजयी हो गए-तो बड़ी २ दक्षिणा वाले यज्ञों से ईश्वर की पूजा करना और यदि मारे गए-तो देव बनकर उत्तम लोकों को प्राप्त करना ॥६०॥

ते राज्ञा चोदिता वीरा योत्स्यमाना महारथाः ॥६१॥
क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य त्वरिता द्रोणमभ्ययुः ।

हे राजन् ! इस प्रकार धर्मराज द्वारा प्रेरित किये हुए युद्ध तत्पर पाण्डव महारथी, क्षात्रधर्म को प्रधान मानकर वेग से द्रोणाचार्य पर झपटे ॥६१॥

पाञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः ॥६२॥
भीमसेनपुरोगाश्चाऽप्येकतः पर्यवारयन् ।

अब एक ओर से तो द्रोणाचार्य पर पञ्चालवीर प्रहार कर रहे थे और दूसरी ओर से तीक्ष्ण बाणों द्वारा भीमसेन आदि द्रोणाचार्य को घायल कर रहे थे ॥६२॥

आसंस्तु पाण्डुपुत्राणां त्रयो जिह्मा महारथाः ॥६३॥

यमौ च भीमसेनश्च प्राक्रोशंस्ते धनञ्जयम् ।

अभिद्रवाऽर्जुन क्षिप्रं कुरून्द्रोणादपानुद ॥६४॥

तत एनं हनिष्यन्ति पञ्चाला हतरक्षिणम् ।

हे राजन् ! इस समय कुटिल पाण्डवों के ये तीनों महारथी, भीम, नकुल और सहदेव, धनञ्जय अर्जुन को पुकारने लगे । हे अर्जुन ! तुम शीघ्र दौड़ो और इन कौरवों को शीघ्र द्रोणाचार्य के समीप से हटा दो । यदि इसके रक्षक कौरववीर मार लिए गए, तो फिर पञ्चाल शीघ्र ही द्रोणाचार्य को मार लेंगे ॥६३-६४॥

कौरवेयांस्ततः पार्थः सहसा समुपाद्रवत् ॥६५॥

पञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ।

ममर्दुस्तरसा वीराः पञ्चमेऽहनि भारत ॥६६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८९॥

भीमसेन आदि के इस आह्वान को सुनकर कुन्ती-पुत्र अर्जुन, कौरवों पर झपटे और उधर द्रोणाचार्य, धृष्टद्युम्न आदि पंचालों की ओर लपके । हे भारत ! यह द्रोणाचार्य के युद्ध का पांचवाँ दिन था । इस दिन सारे वीर बड़े वेग से एक दूसरे का विनाश करने लगे ॥६५-६६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणवधपर्व में दुःशासन धृष्टद्युम्न आदि के युद्ध के वर्णन का एक सौ नवासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

एक सौ नव्वेवां अध्याय

सञ्जय उवाच— पाञ्चालानां ततो द्रोणोऽप्यकरोत्कदनं महत्।
यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा ॥१॥
द्रोणास्त्रेण महाराज वध्यमानाः परे युधि।
नाऽत्रसन्त रणे द्रोणात्सत्त्ववन्तो महारथाः ॥२॥

सञ्जय कहने लगे—हे महाराज! इस युद्ध में आचार्य द्रोण ने पञ्चालों का विध्वंस कर डाला, जैसे पूर्वकाल में क्रोध में भरे हुए इन्द्र ने रण में दानवों का विनाश कर डाला था, परन्तु जो पञ्चाल महारथी आत्मबल रखते थे, वे द्रोणाचार्य के अस्त्र से क्षत-विक्षत होकर भी उससे कुछ भयभीत नहीं हुए ॥१-२॥

युध्यमाना महाराज पाञ्चालाः सृञ्जयास्तथा।
द्रोणमेवाऽभ्ययुर्युद्धे योधयन्तो महारथाः ॥३॥

हे राजन्! इस समय पञ्चाल और सृञ्जयवीर, कौरव महारथियों से युद्ध करते जाते थे, परन्तु उनसे युद्ध करते हुए भी पञ्चाल महारथी इस युद्ध में द्रोणाचार्य पर झपटने की ही चेष्टा कर रहे थे ॥३॥

तेषां तु च्छाद्यमानानां पाञ्चालानां समन्ततः ।

अभवद्भैरवो नादो वध्यतां शरवृष्टिभिः ॥४॥

द्रोणाचार्य आदि वीरों की बाण-वर्षा से आच्छादित हुए, इस समय पञ्चालवीरों में महान् आर्तनाद उठ खड़ा हुआ ॥४॥

वध्यमानेषु संग्रामे पञ्चालेषु महात्मना ।

उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान्भयमाविशत् ॥५॥

इस घोर युद्ध में महात्मा द्रोणाचार्य द्वारा जब पञ्चालों को अत्यन्त ताड़न किया गया और द्रोणाचार्य का अस्त्र देदीप्यमान हुआ, तो पाण्डववीरों को अत्यन्त भय आविष्ट हो गया ॥५॥

दृष्ट्वाऽश्वनरयोधानां विपुलं च क्षयं युधि ।

पाण्डवेया महाराज नाऽऽशशंसुर्जयं तदा ॥७॥

हे महाराज ! जब इस समय पाण्डवों ने अपने अश्व, नर योद्धाओं का यह महान् विनाश देखा-तो पाण्डु-पुत्र धर्मराज आदि को अपनी विजय में आशा न रही ॥६॥

कच्चिद् द्रोणो न नः सर्वान्क्षपयेत्परमास्त्रवित् ।

समिद्धः शिशिरापाये दहन्कक्षमिवाऽनलः ।.७॥

इस समय तो सबको यही आशङ्का हो रही थी, कि ग्रीष्म ऋतु में प्रज्वलित अग्नि, जैसे-तृण की ढेरी को भस्म कर देता है, इसी तरह कहीं अस्त्रविद्या में अत्यन्त कुशल द्रोणाचार्य, हम सब लोगों को भस्म न कर डाले ॥७॥

न चैनं संयुगे कश्चित्समर्थः प्रतिवीक्षितुम् ।
न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत धर्मवित् ॥८॥

इस समय कोई भी पाण्डव महारथी युद्ध में द्रोणाचार्य की ओर देखने में समर्थ नहीं हो सकता है और धर्मात्मा अर्जुन कभी द्रोणाचार्य से युद्ध नहीं करेंगे ॥८॥

त्रस्तान्कुन्तीसुतान्दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान् ।
मतिमाञ्श्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥९॥

द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित, कुन्ती-पुत्र पाण्डवों को व्याकुल देखकर उनके कल्याण के अभिलाषी भगवान् कृष्ण, अर्जुन से कहने लगे ॥९॥

नैष युद्धेन संग्रामे जेतुं शक्यः कथञ्चन ।
सधनुर्धन्विनां श्रेष्ठो देवैरपि सवासवैः ॥१०॥
न्यस्तशस्त्रस्तु संग्रामे शक्यो हन्तुं भवेन्नृभिः ।
आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः ॥११॥
यथा नः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ।

हे अर्जुन ! यदि कोई भी उत्तम धनुर्धर वीर संग्राम में इन्द्र सहित देवों को भी साथ ले ले-तो भी युद्ध द्वारा द्रोणाचार्य के जीतने में समर्थ नहीं हो सकता है। यदि यह शस्त्र छोड़कर संग्राम में स्थित हो जावे-तो इसे कोई भी मार सकता है। हे पाण्डवो ! अब तुम युद्ध के धर्मों को छोड़कर-विजय का उपाय करो, जिससे

यह स्वर्णमय रथ में स्थित, द्रोणाचार्य, हम सबको रण में मार न लेवे ॥१०-११॥

अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ॥१२॥
तं हतं संयुगे कश्चिदस्मै शंसतु मानवः ।

अश्वत्थामा मारा गया-यह सूचित करने पर यह युद्ध नहीं करेगा-ऐसी मेरी धारणा है, इससे कोई मनुष्य जाकर उसको यह समाचार सुना आवे ॥१२॥

एतन्नाऽरोचयद्राजन्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥१३॥
अन्ये त्वरोचयन्सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ।

हे राजन्! श्रीकृष्ण की इस सम्मति का अर्जुन ने अनुमोदन नहीं किया और अन्य सारे वीरों ने इसका बड़ा स्वागत किया। राजा युधिष्ठिर ने भी जैसे-तैसे समझाने पर इस बात को मान लिया ॥१३॥

ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम् ॥१४॥
जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत ।
परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥१५॥

हे राजन! इसी समय महाबाहु, भीमसेन ने अपने सामने युद्ध करती हुई सेना में एक अश्वत्थामा नामक मालवराज, इन्द्रवर्मा के शत्रुनाशक हाथी को गदा से मार गिराया ॥१४-१५॥

भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे ।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ॥१६॥

हे राजन्! अब रण में भीमसेन कुछ लज्जित होता हुआ द्रोणाचार्य के पास पहुंचा और कहने लगा, कि तुम्हारा पुत्र अश्वत्थामा मारा गया ॥१६॥

अश्वत्थामेति हि गजः ख्यातो नाम्ना हतोऽभवत् ।
कृत्वा मनसि तं भीमो मिथ्या व्याहृतवांस्तदा ॥१७॥

इस समय एक अश्वत्थामा नामक प्रसिद्ध हाथी मारा गया था, उसी को ध्यान में रखकर भीम ने यह मिथ्या बोल दिया ॥१७॥

भीमसेनवचः श्रुत्वा द्रोणस्तत्परमाप्रियम् ।
मनसा सन्नगात्रोऽभूद्यथा सैकतमम्भसि ॥१८॥

भीमसेन के बड़े अप्रिय वचन को सुनकर द्रोणाचार्य मन ही मन में बड़ा क्लेशित हुआ, जैसे पानी में बालुका दब जाती है-इसी तरह द्रोणाचार्य का शरीर शून्य पड़ता चला गया ॥१८॥

शङ्कमानः स तन्मिथ्या वीर्यज्ञः स्वसुतस्य वै ।
हतः स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत ॥१९॥

द्रोणाचार्य समझ गया, कि यह बात मिथ्या है, क्योंकि वह अपने पुत्र अश्वत्थामा के पराक्रम को जानता था । अश्वत्थामा मारा गया-यह सुनकर भी वह धैर्य के कारण विचलित नहीं हुआ ।

स लब्ध्वा चेतनां द्रोणः क्षणेनैव समाश्वसत् ।
अनुचिन्त्याऽऽत्मनः पुत्रमविषह्यमरातिभिः ॥२०॥

इस समय द्रोणाचार्य ने अपनी चेतनता सम्हाली और वह क्षण भर में आश्वासन युक्त हो गया, क्योंकि वह अपने पुत्र को शत्रुओं द्वारा मारा जाना असम्भव समझता था ॥२०॥

स पार्षतमभिद्रुत्य जिघांसुर्मृत्युमात्मनः ।
अवाकिरत्सहस्रेण तीक्ष्णानां कङ्कपत्रिणाम् ॥२१॥

अपने मृत्यु भूत धृष्टद्युम्न के मारने की अभिलाषा से द्रोणाचार्य ने पर्षतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न पर आक्रमण किया और उसने कङ्कपत्रधारी सहस्रों तीक्ष्ण बाण उस पर छोड़े ॥२१॥

तं विंशतिसहस्राणि पाञ्चालानां नरर्षभाः ।
तथा चरन्तं संग्रामे सर्वतोऽवाकिरञ्छरैः ॥२२॥

इस प्रकार संग्राम में निर्भीक घूमते हुए द्रोणाचार्य पर पञ्चालों के वीरों ने बीस सहस्र बाण छोड़े, जिनसे उन्होंने सब ओर से उसे आच्छादित किया ॥२२॥

शरैस्तैराचितं द्रोणं नाऽपश्याम महारथम् ।
भास्करं जलदै रुद्धं वर्षास्विव विशाम्पते ॥२३॥

हे विशाम्पते ! उन पञ्चालवीरों के बाणों से आच्छादित महारथी द्रोणाचार्य को इस समय कोई इस तरह नहीं देख सके-जैसे वर्षाकाल में मेघों में छुपे हुए सूर्य को कोई नहीं देख सकता है।

विधूय तान्बाणगणान्पाञ्चालानां महारथः ।
प्रादुश्चक्रे ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परन्तपः ॥२४॥
वधाय तेषां शूराणां पाञ्चालानाममर्षितः ।
ततो व्यरोचत द्रोणो विनिघ्नन्सर्वसैनिकान् ॥२५॥
शिरांस्यपातयच्चापि पाञ्चालानां महामृधे ।
तथैवा परिघाकारान्बाहून्कनकभूषणान् ॥२६॥

अब शत्रुतापी महारथी द्रोणाचार्य ने पञ्चालवीरों के उस बाणसमूह का नाश करके ब्रह्मास्त्र का प्रादुर्भाव किया। इस समय द्रोणाचार्य सारे सैनिकों का विध्वंस करता हुआ बहुत प्रभावशाली दिखाई दिया। वह सारे पञ्चालवीरों के वध के लिए बहुत ही आवेश में भरा हुआ था। इसने इस घोर युद्ध में पञ्चालों के बहुत से मस्तक और परिघाकार सुवर्णाभरणों से युक्त भुजाओं को काट काट कर रणभूमि में गिरा दिया ॥२४-२६॥

ते वध्यमानाः समरे भारद्वाजेन पार्थिवाः।
मेदिन्यामन्वकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥२७॥

भरद्वाज वंशोद्भव द्रोणाचार्य द्वारा मारे हुए राजा लोग रणभूमि में इस तरह पड़े हुए दिखाई दिए-जैसे वायु से उखाड़े हुए वृक्ष बिखरे पड़े हों ॥२७॥

कुञ्जराणां च पततां हयौघानां च भारत।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥२८॥

हे भारत! गिरते हुए हाथी और अश्वसमूह के कारण रणभूमि बहुत ही अगम्य हो गई थी, इस पर भी इसमें मांस और रक्त की कीचड़ मची हुई थी ॥२८॥

हत्वा विंशतिसाहस्रान्पाञ्चालानां रथव्रजान्।
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥२६॥

इस समय तक आचार्य द्रोण ने पाञ्चालों के बीस हजार रथी मार गिराये थे। अब वे धूमरहित अग्नि के तुल्य प्रज्वलित हुए रण में खड़े थे ॥२६॥

तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥३०॥

अब महाप्रतापी भरद्वाज-पुत्र और भी अधिक झल्ला गए और उन्होंने एक भल्ल संज्ञक बाण छोड़कर राजा वसुदान के मस्तक को शरीर से पृथक् कर दिया ॥३०॥

पुनः पञ्चशतान्मत्स्यान्षट्सहस्रांश्च सृञ्जयान् ।
हस्तिनामयुतं हत्वा जघानाऽश्वायुतं पुनः ॥३१॥

द्रोणाचार्य ने फिर पांच सौ मत्स्यवीर, छः हजार सृञ्जय योद्धा और दश हजार हाथी और अश्व मार गिराए ॥३१॥

क्षत्रियाणामभावाय दृष्ट्वा द्रोणमवस्थितम् ।
ऋषयोऽभ्यागतास्तूर्णं हव्यवाहपुरोगमाः ॥३२॥

इस तरह क्षत्रिय-जाति के अभाव में प्रवृत्त द्रोणाचार्य को देख कर बहुत से ऋषि, अग्निदेव को आगे करके वहां पहुंचे ॥३२॥

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च ब्रह्मलोकं निनीषवः ॥३३॥
सिकताः पृश्नयो गर्गा वालखिल्या मरीचिपाः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव सूक्ष्माश्चाऽन्ये महर्षयः ॥३४॥
त एनमब्रुवन्सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम् ।

विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, सिकत, पृश्नि, गर्ग, वालखिल्य, मरीचिप, भृगु, अङ्गिरा गोत्री तथा अन्य सूक्ष्म महर्षि, द्रोणाचार्य को ब्रह्मलोक ले जाने की इच्छा से

वहां आकर उपस्थित हुए। वे सारे युद्ध में सुशोभित द्रोणाचार्य से कहने लगे ॥३३-३४॥

अधर्मतः कृतं युद्धं समयो निधनस्य ते ॥३५॥
न्यस्याऽऽयुधं रणे द्रोण समीक्षाऽस्मानवस्थितान्।
नाऽतः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्तुमिहाऽर्हसि ॥६३॥
वेदवेदाङ्गविदुषः सत्यधर्मरतस्य ते।
ब्राह्मणस्य विशेषेण तवैतन्नोपपद्यते ॥३७॥

हे द्रोण! तुम अधर्म पूर्ण पक्ष की ओर से युद्ध कर रहे हो। अब तुम्हारा मृत्युकाल उपस्थित हो गया है। अब तुम रण में शस्त्र छोड़कर हमारी ओर देखो। हम तुम्हारे लिए ही उपस्थित हैं। तुमको इस क्षण से आगे फिर ऐसा क्रूर कर्म नहीं करना चाहिए। तुम तो वेद और वेदाङ्ग के ज्ञाता तथा सत्य धर्म में परायण हो। तुम तो विशेष रूप से ब्रह्मज्ञानी हो-तुमको इस मारकाट के झगड़े में नहीं फंसना चाहिए ॥३५-३७॥

त्यजाऽऽयुधममोघेषो तिष्ठ वर्त्मनि शाश्वते।
परिपूर्णश्च कालस्ते वस्तुं लोकेऽद्य मानुषे ॥३८॥

हे सफलबाणधारिन्! द्रोण! तुम शस्त्र फेंको और अपने सनातन मार्ग में स्थित हो जाओ। आज तुम्हारा मृत्युलोक में निवास करने का काल पूरा हो चुका है ॥३८॥

ब्रह्मास्त्रेण त्वया दग्धा अनस्त्रज्ञा नरा भुवि।
यदेतदीदृशं विप्र कृतं कर्म न साधु तत् ॥३९॥

तुमने अपने ब्रह्मास्त्र से अस्त्रज्ञान हीन बहुत से मनुष्यों को मार गिराए हैं। हे द्विज ! यह जो तुमने कर्म कर डाला-यह काम अच्छा नहीं किया ॥३६॥

न्यस्याऽऽयुधं रणे विप्र द्रोण मा त्वं चिरं कृथाः ।
मा पापिष्ठतरं कर्म करिष्यसि पुनर्द्विज ॥४०॥

वे द्विजश्रेष्ठ ! द्रोणाचार्य ! तुम रण में शस्त्र छोड़ दो-देर का काम नहीं है। हे द्विज ! अब से आगे तुम इस महापाप पूर्ण कर्म के करने की इच्छा भी न करना ॥४०॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा भीमसेनवचश्च तत् ।
धृष्टद्युम्नं च सम्प्रेक्ष्य रणे स विमनाऽभवत् ॥४१॥

इन ऋषियों और भीमसेन के वचन सुनकर तथा धृष्टद्युम्न को अपने सन्मुख देखकर द्रोणाचार्य रण में कुछ उदासीन हो गए ॥४१॥

सन्दिह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अहतं वा हतं वेति पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥४२॥

द्रोणाचार्य को अपने पुत्र की मृत्यु का कुछ सन्देह हो रहा था-इससे वह दुःखी था। उसने अपने पुत्र अश्वत्थामा के विषय में कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर से पूछा-कि अश्वत्थामा मारा गया या नहीं ॥४२॥

स्थिरा बुद्धिर्हि द्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतम् ।
त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थे कथञ्चन ॥४३॥

तस्मात्तं परिपप्रच्छ नाऽन्यं कञ्चिद् द्विजर्षभः ।
तस्मिंस्तस्य हि सत्याशा बाल्यात्प्रभृति पाण्डवे ॥४४॥

द्रोणाचार्य की यह स्थिर बुद्धि थी, कि धर्मराज, को त्रिलोकी का राज्य भी मिले-तो भी कभी मिथ्या नहीं बोलेगा-इसीलिए द्विजश्रेष्ठ, द्रोण ने राजा युधिष्ठिर से यह पूछा था । अन्य से उसने इस बात को नहीं पूछा। वह पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर को बचपन से जानता था। उसके सत्य बोलने की उसे बहुत ही अधिक आशा थी॥४३-४४॥

ततो निष्पाण्डवामुर्वीं करिष्यन्तं युधाम्पतिम् ।
द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत् ॥४५॥
यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः ।
सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति ॥४६॥

पाण्डवों से रहित भूमि के करने के प्रयत्न में प्रवृत्त, योद्धाओं में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य को जान कर व्यथापूर्ण चित्तवाले भगवान् कृष्ण ने धर्मराज से कहा—हे धर्मराज ! यदि इसी तरह दोपहर दिन चढ़े तक द्रोणाचार्य क्रोध में स्थित होकर युद्ध करता रहा-तो मैं तुमसे सत्य कहता हूं-तुम्हारी सारी सेना नष्ट हो जावेगी॥४६॥

स भवांस्त्रातु नो द्रोणात्सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः ।
अनृतं जीवितस्याऽर्थे वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः ॥४७॥

अब तुम हमारी द्रोण से रक्षा करो-इस समय मिथ्या बोलना ही सत्य की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। जो अपने प्राणों की रक्षा के

निमित्त असत्य बोलता है-वह मिथ्या-भाषण के दोष से लिप्त नहीं होता है ॥४७॥

तयोः संवदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ॥४८॥
श्रुत्वैवं तु महाराज वधोपायं महात्मनः ।
गाहमानस्य ते सेनां मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥४९॥
अश्वत्थामेति विख्यातो गजः शक्रगजोपमः ।
निहतो युधि विक्रम्य ततोऽहं द्रोणमब्रुवम् ॥५०॥
अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्तस्वाऽऽहवादिति ।
नूनं नाऽश्रद्दधद्वाक्यमेष मे पुरुषर्षभः ॥५१॥

ये दोनों इस तरह बातें कर ही रहे थे, कि इनके बीच में आकर भीमसेन ने कहा—हे महाराज ! मैंने जब महात्मा द्रोणाचार्य के वध का यह उपाय सुना, तो तुम्हारी सेना को आलोडन करने वाले मालवराज इन्द्रवर्मा का इन्द्र के हाथी के तुल्य एक विख्यात हाथी था, जिसे मैंने पराक्रम करके मार गिराया और द्रोणाचार्य से कहा—हे ब्रह्मन् ! अश्वत्थामा मारा गया; अब तो तुम युद्ध से निवृत्त हो जाओ। परन्तु इस पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया ॥४८-५१॥

स त्वं गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः ।
द्रोणाय निहतं शंस राजञ्शारद्वतीसुतम् ॥५२॥

हे राजन् ! अब तुम विजय दिलाने के प्रयत्न में संलग्न श्रीकृष्ण के इन वचनों को मान लो और द्रोणाचार्य से शारद्वती-सुत अश्वत्थामा के मरने की बात कह दो ॥५२॥

त्वयोक्तो नैव युध्येत जातु राजन्द्विजर्षभः ।
सत्यवान्हि त्रिलोकेऽस्मिन्भवान्ख्यातो जनाधिप ॥५३॥

हे राजन् ! यदि तुमने कह दिया-तो यह द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य कभी युद्ध नहीं करेगा । हे जनाधिप ! तुम त्रिलोकी में सत्यवादी नाम से प्रसिद्ध हो ॥५३॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः ।
भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ५४॥

हे महाराज ! श्रीकृष्ण के वचनों से प्रेरित धर्मराज, भीमसेन के वचन सुनकर और होनहार को प्रबल मान कर उस वचन के कहने को उद्यत हो गया ॥५४॥

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
अव्यक्तमब्रवीद्राजन्हतः कुञ्जर इत्युत ॥५५॥

हे राजन् ! अब एक ओर तो राजा युधिष्ठिर को असत्य भाषण से भय है और दूसरी ओर विजय प्राप्त करना आवश्यक है । यह सोचकर उसने कुछ अस्पष्ट रूप में कहा, कि अश्वत्थामा नाम का हाथी मारा गया है ॥५५॥

तस्य पूर्वं रथः पृथ्व्याश्चतुरंगुलमुच्छ्रितः ।
बभूवैवं च तेनोक्ते तस्य वाहाः स्पृशन्महीम् ॥५६॥

राजा युधिष्ठिर का रथ इससे पूर्व पृथिवी से चार अंगुल ऊंचा चला करता था, परन्तु इस बात के कहने से उसके अश्व पृथिवी पर चलने लगे ॥५६॥

युधिष्ठिरात्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः ।
पुत्रव्यसनसन्तप्तो निराशो जीवितेऽभवत् ॥५७॥

महारथी द्रोण ने राजा युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर पुत्र के मरण से दुःखी होकर अपने जीवन की आशा छोड़ दी ।

आगस्कृतमिवाऽऽत्मानं पाण्डवानां महात्मनाम् ।
ऋषिवाक्येन मन्वानः श्रुत्वा च निहतं सुतम् ॥५८॥
विचेताः परमोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्ष्य च ।
योद्धुं नाऽशक्नुवद्राजन्यथापूर्वमरिन्दमः ॥५९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि युधिष्ठिरासत्यकथने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९०॥

एक तो द्रोणाचार्य, उन पूर्वोक्त ऋषियों के कथन से महात्मा पाण्डवों का अपने को अपराधी समझने लगा और दूसरे उसने अपने पुत्र अश्वत्थामा के मरने की बात सुनी । हे राजन् ! इस समय वे सेनापति धृष्टद्युम्न को देखकर बड़े ही उद्विग्न और दुःखी हुए और अरिमर्दन आचार्य द्रोण पूर्व की तरह वेग से युद्ध करने में प्रवृत्त नहीं हो सके ॥५८-५९॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणवधपर्व में युधिष्ठिर के असत्य कथन का एक सौ नव्वेवां अध्याय समाप्त हो गया ।

एक सौ इक्यानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम् ।
पञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नः समाद्रवत् ॥१॥
य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण द्रुपदेन महामखे ।
लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धाद्धव्यवाहनात् ॥२॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! द्रोणाचार्य को अत्यन्त उद्विग्न और शोकातुर देखकर पञ्चालराज द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने उन पर आक्रमण किया । यह वही धृष्टद्युम्न है, जिसको राजा द्रुपद ने अपने महायज्ञ में प्रज्वलित अग्नि से द्रोण के विनाश के लिए उत्पन्न किया था ॥१-२॥

स धनुर्जैत्रमादाय घोरं जलदनिःस्वनम् ।
दृढज्यमजरं दिव्यं शरं चाऽऽशीविषोपमम् ॥३॥
सन्दधे कार्मुके तस्मिंस्ततस्तमनलोपमम् ।
द्रोणं जिघांसुः पाञ्चाल्यो महाज्वालमिवाऽनलम् ॥

हे राजन् ! धृष्टद्युम्न ने मेघ की ध्वनि के तुल्य, ध्वनि करने वाले एक घोर विजयशाली धनुष को उठाया, जिसकी प्रत्यञ्चा बड़ी दृढ़ थी और जो किसी तरह भी टूटने वाली नहीं थी । उस धनुष पर उसने सूर्य के तुल्य भीषण बाण चढ़ाया । यह बाण प्रदीप्त ज्वालाओं से युक्त अग्नि की तरह भीषण और अग्नि के

समान ही चमकने वाला था। जिसे पाञ्चालवीर धृष्टद्युम्न न द्रोणाचार्य के वध के निमित्त धनुष पर चढ़ाया था॥३-४॥

तस्य रूपं शरस्याऽऽसीद्धनुर्ज्यामण्डलान्तरे ।
द्योततो भास्करस्येव घनान्ते परिवेषिणः ॥५॥

इस समय धनुष की प्रत्यञ्चा पर चढ़े हुए उस बाण का आकार ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मण्डल बनाये हुए सूर्य का बादलों के मध्य में स्वरूप प्रदीप्त होता है ॥५॥

पार्षतेन परामृष्टं ज्वलन्तमिव तद्धनुः ।
अन्तकालमनुप्राप्तं मेनिरे वीक्ष्य सैनिकाः ॥६॥

पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न द्वारा खैंचे हुए प्रज्वलित धनुष को देखकर सारे सैनिकों ने उसे द्रोणाचार्य का प्राप्त हुआ काल सा अनुभव किया ॥६॥

तमिषुं संहितं तेन भारद्वाजः प्रतापवान् ।
दृष्ट्वाऽमन्यत देहस्य कालपर्यायमागतम् ॥७॥

महाप्रतापी भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य, धृष्टद्युम्न द्वारा चढ़ाए हुए इस बाण को देखकर समझ गए, कि अब मेरी देह के बदलने का समय आ गया है ॥७॥

ततः प्रयत्नमातिष्ठदाचार्यस्तस्य वारणे ।
न चाऽस्याऽस्त्राणि राजेन्द्र प्रादुरासन्महात्मनः ॥८॥

हे राजेन्द्र ! अब आचार्य द्रोण ने इस धृष्टद्युम्न के बाण के रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु महात्मा द्रोणाचार्य के समीप इस समय दिव्य अस्त्र भी उपस्थित नहीं हुए ॥८॥

तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकाऽस्यतो गता ।
तस्य चाऽह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्रिणः ॥६॥

द्रोणाचार्य लगातार चार दिन और एक रात तक बाण फैंकते रहे। आज दिन के तीन भाग व्यतीत होने पर उनके सारे बाण समाप्त हो गए ॥६॥

स शरक्षयमासाद्य पुत्रशोकेन चाऽर्दितः ।
विविधानां च दिव्यानामस्त्राणामप्रसादतः ॥१०॥
उत्स्रष्टुकामः शस्त्राणि ऋषिवाक्यप्रचोदितः ।
तेजसा पूर्यमाणश्च युयुधे न यथा पुरा ॥११॥

इधर तो द्रोणाचार्य के बाण बीत गए-दूसरी ओर वे पुत्र के शोक से आतुर हो रहे थे तथा इस समय अनेक दिव्य अस्त्र भी इनको धोखा दे चुके थे। अब इन्होंने ऋषियों के वाक्य मान कर अपने शस्त्र छोड़ देने चाहे; यद्यपि ये तेज से परिपूर्ण थे, तो भी पूर्वकाल की भांति युद्ध करने में समर्थ नहीं थे ॥१०-११॥

भूयश्चाऽन्यत्समादाय दिव्यमाङ्गिरसं धनुः ।
शरांश्च ब्रह्मदण्डाभान्धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १२ ॥

इस दशा में भी द्रोणाचार्य ने दिव्य आङ्गिरस दूसरा धनुष उठाया और उस पर ब्रह्म-दण्ड के समान भीषण बाण चढ़ाकर धृष्टद्युम्न से युद्ध करना आरम्भ किया ॥१२॥

ततस्तं शरवर्षेण महता समवाकिरत् ।
व्यशातयच्च संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ १३ ॥

शरांश्च शतधा तस्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।
ध्वजं धनुश्च निशितैः सारथिं चाऽप्यपातयत् ॥१४॥

अब आचार्य द्रोण ने बड़े भारी बाणों की झड़ी लगा दी और क्रोधातुर होकर असहनशील धृष्टद्युम्न को बुरी तरह छेद डाला। इन्होंने धृष्टद्युम्न के बाण भी अपने बाणों से सैंकड़ों खण्डों में खण्डित कर दिए और तीक्ष्ण बाणों से उसके धनुष, ध्वजा और सारथि को नीचे गिरा दिया ॥१३-१४॥

धृष्टद्युम्नः प्रहस्याऽन्यत्पुनरादाय कार्मुकम् ।
शितेन चैनं बाणेन प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥१५॥

अब पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न ने हंसते २ दूसरा धनुष ग्रहण किया और उस पर एक तीक्ष्ण बाण चढ़ा कर उसकी छाती में तीक्ष्ण आघात किया ॥१५॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासोऽसम्भ्रान्त इव संयुगे ।
भल्लेन शितधारेण चिच्छेदाऽस्य पुनर्धनुः ॥१६॥

यद्यपि इस बाण से महाधनुर्धर द्रोण बहुत ही आहत हुए-तो भी वे रण में बिना किसी घबराहट के स्थित ही रहे और एक तीक्ष्ण भल्ल नामक बाण छोड़कर फिर धनुष काट गिराया ॥१६॥

यच्चाऽस्य बाणविकृतं धनूंषि च विशाम्पते ।
सर्वं चिच्छेद दुर्धर्षो गदां खड्गं च वर्जयन् ॥१७॥

हे विशाम्पते ! इस समय जो कुछ भी बाणसमूह और धनुष धृष्टद्युम्न के पास थे; दुर्धर्ष आचार्य ने वे सब काट डाले। अब

तो केवल धृष्टद्युम्न के पास एक गदा और तलवार ही बची रह गई थी ॥१७॥

धृष्टद्युम्नं च विव्याध नवभिर्निशितैः शरैः।
जीवितान्तकरः क्रुद्धः क्रुद्धरूपः परन्तपः ॥१८॥

अथ धृष्टद्युम्न के जीवन का अन्त करने के अभिलाषी, क्रोधातुर, काल के समान भीषण शत्रुनाशक द्रोणाचार्य ने नौ तीक्ष्ण बाण छोड़कर धृष्टद्युम्न को बींध डाला ॥१८॥

धृष्टद्युम्नोऽथ तस्याऽश्वान्स्वरथाश्वैर्महारथः।
व्यामिश्रयदमेयात्मा ब्राह्ममस्त्रमुदीरयन् ॥१९॥

अपरिमित बलशाली महारथी धृष्टद्युम्न ने अपने रथ के अश्वों से द्रोणाचार्य के अश्वों को टकराकर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया।

ते मिश्रा बह्वशोभन्त जवना वातरंहसः।
पारावतसवर्णाश्च शोणाश्च भरतर्षभ ॥२०॥

हे भरतर्षभ! ये परस्पर गुत्थम-गुत्था हुए कबूतर के वर्ण के समान वेगशाली धृष्टद्युम्न के अश्व और वायु के तुल्य वेग वाले लाल वर्णधारी द्रोण के अश्व बड़े ही सुशोभित हुए ॥२०॥

यथा सविद्युतो मेघा नन्दतो जलदागमे।
तथा रेजुर्महाराज मिश्रिता रणमूर्धनि ॥२१॥

हे महाराज! वर्षाकाल में बिजली युक्त मेघ जैसे गर्जना करते हुए सुशोभित होते हैं-इसी तरह इन अश्वों की टक्कर की ध्वनि सबको प्रतीत हुई ॥२१॥

ईषाबन्धं चक्रबन्धं रथबन्धं तथैव च ।

प्राणाशयदमेयात्मा धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ॥२२॥

हे राजन्! उन अपरिमित बलशाली द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न के रथ का अग्रभाग, पहिए और रथ की छतरी को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला ॥२२॥

स च्छिन्नधन्वा पाञ्चाल्यो निकृत्तध्वजसारथिः ।

उत्तमामापदं प्राप्य गदां वीरः परामृशत् ॥२३॥

जब धृष्टद्युम्न का धनुष कट गया और उसकी ध्वजा और सारथि भी छिन्न-भिन्न कर दिए-तो इस समय पञ्चालवीर धृष्टद्युम्न ने बड़ी ही विपत्ति में फंस कर अपनी गदा को सम्हाला ॥२३॥

तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः क्षिप्यमाणां महारथः ।

निजघान शरैर्द्रोणः क्रुद्धः सत्यपराक्रमः ॥२४॥

धृष्टद्युम्न द्वारा फैंकी हुई उस गदा को भी सत्यपराक्रमी द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर अत्यन्त तीखे और नोकवाले बाणों से नष्ट कर दिया ॥२४॥

तां तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो द्रोणेन निहतां शरैः ।

विमलं खड्गमादत्त शतचन्द्रं च भानुमत् ॥२५॥

नरव्याघ्र धृष्टद्युम्न ने जब द्रोण द्वारा बाणों से नष्ट-भ्रष्ट अपनी गदा देखी-तो उसने अब फिर चमकीली तलवार और किरणधारी ढाल उठाई ॥२५॥

असंशयं तथाभूतः पाञ्चाल्यः साध्वमन्यत ।
वधमाचार्यमुख्यस्य प्राप्तकालं महात्मनः ॥२६॥

इस परिस्थिति को पञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न ने बड़ा उत्तम समझा और महात्मा आचार्य द्रोण के वध का उसने यही उत्तम समय समझा ॥२६॥

ततः स रथनीडस्थं स्वरथस्य रथेषया ।
अगच्छदसिमुद्यम्य शतचन्द्रं च भानुमत् ॥२७॥

अब रथ में बैठे हुए द्रोणाचार्य के पास अपने रथ की ईषा (अग्रभाग) से कूदकर धृष्टद्युम्न पहुंच गया । इस समय इसने तलवार खैंच रखी थी और शतचन्द्रोज्ज्वल चमकीली ढाल धारण कर रखी थी ॥२७॥

चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म धृष्टद्युम्नो महारथः ।
इयेष वक्षो भेत्तुं स भारद्वाजस्य संयुगे ॥२८॥

अब महारथी धृष्टद्युम्न द्रोण के वध रूप दुष्कर-कर्म कर जाना चाहते थे । इसने रण में भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य का वक्षस्थल भेदन कर देना चाहा ॥२८॥

सोऽतिष्ठद्युगमध्ये वै युगसन्नहनेषु च ।
जघनार्धेषु चाऽश्वानां तत्सैन्याः समपूजयन् ॥२९॥

यह कभी तो रथ के जूड़े के मध्य, कभी जूड़े के शरीर और कभी अश्वों के पुट्ठों पर कूद जाता था । इस वीरकर्म की सैनिक वीरों ने बड़ी प्रशंसा की ॥२९॥

तिष्ठतो युगपालीषु शोणानप्यधितिष्ठतः ।
नाऽपश्यदन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥३०॥

धृष्टद्युम्न किस शीघ्रता से जुड़े के बाजू और किस शीघ्रता से लाल अश्वों के पुट्ठों पर पहुंच जाता था । ऐसा करने में धृष्टद्युम्न को कोई समय का अन्तर लगता था-यह स्वयं द्रोण भी नहीं देख पाता था । इस दृश्य को वीरों ने बड़ा अद्भुत माना ॥३०॥

क्षिप्रं श्येनस्य चरतो यथैवाऽऽमिषगृद्धिनः ।
तद्वदासीदभीसारो द्रोणपार्षतयो रणे ॥३१॥

मांसलोलुप, श्येन (बाज) पक्षी जैसे-शीघ्रता से आकाश में घूमता है, उसी तरह द्रोण और धृष्टद्युम्न का रण में गमनागमन होने लगा ॥३१॥

तस्य पारावतानश्वान्रथशक्त्या पराभिनत् ।
सर्वानेकैकशो द्रोणो रक्तानश्वान्विवर्जयन् ॥३२॥
ते हता न्यपतन्भूमौ धृष्टद्युम्नस्य वाजिनः ।
शोणास्तु पर्यमुच्यन्त रथबन्धाद्विशाम्पते ॥३३॥

हे राजन् ! लाल अश्वों को छोड़कर द्रोणाचार्य ने अपने रथ शक्ति नामक शस्त्र से शत्रुभूत धृष्टद्युम्न के कबूतर के समान वर्ण वाले अश्वों को मार गिराया । ये धृष्टद्युम्न के अश्व मारे जाकर भूमि में गिर गए । हे विशाम्पते ! जो लाल अश्व जुड़े हुए थे, वे रथबन्धन छोड़कर स्वतन्त्र हो गए ॥३२-३३॥

तान्हयान्निहतान्दृष्ट्वा द्विजाग्र्येण स पार्षतः ।
नाऽमृष्यत युधां श्रेष्ठो याज्ञसेनिर्महारथः ॥३४॥

द्विजश्रेष्ठ, द्रोणाचार्य द्वारा अपने अश्वों को मृतक देखकर वीरश्रेष्ठ, महारथी द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न से कुछ भी सहन नहीं किया गया ॥३४॥

विरथः स गृहीत्वा तु खड्गं खड्गभृतां वरः ।
द्रोणमभ्यपतद्राजन्वैनतेय इवोरगम् ॥३५॥

हे राजन् ! खड्गधारियों में श्रेष्ठ, रथविहीन, धृष्टद्युम्न ने सर्पराज पर पक्षिराज गरुड़ की भांति द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया ॥३५॥

तस्य रूपं बभौ राजन्भारद्वाजं जिघांसतः ।
यथा रूपं पुरा विष्णोर्हिरण्यकशिपोर्वधे ॥३६॥

हे राजन् ! इस समय भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य के वध को तत्पर धृष्टद्युम्न का ऐसा विकराल रूप बन गया-जैसे हिरण्यकशिपु के वध के समय विष्णु का विकराल नरसिंह स्वरूप हो ॥

स तदा विविधान्मार्गान्प्रवरांश्चैकविंशतिम् ।
दर्शयामास कौरव्य पार्षतो विचरन्रणे ॥३७॥

हे कौरव्य ! पर्षतवीर, धृष्टद्युम्न ने रण में घूमते हुए अनेक रीति से इक्कीस युद्ध के मार्ग बड़ी कुशलता से दिखाए ॥३७॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं प्रसृतं सृतम् ।
परिवृत्तं निवृत्तं च खड्गं चर्म च धारयन् ॥३८॥
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पार्षतः ।
भारतं कौशिकं चैव सात्वतं चैव शिक्षया ॥३९॥
दर्शयन्व्यचरद्युद्धे द्रोणस्याऽन्तचिकीर्षया ।

भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध आप्लुत, प्रसृत, सृत, परिवृत्त, निवृत्त, सम्पात, समुदीर्ण, भारत, कौशिक, सात्वत आदि गतियां युद्ध शिक्षा के द्वारा ढाल तलवार धारण करने वाले पर्षतवंशोद्भव वीर धृष्टद्युम्न ने दिखायी । यह सब कुछ गतियां (पैंतरों को) धृष्टद्युम्न, द्रोणाचार्य के अन्त कर देने के लिए दिखा रहा था ॥३८-३९॥

चरतस्तस्य तान्मार्गान्विचित्रान्खड्गचर्मिणः ॥४०॥
व्यस्मयन्त रणे योधा देवताश्च समागताः ।

ढाल करवालधारी धृष्टद्युम्न के रण में घूमने पर जो विचित्र मार्ग देखे गए-उनको देखकर योधागण चकित हो गए और देवगण भी उन्हें देखने को वहां उपस्थित हुए ॥४०॥

ततः शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत् ॥४१॥
चर्म खड्गं च सम्बाधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ।

हे राजन् ! इस कठिन समय में भी द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने एक सहस्र बाण छोड़े और उनसे उसने धृष्टद्युम्न की शतचन्द्रोज्ज्वल ढाल और तलवार को काट गिराया ॥४१॥

ये तु वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥४२॥
निकृष्टयुद्धे द्रोणस्य नाऽन्येषां सन्ति ते शराः ।
ऋते शारद्वतात्पार्थाद् द्रौणेर्वैकर्तनात्तथा ॥४३॥
प्रद्युम्नयुयुधानाभ्यामभिमन्योश्च भारत ।

समीप में युद्ध छिड़ने पर एक २ वितस्त (बिलन्द) के छोटे २ बाण प्रयोग में लाये जाते हैं । वे बाण साधारण अन्य वीरों के पास नहीं होते । इन बाणों का प्रयोग संकीर्ण युद्ध में किया जाता है ।

हे भारत ! शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य, अर्जुन, द्रोण, सूर्य-पुत्र कर्ण, प्रद्युम्न, सात्यकि और अभिमन्यु, इनके पास ही ये वैतस्तिक बाण थे ॥४२-४३॥

अथाऽस्येषुं समाधत्त दृढं परमसंमतम् ॥४४॥
अन्तेवासिनमाचार्यो जिघांसुः पुत्रसंमितम् ।
तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद शिनिपुङ्गवः ॥४५॥
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नममोचयत् ॥४६॥

हे राजन् ! अब आचार्य द्रोण ने अपने पुत्र तुल्य परमप्रिय, शिष्य धृष्टद्युम्न के वध कर देने को एक दृढ़ बाण का सन्धान किया, परन्तु शिनिवंशश्रेष्ठ सात्यकि ने दूर से ही खड़े २ दश तीक्ष्ण बाण छोड़कर उसे काट डाला, जिसे तुम्हारा पुत्र दुर्योधन और महारथी कर्ण खड़े २ देखते रह गए। इस समय द्रोण के पंजे में फंसे हुए धृष्टद्युम्न को सात्यकि ने बचा दिया ॥४४-४६॥

चरन्तं रथमार्गेषु सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
द्रोणकर्णान्तरगतं कृपस्याऽपि च भारत ॥४७॥
अपश्येतां महात्मानौ विष्वक्सेनधनञ्जयौ ।
अपूजयेतां वार्ष्णेयं ब्रुवाणौ साधुसाध्विति ॥४८॥
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वेषां युधि निघ्नन्तमच्युतम् ।

हे भारत ! द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य के मध्य में रथ मार्गों को दिखाते हुए सत्यपराक्रमी सात्यकि को महात्मा कृष्ण और

अर्जुन देख रहे थे। इन दोनों ने साधु-साधु (शाबाश-शाबाश) की ध्वनि लगाकर उसकी बड़ी प्रशंसा की। इस समय युद्ध में सात्यकि, विरोधी सारे वीरों के प्रयुक्त किये हुए दिव्य अस्त्रों को भी खण्डित करते जाते थे ॥४७-४८॥

अभिपत्य ततः सेनां विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥४९॥
धनञ्जयस्ततः कृष्णमब्रवीत्पश्य केशव ।
आचार्यरथमुख्यानां मध्ये क्रीडन्मधूद्वहः ॥५०॥
आनन्दयति मां भूयः सात्यकिः परवीरहा ।
माद्रीपुत्रौ च भीमं च राजानं च युधिष्ठिरम् ॥५१॥

अब कौरवसेना में श्रीकृष्ण और अर्जुन कूद पड़े। इस समय अर्जुन, श्रीकृष्ण से कहने लगे—हे केशव ! वृष्णिवंशश्रेष्ठ, शत्रुवीरनाशक, सात्यकि, द्रोणाचार्य तथा अन्य मुख्य २ महारथियों के मध्य में घूमता हुआ मुझे तथा माद्री-पुत्र नकुल सहदेव, भीमसेन और राजा युधिष्ठिर को बड़ा ही आनन्दित कर रहा है ॥४९-५१॥

यच्छिक्षया ऽनुद्धतः सन्रणे चरति सात्यकिः ।
महारथानुपक्रीडन्वृष्णीनां कीर्तिवर्धनः ॥५२॥
तमेते प्रतिनन्दन्ति सिद्धाः सैन्याश्च विस्मिताः ।

जिस युद्धशिक्षा की कुशलता से अनुद्धत रूप में सात्यकि, कौरव महारथियों को चुकलाता हुआ रण में घूम रहा है, इससे वृष्णिवंश की कीर्ति बहुत ही वृद्धि पाकर उज्ज्वल हो रही है। इस सात्यकि को अचम्भित होकर सारे योद्धा और सिद्ध प्रशंसा करके इसे बहुत ही आनन्दित कर रहे हैं ॥५२॥

अजय्यं समरे दृष्ट्वा साधुसाध्विति सात्यकिम् ।
योधाश्चोभयतः सर्वे कर्मभिः समपूजयन् ॥५३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे एकनवत्य-
धिकशततमोऽध्यायः ॥१६१॥

हे नृपते ! महारथी सात्यकि को रण में अजेय देखकर दोनों पक्ष के योद्धाओं ने उसके इस वीरकर्म की बड़ी ही प्रशंसा की ॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणवधपर्व में धृष्टद्युम्न
और द्रोणचार्य के युद्ध वर्णन का एक सौ इक्यानवेवां
अध्याय समाप्त हुआ ।

—:*:—

एक सौ बानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—सात्वतस्य तु तत्कर्म दृष्ट्वा दुर्योधनादयः ।
शैनेयं सर्वतः क्रुद्धा वारयामासुरञ्जसा ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! राजा दुर्योधन आदि ने सात्वत-वंशोद्भव सात्यकि का जब यह वीरकर्म देखा-तो वे क्रोध-पूर्वक आगे बढ़े और उन्होंने बड़े वेग से बढ़कर शिनिपौत्र सात्यकि को सब ओर से घेर लिया ॥१॥

कृपकर्णौ च समरे पुत्राश्च तव मारिष ।
शैनेयं त्वरयाऽभ्येत्य विनघ्नन्निशितैः शरैः ॥२॥

हे आर्य ! कृपाचार्य, कर्ण और बहुत से तुम्हारे पुत्रों ने बड़ी तीव्रगति से सात्यकि पर आक्रमण करके उसे तीक्ष्ण बाणों से छेदना आरम्भ किया ॥२॥

युधिष्ठिरस्ततो राजाः माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
भीमसेनश्च बलवान्सात्यकिं पर्यवारयन् ॥३॥

अब राजा युधिष्ठिर, माद्री-पुत्र नकुल सहदेव और बलवान् भीमसेन ने सात्यकि की रक्षा करने को उसे घेर लिया ॥३॥

कर्णश्च शरवर्षेण गौतमश्च महारथः ।
दुर्योधनादयस्ते च शैनेयं पर्यवारयन् ॥४॥

महारथी कर्ण और गौतमगोत्रोत्पन्न कृपाचार्य तथा दुर्योधन आदि वीरों ने वध कर देने के निमित्त सात्यकि को जा घेरा ॥४॥

तां वृष्टिं सहसा राजन्नुत्थितां घोररूपिणीम् ।
वारयामास शैनेयो योधयंस्तान्महारथान् ॥५॥

हे राजन् ! इन कौरववीरों की एकदम की हुई घोर बाण-वर्षा को शिनि-पौत्र सात्यकि ने उन योधाओं से युद्ध करते हुए वहीं छिन्नभिन्न कर डाला ॥५॥

तेषामस्त्राणि दिव्यानि संहितानि महात्मनाम् ।
वारयामास विधिवद्दिव्यैरस्त्रैर्महामृधे ॥६॥

हे भरतर्षभ ! इन महावीर कौरवों के इकट्ठे दिव्य अस्त्रों को इस घोर युद्ध में अपने दिव्य अनेक प्रकार के अस्त्रों से सात्यकि ने काट गिराया ॥६॥

क्रूरमायोधनं जज्ञे तस्मिन्राजसमागमे ।

रुद्रस्येव हि क्रुद्धस्य निघ्नतस्तान्पशून्पुरा ॥७॥

इन राजाओं के घोर संग्राम में रणभूमि बहुत ही भीषण दिखाई देने लगी। इस समय ऐसा प्रतीत होता है, जैसे प्रलयकाल में क्रोधातुर रुद्र संसार के प्राणियों का संहार करते हों ॥७॥

हस्तानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत ।

छत्राणां चाऽपविद्धानां चामराणां च सञ्चयैः ॥८॥

राशयः स्म व्यदृश्यन्त तत्र तत्र रणाजिरे ।

हे भारत ! इस समय रणाङ्गण में हाथ, मस्तक, धनुष, खण्डित छत्र, चामर आदि रण की वस्तुएँ जिधर देखो उधर ही फैली हुई थीं ॥८॥

भग्नचक्रै रथैश्चापि पातितैश्च महाध्वजैः ॥९॥

सादिभिश्च हतैः शूरैः सङ्कीर्णा वसुधाऽभवत् ।

टूटे चक्रों वाले रथ, गिराई हुई ध्वजा, मारे हुए अश्वारोही और शूरवीरों से सारी रणभूमि व्याप्त हो गई ॥९॥

बाणपातनिकृत्तास्तु योधास्ते कुरुसत्तम ॥१०॥

चेष्टन्तो विविधाश्चेष्टा व्यदृश्यन्त महाहवे ।

हे कुरुसत्तम! तुम्हारी सेना के योधा बाण के लगते ही कट कर रणभूमि में पड़े हुए तड़फड़ाने लगते थे। इस तरह की इस महायुद्ध में ऐसे बहुत से दृश्य देखे गए ॥१०॥

वर्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरोपमे ॥११॥
अब्रवीत्क्षत्रियांस्तत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः।

हे नृप! जब इस प्रकार देवासुर संग्राम के तुल्य घोर युद्ध प्रवृत्त हो रहा था, तो उस समय धर्मराज युधिष्ठिर सारे क्षत्रिय-वीरों से कहने लगे ॥११॥

अभिद्रवत संयत्ताः कुम्भयोनिं महारथाः ॥१२॥
एषो हि पार्षतो वीरो भारद्वाजेन सङ्गतः।
घटते च यथाशक्ति भारद्वाजस्य नाशने ॥१३॥
यादृशानि हि रूपाणि दृश्यन्तेऽस्य महारणे।

हे महारथी वीरो! तुम लोग बड़ी सावधानी से कुम्भयोनि द्रोण पर आक्रमण करो। यह पर्वतवंशोद्भववीर धृष्टद्युम्न, अपनी सारी शक्ति लगाकर आज आचार्य द्रोण का नाश कर देना चाहते हैं ॥१२-१३॥

अद्य द्रोणं रणे क्रुद्धो घातयिष्यति पार्षतः ॥१४॥
ते यूयं सहिता भूत्वा युध्यध्वं कुम्भसम्भवम्।

इस घोर युद्ध में जो परिस्थिति उत्पन्न हो गई है-उससे तो यही प्रतीत होता है, कि आज क्रोधातुर द्रोणाचार्य को धृष्टद्युम्न अवश्य मार लेगा ॥१४॥

युधिष्ठिरसमाज्ञप्ताः सृञ्जयानां महारथाः ॥१५॥
अभ्यद्रवन्त संयत्ता भारद्वाजजिघांसवः ।

अब तुम सब इकट्ठे संगठित हो जाओ और कुम्भोद्भव द्रोणाचार्य के साथ युद्ध करो। मैं युधिष्ठिर तुमको आज्ञा देता हूं, कि सारे सृञ्जय महारथी वीर, भरद्वाजवंशोत्पन्न द्रोणाचार्य के वध कर देने को बड़ी सावधानी से दौड़ो ॥१५॥

तान्समापततः सर्वान्भारद्वाजो महारथः ॥१६॥
अभ्यवर्तत वेगेन मर्तव्यमिति निश्चितः ।

इन सारे सृञ्जयवीरों के आक्रमण को देखकर महारथी द्रोणाचार्य अपना मरण निश्चित समझ करके उन पर झपटे ॥१६॥

प्रयाते सत्यसन्धे तु समकम्पत मेदिनी ॥१७॥
ववुर्वाताः सनिर्घातास्त्रासयाना वरूथिनीम् ।
पपात महती चोल्का आदित्यान्निश्चरन्त्युत ॥१८॥
दीपयन्ती उभे सेने शंसन्तीव महद्भयम् ।

सत्यप्रतिज्ञाधारी, द्रोणाचार्य के आक्रमण करने पर पृथिवी कांपने लगी और सेना को क्लेशित करता हुआ बिजली के साथ वायु चलने लगा। अब बड़ी २ घोर उल्का, सूर्य से निकल कर महान् भय को सूचित करती हुई दोनों सेना को चमका कर गिरने लगी ॥१७-१८॥

जज्वलुश्चैव शस्त्राणि भारद्वाजस्य मारिष ॥१९॥
रथाः स्वनन्ति चाऽत्यर्थं हयाश्चाऽश्रूण्यवासृजन् ।

हे आर्य ! इस समय भरद्वाज-पुत्र द्रोण के शस्त्र चमकने, रथ बहुत अधिक शब्द करने और अश्व अश्रुधाराओं को छोड़ने लगे ॥१६॥

हतौजा इव चाऽप्यासीद्भारद्वाजो महारथः ॥२०॥

प्रास्फुरन्नयनं चाऽस्य वामबाहुस्तथैव च ।

हे राजन् ! अब महारथी द्रोणाचार्य निस्तेज हो गए। इनकी आंखें और बांयी भुजा फड़कने लगी ॥२०॥

विमनाश्चाऽभवद्युद्धे दृष्ट्वा पार्षतमग्रतः ॥२१॥

ऋषीणां ब्रह्मवादानां स्वर्गस्य गमनं प्रति ।

सुयुद्धेन ततः प्राणानुत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥२२॥

ये अपने सन्मुख धृष्टद्युम्न को देखकर बड़े उदास हुए । ब्रह्मवादी ऋषिगण भी इनसे स्वर्ग चलने की प्रेरणा कर गए थे। अब इन्होंने उत्तम युद्ध करके प्राण छोड़ देना चाहा ॥२१-२२

ततश्चतुर्दिशं सैन्यैर्द्रुपदस्याऽभिसंवृतः ।

निर्दहन्क्षत्रियव्रातान्द्रोणः पर्यचरद्रणे ॥२३॥

हे महीपते ! अब राजा द्रुपद की सेना के वीरों ने चारों दिशाओं से द्रोणाचार्य को घेर लिया। द्रोणाचार्य भी क्षत्रिय समूह को भस्म करता हुआ रणभूमि में घूमने लगा ॥२३॥

हत्वा विंशतिसाहस्रान्क्षत्रियानरिमर्दनः ।

दशायुतानि करिणामवधीद्विशिखैः शितैः ॥२४॥

अरिमर्दन आचार्य द्रोण ने बीस सहस्र क्षत्रियवीर मार गिराए तथा तीक्ष्ण बाणों से एक लाख हाथी मार दिए ॥२४॥

सोऽतिष्ठदाहवे यत्तो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।
क्षत्रियाणामभावाय ब्राह्ममस्त्रं समास्थितः ॥२५॥

यह रणाङ्गण में बड़ी सावधानी से धूम रहित प्रज्वलित अग्नि की भांति जल उठा । इसने क्षत्रियवीरों के अभाव के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया ॥२५॥

पाञ्चाल्यं विरथं भीमो हतसर्वायुधं बली ।
सुविषण्णं महात्मानं त्वरमाणः समभ्ययात् ॥२६॥

अब महाबली भीमसेन ने सर्व शस्त्र और रथ-हीन, अत्यन्त उदास, महारथी पाञ्चालवीर धृष्टद्युम्न की सहायता को वेग से गमन किया ॥२६॥

ततः स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्यमरिमर्दनः ।
अब्रवीदभिसम्प्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिकात् ॥२७॥

अरिमर्दन भीमसेन ने धृष्टद्युम्न को अपने रथ पर चढ़ा लिया और समीप में ही द्रोणाचार्य को बाण फेंकता देखकर धृष्टद्युम्न से कहा ॥२७॥

न त्वदन्य इहाऽऽचार्यं योद्धुमुत्सहते पुमान् ।
त्वरस्व प्राग्वधायैव त्वयि भारः समाहितः ॥२८॥

हे धृष्टद्युम्न ! तुम्हारे सिवा कोई भी वीर, आचार्य से युद्ध करने में समर्थ नहीं हो सकता है । अब तुम सबसे प्रथम इसके

मारने की शीघ्रता करो, क्योंकि द्रोणाचार्य के मारने का भार तुम पर ही है ॥२८॥

स तथोक्तो महाबाहुः सर्वभारसहं धनुः ।
अभिपत्याऽऽददे क्षिप्रमायुधप्रवरं दृढम् ॥२६॥

जब महाबाहु धृष्टद्युम्न से इतना कहा-तो उसने सारे युद्ध भार के सहने में समर्थ, धनुष को ग्रहण किया और उस पर बड़ी शीघ्रता से दृढ़ आयुध का अनुसन्धान किया ॥२६॥

संरब्धश्च शरानस्यन्द्रोणं दुर्वारणं रणे ।
विवारयिषुराचार्यं शरवर्षैरवाकिरत् ॥३०॥

रण में दुर्वार, द्रोणाचार्य पर उनके रोकने को बाण फैंकते हुए आवेश पूर्ण धृष्टद्युम्न ने बाणों की झड़ी लगा दी ॥३०॥

तौ न्यवारयतां श्रेष्ठौ संरब्धौ रणशोभिनौ ।
उदीरयेतां ब्रह्माणि दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ॥३१॥

ये दोनों आवेशातुर रणशोभी, महावीर द्रोण और धृष्टद्युम्न, एक दूसरे को पीछे हटाने की चेष्टा करने लगे । अब इन्होंने ब्रह्मास्त्र आदि अनेक दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करना आरम्भ किया।

स महास्त्रैर्महाराज द्रोणमाच्छादयद्रणे ।
निहत्य सर्वाण्यस्त्राणि भारद्वाजस्य पार्षतः ॥

हे महाराज ! अब पर्वतवंशकुमार धृष्टद्युम्न ने भरद्वाज-वंशोद्भव द्रोणाचार्य के सारे अस्त्रों को काट कर अपने महान् अस्त्रों से उनको आच्छादित कर दिया ॥३२॥

स वसातीञ्छिबींश्चैव बाल्हीकान्कौरवानपि।
रक्षिष्यमाणान्संग्रामे द्रोणं व्यधमदच्युतः ॥३३॥

वसाति, शिबि, बाल्हीक और कौरववीरों को छोड़कर युद्ध से पीछे नहीं हटने वाले धृष्टद्युम्न ने तो रण में द्रोण का ही छेदना आरम्भ किया ॥३३॥

धृष्टद्युम्नस्तथा राजन्गभस्तिभिरिवांऽशुमान्।
बभौ प्रच्छादयन्नाशाः शरजालैः समन्ततः ॥३४॥

हे राजन्! अपने बाण-जाल से दिशाओं को आच्छादित करता हुआ धृष्टद्युम्न इस तरह दिखाई देने लगा जैसे अपनी किरणों से व्याप्त सूर्य दिखाई देता है ॥३४॥

तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा विद्ध्वा चैनं शिलीमुखैः।
मर्माण्यभ्यहनद्भूयः स व्यथां परमामगात् ॥३५॥

आचार्य द्रोण ने उसका धनुष काट डाला और अपने शिलीमुख बाणों से उसको बहुत ही छेद डाला। इसने धृष्टद्युम्न के मर्मों पर इतना आघात किया, कि उसे बड़ी ही पीड़ा का अनुभव होने लगा ॥३५॥

ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याऽऽश्लिष्य तं रथम्।
शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत् ॥३६॥

यदि नाम न युद्धेरञ्शिक्षिता ब्रह्मबन्धवः।
स्वकर्मभिरसन्तुष्टा न स्म क्षत्रं क्षयं व्रजेत् ॥३७॥

हे राजेन्द्र ! अब दीर्घ क्रोध धारण करने वाले भीमसेन ने द्रोणाचार्य के रथ को पकड़ कर उनसे धीरे २ यह वचन कहा-यदि ब्रह्मकर्म से च्युत हुए, युद्धविद्या के ज्ञाता, अपने कर्म में सन्तोष नहीं करने वाले ब्राह्मण युद्ध न करते-तो आज क्षत्रिय-वंश का विनाश न होता ॥३७॥

अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः ।
तस्य च ब्राह्मणो मूलं भवांश्च ब्रह्मवित्तमः ॥३८॥

सब धर्मों में बड़ा अहिंसा धर्म माना गया है-इसका मूल अवलम्बन करने वाला ब्राह्मण होना चाहिए और तुम तो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ बनते हो ॥३८॥

श्वपाकवन्म्लेच्छगणान्हत्वा चाऽन्यान्पृथग्विधान् ।
अज्ञानान्मूढवद्ब्रह्मन्पुत्रदारधनेप्सया ॥३९॥
एकस्याऽर्थे बहून्हत्वा पुत्रस्याऽधर्मविद्यया ।
स्वकर्मस्थान्विकर्मस्थो न व्यपत्रपसे कथम् ॥४०॥

हे ब्रह्मन् ! आज तुम तो म्लेछगण या अन्य क्षत्रियवीरों को मूर्ख श्वपाक की तरह अपने अज्ञान से मार रहे हो-इसमें पुत्र और स्त्री का मोह तथा धन की लिप्सा के सिवा अन्य क्या हो सकता है। तुम अपने एक पुत्र के बदले में अन्य बहुतों को मार रहे हो-यह तुम्हारा अज्ञान ही तो है। क्षत्रिय तो अपने युद्धकर्म में स्थित हैं, परन्तु तुमने क्यों अपना अहिंसा व्रत छोड़ रखा है। ऐसा करते हुए भी तुम कुछ लज्जित नहीं होते हो ॥३९-४०॥

यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि ।
स चाऽद्य पतितः शेते पृष्टेनाऽऽवेदितस्तव ॥४१॥
धर्मराजस्य तद्वाक्यं नाऽभिशङ्कितुमर्हसि ।

जिस पुत्र के लिए तुमने शस्त्र उठाए और जिसके जीने से तुम अपने प्राण धारण किये हुए थे, वह मारा जाकर रणभूमि में पड़ा है; यह तुम्हारे पूछने पर तुमको बता दिया गया। इस विषय में धर्मराज के कथन में तुमको शङ्का नहीं करनी चाहिए ॥४१॥

एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद्धनुः ॥४२॥
सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत ।

जब भीमसेन ने इतना कहा-तो द्रोणाचार्य ने अपना धनुष रख दिया-वह अन्य अस्त्रों को छोड़ता हुआ-भीमसेन से बोला ॥४२॥

कर्ण कर्ण महेष्वास कृप दुर्योधनेति च ॥४३॥
संग्रामे क्रियतां यत्नो ब्रवीम्येषु पुनः पुनः ।
पाण्डवेभ्यः शिवं वोऽस्तु शस्त्रमभ्युत्सृजाम्यहम् ॥
इति तत्र महाराज प्राक्रोशद् द्रौणिमेव च ।
उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च ॥४५॥
अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगमीयिवान् ।

हे महाधनुर्धर ! कर्ण ! कृप ! दुर्योधन ! अब तुम अपने युद्ध के जीतने का आप उपाय करो। मैं तुमको यह बात बार २ सुझा देता हूं। अब पाण्डवों का कल्याण होगा-क्योंकि मैं शस्त्र छोड़ रहा हूं। हे महाराज ! वह इतना कह कर अपने पुत्र

अश्वत्थामा को पुकारने लगा। वह शस्त्रों को छोड़कर और रथ के बीच में स्थित होकर सारे प्राणियों को अभय देकर योग में आरूढ़ हो गया ॥४२-४५॥

तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥४६॥
सशरं तद्धनुर्घोरं संन्यस्याऽथ रथे ततः।
खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात् ॥४७॥

द्रोणाचार्य के चुप होते ही महाप्रतापी धृष्टद्युम्न को अवसर मिला और वह अपने घोर धनुष बाण को छोड़कर तथा एक खड्ग लेकर एकदम द्रोणाचार्य के पास पहुंचा ॥४६-४७॥

हाहाकृतानि भूतानि मानुषाणीतराणि च।
द्रोणं तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवशङ्गतम् ॥४८॥

इस समय सारे मनुष्य तथा अन्य प्राणी भी द्रोणाचार्य को धृष्टद्युम्न के वश में पड़े हुए देखकर हाहाकार मचाने लगे ॥४८॥

हाहाकारं भृशं चक्रुरहो धिगिति चाऽब्रुवन्।
द्रोणोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य परमं सांख्यमास्थितः ॥

सब मनुष्य बहुत ही हाहाकार करते हुए धृष्टद्युम्न पर धिक्कार की ध्वनि फैंकने लगे। द्रोणाचार्य भी शस्त्र फैंककर ज्ञान में स्थित हो गया ॥४९॥

तथोक्त्वा योगमास्थाय ज्योतिर्भूतो महातपाः।
पुराणं पुरुषं विष्णुं जगाम मनसा परम् ॥५०॥

अब महातपस्वी द्रोणाचार्य योग प्राप्त करके दिव्य ज्योतिस्वरूप को प्राप्त हुए। उन्होंने सनातन पुरुष विष्णु का मन से ध्यान किया ॥५०॥

मुखं किञ्चित्समुन्नाम्य विष्टभ्य उरमग्रतः ।
निमीलिताक्षः सत्वस्थो निक्षिप्य हृदि धारणाम् ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
स्मरित्वा देवदेवेशमक्षरं परमं प्रभुम् ॥५२॥
दिवमाक्रामदाचार्यः साक्षात्सद्भिर्दुराक्रमाम् ।

द्रोणाचार्य ने मुख को कुछ उठा कर छाती को आगे की ओर तान लिया। इन्होंने आंखें मींच कर अपने को सत्वगुण में स्थित किया। हृदय में प्राणों को रोका और ॐकार नामात्मक अक्षर ब्रह्म का चिन्तन किया, जिससे महातपस्वी द्रोण, ज्योतिःस्वरूप हो गए। इन्होंने देवों के देव, अविनाशी परम प्रभु का बार २ स्मरण किया। जिस द्युलोक में महात्मा भी कठिन से पहुंच पाते हैं, उसी दिव्य लोक में आचार्य द्रोण चले गए ॥५१-५२॥

द्वौ सूर्याविति नो बुद्धिरासीत्तस्मिंस्तथा गते ॥५३॥
एकाग्रमिव चाऽऽसीच्च ज्योतिर्भिः पूरितं नभः ।

जब द्रोणाचार्य दिव्य लोक में जा रहे थे, तो हम लोगों को तो, ऐसा जान पड़ा जैसे दो सूर्य प्रकाशित हो रहे हों। इस समय ज्योति से आकाश इतना भर गया कि बस ! आकाश में ज्योतिः ही ज्योतिः दिखाई देती थी ॥५३॥

समपद्यत चार्काभे भारद्वाजदिवाकरे ॥५४॥
निमेषमात्रेण च तज्ज्योतिरन्तरधीयत ।

इस समय द्रोणाचार्य रूपी सूर्य और इस सूर्य की एक ही कान्ति हो गई। थोड़ी ही देर में वह ज्योतिः अन्तर्हित हो गई।

आसीत्किलकिलाशब्दः प्रहृष्टानां दिवौकसाम् ॥५५॥
ब्रह्मलोकगते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते ।

अब देवगण बड़े प्रसन्न हुए और वे कलकलाहट मचाने लगे, कि द्रोण तो ब्रह्मलोक पहुंच गए, जिसे देखकर धृष्टद्युम्न को बड़ा ही मोह हुआ ॥५५॥

वयमेव तदाऽद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः ॥५६॥
योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम् ।
अहं धनञ्जयः पार्थो भारद्वाजस्य चाऽऽत्मजः ॥५७॥
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।

हे राजन्! हम पांच मनुष्य ही योग युक्त द्रोण की इस परम-गति के समय के रूप को देख सके-उनमें एक तो मैं सञ्जय, दूसरे कुन्ती-पुत्र धनञ्जय अर्जुन, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, वृष्णिवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और पाण्डु-पुत्र धर्मराज थे ॥५६-५७॥

अन्ये तु सर्वे नाऽपश्यन्भारद्वाजस्य धीमतः ॥५८॥
महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः ।

हे महाराज! अन्य कोई भी व्यक्ति, भरद्वाज-पुत्र महाज्ञानी द्रोणाचार्य के योगयुक्त होकर दिव्य लोक में जाने के इस गौरव-शाली आकार को नहीं देख सके ॥५८॥

ब्रह्मलोकं महद्दिव्यं देवगुह्यं हि तत्परम् ॥५९॥
गतिं परमिकां प्राप्तमजानन्तो नृयोनयः ।

यह ब्रह्मलोक महादिव्य और इसकी महिमा देवों से भी गुह्य है। इस परमगति को प्राप्त होने वाले द्रोणाचार्य के रहस्य को साधारण मनुष्य नहीं जान सके ॥५९॥

नाऽपश्यन्गच्छमानं हि तं सार्धमृषिपुङ्गवैः ॥६०॥
आचार्यं योगमास्थाय ब्रह्मलोकमरिन्दमम् ।

जब योग का आश्रय लेकर अरिमर्दन द्रोणाचार्य, ऋषियों के साथ ब्रह्मलोक जा रहे थे-तो उनको जाने के समय सर्व साधारण मनुष्य नहीं देख पाए ॥६०॥

वितुन्नाङ्गं शरव्रातैर्न्यस्तायुधमसृक्क्षरम् ॥६१॥
धिक्कृतः पार्षतस्तं तु सर्वभूतैः परामृशत् ।

द्रोणाचार्य का शरीर शरसमूह से छिदा पड़ा था, इन्होंने शस्त्र छोड़ दिए थे और इनके शरीर से रुधिर की धारा बह रही थी। देवों ने धृष्टद्युम्न को धिक्कार देकर द्रोणाचार्य के शरीर का स्पर्श किया ॥६१॥

तस्य मूर्धानमालम्ब्य गतसत्त्वस्य देहिनः ॥६२॥
किञ्चिदब्रुवतः कायाद्विचकर्ताऽसिना शिरः ।

द्रोणाचार्य के प्राण निकल चुके थे-तो भी धृष्टद्युम्न ने उनका मस्तक पकड़ कर कुछ भी नहीं बोलते हुए द्रोण की देह से उनका शिर तलवार से काट लिया ॥६२॥

हर्षेण महता युक्तो भारद्वाजे निपातिते ॥६३॥

सिंहनादरवं चक्रे भ्रामयन्खड्गमाहवे ।

जब भरद्वाज-पुत्र द्रोण को उसने मार लिया-तो वह बड़े हर्ष से युक्त होकर सिंहनाद करने और रण में अपना खड्ग घुमाने लगा ॥६३॥

आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः ॥६४॥

त्वत्कृते व्यचरत्संख्ये स तु षोडशवर्षवत् ।

द्रोणाचार्य के कान तक काले बाल सफेद हो चुके थे। इनकी अवस्था पिच्चासी वर्ष की थी, तो भी यह वीर तुम्हारे साथ युद्ध में सोलह वर्ष के युवा की तरह फड़क रहा था ॥६४॥

उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥६५॥

जीवन्तमानयाऽऽचार्यं मा वधीर्द्रुपदात्मज ।

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च ह ॥६६॥

उत्क्रोशन्नर्जुनश्चैव सानुक्रोशस्तमाव्रजत् ।

महाबाहु कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने बार २ कहा—हे धृष्टद्युम्न! तुम आचार्य को जीता ही पकड़ लाओ-मारो नहीं। मारो मत? मारो मत? इस प्रकार सारे सैनिक भी चिल्लाने लगे। अर्जुन तो दयार्द्र होकर द्रोणाचार्य के समीप पहुंचे ॥६६॥

क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च सर्वशः ॥६७॥

धृष्टद्युम्नोऽवधीद् द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम् ।

शोणितेन परिक्लिन्नो रथाद्भूमिमथाऽपतत् ॥६८॥
लोहिताङ्ग इवाऽऽदित्यो दुर्धर्षः समपद्यत ।

जिस समय अर्जुन तथा नृपतिगण-यह पुकार रहे थे, कि तुम द्रोण को न मारो-उसी क्षण रथ के मध्य में पहुंच कर धृष्टद्युम्न ने नरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य का वध कर दिया। इस समय द्रोणाचार्य का शरीर रक्त में भीग रहा था। अब वह रथ से नीचे भूमि में इस तरह गिर गया जैसे लाल वर्ण वाला दुर्धर्ष सूर्य गिर गया हो॥

एवं तं निहतं संख्ये ददृशे सैनिको जनः ॥६९॥
धृष्टद्युम्नस्तु तद्राजन्भारद्वाजशिरोऽहरत् ।
तावकानां महेष्वासः प्रमुखे तत्समाक्षिपत् ॥७०॥

हे राजन्! धृष्टद्युम्न ने जिस समय द्रोण पर आघात किया, उस समय सारे सैनिक रण में देखते ही रह गए और धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य के शिर को उसकी देह से पृथक् कर दिया और उस को लेकर तुम्हारे वीरों के सन्मुख फैंक दिया ॥६९-७०॥

ते तु दृष्ट्वा शिरो राजन्भारद्वाजस्य तावकाः ।
पलायनकृतोत्साहा दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥७१॥

हे राजन्! तुम्हारे पक्ष के वीर द्रोणाचार्य के इस मस्तक को देखकर सब ओर बड़े वेग के साथ भाग निकले ॥७१॥

द्रोणस्तु दिवमास्थाय नक्षत्रपथमाविशत् ।
अहमेव तदाऽद्राक्षं द्रोणस्य निधनं नृप ॥७२॥

अब द्रोणाचार्य यमलोक में पहुंच कर नक्षत्र पथ में चले गए। हे नृप! मैंने यह सब कुछ द्रोण की मृत्यु का दृश्य प्रत्यक्ष देखा है।

ऋषेः प्रसादात्कृष्णस्य सत्यवत्याः सुतस्य च ।
विधूमामिह संयान्तीमुल्कां प्रज्वलितामिव ॥७३॥
अपश्याम दिवं स्तब्ध्वा गच्छन्तं तं महाद्युतिम् ।

यह सब कुछ सत्यवती-पुत्र कृष्णद्वैपायन की दी हुई दिव्यदृष्टि का प्रभाव था, जिससे धूमरहित, प्रज्वलित उल्का (मशाल) की तरह आकाश को जाती हुई ज्योतिः के मैंने दर्शन किए। उस महाद्युति द्रोणाचार्य के आकाश को व्याप्त करके जाते हुए हमने अच्छी तरह देखा था ॥७३॥

हते द्रोणे निरुत्साहाः कुरुपाण्डवसृञ्जयाः ॥७४॥
अभ्यद्रवन्महावेगास्ततः सैन्यं व्यदीर्यत ।

द्रोणाचार्य के मारे जाने पर कौरव, पाण्डव और सृञ्जयवीर बड़े ही उदास हो गए। वे बड़े वेग से इधर उधर चल दिए; जिससे सारी सेना बिखर गई ॥७४॥

निहता हतभूयिष्ठाः संग्रामे निशितैः शरैः ॥७५॥
तावका निहते द्रोणे गतासव इवाऽभवन् ।

इस युद्ध में बहुत से वीर घायल और अधिकांश में मारे जा चुके थे। जो कुछ कौरववीर बचे थे, वे भी द्रोणाचार्य के मारे जाने पर प्राण-विहीन से हो गए ॥७५॥

पराजयमथाऽवाप्य परत्र च महद्भयम् ॥७६॥
उभयेनैव ते हीना नाऽविन्दन्धृतिमात्मनः ।

इस समय कौरवों को अपना पराजय और परलोक में महा भय सामने खड़ा दिखाई देने लगा। ये तो दोनों लोकों के सुख से वञ्चित हुए कुछ भी आत्मा की शान्ति को प्राप्त नहीं हो रहे थे।

अन्विच्छन्तः शरीरं तु भारद्वाजस्य पार्थिवाः ॥७७॥
नाऽन्वगच्छन्महाराज कबन्धायुतसंकुले ।

हे महाराज! अब बहुत से कौरवपक्ष के राजाओं ने द्रोणाचार्य के मृत शरीर की खोज की, परन्तु मस्तकहीन अनेक मृतकों में उन्हें वह मिल ही न सका ॥७७॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा परत्र च महद्यशः ॥७८॥
बाणशङ्खरवांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान् ।

हे महीपते! पाण्डव तो जय और परलोक में भी महा यश पाकर बाण और शङ्खों की ध्वनि तथा पुष्कल सिंहनाद करने लगे।

भीमसेनस्ततो राजन्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥७९॥
वरूथिन्यामनृत्येतां परिष्वज्य परस्परम् ।

हे राजन्! महावीर भीमसेन और पर्षतकुमार धृष्टद्युम्न परस्पर आलिङ्गन करके सेना के मध्य में आनन्द मग्न होकर नांच सा करने लगे ॥७९॥

अब्रवीच्च तदा भीमः पार्षतं शत्रुतापनम् ॥८०॥
भूयोऽहं त्वां विजयिनं परिष्वक्ष्यामि पार्षत ।
सूतपुत्रे हते पापे धार्तराष्ट्रे च संयुगे ॥८१॥

अब शत्रुतापी द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न से भीमसेन ने कहा—हे धृष्टद्युम्न ! मैं अब आगे भी इसी तरह विजय करके आने पर तथा पापी सूत-पुत्र कर्ण और धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन के रण में मारे जाने पर तुम से आलिङ्गन करना चाहता हूं ॥८०-८१॥

एतावदुक्त्वा भीमस्तु हर्षेण महता युतः ।
बाहुशब्देन पृथिवीं कम्पयामास पाण्डवः ॥८२॥

हे महाराज ! इतना कहकर भीमसेन बड़े ही हर्ष से व्याप्त हो गए और अपनी भुजा की फटकार के शब्द से पृथिवी को कम्पायमान कर दिया ॥८२॥

तस्य शब्देन वित्रस्ताः प्राद्रवंस्तावका युधि ।
क्षत्रधर्मं समुत्सृज्य पलायनपरायणाः ॥८३॥

उसकी ताल के फटकार के शब्द से भयभीत होकर तुम्हारे योद्धा रण से भाग निकले । ये अपने क्षत्रियधर्म का त्याग करके भागने में ही अपना कल्याण समझने लगे ॥८३॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा हृष्टा ह्यासन्विशाम्पते ।
अरिक्षयं च संग्रामे तेन ते सुखमाप्नुवन् ॥८४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणवधे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९२॥ समाप्तं द्रोणवधपर्व ॥

हे विशाम्पते ! पाण्डव विजय पाकर बड़े ही प्रसन्न हुए । कौरवों के प्रधान २ शत्रुवीरों का नाश हो चुका था-इससे पाण्डव वीर बड़े ही सुखी हो रहे थे ॥८४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणवधपर्व में द्रोण के वध का एक सौ बानवेवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर द्रोणवधपर्व भी समाप्त हो गया।

अथ नारायणास्त्रमोक्षपर्व

एक सौ तिरानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच— ततो द्रोणे हते राजन्कुरवः शस्त्रपीडिताः ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! महारथी द्रोणाचार्य के मारे जाने पर शस्त्रों से क्षत-विक्षत कौरववीर बड़े ही व्याकुल हो गए । इनके अधिकांश वीर मारे गए और शेष वीर क्षीण शक्ति हुए, अत्यन्त शोक निमग्न हो गए ॥१॥

उदीर्णांश्च परान्दृष्ट्वा कम्पमानाः पुनः पुनः ।
अश्रुपूर्णेक्षणास्त्रस्ता दीनास्त्वासन्विशाम्पते ॥२॥

विचेतसो हतोत्साहाः कश्मलाभिहतौजसः।
आर्तस्वरेण महता पुत्रं ते पर्यवारयन् ॥३॥

हे विशाम्पते! ये वीर उन्नतिशील अपने शत्रुओं को देख कर बार २ कम्पायमान होते थे, इनकी आंखें आंसुओं से परिपूर्ण हो गई। ये बड़े क्लेशित होकर दीन दशा को प्राप्त हो गए। इनके होश उड़े हुए थे। इस समय हतोत्साह हुए कौरवों का सारा तेज नष्ट हो रहा था। ये लोग बड़े भारी आर्तस्वर से तुम्हारे पुत्र का आह्वान करके उसे घेर कर खड़े हो गए॥२-३॥

रजस्वलाः वेपमाना वीक्षमाणा दिशो दश।
अश्रुकण्ठा यथा दैत्या हिरण्याक्षे पुरा हते ॥४॥

कौरवों के गण धूल मिट्टी में लिपटे हुए कांप रहे थे और दशों दिशाओं को देख रहे थे। इनका कण्ठ इस तरह आंसुओं से भर गया-जैसे हिरण्याक्ष के वध के समय दैत्यों का गला भर आया था॥४॥

स तैः परिवृतो राजा त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव।
अशक्नुवन्नवस्थातुमपायात्तनयस्तव ॥५॥

घबराये हुए क्षुद्र मृगों की तरह उन सैनिकों से घिरे हुए शोकातुर राजा दुर्योधन, वहां ठहरने में समर्थ नहीं हो सके और वे तुम्हारे पुत्र कुरुराज झटपट वहां से चले गए॥५॥

क्षुत्पिपासापरिम्लानास्ते योधास्तव भारत।
आदित्येनेव सन्तप्ता भृशं विमनसोऽभवन् ॥६॥

हे भारत ! तुम्हारे योद्धा भूख प्यास से व्याकुल हो रहे थे । वे सूर्य से सन्तापित होने की तरह अत्यन्त कुम्हलाए पड़े थे ॥६॥

भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम् ।
विपर्यासं यथा मेरोर्वासवस्येव निर्जयम् ॥७॥
अमर्षणीयं तद् दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनम् ।
त्रस्तरूपतरा राजन्कौरवाः प्राद्रवन्भयात् ॥८॥

हे राजन् ! सूर्य के आकाश से गिरने, समुद्र के सूखने, मेरु के उलट जाने और इन्द्र के पराजित हो जाने के तुल्य द्रोणाचार्य के असह्य पतन को देखकर कौरववीर अत्यन्त घबरा कर भय से भाग खड़े हुए ॥७-८॥

गान्धारराजः शकुनिस्त्रस्तस्त्रस्ततरैः सह ।
हतं रुक्मरथं श्रुत्वा प्राद्रवत्सहितो रथैः ॥९॥

गान्धारराज शकुनि भी द्रोणाचार्य की मृत्यु सुनकर घबरा रहा था । वह भयातुर हुए रथी वीरों को लेकर वहां से टल गए ।

वरूथिनीं वेगवतीं विद्रुतां सपताकिनीम् ।
परिगृह्य महासेनां सूतपुत्रोऽपयाद्भयात् ॥१०॥

रथसमूह से युक्त वेगशालिनी पताकाओं से सुशोभित अपनी महासेना को लेकर सूत-पुत्र कर्ण भी भय से खसक गए ।

रथनागाश्वकलिलां पुरस्कृत्य तु वाहिनीम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो वीक्षमाणोऽपयाद्भयात् ॥११॥

रथ, हाथी और अश्वों से व्याप्त सेना को आगे करके मद्रेश्वर शल्य भी इधर उधर देखते हुए भय से भाग निकले।

हतप्रवीरैर्भूयिष्ठैर्ध्वजैर्बहुपताकिभिः।
वृतः शारद्वतोऽगच्छत्कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ॥१२॥

जिसके बहुत से वीर मारे गए, ऐसे शरद्वान-पुत्र कृपाचार्य भी बहुत सी ध्वजा और पताकाओं से युक्त होकर बड़े कष्ट की बात हुई-यह कहते हुए रणभूमि से चल दिए ॥१२॥

भोजानीकेन शिष्टेन कलिङ्गारट्टवाह्लिकैः।
कृतवर्मा वृतो राजन्प्रायात्सुजवनैर्हयैः ॥१३॥

हे राजन्! कुछ शेष बची हुई भोजवंश की सेना, कलिङ्ग आरट्ट और बाल्हिकवीरों के तीव्र वेगधारी अश्वों के साथ रणभूमि से लौट पड़ी ॥१३॥

पदातिगणसंयुक्तस्त्रस्तो राजन्भयार्दितः।
उलूकः प्राद्रवत्तत्र दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥१४॥

हे राजन्! अपने पैदल सैनिकों से संयुक्त बड़ा घबराया और भयातुर हुआ शकुनि-पुत्र उलूक, द्रोणाचार्य के पतन को देख कर वहां से भाग निकला ॥१४॥

दर्शनीयो युवा चैव शौर्येण कृतलक्षणः।
दुःशासनो भृशोद्विग्नः प्राद्रवद्गजसंवृतः ॥१५॥

शूरवीरता के लक्षणों से समन्वित बड़ा सुन्दर युवा दुःशासन, अत्यन्त शोकातुर होकर अपनी गजसेना के साथ रणाङ्गण से लौट आया ॥१५॥

रथानामयुतं गृह्य त्रिसाहस्रं च दन्तिनाम् ।
वृषसेनो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥१६॥

आचार्य द्रोण का पतन सुनकर दश सहस्र रथी और तीन सहस्र हाथी लेकर बड़ी शीघ्रता से कर्ण-पुत्र वृषसेन भी वहां से चल दिया ॥१६॥

गजाश्वरथसंयुक्तो वृतश्चैव पदातिभिः ।
दुर्योधनो महाराज प्रायाच्चत्र महारथः ॥१७॥

हे महाराज ! अपने गज, अश्व, रथ और पैदल सेना से संयुक्त हुआ,महारथी राजा दुर्योधन वहां से चले आए ॥१७॥

संशप्तकगणान्गृह्य हतशेषान्किरीटिना ।
सुशर्मा प्राद्रवद्राजन्दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥१८॥

हे महीपते ! द्रोणाचार्य के गिरने पर किरीटधारी अर्जुन द्वारा मारने से बचे हुए संशप्तक गणों को लेकर राजा सुशर्मा भी रणभूमि से वापिस चल दिए ॥१८॥

गजान्रथान्समारुह्य व्युदस्य च हयाञ्जनाः ।
प्राद्रवन्सर्वतः संख्ये दृष्ट्वा रुक्मरथं हतम् ॥१९॥

जब वीरों ने सुवर्ण रथधारी द्रोणाचार्य को मरा हुआ देखा, तो वे हाथी और रथ आदि पर चढ़ कर तथा अश्वों को ऐड मार कर रण में सब ओर भाग निकले ॥१९॥

त्वरयन्तः पितॄनन्ये भ्रातॄनन्येऽथ मातुलान् ।
पुत्रानन्ये वयस्यांश्च प्राद्रवन्कुरवस्तदा ॥२०॥

हे नृप ! इस समय कौरव, कोई तो पुत्र, कोई मित्र, कोई भ्राता, मातुल और पिता को पुकारते हुए प्रत्येक दिशा में भागते हुए दिखाई दे रहे थे ॥२०॥

चोदयन्तश्च सैन्यानि स्वस्रीयांश्च तथाऽपरे ।
सम्बन्धिनस्तथाऽन्ये च प्राद्रवन्त दिशो दश ॥२१॥

कोई अपने सैनिक, कोई भानजे तथा कोई अपने सम्बन्धियों को पुकारते हुए दशों दिशाओं में भागे चले जा रहे थे ॥२१॥

प्रकीर्णकेशा विध्वस्ता न द्वावेकत्र धावतः ।
नेदमस्तीति मन्वाना हतोत्साहा हतौजसः ॥२२॥

इस समय इनके बाल बिखरे हुए थे और ये बड़े ही जीर्ण-शीर्ण हो रहे थे । ये इतने घबराए हुए थे, कि दो मिलकर साथ नहीं भाग रहे थे । कौरव वीर उत्साह और ओज से हीन हुए यही समझ रहे थे, कि अब कोई भी शेष नहीं बच सकेगा ॥२२॥

उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो ।
अन्योन्यं ते समाक्रोशन्सैनिका भरतर्षभ ॥२३॥

हे भरतर्षभ ! अब तुम्हारे पक्ष के कौरव सैनिकवीर कवचों को छोड़कर भागते हुए अपने २ प्रेमी मित्रों को परस्पर बुलाने लगे ॥२३॥

तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्राऽवतस्थिरे ।
धुर्यानुन्मुच्य च रथाद्धतसूतात्स्वलंकृतान् ।
अधिरुह्य हयान्योधाः क्षिप्रं पद्भिरचोदयन् ॥२४॥

जब भागते हुए वीरों से कोई कहता था, कि तुम ठहरे रहो; तो वे कभी भी नहीं ठहरते थे। वे तो अलङ्कारों से विभूपित उत्तम अश्वों और सारथि विहीन रथ को छोड़कर भागे जाते थे। योद्धा लोग अश्वों पर चढ़कर अपने पैरों की ऐडी मार कर उनको भगाए ले जाते थे ॥२४॥

द्रवमाणे तथा सैन्ये त्रस्तरूपे हतौजसि ।
प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात् ॥२५॥

हे राजन ! जब इस प्रकार ओज रहित होकर घबराई हुई कौरवसेना भागी जाती थी, तो इस समय प्रवाह के विरुद्ध बहने वाले ग्राह की तरह द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने शत्रु-भूत पाण्डवों पर आक्रमण किया ॥२५॥

तस्याऽऽसीत्सुमहद्युद्धं शिखण्डिप्रमुखैर्गणैः ।
प्रभद्रकैश्च पञ्चालैश्चेदिभिश्च सकेकयैः ॥२६॥

अब अश्वत्थामा, शिखण्डी आदि मुख्य वीर तथा प्रभद्रक, पाञ्चाल, चेदि और केकय गणों के साथ घोर युद्ध होने लगा ॥

हत्वा बहुविधाः सेनाः पाण्डूनां युद्धदुर्मदः ।
कथञ्चित्सङ्कटान्मुक्तो मत्तद्विरदविक्रमः ॥२७॥

अब युद्धदुर्मद अश्वत्थामा ने पाण्डवों की बहुत सी सेना मार गिराई। इस समय मदोन्मत्त हाथी की तरह चलने वाले अश्वत्थामा इतने झंझट में फंस गए-कि बड़े प्रयत्न से इस संकट से बच पाए।

द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम् ।
दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥२८॥

भागने में उत्साह दिखाती हुई कौरवसेना को भागती देख कर राजा दुर्योधन के पास जाकर अश्वत्थामा ने यह वचन कहा ॥२८॥

किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत।
द्रवमाणां च राजेन्द्र नाऽवस्थापयसे रणे ॥२६॥

हे भारत! यह सेना भयभीत होकर क्यों भागी जा रही है। हे राजेन्द्र! तुम इस भागती हुई सेना को रण में क्यों नहीं रोक रहे हो ॥२६॥

त्वं चापि न यथापूर्वं प्रकृतिस्थो नराधिप।
कर्णप्रभृतयश्चेमे नाऽवतिष्ठन्ति पार्थिव ॥३०॥

हे नराधिप! तुम भी पूर्व की तरह आज अपने वीर-भाव में स्थित दिखाई नहीं देते। हे राजन्! आज तो कर्ण आदि वीर भी ठहरते दिखाई नहीं दे रहे हैं ॥३०॥

अन्येष्वपि च युद्धेषु नैव सेनाऽद्रवत्तदा।
कच्चित्क्षेमं महाबाहो तव सैन्यस्य भारत ॥३१॥

हे महाबाहो! अन्य युद्धों में तो कभी तुम्हारी सेना इस तरह नहीं भागी। हे भारत! तुम्हारी सेना की क्षेम कुशल तो है ॥३१॥

कस्मिन्निदं हते राजन्रथसिंहे बलं तव।
एतामवस्थां सम्प्राप्तं तन्ममाऽऽचक्ष्व कौरव ॥३२॥

हे राजन्! तुम्हारी सेना में कौन ऐसा रथी वीर मारा गया, जो सेना की यह बुरी अवस्था हो रही है-हे कौरव! तुम मुझे यह सुनाओ ॥३२॥

तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम् ।
घोरमप्रियमाख्यातुं नाऽशक्नोत्पार्थिवर्षभः ॥३३॥

राजा दुर्योधन, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के ये वचन सुनकर बड़े विकल हुए और वे उनसे द्रोण-वध रूपी अप्रिय समाचार के स्पष्ट सुनाने में समर्थ नहीं हुए ॥३३॥

भिन्ना नौरिव तो पुत्रो मग्नः शोकमहार्णवे ।
बाष्पेणाऽपिहितो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम् ॥३४॥

हे राजन् ! इस समय तुम्हारा पुत्र दुर्योधन इस तरह शोक सागर में निमग्न थे, कि जैसे टूटी नौका जल में डूब जाती है। यह रथ में स्थित द्रोणसुत अश्वत्थामा को देखकर फूट २ कर रोने लगा ॥३४॥

ततः शारद्वतं राजा सव्रीडमिदमब्रवीत् ।
शंसाऽत्र भद्रं ते सर्वं यथा सैन्यमिदं द्रुतम् ॥३५॥

अब राजा दुर्योधन ने कुछ लज्जित होकर कृपाचार्य से कहा-हे आचार्य ! तुम अश्वत्थामा को सेना के भाग निकलने का कारण सुना दो ॥३५॥

अथ शारद्वतो राजन्नार्तिमार्च्छन्पुनः पुनः ।
शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥३६॥

हे राजन् ! बार २ पीड़ा का अनुभव करते हुए, शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को वह सारा वृत्तान्त सुनाया, जिस तरह रण में द्रोणाचार्य का वध किया गया ॥३६॥

कृप उवाच— वयं द्रोणं पुरस्कृत्य पृथिव्यां प्रवरं रथम् ।
आवर्तयाम संग्रामं पञ्चालैरेव केवलम् ॥३७॥
ततः प्रवृत्ते संग्रामे विमिश्राः कुरुसोमकाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः शस्त्रैर्देहानपातयन् ॥३८॥

कृपाचार्य कहने लगे—हे अश्वत्थामा ! हम लोग पृथिवी पर सर्वश्रेष्ठ वीर आचार्य द्रोण को आगे करके केवल पञ्चालों के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त हुए। जब संग्राम चल पड़ा और कौरव तथा सोमक वीर परस्पर उलझ गए-तो वे लोग एक दूसरे पर गर्जना करते हुए शस्त्रों का प्रहार करके अपने २ शत्रुओं की देहों का रक्तपात करने लगे ॥३८॥

वर्तमाने तथा युद्धे क्षीयमाणेषु संयुगे ।
धार्तराष्ट्रेषु संक्रुद्धः पिता तेऽस्त्रमुदैरयत् ॥३९॥

जब घोर युद्ध प्रवृत्त हो गया और रण में धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन की सेना का विध्वंस होने लगा, तो तुम्हारे पिता द्रोणाचार्य ने अस्त्र उठाया ॥३९॥

ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं विकुर्वाणो नरर्षभः ।
व्यहनच्छात्रवान्भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥४०॥

अब नरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया और उससे सैंकड़ों हजारों भल्ल नामक बाण छोड़कर शत्रुओं को मार २ कर बिछाना आरम्भ किया ॥४०॥

पाण्डवाः केकया मत्स्याः पञ्चालाश्च विशेषतः ।
संख्ये द्रोणरथं प्राप्य व्यनशन्कालचोदिताः ॥४१॥

हे नृप ! इस समय पाण्डव, केकय, मत्स्य और विशेष करके पञ्चालवीर रण में द्रोणाचार्य के सन्मुख पहुंच कर काल के वश में हुए नष्ट होने लगे ॥४१॥

सहस्रं नरसिंहानां द्विसाहस्रं च दन्तिनाम् ।
द्रोणो ब्रह्मास्त्रयोगेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥४२॥

एक सहस्र अच्छे २ वीर और दो सहस्र हाथी, ब्रह्मास्त्र के योग से द्रोणाचार्य ने यमराज के अधीन किए ॥४२॥

आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥४३॥

आचार्य द्रोण के कान तक के बाल सफेद हो चुके थे और वे आयु में पिच्यासी वर्ष के वृद्ध थे, तो भी रण में सोलह वर्ष के युवा पुरुष की तरह फड़कने लगे ॥४३॥

क्लिश्यमानेषु सैन्येषु वध्यमानेषु राजसु ।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चाला विमुखाऽभवन् ॥४४॥

यद्यपि पञ्चाल, सेना के क्लेशित होने और पराक्रमी राजाओं के मार गिराने पर आवेश में भरे हुए थे तो भी वे रण से विमुख भाग खड़े हुए ॥४४॥

तेषु किञ्चित्प्रभग्नेषु विमुखेषु सपत्नजित् ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणो बभूवार्क इवोदितः ॥४५॥

जब वे पञ्चाल, रण से विमुख होकर भाग निकले-तो शत्रु-विजयी द्रोणाचार्य दिव्य अस्त्र का प्रयोग करते हुए उदीयमान सूर्य की भांति चमकने लगे ॥४५॥

स मध्यं प्राप्य पाण्डूनां शररश्मिः प्रतापवान् ।
मध्यं गत इवाऽऽदित्यो दुष्प्रेक्ष्यस्ते पिताऽभवत् ॥४६

हे महाबाहो ! तुम्हारे प्रतापी पिता द्रोणाचार्य रूपी सूर्य की शररूपी किरणें थी। यह पाण्डवसेना के मध्य में पहुंच कर मध्यान्हकाल के सूर्य की तरह देदीप्यमान होने लगे; जिनकी ओर कोई देखने में भी समर्थ नहीं हो सका ॥४६॥

ते दह्यमाना द्रोणेन सूर्येणेव विराजता ।
दग्धवीर्या निरुत्साहा बभूवुर्गतचेतसः ॥४७॥

वे प्रदीप्त हुए सूर्य की तरह देदीप्यमान हुए द्रोणाचार्य से सन्तप्त हुए पञ्चाल, पराक्रमहीन, निरुत्साही और अचेत से हो गए ॥४७॥

तान्दृष्ट्वा पीडितान्बाणैर्द्रोणेन मधुसूदनः ।
जयैषी पाण्डुपुत्राणामिदं वचनमब्रवीत् ॥४८॥

द्रोणाचार्य द्वारा छोड़े हुए बाणों से पीड़ित पञ्चालों को देखकर पाण्डवों की जय के अभिलाषी मधुसूदन श्रीकृष्ण ने उनसे यह वचन कहा ॥४८॥

नैष जातु नरैः शक्यो जेतुं शस्त्रभृतां वरः ।
अपि वृत्रहणा सङ्ख्ये रथयूथपयूथपः ॥ ४९॥

हे वीरो ! रथों के यूथपतियों के स्वामी, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य को रण में वृत्रासुर नाशक इन्द्र भी जीतने में समर्थ नहीं है, फिर साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है ॥४६॥

ते यूयं धर्ममुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः ।
यथा वः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ॥५०॥

हे पाण्डवों ! अब तो तुम धर्म-युद्ध को छोड़कर प्रवृत्त होओगे-तो तुम्हारी विजय हो सकती है । मैं जिस तरह कह रहा हूं, यदि ऐसा न करोगे-तो सुवर्णरथधारी द्रोणाचार्य, हम सब को रण में मार गिरावेगा ॥५०॥

अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ।
हतं तं संयुगे कश्चिदाख्यात्वस्मै मृषा नरः ॥५१॥

यदि द्रोणाचार्य से यह कह दिया जावे, कि अश्वत्थामा मारा गया-तो यह युद्ध नहीं करेगा-ऐसा मेरा निश्चित मत है । अब कोई मनुष्य जावे और उससे यह कह दे, कि अश्वत्थामा मारा गया ॥५१॥

एतन्नाऽरोचयद्वाक्यं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अरोचयंस्तु सर्वेऽन्ये कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥५२॥

इस वाक्य की कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने तो बिल्कुल पुष्टि न की, परन्तु अन्य वीरों ने इसका बड़ा अनुमोदन किया । राजा युधिष्ठिर भी जैसे-तैसे-इस पर बड़ी कठिनता से सहमत कर लिए गए ॥

भीमसेनस्तु सव्रीडमब्रवीत्पितरं तव ।
अश्वत्थामा हत इति तं नाऽबुध्यत ते पिता ॥५३॥

'अब भीमसेन तुम्हारे पिता के पास पहुंचे और लज्जा के साथ तुम्हारे पिता से कहने लगे-कि अश्वत्थामा मारा गया-परन्तु इस पर तुम्हारे पिता ने कोई विश्वास न किया ॥५३॥

स शंङ्कमानस्तन्मिथ्या धर्मराजमपृच्छत ।
हतं वाऽप्यहतं वाऽऽजौ त्वां पिता पुत्रवत्सलः॥५४॥

पुत्र के प्रेमी तुम्हारे पिता ने भीमसेन की बात को मिथ्या समझ कर उसके सन्देह को मिटाने के लिए धर्मराज से पूछा, कि क्या अश्वत्थामा मारे गए ॥५४॥

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
अश्वत्थामानमायोधे हतं दृष्ट्वा महागजम् ॥५५॥
भीमेन गिरिवर्ष्माणं मालवस्येन्द्रवर्मणः ।
उपसृत्य तदा द्रोणमुच्चैरिदमुवाच ह ॥५६॥

एक ओर तो धर्मराज को असत्य भाषण से भय लगता था: दूसरी ओर विजय की लालसा व्याकुल कर रही थी । उधर रण में मालवराज इन्द्रवर्मा का पर्वत के समान आकारधारी अश्वत्थामा नामक हाथी भीमसेन द्वारा मारा गया था। इस अवस्था में धर्मराज, द्रोणाचार्य के पास पहुंचे और वहां उनसे उच्चस्वर से यह वचन कहा ॥५५-५६॥

यस्याऽर्थे शस्त्रमादत्से यमवेक्ष्य च जीवसि ।
पुत्रस्ते दयितो नित्यं सोऽश्वत्थामा निपातितः ॥५७॥
शेते विनिहतो भूमौ वने सिंहशिशुर्यथा ॥५८॥

हे आचार्य! जिसके लिए तुम जीवित हो और जिसके हित को तुमने शस्त्र उठाए; वह तुम्हारा अत्यन्त प्रिय पुत्र, आज मृत होकर वन में सिंह शिशु के सदृश रणभूमि में पड़ा है ॥५७-५८॥

जानन्नप्यनृतस्याऽथ दोषान्स द्विजसत्तमम् ।
अव्यक्तमब्रवीद्राजा हतः कुञ्जर इत्युत ॥५६॥

यद्यपि धर्मराज, मिथ्याभाषण के दोष को जानते थे, तो भी उन्होंने द्विजश्रेष्ठ द्रोण से हाथी के मरने की बात स्पष्ट रूप में न कहकर बहुत ही छुपे तरह से उसे प्रकट किया ॥५६॥

स त्वां निहतमाक्रन्दे श्रुत्वा सन्तापतापितः ।
नियम्य दिव्यान्यस्त्राणि नाऽयुध्यत यथा पुरा॥६०॥

इस युद्ध में तुम्हें मृत जानकर द्रोणाचार्य दुःख से बड़े ही व्याकुल हुए । उसने दिव्य अस्त्रों का प्रयोग रोक दिया और पूर्व के समान युद्ध उनसे न हो सका ॥६०॥

तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकातुरमचेतसम् ।
पाञ्चालराजस्य सुतः क्रूरकर्मा समाद्रवत् ॥६१॥

जब क्रूर कर्म करने वाले पाञ्चालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को बड़ा उद्विग्न, शोकातुर और अचेत देखा-तो उसने उन पर वेग से आक्रमण कर दिया ॥६१॥

तं दृष्ट्वा विहितं मृत्युं लोकतत्त्वविचक्षणः ।
दिव्यान्यस्त्राण्यथोत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥६२॥

जब लोक के तत्वों को प्रत्यक्ष देखने वाले द्रोणाचार्य ने अपनी दैव-विहित मृत्यु को प्रत्यक्ष देख लिया-तो वह दिव्य अस्त्रों का

प्रयोग छोड़कर प्रायोपवेशन (मौनव्रतधारण) करके चुपचाप बैठ गए ॥६२॥

ततोऽस्य केशान्सव्येन गृहीत्वा पाणिना तदा ।
पार्षतः क्रोशमानानां वीराणामच्छिनच्छिरः ॥६३॥
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सर्वतोऽब्रुवन् ।
तथैव चाऽर्जुनो वाहादवरुह्यैनमाद्रवत् ॥६४॥
उद्यम्य त्वरितो बाहु ब्रुवाणश्च पुनः पुनः ।
जीवन्तमानयाऽऽचार्यं माऽऽवधीरिति धर्मवित् ॥६५॥

इसके अनन्तर धृष्टद्युम्न ने बांयें हाथ से द्रोणाचार्य के बाल पकड़ लिए और अन्य वीरों के जोर से चिल्लाकर रोकने पर भी उसने खड्ग से उनका मस्तक काट ही डाला। सब ओर से यही आवाज आरही थी, कि मारना नहीं? मारो मत? धर्मात्मा अर्जुन भी अपने रथ से उतर कर दौड़े और भुजा उठाकर बोले-कि धृष्टद्युम्न! आचार्य को जीवित पकड़ लाओ-मारना नहीं ॥६३-६५॥

तथा निवार्यमाणेन कौरवैरर्जुनेन च ।
हत एव नृशंसेन पिता तव नरर्षभ ॥६६॥

हे नरर्षभ! इस प्रकार कौरववीर और अर्जुन द्वारा रोके हुए भी नीच धृष्टद्युम्न ने तुम्हारे पिता द्रोणाचार्य को मार ही डाला ॥६६॥

सैनिकाश्च ततः सर्वे प्राद्रवन्त भयार्दिताः ।
वयं चापि निरुत्साहा हते पितरे तेऽनघ ॥६७॥

द्रोणाचार्य के मारे जाने पर सारे सैनिक भयातुर होकर भाग निकले। हे अनघ! तुम्हारे पिता के मारे जाने पर हम लोग भी अन्त में निरुत्साह हो गए ॥६७॥

सञ्जय उवाच—तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं पदाहत इवोरगः ॥६८॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! अपने पिता द्रोणाचार्य का रण में वध सुनकर पैर से कुचले हुए सर्प की तरह अश्वत्थामा अत्यन्त क्रोध में भर गया ॥६८॥

ततः क्रुद्धो रणे द्रौणिर्भृशं जज्वाल मारिष।
यथेन्धनं महत्प्राप्य प्राज्वलद्धव्यवाहनः ॥६९॥

हे आर्य! अब द्रोणाचार्य-पुत्र अश्वत्थामा क्रोध से इस तरह जल उठा-जैसे इन्धन की ढेरी को पाकर अग्नि प्रज्वलित हो उठता है ॥६९॥

तलं तलेन निष्पिष्य दन्तैर्दन्तानुपास्पृशत्।
निःश्वसन्नुरगो यद्वल्लोहिताक्षोऽभवत्तदा ॥७०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्वत्थामक्रोधे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

अश्वत्थामा क्रोध से अपने हाथ मलने और दांतों से दांत पीसने तथा सर्प की सी फूत्कार मारने लगा और इसकी आंखें क्रोध से अत्यन्त लाल हो गई ॥७०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्व में
अश्वत्थामा के द्रोण की- मृत्यु के वृत्तान्त सुनाने का
एक सौ तिरानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



एक सौ चौरानवेवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—अधर्मेण हतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
ब्राह्मणं पितरं वृद्धमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! जब अश्वत्थामा ने युद्ध धर्म के विरुद्ध रण में ब्राह्मणश्रेष्ठ अपने वृद्ध पिता आचार्य द्रोण का मरना सुना-तो अश्वत्थामा ने क्या कहा ॥१॥

मानवं वारुणाग्नेयं ब्राह्ममस्त्रं च वीर्यवान्।
ऐन्द्रं नारायणं चैव यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितम् ॥२॥
तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
श्रुत्वा निहतमाचार्यं सोऽश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥३॥

द्रोणाचार्य के पास मानव, वरुण, आग्नेय, ब्राह्म, ऐन्द्र और नारायणास्त्र जैसे दिव्य अस्त्र सदा विद्यमान रहते थे, उसी धर्म-परायण आचार्य द्रोण को रण में धृष्टद्युम्न द्वारा मारा हुआ सुनकर उसके पुत्र अश्वत्थामा ने क्या कहा ॥३॥

येन रामादवाप्येह धनुर्वेदं महात्मना।
प्रोक्तान्यस्त्राणि दिव्यानि पुत्राय गुणकांक्षिणा ॥४॥

परशुराम से धनुर्वेद की शिक्षा पाकर गुणलोलुप, उस महात्मा आचार्य द्रोण ने अपने पुत्र को सारे दिव्य अस्त्रों का प्रयोग सिखा दिया था ॥४॥

एकमेव हि लोकेऽस्मिन्नात्मना गुणवत्तरम् ।
इच्छन्ति पुरुषाः पुत्रं लोके नाऽन्यं कथञ्चन ॥५॥

इस संसार में प्रत्येक मनुष्य का यह नियम है, कि वह अपने से अधिक पुत्र को गुणवान् होना चाहते हैं-अन्य किसी की उन्नति को कोई भी पुरुष नहीं सह सकते हैं ॥५॥

आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम् ।
तानि पुत्राय वा दद्युः शिष्यायाऽनुगताय वा ॥६॥

महात्मा आचार्यों के पास अपनी २ विद्या के कुछ रहस्य हुआ करते हैं, उनको वे या तो अपने पुत्र को देते हैं या कोई आज्ञा-परायण योग्य शिष्य हो, तो उसे प्रदान करते हैं ॥६॥

स शिष्यः प्राप्य तत्सर्वं सविशेषं च सञ्जय ।
शूरः शारद्वतीपुत्रः संख्ये द्रोणादनन्तरः ॥७॥
रामस्य तु समः शस्त्रे पुरन्दरसमो युधि ।

हे सञ्जय ! अपनी माता शारद्वती के पुत्र अश्वत्थामा अपने पिता द्रोणाचार्य के पुत्र और शिष्य दोनों ही हैं। इन्होंने विशेष रीति के साथ दिव्य अस्त्रों का प्रयोग सीख रखा है। ये रण में इतना पराक्रम दिखा सकते हैं, जो द्रोण से कुछ ही न्यून रह सकता है ॥८॥

कार्तवीर्यसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ॥८॥
महीधरसमः स्थैर्ये तेजसाऽग्निसमो युवा ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये क्रोधे चाऽऽशीविषोपमः ॥९॥

यह शस्त्र-विद्या में परशुराम और युद्ध में इन्द्र के समान बली है । इसका पराक्रम सहस्रार्जुन के तुल्य और इसकी बुद्धि बृहस्पति के सदृश है । यह युवा स्थिरता में पर्वत, तेज में अग्नि, गम्भीरता में समुद्र और क्रोध में आशीविष सर्प के समान माना गया है ॥८-९॥

स रथी प्रथमो लोके दृढधन्वा जितक्लमः ।
शीघ्रोऽनिल इवाऽऽक्रन्दे चरन्क्रुद्ध इवाऽन्तकः ॥१०॥

यह महारथी लोक में दृढ़ धनुष का धारण करने वाला कभी बाण छोड़ता हुआ नहीं थकता है । यह युद्ध में वायु के समान वेग से आगे बढ़ता है और रण में काल की तरह घूमता है ॥१०॥

अस्यता येन संग्रामे धरण्यभिनिपीडिता ।
यो न व्यथति संग्रामे वीरः सत्यपराक्रमः ॥११॥

यह जब बाण छोड़ता है, तो पृथ्वी भी विदीर्ण हो जाती है । यह सत्य पराक्रमी वीर कभी संग्राम में व्यथित नहीं होता है ॥

वेदस्नातो व्रतस्नातो धनुर्वेदे च पारगः ।
महोदधिरिवाऽक्षोभ्यो रामो दाशरथिर्यथा ॥१२॥

यह वेद में पारङ्गत, व्रतस्नात और धनुर्वेद में सुशिक्षित है । यह तो दशरथ-पुत्र रामचन्द्र के बराबर बली और समुद्र की तरह अक्षुभित रहने वाला है ॥१२॥

तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥१३॥

इस प्रकार के गुणों से विभूषित, अश्वत्थामा ने जब रण में धृष्टद्युम्न द्वारा द्रोणाचार्य का मारा जाना सुना-तो वे क्या कहने लगे ॥१३॥

धृष्टद्युम्नस्य यो मृत्युः सृष्टस्तेन महात्मना ।
यथा द्रोणस्य पाञ्चाल्यो यज्ञसेनसुतोऽभवत् ॥१४॥

हे सञ्जय ! इस महात्मा द्रोण ने धृष्टद्युम्न की मृत्यु के लिये इसी अश्वत्थामा को उत्पन्न किया, जैसे-राजा द्रुपद ने द्रोण की मृत्यु के लिये धृष्टद्युम्न को पैदा किया था ॥१४॥

तं नृशंसेन पापेन क्रूरेणाऽदीर्घदर्शिना ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने
चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

उस अधम प्रकृति, अदीर्घदर्शी, क्रूर धृष्टद्युम्न द्वारा आचार्य द्रोण का मारा जाना अश्वत्थामा ने सुना-तो हे सञ्जय ! उसने क्या कहा-यह सुनाओ ॥१५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्व में
एक सौ चौरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ ।



एक सौ पिच्चानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच— छद्मना निहतं श्रुत्वा पितरं पापकर्मणा ।
बाष्पेणाऽऽपूर्यत द्रौणी रोषेण च नरर्षभ ॥१॥

सञ्जय बोले—हे नरर्षभ ! इस प्रकार छल करके पाप-कर्म में तत्पर धृष्टद्युम्न द्वारा अपने पिता की मृत्यु सुनकर अश्वत्थामा रोने लगा और वह क्रोध से ज्वल उठा ॥१॥

तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र वपुर्दीप्तमदृश्यत ।
अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये ॥२॥

हे राजेन्द्र ! क्रोध से परिपूर्ण अश्वत्थामा का शरीर इतना प्रदीप्त हो उठा, कि प्रलयकाल में संसार के प्राणियों का संहार करने में तत्पर काल के शरीर के सदृश प्रतीत होने लगा ॥२॥

अश्रुपूर्णे ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः ।
उवाच कोपान्निःश्वस्य दुर्योधनमिदं वचः ॥३॥

इसने आंसुओं से भरी आंखें पोंछकर और क्रोध पूर्वक श्वास मारकर राजा दुर्योधन से यह वचन कहा ॥३॥

पिता मम यथा क्षुद्रैर्न्यस्तशस्त्रो निपातितः ।
धर्मध्वजवता पापं कृतं तद्विदितं मम ॥४॥
अनार्यं सुनृशंसं च धर्मपुत्रस्य मे श्रुतम् ।

हे राजन् ! जिस तरह धर्म की ध्वजा बनें हुए इन क्षुद्र पापियों ने शस्त्र छोड़कर चुपचाप बैठे हुए मेरे पिता को मार

गिराया-वह सब कुछ मुझे विदित हो गया। मैंने नीचतापूर्ण, अनुचित धर्मराज युधिष्ठिर का भी व्यवहार सुन लिया ॥४॥

युद्धेष्वपि प्रवृत्तानां ध्रुवं जयपराजयौ ॥५॥

द्वयमेतद्भवेद्राजन्वधस्तत्र प्रशस्यते।

हे राजन् ! युद्ध में प्रवृत्त होने वाले, वीरों को तो जय या पराजय एक अवश्य प्राप्त होनी है । यदि इस युद्ध में वीरता के साथ मृत्यु हो जावे-तो वह बहुत ही उत्तम है ॥५॥

न्यायवृत्तो वधो यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत् ॥६॥

न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजैः।

यदि युद्ध के आरम्भ होने पर संग्राम में न्यायानुसार किसी वीर की मृत्यु हो जावे-तो वह किसी दुःख का कारण नहीं मानना चाहिए। पूर्वज महर्षियों ने यही बात कही है ॥६॥

गतः स वीरलोकाय पिता मम न संशयः ॥७॥

न शोच्यः पुरुषव्याघ्र यस्तदा निधनं गतः।

हे पुरुषव्याघ्र ! मेरा पिता तो वीरों के प्राप्त करने योग्य दिव्य लोकों में पहुंच चुका-इसमें सन्देह नहीं है। युद्ध में जब मृत्यु हुई है, तो उसका किसी भी प्रकार शोक करना उचित नहीं है ॥७॥

यत्तु धर्मप्रवृत्तः सन्केशग्रहणमाप्तवान् ॥८॥

पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति।

जब पिताजी प्रायोपवेशन के धर्म में प्रवृत्त होकर बैठ गए-तो सारी सेनाओं के देखते २ जो उनके बाल पकड़े गए-वह बात मेरे मर्मों को काट रही है ॥८॥

मयि जीवति यत्तातः केशग्रहमवाप्तवान् ॥९॥

कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ।

मैं तो जीवित ही रहा और मेरे विद्यमान रहने पर भी पिताजी के बाल पकड़े गए। यदि यही बात है-तो फिर आगे क्यों कोई पिता अपने पुत्र उत्पन्न होने की इच्छा करेगा ॥९॥

कामात्क्रोधादविज्ञानाद्धर्षाद्बाल्येन वा पुनः ॥१०॥
विधर्मकाणि कुर्वन्ति तथा परिभवन्ति च ।
तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतम् ॥११॥
अवज्ञाय च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना ।
तस्याऽनुबन्धं द्रष्टाऽसौ धृष्टद्युम्नः सुदारुणम् ॥१२॥

जो मनुष्य काम, क्रोध, अज्ञान, हर्ष, मूर्खता आदि कारणों से अधर्म के कार्य कर बैठते हैं, वे अवश्य तिरस्कृत होते हैं। इसी तरह आज धृष्टद्युम्न ने भी बड़ा ही अधार्मिक कृत्य किया है। इस नीच दुरात्मा ने मेरी तो कुछ. परवा ही न की। यह एक मेरा बड़ा ही अपमान है। अब धृष्टद्युम्न इस अधर्म का दारुण परिणाम अवश्य देखेगा ॥१०-१२॥

अकार्यं परमं कृत्वा मिथ्यावादी च पाण्डवः ।
यो ह्यसौ छद्मनाऽऽचार्यं शस्त्रं संन्यासयत्तदा ॥१३॥

तस्याऽद्य धर्मराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ।
शपे सत्येन कौरव्य इष्टापूर्तेन चैव ह ॥१४॥

उस मिथ्यावादी पाण्डु-पुत्र धर्मराज ने भी बड़ा अधर्म किया है-जिसने छल करके आचार्य से शस्त्रों का परित्याग करवाया। हे कौरव्य! आज उसी धर्मराज के रक्त का पृथ्वी पान करेगी। यह मैं सत्य और इष्टापूर्त यज्ञ की शपथ खाकर कहता हूं ॥१३-१४

अहत्वा सर्वपञ्चालाञ्जीवेयं न कथञ्चन ।
सर्वोपायैर्यतिष्यामि पञ्चालानामहं वधे ॥१५॥
धृष्टद्युम्नं च समरे हन्ताऽहं पापकारिणम् ।
कर्मणा येन तेनेह मृदुना दारुणेन च ॥१६॥
पञ्चालानां वधं कृत्वा शान्ति लब्धास्मि कौरव ।

हे राजन्! मैं बिना सारे पञ्चालों के मारे कभी जीवन धारण न करूंगा-मैं तो अब सारे उपायों से पञ्चालों के वध में ही संलग्न हो जाऊंगा। पाप कर्मकारी धृष्टद्युम्न को तो मैं उचित या अनुचित किसी भी कठोर या मृदु कर्म से अवश्य मार कर रहूंगा। हे कौरव! अब तो मुझे पञ्चालों के मार लेने पर ही शान्ति प्राप्त हो सकेगी ॥१५-१६॥

यदर्थं पुरुषव्याघ्र पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ॥१७॥
प्रेत्य चेह च संप्राप्तांस्त्रायन्ते महतो भयात् ।

हे पुरुषव्याघ्र! इसी प्रयोजन के निमित्त मनुष्य, पुत्रों की इच्छा करते हैं-कि पुत्र इसलोक और परलोक में प्राप्त होने वाले महान् भय से पिता की रक्षा करें ॥१७॥

पित्रा तु मम साऽवस्था प्राप्ता निर्बन्धुना यथा ॥१८॥
मयि शैलप्रतीकाशे पुत्रे शिष्ये च जीवति ।

हाय ! मेरे पिता की तो आज वही दुर्दशा हुई, जो किसी बन्धु विहीन पुरुष की होती है और मैं पर्वत के समान हट्टा कट्टा पुत्र और शिष्य होकर भी जीता ही रहा ॥१८॥

धिङ् ममाऽस्त्राणि दिव्यानि धिग्बाहू धिक्पराक्रमम् ॥
यं स्म द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहमवाप्तवान् ।

आज मेरे दिव्य अस्त्र, बाहु और पराक्रम को धिक्कार है, कि जो मुझ जैसा पुत्र पाकर भी इस प्रकार केश ग्रहण की विपत्ति को प्राप्त हुए ॥१९॥

स तथाऽहं करिष्यामि यथा भारतसत्तम ॥२०॥
परलोकगतस्याऽपि भविष्याम्यनृणः पितुः ।

हे भरतसत्तम ! अब तो मैं वही करूंगा-जिससे परलोक गए हुए पिता से उऋण हो सकूं ॥२०॥

आर्येण हि न वक्तव्या कदाचित्स्तुतिरात्मनः ॥२१॥
पितुर्वधममृष्यंस्तु वक्ष्याम्यद्येह पौरुषम् ।

आर्य-पुरुष को कभी अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए, परन्तु पिता के वध से क्षुभित होने के कारण मुझे अपना पौरुष सुनाना पड़ रहा है ॥२१॥

अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवाः सजनार्दनाः ॥२२॥
मृद्नतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः ।

आज श्रीकृष्ण के सहित सारे पाण्डव मेरे पराक्रम को देखकर चकित होंगे-जब मैं सारी सेनाओं को कुचल डालूंगा और प्रलयकाल सा मचा दूंगा ॥२२॥

नहि देवा न गन्धर्वा नाऽसुरा न च राक्षसाः ॥२३॥
अद्य शक्ता रणे जेतुं रथस्थं मां नरर्षभाः ।

आज देव, गन्धर्व, असुर, राक्षस या मनुष्य कोई भी रथ में स्थित मुझे रण में जीतने में समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥२३॥

मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मिन्नर्जुनाद्वाऽस्त्रवित्कश्चित् ॥
अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवांऽशुमान् ।

मुझसे और अर्जुन से विशेष इस जगत् में अन्य कोई धनुर्धर नहीं है। मुझे तो वीरों में इस तरह समझो-जैसे प्रकाशक वस्तुओं में किरणमालाधारी सूर्य होता है ॥२४॥

प्रयोक्ता देवसृष्टानामस्त्राणां पृतनागतः ॥२५॥
भृशमिष्वसनादद्य मत्प्रयुक्ता महाहवे ।
दर्शयन्तः शरा वीर्यं प्रमथिष्यन्ति पाण्डवान् ॥२६॥

मैं देव निर्मित अस्त्रों का प्रयोग, शत्रु सेना में पहुंच कर दिखाऊंगा। इस महारण में लगातार मेरे धनुष से निकले हुए बाण मेरे पराक्रम की सूचना देते हुए पाण्डववीरों को जा मथेंगे ॥२५-२६॥

अद्य सर्वा दिशो राजन्धाराभिरिव संकुलाः ।
आवृताः पत्रिभिस्तीक्ष्णैर्द्रष्टारो मामकैरिह ॥२७॥

हे राजन् ! आज सारी दिशाओं को मेरे छोड़े हुए बाणों से दर्शक लोग, इस तरह आच्छादित देखेंगे-जैसे जल धारा से सारी पृथ्वी व्याप्त हो जाती है ॥२७॥

विकिरञ्छरजालानि सर्वतो भैरवस्वनान् ।
शत्रून्निपातयिष्यामि महावात इव द्रुमान् ॥२८॥

मैं सब ओर अपने बाणजाल को फैंकता हुआ भीषण सिंहनाद करते हुए सारे शत्रुओं को इस तरह मार गिराऊंगा-जैसे महावायु, वृक्षों को उखाड़ देती है ॥२८॥

नहि जानाति बीभत्सुस्तदस्त्रं न जनार्दनः ।
न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः ॥२९॥
न पार्षतो दुरात्माऽसौ न शिखण्डी न सात्यकिः ।
यदिदं मयि कौरव्य सकल्पं सनिवर्तनम् ॥३०॥

हे कौरव्य ! उस अस्त्र को न तो अर्जुन जानते हैं और न जनार्दन कृष्ण को ही उस अस्त्र का पता है। भीमसेन, नकुल सहदेव, राजा युधिष्ठिर, दुरात्मा धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि को भी उस नारायणास्त्र का ज्ञान नहीं है। मैं उस अस्त्र का प्रयोग और संहार सब कुछ जानता हूं ॥२९-३०॥

नारायणाय मे पित्रा प्रणम्य विधिपूर्वकम् ।
उपहारः पुरा दत्तो ब्रह्मरूप उपस्थितः ॥३१॥
तं स्वयं प्रतिगृह्याऽथ भगवान्स वरं ददौ ।
वव्रे पिता मे परममस्त्रं नारायणं ततः ॥३२॥

एक बार मेरे पिता द्रोण ने विधिपूर्वक प्रणाम करके भगवान् नारायण को भेंट समर्पित की थी। भगवान् ब्राह्मण के रूप में उपस्थित हुए। उन्होंने उस पूजा को ग्रहण करके आचार्य के लिए वर प्रदान किया ॥२१-२२॥

अथैनमब्रवीद्राजन्भगवान्देवसत्तमः ।
भविता त्वत्समो नाऽन्यः कश्चिद्युधि नरः क्वचित् ॥

हे राजन् ! इस समय देवश्रेष्ठ भगवान् नारायण ने द्रोणाचार्य से यह वचन कहा था, युद्ध में तुम्हारे समान अन्य कोई नहीं हो सकेगा ॥२३॥

नत्विदं सहसा ब्रह्मन्प्रयोक्तव्यं कथञ्चन ।
नह्येतदस्त्रमन्यत्र वधाच्छत्रोर्निवर्त्तते ॥२४॥

हे ब्रह्मन् ! परन्तु इस अस्त्र का तुम एकदम किसी पर प्रयोग नहीं कर देना। यह इतना भीषण अस्त्र है, कि शत्रु वध को किए बिना नहीं लौट पाता है ॥२४॥

न चैतच्छक्यते ज्ञातुं केन वध्येदिति प्रभो ।
अवध्यमपि हन्याद्धि तस्मान्नैतत्प्रयोजयेत् ॥२५॥

हे प्रभो ! यह नहीं जाना जा सकता है, कि किस कारण से यह मारे बिना नहीं रहता, परन्तु यह ठीक है, कि यह अस्त्र अवध्य को मार कर ही रहता है। हे महान् ! इससे इसका सर्वत्र प्रयोग उचित नहीं है ॥२५॥

अथ संख्ये रथस्यैव शस्त्राणां च विसर्जनम् ।
अयाचतां च शत्रूणां गमनं शरणस्य च ॥३६॥

यदि इस अस्त्र का प्रयोग किया जावे, तो रण में शत्रु को रथ और शस्त्र छोड़कर भाग जाना ही पड़ता है या उसे प्राण भिक्षा मांगते हुए शरणागत होना पड़ेगा ॥३६॥

एते प्रशमने योगा महास्त्रस्य परन्तप ।
सर्वथा पीडितो हिंस्यादवध्यान्पीडयन्रणे ॥३७॥

हे परन्तप ! इस महान् अस्त्र के शान्त करने के ये ही उपाय हैं। जब तुम सर्वथा शत्रु द्वारा पीड़ित हो जाओ-तो इसका प्रयोग करो-यह रण में अवध्य शत्रुओं को भी पीड़ित करके ही छोड़ेगा ।

तज्जग्राह पिता मह्यमब्रवीच्चैव स प्रभुः ।
त्वं वधिष्यसि सर्वाणि शस्त्रवर्षाण्यनेकशः ॥३८॥
अनेनाऽस्त्रेण संग्रामे तेजसा च ज्वलिष्यसि ।
एवमुक्त्वा स भगवान्दिवमाचक्रमे प्रभुः ॥३९॥

उसी नारायणास्त्र को शक्तिशाली पिता ने मुझे समर्पित किया है। ऐ पुत्र ! यदि तुम इस नारायणास्त्र का प्रयोग करोगे-तो सारे शत्रु और अनेक प्रकार के शस्त्रवर्षा का नाश कर सकोगे । हे द्रोण ! तुम इस अस्त्र के तेज से संग्राम में प्रज्वलित हो उठोगे। हे राजन् ! इस प्रकार मेरे पिता से बहुत सी बातें कहकर भगवान् नारायण आकाश में उड़ गए ॥३८-३९॥

एतन्नारायणादस्त्रं तत्प्राप्तं पितृबन्धुना ।
तेनाऽहं पाण्डवांश्चैव पाञ्चालान्मत्स्यकेकयान् ॥४०॥
विद्रावयिष्यामि रणे शचीपतिरिवाऽसुरान् ।

हे कुरुराज ! मेरे पिता ने इस प्रकार इस नारायणास्त्र की प्राप्ति की थी। मैं इसी नारायणास्त्र से पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य और केकयवीरों को इस तरह मार भगाऊंगा-जैसे रण में असुरों को इन्द्र मार भगाते हैं ॥४०॥

यथा यथाऽहमिच्छेयं यथा भूत्वा शरा मम ॥४१॥
निपतेयुः सपत्नेषु विक्रमत्स्वपि भारत ।

हे भारत ! मैं जैसी २ रण में इच्छा करूंगा, कि इस तरह मेरे बाण हो जावें और पराक्रम दिखाते हुए शत्रुओं पर गिरें, तो वे वैसे ही हो जावेंगे ॥४१॥

यथेष्टमश्मवर्षेण प्रवर्षिष्ये रणे स्थितः ॥४२॥
अयोमुखैश्च विहगैर्द्रावयिष्ये महारथान् ।
परश्वधांश्च निशितानुत्स्रक्ष्येऽहमसंशयम् ॥४३॥

यदि मैं यह इच्छा करूं, कि रण में पत्थरों की वर्षा करूं, तो उसे भी बरसा सकता हूँ। लोह की चोंच वाले पक्षी छोड़ कर महारथियों को रण से विमुख कर सकता हूं। इसमें तुम सन्देह न समझो, मैं परश्वधों की भी झड़ी लगा दूंगा ॥४२-४३॥

सोऽहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापनः ।
शत्रून्विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥४४॥

मैं इस महान् नारायणास्त्र से शत्रुओं को बड़ा सन्ताप पहुंचा सकता हूं। यह निःसन्देह समझो, कि मैं सारे पाण्डवों को विकल करके सारे शत्रुओं का विध्वंस उड़ा दूंगा ॥४४॥

मित्रब्रह्मगुरुद्रोही जाल्मकः सुविगर्हितः।
पाञ्चालापसदश्चाऽद्य न मे जीवन्विमोच्यते ॥४५॥

अब मैं इस अधम पञ्चालराजकुमार मित्र, ब्राह्मण और गुरुद्रोही, जाल्म (जालिम) निन्दित आचरण वाले धृष्टद्युम्न को मारे बिना न छोड़ूंगा। यह मुझसे बच कर जीवित नहीं जा सकता है ॥४५॥

तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्तत वाहिनी।
ततः सर्वे महाशङ्खान्दध्मुः पुरुषसत्तमाः ॥४६॥

द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा की इस वाणी को सुनकर सारी कौरव-सेना लौट पड़ी और उसमें बड़े २ महारथी अपने विशाल शंखों को बजाने लगे ॥४६॥

भेरीश्चाऽभ्यहनन्हृष्टा डिण्डिमांश्च सहस्रशः।
तथा ननाद वसुधा खुरनेमिप्रपीडिता ॥४७॥
स शब्दस्तुमुलः खं द्यां पृथिवीं च व्यनादयत्।

इन वीरों ने उत्साह में भर कर सहस्रों भेरी नामक बाजे और डिण्डिभ (नगाड़े) बजाए। अश्वों के खुरों से खुदती हुई भूमि भी शब्द सा करने लगी। यह इतना शब्द बढ़ गया, कि जिसने आकाश और पृथिवी को गुंजा दिया ॥४७॥

तं शब्दं पाण्डवाः श्रुत्वा पर्जन्यनिनदोपमम् ॥४८॥
समेत्य रथिनां श्रेष्ठाः सहिताश्चाऽप्यमन्त्रयन् ।

मेघ की ध्वनि के तुल्य भीषण इस गर्जना को सुनकर रथिश्रेष्ठ पाण्डव इकट्ठे हुए और परस्पर मन्त्रणा करने लगे।

तथोक्त्वा द्रोणपुत्रस्तु वार्युपस्पृश्य भारत ॥४९॥
प्रादुश्चकार तद्दिव्यमस्त्रं नारायणं तदा ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामक्रोधे
पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

हे भारत ! द्रोण-पुत्र ने इतना कहकर जल का आचमन लिया और इस प्रकार उसने अपने उस दिव्य नारायणास्त्र का प्रादुर्भाव किया ॥४९-५०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्व में अश्वथामा के क्रोध के वर्णन का एक सौ पिचानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ छियानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच— प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे नारायणे प्रभो ।

प्रावात्सपृषतो वायुरनभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥१॥

चचाल पृथिवी चापि चुक्षुभे च महोदधिः ।

प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च गन्तुं तत्र समुद्रगाः ॥२॥

शिखराणि व्यशीर्यन्त गिरीणां तत्र भारत ।

अपसव्यं मृगाश्चैव पाण्डुसेनां प्रचक्रिरे ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे प्रभो ! जब अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र का प्रादुर्भाव किया-तो उस समय बिन्दुओं के सहित वायु चलने लगा और बिना वर्षा-काल ही मेघों में बिजली चमकने लगी। सारी पृथिवी चल पड़ी और समुद्र में क्षोभ खड़ा हो गया। समुद्र की ओर बहने वाली नदियों के स्रोत उलटे बह निकले। हे भारत ! पर्वतों के शिखर बिखर गए। इस समय मृगों ने पाण्डवों की सेना दांयी ओर की ॥१-३॥

तमसा चाऽवकीर्यन्त सूर्यश्च कलुषोऽभवत् ।

सम्पतन्ति च भूतानि क्रव्यादानि प्रहृष्टवत् ॥४॥

हे नृप ! अब सारी ओर अन्धकार छा गया और सूर्य मैला सा हो गया तथा अत्यन्त प्रफुल्लित होकर मांसभोजी जन्तु इधर उधर से गिरने लगे ॥४॥

देवदानवगन्धर्वास्त्रस्तास्त्वासन्विशाम्पते ।
कथंकथाऽभवत्तीव्रं दृष्ट्वा तद्व्याकुलं महत् ॥५॥

हे विशाम्पते ! देव, दानव और गन्धर्व सारे प्राणी भयातुर हो गए। अब क्या करना चाहिए, इस प्रकार तीव्र चर्चा करते हुए सारी सेना व्याकुल हो उठी ॥५॥

व्यथिताः सर्वराजानस्त्रस्ताश्चाऽऽसन्विशाम्पते ।
तद् दृष्ट्वा घोर रूपं वै द्रौणेरस्त्रं भयावहम् ॥६॥

हे राजन् ! द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के उस घोर भयानक अस्त्र को देखकर सारे राजा भयभीत हो उठे ॥६॥

धृतराष्ट्र उवाच—निवर्तितेषु सैन्येषु द्रोणपुत्रेण संयुगे ।
भृशं शोकाभितप्तेन पितुर्वधममृष्यता ॥७॥
कुरूनापततो दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य रक्षणे ।
को मन्त्रः पाण्डवेष्वासीत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥८॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! अपने पिता के वध के सहने में असमर्थ, शोकातुर, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने जब कौरवसेना वापिस रण में बुलाली और कौरवों को पाण्डवसेना पर आक्रमण करते देखा-तो पाण्डवों ने अपने सेनापति धृष्टद्युम्न की रक्षा में क्या प्रयत्न किया-तुम मुझे यही वृत्तान्त सुनाओ ॥७-८॥

सञ्जय उवाच— प्रागेव विद्रुतान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्युधिष्ठिरः ।
पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वाऽर्जुनमथाऽब्रवीत् ॥९॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! जब राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन की सेना के वीरों को अपने ऊपर झपटते देखा और उनकी भयङ्कर गर्जना सुनी-तो वे अर्जुन से कहने लगे ॥९॥

युधिष्ठिर उवाच— आचार्ये निहते द्रोणे धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
निहते वज्रहस्तेन यथा वृत्रे महासुरे ॥१०॥
नाऽशंसन्तो जयं युद्धे दीनात्मानो धनञ्जय।
आत्मत्राणे मतिं कृत्वा प्राद्रवन्कुरवो रणात् ॥११॥
केचिद्भ्रान्तै रथैस्तूर्णं निहतैः पार्ष्णियन्तृभिः।
विपताकध्वजच्छत्रैः पार्थिवाः शीर्णकूबरैः ॥१२॥
भग्ननीडैराकुलाश्वैः प्रारुह्याऽन्यान्विचेतसः।
भीताः पादैर्हयान्केचित्त्वरयन्तः स्वयं रथान् ॥१३॥
भग्नाक्षयुगचक्रैश्च व्याकृष्यन्त समन्ततः।
रथान्विशीर्णानुत्सृज्य पद्भिः केचिच्च विद्रुताः ॥१४॥

राजा युधिष्ठिर बोले—हे धनञ्जय! इस घोर युद्ध में जब धृष्टद्युम्न ने आचार्य द्रोण को असुरराज वृत्रासुर को वज्रधारी इन्द्र की तरह मार लिया-तो युद्ध में कौरवों को कुछ भी विजय की आशा न रही। वे इस समय बड़े ही दीन हो गए। अपने प्राण बचाने की चेष्टा में पार्ष्णिरक्षक और सारथि के तत्काल मारे जाने तथा चक्कर लगाते हुए रथ के नीड के नष्ट-भ्रष्ट और अश्वों के व्याकुल होने पर जीर्णशीर्ण कूबर (रथाग्रभाग) से संयुक्त, पताका, ध्वजा और छत्रों से हीन रथों से अन्य मूर्च्छित

अवस्था में पड़े हुए वीरों को कुचलते हुए भयभीत राजा लोग रण से भाग निकले। कोई अपने पैरों से अश्वों को दबा कर स्वयं रथों को चलाने लगे। कहीं अश्व, टूटे धुरे, जूड़े और चक्रों के सहित रथों को सब ओर खैंचे फिरते थे और कुछ वीर तो जीर्ण-शीर्ण रथों को छोड़कर पैदल ही भाग निकले ॥१०-१४॥

हयपृष्ठगताश्चाऽन्ये कृष्यन्तेऽर्धच्युतासनाः ।
गजस्कन्धेषु संस्यूता नाराचैश्चलितासनाः ॥१५॥

अश्वारोही वीरों के आसन (जीन) अश्वों की पीठ से आधे खसक गए। उन पर ही लटकते हुए बहुत से वीर दिखाई देते थे। यही दशा गजारोही वीरों की थी; वे भी बाणों से बिंधकर अपने गजासन से विचलित हो रहे थे ॥१५॥

शरार्तैर्विद्रुतैर्नागैर्हृताः केचिद्दिशो दश ।
विशस्त्रकवचाश्चाऽन्ये वाहनेभ्यः क्षितिं गताः ॥१६॥
सञ्छिन्ना नेमिभिश्चैव मृदिताश्च हयद्विपैः ।
क्रोशन्तस्तात पुत्रेति पलायन्ते परे भयात् ॥१७॥
नाऽभिजानन्ति चाऽन्योन्यं कश्मलाभिहतौजसः ।

कुछ वीरों को बाण से बींधे हुए हाथी दशों दिशाओं को ले भागे तथा शस्त्र और कवच से हीन कुछ वीर अपने २ वाहनों से नीचे गिर पड़े। रथ की नेमि से घायल हुए इन वीरों को अश्व और हाथियों ने ही कुचल डाला। उनमें कुछ हे तात ! हे पुत्र ! इस प्रकार पुकारते हुए भय से भाग चले। मृत्यु के भय

से इनके चित्त इतने व्याकुल हो चुके थे, कि ये एक दूसरे को पहिचानते भी न थे ॥१६-१७॥

पुत्रान्पितॄन्सखीन्भ्रातॄन्समारोप्य दृढक्षतान् ॥१८॥
जलेन क्लेदयन्त्यन्ये विमुच्य कवचान्यपि ।

बहुत से वीरों ने अत्यन्त घाव खाये हुए अपने पुत्र, पिता, मित्र, भाई आदि को अपने साथ ले जाकर और उनके कवच खोलकर उन्हें सचेत करने को पानी से सींचते थे ॥१८॥

अवस्थां तादृशीं प्राप्य हते द्रोणे द्रुतं बलम् ॥१९॥
पुनरावर्तितं केन यदि जानासि शंस मे ।

हे अर्जुन ! द्रोणाचार्य के मरने पर सारी कौरवसेना की उपर्युक्त दशा हो गई और वह भाग निकली, परन्तु फिर वह किस तरह लौट आई-यदि तुम यह जानते हो-तो मुझे सुनाओ ।

हयानां हेषतां शब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ॥२०॥
रथनेमिस्वनैश्चाऽत्र विमिश्रः श्रूयते महान् ।

अश्वों की हिनहिनाहट और हाथियों की चिंघाड़ के शब्द, रथ की नेमि की ध्वनि से मिलकर बहुत ही अधिक सुनाई दे रहे हैं ॥२०॥

एते शब्दा भृशं तीव्राः प्रवृत्ताः कुरुसागरे ॥२१॥
मुहुर्मुहुरुदीर्यन्ते कम्पयन्त्यपि मामकान् ।

कुरुवंश की सेना रूपी समुद्र में इस प्रकार तीव्र शब्द की बार २ प्रवृत्ति हो रही है, जिनसे मेरी सेना के वीर भयभीत होकर कांपने लगते हैं ॥२१॥

य एष तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥२२॥
सेन्द्रानप्येष लोकांस्त्रीन्ग्रसेदिति मतिर्मम ।

जो यह लोमों को खड़े कर देने वाली घोर ध्वनि सुनी जा रही है; यह इतनी भीषण है, कि यह इन्द्रादि के लोकों के साथ त्रिलोकी को व्याप्त कर सकती है, ऐसा मेरा खयाल है ॥२२॥

मन्ये वज्रधरस्यैष निनादो भैरवस्वनः ॥२३॥
द्रोणे हते कौरवार्थं व्यक्तमभ्येति वासवः ।

मैं तो यही समझता हूं, कि यह वज्रधारी इन्द्र का ही भीषण शब्द है, वह द्रोणाचार्य के मारे जाने पर कौरवों की ओर से स्वयं आक्रमण करने आया है ॥२३॥

प्रहृष्टरोमकूपाश्च संविग्ना रथपुङ्गवाः ॥२४॥
धनञ्जय गुरुं श्रुत्वा तत्र नादं सुभीषणम् ।
क एष कौरवान्दीर्णानवस्थाप्य महारथः ॥२५॥
निवर्तयति युद्धार्थं मृधे देवेश्वरो यथा ।

हे धनञ्जय ! इस भीषण घोर ध्वनि को सुनकर हमारे अच्छे २ महारथियों के रोमांच खड़े हो गए और वे इसमें डूब से गए। इन भागे हुए कौरववीरों को रोककर कौन महारथी युद्ध के लिए देवेश्वर इन्द्र की भांति रणभूमि में बढ़ा चला आता है।

अर्जुन उवाच— उद्यम्याऽऽत्मानमुग्राय कर्मणे वीर्यमास्थिताः
धमन्ति कौरवाः शङ्खान्यस्य वीर्यं समाश्रिताः ।
यत्र ते संशयो राजन्न्यस्तशस्त्रे गुरौ हते ॥२७॥

धार्तराष्ट्रानवस्थाप्य क एष नदतीति हि ।
ह्रीमन्तं तं महाबाहुं मत्तद्विरदगामिनम् ॥२८॥
व्याघ्रास्यमुग्रकर्माणं कुरूणामभयङ्करम् ।
यस्मिञ्जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम् ॥२९॥
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति ।

अर्जुन बोले—हे राजन्! आपने पूछा है, कि अपने को उठा कर और पराक्रम का अवलम्बन लेकर वीर-कर्म करने को उद्यत हुए कौरववीर, किसके बलविक्रम के आश्रय से शंख बजा रहे हैं। तुमको अब इस विषय में संशय हो रहा है, कि शस्त्रत्याग कर देने पर आचार्य द्रोण के मारे जाने पर धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन के वीरों को रोक कर कौन गरज रहा है, तो यह आपको मालूम होना चाहिए, कि यह अश्वत्थामा गरज रहा है। यह महाबाहु बहुत कुछ ह्री (गैरत) का रखने और मदोन्मत्त हाथी की भाँति चलने वाला है। इसका मुख सिंह की भांति भीषण है। यह बड़े भयङ्कर वीर कर्म करने में तत्पर और कौरवों को अभयदान देने में समर्थ है। इसकी उत्पत्ति के समय द्रोणाचार्य ने एक सहस्र गोदान उत्तम २ ब्राह्मणों को दान में दी थी ॥२६-२९॥

जातमात्रेण वीरेण येनोच्चैःश्रवसा यथा ॥३०॥
हेषता कम्पिता भूमिर्लोकाश्च सकलास्त्रयः ।
तच्छ्रुत्वाऽन्तर्हितं भूतं नाम तस्याऽकरोत्तदा ॥३१॥
अश्वत्थामेति सोऽद्यैष शूरो नदति पाण्डव ।

हे पाण्डव ! जिस वीर ने उत्पन्न होते ही उच्चैःश्रवा अश्व की भांति हिनहिनाहट की, जिससे सारी भूमि और तीनों लोक कम्पित कर दिए। उस अश्वध्वनि को सुनकर किसी अलक्षित देव ने उसका नाम अश्वत्थामा रखा था, यह वही वीर आज गर्जना कर रहा है ॥३०-३१॥

योऽ ह्यनाथ इवाऽऽक्रम्य पार्षतेन हतस्तथा ॥३२॥
कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः ।
गुरुं मे यत्र पाञ्चाल्यः केशपक्षे परामृशत् ॥३३॥
तन्न जातु क्षमेद् द्रौणिर्जानन्पौरुषमात्मनः ।

मेरे गुरु द्रोणाचार्य को अनाथ समझकर पर्षतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न ने उसके बाल पकड़ कर बड़े अधम कृत्य से मार डाला, इस बात को द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा भी क्षमा नहीं कर सकता, क्योंकि उसको अपने बल पर भरोसा है। वे आचार्य अनाथ नहीं रहे-उनका पुत्र, उनका नाथ (सहायक) विद्यमान निकला ॥३२-३३॥

उपचीर्णो गुरुर्मिथ्या भवता राज्यकारणात् ॥३४॥
धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मः सुमहान्कृतः ।
चिरं स्थास्यति चाऽकीर्तिस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥३५॥
रामे वालिवधाद्यद्वदेवं द्रोणे निपातिते ।

हे राजन् ! आपने भी राज्य के कारण से अपने पूज्य गुरु की प्रवञ्चना की है। आपने तो बड़े धर्मात्मा होकर भी यह महान् अधर्म कर डाला। इस द्रोणवध के कारण से तुम्हारी चराचर

त्रिलोकी में इसी तरह अकीर्ति रहेगी, जैसे बालि के वध से राम की अकीर्ति हो रही है ॥२४-२५॥

सर्वधर्मोपपन्नोऽयं स मे शिष्यश्च पाण्डवः ॥२६॥
नाऽयं वदति मिथ्येति इत्ययं कृतवांस्त्वयि ।
स सत्यकंचुकं नाम प्रविष्टेन ततोऽनृतम् ॥२७॥
आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर इत्युत ।

द्रोणाचार्य तो समझते थे, कि धर्मराज सारे धर्मों से सुसम्पन्न और मेरे शिष्य हैं-यह मिथ्या नहीं बोल सकते । उनको तो यही विश्वास था, परन्तु आपने तो यह सत्य का झूंठा अँगरखा पहिन रखा था, उसके भीतर तो झूंठ ही छुपी थी । आपने अस्पष्ट रूप में यह कहा, कि अश्वत्थामा नामक हाथी मारा गया है ॥२६-२७॥

ततः शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः ॥२८॥
आसीत्सुविह्वलो राजन्यथा दृष्टस्त्वया विभुः ।

हे राजन ! उसी समय द्रोणाचार्य ने मोह रहित होकर शस्त्र छोड़ दिए और बहुत ही व्याकुल हो गए, जो आपने स्वयं देखा था।

स तु शोकसमाविष्टो विमुखः पुत्रवत्सलः ॥२९॥
शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुः शस्त्रेण घातितः ।

पुत्र से प्रेम करने वाले आचार्य द्रोण शोकातुर होकर युद्ध से विमुख हो गए। उसी आचार्य को सनातन धर्म छोड़कर धृष्टद्युम्न द्वारा शस्त्र से आपने मरवा डाला ॥२९॥

न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान् ॥४०॥
रक्षत्विदानीं सामात्यो यदि शक्तोऽसि पार्षतम् ।

आपने शस्त्ररहित पूज्य आचार्य को अधर्म से मरवा डाला है, अब यदि तुममें शक्ति है, तो अमात्यों को साथ लेकर पर्षत-कुमार धृष्टद्युम्न की रक्षा करो ॥४०॥

ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण क्रुद्धेन हतबन्धुना ॥४१॥
सर्वे वयं परित्रातुं न शक्ष्यामोऽद्य पार्षतम् ।

आज अपने पिता के मारे जाने से क्रोध में फंसे हुए आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा के पंजे में धृष्टद्युम्न फंस चुका है-अब हम सब लोग उसके बचाने में समर्थ नहीं हैं ॥४१॥

सौहार्दं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमानुषः ॥
सोऽद्य केशग्रहं श्रुत्वा पितुर्धक्ष्यति नो रणे ॥४२॥

जिस अश्वत्थामा ने सारे मनुष्यों से अधिक सारे प्राणियों पर दया का भाव दिखाया है, वह आज अपने पिता के केश ग्रहण को सुनकर हमारे रण में आग लगा देगा और सबको भस्म कर डालेगा ॥४२॥

त्रिक्रोशमाने हि मयि भृशमाचार्यगृद्धिनि ।
अपाकीर्य स्वयं धर्मं शिष्येण निहतो गुरुः ॥४३॥

मैं तो आचार्य द्रोण के प्राण बचाना चाहता था । मेरे पुकारते २ अपने धर्म का नाश करके शिष्य-भूत धृष्टद्युम्न ने अपने गुरु को मार गिराया ॥४३॥

यदा गतं वयो भूयः शिष्टमल्पतरं च नः ।
तस्येदानीं विकारोऽयमधर्मोऽयं कृतो महान् ॥४४॥

हमारी बहुत सी आयु व्यतीत हो गई और बहुत ही थोड़ी शेष रह गई है। यह उसी वृद्धावस्था का परिणाम है, जिससे बुद्धि विकृत हो गई और तुमने यह महान् अधर्म कर डाला ॥४४॥

पितेव नित्यं सौहार्दात्पितेव हि च धर्मतः ।
सोऽल्पकालस्य राज्यस्य कारणाद्घातितो गुरुः ॥४५॥

हे राजन् ! जो पिता की तरह प्रेम करता था और धर्मानुसार पिता ही था; उसी पूज्य पिता को थोड़े काल के राज्य के लोभ से तुमने मार गिराया ॥४५॥

धृतराष्ट्रेण भीष्माय द्रोणाय च विशाम्पते ।
विसृष्टा पृथिवी सर्वा सह पुत्रैश्च तत्परैः ॥४६॥
सम्प्राप्य तादृशीं वृत्तिं सत्कृतः सततं परैः ।
अवृणीत सदा पुत्रान्मामेवाऽभ्यधिकं गुरुः ॥४७॥

हे विशाम्पते ! राजा धृतराष्ट्र ने भीष्म और द्रोण के लिए अपने पुत्रों की अनुमति से सारी पृथिवी अर्पण कर रखी थी । उसको धृतराष्ट्र द्वारा इतनी उत्तम वृत्ति प्राप्त थी और कौरवों ने उसका इतना समादर किया था, इतने पर भी आचार्य द्रोण अपने पुत्र से भी अधिक मुझे ही माना करते थे ॥४६-४७॥

अवेक्षमाणस्त्वां मां च न्यस्तास्त्रश्चाऽऽहवे हतः ।
नत्वेनं युध्यमानं वै हन्यादपि शतक्रतुः ॥४८॥

ये शस्त्र-हीन आचार्य तो तुम्हारी और मेरी ओर कातर दृष्टि से देखते रहे और धृष्टद्युम्न ने रण में उन्हें मार गिराया। यदि द्रोणाचार्य युद्ध करते रहते, तो उनको शतक्रतु इन्द्र भी नहीं मार सकता था ॥४८॥

तस्याऽऽचार्यस्य वृद्धस्य द्रोहो नित्योपकारिणः।
कृतो ह्यनार्यैरस्माभी राज्यार्थे लुब्धबुद्धिभिः ॥४९॥

ऐसे कृपालु, नित्य उपकार में तत्पर, वृद्ध आचार्य द्रोण का हम लालची अनार्य पुरुषों ने राज्य के लोभ से वध कर डाला ॥४९॥

अहो बत महत्पापं कृतं कर्म सुदारुणम्।
यद्राज्यसुखलोभेन द्रोणोऽयं साधु घातितः ॥५०॥

अहो? यह तो हमने बड़ा भारी पाप और दारुण कर्म कर डाला, जो राज्य और सुख के लोभ से महात्मा द्रोण का वध करवा दिया ॥५०॥

पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄन्दाराञ्जीवितं चैव वासविः।
त्यजेत्सर्वं मम प्रेम्णा जानात्येवं हि मे गुरुः ॥५१॥
स मया राज्यकामेन हन्यमानो ह्युपेक्षितः।
तस्मादर्वाक्शिरा राजन्प्राप्तोऽस्मि नरकं प्रभो।

आचार्य द्रोण यह जानते थे, कि इन्द्र-पुत्र अर्जुन, पुत्र, भ्राता, पिता, स्त्रियां और जीवन तक को मेरे प्रेम के कारण छोड़ सकता है। उन्हीं आचार्य को राज्य के लोभ से मारे जाते हुए देखकर भी मैंने इसकी उपेक्षा की। हे राजन्! इस पाप से मैं शिर नीचा करके नरक में लटकाया जाऊंगा ॥५१-५२॥

ब्राह्मणं वृद्धमाचार्यं न्यस्तशस्त्रं महामुनिम् ॥५२॥
घातयित्वाऽद्य राज्यार्थे मृतं श्रेयो न जीवितम् ॥५३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अर्जुनवाक्ये षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९६॥

हे राजन्! शस्त्र त्याग कर मुनि की तरह बैठे हुए ब्राह्मणश्रेष्ठ, वृद्ध आचार्य द्रोण का राज्य के लिए वध करवा कर जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही कल्याणकारक है ॥५३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्व में अर्जुन का धर्मराज को फटकारने का एक सौ छियानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एक सौ सत्तानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच— अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः
अप्रियं वा प्रियं वाऽपि महाराज धनञ्जयम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज! अर्जुन के इस वचन को सुनकर वहां जितने भी महारथी थे, उनमें से किसी ने अच्छा या बुरा कुछ भी अर्जुन से नहीं कहा ॥१॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्भीमसेनोऽभ्यभाषत।
कुत्सयन्निव कौन्तेयमर्जुनं भरतर्षभ ॥२॥

हे भरतर्षभ ! इस समय केवल महाबाहु भीमसेन कुपित हुए और वे अर्जुन को फटकारते हुए उससे कहने लगे ॥२॥

मुनिर्यथाऽऽरण्यगतो भाषते धर्मसंहितम् ।
न्यस्तदण्डो यथा पार्थ ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥३॥
क्षतत्राता क्षताज्जीवन्क्षन्ता स्त्रीष्वपि साधुषु ।
क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः श्रियः ॥४॥

हे पार्थ ! जिस प्रकार अरण्यवासी (वानप्रस्थी) मुनि या व्रतशील, दण्डहीन, परमहंस ब्राह्मण, धर्म का उपदेश करते हैं आज तो तुम भी वैसे ही उपदेश दे रहे हो, परन्तु जो दुःखों से रक्षा करके खड्ग पर अपनी जीविका रखे और स्त्री तथा साधु पुरुषों पर क्षमा करता रहे, क्षत्रिय तो वही होता है और वही संसार में शीघ्र पृथिवी, धर्म, यश और राज्यैश्वर्य को प्राप्त करने में समर्थ होता है ॥३-४॥

स भवान्क्षत्रियगुणैर्युक्तः सर्वैः कुलोद्वहः ।
अविपश्चिद्यथा वाचं व्याहरन्नाऽद्य शोभसे ॥५॥

हे अर्जुन ! तुम भी क्षत्रियवर्ण के अनुकूल गुणधारी बनते हो और योग्य क्षत्रियकुल की धुर के धारण करने वाले हो। इस दशा में तुम मूर्ख की तरह बातें करते हुए शोभित नहीं होते हो।

पराक्रमस्ते कौन्तेय शक्रस्येव शचीपतेः ।
न चाऽतिवर्तसे धर्मं वेलामिव महोदधिः ॥६॥

न पूजयेत्त्वां को न्वद्य यत्त्रयोदशवार्षिकम् ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा धर्ममेवाऽभिकांक्षसे ॥७॥

हे कौन्तेय ! तुम्हारा पराक्रम शचीपति इन्द्र के बराबर प्रसिद्ध है। जिस प्रकार समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है-उसी प्रकार तुम भी धर्म की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते हो। तुमको कौन आदर की दृष्टि से नहीं देखेगा, जो तुमने क्रोध और आवेश को पीछे करके तेरह वर्ष तक वनवास किया और धर्म-पालना को ही अपना कर्तव्य समझा ॥६-७॥

दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्तते ।
आनृशंस्ये च ते दिष्ट्या बुद्धिः सततमच्युत ॥८॥
यत्तु धर्मप्रवृत्तस्य हृतं राज्यमधर्मतः ।
द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय शत्रुभिः ॥९॥
वनं प्रव्राजिताश्चाऽऽस्म वल्कलाजिनवाससः ।
अनर्हमाणास्तं भावं त्रयोदशसमाः परैः ॥१०॥

हे तात ! तुम्हारा मन धर्म में प्रवृत्त होता है, यह तो बड़े आनन्द की बात है। हे अच्युत ! तुम्हारी बुद्धि नीच कर्म में प्रवृत्त नहीं होती-यह भी बहुत उत्तम है, परन्तु यह तो बताओ, कि तुम तो धर्म में प्रवृत्त थे, फिर इन दुष्टों ने अधर्म में प्रवृत्त होकर कैसे तुम्हारा राज्य छीन लिया। इन शत्रुओं ने सभा में लाकर द्रौपदी को जो अपमानित किया-उस पर तुम क्या कहते हो। हम लोग वन के योग्य नहीं थे, उनको तेरह वर्ष तक इन शत्रुओं ने वल्कल के वस्त्र धारण कराकर वन में घुमाया ॥८-१०

एतान्यमर्षस्थानानि मर्षितानि मयाऽनघ।
तत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम् ॥११॥

हे अनघ! ये सब कुछ मेरे क्रोध के प्रचण्ड कर देने के कारण थे, परन्तु मैंने उन सबका सहन किया। अब क्षत्रिय धर्मानुसार जो यह सब कुछ हो रहा है-वह भी मैं कर रहा हूं ॥११॥

तमधर्ममपाकृष्टं स्मृत्वाऽद्य सहितस्त्वया।
सानुबन्धान्हनिष्यामि क्षुद्रान्राज्यहरानहम् ॥१२॥

उन नीचता से युक्त अधर्म पूर्ण कार्यों का आज मुझे स्मरण हो रहा है। अब तो मैं तुमको साथ लेकर हमारे राज्य के अपहरण करने वाले, इन नीच शत्रुओं का इनकी सेना के साथ हनन कर देना चाहता हूं ॥१२॥

त्वया हि कथितं पूर्वं युद्धायाऽभ्यागता वयम्।
घटामहे यथाशक्ति त्वं तु नोऽद्य जुगुप्ससे ॥१३॥

जब हम लोग युद्ध में प्रवृत्त हुए, तो तुमने विश्वास दिलाया था, कि मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर इस युद्ध को जीतूँगा, परन्तु आज तुम ही हमारी निन्दा कर रहे हो ॥१३॥

धर्ममन्विच्छसि ज्ञातुं मिथ्यावचनमेव ते।
भयार्दितानामस्माकं वाचा मर्माणि कृन्तसि ॥१४॥

तुम एक ओर तो धर्म का प्रवचन करना चाहते हो और दूसरी ओर मिथ्या (धर्महीन) वचन कह रहे हो। हम तो इस

समय स्वयं ही भयातुर हो रहे हैं, इस पर भी तुम वाणी द्वारा हमारे मर्मों को और छेद रहे हो॥१४॥

वपन्त्रणे क्षारमिव क्षतानां शत्रुकर्शन।
विदीर्यते मे हृदयं त्वया वाक्शल्यपीडितम्॥१५॥

हे शत्रुकर्शन! अर्जुन! आज तो तुम हम घायलों के घावों में नमक डाल रहे हो। हमारा तो हृदय तुम्हारी वाणी के बाण से बहुत ही बिंध गया है॥१५॥

अधर्ममेनं विपुलं धार्मिकः सन्न बुध्यसे।
यत्त्वमात्मानमस्मांश्च प्रशंस्यान्न प्रशंससि॥१६॥

तुम तो धर्म की व्यवस्था जानते हो, फिर कैसे तुमको इस महान् अधर्म का का ज्ञान नहीं हो रहा है, कि जो प्रशंसा के योग्य, अपने आप और हमारी प्रशंसा नहीं कर रहे हो॥१६॥

वासुदेवे स्थिते चापि द्रोणपुत्रं प्रशंससि।
यः कलां षोडशीं पूर्णां धनञ्जय न तेऽर्हति॥१७॥
स्वयमेवाऽऽत्मनो द्रोणान्स्त्रुवाणः किन्न लज्जसे।

श्रीकृष्ण जैसे महानुभाव तुम्हारे सामने खड़े हैं और तुम द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा की प्रशंसा कर रहे हो। हे धनञ्जय! वह तो तुम्हारे पराक्रम की सोलहवीं कला भी प्राप्त नहीं कर सकता है। तुम अपने मिथ्यादोष आप ही करते हुए लज्जित भी नहीं होते॥

दारयेयं महीं क्रोधाद्विकिरेयं च पर्वतान्॥१८॥
आविध्यैतां गदां गुर्वीं भीमां काञ्चनमालिनीम्।
गिरिप्रकाशान्क्षितिजान्भञ्जेयमनिलो यथा॥१९॥

हे भरतर्षभ ! मैं अपने क्रोध में भर जाने पर पृथिवी को चीर सकता हूं, पर्वतों को ढहा सकता हूं। सुवर्ण से जटित इस भयानक भारी गदा को घुमाकर पर्वत के ऊपर स्थित वृक्षों को इस तरह तोड़ सकता हूं; जैसे वायु उन्हें तोड़ डालती है ॥१८-१९॥

द्रावयेयं शरैश्चापि सेन्द्रान्देवान्समागतान् ।
सराक्षसगणान्पार्थ सासुरोरगमानवान् ॥२०॥

हे पार्थ ! मैं अपने बाणों से युद्ध में सन्मुख आये हुए इन्द्र के साथ देवों, राक्षसगण, असुर, उरग और मानवों को अच्छी तरह मार सकता हूं ॥२०॥

स त्वमेवंविधं जानन्भ्रातरं मां नरर्षभ ।
द्रोणपुत्राद्भयं कर्तुं नार्हस्यमितविक्रम ॥२१॥

हे नरर्षभ ! जब तुम अपने भ्राता भीम को ऐसा जानते भी हो, तो हे अत्यन्त पराक्रमी ! फिर तुमको अश्वत्थामा से भय नहीं करना चाहिए ॥२१॥

अथवा तिष्ठ बीभत्सो सह सर्वैः सहोदरैः ।
अहमेनं गदापाणिर्जेष्याम्येको महाहवे ॥२२॥

हे अर्जुन ! अब तुम सारे भाइयों को लेकर चुप बैठ जाओ-मैं अकेला ही हाथ में गदा लेकर इस घोर युद्ध में इन सारे कौरवों को जीते देता हूं ॥२२॥

ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः पार्थमथाऽब्रवीत् ।
संक्रुद्धमिव नर्दन्तं हिरण्यकशिपुर्हरिम् ॥२३॥

अब पाञ्चालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न ने भगवान् विष्णु से हिरण्यकशिपु के तुल्य क्रोध के साथ गर्जना करते हुए भीमसेन से यह वचन कहा—॥२३॥

धृष्टद्युम्न उवाच—

बीभत्सो विप्रकर्माणि विदितानि मनीषिणाम् ।
याजनाध्यापने दानं तथा यज्ञप्रतिग्रहौ ॥२४॥
षष्ठमध्ययनं नाम तेषां कस्मिन्प्रतिष्ठितः ।
हतो द्रोणो मया ह्येवं किं मां पार्थ विगर्हसे ॥२५॥
अपक्रान्तः स्वधर्माच्च क्षात्रधर्मं व्यपाश्रितः ।
अमानुषेण हन्त्यस्मानस्त्रेण क्षुद्रकर्मकृत् ॥२६॥

धृष्टद्युम्न बोले-हे अर्जुन ! मनीषीगण, ब्राह्मणों के कर्म, यज्ञ करना और यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना, अध्ययन करना और अध्ययन कराना मानते आए हैं। द्रोणाचार्य इनमें से एक में भी स्थित नहीं थे। हे पार्थ ! मैंने क्षत्रियधर्म में स्थित देखकर द्रोणाचार्य को मार दिया, अब तुम मेरी क्यों निन्दा करते हो। वे तो अपने धर्म से च्युत होकर क्षत्रियधर्म में स्थित थे। धर्म के विरुद्ध कर्म करने वाले द्रोणाचार्य ने तो अपने अस्त्र द्वारा मनुष्यत्व का भी परित्याग करके हमको मार कर बिछा दिया।

तथा मायां प्रयुञ्जानमसह्यं ब्राह्मणब्रुवम् ।
माययैव निहन्याद्यो न युक्तं पार्थ तत्र किम् ॥२७॥

ब्राह्मणत्व से च्युत हुए इस द्रोणाचार्य ने अपनी इतनी माया फैला दी, कि असह्य हो गया था, क्या ऐसे धूर्त का माया द्वारा मार लेना-अर्जुन ! उचित नहीं है ? ॥२७॥

तस्मिंस्तथा मया शस्ते यदि द्रौणायनी रुषा ।
कुरुते भैरवं नादं तत्र किं मम हीयते ॥२८॥

इस दशा में जब मैंने द्रोणाचार्य का वध कर डाला और इससे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा यदि क्रोध में मर गया और भीषण सिंह-नाद कर रहा है, तो इससे मेरा क्या बिगड़ता है ॥२८॥

न चाऽद्भुतमिदं मन्ये यद् द्रौणिर्युद्धसंज्ञया ।
घातयिष्यति कौरव्यान्परित्रातुमशक्नुवन् ॥२६॥

यह कोई अद्भुत बात नहीं है, कि द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा अपने वीरों को युद्ध के लिए प्रेरित कर रहा है । इस तरह तो यह अपने कौरववीरों का नाश ही करावेगा, क्योंकि यह उनकी रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकेगा ॥२६॥

यच्च मां धार्मिको भूत्वा ब्रवीषि गुरुघातिनम् ।
तदर्थमहमुत्पन्नः पाञ्चाल्यस्य सुतोऽनलात् ॥३०॥

तुम जो धार्मिक होकर भी मुझे गुरुघाती कह कर मुझ पर आक्षेप करते हो-परन्तु क्या तुमको पता नहीं है, मैं तो द्रुपद का पुत्र यज्ञाग्नि से उत्पन्न ही द्रोण के वध के निमित्त हुआ हूं ॥३०॥

यस्य कार्यमकार्यं वा युध्यतः स्यात्समं रणे ।
तं कथं ब्राह्मणं ब्रूयाः क्षत्रियं वा धनञ्जय ॥३१॥

हे धनञ्जय ! जिसको युद्ध के समय कार्य-अकार्य का कुछ भी ज्ञान नहीं था, उसे तुम ब्राह्मण या क्षत्रिय कैसे कह सकते हो।

यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद् ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्छितः।
सर्वोपायैर्न स कथं वध्यः पुरुषसत्तम ॥२२॥

हे पुरुषोत्तम ! जो पुरुष क्रोधातुर होकर अपने ब्रह्मास्त्र से ब्रह्मास्त्र के नहीं जानने वाले वीरों को मारने लगता है, उसका तो सारे उपायों से वध करना ही चाहिए ॥२२॥

विधर्मिणं धर्मविद्भिः प्रोक्तं तेषां विषोपमम्।
जानन्धर्मार्थतत्त्वज्ञ किं मामर्जुन गर्हसे ॥२३॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य, धर्म के तत्व को नहीं जानता है, उसका तो विष के तुल्य परित्याग कर देना चाहिए। तुम तो धर्म के तत्व को जानने वाले हो, फिर मेरी क्यों निन्दा कर रहे हो।

नृशंसः स मयाऽऽक्रम्य रथ एव निपातितः।
तन्मामनिन्द्यं बीभत्सो किमर्थं नाऽभिनन्दसे ॥२४॥

हे अर्जुन ! मैंने तो उस धर्महीन पतित ब्राह्मण का रथ में आक्रमण करके वध कर डाला है। इस तरह सब प्रकार की निन्दा के अयोग्य, मुझ प्रशंसनीय की तुम प्रशंसा क्यों नहीं करते हो ॥२४॥

कालानलसमं पार्थ ज्वलनार्कविषोपमम्।
भीमं द्रोणशिरश्छिन्नं न प्रशंससि मे कथम् ॥२५॥

हे पार्थ ! कालानल के समान भीषण, अग्नि, सूर्य और विष के तुल्य जाज्वल्यमान, भयङ्कर द्रोण के मस्तक को काट कर मैंने पृथिवी में गिरा दिया-फिर भी तुम मेरी क्यों नहीं प्रशंसा करते हो।

योऽसौ ममैव नाऽन्यस्य बान्धवान्युधि जघ्निवान् ।
छित्त्वाऽपि तस्य मूर्धानं नैवाऽस्मि विगतज्वरः ॥३६॥

जिसने मेरी ही सेना या बान्धवों को मार मार कर बिछा दिया अन्य किसी को प्रायः युद्ध में नहीं मारा-आज मुझे उस द्रोण का शिर काट कर भी शान्ति नहीं मिल रही है ॥३६॥

तच्च मे कृन्तते मर्म यन्न तस्य शिरो मया ।
निषादविषये क्षिप्तं जयद्रथशिरो यथा ॥३७॥

हे अर्जुन ! मेरे तो मर्मों को यही बात छेद रही है, कि मैंने द्रोणाचार्य के शिर को जयद्रथ के शिर की भांति निषादों (कुत्ते या सियारों) के बीच में नहीं फैंका ॥३७॥

अथाऽवधश्च शत्रूणामधर्मः श्रूयतेऽर्जुन ।
क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं हन्याद्धन्येत वा पुनः ॥३८॥

हे अर्जुन ! शत्रु का नहीं मारना ही क्षत्रिय के लिए अधर्म है। क्षत्रिय का तो धर्म ही यह है, कि या तो वह शत्रु को मार लेवे या स्वयं मारा जावे ॥३८॥

स शत्रुर्निहतः संख्ये मया धर्मेण पाण्डव ।
यथा त्वया हतः शूरो भगदत्तः पितुः सखा ॥३९॥

हे पाण्डव ! मैंने तो क्षत्रिय धर्म के अनुसार ही अपने शत्रु द्रोण का रणाङ्गण में वध किया है। क्या तुमने अपने पिता के मित्र शूरवीर राजा भगदत्त का हनन नहीं किया ॥३९॥

पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः ।
मया शत्रौ हते कस्मात्पापे धर्मं न मन्यसे ॥४०॥

जब तुम भीष्मपितामह को मार कर भी इसे अपना धर्म मानते हो-तो मैंने भी अपने शत्रु का वध किया है। सामान्यावस्था के पाप को तुम विशेषावस्था में धर्म क्यों नहीं मानते हो ॥४०॥

सम्बन्धावनतं पार्थ न मां त्वं वक्तुमर्हसि ।
स्वगात्रकृतसोपानं निषण्णमिव दन्तिनम् ॥४१॥

हे अर्जुन ! मैं तो सम्बन्ध के कारण तुमसे दब रहा हूँ-परन्तु तुमको इस तरह नहीं कहना चाहिए। मेरी तो वही दशा है, जैसे हाथी अपने ही शरीर को सोपान (सिढ़ी) बना कर बैठ पड़ता है।

क्षमामि ते सर्वमेव वाग्व्यतिक्रममर्जुन ।
द्रौपद्या द्रौपदेयानां कृते नाऽन्येन हेतुना ॥४२॥

हे अर्जुन ! मैं तो तुम्हारी इस वाणी के व्यवहार को द्रौपदी और उसके पुत्रों की वृद्धि के लिए ही सह रहा हूं-इसका अन्य कोई हेतु नहीं है ॥४२॥

कुलक्रमागतं वैरं ममाऽऽचार्येण विश्रुतम् ।
तथा जानात्ययं लोको न यूयं पाण्डुनन्दनाः ॥४३॥

मेरा तो द्रोणाचार्य के साथ कुल क्रमागत वैर चला आता है, यह बहुत प्रसिद्ध है। यह सारा संसार इस बात को जानता है-क्या तुम पाण्डव इस बात को नहीं जानते ॥४३॥

नाऽनृती पाण्डवो ज्येष्ठो नाऽहं वाऽधार्मिकोऽर्जुन ।
शिष्यद्रोही हतः पापो युध्यस्व विजयस्तव ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नवाक्ये सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९७॥

हे अर्जुन ! राजा युधिष्ठिर ने कोई झूँठ नहीं बोला और न मैंने ही कोई अधर्म किया है। मैंने तो व्यर्थ (नाहक) ही शिष्य से द्रोह करने वाले गुरु का वध किया है-तुम युद्ध करो-तुम्हारी ही विजय होगी ॥४४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत नारायणास्त्रविमोक्ष पर्व में धृष्टद्युम्न के वाक्य का एक सौ सत्तानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

एक सौ अट्ठानवेवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

साङ्गा वेदा यथान्यायं येनाऽधीता महात्मना ।
यस्मिन्साक्षाद्धनुर्वेदो ह्रीनिषेवे प्रतिष्ठितः ॥१॥
यस्य प्रसादात्कुर्वन्ति कर्माणि पुरुषर्षभाः ।
अमानुषाणि संग्रामे देवैरसुकराणि च ॥२॥
तस्मिन्नाक्रुश्यति द्रोणे समक्षं पापकर्मणा ।
नीचात्मना नृशंसेन क्षुद्रेण गुरुघातिना ॥३॥
नाऽमर्षं तत्र कुर्वन्ति धिक्क्षात्रं धिगमर्षिताम् ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! जिस महात्मा द्रोणाचार्य ने विधि के अनुसार अङ्ग सहित सारे वेदों को पढ़ा, जिस लज्जाशील द्रोण में सारा धनुर्वेद साक्षात स्थित था, जिसके अनुग्रह से पुरुष-प्रवीर, संग्राम में देवों से भी दुष्कर, मनुष्यातिशायी कर्म कर दिखाते हैं, उसी द्रोण की नीच, अधम, पापी, क्षुद्र और गुरुघाती धृष्टद्युम्न ने सबके सन्मुख निन्दा की-तो उस समय किसी भी क्षत्रिय को क्रोध नहीं हुआ, इससे तो सारे क्षत्रियवंश को धिक्कार है और इन वीरों की मरी हुई वृत्ति को भी धिक्कार है ॥१-३॥

पार्थाः सर्वे च राजानः पृथिव्यां ये धनुर्धराः ॥४॥
श्रुत्वा किमाहुः पाञ्चाल्यं तन्ममाऽचक्ष्व सञ्जय ।

हे सञ्जय ! जितने पाण्डव और धनुर्धर राजा वहां उपस्थित थे-उन्होंने सुनकर क्या कहा-तुम मुझे वह सुनाओ ॥४॥

सञ्जय उवाच— श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य ता वाचः क्रूरकर्मणः ॥

तूष्णीं बभूव राजानः सर्व एव विशाम्पते ।

अर्जुनस्तु कटाक्षेण जिह्मं विप्रेक्ष्य पार्षतम् ॥६॥

सबाष्पमतिनिःश्वस्य धिग्धिगित्येव चाऽब्रवीत् ।

सञ्जय ने कहा—हे विशाम्पते ! द्रुपद-पुत्र क्रूरकर्मा, धृष्टद्युम्न की इस वाणी को सुनकर सारे राजा चुप हो गए। हां ? अर्जुन ने दुष्ट धृष्टद्युम्न को तिरछी दृष्टि से देखा। उसने आंसुओं के साथ अत्यन्त खैंचकर निःश्वास लिया और धिक् धिक् की आवाज लगाई ॥५-६॥

युधिष्ठिरश्च भीमश्च यमौ कृष्णस्तथाऽपरे ॥७॥

आसन्सुव्रीडिता राजन्सात्यकिस्त्वब्रवीदिदम् ।

नेहाऽस्ति पुरुषः कश्चिद इमं पापपूरुषम् ॥८॥

भाषमाणमकल्याणं शीघ्रं हन्यान्नराधमम् ।

हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव और श्रीकृष्ण, ये सारे लज्जित हो गए-परतु सात्यकि ने यह वचन कहा, कि क्या कोई वीर-पुरुष यहां नहीं है; जो इस पापी अकल्याणकारी वाणी बोलते हुए नराधम धृष्टद्युम्न का वध करे ॥७-८॥

एते त्वां पाण्डवाः सर्वे कुत्सयन्ति विवित्सया ॥९॥

कर्मणा तेन पापेन श्वपाकं ब्राह्मणा इव ।

ये सारे पाण्डव, धर्म के ज्ञाता होने से इस पाप के कारण तुम्हारी इस प्रकार निन्दा कर रहे हैं, जैसे ब्राह्मण श्वपाक (चण्डाल) की निन्दा करता है ॥९॥

एतत्कृत्वा महत्पापं निन्दितः सर्वसाधुभिः ॥१०॥
न लज्जसे कथं वक्तुं समितिं प्राप्य शोभनाम् ।

तुमने यह महा पापपूर्ण कर्म किया है; जिसकी सारे महात्मा निन्दा करते हैं। तुम इस परम शोभन सभा में भी यह कहते हुए क्यों नहीं लज्जित होते हो ॥१०॥

कथं च शतधा जिह्वा न ते मूर्धा च दीर्यते ॥११॥
गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाऽधर्मेण पात्यसे ।

हे क्षुद्र ! तेरी जिह्वा और मस्तक के सौ टुकड़े क्यों नहीं हो जाते हैं। गुरु की निन्दा के अधर्म से भी क्या तेरा पतन नहीं होगा ॥११॥

वाच्यस्त्वमसि पार्थैश्च सर्वैश्चाऽन्धकवृष्णिभिः ॥१२॥
यत्कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे जनसंसदि ।

तुम्हारी सारे पाण्डव और अन्धकवृष्णिवंश के वीर निन्दा कर रहे हैं, जो निन्दित कर्म करके भी इस सभा में अपनी डींग मारता है ॥१२॥

अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन् ॥१३॥
वध्यस्त्वं न त्वयाऽर्थोऽस्ति मुहूर्तमपि जीवता ।
कस्त्वेतद्व्यवसेदार्यस्त्वदन्यः पुरुषाधम ॥१४॥
निगृह्य केशेषु वधं गुरोर्धर्मात्मनः सतः ।

हे पुरुषाधम ! तुमने एक तो अधर्म के साथ गुरु का-वध किया और फिर उनकी निन्दा करते हो, इससे तुम तो मारने के योग्य

हो। इस दशा में तुम्हारा क्षण भर जीवित रहना भी अच्छा नहीं है। कौन आर्य-पुरुष तुमसे पृथक् होगा, जो अपने धर्मात्मा सज्जन गुरु के केश पकड़ कर इस तरह वध कर डाले ॥१३-१४॥

सप्ताऽवरे तथा पूर्वे बान्धवास्ते निमज्जिताः ॥१५॥

यशसा च परित्यक्तास्त्वां प्राप्य कुलपांसनम्।

तुमने अपने वंश के सात इधर और सात उधर के पुरुषों को नरक में डाल दिया। अब तुझ जैसे कुल कलङ्की पुरुष को पाकर उनका सारा यश भ्रष्ट हो गया है ॥१५॥

उक्तवांश्चापि यत्पार्थे भीष्मं प्रति नरर्षभ ॥१६॥

तथाऽन्तो विहितस्तेन स्वयमेव महात्मना।

तस्याऽपि तव सोदर्यो निहन्ता पापकृत्तमः ॥१७॥

हे नरर्षभ ! तुमने जो अर्जुन द्वारा भीष्म के मार देने की बात कही, वह तो उस महात्मा ने स्वयं ही अपनी मृत्यु बता दी थी और उसमें भी तुम्हारा ही सहोदर भाई शिखण्डी मुख्य था; वही पापी होना चाहिए ॥१६-१७॥

नाऽन्यः पाञ्चालपुत्रेभ्यो विद्यते भुवि पापकृत्।

स चापि सृष्टः पित्रा ते भीष्मस्याऽन्तकरः किल ॥

पाञ्चाल-पुत्रों के सिवा कोई पापी दिखाई ही नहीं देता है। तुम्हारे पिता ने तो उसे भी भीष्म के मारने के लिए ही उत्पन्न किया था ॥१८॥

शिखण्डी रक्षितस्तेन स च मृत्युर्महात्मनः ।
पाञ्चालाश्चलिता धर्मात्क्षुद्रा मित्रगुरुद्रुहः ॥१६॥
त्वां प्राप्य सहसोदर्यं धिक्कृतं सर्वसाधुभिः ।

अर्जुन ने तो केवल शिखण्डी की रक्षा की थी, परन्तु महात्मा भीष्म की मृत्यु तो शिखण्डी ही था। ये पञ्चाल ही धर्म से च्युत और मित्र तथा पूज्यों के वध करने वाले हैं। तुम्हारी और तुम्हारे भ्राता शिखण्डी पर सारे महात्माओं ने धिक्कार की ध्वनि लगाई थी ॥१६॥

पुनश्चेदीदृशीं वाचं मत्समीपे वदिष्यसि ॥२०॥
शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ।

यदि तुमने फिर कभी मेरे सन्मुख यह वाणी कही, तो मैं वज्र के समान अपनी गदा से तेरा शिर चूर २ कर डालूंगा ॥२०॥

त्वां च ब्रह्महणं दृष्ट्वा जनः सूर्यमवेक्षते ॥२१॥
ब्रह्महत्या हि ते पापं प्रायश्चित्तार्थमात्मनः ।

तुम ब्रह्मघातक हो, इससे तुमको देखकर मनुष्य को सूर्य के दर्शन करने चाहिए। यह द्रोणवध रूपी ब्रह्म-हत्या तो बड़ा भारी पाप है और तुम्हें प्रायश्चित्ती बनाती है ॥२१॥

पाञ्चालक सुदुर्वृत्त ममैव गुरुमग्रतः ॥२२॥
गुरोर्गुरुं च भूयोऽपि क्षिपन्नैव हि लज्जसे ।

हे दुराचारी ! पाञ्चालक ! तुम मेरे गुरु अर्जुन के सन्मुख उनके गुरु द्रोणाचार्य की बार २ निन्दा करते हुए लज्जित नहीं होते हो ॥२२॥

तिष्ठ तिष्ठ सहस्वैकं गदापातमिमं मम ॥२३॥
तव चापि सहिष्येऽहं गदापातानेकशः ।

अरे धृष्टद्युम्न ! अब तू जरा ठहर और मेरी इस गदा की चोट को सम्हाल । यदि तुम भी गदा फैंकते हो-तो फैंको-मैं तुम्हारी अनेकों गदा की चोटें सह कर दिखा दूंगा ॥२३॥

सात्वतेनैवमाक्षिप्तः पार्षतः परुषाक्षरम् ॥२४॥
संरब्धं सात्यकिं प्राह संक्रुद्धः प्रहसन्निव ।

हे राजन् ! सात्वतवंशोद्भव सात्यकि ने इस तरह कटु वचनों से धृष्टद्युम्न पर आक्षेप किया-तो आवेशातुर सात्यकि से कुछ बनावटी मुस्कुराते हुए धृष्टद्युम्न ने क्रोध-पूर्वक यह वचन कहा ॥२४

धृष्टद्युम्न उवाच—श्रूयते श्रूयते चेति क्षम्यते चेति माधव ॥२५॥
सदाऽनार्योऽशुभः साधुं पुरुषं क्षेप्तुमिच्छति ।

धृष्टद्युम्न बोले—हे माधव ! मैंने तुम्हारा वचन सुन लिया । मैं तो ऐसे वचनों की परवाह नहीं किया करता । जो पापी अनार्य-पुरुष होता है-वह सर्वदा आर्य-पुरुष पर इसी तरह मिथ्या आक्षेप करता रहता है ॥२५॥

क्षमा प्रशस्यते लोके न तु पापोऽर्हति क्षमाम् ॥२६॥
क्षमावन्तं हि पापात्मा जितोऽयमिति मन्यते ।

जगत् में क्षमा की बड़ी प्रशंसा है, परन्तु पापी पुरुष क्षमा का कुछ मूल्य नहीं करता है । पापी मनुष्य तो क्षमाशील पुरुष को यही समझता है, कि मैंने इसे जीत लिया है ॥२६॥

स त्वं क्षुद्रसमाचारो नीचात्मा पापनिश्चयः ॥२७॥
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि ।

हे सात्यकि ! तुम तो स्वयं क्षुद्रकर्म परायण, नीचात्मा और पाप-निश्चयी हो। तुम तो नख से लेकर शिखा तक निन्दनीय हो; इस पर भी दूसरे की निन्दा करना चाहते हो ॥२७॥

यः स भूरिश्रवाश्छिन्नभुजः प्रायगतस्त्वया ॥२८॥
वार्यमाणेन हि हतस्ततः पापतरं नु किम् ।

हे सात्यकि ! भूरिश्रवा की भुजा जब अर्जुन ने काट डाली और वह व्रत करके बैठ गया-तो तुमको सबने रोका-परन्तु तुमने उसे मार डाला-बताओ ! इससे अधिक पाप क्या होगा ॥२८॥

गाहमानो मया द्रोणो दिव्येनाऽस्त्रेण संयुगे ॥२९॥
निसृष्टशस्त्रो निहतः किं तत्र क्रूर दुष्कृतम् ।

हे क्रूर ! सात्यकि ! मेरा दिव्य अस्त्रों से द्रोणाचार्य के साथ युद्ध हो रहा था, जब उसने अन्त में अस्त्र छोड़ दिए-तो इसमें मेरा क्या दुष्कर्म हुआ ॥२९॥

अयुध्यमानं यस्त्वाजौ तथा प्रायगतं मुनिम् ॥३०॥
छिन्नबाहुं परैर्हन्यात्सात्यके स कथं वदेत् ।

जो रण में युद्ध नहीं कर रहा था और उपवास करके मुनि की तरह बैठ गया, जिसकी भुजाएँ कटी पड़ी थी, उस भूरिश्रवा को मार कर भी तुम क्या बोलने का अधिकार रखते हो ॥३०॥

निहत्य त्वां पदा भूमौ स विकर्षति वीर्यवान् ॥३१॥
किं तदा न निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः ।

तुम सर्वश्रेष्ठ योद्धा बनते हो-जब तुम्हारे पैर की ठोकर लगा कर भूरिश्रवा ने तुमको रण में खैंचा, तो उस समय तुमने उनको क्यों नहीं मार दिया ॥३१॥

त्वया पुनरनार्येण पूर्वं पार्थेन निर्जितः ॥३२॥
यदा तदा हतः शूरः सौमदत्तिः प्रतापवान् ।

हे सात्यकि ! तू तो इतना अनार्य पुरुष है, कि प्रथम अर्जुन ने जिसका मर्दन कर डाला था, उसी सोमदत्त-पुत्र प्रतापी भूरिश्रवा का वध करके उस मृतक को तूने फिर मार डाला ॥३२॥

यत्र यत्र तु पाण्डूनां द्रोणो द्रावयते चमूम् ॥३३॥
किरञ्छरसहस्राणि तत्र तत्र प्रयाम्यहम् ।

मेरी वीरता तो देखो, कि जिधर २ द्रोणाचार्य ने पाण्डवों की सेना को मार २ कर भगाया; मैं उधर २ ही सहस्रों बाणों की वर्षा करता हुआ पहुंच जाता था ॥३३॥

स त्वमेवंविधं कृत्वा कर्म चाण्डालवत्स्वयम् ॥३४॥
वक्तुमर्हसि वक्तव्यः कस्मात्त्वं परुषाण्यथ ।

तुमने तो भूरिश्रवा का वध रूप महान् दुष्कर्म चण्डाल की तरह किया था । तुम्हारी तो अन्य लोगों को निन्दा करनी चाहिए, फर तुम कैसे कटु वचन कह रहे हो ॥३४॥

कर्ता त्वं कर्मणो ह्यस्य नाऽहं वृष्णिकुलाधम ॥२५॥

पापानां च त्वमावासः कर्मणां मा पुनर्वद ।

हे वृष्णिकुलाधम ! तुम ही अनर्थ रूप पाप कर्मों के कर्ता हो-मैं नहीं हूं। तुम तो पाप कर्मों की पिटारी हो-आगे फिर ऐसा न कहना ॥२५॥

जोषमास्व न मां भूयो वक्तुमर्हस्यतः परम् ॥२६॥

अधरोत्तरमेतद्धि यन्मां त्वं वक्तुमर्हसि ।

अब तुम चुप रहो-आगे फिर बोलने की चेष्टा न करना। यह तुम्हारी बहुत ही गिरावट है, जो ऐसा कहने को उद्यत हो रहे हो।

अथ वक्ष्यसि मां मौर्ख्याद् भूयः परुषमीदृशम् ॥२७॥

गमयिष्यामि बाणैस्त्वां युधि वैवस्वतक्षयम् ।

इसके आगे मूर्खता से फिर ऐसे कठोर वचन कहे-तो मैं अपने बाणों से तुमको यमराज के घर भेज दूंगा ॥२७॥

न चैवं मूर्खः धर्मेण केवलेनैव शक्यते ॥२८॥

तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु यादृशम् ।

हे माधव ! विजय केवल धर्म से नहीं हो सकती। तुम देखते नहीं हो, कौरवों ने कितने अधर्म करके विजय प्राप्त की थी। तुम उनके अधर्म कृत्यों को ध्यान से सुनो ॥२८॥

वञ्चितः पाण्डवः पूर्वमधर्मेण युधिष्ठिरः ॥२९॥

द्रौपदी च परिक्लिष्टा तथाऽधर्मेण सात्यके ।

हे सात्यके ! अधर्म से ही कौरवों ने पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर को ठग लिया और अधर्म-पूर्वक ही उन्होंने द्रौपदी को सभा में लाकर दुःखी किया ॥३९॥

प्रव्राजिता वनं सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ॥४०॥
सर्वस्वमपकृष्टं च तथाऽधर्मेण बालिश ।

हे मूर्ख ! इन सारे पाण्डवों को द्रौपदी के साथ वन में भेजा और उनका सर्वस्व छीन लिया-यह सब कुछ कौरवों ने अधर्म से ही तो किया था ॥४०॥

अधर्मेणाऽपकृष्टश्च मद्रराजः परेरितः ॥४१॥
अधर्मेण तथा बालः सौभद्रो विनिपातितः ।

मद्रराज शल्य हमारी ओर आ रहा था, उसे अधर्म-पूर्वक राजा दुर्योधन ने अपनी ओर मिलाया और अधर्म के द्वारा ही बालक अभिमन्यु को रण में मार गिराया ॥४१॥

इतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः परपुरञ्जयः ॥४२॥
भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः ।

इधर की ओर से भी भीष्मपितामह को अधर्म से मार लिया और तुम बहुत धर्म के ज्ञाता बनते हो-तुमने भी स्वयं भूरिश्रवा को अधर्म से ही मारा है ॥४२॥

एवं परैराचरितं पाण्डवेयैश्च संयुगे ॥४३॥
रक्षमाणैर्जयं वीरैर्धर्मज्ञैरपि सात्वत ।

हे सात्वत ! इस महायुद्ध में कौरव और पाण्डवों ने अपनी २ विजय के लिए सब कुछ अधर्म के कृत्य किए हैं-जो सारे ही धर्मात्मा बनते हैं ॥४३॥

दुर्ज्ञेयः स परो धर्मस्तथाऽधर्मश्च दुर्विदः ॥४४॥
युध्यस्व कौरवैः सार्धं मा गाः पितृनिवेशनम् ।

हे सात्यकि ! सत्यधर्म क्या वस्तु है और अधर्म किसे कहते हैं, यह जानना बड़ा ही कठिन है। अब तो तुम दिल खोलकर कौरवों से युद्ध करो। मुझ से झगड़ा करके अपने पिता के पास यमलोक में जाने की इच्छा न करो ॥४४॥

सञ्जय उवाच— एवमादीनि वाक्यानि क्रूराणि परुषाणि च ॥
श्रावितः सात्यकिः श्रीमानाकम्पित इवाऽभवत् ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब इस तरह के क्रूर और कठोर वचन धृष्टद्युम्न ने तेजस्वी सात्यकि को सुनाए-तो वह क्रोध से अत्यन्त कम्पित हो उठा ॥४५॥

तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षः सात्यकिस्त्वाददे गदाम् ॥
विनिःश्वस्य यथा सर्पः प्रणिधाय रथे धनुः ।
ततोऽभिपत्य पाञ्चाल्यं संरम्भेणेदमब्रवीत् ॥४७॥
न त्वां वक्ष्यामि परुषं हनिष्ये त्वां वधक्षमम् ।

धृष्टद्युम्न के ये कठोर वचन सुनकर सात्यकि की आंखें क्रोध से लाल हो उठीं और उसने गदा उठाई। वह सर्प की तरह श्वास ले रहा था। इसने अपना धनुष रथ में रख दिया। वह झपट

कर क्रोध में भरा हुआ पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न पर झपटा और कहने लगा, कि मैं कठोर वचन नहीं बोला करता-मैं तो मारने योग्य तुम्हें अभी मार दिखाता हूँ ॥४६-४७॥

तमापतन्तं सहसा महाबलममर्षणम् ॥४८॥
पाञ्चाल्यायाऽभिसंक्रुद्धमन्तकायाऽन्तकोपमम् ।
चोदितो वासुदेवेन भीमसेनो महाबलः ॥४९॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं बाहुभ्यां समवारयत् ।

जब महाबली, असह्य, क्रोधातुर, कालोपम सात्यकि को काल के तुल्य धृष्टद्युम्न पर झपटता देखा, तो श्रीकृष्ण ने भीमसेन की ओर संकेत किया। अब महाबली भीमसेन बड़ी शीघ्रता से अपने रथ से कूद पड़े और अपनी भुजाओं से पकड़ कर उनको रोक दिया।

द्रवमाणं तथा क्रुद्धं सात्यकिं पाण्डवो बली ॥५०॥
प्रस्यन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात् ।
स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ भीमेन शिनिपुङ्गवः ॥५१॥
निगृहीतः पदे षष्ठे बलेन बलिनां वरः ।

क्रोध में भर कर झपटते हुए कम्पायमान महाबली सात्यकि को पकड़ कर भीमसेन बल-पूर्वक वहां से उसे उठाकर ले जाने लगा था उसने अपने पैर जमाकर उसे रोकना चाहा-तो भी शिनि-वंशश्रेष्ठ महाबली सात्यकि जैसे-तैसे छः पद (कदम) पर आकर भीमसेन से रोका जा सका ॥५०-५१॥

अवरुह्य रथात्तूर्णं भ्रियमाणं बलीयसा ॥५२॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सहदेवो विशाम्पते ।

अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्रमन्यन्न विद्यते ॥५३॥

परमन्धकवृष्णिभ्यः पञ्चालेभ्यश्च मारिष ।

तथैवाऽन्धकवृष्णीनां तथैव च विशेषतः ॥५४॥

कृष्णस्य च तथाऽस्मत्तो मित्रमन्यन्न विद्यते ।

हे विशाम्पते ! अपने रथ से कूद कर बलवान भीमसेन द्वारा जब सात्यकि रोक लिया गया-तो अब सहदेव, मधुर वाणी द्वारा यह वचन बोला—हे पुरुषव्याघ्र ! आर्य ! हमारे तो अन्धक और वृष्णिवंश के वीर तथा पाञ्चालवीरों के अतिरिक्त अन्य कोई मित्र ही नहीं रह पाया है । इस पर भी अन्धक, वृष्णिवंश और श्रीकृष्ण से अधिक तो हमारा अन्य कोई मित्र ही नहीं है ॥५२-५४॥

पञ्चालानां च वार्ष्णेय समुद्रान्तां विचिन्वताम् ॥५५॥

नाऽन्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णयः ।

हे वार्ष्णेय ! यदि पाञ्चालवीर भी यह खोजेंगे, कि हमारा कौन मित्र है, तो समुद्रपर्यन्त पृथिवी तक खोज निकालने पर भी उनको वृष्णि और पाण्डव जैसे दृढ़ मित्र नहीं मिलेंगे ॥५५॥

स भवानीदृशं मित्रं मन्यते च यथा भवान् ॥५६॥

भवन्तश्च यथाऽस्माकं भवतां च तथा वयम् ।

आप जितने बड़े मनुष्य हैं, उतने ही हमको भी मित्र मानते हो । आप जितने हमारे हो-उतने ही हम आपके हैं ॥५६॥

स एवं सर्वधर्मज्ञ मित्रधर्ममनुस्मरन् ॥५७॥

नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात्प्रशाम्य शिनिपुङ्गव ।

पार्षतस्य क्षम त्वं वै क्षमतां पार्षतश्च ते ॥५८॥
वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद्भवेत् ।

हे सर्व धर्म के ज्ञाता ! शिनिपौत्र ! तुम हमारे मित्र धर्म का स्मरण करके क्रोध को शान्त करो और पाञ्चालवीर धृष्टद्युम्न से सहयोग करो। तुमको धृष्टद्युम्न को क्षमा कर देनी चाहिये और धृष्टद्युम्न तुम पर क्षमा करे। हम तो तुम सब की सब कुछ सुन कर चुप हो रहे हैं, क्योंकि शान्ति से अधिक क्या वस्तु है ॥५८॥

प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष ॥५९॥
पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।

हे आर्य ! जब सहदेव ने सात्यकि को शान्त कर दिया तो कुछ मुस्कुराता हुआ पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न यह वचन बोला।

मुञ्च मुञ्च शिनेः पौत्रं भीम युद्धमदान्वितम् ॥६०॥
आसादयतु मामेष धराधरमिवाऽनिलः ।

हे भीम ! तुम युद्ध-मद से परिपूर्ण, शिनिपौत्र सात्यकि को छोड़ दो। अब यह मेरे पास आकर पर्वत में वायु के तुल्य स्वयं रुक जावेगा ॥६०॥

यावदस्य शितैर्बाणैः संरम्भं विनयाम्यहम् ॥६१॥
युद्धश्रद्धां च कौन्तेय जीवितं चाऽस्य संयुगे ।

हे कौन्तेय ! मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से इसके क्रोध को अब ठण्डा कर देता हूं। मैं इस युद्ध में इसके रणकौशल का मद चूर कर दूँगा और इसके प्राणों को भी निकाल फैंकूंगा ॥६१॥

किं नु शक्यं मया कर्तुं कार्यं यदिदमुद्यतम् ॥६२॥

सुमहत्पाण्डुपुत्राणामायान्त्येते हि कौरवाः ।

अथवा फाल्गुनः सर्वान्वारयिष्यति संयुगे ॥६३॥

अहमप्यस्य मूर्धानं पातयिष्यामि सायकैः ।

अब मुझे तो यह विचार है, कि पाण्डवों का यह बहुत बड़ा कार्य उपस्थित हुआ, कि कौरव इस समय बढ़े चले आ रहे हैं, परन्तु मैं उन्हे रोक कर पाण्डवों का कार्य कैसे करूं। मुझे तो प्रथम सात्यकि से निवट लेना है। खैर! सारे कौरवों से तो अर्जुन निवट लेगा और वे अकेले ही उन्हें रोक देंगे। मैं तो प्रथम युद्ध में इस सात्यकि का मस्तक वाणों से काट लेता हूं ॥६२-६३॥

मन्यते छिन्नबाहुं मां भूरिश्रवसमाहवे ॥६४॥

उत्सृजैनमहं चैनमेष वा मां हनिष्यति ।

हे भीम! क्या सात्यकि मुझे भी बाहुहीन भूरिश्रवा ही समझता है। अब तुम इसे छोड़ो, इस समय या तो मैं ही इसे मार लूंगा या यही मुझे मार लेगा ॥६४॥

शृण्वन्पाञ्चालवाक्यानि सात्यकिः सर्पवच्छ्वसन् ॥

भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बली ।

महाबली सात्यकि भी पाञ्चाल सेनापति धृष्टद्युम्न के ये सारे वचन सुन रहा था, परन्तु भीमसेन की भुजाओं में फंसा होने से वह सर्प की तरह श्वास मारता हुआ भी वहीं कुलमुलाने लगा।

तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ बाहुशालिनौ ॥६६॥

त्वरया वासुदेवश्च धर्मराजश्च मारिष।

यत्नेन महता वीरौ वारयामासतुस्ततः ॥६७॥

हे आर्य! अब बाहुबलसम्पन्न महाबली सात्यकि और धृष्टद्युम्न सांडों की तरह गर्जना कर रहे थे। इस समय श्रीकृष्ण और धर्मराज वेग से आये और इन दोनों वीरों ने उन्हें बड़े प्रयत्न से इस कलह से निवृत्त किया ॥६६-६७॥

निवार्य परमेष्वासौ कोपसंरक्तलोचनौ।

युयुत्सूनपरान्संख्ये प्रतीयुः क्षत्रियर्षभाः ॥६८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नसात्यकिक्रोधेऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६८॥

इन दोनों के क्रोध से लाल नेत्र हो रहे थे। उन्होंने इन दोनों महाधनुर्धरों को रोक दिया और अब युद्ध में तत्पर कौरवों पर सारे पाण्डव क्षत्रियवीरों ने मिल कर वेग से आक्रमण किया॥६८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्व में धृष्टद्युम्न और सात्यकि के कलह का एक सौ अट्ठानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ निन्यानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच— ततः स कदनं चक्रे रिपूणां द्रोणनन्दनः ।

युगान्ते सर्वभूतानां कालसृष्ट इवाऽन्तकः ॥१॥

सञ्जय बोले— हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर प्रलयकाल में कालानुसार उत्पन्न हुए प्राणियों के अन्तक काल की तरह समस्त वीरों का द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा विध्वंस उड़ाने लगा ॥१॥

ध्वजद्रुमं शस्त्रशृङ्गं हतनागमहाशिलम् ।
अश्वकिम्पुरुषाकीर्णं शरासनलतावृतम् ॥२॥
क्रव्यादपक्षिसंघुष्टं भूतयक्षगणाकुलम् ।
निहत्य शात्रवान्भल्लैः सोऽचिनोद्देहपर्वतम् ॥३॥

इस अश्वत्थामा ने अपने भल्ल संज्ञक वाणों से शत्रुओं को मार २ कर उनकी देहों का पर्वत बना दिया। वीरों की ध्वजा रूपी वृक्ष, शस्त्ररूपी शिखर, मृतक हाथी रूपी बड़ी २ शिला, अश्वरूपी गन्धर्व गण, मनुष्य रूपी लताएँ, मांस भोजी पक्षिरूपी पर्वत के पक्षिगणों से शब्दायमान तथा भूत, यक्ष आदि देवयोनियों से यह पर्वत व्याप्त था ॥२-३॥

ततो वेगेन महता विनद्य स नरर्षभः ।
प्रतिज्ञां श्रावयामास पुनरेव तवाऽऽत्मजम् ॥४॥
यस्माद्युध्यन्तमाचार्यं धर्मकंचुकमास्थितः ।
मुञ्च शस्त्रमिति प्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥५॥

तस्मात्सम्पश्यतस्तस्य द्रावयिष्यामि वाहिनीम् ।
विद्राव्य सर्वान्हन्ताऽस्मि जाल्मं पाञ्चाल्यमेव तु ॥

हे राजन्! अब बड़े भारी वेग से नर-श्रेष्ठ अश्वत्थामा ने फिर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को अपनी प्रतिज्ञा सुनाई, कि युद्ध में तत्पर आचार्य को धर्म के ढोंगी कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने जो यह कहा, कि शस्त्र छोड़ दो—तो मैं अब उसके देखते २ उसकी सेना को अभी भगाए देता हूँ तथा इनको भगा कर मैं अभी उस दुष्ट पञ्चाल सेनापति धृष्टद्युम्न को मार लेता हूँ ॥५-६॥

सर्वानेतान्हनिष्यामि यदि योत्स्यन्ति मां रणे ।
सत्यं ते प्रतिजानामि परिवर्तय वाहिनीम् ॥७॥

हे राजन्! यदि ये सारे पाण्डव मुझसे आकर युद्ध करने लगे—तो मैं सत्य कहता हूं कि मैं इन सबको मार दूंगा-तुम अपनी सेना को लौटाओ ॥७॥

तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्तु वाहिनीं पर्यवर्तयत् ।
सिंहनादेन महता व्यपोह्य सुमहद्भयम् ॥८॥

हे राजेन्द्र! अश्वत्थामा की यह बात सुनकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने महान् सिंहनाद किया और सेना के महान् भय को नष्ट करते हुए उन्होंने अपनी सेना को युद्ध की ओर प्रवृत्त किया।

ततः समागमो राजन्कुरुपाण्डवसेनयोः ।
पुनरेवाऽभवत्तीव्रः पूर्णसागरयोरिव ॥९॥

हे नराधिप ! अब फिर उछलते हुए दो समुद्रों की भांति कौरव और पाण्डवों की सेना का तीव्र संग्राम होने लगा ॥९॥

संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः ।
उदग्राः पाण्डुपञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च ॥१०॥

हे महाराज ! इस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने कौरवों को क्रोधातुर करके बड़ा स्थिर बना दिया था तथा दूसरी ओर द्रोण के मार लेने से पाण्डव और पञ्चाल सेना उद्धत हो रही थी ॥१०

तेषां परमहृष्टानां जयमात्मनि पश्यताम् ।
संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद्विशाम्पते ॥११॥

हे विशाम्पते ! ये पाण्डववीर बड़े उत्साहित हो रहे थे और इनको अपनी विजय प्रतीत हो रही थी । आवेश में भरे हुए पाण्डववीरों के आक्रमण का वेग भी महान् तीव्र था ॥११॥

यथा शिलोच्चये शैलः सागरैः सागरो यथा ।
प्रतिहन्येत राजेन्द्र तथाऽऽसन्कुरुपाण्डवाः ॥१२॥

हे राजेन्द्र ! जैसे पर्वत से पर्वत और समुद्र से समुद्र की टक्कर होने लगे, उसी तरह कौरव और पाण्डव एक दूसरे से टकराने लगे ॥१२॥

ततः शङ्खसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ।
अवादयन्त संहृष्टाः कुरुपाण्डवसैनिकाः ॥१३॥

हे राजन् ! अब कौरव और पाण्डवों के वीर-सैनिक, उत्साह में भरे हुए सहस्रों शंख और दशों हजार भेरी नामक बाजे बजाने लगे ॥१३॥

यथा निर्मथ्यमानस्य सागरस्य तु निःस्वनः ।
अभवत्तव सैन्यस्य सुमहानद्भुतोपमः ॥१४॥

हे नराधिप ! जिस तरह कभी समुद्र के मन्थलकाल में महान् शब्द हुआ होगा—उसी तरह का महान् अद्भुत शब्द तुम्हारी सेना में उद्भूत हो गया ॥१४॥

प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा ।
अभिसन्धाय पाण्डूनां पाञ्चालानां च वाहिनीम् ॥
प्रादुरासंस्ततो बाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः ।
पाण्डवान्तापयिष्यन्तो दीप्तास्याः पन्नगा इव ॥१६॥

हे महाभाग ! द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने पाण्डव और पाञ्चालों की सेना को अभिलक्षित करके अपना नारायणास्त्र नामक शस्त्र छोड़ा। इसके छोड़ते ही नारायणास्त्र से आकाश में सहस्रों बाण छूटने लगे-जिनकी नोकें बड़ी तीक्ष्ण थी। ये प्रदीप्त सर्पों की तरह लपलपाते हुए पाण्डवों की सेना को क्षीण करने लगे ॥१५-१६॥

ते दिशः खं च सैन्यं च समावृण्वन्महाहवे ।
मुहूर्ताद्भास्करस्येव लोके राजन्नाभस्तयः ॥१७॥

हे राजन् ! जिस तरह क्षण भर में सूर्य की किरणें सारे संसार में छा जाती हैं, उसी तरह इस घोर युद्ध में अश्वत्थामा के बाणों ने आकाश, दिशा और सेना को बिल्कुल पाट दिया ॥१७॥

तथाऽपरे द्योतमाना ज्योतींषीवाऽमलाम्बरे ।
प्रादुरासन्महाराज कार्ष्णायसमया गुडाः ॥१८॥

चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्न्यो बहुला गदाः ।
चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः ॥१९॥
शस्त्राकृतिभिराकीर्णमतीव पुरुषर्षभ ।
दृष्ट्वाऽन्तरिक्षमाविग्नाः पाण्डुपञ्चालसृञ्जयाः ॥२०॥

हे पुरुषर्षभ ! इसी तरह उस अस्त्र से निर्मल आकाश में ग्रहों की तरह प्रदीप्त दृढ़ लोह निर्मित गोले, चार चक्र या दो चक्र वाली शतघ्नी, बहुत सी गदा, सूर्य मण्डलवत्, छुरे के समान तीक्ष्ण चक्र प्रादुर्भूत हुए और इस तरह अनेक प्रकार के शस्त्रों से सारा आकाश भर गया। पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जयवीर अन्तरिक्ष की ओर देखकर अत्यन्त ही उद्विग्न हुए ॥१८-२०॥

यथा यथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महारथाः ।
तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्धत जनाधिप ॥२१॥

हे जनाधिप ! जिस २ तरह से पाण्डवों के महारथी अपना युद्ध दिखाते थे, उसी तरह वह नारायणास्त्र भी बढ़ता ही जाता था ॥

वध्यमानास्तदाऽस्त्रेण तेन नारायणेन वै ।
दह्यमानाऽनलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिता रणे ॥२२॥
यथा हि शिशिरापाये दहेत्कक्षं हुताशनः ।
तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो ॥२३॥

हे राजन् ! उस नारायणास्त्र से आहत किये गए अग्नि से दग्ध होने के तुल्य पाण्डववीर, सब ओर रण में उद्विग्न हो उठे, इस समय अश्वत्थामा की दशा ग्रीष्म काल में तृण राशि को जलाने

वाले, अग्नि के सदृश हो रही थी। हे प्रभो! नारायणास्त्र ने पाण्डवों की सारी सेना को बहुत ही विध्वस्त कर डाला ॥२२-२३॥

आपूर्यमाणेनाऽस्त्रेण सैन्ये क्षीयति च प्रभो।
जगाम परमं त्रासं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२४।

हे राजर्षभ! जब इस तरह नारायणास्त्र फैल रहा था और सेना का विध्वंस हो रहा था, उस समय धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर अत्यन्त भय को प्राप्त हुए ॥२४॥

द्रवमाणं तु तत्सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम्।
मध्यस्थतां च पार्थस्य धर्मपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥२५॥

अब अचेत होकर सेना को भागती और कुन्ती-पुत्र अर्जुन को चुपचाप सा देखकर धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार बोले ॥२५॥

धृष्टद्युम्न पलायस्व सह पाञ्चालसेनया।
सात्यके त्वं च गच्छस्व वृष्ण्यन्धकवृतो महान्।

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः क्षमम्।
श्रेयो ह्युपदिशत्येष लोकस्य किमुताऽऽत्मनः ॥२७॥
संग्रामस्तु न कर्तव्यः सर्वसैन्यान्ब्रवीमि वः।
अहं हि सह सोदर्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥२८॥
भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा संग्रामे भीरुदुस्तरे।
विमज्जिष्यामि सलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे ॥२९॥

हे धृष्टद्युम्न! तुम अपनी पाञ्चालसेना को वेग से लेकर दौड़ो और हे सात्यकि! तुम भी वृष्णि और अन्धकों की महान् सेना लेकर

आक्रमण करो। इधर महावीर श्रीकृष्ण भी अपनी शक्ति के अनुसार कर्म करने वाले हैं। ये तो संसारमात्र के कल्याण की चेष्टा कर रहे हैं, फिर अपने ही लोगों की ओर से कैसे चुप रह सकते हैं अथवा मैं सारी सेनाओं से कहता हूं, कि तुम कोई भी संग्राम न करो। मैं अपने भाइयों के साथ अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। यह तो यही बात हुई, कि मैंने भीष्म द्रोण आदि समुद्र तो इस घोर संग्राम में तर डाले, जिनको भीरु लोग नहीं तर सकते थे, परन्तु अब अपनी सेनासहित इस अश्वत्थामा रूपी गौ के पद के समान गड्ढे में डूबा जारहा हूं ॥२६-२६॥

कामः सम्पद्यतामस्य बीभत्सोराशु मां प्रति ।
कल्याणवृत्तिराचार्यो मया युधि निपातितः ॥३०॥

मैंने हमारे कल्याण चाहने वाले आचार्य का युद्ध में वध करवा डाला, इससे होने वाले अनर्थ को भोग कर मैं नष्ट हो जाऊं-यह आज अर्जुन की अभिलाषा पूर्ण हो जावे ॥३०॥

येन बालः स सौभद्रो युद्धानामविशारदः ।
समर्थैर्बहुभिः क्रूरैर्घातितो नाऽभिपालितः ॥३१॥
येन विब्रुवती प्रश्नं तथा कृष्णा सभां गता ।
उपेक्षिता सपुत्रेण दासभावं नियच्छती ॥३२॥
जिघांसुर्धातराष्ट्रश्च श्रान्तेष्वश्वेषु फाल्गुनः ।
कवचेन तथा गुप्तो रक्षार्थं सैन्धवस्य च ॥३३॥

जिसने क्रूर युद्ध के दावपेचों को पूरी तरह नहीं जानने वाले बालक सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु को बहुत से शक्तिशाली महारथियों के साथ होकर मार गिराया और उसे बालक समझ कर उसकी रक्षा न की। जब राजसभा में द्रौपदी प्रश्न करनेलगी और अपने दासभाव से मुक्ति की अभिलाषा में तत्पर हुई-तो अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ किस तरह आचार्य ने उपेक्षा की। राजा जयद्रथ के वध के दिन अर्जुन अश्वों के थक जाने से आतुर थे और धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन उन्हें मार देना चाहते थे, तो सिन्धुराज जयद्रथ की रक्षा के निमित्त द्रोणाचार्य ने ही राजा दुर्योधन को कवच पहिना कर उसकी रक्षा की ॥३१-३३

येन ब्रह्मास्त्रविदुषा पाञ्चालाः सत्यजिन्मुखाः ।
कुर्वाणा सज्जये यत्नं समूला विनिपातिताः ॥३४॥

इसी द्रोणाचार्य ने ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से मेरी विजय के प्रयत्न में तत्पर सत्यजित् आदि पञ्चालवीरों को मार कर सेना सहित नष्ट कर डाला ॥३४॥

येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद्वयमधर्मतः ।
निवार्यमाणेनाऽस्माभिरनुगन्तुं तदेपिताः ॥३५॥

जब हम लोगों को अधर्म-पूर्वक धार्तराष्ट्रों ने वन में निकाल दिया, तो हम चाहते थे, कि द्रोणाचार्य भी वन में चलें, परन्तु उन्होंने इस बात का निषेध सा कर दिया अथवा विदुरादि के निषेध करने पर भी द्रोण ने वनवास का अनुमोदन ही किया ॥३५॥

योऽसावत्यन्तमस्मासु कुर्वाणः सौहृदं परम् ।
हतस्तदर्थे मरणं गमिष्यामि सबान्धवः ॥३६॥

अर्जुन के कथनानुसार आचार्य द्रोण हमारा बड़ा कल्याण कर रहे थे और सुहृद् भाव का निर्वाह करते थे। वे भी मारे गए-तो फिर ऐसे सुहृद् के साथ मुझे भी अपने बान्धवों के सहित मर जाना चाहिए ॥३६॥

एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः ।
निवार्य सैन्यं बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥३७॥

जब कुन्ती-पुत्र ने इतना कहा—तो अपनी भुजा उठा कर दशार्हवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण इधर उधर रोकते हुए यह वचन बोले ॥

शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चाऽवरोहत ।
एष योगोऽत्र विहितः प्रतिषेधे महात्मना ॥३८॥

हे सैनिको ! तुम शीघ्र शस्त्र छोड़ दो और वाहनों पर से उतर पड़ो। इस नारायणास्त्र का प्रतीकार भगवान् विष्णु ने ऐसा ही बनाया है ॥३८॥

द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत ।
एवमेतन्न वो हन्यादस्त्रं भूमौ निरायुधान् ॥३९॥

तुम लोग हाथी, अश्व और रथों से भूमि पर उतर जाओ। अस्त्र रहित हो जाने पर भूमि में यह अस्त्र तुम लोगों को नहीं मार सकेगा ॥३९॥

यथा यथा हि युध्यन्ते योधा ह्यस्त्रमिदं प्रति ।
तथा तथा भवन्त्येते कौरवा बलवत्तराः ॥४०॥

जिस २ युद्ध कौशल से योद्धा युद्ध में प्रवृत्त होंगे-उसी तरह यह शस्त्र बढ़ेगा और कौरववीर बलवान होते चले जावेंगे ॥४०॥

निक्षेप्स्यन्ति च शस्त्राणि वाहनेभ्योऽवरुह्य ये ।
तान्नैतदस्त्रं संग्रामे निहनिष्यति मानवान् ॥४१॥

जो सैनिकवीर, शस्त्र छोड़कर और अश्वों से उतर कर खड़े हो जावेंगे-उनको यह नारायणास्त्र संग्राम में नष्ट नहीं कर सकेगा।

यत्त्वेतत्प्रतियोत्स्यन्ति मनसाऽपीह केचन ।
निहनिष्यति तान्सर्वान्रसातलगतानपि ॥४२॥

जो वीर इस अस्त्र के सन्मुख मन से भी युद्ध में तत्पर होंगे, तो उनको यह झट पट मारे बिना रसातल में भी न छोड़ेगा ॥४२॥

ते वचस्तस्य तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भारत ।
ईषुः सर्वे समुत्स्रष्टुं मनोभिः करणेन च ॥४३॥

हे भारत! श्रीकृष्ण के यह वचन सुनकर सैनिकों ने मनसा वाचकर्मणा शस्त्र और वाहन छोड़ना आरम्भ किया ॥४३॥

तत उत्स्रष्टुकामांस्तानस्त्राण्यालक्ष्य पाण्डवः ।
भीमसेनोऽब्रवीद्राजन्निदं संहर्षयन्वचः ॥४४॥

हे राजन्! अपने सारे सैनिकों को अस्त्र छोड़ते देखकर पाण्डु-पुत्र भीमसेन उनको प्रफुल्लित करता हुआ यह वचन कहने लगा ॥४४॥

न कथञ्चन शस्त्राणि मोक्तव्यानीह केनचित् ।
अस्त्रमावारयिष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः ॥४५॥

हे वीरो ! तुम लोगों में से कोई भी शस्त्र का परित्याग न करे, मैं अपने बाणों से इस द्रोणपुत्र को अभी निवृत्त करता हूँ।

गदयाऽप्यनया गुर्व्या हेमविग्रहया रणे।

कालवत्प्रहरिष्यामि द्रौणेरस्त्रं विशातयन् ॥४६॥

मैं इस सुवर्ण मण्डित, भारी गदा से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के इस अस्त्र का नाश करके उन पर काल की भांति प्रहार करूंगा।

न हि मे विक्रमे तुल्यः कश्चिदस्ति पुमानिह।

यथैव सवितुस्तुल्यं ज्योतिरन्यन्न विद्यते ॥४७॥

मेरे पराक्रम के समान कोई वीर कौरवसेना में पराक्रमी नहीं है, जैसे सूर्य के तुल्य अन्य कोई ज्योतिः नहीं है ॥४७॥

पश्यतेमौ हि मे बाहू नागराजकरोपमौ।

समर्थौ पर्वतस्यापि शैशिरस्य निपातने ॥४८॥

तुम लोग हाथी के सूंड के तुल्य इन मेरी भुजाओं को देखो, इन भुजाओं से मैं हिमालय पर्वत को भी नष्ट भ्रष्ट कर सकता हूँ।

नागायुतसमप्राणो ह्यहमेको नरेष्विह।

शक्रो यथाऽप्रतिद्वन्द्वो दिवि देवेषु विश्रुतः ॥४६॥

मैं इन वीरों के मध्य में दश सहस्र हाथियों का बल रखता हूँ। मेरे प्रतिद्वन्द्व (मुकाबिले) में कोई भी खड़ा नहीं हो सकता है, जिस तरह आकाश में देवों के मध्य में प्रसिद्ध इन्द्र के प्रतिद्वन्द्व में कोई भी सुरासुर नहीं है ॥४६॥

अद्य पश्यत मे वीर्यं बाह्वोः पीनांसयोर्युधि ।
ज्वलमानस्य दीप्तस्य द्रौणेरस्त्रस्य वा रणे ॥५०॥

आज तुम मेरी पुष्ट स्कन्धों वाली भुजाओं का पराक्रम देखना या रण में प्रदीप्त द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के अस्त्र का ही वैभव देखते रहना ॥५०॥

यदि नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते ।
अद्यैतत्प्रतियोत्स्यामि पश्यत्सु कुरुपाण्डुषु ॥५१॥

जो तुम लोग कह रहे हो, कि नारायणास्त्र के सन्मुख कोई नहीं लड़ सकता है, तो मैं आज तुमको कौरव पाण्डववीरों के देखते २ अभी लड़ के दिखा देता हूँ ॥५१॥

अर्जुनाऽर्जुन बीभत्सो न न्यस्यं गाण्डिवं त्वया ।
शशाङ्कस्येव ते पङ्को नैर्मल्यं पातयिष्यति ॥५२॥

हे अर्जुन ! निर्भीक अर्जुन ! तुम अपने गाण्डीव धनुष को न छोड़ो, इससे तो तुम्हारी चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कीर्ति पर धब्बा आ जावेगा ॥५२॥

अर्जुन उवाच— भीम नारायणास्त्रे मे गोषु च ब्राह्मणेषु च ।
एतेषु गाण्डिवं न्यस्यमेतद्धि व्रतमुत्तमम् ।

अर्जुन ने कहा—हे भीम ! नारायणास्त्र के प्रयोग, गौ और ब्राह्मण के सन्मुख होने पर मैं गाण्डीव धनुष को रख सकता हूँ ऐसा मेरा व्रत है ॥५३॥

एवमुक्तस्ततो भीमो द्रोणपुत्रमरिन्दमम् ।
अभ्ययान्मेघघोषेण रथेनाऽऽदित्यवर्चसा ॥५४॥

जब अर्जुन इतना कह चुके, तो भीमसेन मेघ के समान ध्वनि-कारी, सूर्य के समान तेजस्वी रथ से अरिमर्दन द्रोण-पुत्र पर वेग से झपटा ॥५४॥

स एनमिषुजालेन लघुत्वाच्छीघ्रविक्रमः ।
निमेषमात्रेणाऽऽसाद्य कुन्तीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ॥५५॥

महापराक्रमी कुन्ती-पुत्र भीम ने बड़ी शीघ्रता दिखाकर बाण-जाल से अश्वत्थामा को थोड़ी ही देर में आच्छादित कर दिया।

ततो द्रौणिः प्रहस्यैनं द्रवन्तमभिभाष्य च ।
अवाकिरत्प्रदीप्ताग्रैः शरैस्तैरभिमन्त्रितैः ॥५६॥

अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने भी इसकी ओर हँसकर और आक्रमण करते हुए को लक्ष्य बना कर अपने नारायणास्त्र से अभिमन्त्रित करके तीक्ष्ण नोक वाले बाणों का छोड़ना आरम्भ किया ॥५६॥

पन्नगैरिव दीप्तास्यैर्वमद्भिर्ज्वलनं रणे ।
अवकीर्णोऽभवत्पार्थः स्फुलिङ्गैरिव काञ्चनैः ॥५७॥

अश्वत्थामा के बाणों के मुख, सर्प के भीषण मुख के तुल्य भयानक थे, जो रण में आग उगल रहे थे। सुवर्ण की चिन-गारियों से व्याप्त होने के तुल्य कुन्ती-पुत्र भीमसेन, उन बाणों से व्याप्त हो गए ॥५७॥

तस्य रूपमभूद्राजन्भीमसेनस्य संयुगे ।
खद्योतैरावृतस्येव पर्वतस्य दिनक्षये ॥५८॥

हे राजन् ! इस समय भीमसेन का आकार इन चमकीले बाणों से ऐसा प्रतीत होता था जैसे सायंकाल में खद्योतों (जुगनुओं) से व्याप्त कोई पर्वत हो ॥५८॥

तदस्त्रं द्रोणपुत्रस्य तस्मिन्प्रतिसमस्यति ।
अवर्धत महाराज यथाऽग्निरनिलोद्धतः ॥५९॥

हे महाराज ! बाण फैंकने में तत्पर भीमसेन के प्रति नारायणास्त्र की ज्वाला इस तरह बढ़ने लगी-जैसे अनिल से प्रदीप्त अग्नि बढ़ रही हो ॥५९॥

विवर्धमानमालक्ष्य तदस्त्रं भीमविक्रमम् ।
पाण्डुसैन्यमृते भीमं सुमहद्भयमाविशत् ॥६०॥

उस महाभीषण, अस्त्र को बढ़ते देखकर भीमसेन को छोड़ कर सारी पाण्डवसेना में आतङ्क छा गया ॥६०॥

ततः शस्त्राणि ते सर्वे समुत्सृज्य महीतले ।
अवारोहन्रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च सर्वशः ॥६१॥

अब इन सारे सैनिकों ने अपने २ शस्त्र छोड़ दिए और वे झटपट अपने २ वाहन, रथ, अश्व और हाथियों से नीचे उतर पड़े ।

तेषु निक्षिप्तशस्त्रेषु वाहनेभ्यश्च्युतेषु ।
तदस्त्रवीर्यं विपुलं भीममूर्धन्यथाऽपतत् ॥६२॥

जब उन सारे पाण्डव सैनिकों ने अस्त्र छोड़ दिए और वाहनों से नीचे उतर पड़े, तो वह नारायणास्त्र और भी अधिक बढ़कर भीमसेन पर प्रहार करने लगा ॥६२॥

हाहाकृतानि भूतानि पाण्डवाश्च विशेषतः ।
भीमसेनमपश्यन्त तेजसा संवृतं तथा ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि पाण्डवसैन्यास्त्रत्यागे नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९९॥

इस समय सारे प्राणी हाहाकार कर रहे थे और पाण्डव तो बहुत भय-भीत हो गए थे। इन लोगों ने इस समय भीमसेन को अत्यन्त ही तेज से आवृत देखा ॥६३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्व में पाण्डवों की सेना के शस्त्रपरित्याग का एक सौ निन्यानवेवां अध्याय समाप्त हुआ



दो सौवां अध्याय

सञ्जय उवाच— भीमसेनं समाकीर्णं दृष्ट्वाऽस्त्रेण धनञ्जयः ।
तेजसः प्रतिघातार्थं वारुणेन समावृणोत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! जब धनञ्जय अर्जुन ने अश्वत्थामा के नारायणास्त्र के तेज से दबे हुए भीमसेन को देखा,

तो उसके तेज के प्रतिघात के लिए अर्जुन ने अपने वारुणास्त्र का प्रयोग किया ॥१॥

नाऽलक्षयत तत्कश्चिद्वारुणास्त्रेण संवृतम् ।
अर्जुनस्य लघुत्वाच्च संवृतत्वाच्च तेजसः ॥२॥

हे राजन् ! इस समय नारायणास्त्र का तेज किसी को दिखाई नहीं दिया, क्योंकि वह वारुणास्त्र से आच्छादित हो गया । यह सब अर्जुन के हस्तलाघव की कुशलता थी और इसमें वारुणास्त्र के तेज से नारायणास्त्र के तेज का आच्छादित हो जाना भी कारण था ॥२॥

साश्वसूतरथो भीमो द्रोणपुत्रास्त्रसंवृतः ।
अग्नावग्निरिव न्यस्तो ज्वालामाली सुदुर्दशः ॥३॥

द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के नारायणास्त्र के तेज से आवृत्त, अश्व, सारथि और रथ के सहित भीमसेन ऐसा प्रतीत होता था, जैसे अग्नि में दूसरी अग्नि डाल दिया हो। यह इस समय ज्वालामुखी पर्वत की भांति बड़ा ही दुर्धर्ष हो रहा था ॥३॥

यथा रात्रिक्षये राजञ्ज्योतींष्यस्तगिरिं प्रति ।
समापेतुस्तथा बाणा भीमसेनरथं प्रति ॥४॥

हे राजन् ! जब रात के क्षय होने पर अस्त पर्वत पर जैसे सारे नक्षत्र पहुंचते हैं, उसी तरह सारे अश्वत्थामा के बाण भीमसेन पर चमकने लगे ॥४॥

स हि भीमो रथश्चाऽस्य हयाः सूतश्च मारिष ।
संवृता द्रोणपुत्रेण पावकान्तर्गताऽभवन् ॥५॥

हे आर्य ! अब भीमसेन के रथ, सारथि और अश्वों को द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपने दिव्य अस्त्र के तेज में इस तरह फैंक दिए-जैसे ये सारे किसी प्रज्वलित अग्नि में डाल दिए हों।

यथा जग्ध्वा जगत्कृत्स्नं समये सचराचरम् ।
गच्छेद्वह्निर्विभोरास्यं तथाऽस्त्रं भीममावृणोत् ॥६॥

जिस तरह प्रलयकाल में सारे चराचर जगत् को दग्ध करके प्रलयकालाग्नि, रुद्र के मुख में प्रवेश कर जाता है, उसी तरह अश्वत्थामा के अस्त्र की अग्नि भीमसेन के लिपटने लगी ॥६॥

सूर्यमग्निः प्रविष्टः स्याद्यथा चाऽग्निं दिवाकरः ।
तथा प्रविष्टं तत्तेजो न प्राज्ञायत पाण्डवम् ॥७॥

जिस भांति अग्नि सूर्य में घुस जावे या सूर्य अग्नि में प्रविष्ट हो जावे-उसी तरह अस्त्र का तेज तेजस्वी भीमसेन में घुस गया। इस समय पाण्डु-पुत्र भीमसेन तद्रूप होकर प्रतीत ही नहीं होते थे ॥७॥

विकीर्णमस्त्रं तद् दृष्ट्वा तथा भीमरथं प्रति ।
उदीर्यमाणं द्रौणिं च निष्प्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥८॥
सर्वं सैन्यं च पाण्डूनां न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
युधिष्ठिरपुरोगांश्च विमुखांस्तान्महारथान् ॥९॥

अर्जुनो वासुदेवश्च त्वरमाणौ महाद्युती ।
अवप्लुत्य रथाद्वीरौ भीममाद्रवतांततः ॥१०॥

जब भगवान् कृष्ण और अर्जुन ने अश्वत्थामा के दिव्य नारायणास्त्र को भीमसेन के रथ पर फैला हुआ और द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को रणाङ्गण में किसी भी प्रतिद्वन्द्वी वीर से न टकराने से उद्धत तथा पाण्डवों की सारी सेना को अस्त्रविहीन अचेतन एवं धर्मराज आदि महारथी वीरों को युद्ध से विमुख देखा, तो महाद्युतिमान् वे दोनों वीर बड़ी शीघ्रता से रथ से कूदे और भीमसेन के पास पहुंचे ॥८-१०॥

ततस्तद् द्रोणपुत्रस्य तेजोऽस्त्रबलसम्भवम् ।
विगाह्य तौ सुबलिनौ मायया विशतां तथा ॥११॥

ये महाबली श्रीकृष्ण और अर्जुन अपनी योगमाया से अस्त्र के बल से उत्पन्न द्रोणपुत्र के तेज को आलोडित करके उसमें भीतर घुस गए ॥११॥

न्यस्तशस्त्रौ ततस्तौ तु नाऽदहत्सोऽस्त्रजोऽनलः ।
वारुणास्त्रप्रयोगाच्च वीर्यवत्त्वाच्च कृष्णयोः ॥१२॥

इन दोनों ने अपने शस्त्र छोड़ रखे थे, इससे नारायणास्त्र की ज्वाला इन्हें दग्ध न कर सकी तथा वारुणास्त्र के प्रयोग और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के पराक्रमी होने से भी नारायणास्त्र उन पर प्रभाव नहीं दिखा सका ॥१२॥

ततश्चकृषतुर्भीमं सर्वशस्त्रायुधानि च ।
नारायणास्त्रशान्त्यर्थं नरनारायणौ बलात् ॥१३॥

हे राजन्! अब इन नर और नारायण के अवतार श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भीमसेन को खैंच लिया और उसके सारे अस्त्र बलपूर्वक छीन लिए। यह सब कुछ उस दिव्य नारायणास्त्र के तेज के शान्त करने को ही किया गया ॥१३॥

आकृष्यमाणः कौन्तेयो नदत्येव महारवम् ।
वर्धते चैव तद्घोरं द्रौणेरस्त्रं सुदुर्जयम् ॥१४॥

जब अर्जुन द्वारा भीमसेन खैंचा गया-तो उसने बड़ा भारी सिंहनाद किया और इसी से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा का भी वह अत्यन्त दुर्जय घोर नारायणास्त्र अपनी ज्वाला और अधिक फैंकने लगा ॥१४॥

तमब्रवीद्वासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन ।
वार्यमाणोऽपि कौन्तेय यद्युद्धान्न निवर्तसे ॥१५॥
यदि युद्धेन जेयाः स्युरिमे कौरवनन्दनाः ।
वयमप्यत्र युध्येम तथा चेमे नरर्षभाः ॥१६॥
रथेभ्यस्त्ववतीर्णाः स्म सर्वे एव हि तावकाः ।
तस्मात्त्वमपि कौन्तेय रथात्तूर्णमपाक्रम ॥१७॥

हे जनाधिप! अब वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण ने भीमसेन से कहा-हे पाण्डु-नन्दन भीम! तुमको हम युद्ध से बहुत रोक रहे हैं, परन्तु तुम रोकने पर भी नहीं मानते-यह क्या बात है। यदि युद्ध

से इस समय कौरव जीते जा सकते-तो हम लोग और ये सारे राजा अवश्य युद्ध करेंगे। हम सब लोग और तुम्हारी सारी सेना के वीर रथ से उतर पड़े हैं। हे कौन्तेय! अब तुम भी शीघ्र रथ से नीचे उतर पड़ो ॥१७॥

एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद्भूमिमवर्तयत्।
निश्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥१८॥

हे राजन्! इतना कह कर श्रीकृष्ण ने भीमसेन को रथ से नीचे खैंच लिया। भीमसेन की इस समय क्रोध से लाल आंखें हो रही थीं और वह भीषण सर्प की भांति श्वास ले रहा था।

यदाऽपकृष्टः स रथान्न्यासितश्चाऽऽयुधं भुवि।
ततो नारायणास्त्रं तत्प्रशान्तं शत्रुतापनम् ॥१९॥

हे भारत! ज्योंही श्रीकृष्ण ने भीमसेन को रथ से नीचे खैंचा और उसके शस्त्र भूमि में डलवाए-त्योंही वह शत्रुतापी नारायणास्त्र शान्त हो गया ॥१९॥

सञ्जय उवाच— तस्मिन्प्रशान्ते विधिना तेन तेजसि दुःसहे।
बभूवुर्विमलाः सर्वाः दिशः प्रदिश एव च ॥२०॥
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः।
वाहनानि च हृष्टानि प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये।

सञ्जय बोले—हे महाभाग! जब इस विधि से दुःसह तेज वाला नारायणास्त्र शान्त हो गया-तो इसके बाद सारी दिशा और प्रदिशा अत्यन्त निर्मल हो उठी, वायु बड़ा सुखकारी चलने

लगा। मृग और पक्षियों को चैन पड़ा। इस दुर्जय अस्त्र के शान्त होने पर ही सेना के वाहनों को उल्लास प्राप्त हुआ ॥२०-२१॥

व्यपोढे च ततो घोरे तस्मिंस्तेजसि भारत।
बभौ भीमो निशापाये धीमान्सूर्य इवोदितः ॥२२॥

हे भारत! जब नारायण का घोर तेज शान्त हो गया, तो अब भीमसेन इस तरह चमक उठे-जैसे तेज से प्रदीप्त सूर्य उदय को प्राप्त हो जाता है ॥२२॥

हतशेषं बलं तत्तु पाण्डवानामतिष्ठत।
अस्त्रव्युपरमाद्धृष्टं तव पुत्रजिघांसया ॥२३॥

हे राजन! अब पाण्डवों की मारने से बची हुई सेना तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के वध करने के निमित्त युद्ध को सन्नद्ध होकर खड़ी हो गई। इस नारायणास्त्र के शान्त होने से वह बहुत ही प्रफुल्लित हो रही थी ॥२३॥

व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा।
दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाऽब्रवीत् ॥२४॥

हे महाराज! जब अश्वत्थामा का नारायणास्त्र शान्त हो गया और पाण्डवसेना युद्ध के लिए उठ खड़ी हुई-तो अब राजा दुर्योधन, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा से इस प्रकार कहने लगा ॥२४॥

अश्वत्थामन्पुनः शीघ्रमस्त्रमेतत्प्रयोजय।
अवस्थिता हि पाञ्चालाः पुनरेते जयैषिणः ॥२५॥

हे अश्वत्थामन्! तुम फिर इस अस्त्र का शीघ्रता के साथ प्रयोग करो। ये फिर विजयाभिलाषी पञ्चालवीर युद्ध के लिए सन्नद्ध हैं ॥२५॥

अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष।
सुदीनमभिनिःश्वस्य राजानमिदमब्रवीत् ॥२६॥

हे आर्य! जब राजा दुर्योधन ने अश्वत्थामा से इतना कहा-तो वह दीनता के साथ श्वास लेकर राजा दुर्योधन से बोला ॥२६॥

नैतदावर्तते राजन्नस्त्रं द्विर्नोपपद्यते।
आवृत्तं हि निवर्तेत प्रयोक्तारं न संशयः ॥२७॥

हे राजन्! अब इस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया जा सकता। यह एक युद्ध में दो बार नहीं चलता। यदि इसका प्रयोग कर दिया जावे-तो यह प्रयोग करने वाले पर ही टूट पड़ता है-इसमें संशय न समझो ॥२७॥

एष चाऽस्त्रप्रतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान्।
अन्यथा विहितः संख्ये वधः शत्रोर्जनाधिप ॥२८॥

हे जनाधिप! इस नारायणास्त्र के इस तरह शान्त कर देने की विधि को श्रीकृष्ण जानते थे। अतएव उन्होंने इस अस्त्र का प्रतिघात कर दिया। यदि पाण्डवसेना भ्रम से युद्ध में फंसी रहती-तो यह अवश्यम्भावी था, कि उनका नाश हो जाता ॥२८॥

पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयान्मृत्युर्न निर्जयः।
विजिताश्चाऽरयो ह्येते शस्त्रोत्सर्गान्मृतोपमाः ॥२९॥

हे कुरुराज! संसार में पराजय और मृत्यु इन दोनों में मृत्यु उत्तम है-पराजित होना ठीक नहीं। इन लोगों ने शस्त्र छोड़ दिए और ये मृतक की भांति अचेतन हो गए, इससे ये सारे शत्रु जीते जा चुके हैं ॥२६॥

दुर्योधन उवाच— आचार्यपुत्र यद्येतद् द्विरस्त्रं न प्रयुज्यते।
अन्यैर्गुरुघ्ना वध्यन्तामस्त्रैरस्त्रविदां वर ॥३०॥

दुर्योधन ने कहा—हे अस्त्र विद्या में निपुण! आचार्य पुत्र! अश्वत्थामा यदि इस नारायणास्त्र का दुबारा प्रयोग नहीं होता है, तो अन्य अस्त्रों से इन गुरुघाती नीच पाञ्चालों का वध करो॥

त्वयि शस्त्राणि दिव्यानि त्र्यम्बके चाऽमितौजसि।
इच्छतो न हि ते मुच्येत्संक्रुद्धो हि पुरन्दरः ॥३१॥

हे द्विजश्रेष्ठ! तुम्हारे और अत्यन्त तेजस्वी भगवान् शङ्कर के समीप दिव्य अस्त्रों का भण्डार है। यदि तुम इच्छा करो, तो तुम से बचकर क्रोध में भरा हुआ इन्द्र भी नहीं जा सकता है ॥३१॥

धृतराष्ट्र उवाच— तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते द्रोणे चोपधिना हते।
तथा दुर्योधनेनोक्तो द्रौणिः किमकरोत्पुनः ॥३२॥
दृष्ट्वा पार्थांश्च संग्रामे युद्धाय समुपस्थितान्।
नारायणास्त्रनिर्मुक्तांश्चरतः पृतनामुखे ॥३३॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय! अश्वत्थामा के नारायणास्त्र के इस तरह शान्त कर देने और छल-पूर्वक द्रोणाचार्य के मार लेने तथा राजा दुर्योधन के इतना कहने पर नारायणास्त्र से मुक्त

होकर संग्राम में युद्ध के निमित्त डटे हुए सेना के अग्रभाग में घूमते हुए पाण्डववीरों को देखकर अश्वत्थामा नें क्या किया ॥

सञ्जय उवाच— जानन्पितुः स निधनं सिंहलांगूलकेतनः ।

सक्रोधो भयमुत्सृज्य सोऽभिदुद्राव पार्षतम् ॥३४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! अब सिंह की लांगूल (पूंछ) के चिन्ह की ध्वजा का धारी, अश्वत्थामा क्रोध में भर गया । वह अपने पिता के नाशक धृष्टद्युम्न पर झल्ला रहा था, इससे उसने निर्भीक होकर पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न पर बड़े वेग से आक्रमण किया ॥३४॥

अभिद्रुत्य च विंशत्या क्षुद्रकाणां नरर्षभ ।

पञ्चभिश्चाऽतिवेगेन विव्याध पुरुषर्षभः ॥३५॥

हे नरर्षभ ! अब पुरुषप्रवीर धृष्टद्युम्न ने क्षुद्रक (छोटे २) बाणों से तथा अन्य पांच बाणों से पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न को वेग के साथ बींध दिया ॥३५॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्ज्वलन्तमिव पावकम् ।

द्रोणपुत्रं त्रिषष्ठ्या तु राजन्विव्याध पत्रिणाम् ॥३६॥

सारथिं चाऽस्य विंशत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।

हयांश्च चतुरोऽविध्यच्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥३७॥

विद्ध्वा विद्ध्वा नदद् द्रौणिः कम्पयन्निव मेदिनीम्

आददे सर्वलोकस्य प्राणानिव महारणे ॥३८॥

हे राजन् ! अब धृष्टद्युम्न ने भी अग्नि की भांति प्रज्वलित, तरेसठ बाण छोड़कर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को बींध दिया। धृष्टद्युम्न ने सुवर्ण मूलधारी, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बीस बाण मार कर इसके सारथि और चार तीक्ष्ण बाणों से अश्वत्थामा के चारों अश्वों को बींध दिया। इस तरह बार २ धृष्टद्युम्न, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को बींधता हुआ सिंहनाद कर रहा था, जिससे पृथिवी कांपने लगती थी। यह तो मानो इस महारण में सारे वीरों के प्राण खैंचने लगा हो ॥३६-३८॥

पार्षतस्तु बली राजन्कृतास्त्रः कृतनिश्चयः।
द्रौणिमेवाऽभिदुद्राव मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥३९॥

हे सञ्जय ! पर्षतवंशश्रेष्ठ महाबली धृष्टद्युम्न, बड़े अस्त्रकुशल और दृढ़निश्चयी थे। उन्होंने इस समय मृत्यु की भी परवा न करके अश्वत्थामा पर बुरी तरह आक्रमण कर दिया ॥३९॥

ततो बाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि।
अवासृजदमेयात्मा पाञ्चाल्यो रथिनां वरः ॥४०॥

इसके अनन्तर अपरिमितबलशाली, रथिश्रेष्ठ पञ्चालवीर, धृष्टद्युम्न ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के मस्तक पर बाणवर्षा की झड़ी लगा दी ॥४०॥

तं द्रौणिः समरे क्रुद्धं छादयामास पत्रिभिः।
विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥४१॥

हे राजन् ! अपने पिता के वध से क्रोधातुर, अश्वत्थामा ने भी रण में प्रचण्ड धृष्टद्युम्न को अपने बाणों से पाट दिया और उस पर दश तीखे बाण छोड़कर अत्यन्त क्षतविक्षत कर दिया ॥४१॥

द्वाभ्यां च सुविसृष्टाभ्यां क्षुराभ्यां ध्वजकार्मुके ।
छित्वा पाञ्चालराजस्य द्रौणिरन्यैः समार्दयत् ॥४२॥

हे जनेश्वर ! अब अश्वत्थामा ने क्षुर के सदृश तीक्ष्ण दो बाण छोड़े और उनसे उसने पञ्चालराज धृष्टद्युम्न की ध्वजा और धनुष को काट गिराया तथा अन्य बाणों से उसे आहत कर दिया ॥

व्यश्वसूतरथं चैनं द्रौणिश्चक्रे महाहवे ।
तस्य चाऽनुचरान्सर्वान्क्रुद्धः प्राद्रावयच्छरैः ॥४३॥

हे भारत ! द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा क्रोध पूर्वक इस घोर युद्ध में धृष्टद्युम्न को अश्व, सारथि और रथ से हीन बना कर अपने बाणों से उसके सारे अनुचर सैनिकों को मार २ कर भगाने लगा।

ततः प्रदुद्रुवे सैन्यं पञ्चालानां विशाम्पते ।
सम्भ्रान्तरूपमार्तं च न परस्परमैक्षत ॥४४॥

हे विशाम्पते ! अब पञ्चालों की सेना के पैर उखड़ गए, यह बहुत घबरा गई और इतनी व्याकुल हुई, कि परस्पर देख भी न सकी ॥४४॥

दृष्ट्वा तु विमुखान्योधान्धृष्टद्युम्नं च पीडितम् ।
शैनेयोऽचोदयत्तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥४५॥

जब शिनि-पौत्र सात्यकि ने पाञ्चालवीर धृष्टद्युम्न को अत्यन्त घायल और उसके सैनिकों को भागते देखा, तो वह अपने रथ को आगे बढ़ाकर अश्वत्थामा के रथ पर झपटा ॥४५॥

अष्टभिर्निशितैर्बाणैरश्वत्थामानमार्दयत् ।
विंशत्या पुनराहत्य नानारूपैरमर्पणः ॥४६॥

इस क्रोधाविष्ट सात्यकि ने आठ अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मार कर अश्वत्थामा को घायल किया और फिर अनेक तरह के बीस बाणों से उस पर और प्रहार किए ॥४६॥

विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
धनुर्ध्वजं च संयत्तश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥४७॥

इस युद्ध कला प्रवीण, सात्यकि ने चार बाणों से अश्वत्थामा के चारों अश्व तथा हाथ की कुशलता से शीघ्रता के साथ उसके सारथि को बींध कर धनुष और ध्वजा को काट गिराया ॥४७॥

स साश्वं व्यधमच्चापि रथं हेमपरिष्कृतम् ।
हृदि विव्याध समरे त्रिंशता सायकैर्भृशम् ॥४८॥

अब सात्यकि ने सुवर्णविभूषित और अश्वों से युक्त अश्वत्थामा के रथ को छेद डाला और तीस तीक्ष्ण बाण मार कर रण में अश्वत्थामा के वक्षःस्थल में प्रहार किया ॥४८॥

एवं स पीडितो राजन्नश्वत्थामा महाबलः ।
शरजालैः परिवृतः कर्तव्यं नाऽन्वपद्यत ॥४९॥

हे राजन्! इस तरह महाबली अश्वत्थामा बहुत ही पीड़ित हो गया और वह बाणों के जाल में इतना आच्छादित हो गया, कि उसको अपना कुछ भी कर्तव्य न सूझ पड़ा ॥४९॥

एवं गते गुरोः पुत्रे तव पुत्रो महारथः ।
कृपकर्णादिभिः सार्धं शरैः सात्वतमावृणोत् ॥५०॥

हे महाराज! जब गुरु-पुत्र अश्वत्थामा की यह दशा हो गई, तो महारथी तुम्हारे पुत्र ने कृपाचार्य और अङ्गराज कर्ण को साथ लेकर अपने बाणों से सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि को आच्छादित कर दिया ॥५०॥

दुर्योधनस्तु विंशत्या कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
कृतवर्माऽथ दशभिः कर्णः पञ्चाशता शरैः ॥५१॥
दुःशासनः शतेनैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥५२॥

हे राजन्! अब राजा दुर्योधन ने बीस, शरद्वान-पुत्र कृपाचार्य ने तीन, कृतवर्मा ने दश, कर्ण ने पचास, दुःशासन ने सौ, कर्ण-पुत्र वृषसेन ने सात तीक्ष्ण बाण मार कर सब ओर से सात्यकि को बींध दिया ॥५१-५२॥

ततः स सात्यकी राजन्सर्वानेव महारथान् ।
विरथान्विमुखांश्चैव क्षणेनैवाऽकरोन्नृप ॥५३॥

हे राजन्! अब सात्यकि ने भी अपना धनुष सम्हाला और उसने क्षण भर में सारे महारथियों को रथ-हीन करके रण से विमुख बना दिया ॥५३॥

अश्वत्थामा तु सम्प्राप्य चेतनां भरतर्षभ ।
चिन्तयामास दुःखार्तो निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥५४॥

हे भरतर्षभ ! जब अश्वत्थामा को कुछ चेतनता आई-तो वह बड़ा दुःखी हुआ और बार २ श्वास लेने लगा ॥५४॥

अथो रथान्तरं द्रौणिः समारुह्य परन्तपः ।
सात्यकिं वारयामास किरञ्शरशतान्बहून् ॥५५॥

हे भारत ! अब परन्तप अश्वत्थामा दूसरे रथ पर चढ़ गया और उसने सैंकड़ों बाण छोड़कर वहीं पर सात्यकि को रोक दिया ॥५५॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य भारद्वाजसुतं रणे ।
विरथं विमुखं चैव पुनश्चक्रे महारथः ॥५६॥

जब सात्यकि ने रण में अश्वत्थामा को आगे बढ़ता देखा-तो फिर उसे रथ से हीन बना कर विमुख कर दिया ॥५६॥

ततस्ते पाण्डवा राजन्दृष्ट्वा सात्यकिविक्रमम् ।
शङ्खशब्दान्भृशं चक्रुः सिंहनादांश्च नेदिरे ॥५७॥

हे राजन ! इस समय,पाण्डव, सात्यकि के पराक्रम को देखकर अत्यन्त जोर के साथ शङ्खध्वनि और सिंहनाद करने लगे ॥५७॥

एवं तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
जघान वृषसेनस्य त्रिसाहस्रान्महारथान्॥५८॥
अयुतं दन्तिनां सार्धं कृपस्य निजघान सः ।
पञ्चायुतानि चाऽश्वानां शकुनेर्निजघान स ॥५६॥

सत्यपराक्रमी सात्यकि ने इस प्रकार अश्वत्थामा को रथ-हीन करके फिर कर्ण-पुत्र वृषसेन के तीन सहस्र महारथियों को मार गिराया। इसी के साथ में कृपाचार्य के दश सहस्र हाथी भी मार दिए और पचास हजार शकुनि के घुड़सवार मार गिराए ॥५६॥

ततो द्रौणिर्महाराज रथमारुह्य वीर्यवान् ।
सात्यकिं प्रति संक्रुद्धः प्रययौ तद्वधेप्सया ॥६०॥

हे महाराज ! अब फिर महापराक्रमी अश्वत्थामा दूसरे रथ पर चढ़ कर आया और वह क्रोधातुर होकर सात्यकि के मार देने को उस पर बुरी तरह झपटा ॥६०॥

पुनस्तमागतं दृष्ट्वा शैनेयो निशितैः शरैः ।
अदारयत्क्रूरतरैः पुनः पुनररिन्दम ॥६१॥

हे अरिमर्दन ! जब शिनिपौत्र सात्यकि ने अश्वत्थामा को फिर आते देखा-तो उसने बार २ अत्यन्त क्रूर बाण छोड़कर उसे चीर डाला ॥६१॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिङ्गैरमर्षणः ।
युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥६२॥
शैनेयाऽभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्यघातिनि ।
न चैनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च ॥६३॥

हे राजन् ! जब अनेक प्रकार के बाणों से क्रोधाविष्ट महाधनुर्धर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को सात्यकि ने बींध डाला-तो वह हंसता २ यह वचन बोला। हे सात्यकि ! तुम आचार्य द्रोण के

घातक धृष्टद्युम्न की किस तरह आग्रह के साथ रक्षा कर रहे हो; यह मैं खूब जानता हूं, परन्तु जब मैं इस पर आक्रमण करूंगा-तो मेरे चंगुल में फंसे हुए धृष्टद्युम्न को तुम नहीं बचा सकोगे ॥६३॥

शपेऽऽत्मनाऽहं शैनेय सत्येन तपसा तथा ।
अहत्वा सर्वपाञ्चालान्यदि शान्तिमहं लभे ॥६४॥
यद्बलं पाण्डवेयानां वृष्णीनामपि यद्बलम् ।
क्रियतां सर्वमेवेह निहनिष्यामि सोमकान् ॥६५॥

हे शैनेय! मैं अपनी और अपने सत्य तथा तप की शपथ खाकर कहता हूं, कि मैं बिना पञ्चालों के मारे कभी शान्ति ग्रहण नहीं करूंगा।' अब पाण्डव और वृष्णिवीरों की सेना अपना सारा बल लगा कर सब कुछ प्रयत्न कर ले, तो भी मैं सोमकवीरों का नाश किए बिना न रहूंगा ॥६४-६५॥

एवमुक्त्वाऽर्करश्म्याभं सुतीक्ष्णं तं शरोत्तमम् ।
व्यसृजत्सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः ॥६६॥

हे राजन्! इतना कहकर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने सूर्य किरण के समान उज्ज्वल अत्यन्त तीक्ष्ण बाण, सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि पर इस तरह छोड़े-जैसे इन्द्र, वृत्रासुर पर वज्र छोड़ देता है ॥६६॥

स तं निर्भिद्य तेनाऽस्तः सायकः सशरावरम् ।
विवेश वसुधां भित्त्वा श्वसन्बिलमिवोरगः ॥६७॥

अश्वत्थामा द्वारा छोड़ा हुआ बाण, सात्यकि के कवच को बींधता हुआ शरीर में पार होकर इस तरह पृथिवी को बींध कर उसमें घुस गया-जैसे फुंकार मारता हुआ सर्प बिल में घुस जाता है ।।६७।।

स भिन्नकवचः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
विमुच्य सशरं चापं भूरिव्रणपरिस्रवः ।।६८।।
सीदन्रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत् ।
सूतेनाऽपहृतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद्रथान्तरम् ।।६९।।

जब सात्यकि का कवच कट गया, तो वह शूरवीर सात्यकि तोत्र शस्त्र से आहत हाथी की तरह क्लेशित हुआ। इसके शरीर के व्रणों से रक्त की धारा बह रही थी । वह धनुष बाण छोड़कर रक्त में भीगा हुआ ही बड़े क्लेश के साथ रथ के मध्य में लेट गया । अब सारथि बड़े वेग से सात्यकि को द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के आगे से अन्यत्र ले गया ।।६८-६९।।

अथाऽन्येन सुपुङ्खेन शरेणाऽनतपर्वणा ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्टद्युम्नं परन्तपः ।।७०।।

इसके अनन्तर शत्रुतापी अश्वत्थामा ने सुन्दर मूलधारी नतपर्ववाले एक बाण को लेकर धृष्टद्युम्न की भुजाओं के मध्य में प्रहार किया ।।७०।।

स पूर्वमतिविद्धश्च भृशं पश्चाच्च पीडितः ।
ससादाऽथ च पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजम् ।।७१।।

एक तो पञ्चाल सेनापति पहिले ही अत्यन्त विंध रहे थे और फिर और भी अत्यन्त वींध डाला। इस तरह की परिस्थिति में पञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न बड़ा आहत हुआ और वह ध्वजा का दण्ड पकड़ कर चुपचाप बैठ गया॥७१॥

तं नागमिव सिंहेन दृष्ट्वा राजञ्शरार्दितम्।
जवेनाऽभ्यद्रवञ्छूराः पञ्च पाण्डवता रथाः॥७२॥
किरीटी भीमसेनश्च वृद्धक्षत्रश्च पौरवः।
युवराजश्च चेदीनां मालवश्च सुदर्शनः॥७३॥

हे राजन्! जब पाण्डवों ने अश्वत्थामा रूपी सिंह से बाण पीड़ित धृष्टद्युम्नरूपी गजराज को दबाया हुआ देखा, तो पाण्डव पक्ष के पांच महारथी वीर, जिनमें किरीटधारी अर्जुन, भीमसेन, पुरुवंशी वृद्धक्षत्र, चेदिवंश का युवराज और मालवराज सुदर्शन थे; उसकी रक्षा को बड़े वेग से आगे बढ़े॥७२-७३॥

एते हाहाकृताः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः।
वीरं द्रौणायनिं वीराः सर्वतः पर्यवारयन्॥७४॥

इन सारे पाण्डववीरों ने धनुष बाण धारण कर रखे थे। ये हाहाकार मचाते हुए वीर-श्रेष्ठ द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा पर टूट पड़े और उसे सब ओर से घेर लिया॥७४॥

ते विंशतिपदे यत्ता गुरुपुत्रममर्षणम्।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरभ्यघ्नन्सर्वतः समम्॥७५॥

ये बड़े प्रयत्न के साथ बीस पद आगे बढ़े, कि इन्होंने क्रोधाविष्ट गुरु-पुत्र अश्वत्थामा पर सब ओर से एकदम पांच २ बाण छोड़े।

आशीविषाभैर्विंशत्या पञ्चभिस्तु शितैः शरैः ।
चिच्छेद युगपद् द्रौणिः पञ्चविंशतिसायकान् ॥७६॥

इधर द्रोण-पुत्र ने भी आशीविष सर्पोपम बीस और पांच बाण छोड़े और उन बाणों से पाण्डववीरों के पच्चीसों बाण काट गिराए ॥७६॥

सप्तभिस्तु शितैर्बाणैः पौरवं द्रौणिरार्दयत् ।
मालवं त्रिभिरेकेन पार्थं षड्भिर्वृकोदरम् ॥७७॥

इसके अनन्तर अश्वत्थामा ने पुरुराज पर सात, मालवराज पर तीन, अर्जुन पर एक और वृकोदर भीम पर छः तीक्ष्ण बाणों का प्रहार किया ॥७७॥

ततस्ते विव्यधुः सर्वे द्रौणिं राजन्महारथाः ।
युगपच्च पृथक्चैव रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥७८॥

हे राजन् ! अब उन सारे पाण्डव महारथियों ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को सुवर्णमूलधारी, शिला पर तीक्ष्ण किए हुए बाणों से मिलकर और पृथक् २ भी आहत कर डाला ॥७८॥

युवराजश्च विंशत्या द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः ।
पार्थश्च पुनरष्टाभिस्तथा सर्वे त्रिभिस्त्रिभिः ॥७९॥

हे नृपते ! अब चेदि युवराज ने बीस बाण अश्वत्थामा पर छोड़कर उसे क्षत-विक्षत कर दिया और अर्जुन ने आठ तथा अन्य सारे वीरों ने तीन २ बाण मार कर उसे आहत किया ॥७९॥

ततोऽर्जुनं षड्भिरथाऽऽजघान द्रौणायनिर्दशभिर्वासुदेवम् ।
भीमं दशार्धैर्युवराजं चतुर्भिर्द्वाभ्यां द्वाभ्यांमालवं पौरवं च ॥

हे राजन ! अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अर्जुन पर छः, वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण पर दश, भीमसेन पर दश के आधे पांच; चेदिदेश के युवराज पर चार और मालवराज तथा पुरुराज पर दो २ बाणों का प्रहार किया ॥८०॥

सूतंविद्ध्वाभीमसेनस्यषड्भिर्द्वाभ्यांविद्ध्वाकार्मुकंचध्वजंच ।
पुनः पार्थं शरवर्षेण विद्ध्वा द्रौणिर्घोरं सिंहनादं ननाद ॥

हे राजेन्द्र ! द्रोण-सुत अश्वत्थामा ने भीमसेन के सारथि को छः बाणों से बींध कर दो बाणों से उसकी ध्वजा और धनुष को काट डाला । इसके अनन्तर बाणों की झड़ी लगा कर अर्जुन को आच्छादित करके फिर अश्वत्थामा ने घोर सिंहनाद किया ॥८१॥

तस्याऽस्यतस्तान्निशितान्पीतधारान्द्रौणेःशरान्पृष्ठतश्चाऽग्रतश्च
धराविद्यद्यौः प्रदिशो दिशश्च च्छन्ना बाणैरभवन्घोररूपैः ॥

हे राजन् ! अब अत्यन्त तीक्ष्ण विष में बुझे हुए बाणों को आगे पीछे सब ओर से द्रोणतनय अश्वत्थामा फैंकने लगा । अश्वत्थामा के इन घोर रूपधारी बाणों से पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष, दिशा और प्रदिशा व्याप्त हो गई ॥८२॥

आसन्नस्य स्वरथं तीव्रतेजाः सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ ।
भुजौ शिरश्चेन्द्रसमानवीर्यस्त्रिभिः शरैर्युगपत्सञ्चकर्त ॥८३॥

हे जनाधिप ! अत्यन्त तीव्र तेजधारी, इन्द्र के समान पराक्रमी अश्वत्थामा ने अपने रथ के पास में पहुँचे हुए राजा सुदर्शन की

इन्द्र की ध्वजा के समान चमकीली भुजा और उसके शिर को अपने शरों से एकदम काट डाला ॥८३॥

स पौरवंरथशक्त्यानिहत्यच्छित्वारथंतिलशश्चाऽस्यबाणैः ।
छित्वा च बाहू वरचन्दनाक्तौ भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त ॥

इसके अनन्तर अश्वत्थामा ने रथशक्ति नामक शस्त्र से पुरुराज को मार कर उसके रथ के अपने बाणों से तिल तिल के बराबर टुकड़े कर डाले। फिर उसने उत्तम चन्दन से चर्चित उसकी भुजा काट कर भल्ल नामक बाण से उसकी देह से मस्तक काट गिराया ॥८४॥

युवानमिन्दीवरदामवर्णं चेदिप्रभुं युवराजं प्रसह्य ।
बाणैस्त्वरावान्प्रज्वलिताग्निकल्पैर्विद्ध्वाप्रादान्मृत्यवेसाश्वसूतम्

नील कमल के समान कान्तिमान् तरुण चेदीश्वर युवराज को बड़ी शीघ्रता करने वाले अश्वत्थामा ने अपने प्रज्वलित अग्नि के तुल्य बाणों से बींध कर अश्वों और सारथि के सहित उसे मृत्यु के अधीन किया ॥८५॥

मालवं पौरवं चैव युवराजं च चेदिपम् ।
दृष्ट्वा समक्षं निहतं द्रोणपुत्रेण पाण्डवः ॥८६॥
भीमसेनो महाबाहुः क्रोधमाहारयत्परम् ।
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धाशीविषोपमैः ॥८७॥
छादयामास समरे द्रोणपुत्रं परन्तपः ।

हे राजन्! जब पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने द्रोण-पुत्र द्वारा मारे हुए मालवराज, पुरुराज और चेदिदेश के युवराज को प्रत्यक्ष देखा,

तो वह क्रोध से जल उठा। इस शत्रुतापी भीमसेन ने क्रोधातुर सर्प के समान तीक्ष्ण बाण छोड़कर रण में अश्वत्थामा को बींध डाला।

ततो द्रौणिर्महातेजाः शरवर्षं निहत्य तम् ॥८८॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्भीमसेनममर्षणः।

अब महातेजस्वी असहनशील अश्वत्थामा ने उस बाण-वर्षा को भी ठण्डा कर दिया और अत्यन्त तीक्ष्ण बाण छोड़कर भीमसेन को बींध डाला ॥८८॥

ततो भीमो महाबाहुर्द्रौणेर्युधि महाबलः ॥८९॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा द्रौणिं विव्याध पत्रिणा।

हे राजन्! अब महाबली, बड़ी २ भुजाओं के धारक, भीमसेन ने इस युद्ध में छुरे के समान तीक्ष्ण बाण से अश्वत्थामा के धनुष को काट कर उसे अत्यन्त छिन्न-भिन्न कर दिया ॥८९॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणपुत्रो महामनाः ॥९०॥
अन्यत्कार्मुकमादाय भीमं विव्याध पत्रिभिः।

महामनस्वी द्रोण-सुत अश्वत्थामा ने उस खण्डित धनुष को फेंक दिया और दूसरा धनुष उठाकर भीमसेन को बींध डाला।

तौ द्रौणिभीमौ समरे पराक्रान्तौ महाबलौ ॥९१॥
अवर्षतां शरवर्षं वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ।
भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥
द्रौणिं सञ्छादयामासुर्घनौघा इव भास्करम्।

महाबली अत्यन्त पराक्रमी भीमसेन और अश्वत्थामा, इस समय रण में वर्षा में तत्पर मेघ की तरह अपनी बाण-वर्षा की झड़ी लगा रहे थे। सुवर्णमूलधारी, शिला पर तीक्ष्ण किए हुए, भीमसेन के नाम से अङ्कित बाणों ने अश्वत्थामा को इस तरह आच्छादित कर दिया-जैसे मेघ समूह। सूर्य को आच्छादित कर देता है ॥६१-६२॥

तथैव द्रौणिनिर्मुक्तैर्भीमः सन्नतपर्वभिः ॥६३॥
अवाकीर्यत स क्षिप्रं शरैः शतसहस्रशः।

हे राजन्! इसी तरह अश्वत्थामा के धनुष से छोड़े हुए सैंकड़ों हजारों नतपर्वधारी बाणों से भीमसेन अत्यन्त ही व्याप्त हो गया ॥६३॥

स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना रणशालिना ॥६४॥
न विव्यथे महाराज तदद्भुतमिवाऽभवत्।

हे महाराज! रण में सुशोभित होने वाले द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा द्वारा रणाङ्गण में बाण छोड़कर आच्छादित किया हुआ भी भीमसेन कुछ पीड़ित नहीं हुआ, जिसे वीरों ने बड़ा ही अद्भुत कर्म समझा ॥६४॥

ततो भीमो महाबाहुः कार्तस्वरविभूषितान् ॥६५॥
नाराचान्दश सम्प्रैषीद्यमदण्डनिभाञ्छितान्।

हे राजन्! इसके अनन्तर महाबाहु भीमसेन ने सुवर्ण से विभूषित, यमदण्डोपम तीक्ष्ण, दश नाराच संज्ञक बाणों को अश्वत्थामा पर फैंका ॥६५॥

ते जत्रुदेशमासाद्य द्रोणपुत्रस्य मारिष ॥९६॥

निर्भिद्य विविशुस्तूर्णं वल्मीकमिव पन्नगाः ।

हे आर्य ! वे बाण द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के जत्रु प्रदेश में प्रविष्ट होकर इस तरह वहां शीघ्र घुस गए-जैसे वल्मीक में सर्प घुस जाते हैं ॥९६॥

सोऽतिविद्धो भृशं द्रौणिः पाण्डवेन महात्मना ॥९७॥

ध्वजयष्टिं समासाद्य न्यमीलयत लोचने ।

महावीर पाण्डु-पुत्र भीमसेन द्वारा अश्वत्थामा अत्यन्त आहत हो गए। वे इस समय रथ की ध्वजा की यष्टि पकड़ कर और आंख मींच कर चुपचाप बैठ गए ॥९७॥

स मुहूर्तात्पुनः संज्ञां लब्ध्वा द्रौणिर्नराधिप ॥९८॥

क्रोधं परममातस्थौ समरे रुधिरोक्षितः ।

हे नराधिप ! अश्वत्थामा को थोड़ी ही देर में चेतनता आ गई। वह रणभूमि में रक्त से भीगा हुआ क्रोध से अत्यन्त ज्वल रहा था ॥९८॥

दृढं सोऽभिहतस्तेन पाण्डवेन महात्मना ॥९९॥

वेगं चक्रे महाबाहुर्भीमसेनरथं प्रति ।

इस महावीर पाण्डु-पुत्र भीमसेन द्वारा अश्वत्थामा अत्यन्त क्षत-विक्षत हो गए। अब महाबाहु अश्वत्थामा बड़े वेग के साथ भीमसेन के रथ पर झपटे ॥९९॥

तत आकर्णपूर्णानां शराणां तिग्मतेजसाम् ॥१००॥
शतमाशीविषाभानां प्रेषयामास भारत ।

हे भारत ! इसके बाद अश्वत्थामा ने कान तक धनुप खैंच कर अत्यन्त तीक्ष्ण, आशीविप सर्प के समान भीषण सैकड़ों बाण भीमसेन पर छोड़े ॥१००॥

भीमोऽपि समरश्लाघी तस्य वीर्यमचिन्तयत् ॥१०१॥
तूर्णं प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।

पाण्डु-पुत्र, युद्ध में प्रशंसा पाने वाले भीमसेन ने भी अश्वत्थामा के पराक्रम का विचार करके इस पर बड़े वेग से अत्यन्त उग्र बाणों की वर्षा को शीघ्र २ छोड़ना आरम्भ किया।

ततो द्रौणिर्महाराज च्छित्वाऽस्य विशिखैर्धनुः ॥१०२॥
आजघानोरसि क्रुद्धः पाण्डवं निशितैः शरैः ।

हे महाराज ! अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपने बाणों से भीमसेन का धनुष काट डाला और क्रोध में भरकर तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन की छाती में गाढ़ा प्रहार किया ॥१०२॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो ह्यमर्षणः ॥१०३॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्द्रौणिं पञ्चभिराहवे ।

अब आवेश में भरे रहने वाले भीमसेन ने दूसरा धनुष उठाया और इस युद्ध में पांच तीक्ष्ण बाण अश्वत्थामा पर छोड़कर उसको क्षत विक्षत कर दिया ॥१०३॥

जीमूताविव धर्मान्ते तौ शरौघप्रवर्पिणौ ॥१०४॥
अन्योन्यक्रोधताम्राक्षौ छादयामासतुर्युधि ।

हे राजन्! इस समय ये दोनों वीर भीमसेन और अश्वत्थामा वर्षाकाल में मेघ की तरह बाणों की झड़ी लगा रहे थे। इन दोनों की क्रोध से लाल आंखें हो रही थी। इन्होंने इस युद्ध में परस्पर एक दूसरे को बहुत ही घायल कर दिया ॥१०४॥

तलशब्दैस्ततो घोरैस्त्रासयन्तौ परस्परम् ॥१०५॥
अयुध्येतां सुसंरब्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

इन दोनों महारथियों ने अपनी२ ताल फटकार के घोर शब्द से एक दूसरे को पीड़ित कर दिया। ये बड़े ही आवेश में भरकर एक दूसरे के प्रहार का उत्तर देते हुए युद्ध करने लगे ॥१०५॥

ततो विस्फार्य सुमहच्चापं रुक्मविभूषितम् ॥१०६॥
भीमं प्रेक्षत स द्रौणिः शरानस्यन्तमन्तिकात् ।
शरद्यहर्मध्यगतो दीप्तार्चिरिव भास्करः ॥१०७॥

भीमसेन ने सुवर्ण विभूषित विशाल धनुप खैंच रखा था और वह तीव्रता से बाणों को छोड़ता था। अब अश्वत्थामा ने देखा-कि भीमसेन बहुत ही पास आ गया है। इस समय शरद्काल में प्रदीप्त किरणधारी मध्यान्हकाल के सूर्य के सदृश भीमसेन की प्रचण्ड दशा हो रही थी ॥१०६-१०७॥

आददानस्य विशिखान्सन्दधानस्य चाऽऽशुगान् ।
विकर्पतो मुञ्चतश्च नाऽन्तरं ददृशुर्जनाः ॥१०८॥

अलातचक्रप्रतिमं तस्य मण्डलमायुधम् ।
द्रौणेरासीन्महाराज बाणान्विसृजतस्तदा ॥१०६॥

हे महाराज ! अश्वत्थामा कब बाण ले लेता और कब उन्हें धनुष पर चढ़ा लेता था, इस अन्तर को कोई भी वीर देख नहीं पाता था और न धनुष के खैंचने और बाण छोड़ने के अन्तर का किसी को पता होता था ॥१०८-१०६॥

धनुश्च्युताः शरास्तस्य शतशोऽथ सहस्रशः ।
आकाशे प्रत्यदृश्यन्त शलभानामिवाऽऽयतीः ॥११०

अश्वत्थामा के धनुष से निकले हुए सैंकड़ों हजारों बाण शलभ (टीडी) दल की तरह आकाश में दिखाई देने लगे ॥

ते तु द्रौणिविनिर्मुक्ताः शरा हेमविभूषिताः ।
अजस्रमन्वकीर्यन्त घोरं भीमरथं प्रति ॥१११॥

हे राजन् ! द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के धनुष से निकले हुए सुवर्ण विभूषित घोर बाण भीमसेन के रथ के प्रति लगातार फैलने लगे ॥१११॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
बलं वीर्यं प्रभावं च व्यवसायं च भारत ॥११२॥

हे भारत ! इस समय भीमसेन का भी बल, वीर्य, पराक्रम, प्रभाव और क्रिया कुशलता बहुत ही अद्भुत दिखाई दी ॥११२॥

तां स मेघादिवोद्भूतां बाणवृष्टिं समन्ततः ।
जलवृष्टिं महाघोरां तपान्त इव चिन्तयन् ॥११३॥

द्रोणपुत्रवधप्रेप्सुर्भीमो भीमपराक्रमः ।
अमुञ्चच्छरवर्षाणि प्रावृषीव वलाहकः ॥११४॥

जब भीमसेन ने मेघ से उत्पन्न वर्षाकाल में महाघोर जल वृष्टि के सदृश अश्वत्थामा की तीव्र बाणवर्षा देखी, तो भीम पराक्रमधारी, भीमसेन, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के वध करने की इच्छा से वर्षाऋतु में मेघ की तरह अपने बाणों की झड़ी लगाने लगा ॥११३-११४॥

तद्रुक्मपृष्ठं भीमस्य धनुर्घोरं महारणे ।
विकृष्यमाणं विबभौ शक्रचापमिवाऽपरम् ॥११५॥
तस्माच्छराः प्रादुरासञ्छतशोऽथ सहस्रशः ।
सञ्छादयन्तः समरे द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥११६॥

हे भरतर्षभ ! इस समय महाघोर युद्ध में भीमसेन का सुवर्ण पीठ वाला घोर धनुष, खैंचते ही दूसरे इन्द्र धनुष के सदृश चमक उठा । अब इस धनुष से सैंकड़ों और हजारों बाण रण में रणकुशल द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को आच्छादित करते हुए बिखरने लगे॥११५-११६॥

तयोर्विसृजतोरेवं शरजालानि मारिष ।
वायुरप्यन्तरा राजन्नाऽशक्नोत्प्रतिसर्पितुम् ॥११७॥

हे आर्य ! राजन् ! जब इन दोनों वीरों ने अपने २ बाण छोड़े-तो उनका इतना जाल छा गया, कि उसमें वायु के आने जाने का भी अवकाश न रह गया ॥११७॥

तथा द्रौणिर्महाराज शरान्हेमविभूषितान् ।
तैलधौतान्प्रसन्नाग्रान्प्राहिणोद्वधकांक्षया ॥११८॥

हे महाराज ! अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने सुवर्ण विभूषित, चमकती हुई नोक वाले, तेल से शुद्ध किए हुए बाणों को भीमसेन के वध करने की इच्छा से वेग से छोड़ा ॥११८॥

तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ।
विशेषयन्द्रोणसुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥११९॥

भीमसेन ने अपनी युद्धकुशलता को अश्वत्थामा से अधिक प्रदर्शित करते हुए अपने बाणों से उनके एक २ बाण के तीन २ टुकड़े कर डाले और अश्वत्थामा से कहा, कि तनिक ठहरे रहो ॥११९॥

पुनश्च शरवर्षाणि घोराण्युग्राणि पाण्डवः ।
व्यसृजद्बलवान्क्रुद्धो द्रोणपुत्रवधेप्सया ॥१२०॥

अब बलवान पाण्डु-पुत्र भीमसेन क्रोध से उबल उठा। उसने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के वध कर देने की इच्छा से उस पर घोर बाणों की झड़ी लगा दी ॥१२०॥

ततोऽस्त्रमायया तूर्णं शरवृष्टिं निवार्य ताम् ।
धनुश्चिच्छेद भीमस्य द्रोणपुत्रो महास्त्रवित् ॥१२१॥
शरैश्चैनं सुबहुभिः क्रुद्धः संख्ये पराभिनत् ।

द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा भी अस्त्रविद्या में महाकुशल थे, उन्होंने अपने अस्त्रों की माया से बड़े वेग के साथ भीमसेन की इस

बाण-वर्षा का निवारण करके उसके धनुष को काट डाला। इसने क्रोध में भरकर बहुत से बाणों से रण में भीमसेन को अत्यन्त आहत कर दिया ॥१२१॥

स च्छिन्नधन्वा बलवान्रथशक्ति सुदारुणाम् ॥१२२॥
वेगेनाऽऽविध्य चिक्षेप द्रोणपुत्ररथं प्रति ।

जब महाबली भीमसेन का धनुष कट गया-तो उसने दारुण, रथ-शक्ति को वेग के साथ सम्हाली और उसे अश्वत्थामा के रथ पर फैंका ॥१२२॥

तामापतन्तीं सहसा महोल्काभां शितैः शरैः ॥१२३॥
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।

महान् उल्का (मशाल) के समान चमकीली उस रथशक्ति (शस्त्र) को अपने ऊपर आते देखकर अश्वत्थामा ने अपने हाथों के कौशल (फुर्ती) के द्वारा उसे एक दस बाणों से काट गिराया ॥१२३॥

एतस्मिन्नन्तरे भीमो दृढमादाय कार्मुकम् ॥१२४॥
द्रौणिं विव्याध विशिखैः स्मयमानो वृकोदरः ।

इसी अन्तर में वृकोदर भीमसेन ने फिर दूसरा धनुष उठा लिया और उसने हँसते २ बाणों द्वारा द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को बहुत ही बींध दिया ॥१२४॥

ततो द्रौणिर्महाराज भीमसेनस्य सारथिम् ॥१२५॥
ललाटे दारयामास शरेणाऽऽनतपर्वणा ।

सोऽतिविद्धो बलवता द्रोणपुत्रेण सारथिः ॥१२६॥
व्यामोहमगमद्राजन्रश्मीनुत्सृज्य वाजिनः ।

हे महाराज ! अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपने नतपर्वधारी बाण से भीमसेन के सारथि के मस्तक में प्रहार किया। हे राजन् ! बलवान् अश्वत्थामा के आघात से वह सारथि बहुत ही व्याकुल हो उठा । उसके हाथ से अश्वों की रासें छुट गई और वह बड़ा ही अचेत हो गया ॥१२५-१२६॥

ततोऽश्वाः प्राद्रवंस्तूर्णं मोहिते रथसारथौ ॥१२७॥
भीमसेनस्य राजेन्द्र पश्यतां सर्वधन्विनाम् ।

हे राजन ! जब सारथि मूर्च्छित हो गया-तो भीमसेन के अश्व बड़े वेग से भाग निकले। इस अवस्था को सारे वीर खड़े २ देखते रहे ॥१२७॥

तं दृष्ट्वा प्रद्रुतैरश्वैरपकृष्टं रणाजिरात् ॥१२८॥
दध्मौ प्रमुदितः शङ्खं बृहन्तमपराजितः ।

जब भागे हुए अश्व रणाजिर से भीमसेन को दूर ले गए-तो किसी से पराजित नहीं होने वाले अश्वत्थामा ने अपना विशाल शङ्ख बजाया ॥१२८॥

ततः सर्वे च पञ्चाला भीमसेनश्च पाण्डवः ॥१२९॥
धृष्टद्युम्नरथं त्यक्त्वा भीताः सम्प्राद्रवन्दिशः ।

अब पाण्डु-पुत्र भीमसेन के रण को छोड़ते ही सारे पाञ्चाल भयभीत होकर दिशाओं को भाग निकले। वहां केवल अकेले धृष्टद्युम्न का ही रथ रह गया ॥१२९॥

तान्प्रभग्नांस्ततो द्रौणिः पृष्ठतो विकिरञ्शरान् ॥१३०
अभ्यवर्तत वेगेन कालयन्पाण्डुवाहिनीम् ।

जब पाण्डवसेना भाग रही थी, तो अश्वत्थामा, पाण्डव-सेना को ललकारता हुआ, उनके पीछे दौड़ा और उसने उनके पीछे, बाणों की झड़ी लगा दी ॥१३०॥

ते वध्यमानाः समरे द्रोणपुत्रेण पार्थिवाः ॥
द्रोणपुत्रभयाद्राजन्दिशः सर्वाश्च भेजिरे ॥१३१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामपराक्रमे द्विशततमोऽध्यायः ॥२००॥

हे राजन् ! द्रोण-पुत्र द्वारा रण में छेदे हुए बहुत से राजा, उनके भय से अपने २ अनुकूल सारी दिशाओं को भाग निकले ॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्व में अश्वत्थामा के पराक्रम का दो सौवां अध्याय पूरा हुआ।

—:o:—

दो सौ एकवां अध्याय

सञ्जय उवाच—तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।

न्यवारयदमेयात्मा द्रोणपुत्रजयेप्सया ॥१॥

ततस्ते सैनिका राजन्नैव तत्राऽवतस्थिरे ।

संस्थाप्यमाना यत्नेन गोविन्देनाऽर्जुनेन च ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इस भागती हुई पाण्डवसेना को देखकर महाबलशाली कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के जीत लेने की इच्छा से अपनी सेना को वहीं रोक लेना चाहा, परन्तु वे सैनिक वहां नहीं रुके, यद्यपि उनके रोकने का श्रीकृष्ण और अर्जुन ने बड़ा ही प्रयत्न किया ॥१-२॥

एक एव च बीभत्सुः सोमकावयवैः सह ।

मत्स्यैरन्यैश्च सन्धाय कौरवान्संन्यवर्तत ॥३॥

अब तो केवल अकेला एक अर्जुन ही कुछ सोमक और मत्स्यवीरों की सेना लेकर कौरवों की ओर चला ॥३॥

ततो द्रुतमतिक्रम्य सिंहलाङ्गूलकेतनम् ।

सव्यसाची महेष्वासमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥४॥

हे भारत ! अब सव्यसाची अर्जुन ने बड़े ही वेग से आक्रमण करके सिंह की पूछ के चिन्ह से सुशोभित, महाधनुर्धर अश्व-त्थामा से यह वचन कहा ॥४॥

या शक्तिर्यच्च विज्ञानं यद्वीर्यं यच्च पौरुषम् ।
धार्तराष्ट्रेषु या प्रीतिर्द्वेषोऽस्मासु च यच्च ते ॥५॥
यच्च भूयोऽस्ति तेजस्ते तत्सर्वं मयि दर्शय ।
स एव द्रोणहन्ता ते दर्पं छेत्स्यति पार्षतः ॥६॥

हे अश्वत्थामा ! जो तुममें शक्ति, युद्ध-विज्ञान, वीर्य, पुरुषार्थ, धृतराष्ट्र पुत्र, आदि में प्रीति, हम लोगों में द्वेष तथा अपना तीव्र तेज है, वह सब कुछ दिखा लेना। यह द्रोणनाशक धृष्टद्युम्न ही तेरे घमण्ड का छेदन कर डालेगा ॥५-६॥

कालानलसमप्रख्यं द्विषतामन्तकोपमम् ।
समासादय पाञ्चाल्यं मां चापि सहकेशवम् ।
दर्पं नाशयितास्म्यद्य तवोद्वृत्तस्य संयुगे ॥७॥

यह पञ्चालश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न कालाग्नि के समान तेजस्वी और शत्रुओं का वध कर देने वाला है। अब तुम इस धृष्टद्युम्न, श्रीकृष्ण या मुझ पर मन खोलकर आक्रमण कर लेना ॥७॥

धृतराष्ट्र उवाच— आचार्यपुत्रो मानार्हो बलवांश्चापि सञ्जय ।
प्रीतिर्धनञ्जये चाऽस्य प्रियश्चापि महात्मनः ॥८॥
न भूतपूर्वं बीभत्सोर्वाक्यं परुषमीदृशम् ।
अथ कस्मात्स कौन्तेयः सखायं रूक्षमुक्तवान् ॥९॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! आचार्यपुत्र अश्वत्थामा तो बड़ा बलवान् अतएव अर्जुन के मान का पात्र था। अर्जुन की पूर्वकाल से इससे बड़ी प्रीति थी। यह तो महावीर अर्जुन का बड़ा प्रिय सखा

था। अर्जुन ने तो कभी भी पूर्वकाल में इससे इतना कठोर भाषण नहीं किया। आज कैसे इससे इतना रूक्ष वचन बोल उठा।

सञ्जय उवाच— युवराजे हते चैव वृद्धक्षत्रे च पौरवे।
इष्वस्त्रविधिसम्पन्ने मालवे च सुदर्शने ॥१०॥
धृष्टद्युम्ने सात्यकौ च भीमे चापि पराजिते।
युधिष्ठिरस्य तैर्वाक्यैर्मर्मण्यपि च घट्टिते ॥११॥
अन्तर्भेदे च सञ्जाते दुःखं संस्मृत्य च प्रभो।
अभूतपूर्वो बीभत्सोर्दुःखान्मन्युरजायत ॥१२॥
तस्मादनर्हमश्लीलमप्रियं द्रौणिमुक्तवान्।
मान्यमाचार्यतनयं रूक्षं कापुरुषं यथा ॥१३॥

संजय ने कहा—हे भरतर्षभ! एक तो चेदी युवराज, दूसरे पुरुराज वृद्धक्षत्र और तीसरे बाणविद्या के पण्डित मालवराज सुदर्शन के मार लेने, धृष्टद्युम्न, सात्यकि और भीमसेन के हरा देने से परिस्थिति बिगड़ गई थी। राजा युधिष्ठिर ने भी अर्जुन के मर्मों में अपने वाक्य बाणों से बुरा प्रहार किया, जिससे इसके मर्मस्थान पीड़ित थे। इनका अन्तस्थल छिद गया था और पूर्वकाल के वन के दुःखों का भी इस समय स्मरण हो आया था। अर्जुन को इस प्रकार कभी भी क्रोध नहीं आया परन्तु आज यह देख कर वह क्रोध की मूर्ति बन गया। इसी कारण से उन्होंने माननीय आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा से भी अनुचित, उनके अयोग्य, रूक्ष, अप्रिय, अश्लील, कायर पुरुषों से कहने योग्य वचन कह डाले ॥१०-१३॥

एवमुक्तः श्वसन्क्रोधान्महेष्वासतमो नृप ।
पार्थेन परुषं वाक्यं सर्वमर्मभिदा गिरा ॥१४॥
द्रौणिश्चुकोप पार्थाय कृष्णाय च विशेषतः ।
स तु यत्तो रथे स्थित्वा वार्युपस्पृश्य वीर्यवान् ॥१५॥
देवैरपि सुदुर्धर्षमस्त्रमाग्नेयमाददे ।
दृश्यादृश्यानरिगणानुद्दिश्याऽऽचार्यनन्दनः ॥१६॥
सोऽभिमन्त्र्य शरं दीप्तं विधूममिव पावकम् ।
सर्वतः क्रोधमाविश्य चिक्षेप परवीरहा ॥१७॥
ततस्तुमुलमाकाशे शरवर्षमजायत ।
पावकार्चिः परीतं तत्पार्थमेवाऽभिपुप्लुवे ॥१८॥

हे नृप ! जब अर्जुन ने मर्मभेदी वाणी से ऐसा कठोर वाक्य कहा—तो महाधनुर्धर अश्वत्थामा भी श्रीकृष्ण और अर्जुन पर विशेषता के साथ कुपित हो उठा। अब महापराक्रमी अश्वत्थामा ने जल का आचमन किया और बड़ी सावधानी से रथ में स्थित होकर देवों से दुर्धर्ष आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया। इस समय अश्वत्थामा ने जो शत्रु दिखाई दे रहे थे और जो नहीं दिखाई देते थे, उन सबको लक्ष्य बनाया। शत्रुवीरनाशक अश्वत्थामा ने धूमरहित अग्नि के तुल्य प्रदीप्त, उस अस्त्र को अभिमन्त्रित करके क्रोध-पूर्वक सब ओर फैंका। हे राजन् ! इस अस्त्र के फैंकते ही उससे बाणों की झड़ी लग गई, जिनसे आग की लपटें निकल रही थीं। अब वह आग्नेयास्त्र अर्जुन की ओर बढ़ा १४-१८

उल्काश्च गगनात्पेतुर्दिशश्च न चकाशिरे ।
तमश्च सहसा रौद्रं चमूमवततार ताम् ॥१६॥

हे राजन् ! इस समय बहुत सी उल्का आकाश से गिरने लगी, जिनसे दिशाएँ प्रज्वलित हो उठी, परन्तु एक ओर इतना घोर घुंआधार अन्धकार छाया, कि पाण्डवसेना ढ़क गई ॥१६॥

रक्षांसि च पिशाचाश्च विनेदुरतिसङ्गताः ।
ववुश्चाऽशिशिरा वाताः सूर्यो नैव तताप च ॥२०॥
वायसाश्चापि चाऽऽक्रन्दन्दिक्षु सर्वासु भैरवम् ।
रुधिरं चापि वर्षन्तो विनेदुस्तोयदा दिवि ॥२१॥
पक्षिणः पशवो गावो विनेदुश्चापि सुव्रताः ।
परमं प्रयतात्मानो न शान्तिमुपलेभिरे ॥२२॥

अब मिल २ कर राक्षस और पिशाच गर्जना करने लगे, वायु बड़े भीषण रूप से उष्ण होकर चलने लगा और सूर्य भी अपने तेज को छोड़ बैठा। कव्वे सारी दिशाओं में भैरवध्वनि करने लगे और मेघ रुधिर बर्षाते हुए आकाश में गरजने लगे। सुन्दर कर्मपरायण पक्षी, पशु और गायें भी चीखने लगी। वे बड़ा प्रयत्न करने पर भी कहीं शान्ति नहीं पा रहे थे ॥२०-२२॥

भ्रान्तसर्वमहाभूतमावर्तितदिवाकरम् ।
त्रैलोक्यमभिसन्तप्तं ज्वराविष्टमिवाऽभवत् ॥२३॥

इस समय सारे महाभूत चकरा गए और सूर्य घूमने लगा और तो क्या त्रिलोकीमात्र सन्तप्त होकर ज्वराक्रान्त सी होउटी ।

अस्त्रतेजोभिसन्तप्ता नागा भूमिशयास्तथा ।
निःश्वसन्तः समुत्पेतुस्तेजो घोरं मुमुक्षवः ॥२४

जो हाथी भूमि में पड़े थे, वे भी अस्त्र के तेज से सन्तप्त हो कर श्वास लेते हुए उछल पड़े। वे अपने ऊपर पड़ी हुई इस आग से छुटकारा पाना चाहते थे ॥२४॥

जलजानि च सत्वानि दह्यमानानि भारत ।
न शान्तिमुपजग्मुर्हि तप्यमानैर्जलाशयैः ॥२५॥

हे भारत ! जो जल में उत्पन्न जन्तु थे, वे भी इस अस्त्र की आग से जल उठे थे। जब उनका जलाशय ही अस्त्र की आग से उबल उठा-तो उनको शान्ति कैसे मिल सकती है ॥२५॥

दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यः खाद्भूमेः सर्वतः शरवृष्टयः ।
उच्चावचा निपेतुर्वै गरुडानिलरंहसैः ॥२६॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब उस आग्नेयास्त्र द्वारा दिशा, प्रदिशा, आकाश और भूमि सब ओर से बाणों की वर्षा गरुड़ और वायु के समान वेग के साथ ऊंचे और नीचे सब मार्गों से होने लगी ॥२६॥

तैः शरैर्द्रोणपुत्रस्य वज्रवेगैः समाहताः ।
प्रदग्धा रिपवः पेतुरग्निदग्धा इव द्रुमाः ॥२७॥

हे राजश्रेष्ठ ! द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के वज्रोपम बाणों से आहत, शत्रु भस्म होकर इस तरह गिरने लगे जैसे-अग्नि से दग्ध हुए वृक्ष गिर रहे हों ॥२७॥

दह्यमाना महानागाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः ।
नदन्तो भैरवान्नादाञ्जलदोपमनिःस्वनान् ॥२८॥
अपरे प्रद्रुता नागा भयत्रस्ता विशाम्पते ।
त्रेसुर्दिशो यथापूर्वं वने दावाग्निसंवृताः ॥२९॥

हे विशाम्पते ! इस समय अच्छे २ हाथी, इस अस्त्र से जलते हुए मेघ के समान गरजना करते और भीषण स्वर में चिंघाड़ते हुए सब ओर पृथिवी में गिरने लगे। बहुत से हाथी, भय से दुःखी होकर भाग निकले। इन गजों को इस प्रकार की पीड़ा हुई, जैसे-वन में आग लगने पर उन्हें कभी वन में पीड़ा हुई होगी ॥२८-२९

द्रुमाणां शिखराणीव दावदग्धानि मारिष ।
अश्ववृन्दान्यदृश्यन्त रथवृन्दानि भारत ॥३०॥

हे आर्य ! इस अस्त्र की ज्वाला से अश्व और रथों का समूह इस तरह दग्ध हो गया-जैसे वन की आग वन में वृक्षों को जला देती है ॥३०॥

अपतन्त रथौघाश्च तत्र तत्र सहस्रशः ।
तत्सैन्यं भयसंविग्नं ददाह युधि भारत ॥३१॥
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवाऽनलः ।

हे भारत ! जिधर देखो उधर ही सहस्रों की संख्या में रथों के समूह गिर रहे थे। इस रण में भयातुर होकर पाण्डवसेना

इस तरह दग्ध होने लगी जैसे-प्रलयकाल में संवर्तक आग से सारे भूत (तत्व) भस्मसात् हो जाते हैं ॥२१॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां दह्यमानां महाहवे ॥२२॥
प्रहृष्टास्तावका राजन्सिंहनादान्विनेदिरे ।

हे राजन ! जब इस घोर युद्ध में पाण्डवी सेना दग्ध हो चुकी, तो तुम्हारे पक्ष के वीर बड़े प्रफुल्लित हुए और सिंहनाद करने लगे ।

ततस्तूर्यसहस्राणि नानालिङ्गानि भारत ॥२३॥
तूर्णमाजघ्निरे हृष्टास्तावका जितकाशिनः ।

हे भारत ! अब अनेक प्रकार के तूर्य आदि बाजों को बड़े वेग से तुम्हारे पक्ष के वीर बजाने लगे, क्योंकि उनको विजय की बहुत ही आशा हो चली थी ॥२३॥

कृत्स्ना ह्यक्षौहिणी राजन्सव्यसाची च पाण्डवः ॥२४॥
तमसा संवृते लोके नादृश्यन्त महाहवे ।

हे राजन् ! इस महाघोर युद्ध में सब ओर अन्धकार छा गया, तो पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना और पाण्डु-पुत्र अर्जुन बिल्कुल दिखाई न दिए ॥२४॥

नैव नस्तादृशं राजन्दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥२५॥
यादृशं द्रोणपुत्रेण सृष्टमस्त्रममर्षिणा ।

हे राजन् ! हमने अन्य भी आग्नेयास्त्र देखे हैं, परन्तु क्रोध में भर कर जैसा द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने यह आग्नेयास्त्र छोड़ा-वैसा बाण हमने कभी नहीं देखा ॥२५॥

अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥२६॥
सर्वास्त्रप्रतिघातार्थं विहितं पद्मयोनिना ।

हे महाराज ! अब अर्जुन ने भी अपना ब्रह्मास्त्र सम्हाला । ब्रह्मा ने इसे सारे अस्त्रों के नाश कर देने को ही रचा था ॥३६॥

ततो मुहूर्तादिव तत्तमो व्युपशशाम ह ॥३७॥
प्रववौ चाऽनिलः शीतो दिशश्च विमला बभुः ।

हे भारत ! थोड़ी ही देर में वह अन्धकार नष्ट हो गया-वायु शीतल चलने लगी और दिशा निर्मल होकर चमक उठी ॥३७॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम कृत्स्नामक्षौहिणीं हताम् ॥३८॥
अनभिज्ञेयरूपां च प्रदग्धामस्त्रतेजसा ।

हे राजन् ! अश्वत्थामा के इस आग्नेयास्त्र से अर्जुन की सारी अक्षौहिणी सेना इस तरह भस्म हो गई, कि उसे कोई जान भी न सका; यह एक बड़ा ही अद्भुत युद्ध का चमत्कार माना गया ।

ततो वीरौ महेष्वासौ विमुक्तौ केशवार्जुनौ ॥३९॥
सहितौ प्रत्यदृश्येतां नभसीव तमोनुदौ ।

अब प्रकाश होने पर महाधनुर्धर दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन-इस अस्त्र की अग्नि से बच कर इस तरह दिखाई दिए जैसे आकाश में अन्धकार नाशकारी सूर्य और चन्द्रमा दिखाई देते हैं ॥३९॥

ततो गाण्डीवधन्वा च केशवश्चाऽक्षतावुभौ ॥४०॥
सपताकध्वजहयः सानुकर्षवरायुधः ।
प्रबभौ स रथो युक्तस्तावकानां भयङ्करः ॥४१॥

हे राजन् ! गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन और श्रीकृष्ण, दोनों ही अक्षत थे। ध्वजा और पताकाओं की शोभा से युक्त, सुन्दर अश्वों से समन्वित, सारे ऊंचे नीचे रथ के काष्ठों से सुन्दर, शस्त्र-सम्पन्न अर्जुन का रथ बहुत ही चमक रहा था, जिसे देखकर तुम्हारे वीर सैनिक भयभीत हो उठे ॥४०-४१॥

ततः किलकिलाशब्दः शङ्खभेरीस्वनैः सह ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां क्षणेन समजायत ॥४२॥

हे राजन् ! अब शङ्ख, भेरी आदि बाजों के शब्दों के साथ कलकल ध्वनि छा गई। सारे पाण्डव क्षण भर में प्रसन्न हो उठे।

हताविति तयोरासीत्सेनयोरुभयोर्मतिः ।
तरसाऽभ्यागतौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ॥४३॥
तावक्षतौ प्रमुदितौ दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ।
दृष्ट्वा प्रमुदितान्पार्थांस्त्वदीया व्यथिता भृशम् ॥

हे भारत ! दोनों पक्ष के वीरों की यह धारणा हो गई थी, कि अर्जुन और कृष्ण दोनों ही इस अस्त्राग्नि में दग्ध हो गए। जब ये वेग से अन्धकार से बाहर निकले-तो पाण्डव सैनिक बड़े ही उल्लसित हुए। ये दोनों ही बिल्कुल अक्षत और प्रसन्न थे। इन्होंने अब अपने २ शङ्ख बजाए। हे नृप ! जब तुम्हारे सैनिकों ने सारे पाण्डवों को प्रमोद-पूर्ण देखा-तो वे अत्यन्त व्यथित हो गए।

विमुक्तौ च महात्मानौ दृष्ट्वा द्रौणिः सुदुःखितः ।
मुहूर्तं चिन्तयामास किं त्वेतदिति मारिष ॥४५॥

हे आर्य ! इन दोनों महावीर श्रीकृष्ण और अर्जुन को देखकर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा भी दुःखी हुए। उन्होंने थोड़ी देर विचार किया, कि यह क्या बात हुई ॥४५॥

चिन्तयित्वा तु राजेन्द्र ध्यानशोकपरायणः ।
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च विमनाश्चाऽभवत्ततः ॥४६॥

हे राजेन्द्र ! जब उसने विचार किया-तो वह ध्यान और शोक में निमग्न हो गया। उसने दीर्घ और उष्ण श्वास मारे और वह बड़ा ही उदास हुआ ॥४६॥

ततो द्रौणिर्धनुस्त्यक्त्वा रथात्प्रस्कन्द्य वेगितः ।
धिग्धिक्सर्वमिदं मिथ्येत्युक्त्वा सम्प्राद्रवद्रणात् ॥४७॥

हे भरतर्षभ ! अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपना धनुष फैंक दिया और वह वेग के साथ रथ से कूद पड़ा । इन अस्त्रों को धिक्कार है। ये सब मिथ्या हैं; इस प्रकार कहता हुआ रण से भाग निकला ॥४७॥

ततः स्निग्धाम्बुदाभासं वेदावासमकल्मषम् ।
वेदव्यासं सरस्वत्यावासं व्यासं ददर्श ह ॥४८॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर सुन्दर मेघ के समान चमकीले, वेद के ज्ञाता, पापहीन, वेद के विस्तार करने वाले, सरस्वती के निवासस्थान भगवान कृष्णद्वैपायन अश्वत्थामा को दिखाई देने लगे ॥४८॥

तं द्रौणिरग्रतो दृष्ट्वा स्थितं कुरुकुलोद्वहम् ।
सन्नकण्ठोऽब्रवीद्वाक्यमभिवाद्य सुदीनवत् ॥४६॥

जब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने कुरुकुलसञ्चालक, व्यासजी को अपने सन्मुख देखा, तो उसका गला भर आया और वह उनको प्रणाम करके दीनता के साथ यह वाक्य बोला ॥४६॥

भो भो माया यदृच्छा वा न विद्मः किमिदं भवेत् ।
अस्त्रं त्विदं कथं मिथ्या मम कश्च व्यतिक्रमः ॥५०॥

हे भगवन् ! यह कोई माया हुई या परमात्मा की इच्छा है, मुझे इसका कुछ भी पता नहीं चलता । यह अस्त्र कैसे मिथ्या हो गया और आज यह विपरीत भाव कैसे दिखाई दिया ॥५०॥

अधरोत्तरमेतद्वा लोकानां वा पराभवः ।
यदिमौ जीवितः कृष्णौ कालो हि दुरतिक्रमः ॥५१॥

क्या यह उलट पलट होने का समय है या लोकों का नष्ट होने वाला है । ये श्रीकृष्ण और अर्जुन कैसे जीवित बच निकले । काल बड़ा दुरतिक्रमणीय होता है ॥५१॥

नाऽसुरा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
न सर्पा यक्षपतगा न मनुष्याः कथञ्चन ॥५२॥
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुमेतदस्त्रं मयेरितम् ।
तदिदं केवलं हत्वा शान्तमक्षौहिणीं ज्वलत् ॥५३॥

मेरे इस अस्त्र के फैंक देने पर इसे व्यर्थ कर देने की सामर्थ्य असुर, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, सर्प, यक्ष, पतङ्ग और मनुष्य किसी में भी नहीं है । यह प्रज्वलित होकर भी केवल एक अक्षौहिणी सेना को मार कर ही शान्त हो गया ॥५२-५३॥

सर्वघाति मया मुक्तमस्त्रं परमदारुणम् ।
केनेमौ मर्त्यधर्माणौ नाऽवधीत्केशवार्जुनौ ।५४॥

मैंने तो यह अत्यन्त दारुण, सबका नाश करने वाला आग्नेयास्त्र छोड़ा था, फिर इन मरणशील श्रीकृष्ण और अर्जुन का यह कैसे वध नहीं कर सका ॥५४॥

एतत्प्रब्रूहि भगवन्मया पृष्टो यथातथम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन सर्वमेतन्महामुने ॥५५॥

हे भगवन् ! महामुने ! मैं आपसे पूछ रहा हूँ, कि यह क्या हुआ । तुम इसको ठीक २ सुनाओ । मैं इसका तत्व सुनना चाहता हूं ॥५५॥

व्यास उवाच— महान्तमेवमर्थं मां यं त्वं पृच्छसि विस्मयात्
तं प्रवक्ष्यामि ते सर्वं समाधाय मनः शृणु ॥५६॥

व्यासजी ने कहा—हे अश्वत्थामा ! तुमने जो गूढ़ बात का मुझसे तत्व पूछा है और इसका तुमको आश्चर्य भी हो रहा है, मैं तुमको सब सुना देता हूं । तुम अपने मन को एकाग्र करके सुनो ॥५६॥

योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्वकृत् ॥५७
स तपस्तीव्रमातस्थे शिशिरं गिरिमास्थितः ।
उर्ध्वबाहुर्महातेजा ज्वलनादित्यसन्निभः ॥५८॥

षष्टिं वर्षसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।
अशोषयत्तदाऽऽत्मानं वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः ॥५९॥

जो सबके पूर्वजों के पूर्वज भगवान् नारायण हैं । वे विश्व रचना करने वाले, संसार की रक्षा के निमित्त धर्म के पुत्र होकर उत्पन्न हुए। इन्होंने हिमालय का आश्रय लेकर तीव्र तप किया । इस महातेजस्वी ने अपनी भुजा ऊपर उठा ली । यह प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के तुल्य देदीप्यमान हो उठे । इन्होंने छियासठ हजार वर्ष तक वहां तप किया। कमल के समान नेत्र धारी भगवान् नारायण वहां वायु का आहार करके अपने आत्मा का शोषण करने लगे ॥५७-५९॥

अथाऽपरं तपस्तप्त्वा द्विस्ततोऽन्यत्पुनर्महत् ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं तेजसा समपूरयत् ॥६०॥

इसके अनन्तर उन्होंने फिर दूसरा महान् तप इससे भी दुगना कर डाला। इन्होंने आकाश और पृथिवी का अवकाश अपने तेज से भर दिया॥६०॥

स तेन तपसा तात ब्रह्मभूतो यदाऽभवत् ।
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥६१॥
ददर्श भृशदुर्धर्षं सर्वदेवैरभिष्टुतम् ।
अणीयांसमणुभ्यश्च बृहद्भ्यश्च बृहत्तमम् ॥६२॥
रुद्रमीशानमृषभं हरं शम्भुं कपर्दिनम् ।
चेकितानं परां योनिं तिष्ठतो गच्छतश्च ह ॥६३॥

हे तात ! जब वे इस तप से ब्रह्मभूत हो गए तो उन्होंने विश्व के कारण, जगत्पति, सम्पूर्ण ऐश्वर्य से सम्पन्न महादुर्धर्ष देवों से स्तुति किये हुए भगवान् शङ्कर को देखा। भगवान् शङ्कर अणु से अणु और बड़े से बड़े हैं। ये सारे ऐश्वर्य धारण करने वालों में शक्तिशाली, हर, शम्भु, कपर्दी, चेतन स्वरूप और चराचर जगत् के कारण स्वरूप हैं ॥६१-६३॥

दुर्वारणं दुर्दृशं तिग्ममन्युं महात्मानं सर्वहरं प्रचेतसम्।
दिव्यं चापमिषुधी चाऽऽददानं हिरण्यवर्माणमनन्तवीर्यम् ॥
पिनाकिनं वज्रिणं दीप्तशूलं परश्वधिनं गदिनं चाऽऽयतासिम्
शुभ्रं जटिलं मुसलिनं चन्द्रमौलिं व्याघ्राजिनं परिघिणं दण्डपाणिम्
शुभाङ्गदं नागयज्ञोपवीतं विश्वैर्गणैः शोभितं भूतसङ्घैः।
एकीभूतं तपसां सन्निधानं वयोतिगैः सुष्टुतमिष्टवाग्भिः ॥
जलं दिशं खं क्षितिं चन्द्रसूर्यौ तथा वाय्वग्नी प्रमिमाणं जगच्च।
नाऽलं द्रष्टुं यं जना भिन्नवृत्ता ब्रह्मद्विषघ्नममृतस्य योनिम्॥
यं पश्यन्ति ब्राह्मणा साधुवृत्ताः क्षीणे पापे मनसा वीतशोकाः

ये रुद्र, किसी तरह निवारण करने के अयोग्य, दुर्दर्शनीय, दुष्टों पर क्रोध करने वाले, सबके संहारकर्ता, उदार चित्त, दिव्य धनुष और तूणीर के धारण करने वाले, सुवर्ण के से चमकीले आकार धारी, अनन्त शक्ति, पिनाकी वज्री, दीप्तशूलधारी परश्वध युक्त, गदासमन्वित, लम्बे खड्ग के धारण करने वाले, शुभ्र, जटिल-मुसलधारी, चन्द्रमौलि, व्याघ्रचर्माच्छन्न, परिघ-समन्वित

दण्डपाणि, शुभ अङ्गदों से संयुक्त, नागयज्ञोपवीतधारी, अनेक गण और भूतसङ्घ से सुशोभित, एकीभूत, तपों के स्थानभूत, वृद्धावस्था के चिन्हों से सुसम्पन्न, सुन्दर वाणियों से प्रशंसनीय, जल, दिशा, आकाश, पृथिवी, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि तथा सारे जगत् के कारण भूत हैं। ब्रह्मद्वेषियों के नाश करने वाले, अमृत के कुण्ड, इन भगवान् रुद्र के देखने में असाधुवृत्त के पुरुष समर्थ नहीं हो सकते हैं। जिन ब्राह्मणों के पाप क्षीण हो गए, संसारी शोक नष्ट हो चुके, वे सदाचारी ब्राह्मण ही उनके दर्शन कर सकते हैं ॥६४-६७॥

तं निष्पतन्तं तपसा धर्ममीड्यं तद्भक्त्या वै विश्वरूपंददर्श॥
दृष्ट्वा चैनं वाङ्मनोबुद्धिदेहैः संहृष्टात्मा मुमुदे वासुदेवः ॥

नारायण ऋषि ने अपने तप के प्रभाव से प्रादुर्भूत होते हुए पूजनीय स्वरूप, साक्षात् धर्म की मूर्ति विराट् रूप के भक्ति-पूर्वक दर्शन किए। इनके दर्शन से वासुदेव (नारायण) ऋषि के वाणी, मन, बुद्धि और देह सब प्रसन्न हो गए। इस तरह वे बहुत ही आनन्दित हुए ॥६८॥

अक्षमालापरिक्षिप्तं ज्योतिषां परमं निधिम् ।
ततो नारायणो दृष्ट्वा ववन्दे विश्वसम्भवम् ॥६९॥
वरदं पृथुचार्वङ्ग्या पार्वत्या सहितं प्रभुम् ।
क्रीडमानं महात्मानं भूतसङ्घगणैर्वृतम् ॥७०॥
अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमच्युतम् ।

अभिवाद्याऽथ रुद्राय सद्योऽन्धकनिपातिने ।
पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान् ॥७१॥

ये भगवान् रुद्र, अक्ष माला से परिच्छिन्न, ज्योतिः के परम स्थान थे। विश्व के कारण भगवान रुद्र को देखकर नारायण ऋषि वन्दना करने लगे। रुद्र, वरदायी और सुन्दर रूप धारिणी पार्वती के सहित थे। ये महात्मा भूतगणों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। अज, सर्वशक्तिमान् अव्यक्त, कारणात्मा, अच्युत, भगवान् रुद्र को प्रणाम करके, भक्तियुक्त कमलनेत्र नारायण ऋषि ने अन्धकासुरनाशक विरूपाक्ष भगवान् शङ्कर की स्तुति करना आरम्भ किया ॥६६-७१॥

श्रीनारायण उवाच—

त्वत्सम्भूता भूतकृतो वरेण्य गोप्तारोऽस्य भुवनस्याऽऽदिदेव
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन्पुरा पुराणीं तव देवसृष्टिम् ॥

नारायण ऋषि ने कहा—हे आदिदेव! तुमसे ही सारे प्रजापति आदि प्राणी उत्पन्न होते हैं। हे वरेण्य! जो इस भुवन के रक्षक हैं, इन ही प्रजापति आदि ने तुम्हारी रची पृथिवी में घुस कर तुम्हारी प्राचीन देव-सृष्टि की रक्षा की है ॥७२॥

सुरासुरान्नागरक्षःपिशाचान्नरान्सुपर्णानथ गन्धर्वयक्षान् ।
पृथग्विधान्भूतसङ्घांश्च विश्वांस्त्वत्सम्भूतान्विद्म सर्वांस्तथैव ।
ऐन्द्रं याम्यं वारुणं वैत्तपाल्यं पैत्रं त्वाष्ट्रं कर्म सौम्यं च तुभ्यम्

रूपं ज्योतिःशब्द आकाशवायुःस्पर्शःस्वाद्यं सलिलंगन्धउर्वी
कालो ब्रह्माब्रह्म च ब्राह्मणाश्च त्वत्सम्भूतं स्थास्नु चरिष्णुचेदम्

सुर, असुर, नाग, राक्षस, पिशाच, नर, सुपर्ण गन्धर्व, यक्ष तथा पृथक् २ प्रकार के सारे भूत संघों को तथा अन्य सारी वस्तुओं को तुमसे ही हम उत्पन्न मानते हैं । इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, पितर, सूर्य आदि ग्रह, तुम्हारी शक्ति से ही अपने २ कर्म कर रहे हैं। रूप, ज्योति, शब्द, आकाश, वायु, स्पर्श, अन्न, जल, गन्ध, पृथिवी, काल, ब्रह्मा, ब्रह्म, ब्राह्मण तथा जितना चराचर जगत है, तुमसे ही उत्पन्न होता है ॥७३-७४॥

अद्भ्यःस्तोकायान्तियथा पृथक्त्वंताभिश्चैक्यं संक्षये यान्तिभूयः
एवं विद्वान्प्रभवं चाऽप्ययं च मत्वाभूतानां तव सायुज्यमेति

हे भगवन् ! जैसे पानी के बुदबुदे पानी से उत्पन्न होते हैं और फिर नष्ट होने पर पानी में मिल जाते हैं। जो विद्वान् इस तरह सृष्टि के तत्वों की उत्पत्ति और प्रलय को जान लेता है तथा जो सारे भूत जात को इस तरह विचारता है, वह तेरे सायुज्य नामक मोक्ष को प्राप्त होता है ॥७५॥

दिव्यावृतौ मानसौद्वौसुपर्णौवाचा शाखाःपिप्पलाःसप्तगोपाः
दशाऽप्यन्ये ये पुरं धारयन्ति त्वया सृष्टास्त्वं हि तेभ्यःपरोहि

दिव्यशक्ति से युक्त, माया युक्त, दो पक्षी (जीव ईश्वर) हैं। वाणी की शाखाओं से समन्वित सातों लोक रूप वृक्ष के इनमें एक फल खाता है। दश इन्द्रियों से सम्बन्धित यह स्थूल शरीर भी तुमने ही

रचा है जो सबसे आगे दौड़ता है, परन्तु हे भगवन् ! तुम इस स्थूल शरीर से परे हो ॥७६॥

भूतं भव्यं भविता चाऽप्यधृष्यं त्वत्सम्भूता भुवनानीह विश्व
भक्तं च मां भजमानं भजस्व मा रीरिषो मामहिताहितेन॥७७
आत्मानं त्वामात्मनोऽनन्यबोधं विद्वानेवं गच्छति ब्रह्म शुक्रम्

हे परमात्मन् ! भूत, वर्तमान और किसी प्रकार नहीं रुकने वाला भविष्य तथा सारे भुवन; आप से ही उत्पन्न हैं । मैं आपका भक्त और सेवक हूं । आप मेरे ऊपर अनुग्रह करो । मुझे अहित पदार्थों से नष्ट न करना । जो विद्वान् होता है, अपनी आत्मा से भिन्न परब्रह्म को नहीं देखता । जो ऐसा जानता है, वही ब्रह्मधाम को प्राप्त होता है ॥७७॥

अस्तौषं त्वां तव सम्मानमिच्छन्विचिन्वन्वै सदृशं देववर्य
सुदुर्लभान्देहि वरान्ममेष्टानभिष्टुतः प्रविकार्षीश्च मायाम् ॥

हे देववर्य ! मैं आपको जान चुका तो भी तुम्हारे आदरार्थ तुम्हारी स्तुति कर रहा हूं । अब तुम अत्यन्त दुर्लभ अभीष्ट वर प्रदान करो । तुम्हारी स्तुति से ही माया का नाश होता है ॥७८॥

व्यास उवाच—तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकण्ठःपिनाकधृक्
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः ॥७९॥

व्यासजी बोले—हे अश्वत्थामन् ! अब अचिन्तनीयशक्ति, पिनाकधारी भगवान नीलकण्ठ, नारायण ऋषि की स्तुति से प्रसन्न हो गए और उन्होंने उनको बहुत से वरदान दिए ॥७९॥

श्रीभगवानुवाच—मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु ।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि ॥८०॥

श्रीभगवान् बोले—हे नारायण! मनुष्य, देव और गन्धर्वों में तुम अचिन्तनीय शक्ति वाले हो जाओगे ॥८०॥

न च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः ।
न पिशाचा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः॥८१॥
न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः ।
न कश्चित्त्वां च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति ॥८२॥

देव, असुर, उरग, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, नाग तथा अन्य योनि उत्पन्न प्राणी या कोई देवता भी तुमको रण में जीतने में समर्थ नहीं हो सकेगा ॥८१-८२॥

न शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना न च वायुना ।
न चार्द्रेण न शुष्केण त्रसेन स्थावरेण च ॥८३॥
कश्चित्तव रुजां कर्ता मत्प्रसादात्कथञ्चन ।
अपि वै समरं गत्वा भविष्यसि ममाधिकः ॥८४॥

शस्त्र, वज्र, अग्नि, वायु, आर्द्र, शुष्क, स्थावर आदि वस्तु तुम्हें मेरी कृपा से पीड़ा पहुंचाने में समर्थ नहीं हो सकेंगी। जब तुम युद्ध में पहुंच जावोगे, तो मुझसे भी अधिक चमकने लगोगे ॥८३-८४॥

एवमेते वरा लब्धाः पुरस्ताद्विद्धि शौरिणा ।
स एष देवश्चरति मायया मोहयञ्जगत् ॥८५॥

तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनिम् ।
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीह्यर्जुनं सदा ॥८६॥

हे अश्वत्थामा ! इस प्रकार नारायण ऋषि ने वर प्राप्त किए-वे ही नारायण श्रीकृष्ण के रूप में आविर्भूत हुए हैं। वे ही दिव्य शक्तिशाली देव अपनी माया से जगत को मोहित करते हुए घूम रहे हैं । वहीं पर वैसा ही साथ २ तप करने वाला नर नामक ऋषि थे। वे भी नारायण के तुल्य ही दिव्य शक्ति सम्पन्न हैं। उन नर ऋषि के अवतार अर्जुन को समझना चाहिए ॥८५-८६॥

तावेतौ पूर्वदेवानां परमोपचितावृषी ।
लोकयात्राविधानार्थं सञ्जायेते युगे युगे ॥८७॥

ये दोनों ऋषि पूर्व से सारे देवों से अधिक विद्यमान् हैं। संसार की रक्षा के निमित्त ये युग २ में उत्पन्न होते रहते हैं ॥८७॥

तथैव कर्मणा कृत्स्नं महतस्तपसोऽपि च ।
तेजो मन्युं च विप्रंस्त्वं जातो रौद्रो महामते ॥८८॥

हे महामते ! तुम भी बड़े तपस्वी हो। तुमने भी अपने महान् कर्म के कारण अवतार लिया है। तुम तेज और क्रोध में रुद्र के समान हो-या यों कहना चाहिए, कि रुद्र के ही अवतार हो।

स भवान्देववत्प्राज्ञो ज्ञात्वा भवमयं जगत् ।
अवाकर्षस्त्वमात्मानं नियमैस्तत्प्रियेप्सया ॥८९॥

हे अश्वत्थामा ! तुम देव के समान शक्तिशाली एक विद्वान् थे। तुमने सारे संसार को शंकरमय समझ लिया। तुमने भगवान्

शंकर की भक्ति और प्रेम से उसकी सेवा सुश्रूषा के नियमों में संलग्न होकर अपने शरीर को सुखा डाला ॥८६॥

शुभ्रमत्र हविः कृत्वा महापुरुषविग्रहम् ।
ईजिवांस्त्वं जपैर्होमैरुपहारैश्च मानद ॥९०॥
स तथा पूज्यमानस्ते पूर्वदेहेऽप्यतूतुषत् ।
पुष्कलांश्च वरान्प्रादात्तव विद्वन्हृदि स्थितान् ॥९१॥

हे मानद ! तुमने अच्छी २ हवि ग्रहण करके महापुरुष शंकर की पूजा की तथा बहुत से जप, होम और उपहारों से उनको सन्तुष्ट किया। इसी तरह तुमने अपनी पूर्व देह में भी उनकी पूजा करके उनको सन्तुष्ट किया था। हे विद्वन् ! तुमने जिन २ वरों की अभिलाषा की, भगवान् शङ्कर ने वे ही दिव्य बहुत से वरदान तुमको प्रदान किए ॥९०-९१॥

जन्म कर्म तपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलाः ।
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयाऽर्चायां युगे युगे ॥९२॥
सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयति प्रभुम् ।
आत्मयोगांश्च तस्मिन्वै शास्त्रयोगाश्च शाश्वताः ॥९३

हे अश्वत्थामा ! तुम्हारे और कृष्णार्जुन के तप योग बहुत पुष्कल हैं। इन दोनों ने महादेव की लिङ्ग मूर्ति को और तुमने प्रतिमा बनाकर पूजा की है। जो व्यक्ति सर्वव्यापक महादेव की लिङ्ग मूर्ति में पूजा करता है, उसको आत्मज्ञान और शस्त्रज्ञान सुलभ हो जाता है ॥९२-९३॥

एवं देवा यजन्तो हि सिद्धा परमर्षयः ।
प्रार्थयन्ते परं लोके स्थाणुमेकं स सर्वकृत् ॥६४॥

इस प्रकार देवता, सिद्ध, परम ऋषि, यजन करते हुए, भगवान् शङ्कर की प्रार्थना करते रहते हैं। जो उनकी पूजा करते हैं, वे सब कुछ कर चुके ॥६४॥

स एष रुद्रभक्तश्च केशवो रुद्रसम्भवः ।
कृष्ण एव हि यष्टव्यो यज्ञैश्चैव सनातनः ॥६५॥

इस प्रकार भगवान् कृष्ण, रुद्र के भक्त और रुद्र के अनुग्रह से उत्पन्न हैं। इस प्रकार सनातन कृष्ण का यज्ञादि से पूजन करना चाहिए ॥६५॥

सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चति यः प्रभोः ।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः ॥६६॥

जो मनुष्य सब प्राणियों में व्याप्त भगवान् शङ्कर की लिङ्ग मूर्ति की पूजा करता है, उसके ऊपर वृषध्वज भगवान शङ्कर बहुत ही प्रसन्न होते हैं ॥६६॥

सञ्जय उवाच—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा द्रोणपुत्रो महारथः ।
नमश्चकार रुद्राय बहु मेने च केशवम् ॥६७॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! वेदव्यास के इस प्रकार के वचन सुनकर महारथी द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने भगवान् रुद्र को नमस्कार किया और श्रीकृष्ण को अपने से अधिक माना ॥६७॥

हृष्टरोमा च वश्यात्मा सोऽभिवाद्य महर्षये ।
वरूथिनीमभिप्रेक्ष्य ह्यवहारमकारयत् ॥९८॥

अश्वत्थामा के रोमाञ्च खड़े हो गए, उस महावीर ने महर्षि नारायणावतार श्रीकृष्ण को प्रणाम किया । अब इसने अपनी सेना की ओर देखकर युद्ध बन्द करने का संकेत किया ॥९८॥

ततः प्रत्यवहारोऽभूत्पाण्डवानां विशाम्पते ।
कौरवाणां च दीनानां द्रोणे युधि निपातिते ॥९९॥

हे विशाम्पते ! अश्वत्थामा के युद्ध के रोकते ही पाण्डवों ने भी युद्ध रोक दिया । अब द्रोणाचार्य के युद्ध में मर जाने से कौरववीर बहुत ही दीन हो गये थे ॥९९॥

युद्धं कृत्वा दिनान्पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम् ।
ब्रह्मलोकं गतो राजन्ब्राह्मणो वेदपारगः ॥१००॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि व्यासवाक्ये
शतरुद्रीये एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०१

हे राजन् ! वेद पारगामी ब्राह्मण, द्रोणाचार्य, पांच दिन तक युद्ध करके तथा पाण्डव सेना का विनाश करके अन्त में ब्रह्मलोक को पधार गए ॥१००॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्व में
शतरुद्रीय वर्णन का दो सौ एकवां अध्याय पूरा हुआ ।



दोसौ दोवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्नतः परम् ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! जब पर्षतवंशोद्भव, धृष्टद्युम्न ने महारथी द्रोणाचार्य को मार लिया-तो इसके बाद मेरे पक्ष की सेना और पाण्डवसेना ने क्या किया ॥१॥

सञ्जय उवाच—तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै ।
कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥२॥
दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यमात्मनो विजयावहम् ।
यदृच्छयाऽऽगतं व्यासं पप्रच्छ भरतर्षभ ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! जब धृष्टद्युम्न ने महारथी द्रोणाचार्य को मार लिया और कौरवसेना भाग निकली, तो अर्जुन ने अचानक आश्चर्योत्पादक अपनी विजय को देखकर अचानक उपस्थित हुए वेदव्यास से यह प्रश्न किया ॥२-३॥

अर्जुन उवाच—संग्रामे न्यहनं शत्रून्शरौघैर्विमलैरहम् ।
अग्रतो लक्षये यान्तं पुरुषं पावकप्रभम् ॥४॥
ज्वलन्तं शूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते ।
तस्यां दिशि विदीर्यन्ते शत्रवो मे महामुने ॥५॥

अर्जुन ने कहा—हे भगवन् ! जब मैं अपने चमकीले बाणों से संग्राम में शत्रुओं का नाश कर रहा था, तो मैं अपने आगे

अग्नि के समान प्रज्वलित किसी पुरुष को आगे बढ़ता देखता था। हे महामुने ! वह पुरुष देदीप्यमान त्रिशूल लेकर जिस ओर घुस जाता था, उसी ओर शत्रु फटते चले जाते थे ॥४-५॥

तेन भग्नानरीन्सर्वान्मद्भग्नान्मन्यते जनः ।
तेन भग्नानि सैन्यानि पृष्ठतोऽनुव्रजाम्यहम् ॥६॥

वह पुरुष तो शत्रुओं का संहार करता और लोग उस संहार को मेरा किया हुआ समझते थे। जब वह सेना को भग्न कर देता, तो उनके पीछे मैं गमन करता था ॥६॥

भगवंस्तन्ममाऽऽचक्ष्व को वै स पुरुषोत्तमः ।
शूलपाणिर्मया दृष्टस्तेजसा सूर्यसन्निभः ॥७॥
न पद्भ्यां स्पृशते भूमिं न च शूलं विमुञ्चति ।
शूलाच्छूलसहस्राणि निष्पेतुस्तस्य तेजसा ॥८॥

हे भगवन् ! मुझे यह बताओ-वह कौन पुरुष था। उसके हाथ में त्रिशूल था और वह सूर्य के समान देदीप्यमान था—यह मैंने प्रत्यक्ष देखा। वह न तो अपने पैर से पृथ्वी का स्पर्श करता था और न वह त्रिशूल को चलाता था। उस पुरुष के तेज से ही उस शूल से अनेक शूल आप ही निकल २ कर चल रहे थे ॥७-८॥

व्यास उवाच— प्रजापतीनां प्रथमं तैजसं पुरुषं प्रभुम् ।
भुवनं भूर्भुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥९॥
ईशानं वरदं पार्थ दृष्टवानसि शङ्करम् ।
तं गच्छ शरणं देवं वरदं भुवनेश्वरम् ॥१०॥
महादेवं महात्मानमीशानं जटिलं विभुम् ॥

त्र्यक्षं महाभुजं रुद्रं शिखिनं चीरवाससम् ॥११॥
महादेवं हरं स्थाणुं वरदं भुवनेश्वरम् ।
जगत्प्रधानमजितं जगत्प्रीतिमधीश्वरम् ॥१२॥
जगद्योनिं जगद्बीजं जयिनं जगतो गतिम् ।
विश्वात्मानं विश्वसृजं विश्वमूर्तिं यशस्विनम् ॥१३॥
विश्वेश्वरं विश्वनरं कर्मणामीश्वरं प्रभुम् ।
शम्भुं स्वयम्भुं भूतेशं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥१४॥
योगं योगेश्वरं सर्वं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ।
सर्वश्रेष्ठं जगच्छ्रेष्ठं वरिष्ठं परमेश्वरम् ॥१५॥
लोकत्रयविधातारमेकं लोकत्रयाश्रयम् ।
शुद्धात्मानं भवं भीमं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥१६॥
शाश्वतं भूधरं देवं सर्ववागीश्वरेश्वरम् ।
सुदुर्जयं जगन्नाथं जन्ममृत्युजरातिगम् ॥१७॥
ज्ञानात्मानं ज्ञानगम्यं ज्ञानश्रेष्ठं सुदुर्विदम् ।
दातारं चैव भक्तानां प्रसादविहितान्वरान् ॥१८॥

व्यासजी ने कहा—हे पार्थ ! प्रजापतियों में प्रथम, तेजधारी, सामर्थ्यवान्, सारे भूभुव आदि लोकों के अधिपति, वरदायी, ईशान भगवान् शङ्कर के तुमने दर्शन किए हैं। तुम उन्हीं भुवनेश्वर भगवान् शङ्कर की शरण को प्राप्त करो। वे महादेव महात्मा, सर्वशक्तिमान् जटाधारी हैं। वे ही तीन नेत्रधारी, महा-भुज, रुद्र, शिखी, चीर वस्त्रधारी, महादेव, हर, स्थाणु, वरदायी,

भुवनेश्वर, जगत् में प्रधान, अजेय, जगत् की प्रीति के पात्र, अधीश्वर, जगत् योनि, जगत् के बीज, जयी, जगत्पति, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा, विश्वमूर्ति यशस्वी, विश्वेश्वर, विश्वनर, कर्म के स्वामी, शक्तिशाली, शम्भु, स्वयम्भू, भूतेश, भूत वर्तमान और भविष्य के उत्पादक, योगस्वरूप, योगेश्वर, सर्वरूप, सब लोक के ईश्वरों के भी ईश्वर, सर्वश्रेष्ठ, जगच्छ्रेष्ठ, वरिष्ठ, परमेष्ठी, तीनों लोकों के विधाता, तीनों लोकों के आश्रय, शुद्धात्मा, भव, भीम, चन्द्रशेखर, सनातन, भूमि के धारण, वेदवाणी के अधिपति, अत्यन्त दुर्जय, जगन्नाथ, जन्म, मृत्यु और जरा से पारभूत, ज्ञानात्मा, ज्ञानगम्य, ज्ञानश्रेष्ठ और दुर्ज्ञेय हैं। वे भक्तों को अनुग्रह-पूर्वक वरदान देते रहते हैं ॥६-१८॥

तस्य पारिषदा दिव्या रूपैर्नानाविधैर्विभोः ।
वामना जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदराः ॥१९॥
महाकाया महोत्साहा महाकर्णास्तथाऽपरे ।
आननैर्विकृतैः पादैः पार्थ वेषैश्च वैकृतैः ॥२०॥
ईदृशैः स महादेवः पूज्यमानो महेश्वरः ।
स शिवस्तात तेजस्वी प्रसादाद्याति तेऽग्रतः ॥२१॥

भगवान् के अनेक रूपधारी पारिषद (गण) हैं, जो वामन जटिल, मुण्डी, छोटी २ गर्दन और लम्बे २ पेट वाले हैं। इन गणों की विशाल देह है और ये महोत्साही हैं। हे अर्जुन ! इनके लम्बे २ कान, मुख, पैर, हाथ, बेढंगे और विकृत वेष है। इन गणों

के साथ महेश्वर महादेव की पूजा होती है। हे तात! वही तेजस्वी भगवान् शङ्कर तेरे आगे आगे चल रहे थे ॥१६-२१॥

तस्मिन्घोरे सदा पार्थ संग्रामे लोमहर्षणे।
द्रौणिकर्णकृपैर्गुप्तां महेष्वासैः प्रहारिभिः ॥२२॥
कस्तां सेनां तदा पार्थ मनसाऽपि प्रधर्षयेत्।
ऋते देवान्महेष्वासाद्बहुरूपान्महेश्वरात् ॥२३॥
स्थातुमुत्सहते कश्चिन्न तस्मिन्नग्रतः स्थिते।
नहि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२४॥

हे पार्थ! इस लोमहर्षण घोर संग्राम में प्रहार करने में कुशल महाधनुर्धर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा कर्ण और कृपाचार्य से सुरक्षित कौरवसेना में धनुर्धर, अनेक रूपधारी भगवान् महेश्वर के सिवा कौन मन से प्रविष्ट हो सकता है, परन्तु भगवान शङ्कर के आगे स्थित होने पर कोई भी सन्मुख नहीं ठहर सकता है। महेश्वर के समान कोई भी प्राणी तीनों लोकों में शक्तिशाली विद्यमान नहीं है ॥२२-२४॥

गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥२५॥

हे अर्जुन! यदि साग्राम में भगवान् शङ्कर थोड़े भी कुपित हो जावे-तो शत्रु लोग मूर्च्छित हो जाते हैं। उनमें अधिकांश मर जाते हैं, कोई कांपने लगता और कोई गिरने लगता है ॥२५॥

तस्मै नमस्तु कुर्वन्तो देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि ।
ये चाऽन्ये मानवा लोके ये च स्वर्गजितो नराः ॥२६॥
ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम् ।
अनन्यभावेन सदा सर्वेशं समुपासते ॥२७॥
इह लोके सुखं प्राप्य ते यान्ति परमां गतिम् ।

स्वर्ग लोक में देवता सर्वदा भगवान् शङ्कर को नमस्कार करते रहते हैं। जो इस लोक में साधारण मनुष्य हैं या जिन्होंने तप आदि से स्वर्ग प्राप्त कर लिया-ऐसे भक्त वरदायी, कल्याणकारी रुद्र, उमापति शङ्कर देव की अनन्यभक्ति से उपासना करते हैं, वे इस लोक में सुख प्राप्त करके अन्त में परम गति पाते हैं ॥

नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय वै सदा ॥२८॥
रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे ।
कपर्दिने करालाय हर्यक्षवरदाय च ॥२९॥
याम्यायाऽव्यक्तकेशाय सद्वृत्ते शङ्कराय च ।
काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च ॥३०॥
हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च
भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥३१॥
बहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे ।
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥३२॥
गिरिशाय प्रशान्ताय पतये चीरवाससे ।
हिरण्यबाहवे राजन्नुग्राय पतये दिशाम् ॥३३॥

पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः ।
वृक्षाणां पतये चैव गवां च पतये नमः ॥३४॥

हे कौन्तेय! तुम भी शान्त स्वरूप, रुद्र, नीलकण्ठ, कनिष्ठ रूपधारी, अत्यन्त तेजस्वी, कपर्दी, कराल, हर्यक्ष, वरदायी, नियन्ता अव्यक्तस्वरूप, सदाचारी के कल्याण करने वाले, काम्य, हरिनेत्र, स्थाणुपुरुष, हरिकेश, मुण्ड, कृश, उत्तरण, भास्कर, सुतीर्थ, देवों के देव, वेगशाली, बहुरूपधारी, सर्वस्वरूप, प्रिय, प्रियवस्त्रधारी, उष्णीष (मुकुट) धारी सुन्दर मुख वाले, सहस्राक्ष, पूजनीय, गिरिश, प्रशान्त, सर्वपति, चीरवस्त्रधारी, हिरण्यबाहु, उग्र, दिशाओं के पति, पर्जन्यपति और भूतपति को नमस्कार करो। हम भी उनको नमस्कार करते हैं। उस जड़ वस्तु वृक्ष आदि और चेतन गवादि प्राणियों के पति शङ्कर को नमस्कार है ॥२८-३४॥

वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च ।
स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च ॥३५॥
बहुरूपाय विश्वस्य पतये मुञ्जवाससे ।
सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च ॥३६॥
सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च ।
शरणं गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् ॥३७॥

इस शङ्कर का शरीर वृक्षों से आवृत रहता है। जो सेनापति और सारे संसार में व्याप्त होने से मध्य कहाता है। स्रुवधारी धनुर्धर, अग्निस्वरूप, बहुरूपसंयुक्त, विश्वपति, मुञ्ज के वस्त्रधारी,

सहस्रशिर, और चरणधारी, भगवान् शङ्कर हैं। हे कौन्तेय ! तुम वरदायी, भुवनेश्वर शङ्कर की शरण में जाओ ॥२५-२७

उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम् ।
प्रजानां पतिमव्यग्रं भूतनां पतिमव्ययम् ॥३८॥
कपर्दिनं वृषावर्तं वृषनाभं वृषध्वजम् ।
वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम् ॥३९॥
वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम् ।
वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं वृषेश्वरम् ॥४०॥
महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम् ।
लोकेशं वरदं मुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ॥४१॥
त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम् ।
पिनाकिनं खड्गधरं लोकानां पतिमीश्वरम् ॥४२॥
प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम् ।
नमस्तस्मै सुरेशाय यस्य वैश्रवणः सखा ॥४३॥
सुवाससे नमस्तुभ्यं सुव्रताय सुधन्विने ।
धनुर्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने ॥४४॥
धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः ।
उग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च ॥४५॥
नमोऽस्तु बहुरूपाय नमोऽस्तु बहुधन्विने ।
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्मै तपस्विने ॥४६॥

उमापति, विरूपाक्ष, दक्षयज्ञविध्वंसक, प्रजापति, अव्यग्र, भूतपति, अव्यय, कपर्दी, वृषावर्त, वृषशृङ्ग, वृषर्षभ, वृभपायुध, वृपशार, वृषभूत, वृषेश्वर, महोदर, महाकाय, हाथी के चर्म के धारण करने वाले, लोकेश, वरदायी, मुण्ड, ब्रह्मण्य, ब्राह्मणप्रिय त्रिशूलपाणि, वरदाता, खड्गचर्मधारी, प्रभु, पिनाकी, खड्गधारी, लोकपति, ईश्वर, चीरवस्त्र युक्त, शरणागतवत्सल, रक्षक देव भगवान् शङ्कर की शरण में जाओ। सुरेश्वर शङ्कर को नमस्कार है, जिसके कुबेर सखा है। सुन्दर वस्त्रधारी, व्रतशील, धनुर्धर भगवान् शङ्कर को नमस्कार हो। दिव्य धनुर्धर धनुष से सुशोभित धनुष से प्रेम करने वाले, धन्वन्तर, धनुषरूप धनुपाचार्य, शिव को नमस्कार हो। उग्र आयुधधारी, सुरश्रेष्ठ, बहुरूप और बहुत से धनुषों को धारण करने वाले स्थाणुरूप तपस्वी शङ्कर देव को नमस्कार है ॥३८-४६॥

नमोऽस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः ।
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ॥४७॥
मातृणां पतये चैव गणानां पतये नमः ।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥४८॥
अपां च पतये नित्यं देवानां पतये नमः ।
पूष्णो दन्त विनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च ॥४६॥
नीलकण्ठाय पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः ।

त्रिपुरासुरनाशक, भग देवता के नाशक वनस्पति और मनुष्यों के पति, मातृपति और गणपति, गोपति और नित्य यज्ञपति,

जलपति और देवों के पति, पूषा के दांत तोड़ने वाले, तीन नेत्र धारी, वरदायी, नीलकण्ठ, पिङ्गस्वरूप, सुवर्ण के समान केश वाले भगवान शङ्कर को नमस्कार हो ॥४७-४६॥

कर्माणि यानि दिव्यानि महादेवस्त धीमतः ॥५०॥
तानि ते कीर्तयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ।
न सुरा नाऽसुरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः ॥५१॥
सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः ।

महाबुद्धिमान महादेव जी के जितने दिव्य कर्म हैं, उनको अपनी बुद्धि और अपने शास्त्रज्ञान के अनुसार मैं तुमको सुनाता हूं। सुर, असुर गन्धर्व राक्षस कोई भी क्यों न हो-चाहे वे गुहा में पहुंच जावें, परन्तु भगवान शङ्कर के कुपित होने पर उन्हें कभी भी सुख नहीं पहुंच सकता है ॥५०-५१॥

दक्षस्य यजमानस्य विधिवत्सम्भृतं पुरा ॥५२॥
विव्याध कुपितो यज्ञं निर्दयस्त्वभवत्तदा ।
धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ॥५३॥
ते न शर्म कुतः शान्तिं लेभिरे स्म सुरास्तदा ।
विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥५४॥

एक बार दक्ष प्रजापति ने उत्तमता के साथ यज्ञ करना आरम्भ किया। भगवान शङ्कर ने अपना भाग न पाकर उस यज्ञ का निर्दयता के साथ विध्वंस किया। इन्होंने अपने धनुष से बाण छोड़कर अत्यन्त तीव्र स्वर में गर्जना की। उस समय देवों को

कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं हुई। जब महेश्वर कुपित हुए, तो यज्ञ भगवान् भी भाग निकले ॥५२-५४॥

तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः ।
बभूवुर्वशगाः पार्थ निपेतुश्च सुरासुराः ॥५५॥
आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्चकम्पे च वसुन्धरा ।
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः ॥५६॥
अन्धेन तमसा लोका न प्राकाशन्त संवृताः ।
जघ्निवान्सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः ॥५७॥
चुक्षुभुर्भयभीताश्च शान्तिं चक्रुस्तथैव च ।
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च सुखैषिणः ॥५८॥
पूषाणमभ्यद्रवत शङ्करः प्रहसन्निव ।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान्वै व्यशातयत् ॥५९॥

हे पार्थ! भगवान् शङ्कर के धनुष की प्रत्यञ्चा की टङ्कार से सारे लोक व्याकुल होकर उनके वश में हो गए और सारे सुर तथा असुर औंधे मुंह गिर गए और बिलबिलाने लगे एवं पृथिवी कांपने लगी। पर्वत फट गए और दिग्गज मोहित हो गए। गाढ़ अन्धकार में लोक इतने ढ़क गए, कि कुछ भी प्रकाशित नहीं होते थे। उस समय सारी ज्योतियों के साथ सूर्य की प्रभा भी क्षीण हो गई। वे भय-भीत होकर कातर हो उठे और शान्ति पाठ करने लगे। ऋषिगण अपनी और सारे भूत प्राणियों की शान्ति और सुख की इच्छा में तत्पर हुए। इस समय हँसते २ शङ्कर ने पूषा

देवता पर आक्रमण किया। पूषा देव उस समय पुरोडाश हवि: खा रहे थे। इन्होंने वहीं उसके दांत तोड़ दिए ॥५५-५६॥

ततो निश्चक्रमुर्देवा वेपमाना नताः स्म ते ।
पुनश्च सन्दधे दीप्तान्देवानां निशिताञ्शरान् ॥६०॥
सधूमान्सस्फुलिङ्गांश्च विद्युत्तोयदसन्निभान् ।
तं दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥६१॥
रुद्रस्य यज्ञभागं च विशिष्टं ते त्वकल्पयन् ।
भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे ॥६२॥

अब सारे देवता भाग निकले और कांपते हुए नमस्कार करने लगे। भगवान् शङ्कर ने फिर देवों को लक्ष्य करके अपने धनुष पर दिव्य बाण चढ़ाया, जिससे धूम और चिनगारी निकलने लगी, जैसे बादलों में बिजली चमकती हो। यह दशा देखकर सारे देवों ने भगवान् शङ्कर को नमस्कार करके उनका यज्ञ में विशेष भाग कल्पित किया। हे राजन्! वे इतने भयभीत हुए, कि स्वयं महेश्वर की शरण में पहुंचे ॥६०-६२॥

तेन चैवाऽतिकोपेन स यज्ञः सन्धितस्तदा ।
भग्नाश्चापि सुरा आसन्भीताश्चाऽद्यापि तं प्रति ॥६३॥

भगवान् शङ्कर ने अत्यन्त कोप से उस यज्ञ का विध्वंस किया। सारे देवता भाग निकले और आज तक वे डरे हुए हैं ॥६३॥

असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि ।
आयसं राजतं चैव सौवर्णं परमं महत् ॥६४॥